

भातखण्डे स्मृति-ग्रन्थ

ग्रन्थमाला क्रमांक–२

भातखण्डे स्मृति-ग्रन्थ

[सन् १९६० की १००वीं वर्षग्रन्थि के उपलक्ष में]

इन्दिरा कला सङ्गीत विश्वविद्यालय
खैरागढ़, मध्य प्रदेश

BHATKHANDE COMMEMORATION VOLUME

Published by
INDIRA KALA SANGEET VISHWAVIDYALAYA
KHAIRAGARH, M. P.

प्रकाशक

श्री प्रभाकर नारायण चिंचोरे

अध्याचार्य

इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय

खैरगाढ़, म० प्र०

●

आवरण सज्जा

श्री विनायक मसोजी

गोपालनगर, नागपुर

●

मुखपृष्ठ सज्जा

श्री शोभन सोम

अभ्यंकरनगर, नागपुर

●

मुद्रक

श्री अशोक कुमार सहगल

अशोक मुद्रण गृह

९२२, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद

●

चित्र मुद्रक

श्री रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री

सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

●

वितरक

श्री विभूति भूषण विश्वास

उपकुल सचिव

इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय

डाकखाना-खैरागढ़ राज, मध्यप्रदेश

●

मूल्य : ~~२५.०० रु०~~

●

प्रथमावृत्ति : १००० प्रतियाँ

दिनांक : १ अगस्त १९६६

भातखण्डे स्मृति ग्रन्थ

●

सम्पादक मण्डल



संगीतकलानिधि पण्डित विष्णु नारायण भातखण्डे, बी० ए०, 'एल० एल० बी०'

जन्म : कृष्ण जन्माष्टमी संवत् १९१६
शुक्रवार १० अगस्त १८६०

मृत्यु : गणेश चतुर्थी संवत् १९९४
शनिवार १९ सितम्बर १९३६



मध्यप्रदेश के राज्यपाल परमश्रेष्ठ श्री के०·सी० रेड्डी के

करकमलों द्वारा श्रावण (अधिमास) पूर्णिमा

सोमवार, संवत् २०२३ विक्रमी

दिनांक १ अगस्त १९६६ ई०

के दिन भोपाल में

संगीतकलानिधि पण्डित विष्णु नारायण भातखण्डे

द्वारा प्रबोधित

देश के लक्ष-लक्ष संगीतानुरागियों

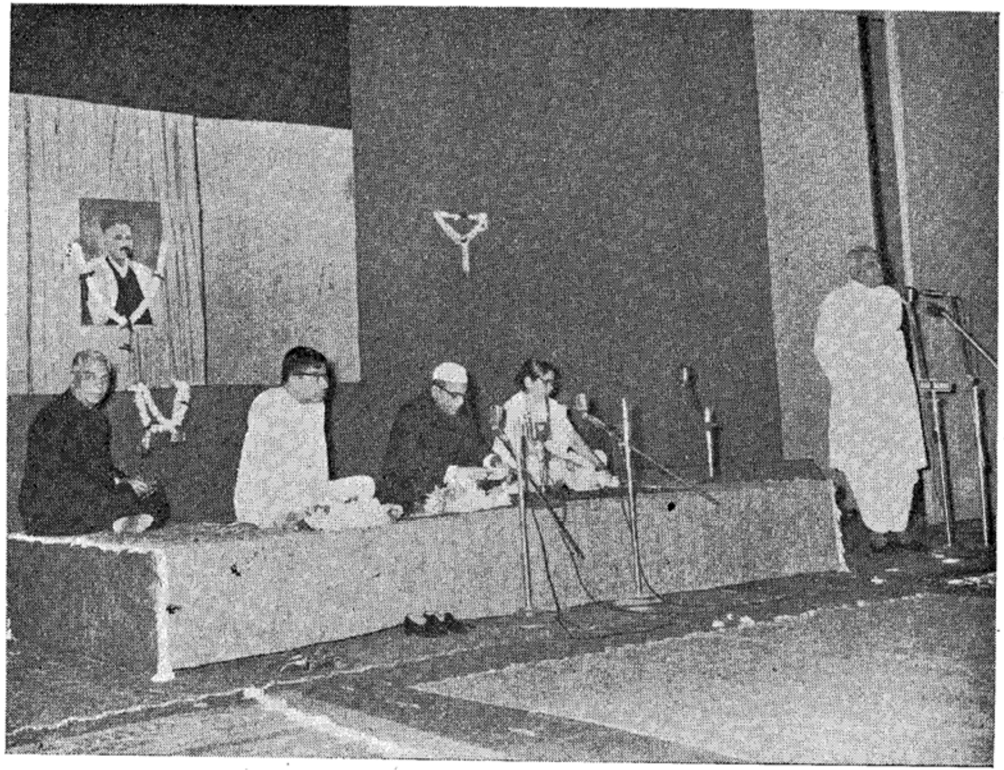
को

भातखण्डे जन्मशताब्दी

के उपलक्ष में

सादर समर्पित

"सुस्वराः सन्तु सर्वेऽपि"



स्मृति-ग्रन्थ समर्पण के अवसर पर राज्यपाल श्री के० सी० रेड्डी, माननीय श्री सी० सुब्रह्मण्यम्
केन्द्रीय खाद्यमंत्री, श्रीमती रमाबाई भातखण्डे तथा अभ्यागतों का स्वागत करते हुए
माननीय श्री गौतम शर्मा, खाद्यमंत्री, मध्यप्रदेश



राज्यपाल श्री के० सी० रेड्डी, स्मृति-ग्रन्थ का प्रकाशन घोषित करते हुए

वस्तु-संग्रह

प्रकाशकीय—श्री प्रभाकर नारायण चिंचोरे — क–घ

हृदगत—श्री गौतम शर्मा — ङ–छ

भूमिका—डॉ० बालकृष्ण केसकर — ज–झ

शुभकामना एवं श्रद्धासुमन — ञ–द

प्रथमाञ्जलि—'जीवन चरित्र' — १–४८
लेखक—पद्मभूषण डॉ० श्री० ना० रातांजनकर, बी० ए०, संगीताचार्य

द्वितीयाञ्जलि—'संगीतोद्धारक पण्डित भातखण्डे मेरी दृष्टि में' — ४९–७६
लेखक—श्री प्र० ना० चिंचोरे, एम०ए०, संगीत निपुण

तृतीयाञ्जलि—'क्रांतिकारी शिक्षा शास्त्री पण्डित भातखण्डे' — ७७–९२
लेखक—श्री प्र० ना० चिंचोरे, एम० ए०, संगीत निपुण

चतुर्थाञ्जलि—'नया मन्वन्तर' — ९३–१६०
पं० भातखण्डे द्वारा लिखित माधव संगीत महाविद्यालय, ग्वालियर की परीक्षा एवं निरीक्षणों के वृतांत : सन् १९२० से १९३० तक।

पंचमाञ्जलि—संग्रहीत तथा रचित अप्राप्य गीत — १६१–२४८
(अ) संग्रहीत गीत (आ) रचित गीत।

षष्ठाञ्जलि—'स्मृतियों के संचित पराग' — २४९–३६६
संस्मरणात्मक लेखों का संग्रह।

सप्तमाञ्जलि—'विविधा' — ३६७–५२८
(अ) पत्र संग्रह, (आ) स्फुट लेख, भाषण आदि, (इ) पं० भातखण्डे का इच्छापत्र, (ई) जन्मलग्नकुंडली तथा फलादेश, (उ) जीवन का घटनाक्रम, (ऊ) चित्र परिचय, (ए) रचनाकारों का परिचय, (ऐ) दान सूची।

प्रकाशकीय

सन् १९३६ में गणेशोत्सव के दिनों में मेरा कार्यक्रम निमाड़ जिले के खातेगाँव कस्बे में था। छोटी आयु के कारण किसी गतिमान वस्तु को देखते ही गायन में मन रम जाता। एक दिन दोपहर के सन्नाटे में सड़क के एंजिन की खड़खड़ाहट को देख-सुन कर कुछ गुनगुना रहा था। अचानक एक सज्जन आये और उन्होंने मुझसे कहा—'बम्बई के भातखण्डे जी का निधन हो गया। क्या तुम उन्हें जानते हो?' मैंने कहा—'नाम से तो अवश्य जानता हूँ, परंतु व्यक्तिगत परिचय नहीं हो पाया था। इस कार्यक्रम के पैसे मिलने पर गुरुजी (स्व० श्री गोपालराव जोशी) से मैंने कह रखा था कि एक बार बम्बई ले जाकर भातखण्डे जी के दर्शन करा दीजिए।' आँखें भर आईं और सहसा मुँह से निकल पड़ा, "यह सामने रोलर दिख रहा है ना? ठीक इसी की भाँति उन्होंने मुझ जैसे लक्षावधियों के लिए कंकड़ पत्थरों को कूट-कूट कर सड़कें बनायीं।" गुरुजी प्रायः व्यस्त रहते। स्वर ताल का ज्ञान उन्होंने यथेष्ट करा दिया था। किसी राग को दस-पन्द्रह बार गवा लेने पर भातखण्डे जी की पुस्तकों में से उस राग की जानकारी बार-बार पढ़ने के लिए कह देते। राग में चलने फिरने की कसरत के बाद गवैयाना ढंग से उसे पेश करते समय क्या-क्या करना चाहिए, इसकी सामग्री पण्डितजी की पुस्तकों में से कैसी चुननी चाहिए, इसकी जानकारी उन्होंने मुझे दे दी थी। फिर क्या था? चीजों पर चीजें रटता रहता और मेरे राग का साज सिंगार जुटता जाता। उनकी पुस्तकों में से प्रत्येक बार कलदार रुपया ही मेरे हाथ लगा। खूब रियाज़ करता और अपने रुपयों को माँज-पोंछ कर चमकीला बनाता रहता। इतने वर्षों के बाद उन पुस्तकों के प्रत्येक अक्षर का आज भी वही महत्व पाता हूँ जो अपने बाल्यकाल में पाता रहा। सम्भवतः इसी कारण उनके शरीर के प्रत्यक्ष दर्शन न होने पर भी ऐसा लगता है कि संगीत के वातावरण में सभी जगह वे मौजूद हैं और अपनी प्रिय विद्या की वर्षा अविरत रूप से करते ही जा रहे हैं।

बाद में कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं कि डॉ० रातांजनकर के पास अहोरात्र शिक्षा-दीक्षा लेने का सौभाग्य मिला। पण्डित भातखण्डे का वह समस्त साहित्य पढ़ने-समझने का अवसर आया तो मैं तो आश्चर्यचकित हो गया। अन्य विषयों की विश्वविद्यालयीन शिक्षा भी पाता था, परन्तु अपना विषय प्रतिपादित करते समय पण्डित भातखण्डे ने जिस तत्परता, आत्मीयता, नम्रता और दृढ़ता का परिचय दिया था, उसका मुझ पर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ता गया कि अन्य विषयों की विपुलता, समृद्धता, चमक-दमक की अपेक्षा मनुष्य को मनुष्य बनाने वाली इस विद्या में ही परमोच्च निर्मलता और सौन्दर्य का आभास हुआ। पण्डित राजाभैया के मुख से समय-समय पर भातखण्डे जी की चर्चा सुनता था। एक प्रसंग पर उन्होंने कहा था—"मेरे कालेज में उनके हस्ताक्षर में लिखे हुए सैकड़ों पृष्ठ हैं। उन्हें अच्छी तरह पढ़ने पर पण्डित भातखण्डे का वास्तविक दर्शन पाओगे।" कुछ समय बाद जब मेरी नियुक्ति ही उनके विद्यालय में हुई तो मुझे भातखण्डे जी के उन लेखों का स्मरण हुआ। राजाभैया उस समय रुग्णशैया पर थे। विद्यालय के जानकार शिक्षकों से मैंने उन

लेखों के विषय में पूछा और प्रत्येक बार मुझे निराश ही होना पड़ा। रिकार्ड रूम में पुराने कागज़ात गट्ठरों में ऐसे बाँध कर रखे हुए थे कि हाथ लगाते ही धूल उड़ती थी। जब ज्येष्ठ और वरिष्ठ शिक्षकों ने ही कागज़ात न होने की सूचना दी तो मैं भी चुप हो गया। एक दिन वार्षिक परीक्षाओं के उपरान्त काम न होने के कारण शिक्षकगण आपस में वार्तालाप कर रहे थे। उनके स्वच्छन्द वार्तालाप के कारण मुझे अपने काम में बाधा पड़ने लगी। अचानक विचार आया और सीढ़ी उठा कर मैं टाँड पर चढ़ गया। एक एक गट्ठर नीचे फेंकता गया और प्रत्येक को ४-५ गट्ठर दे कर पण्डित भातखण्डे के लेख खोजने की प्रार्थना की। कुछ ही समय बाद एक शिक्षक मेरे पास दौड़ते हुए आये और फाइलें मिलने की खबर दी। परन्तु हाय ! सारे कागज़ात दीमकों ने बुरी तरह नष्ट कर डाले थे। बस, उसी दिन से उन लेखों पर मैं जुट गया। उनकी झाड़-पोंछ, मरम्मत, दीमक के नष्ट किये हुए वाक्यांशों की पूर्ति आदि विभिन्न कामों के पूर्ण करने में दो-तीन वर्ष लग गये। इसी बीच सन् १९६० में पण्डित भातखण्डे की जन्म शताब्दी का समय आ गया। ग्वालियर में इसके लिए एक समिति का गठन हुआ और यह कार्यभार मुझ पर ही डाला गया। ग्वालियर में सुशिक्षितों के प्रत्येक घर में कम से कम २-४ व्यक्ति तो ऐसे मिल ही जाते हैं जिन्होंने संगीत की विधिवत् शिक्षा पाई है। अर्थात् जन्म शताब्दी के इस कार्य में सारे शहर में उत्साह की एक अभूत-पूर्व लहर दौड़ गई। जहाँ पर भी मैं गया लोगों ने भरपूर सहयोग दिया। उत्सव की रूपरेखा में जो भी सोचा गया पूर्ण होकर ही रहा। गाना बजाना तो खैर होना ही था, परंतु इस उत्सव को एक शैक्षणिक अनुष्ठान का रूप देना मैं चाहता था। जिस कलाकार का सहयोग माँगा बिना किसी शर्त के स्वीकृतियों का एक ताँता-सा लग गया। यहाँ तक कि बाद में प्रबंधकों को अपनी इच्छाएँ सीमित करना आवश्यक हो गया। भातखण्डे जी के काम में पारिश्रमिक लेने का कहीं पर सवाल ही नहीं उठा। एक साथ १५० कलाकारों के आने की सूचना मिली। इन सबके ठहरने-खाने में पैसा बरबाद करने की अपेक्षा साथियों ने तुरन्त यह तय कर लिया कि सारे अतिथि स्थान स्थान पर मित्रों के यहाँ ठहराये जावेंगे और बचे हुए धन का अधिक अच्छा उपयोग करने की योजना बनाई जावेगी। फलतः चार दिन के कार्यक्रम में प्रतिदिन १०-१२ घण्टे तक मंत्रमुग्ध होकर हज़ारों नर-नारियों ने संगीत का रसास्वादन किया। भातखण्डे जी के साहित्य में जो भी प्राप्त हो सका उसकी एक प्रदर्शनी आयोजित की गई, अपराह्न में विश्राम का समय विचार-संगोष्ठी में अतिथि कलाकारों ने व्यतीत किया। ग्वालियर की इस समिति ने मितव्ययिता के कारण बचाई हुई धनराशि का विनियोग दो प्रकार से किया। एक योजना के अनुसार माधव वाचनालय ग्वालियर को संगीत का साहित्य पाठकों को पृथक् रूप से उपलब्ध कराने के लिये प्रेरित किया तथा दूसरी योजना के अन्तर्गत प्रांत के संगीत विश्वविद्यालय को स्मृतिग्रंथ के प्रकाशन में सहायता प्रदान की। वास्तव में स्मृति ग्रंथ का शुभारंभ समिति के इस प्रथम अनुदान के कारण ही सम्भव हो सका। दिल्ली, नागपुर की समितियों के अनुदान भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। डॉ० श्रीकृष्ण नारायण रातांजनकर खैरागढ़ अपने कार्यकाल में समय-समय पर विश्वविद्यालय को अनुदान देते रहे। इस अनुदान की कुछ रकम विश्वविद्यालय के पास पड़ी थी। उनसे प्रार्थना करने पर इस राशि का उपभोग भी स्मृतिग्रंथ के लिये किया जाना सम्भव हो गया। शेष धन किस प्रकार एकत्रित हुआ इसकी कल्पना स्मृति ग्रंथ के अंतिम पृष्ठ दे सकेंगे। भातखण्डे शताब्दी के बहाने से संगीत के वाचकों का एक संगठन बिना किसी प्रयास के अपने आप बन गया है। आशा है वाचकों का यह संगठन भविष्य में ऐसे ही

उपकारी कार्य करता रहेगा। भातखण्डे शताब्दी समितियाँ एवं वाचक वर्ग के अतिरिक्त संगीत के सैकड़ों विद्यार्थी और प्रेमियों के सहयोग के फलस्वरूप प्रस्तुत स्मृति ग्रंथ का निर्माण हो सका है।

अनेक कारणों से प्रस्तुत स्मृति ग्रंथ पं० भातखण्डे के मध्यप्रदेशीय कार्यों तक सीमित रहा है। चूँकि इसकी योजना बनाने वाली समिति मध्यप्रदेश में गठित हुई थी, अंत: प्रदेशभर में फैला हुआ भातखण्डे साहित्य विश्वविद्यालय को सुलभता से प्राप्त हो सका। यहाँ की शिक्षण संस्थाओं में अपनी इच्छानुसार सामूहिक शिक्षा पर विभिन्न प्रयोग वे करते रहे। अनेक निरपेक्ष साथियों का सहयोग उन्हें प्राप्त हुआ। शासन ने भी उनके मार्गदर्शन को ससम्मान स्वीकार किया। फलत: उज्जैन, धार, इन्दौर, मन्दसौर, नरसिंहगढ़, रतलाम, देवास, जबलपुर, रायपुर, बिलासपुर, मैहर, नागपुर आदि विभिन्न नगरों में ग्वालियर के माधव संगीत महाविद्यालय का अनुसरण किया, क्रमवार पाठ्यक्रम बने, पाठ्यपुस्तकें तैयार हुईं, परीक्षाएँ होने लगीं और भातखण्डे शिक्षा प्रणाली ने सारे देश को प्रभावित कर डाला। यह नूतन आदर्श और उत्साह का वातावरण अनेक वर्षों तक बना रहा। परंतु सामूहिक शिक्षा के कतिपय दोषों का बाद में धीरे-धीरे प्रादुर्भाव भी होता गया। विकासशील कार्यक्रमों से ऐसा होना अनिवार्य भी था। पं० भातखण्डे के सहवास में जिन्होंने प्रेरणा पाई थी वे कार्यकर्ता कम होते गये। शिक्षकों की नई पीढ़ी क्रमश: आदर्श विमुख होती गई। केवल संगीत में ही क्यों सारी विद्याओं में आदर्शविहीन शिक्षक और आदर्शविहीन छात्रों का बाहुल्य आजकल एक अत्यन्त विकराल समस्या बन गया है। इस समस्या पूर्ति के लिये संगीत शिक्षकों का प्रशिक्षण प्रारंभ किया जाय ऐसे सुझाव विश्वविद्यालय के सम्मुख प्राय: आते रहे हैं। सिद्धांतत: यह आवश्यक भी प्रतीत होता है। परन्तु प्रशिक्षण की सफलता के लिये आवश्यक साहित्य के अभाव को देख कर ऐसे सुझाव आज तक कार्यान्वित न हो सके। स्मृति ग्रंथ में प्रकाशित पं० भातखण्डे के परीक्षा एवं निरीक्षण संबंधी वे लेख इस दिशा में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगे। शिक्षण संस्थाओं में विभिन्न पदों पर काम करने वाले सभी व्यक्ति उन विचारों से लाभान्वित हो सकेंगे। म्यूज़िक टीचर्स ट्रेनिंग कालेजों के लिए एक अच्छी पाठ्यपुस्तक के रूप में प्रस्तुत स्मृतिग्रंथ उपयोगी होगा, ऐसी आशा है। कुछ माह पूर्व राजस्थान माध्यमिक बोर्ड के सम्मुख स्मृति ग्रंथ का कुछ अंश रखने का मुझे सौभाग्य मिला था। सभी सदस्यों ने प्रशिक्षण के लिये आदर्श पाठ्यपुस्तक के रूप में स्मृति ग्रंथ को स्वीकार भी कर लिया। आशा है निकट भविष्य में खैरागढ़ संगीत विश्वविद्यालय कुछ ठोस कदम उठाने में समर्थ होगा। यदि ऐसा न हुआ तो भी अत्यन्त परिश्रम से प्रकाशित किये हुए पं० भातखण्डे के ये लेख अवश्यमेव प्रेरणादायी सिद्ध होंगे।

विश्वविद्यालयों के संगीत विभागों में तथा संगीत के स्वतंत्र विद्यालयों में भातखण्डे साहित्य का आज खुले आम उपयोग किया जाता है। इस साहित्य का और पं० भातखण्डे के व्यक्तिगत कार्यों का विश्लेषणात्मक मूल्यांकन करने की बाबत छात्रों को प्राय: पूछा जाता है। उचित साहित्य के अभाव में इस दिशा में कोई महत्वपूर्ण प्रगति न हो सकी है। संगीत विषयक बेबुनियाद आलोचना, बाजारू सस्ता साहित्य पढ़कर प्रकट किये हुए उनके वे विचार घृणास्पद भी हो गये हैं। संगीत जैसे उपेक्षित विषय में निष्पक्ष आलोचना एक दूसरी विकट समस्या हो गई है। ऐसी हरकतों से विद्या की प्रतिष्ठा बढ़ने की अपेक्षा सर्वसाधारण जनता में संगीत और संगीतज्ञों के प्रति तिरस्कार की भावना उत्पन्न हो जाती है। पं० भातखण्डे का अंतरंग एवं बहिरंग प्रदर्शित करने वाला यह ग्रंथ इस दृष्टि से भी उपयोगी सिद्ध होगा।

समूची संगीत परम्परा का सांगोपांग विवेचन करनेवाला प्रचुर साहित्य निर्माण करके उसे समयोचित शास्त्र की नींव पर सुदृढ़ करने का ऐतिहासिक कार्य करनेवाली इस महान् विभूति का इतने वर्षों में विस्तृत चरित्र लिखा हुआ न होना सचमुच एक आश्चर्य की बात है। जिस फुटकर जानकारी को लेकर देशभर में उनका गौरव आज तक होता आया है उसमें प्रस्तुत स्मृतिग्रंथ वृद्धि करनेवाला अवश्यमेव सिद्ध होगा। चरित्रप्रधान घटनाओं के अतिरिक्त उनके कार्यों का विश्लेषण भी ग्रन्थ में प्राप्त होगा। लगभग पचास-साठ लेखकों ने विभिन्न विषयों को लेकर अपने संस्मरण विवेचनात्मक रूप से पाठकों को सादर प्रस्तुत किये हैं। ये सभी सज्जन अपने अपने क्षेत्र में पर्याप्त यश अर्जित किये हुए हैं और पं० भातखण्डे विषयक उनके विचार बोधप्रद एवं रुचिकर प्रतीत होंगे। समयाभाव एवं कार्यबाहुल्यता के कारण इस दिशा में संपादक मण्डल को अपने प्रयत्न सीमित रखने पड़े, जिसके लिये पाठक क्षमा प्रदान करें।

पं० भातखण्डे के माध्यम से संगीत का गत सौ-डेढ़-सौ वर्षों का वृत्तांत पाठकों को उपलब्ध करने के मूल उद्देश्य से सम्पादक मण्डल ने कार्यारम्भ किया था। परंतु प्रसंग के औचित्य को देखकर अपनी इच्छा को मर्यादित रखना बाद में आवश्यक हो गया। ग्वालियर के अतिरिक्त बम्बई, बड़ौदा, लखनऊ, दिल्ली, रामपुर, जयपुर, बनारस, कलकत्ता, हैदराबाद, मद्रास जैसे दूर के स्थानों से जानकारी प्राप्त हो सकती थी। परंतु अपनी कार्यक्षमता को देखकर ग्वालियर व अन्य दो-चार स्थानों से प्राप्त जानकारी पर ही इस बार संतुष्ट रहना आवश्यक हो गया। फिर भी किसी एक व्यक्ति विशेष तक इसे सीमित न कर देने का श्रद्धापूर्वक प्रयत्न किया है। पं० भातखण्डे का न तो अपना कोई घराना था और न कोई पंथ। हाँ, इसे एक निश्चित विचारधारा अवश्य कहा जा सकता है। स्मृतिग्रंथ के माध्यम से इस तत्वनिष्ठ विचारधारा को प्रकट करने में सम्पादक मण्डल कहाँ तक सफल हुआ है इसका निर्णय सहृदय पाठक ही करें। संगीत को आधुनिकतम और सक्षम बना देने के पं० भातखण्डे सदृश्य अनेक महापुरुषों के कार्यों का निष्पक्ष समालोचन, उनका पूर्ण समादर सर्वसाधारण जनता में होता रहे—यही अभिलाषा है।

स्मृतिग्रंथ द्वारा पंडित भातखण्डे के विपुल कार्यों का, व्यक्तित्व का, उनके समय का संपूर्ण चित्रण पाठकों को भले ही उपलब्ध न हो, परंतु उनके प्रयास राष्ट्रव्यापी थे, भारतीय जनजागरण का वह एक उज्ज्वल पृष्ठ था इतना ही आग्रहपूर्वक निवेदन है।

ग्रंथ का प्रकाशन अनेक मित्रों के सहयोग का परिणाम है। इन सभी का नाम निर्देश करना कठिन प्रतीत होता है। आर्थिक अड़चनों का सामना करते रहने का विश्वविद्यालय के सदस्यों का निश्चय स्पृहनीय है। इन सभी साथियों का नाम निर्देश करना स्थानाभाव के कारण सम्भव नहीं है। फिर भी संक्षेप में उन सभी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए इस प्रसंग पर अब आज्ञा लेता हूँ।

वाचकों की संघटना के विषय में पृथक् रूप से प्रकाशित 'अपील' पर पाठकगण अवश्यमेव विचार करें—ऐसा अनुरोध है।

सुस्वराः सन्तु सर्वेऽपि।

खैरागढ़, गुरु पूर्णिमा
दि० २ जौलाई, १९६६

—प्रभाकर नारायण चिंचोरे

हृद्गत

भारतीय कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में ग्वालियर की चिरस्मरणीय देन का यदि कोई संक्षेप में मूल्यांकन करना चाहे तो केवल दो बातें सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो जाती हैं। ग्वालियर दुर्ग और ग्वालियर का शास्त्रीय संगीत। दोनों ने अपनी-अपनी प्रतिच्छाया में भिन्न-भिन्न युगों का निर्माण होते देखा। राजा मानसिंह तोमर से लेकर आजतक संगीत की उन्नत धारा यहाँ पर बहती चली आ रही है। इस धारा ने केवल ग्वालियर एवं उसके परिसर को ही संगीतमय बनाया हो, ऐसा नहीं है; अपितु प्रबंध, ध्रुवपद, ख्याल, तराना, टप्पा, ठुमरी गतकारी, बोल-परण आदि विभिन्न उपकरणों द्वारा समूचे उत्तर भारत को सींचा. फलाया फुलाया है। संगीत के इतिहास में एक ऐसा ज़माना आ चुका था कि ग्वालियर के स्वर-साधकों के साथ अपना रिश्ता जोड़ने में देशभर के गायक-वादकों में एक होड़-सी लग गयी थी। ग्वालियर घराने से रिश्ता न होना गायकों के घराने का दोष माना जाने लगा। राजा मानसिंह तोमर के समय तक एक से एक बढ़कर नायकों की माला अविरत रूप से बनती चली गई। परन्तु गतिमय काल में, विद्वान् गायकों की यह परम्परा संपूर्ण देशभर में अचानक ही भंग हो गई। हमारे साधक कलाकार हो गये। उन्होंने कला की वृद्धि तो अवश्य की, परन्तु कला का संगोपन संवर्धन करनेवाला शास्त्रपक्ष क्षीण हो गया। सिंधिया राजपरिवार ने ऐसी अवस्था में भी संगीत के कलापक्ष को अधिक से अधिक बलवान करने के सभी प्रयत्न किये। गायकों की सवारी के लिये किसी नरेश की भाँति हाथी प्रदान किये जाते थे। कलाकार का वही सम्मान था जो रियासत के दीवानजी का होता था। कला का स्रोत खंडित न हो जाय इस दृष्टि से सभी प्राप्त साधनों का प्रयोग करते हुए बड़े मुहम्मद खाँ से हस्सुखाँ-हद्दुखाँ और हस्सु-हद्दुखाँ से रहमतखाँ निसारहुसैन यहाँ के राजाओं की निगरानी में निर्माण हुए। बाबा दीक्षित, बड़े बालकृष्ण बुवा, वामन बुवा, बालागुरुजी, शंकर पंडित, एकनाथ पंडित, राजाभैया, कुदौसिंह, जोरावरसिंह पर्वतसिंह, अमीरखाँ, नन्हेंखाँ, हाफिज़ अलीखाँ, कृष्णराव पंडित सारे इस धरती पर बनाए गए और इनके बनने में यहाँ के राजपरिवार का बहुत बड़ा योगदान रहा है।

तानसेन ने ग्वालियर के बाहर भी नाम पैदा किया और वे जहाँ-जहाँ गये ग्वालियर की ज्योति प्रज्वलित करते रहे। ध्रुवपद की तोड़मरोड़ प्रारंभ हो जाने पर ख्याल के गायन को छछोरापन, अफलातून गलेबाजी, हल्की घटिया गायकी के प्रादुर्भाव होने से यहाँ के साधकों ने उसे बचा लिया। ख्यालगायकी का सामाजिक स्तर यहाँ के गायकों ने ही ऊँचा किया। ध्रुवपद से ख्याल इस परिवर्तन को परंपरागत नक्काशी से एक ऐसे दायरे में बाँध दिया कि सारे देश में ग्वालियर की ख्याल-गायकी ने सम्मानित स्थान पा लिया।

सिन्धिया परिवार में स्व० माधवराव जी महाराज एक ऐसे कुशल शासक हुए कि उन्होंने अपनी प्रजा के जीवन को हर दिशा में उन्नत बनाने के सभी साधन एक साथ जुटा लिये थे। देश विदेश का भ्रमण करने के फलस्वरूप अपनी प्रजा की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिए सभी बुनियादी सुधार वे प्रयोग में लाये। संगीत से उनको अपार प्रेम था। वे स्वयं गाते थे और गीतरचना भी

करते थे। अपनी रियासत के कलाकारों के गुण-दोषों के अचूक पारखी थे। अपने राज्य में नये युग के अनुरूप संगीत का विकास हो, ऐसी उनकी तीव्र इच्छा थी। इस कार्य में आवश्यकता पड़ने पर बाहर के किसी सहयोगी की खोज की जाय—ऐसी भावना उनमें जागृत हुई।

सौभाग्य से पण्डित भातखण्डे जी को इस कार्य के लिए उन्होंने सुयोग्य पाया। अपनी सर्वपरिचित पद्धति के अनुसार भातखण्डे जी पर उन्होंने तत्काल विश्वास नहीं किया। खूब जाँच-पड़ताल की। परन्तु भातखण्डे जी की निर्लोभ सेवावृत्ति का उन पर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ता गया कि संगीत विषयक सुधार का सारा विश्वास उन्हीं में केन्द्रित कर दिया।

ग्वालियर में जब-जब भी वे आये, महीनों सरकारी गेस्ट हाउस में रहते और संगीत विषयक अपनी योजनाओं पर महाराज के साथ परामर्श करते हुए उन्हें कार्यान्वित करने के तरीके ढूँढ़ निकालते। आज सारे देश के विभिन्न विद्यालयों में ग्वालियर के शासकीय संगीत महाविद्यालय से शिक्षा प्राप्त स्नातक संगीत का अध्यापन करते हुए प्राय: पाये जाते हैं। सहस्रों की संख्या में यहाँ से शिक्षण प्राप्त कर के नवयुवक देश की शिक्षण संस्थाओं में सम्मान पा रहे हैं। जिस धारा के लुप्त हो जाने की स्व० माधवराव महाराज को शंका थी, वह भातखण्डे जी के सहयोग से इतनी विकसित हो गयी कि देश के कोने-कोने में यहाँ का संगीत, यहाँ के ख्याल, ध्रुवपद, तराने और यहाँ की गायकी छा गयी है। ग्वालियर के पैंतालीस राग देश भर की सभी शिक्षण संस्थाओं की आचार-संहिता बन चुके हैं। एक बहुत बड़ी मर्यादा तक संगीत के प्रत्येक पहलू का शिक्षण हर संगीतानुरागी के लिए सहजसाध्य हो गया है। केवल अकेले एक व्यक्ति के ४०-५० वर्ष के कार्यकाल में सदियों से चलती आयी संगीत की सभी समस्याओं का हल उपलब्ध हो जाना देख कर सचमुच आश्चर्यजनक लगता है। सन् १९१७ से लेकर १९३२ तक पण्डित भातखण्डे अविच्छिन्न रूप से ग्वालियर आया करते थे। यह उनके जीवन का वही काल है जब कि संगीतोद्धार की दिशा में एक बहुमुखी विशाल योजना वे तैयार कर चुके थे। बम्बई में उसका सफल प्रयोग कर के स्व० श्री सयाजीराव गायकवाड़ जैसे उस जमाने के प्रगतिशील राजाओं का सहयोग प्राप्त कर चुके थे और ग्वालियर तथा रामपुर का सम्पूर्ण सहयोग प्राप्त करने के लिए वे प्रयत्नशील थे। श्री माधवराव महाराज से घनिष्ठता होते ही योजना और उस पर तुरन्त अमल करने का एक ऐसा सिलसिला चलता गया कि इस संगीत विद्यालय के प्रथम दस-बारह वर्ष में ही आदर्श शिक्षा-पद्धति का निर्माण हुआ। और संगीत क्षेत्र में विपुल साहित्य, निर्दोष पाठ्यपुस्तकें, प्रचुर संख्या में शिक्षित कार्यकर्ता देश के कोने-कोने में फैल गये। उत्क्रान्ति के प्रत्येक चरण में संगीत की अच्छाइयों की ओर देशवासियों का ध्यान आकर्षित करने का अपना फ़र्ज ग्वालियर के गायकों ने पुन: एक बार पूर्ण कर के दिखाया। पण्डित भातखण्डे का जीवन एक सुनियोजित कार्यक्रम का इतिहास है। सदियों से पिछड़ी हुई इस महान् कला को आने वाले जमाने के लिए सक्षम बनाने के लिए रचे हुए एक अभियान की यह एक गाथा है।

पाँच वर्ष पूर्व ग्वालियर वासियों ने उनकी जन्म शताब्दी बड़ी धूमधाम से मनायी। पन्थ-प्रणाली, घरानों के टूटे बन्धनों को सम्हाले हुए देश के ७०-८० कलाकार इस पुनीत पर्व पर यहाँ आये थे। उस अवसर पर पण्डित भातखण्डे द्वारा निर्मित प्रकाशित-अप्रकाशित साहित्य और लेखों की एक प्रदर्शिनी आयोजित हुई थी। प्रस्तुत स्मृति ग्रन्थ उस प्रदर्शिनी की ही फलश्रुति है। इस प्रकार का साहित्य और भी कई स्थानों में होना सम्भव है। मध्य प्रदेश के संगीत विश्वविद्या-

लय का यह प्रयास पण्डित भातखण्डे की सम्पूर्ण गाथा का दर्पण भले ही न हो, परन्तु मध्य प्रदेश में, विशेषकर ग्वालियर में किये हुए उनके प्रयोगों की एक झलक तो अवश्य है। और इसी झलक से प्रभावित हो कर हमारे मन में आत्म विश्वास तथा गौरव की भावना जागृत होगी। "संगीत चाहे मन्दिर-मज़ारों का हो, राज-दरबारों का हो, छोटी-बड़ी महफ़िल-जल्सों का हो, अखिल भारतीय सम्मेलनों का हो अथवा गणिकाओं का हो––समाज की मलिनता नष्ट करने वाला ही होना चाहिए। उस पर खर्च किये जाने वाले पाई-पाई का समूचा लाभ आम जनता को हो।" पण्डित भातखण्डे के इन विचारों में केवल व्यावहारिक चतुरता ही नहीं है, ज्वलन्त देशभक्ति का यह नमूना है। विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले हमारे हर नवयुवक में इन्हीं विचारों की आज आवश्यकता है। प्रस्तुत स्मृति ग्रन्थ इस दिशा में उपयोगी सिद्ध हो––यही हृद्‌गत मैं पं० भातखण्डे के चरणों में अर्पित करता हूँ।

गौतम शर्मा

खाद्य मन्त्री, मध्य प्रदेश
भोपाल
दिनांक १५ जून १९६६

अध्यक्ष
भातखण्डे शताब्दी समारोह समिति,
ग्वालियर

भूमिका

स्वर्गीय पण्डित भातखण्डे की स्मृति जाग्रत रखने के उद्देश्य से इस स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन कर खैरागढ़ विश्वविद्यालय ने सचमुच बड़ा ही उपकार किया है। समस्त भारतीय संगीत के पुनरुत्थान का ध्येय सामने रख कर, संगीत की उन्होंने जो सेवाएँ की हैं वे चिरस्मरणीय एवं अतुलनीय हैं। यह कहना यथार्थ में अत्युक्ति न होगी कि वर्तमान समय में संगीत का नव-जागरण, जिसे आज हम देख रहे हैं, सब उनके द्वारा किए हुए मार्गदर्शी प्रयत्नों का ही फल है। अतः संगीत एवं कला विकास का ध्येय सामने रखे हुए इस विश्वविद्यालय द्वारा उनकी स्मृति में ऐसे ग्रन्थ का प्रकाशन होना उचित ही है।

पण्डित भातखण्डे बम्बई के उच्च न्यायालय के एक नामवर वकील थे। संगीत के प्रति अनन्य प्रेम के कारण वकालत का परित्याग कर उन्होंने अपना समस्त जीवन संगीत विद्या के बचे-खुचे खँडहरों को पुनर्ग्रथित करने के अनुसन्धानात्मक कार्यों में अर्पण किया। संगीत जगत् में उस समय जो अव्यवस्था थी, उसे सुनियन्त्रित करने का महान् कार्य भी उन्होंने साथ ही साथ हाथ में ले लिया। यह कोई सरल काम नहीं था। वरन् करीब-करीब असम्भव-सी ही बात थी। उन दिनों गायक-वादक इतस्ततः बिखरे हुए थे। इनमें से अधिकांश अपनी विद्या को गुप्त रखना चाहते थे। संगीत को अपनी वंश परम्परागत निजी सम्पत्ति मान कर बाहरी संगीत के चाहने वालों से उसका गुप्त मन्त्र बचाने में सदैव तत्पर रहते थे। अपने परिवार के सदस्यों को अथवा कुछ गिने-चुने व्यक्तियों को छोड़ कर अन्य किसी को भी विद्या सिखाने को वे तैयार नहीं थे।

संगीत अपनी पूर्वप्रतिष्ठा तो पहले से ही खो चुका था। अंग्रेज़ी शासन काल में विदेशी शिक्षा-दीक्षा में पला हुआ समाज संगीत के संस्कारों से अनभिज्ञ हो चुका था और शासक-वर्ग भी संगीत के लालन-पालन में कुछ रुचि नहीं रखता था। राजे-महाराजे एवं सुसम्पन्न वर्ग द्वारा संगीत को जो थोड़ा बहुत आश्रय मिल रहा था वह भी अतिशीघ्र लुप्त हो रहा था।

इस ऐतिहासिक परिस्थिति में संगीत का भविष्य अन्धकारमय दिखायी दे रहा था। सचमुच यदि पण्डित भातखण्डे इस प्रकार के प्रयत्न न करते तो आज संगीत की समूची परम्परा ही मिट जाती। उन्होंने संगीत के समग्र हस्त-लेखों का अन्वेषण करके उसके ऐतिहासिक विकास की कहानी का पुनः अन्वेषण किया। इतना ही नहीं, परन्तु एक व्यवस्थित ढंग से और लगन के साथ उन्होंने सभी प्रमुख कलाकारों के पास जा-जा कर उनके पास जो भी कुछ बचा हुआ व्यावहारिक ज्ञान था, उसे एकत्रित किया। कुशाग्र श्रवण शक्ति एवं सिर्फ एक बार सुनी हुई बातें हू-ब-हू दोहराने की अलौकिक क्षमता नैसर्गिक उपहार के रूप में उन्हें जन्मतः प्राप्त थीं। सैकड़ों गीतों को, तर्जों को एवं वैशिष्ट्यपूर्ण स्वर संगतियों को उन्होंने लिपिबद्ध कर लिया और उनके सांगीतिक रचना तत्वों का सूक्ष्म अध्ययन कर उसी आधार पर उस समय गाए जाने वाले संगीत को सुसंघटित किया। पण्डित जी ने अपनी क्रमिक पुस्तकों में तथा भाष्य ग्रन्थों में हिन्दुस्तानी संगीत का जो अद्भुत विवेचन कर रखा है, वही यथार्थ में हमारे आज के संगीत के ज्ञान प्राप्ति का एकमेव भण्डार है।

उनका यह कार्य किसी कीर्तिस्तम्भ के सदृश प्रचण्ड एवं भव्य है। उसके लिए आने वाली पीढ़ियाँ उनके प्रति कृतज्ञ रहेंगी। जब तक हमारा संगीत विद्यमान है, तब तक उनका नाम भी रहेगा। उन्होंने घरानों की कलापूर्ण गायकी को प्रस्फुटित करने वाली चीजों को संगृहीत किया और सर्वसाधारण संगीत प्रेमियों के लिए उपलब्ध करा दिया। इसके फलस्वरूप संगीत के पुनर्जीवन का महान् कार्य वास्तव में आगे बढ़ा। कार्य का शुभारम्भ तो हो गया, परन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उसमें पर्याप्त प्रगति हुई है। पुनरुद्धार का वास्तविक अर्थ चरितार्थ करने के लिए अभी काफी कार्य बाक़ी है। प्रचार अभी बहुत ही अपूर्ण है। अतः जिनमें संगीत के प्रति प्रेम है उनको उनके चरित्र से बोध लेना चाहिए और जिन ध्येयों की प्राप्ति के लिए उन्होंने इतने कठोर एवं प्रदीर्घ परिश्रम किए, उन ध्येयों को आगे बढ़ाने में सहायता करनी चाहिए।

मेरे जीवन में पण्डित भातखण्डे से व्यक्तिगत परिचय एक विशिष्ट घटना रही। भारतीय संगीत के प्रति मेरी जिज्ञासा और प्रेम रहा, इसलिए मैं उनसे मिलने गया। उनका सौम्य और भव्य व्यक्तित्व, उनकी विद्वत्ता, संगीतोद्धार में उनकी उत्कट निष्ठा तथा उनका जोश इतना प्रभावशाली था कि मैं तुरन्त उन पर मुग्ध हो गया। उनका प्रथम परिचय प्राप्त करते समय मैं तो विद्यार्थी दशा में था। संगीत में रुचि थी इसीलिए उनसे मिलने गया। तथापि संगीत विषयक विविध बातें ऐसी एकाग्रता से मन लगा कर कीं कि मानों मैं कोई इस विषय का गहरा और अनुभवी विद्वान् हूँ। जब-जब मैं बम्बई गया उनके दर्शन के लिए प्रायः जाता रहता। हर बार संगीत के किसी न किसी पहलू पर चर्चा छेड़ कर काफी समय तक उसे तन्मयता से समझाते थे। प्राचीन लेखादि के शोधनार्थ तथा कलाकारों से प्रत्यक्ष मिलने के लिए की हुई अपनी भारत-व्यापी यात्राओं के अनुभवों का उल्लेख भी वे कई बार करते थे। इनमें से कुछ संस्मरण तो इतने विनोद प्रचुर एवं चित्ताकर्षक थे कि सुनने वाले हम सभी लोग ठहाके मार-मार कर हँसते रहते। अपनी दैनन्दिनी (डायरी) के कुछ अंग भी कभी-कभी पढ़ कर सुनाते थे। मैं यह कह सकता हूँ कि संगीत में अधिकाधिक दिलचस्पी लेने के लिए उन्होंने ही मुझे प्रोत्साहित किया। रोज़ के जीवन में उसके महत्व की अनुभूति उन्होंने ही मुझे करायी। उनके उस असामान्य व्यक्तित्व ने मुझ पर गहरा प्रभाव छोड़ रखा है और अब भी उनकी याद कई बार आती रहती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ उनकी अच्छी यादगार है। इसमें संक्षेप में जीवन-चरित्र दिया है और उनकी लिखित परन्तु अप्रसिद्ध ऐसी कुछ सामग्री है जो स्वयं उन्होंने ही छोड़ रखी थी। ग्रन्थ की हस्तलिखित एवं मुद्रित प्रति देख कर मुझे परम सन्तोष हुआ। मेरी धारणा है कि पण्डित भातखण्डे के विषय के साहित्य में यह परिवृद्धि उपयोगी सिद्ध होगी। मैं तो चाहता हूँ कि इसके अतिरिक्त भी उन्होंने जो कुछ लिपिबद्ध कर रखा है, और जो अभी भी प्राप्त हो सकता है, वह सारा शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशित कर दिया जाय ताकि भावी पीढ़ियाँ उससे लाभ उठावें।

उपकुलपति श्री चिंचोरे को, जिन्होंने निःस्वार्थ भावना से और संगीत प्रेम के कारण इतना विद्वत्तापूर्ण कार्य किया है, मैं हार्दिक बधाई देता हूँ। यह इन्हीं के प्रयत्नों का फल है कि आज संगीतानुरागियों के लिए यह ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है। मुझे आशा है कि वे अपना अनुसन्धानात्मक कार्य आगे भी चलाते रहेंगे और पण्डित भातखण्डे के अन्य अप्रकाशित लेख-पत्रादि को प्रकाशित कर सकेंगे।

नयी दिल्ली

—बालकृष्ण केसकर

३, नवम्बर १९६५

शुभकामना एवं श्रद्धा-सुमन

● **राष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्**

Rashtrapati Bhavan
New Delhi - 4

I hope the book will be read by many people to their own benefit and the labour will be rewarded.

10.11.'65 —S. RADHAKRISHNAN

● **आचार्य विनोबा भावे**

लोकनागरी लीपी

वीनोबा-नीवास
जमशेदपुर

श्री चींचोरे जी,

पत्र मीला। बहुत खुशी की बात है कि पंडीत भातखंडे की शत संवत्सरी के संस्मरण में अेक स्मृती-ग्रंथ आप प्रकाशीत करने जा रहे हैं। पंडीत् भातखंडे जी ने संगीत को शास्त्रीय ढंग से परीपुष्ट कीया यह कौन नहीं जानता। मैंने हमेशा माना है की संगीत और चीत्रकला ये अद्भुत माध्यम हैं मनुष्य के हाथ में, जीनके द्वारा भगवान् का नाम और भगवान् का रूप प्रकाशीत कीया जा सकता है।

मेरी शुभ-कामना।

१३.३.'६६. —वीनोबा का जय जगत्

● **डा० जाकिर हुसैन, उपराष्ट्रपति भारत**

Dear Shri Chinchore,

Thank you for your letter of November 3rd.

Among the galaxy of Musicians of India, Pandit Bhatkhande occupies an eminent position owing to his inspiring, masterly exposition of Indian Classical Music. He was primarily responsible for invigorating and resuscitating Indian Classical Music by the introduction of pleasing innovations and nuances. With his melodious voice and reverberating presentation of the many—splendoured facets of Classical Music. Pandit Bhatkhande elevated it to a high pedestal of glory and popularity.

In the light of the great services rendered by Pandit Bhatkhande, the endeavours of the Indira Kala Sangeet Vishwavidyalaya, Khairagarh (Madhya Pradesh) for publishing a volume to commemorate the birth-centenary of this illustrious exponent of Classical Music deserve praise.

I send my best wishes for the success of the Commemoration Volume entitled "Bhatkhande Smiriti Granth".

New Delhi Yours sincerely
14.11.'66 ZAKIR HUSAIN

● श्रीमती इंदिरा गांधी, प्रधान मंत्री भारत

The position of Music in India today owes much to Shri Bhatkhande's devotion and sacrifice. His life was one of complete dedication to music. He wrote learned books, published a vast collection of compositions and arranged pioneering music conferences.

The Indira Kala Sangeet Vishwavidyalaya has been doing good work in the field of music following his pioneering efforts. It has had the good fortune of having as its former Vice-Chancellor Padmabhushan Dr. S. N. Ratanjhankar, the foremost disciple of Bhatkhande. I am glad that a volume is being brought out in homage to the memory of Shri Bhatkhande.

New Delhi
10.1.'66 —INDIRA GANDHI

● श्री के० सी० रेड्डी, राज्यपाल, मध्यप्रदेश

I am glad to learn that the Indira Kala Sangeet Vishwavidyalaya has decided to publish a commemoration volume on the birth centenary of Shri Bhatkhande, which was celebrated in the year 1960. Shri Bhatkhande was one of the eminent contributors of Indian classical music, which, in its melody, texture, beauty and refining effect has a positive content, inferior to no musical system of the world.

I wish the publication all success.

Bhopal
25.11.'65 —K. C. REDDI

● डा० करणसिंह, राज्यपाल, जम्मू कश्मीर

I am happy to know that the Indira Kala Sangeet Vishwavidyalaya is publishing a Bhatkhande Commemoration volume on the occasion of the birth centenary of this great musician. Music is one of the great arts of mankind, and we in India have a rich tradition stretching back many thousand years. In recent times Shri Bhatkhande's contribution to the revival and dissemination of our classical music was indeed tremendous, and the nation owes a deep debt of gratitude to him for his pioneering work in this sphere.

Compiling the writings of Shri Bhatkhande and collecting all the necessary biographical and historical material for this volume has been a long and painstaking endeavour. I send my good wishes to the Vice-Chancellor and other functionaries of the Vishwavidyalaya for the useful task they have performed in preparing this commemoration volume.

Jammu,
19.3.'66 —KARAN SINGH

● डॉ० के० एम० मुन्शी, कुलपति, भारतीय विद्या भवन, बम्बई

Dear Shri Chinchore,

Your letter of 6th of November to hand.

Bhatkhande was one of the two musicians who rescued Indian music from oblivion and put it on a scientific basis. In a sense we owe to him the revival of classical music.

Bombay
12.11.'65

Yours sincerely
K. M. MUNSHI

● श्री वाई० बी० चव्हाण, प्रतिरक्षा मंत्री, भारत

I am glad to know that Indira Kala Sangeet Vishwavidyalaya will shortly publish Pandit Bhatkhande Commemoration Volume.

Pandit Bhatkhande dedicated his entire life to music. He reconciled various styles of vocal music. He was mainly instrumental in spreading mass education in music and this was one of his important contributions in this field. I congratulate the Vishwavidyalaya for undertaking to publish his biography. I am sure it will be interesting not only to musicians but also to the people in general.

I wish the venture of Indira Kala Sangeet Vishwavidyalaya every success.

New Delhi
17.11.'65

—Y. B. CHAVAN

● श्री वसंतराव नाईक, मुख्य-मंत्री, महाराष्ट्र

I am glad that Indira Kala Sangeet Vidyalaya is publishing a commemorative volume on the life and work of Pandit Vishnu Narayan Bhatkhande. He took keen interest in the Indian classical music in general and research therein in particular. He studied innumerable old Sanskrit treatises and books in various Indian languages, toured all over the country and acquired several rare 'Chijas', 'Astais', and 'Antaras'. As a result of this painstaking lifelong effort the six books prepared by him on Hindustani Sangeet have immensely contributed to the preservation and promotion of Indian classical music.

I am sure the commemorative volume will throw light on the various facets of Pandit Bhatkhande's life and the strenuous efforts he made to dig out the invaluable treasure which might have been lost to the country.

Bombay
22.2.'66

—V. P. NAIK

● डॉ० डी० एस० कोठारी, अध्यक्ष, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

Dear Shri Chinchore,

Thank you for your letter.

All interested in Indian Music will always remember with gratitude the pioneering contribution and research works of Bhatkhande. He belongs to that select band of composers and interpreters of music whose work gives a new direction and vigour and whose influence is felt over many generations. The volume that you propose to publish is a praiseworthy effort to make this great man's achievements in the field of music known to scholars in the field and the public generally.

With kindest regards,

New Delhi
30.11.'65

Yours sincerely
D. S. Kothari

● श्री एस० के० पाटील, रेल मंत्री, भारत

I am glad to know that Indira Kala Sangeet Vishwavidyalaya is publishing a "Bhatkhande Smriti Grantha". India celebrated the birth centenary of this great musician in 1960. This Smriti Grantha will give the readers some idea of the rich contribution which Pandit Bhatkhande made to Indian music during his life time. Pt. Bhatkhande is still regarded as an authority on Indian music. The best way to perperuate his memory is to carry forward the work which he had undertaken for the all round development of Indian music.

New Delhi
17.11.'65

—S. K. Patil

● श्री नरसिंहराव दीक्षित, शिक्षा मंत्री, मध्यप्रदेश

Music is divine. 'NAD BRAHMA' enriches life. Pt. Bhatkhande's contribution to music is immense. He is always remembered by lovers of Indian Music. It is to be appreciated that this publication containing detailed biography and critical review of his contribution and various ways and methods of mass education in Music is being brought out to commemorate his birth-centenary.

I wish you success in your project.

Bhopal
16.11.'65

—Narsingh Rao Dikshit

● डॉ० आर० पी० परांजपे, भूतपूर्व उपकुलपति, लखनऊ विश्वविद्यालय एवं आस्ट्रेलिया में भारतीय राजदूत

Prof. Bhatkhande's name is a household word to all who are interested in classical Indian music. His work on the theory and practice of Indian music will be long remembered and continue to influence all music lovers for many, many years.

I am not a musician myself, but I like to hear classical Indian music. I met Prof. Bhatkhande only once when I had occasion to call on him over forty years ago in company with my friend and colleague, the late Principal V. K. Rajwade who was a great connoisseur of music.

In these days of popular music, not always of very high quality, the work of Prof. Bhatkhande deserves greater recognition. I am glad, therefore, that the Indira Kala Sangeet Vishwavidyalaya is going to bring out a volume dealing with his life and work and I wish the project every success.

Poona
11.11.'65

—R. PARANJAPYE

● प्रो० के० ए० सुब्रह्मण्य अय्यर, भूतपूर्व उपकुलपति लखनऊ एवं संस्कृत विश्वविद्यालय

I am very happy to learn that a Bhatkhande Smriti Granth is being published. I had the privilege of knowing him and listening to his talks and lectures on Indian music. I have heard what musicians have to say about him. I have also seen his Sanskrit work on Indian music. I know how a music college was started in Lucknow in the twenties, largely due to his inspiration. It was always a great pleasure to look at his refined and cultured face. Though I do not know much music, I could feel that Pt. Bhatkhande was a great force and inspiration in the world of Indian music and that his work has given a great impetus to the scientific study of Indian music for the last nearly half a century. It is but fitting that his disciples and admirers should think of having a permanent record of his life, personality and work, which will serve as a guide to all future students of Indian Music. I wish the volume a success.

Lucknow
27.12.'65

—K. A. SUBRAMANIA IYER

डॉ० पी० वी० राजामन्नार, भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश, मद्रास

Dear Sir,

I am happy to learn that the Indira Kala Sangeet Vishwavidyalaya will shortly publish a volume to commemorate the birth centenary of the late Prof. Bhatkhande, containing a detailed biography, critical review of his contributions, and also his ideas as expressed in his speeches, articles and letters. It is also very thoughtful to include many of his rare songs, composed or collected by him.

Prof. Bhatkhande's service to the cause of Indian Music cannot adequately be praised. Credit must go to him to have given a scientific exposition of the Hindustani system of Music. The fact that there have been controversies on some aspects of his work does not detract from its value. Bhatkhande had not only established institutions but he had been able to inspire generations of Music Scholars to pursue a scientific study of Indian Music. I commend the enterprise of the Vishwavidyalaya to publish "Bhatkhande Smriti Granth."

Madras - 8
13.11.'65

Yours sincerely
P. V. Rajamannar

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

प्रिय चिचोरे जी,

आपका २३ दिसम्बर का कृपा पत्र मिला। यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आपके परिश्रम से भातखण्डे स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। यह बहुत ही शुभ प्रयत्न है। भातखण्डे जी ने इस देश के संगीत के पुनर्जागरण और संवर्धन में बहुत ही महत्व-पूर्ण कार्य किया है। इस देश के संगीत-प्रेमी सदा उनके ऋणी रहेंगे। आपने स्मृति ग्रन्थ की योजना बना कर और उसे प्रकाशित करके बहुत ही शुभ कार्य किया है। मेरी हार्दिक शुभ कामना आपके साथ है।

चण्डीगढ़
३१.१२.'६५

आपका
हजारी प्रसाद द्विवेदी

● डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र, बिलासपुर

Dear Shri Upakulapatiji,

Many thanks for your D. O. No. 284, dated 214th April 1966.

The late Shree Bhatkhande of revered memory was the undisputed pioneer in the field of the revival of classical music. The art, which was degenerated in certain respects and mostly captured by professionals of questionable status in society, has been elevated to its former dignified position by the untiring effort of the late Pt. Bhatkhande. It is very good of the Indira Kala Sangeet Vishwavidyalaya to have thought of publishing a Centenary Commemoration volume containing a detailed biography and critical review of Pt. Bhatkhande's contributions etc. and I wish the best of luck to you all in this effort.

With best regards,

Bilaspur
7.4.1966

Yours sincerely,
BALDEO PRASAD MISHRA

● कुमार बीरेन्द्र किशोर राय चौधरी, कलकत्ता

My dear Shri Chinchoreji,

It is indeed a great news for every music lover of India to learn that you have been compiling a volume publishing unknown articles, letters, songs and some rare photographs of the late Rishi Bhatkhandeji. This monumental work is really a befitting homage and an appropiate symbol of Bhatkhandeji's centenary festival.

With best wishes and best regards.

Calcutta-19
18.5.66

Yours sincerely,
B. K. ROY CHOUDHURY

● **श्रीमती रानी पद्मावती देवी, स्थानीय शासन मंत्री, मध्यप्रदेश तथा संस्थापक, प्रति-कुलपति, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़**

इस विश्वविद्यालय की स्थापना के समय यही आशा की गयी थी कि यहाँ पर संगीत तथा ललित कलाओं की क्रमिक शिक्षा तथा अनुसन्धानात्मक कार्यों के साथ-साथ इन विद्याओं के सौन्दर्य-तत्वों की अनुभूति प्रदान करने वाली सभी आवश्यक सामग्री भविष्य में उपलब्ध होने लगेगी। मुझे यह जानकर अत्यन्त सन्तोष हुआ कि तीन वर्ष पूर्व अपने प्रथम प्रकाशन के समय विश्वविद्यालय द्वारा आरम्भ किये गये अनुसन्धान-विभाग ने पण्डित भातखण्डे की स्मृति में हिन्दुस्तानी संगीत की गत सौ-पचास वर्षों की गतिविधियों का वृत्तान्त इस ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित करने का स्फूर्तिदायक कार्य किया। कहना न होगा कि अपने इन ग्रन्थों के प्रकाशन में विश्व-विद्यालय को अनेक आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। मैं विश्व-विद्यालय और उपकुलपति श्री चिंचोरे को इस स्तुत्य प्रयास के लिए हार्दिक बधाई देती हूँ और जन-सांस्कृतिक विकास में रुचि रखने वाले महानुभावों से अनुरोध करती हूँ कि वे इस संस्था को हर प्रकार से प्रोत्साहित करें जिससे वह अपने निर्धारित लक्ष्यों को शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त करने में सफल हो सके।

मेरी कामना है कि पण्डित भातखण्डे का पुण्य स्मरण हर प्रकार से प्रेरणादायक सिद्ध हो।

भोपाल
२९.३.'६६

—पद्मावती देवी

जीवन-चरित्र

गाऊँ, गुन गाऊँ,
सीस निवाऊँ,
चरनन ते
गुरु चतरा को
मन ध्याऊँ ।। स्थायी ।।

ग्यान चतुर,
ध्यान चतुर,
पुनि गीत चतुर,
जेहि रीत चतुर,
वाक चतुर,

रस राग चतुर,
बरनी न जाय
चतुराई ।।

ऐसो महापुरुष साचो,
सब गुनियन में गुनग्यानी,
जिन चरनकृपा
गुन गाऊँ ।। अन्तरा ।।

—"सुजान"

(मालकंस, आड़ाचौताल में निबद्ध)

जीवन-चरित्र

पद्मभूषण श्री० ना० रातांजनकर

उन्नीसवीं शताब्दी ईसवी का उत्तरार्ध भारत के इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण समय था। लगभग एक सहस्र वर्ष की पराधीनता के पश्चात् इसी समय में पुनः जागृति का उदय होने लगा था। राष्ट्रीय भावना भारतवासियों के विचारों में जग उठी थी और पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से कहिये अथवा किसी और कारण से, सर्वसाधारण जनता में स्वतन्त्रता के आचार-विचारों की ऊर्मियाँ उठने लगी थीं। लगभग डेढ़ सौ वर्ष के पाश्चात्य शासनकाल में हमारे भारतीय राजाओं के राजतेज को कुछ पाश्चात्य राजनीति वश और कुछ आपस की गृहयुद्ध के कारण से बहुत धक्का पहुँचा। राजा को भगवान् विष्णु का अवतार, एक अनुपेक्षणीय विभूति समझने का तथा 'राजा कालस्य कारणम्' का भाव मिटता चला। प्राचीन समय से चलती आयी राजा-प्रजा की परम्परा के स्थान पर अब लोकतन्त्र-नीति का ध्येय बना। इसी समय में बड़े-बड़े राष्ट्र नेतागण दादाभाई नवरोजी, लोकमान्य तिलक, गो० कृ० गोखले, लाला लाजपतराय, बिपिनचन्द्र पाल, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, सर फिरोज़शाह मेहता, श्रीनिवास शास्त्री एवं राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जैसे पैदा हुए। जिनकी तपस्या के फलस्वरूप हम भारतीय आज एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में संसार के सब राष्ट्रों से यथायोग्य सम्मान एवं आदर पा रहे हैं। यह समय ऐसा भाग्य-शाली था कि उसमें न केवल राजनैतिक क्षेत्र में, वरन् सांस्कृतिक जीवन में भी भारतमाता ने अनेक विश्वमान्य विद्वान् व्यक्तियों, महाकवियों, चित्रकारों, मूर्तिकारों, शिल्पज्ञों, गायक-वादकों एवं अन्यान्य कलाकारों को जन्म दिया। ऐसा कौन व्यक्ति इस संसार में होगा जिसने डॉ० रवीन्द्रनाथ टैगोर, सर जगदीश चन्द्र बोस, एम० विश्वेश्वरैया, श्रीरामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, रमण महर्षि, सी० वी० रमण का नाम न सुना होगा।

इसी कालावधि में संगीत क्षेत्र में भी कई चिरस्मरणीय विभूतियों का उदय हुआ। राजा सौरीन्द्र मोहन टैगोर, कृष्णधन बनर्जी, चिन्नुस्वामी मुदलियार जैसे संगीत शास्त्रकार, जिन्होंने अपने जीवन भर केवल संगीत के प्रेम के कारण निरपेक्ष भाव से इस कला एवं विद्या की सेवा करके जनता को ज्ञान लाभ कराया। तानरस खाँ, हद्दु-हस्सु खाँ, बड़े मुहम्मद खाँ, बन्देअली खाँ बीनकार, अलीहुसैन खाँ बीनकार, इनायत हुसेन खाँ, नत्थन खाँ, कुदौसिंह, नानासाहब पानसे, अल्लादिया खाँ, अबदुल करीम खाँ, बालकृष्ण बुआ, भास्कर बुआ, शंकर राव पंडित, विष्णु दिगंबर जी तथा अन्यान्य अनेक धुरंधर भारत विख्यात गायक-वादक, जिन्होंने अपनी अनुपम कला का परिचय जनसाधारण को

देकर देश भर में रागदारी सङ्गीत कला की ज्योति प्रज्वलित रखी; इसी कालावधि में अवतरित हुए।

इन्हीं महान् विभूतियों में से सङ्गीत क्षेत्र में एक अग्रगण्य विभूति गुरुदेव पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे जी थे, जिनका जीवन सङ्गीत के पुनरुद्धार के लिये ही बीता। पंडित जी का जन्म एक चित्तपावन महाराष्ट्रीय ब्राह्मण कुटुम्ब में १० अगस्त १८६० में श्रीकृष्णजन्माष्टमी के दिन बम्बई के वालुकेश्वर में हुआ। उनका जन्म उस जाति में हुआ था कि जिनको कुशाग्र बुद्धि की देन निसर्गतः ही प्राप्त होती है। पंडित जी के पिताजी श्री नारायणराव उर्फ नाना बम्बई में ही एक धनी सेठ के यहाँ मुनीम थे। इनके पूर्वज कोंकण में नागाँव नामक गाँव के रहने वाले थे। दो-तीन पीढ़ियों से ये लोग बम्बई आकर बसे थे। श्री नानासाहब का एक अपना श्री-दत्त मन्दिर उनके घर में ही था। यह मकान उनका निजी था जो अब भी वालुकेश्वर में समुद्र तीर पर विद्यमान है। नानासाहब दत्तात्रेय के उपासक थे। इनके घर में नित्य प्रतिदिन अपने इष्ट देवता की पूजा होती थी।

इस समय भी यदि हम वालुकेश्वर का पर्यटन करने जायें तो एक तीर्थ स्थान के दर्शन का आनन्द मिलेगा। समुद्र के तीर पर एक बड़ा शिवालय है, जिसके देवता का नाम वालुकेश्वर (वालुका-ईश्वर) है, इसके आस-पास कई छोटे-छोटे मन्दिर एक पुष्करिणी को घेरे हुए हैं। पुष्करिणी का नाम 'बाणगंगा' है। इस पुष्करिणी के विषय में एक जनश्रुति है कि श्री राम ने (सम्भवतः भार्गव राम ने) पानी की कमी देखकर भूमितल पर बाण मार कर यह पुष्करिणी उत्पन्न की थी। समुद्र के तीर पर, अति निकट होते हुए भी बाणगंगा का पानी नमकीन नहीं है। वह पीने योग्य तो है नहीं, क्योंकि वहाँ के निवासी उसमें नहाते-धोते हैं जिससे पानी गंदा हो गया है। वहाँ के निवासियों में अधिकतर मारवाड़ी, गिरी, पुरी, गोसाईं एवं गुजराती ब्राह्मण और बनिये हैं। कुछ महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों के भी घर हैं जिसमें एक भातखण्डे कुटुम्ब का भी है।

पंडित जी का बाल्यकाल इसी वालुकेश्वर में बीता। नानासाहब के तीन पुत्र एवं दो कन्याएँ थीं। ज्येष्ठ पुत्र का नाम त्रिबकराव था। इनको अप्पाजी कहते थे। आप कुछ वर्ष पुलिस में नौकरी करके युवावस्था में ही स्वर्गस्थ हो गये। आपके सुपुत्र बड़ौदा में डाक विभाग में नौकरी करते थे।

अप्पाजी के पश्चात् पंडित जी का जन्म १०-८-१८६० को हुआ। इस दिन श्रीकृष्णजन्माष्टमी थी। वालुकेश्वर के गुजराती लोग भगवान् कृष्ण के भक्त तो थे ही, प्रति वर्ष श्रीकृष्णजन्माष्टमी के दिन वहाँ बड़ी धूमधाम से उत्सव, झाँकी, भजन, रामलीला, कृष्णलीला के नाट्य प्रयोग आदि हुआ करते थे। उसके अनुसार इस वर्ष भी उत्सव होता रहा। इसी महोत्सव के समय पंडितजी का जन्म हुआ। इस महापुरुष को उनके साठवें वर्ष की अवस्था में भी जिसने देखा उसके सम्मुख एक तेजस्वी मूर्ति, विशाल भाल प्रदेश, चमकती हुई चंचल आँखें, केतकी जैसी सुनहरी अङ्गकांति, विशाल वक्षस्थल, लम्बे हाथ पैर, सरल लम्बी नाक इत्यादि प्रभावशाली सुदर्शनीय चिन्हों से युक्त दिखाई

हाईकोर्ट वकील



पण्डित भातखण्डे
[१९००]



पण्डित भातखण्डे
[१९२२]

देती; तब यही मूर्ति अपनी शिशु अवस्था में कितनी सुन्दर, कितनी सुहावनी, कितनी प्यारी रही होगी इस बात की कल्पना की जा सकती है। इस सुन्दर देह में उतना ही सौन्दर्य-पूर्ण मन बसता था। पंडित जी के सम्पर्क में आने वाले सभी लोगों को उनके दर्शनीय स्वरूप के अतिरिक्त उनके सम्भाषण का प्रवाह पवित्र जलप्रवाह की भाँति, उनके हाव-भाव बसन्त ऋतु में मन्द समीर के झोंकों में वृक्षवेलियों की भाँति मुग्ध कर लेता था। सुनने वाले के मन को पूर्णतया: प्रभावित कर देने की कला उनमें इतनी चमत्कारी थी कि जीवन भर उनका विस्मरण न हो। बाल्यावस्था में इसी व्यक्ति की तोतली बोली संगीतमय रही हो तो क्या आश्चर्य।

पंडित जी को संगीत की अभिरुचि दिलानेबाली उनकी माता ही थीं। माताजी के कंठ से निकलती हुई सुमधुर लोरियाँ, भजन स्तोत्रादि सुनकर इस बालक को मानो अपने जीवन कार्य की प्रेरणा ही मिलती रही। ये भजन स्तोत्रादि बड़े ध्यान से सुनते जाते थे, वरन् उनको अपनी टूटी-फूटी तोतली बोली में गाते भी थे।

पंडित जी के छोटे भाई का नाम हरिभाऊ था। ये भी गाने-बजाने के प्रेमी थे। और दीलरूबा बजाते थे। बैङ्क में नौकरी करते थे। इनको भी मैंने देखा है। वे जीवन भर उसी वालुकेश्वर वाले अपने मकान में रहे और उनका देहान्त भी वहीं हुआ। उनके एक पुत्र दत्तात्रेय नाम के थे। जिनको घर में केदार नाम से पुकारते थे। इनको आध्यात्मिक साधन योग प्राणायाम इत्यादि का अभ्यास था। बाणगंगा में घण्टों खड़े रहकर प्राणायाम करते रहते। उसी में एक दिन उन्होंने अपने प्राण अर्पण किये। उनका परिवार कुछ दिनों तक बम्बई के पास पनवेल नामक गाँव में रहता था। अब इनके एक पुत्र श्री माधव राव अपनी माता श्रीमती रमाबाई के साथ वालुकेश्वर में अपने मकान में रहते थे।

माता के कण्ठ से निकले हुए सुस्वर एवं मधुर गीत सुनते-सुनते बालक गजानन (पंडित जी को लोग बचपन में गजानन नाम से पुकारते थे) के कान स्वरों से खूब परिचित हुए। माता जी के गाये हुये सब गीत इस बालक को कण्ठस्थ हुए और वे उन्हें अपनी मराठी प्राथमिक शाला में गाते रहे। पाठ्यपुस्तकों में से सीखी हुई कविताएं एवं अन्यान्य गीत गाने में बालक गजानन अपने सहाध्यायी लड़कों में अग्रगणी थे। अपने सुस्वर गायन पर उन्होंने परितोषिक भी पाये थे। १०-१२ वर्ष की अवस्था में गजानन को बँसुरी बजाने का शौक लगा। बाँसुरी बजाने में पर्याप्त प्रगति भी की। वालुकेश्वर में हर वर्ष होने वाले नित्य-नैमित्तिक उत्सव-मेलों में गायन-वादन एवं नाट्य-नृत्य प्रयोगों में गजानन के बाँसुरी-वादन की स्वतन्त्र अथवा साथ संगति में बहुत माँग होती रहती थी। नृत्य-नाट्य प्रयोगों में तो गजानन की बाँसुरी की संगत अनिवार्य समझी जाती थी।

पंडित जी को घर में 'अण्णा' भी कहते थे। अब हम इसी नाम से उनका उल्लेख करेंगे। मराठी पाठशाला की शिक्षा समाप्त करके अण्णा बम्बई के एल्फिन्स्टन हाई-स्कूल में दाखिल हुए। उस समय यह हाईस्कूल परेल में था। वालुकेश्वर से यह स्थान लगभग तीन मील दूर था। उस समय बम्बई में न ट्राम चलती थी न बस! विक्टोरिया (बम्बई में घोड़ागाड़ी को विक्टोरिया कहते हैं), मोटर एवं बाइसिकल; ये ही वाहन उस समय उपलब्ध थे। पर इनमें से एक का भी उपयोग करने योग्य अण्णा के घर की

आर्थिक परिस्थिति नहीं थी। विक्टोरिया में प्रतिदिन आने-जाने में उस समय भी कम से कम एक रुपया लग जाता था। मोटरें तो बड़े-बड़े धनी सेठ-साहूकारों के सिवा और किसी के पास रहना असंभव ही था। बाइसिकल भी उस समय के अण्णा जैसे घर के लिए एक ऐशो-आराम की वस्तु थी। इसके अतिरिक्त मध्यम परिस्थिति वाले घर में ऐसा कौन जवान सुदृढ़ लड़का उस समय था जो प्रतिदित पाँच-छः मील पैदल न चल सकता? अण्णा का भी स्वास्थ्य लड़कपन में बहुत अच्छा था। उस समय अण्णा को हाई स्कूल जाते हुए जिन लोगों ने देखा था, वे उनका वर्णन इस प्रकार करते थे—गौर वर्ण, लम्बा कद, तेजस्वी नेत्र, हँसमुख चेहरा, घुटा हुआ सिर और छोटी-सी चुटिया, सिर पर एक गोल टोपी जो सदा पीछे की ओर हटाई हुई रहती, धोती काँछा लेकर पहनी हुई, एक कुरता तथा कोट पहना हुआ, उसी हाईस्कूल में जानेवाले अपने मुहल्ले के एवं रास्ते में मिलकर साथ चलनेवाले और लड़कों से घिरे हुए, लड़कों के मुखिया की भाँति, पैर लम्बे होने के कारण लम्बी चाल चलते हुए, हाईस्कूल के पाठ्य विषयों पर बातचीत करते हुए, हँसते-खेलते अण्णा पौन घंटे के अंदर हाईस्कूल जाकर पहुँचते थे। हाईस्कूल में गजू (गजानन भातखण्डे) की बड़ी धाक थी। हर स्कूल में कुछ शरारती लड़के तो रहते ही हैं। एल्फिन्स्टन हाईस्कूल में भी कुछ ऐसे लड़के थे जो केवल हँसी मजाक के लिए छोटे-छोटे बच्चों को सताते रहते। इन शरारती लड़कों की शिकायतें शिक्षक के पास न ले जाकर सब छोटे बालक गजू के पास जाकर करते। गजू एवं उनके एक-दो और साथी जो उन्हीं की भाँति शक्तिशाली थे मिलकर शरारती लड़कों की काफी मरम्मत करते। गजू की धाक इन लड़कों में इतनी जमी हुई थी कि किसी की शिकायत पर गजू बदला लेने के लिए निकल पड़ते तो सब शरारती "अरे भागो भातखण्डे आयो" कहकर कहीं के कहीं भाग जाते।

हाईस्कूल पास करके अण्णा एल्फिन्स्टन् कालेज में दाखिल हुए। इसी समय अण्णा को सितार का शौक लगा। उन्हीं के मुहल्ले में गोपाल गिरी बुआ नामक एक गुसाईं सितार बजाया करते थे। इनका सितार वादन सुनकर अण्णा को भी सितार सीखने की उत्कट इच्छा हुई। उन्होंने गोपाल गिरी बुआ से उनके गुरु का पता पूछा। बुआ अण्णा को एक दिन अपने गुरु के घर ले गए। वालुकेश्वर के रास्ते पर ही पास में उनका घर था। वहाँ जाकर अण्णा देखते क्या हैं कि एक छोटी-सी कोठरी में गद्दे चटाइयाँ बिछी हैं, कोने में एक बड़ा सितार एवं उसी के पास एक बीन, दूसरे कोने में कुछ धूम्र पान का सामान हुक्का इत्यादि रखा हुआ और दीवार से लगी हुई एक गद्दी, उस पर एक गाव-तकिया लगा हुआ और उस गद्दी पर एक बृद्ध पुरुष बैठे हुए हैं। उन्होंने "कौ ऽ ऽ ऽ न ?" ऐसा प्रश्न नीचे देखते हुए किया। ये महानुभाव अंधे थे। "ये ही मेरे गुरु हैं" कहकर गोपाल गिरी बुआ ने उनका परिचय अण्णा से करा दिया। ये वृद्ध पुरुष बम्बई के एक धनी सेठ भाटिया जाति के थे। अंधे होने के कारण कुछ धंधा-रोजगार तो कर नहीं सकते थे और धनाढ्य होने के कारण उदर-निर्वाह की कोई ऐसी चिन्ता उन्हें थी नहीं। उन्होंने संगीत ही की सेवा में अपने जीवन का सुख माना। भाटिया लोग वैष्णव होते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करते हैं। श्री स्वामी वल्लभाचार्य एवं उनके शिष्य प्रशिष्य, अनुयायी लोगों के प्रस्थापित किए हुए वैष्णव संप्रदाय के मंदिर

एवं मठ भारत भर में स्थान-स्थान पर अब भी विद्यमान हैं। बम्बई में भी एक-दो ऐसे वैष्णव मन्दिर और उनसे जुड़े हुए मठ हैं। इन मठों के मठाधिपति महन्त स्वामी वल्लभाचार्य के ही वंशज होते हैं। ये तैलंग ब्राह्मण होते हैं। इन्हीं महन्तों को भगवान् श्रीकृष्ण की जीती-जागती मूर्ति समझकर बंबई के भाटिया लोग देवता की भाँति उनकी पूजा-अर्चा, भोग लगाना, दान-धर्म इत्यादि किया करते थे। इन्हीं महन्तों में से 'जीवन जी महाराज' नामक एक महन्त बंबई के भुलेश्वर के वैष्णव मठ के अधिपति थे। इन जीवन जी महाराज का नाम संगीतक्षेत्र में एक कला-कुशल बीनकार के रूप में प्रख्यात है। इन महाराज को संगीत से प्रगाढ़ प्रेम था। ये प्रख्यात पन्नालाल बाजपेयी सितार-वादक के शिष्य कहलाते हैं। जीवन जी महाराज अपने मठ में समय-समय पर संगीत सभाएँ करते थे। कोई बड़ा नामी गायक-वादक बंबई आता तो उसका एकाध कार्यक्रम मठ में अवश्य होता। स्वयं एक अच्छे बीनकार होने के नाते जीवन जी महाराज गुणी गायक-वादकों का अच्छा सम्मान करते एवं उनको पुरस्कार देकर भी प्रसन्न करते। इन महाराज के संबंध में सुना जाता है कि केदारा, मालकंस, बागेश्री तथा दरबारी-कान्हड़ा ये चार राग जिस माधुर्य, जिस कलाकौशल के साथ इन्होंने बजाए वैसे फिर कभी सुनाई नहीं दिये। इन्हीं महाराज की सेवा में रह कर उन अंधे भाटिया सज्जन ने सितार-वादन का अभ्यास किया। इनका नाम था वल्लभाचार्य दामुल जी।

गोपाल गिरी बुआ ने अण्णा का परिचय देकर उनकी सितार सीखने की आकांक्षा अपने गुरु पर प्रकट की। गुरुजी हँस कर बोले "अरे, यह भले घर का लड़का इस में कहाँ कूद पड़ा? ये तो बड़ी बेंड़ी विद्या है। बाकी सब छोड़-छाड़ कर यदि इसी के पीछे पड़ा तो कहीं रुपये में पाई-पैसा भर हाथ लगेगी। तुम तो कालेज में पढ़कर बी० ए०, एम० ए० होने जा रहे हो। इसको सीखकर क्या करोगे?" पर अण्णा ने आग्रह पूर्वक बताया "जो कुछ हो, मैं आपकी सेवा अवश्य करूँगा और आपकी कृपा होगी तो सितार अवश्य सीखूँगा।" "अच्छा, आया करो, पर प्रथम केवल जो मैं बजाता हूँ उसको सुनते रहो। सुनते-सुनते उकता जाओगे तो अपने आप आना बंद करोगे। मेरे सितार वादन का कुछ अच्छा परिणाम तुम्हारे मन पर हुआ तो फिर आते रहोगे। फिर तुमको सिखाना आरम्भ करूँगा। मेरे सितार वादन का समय रात्रि को नौ-दस बजे का है। उस समय आया करो।" यह कह कर गुरुजी ने अपना सितार उठाकर लाने को गोपाल गिरी बुआ को आज्ञा दी। सितार लेकर दो घंटे खूब बजाया जिसको सुन अण्णा के आश्चर्य एवं आनन्द का पार न रहा। उस दिन से अण्णा नित्य प्रति रात्रि को वल्लभदास जी के घर जाकर उनका सितार वादन ध्यानपूर्वक सुनते रहे। गोपाल गिरी बुआ के यहाँ जाकर उनके सितार पर थोड़ा-थोड़ा अभ्यास भी करने लगे। गुरुजी के यहाँ सितार वादन सुनने का नियम भी चलता रहा। इसी प्रकार तीन-चार महीने केवल सितार वादन सुनने में बीते। इसके पश्चात् वल्लभदास जी ने एक दिन सितार उठाकर अण्णा के हाथ में दिया और, उसकी बैठक, पकड़, बाँए-दाहिने हाथ की उंगलियों की क्रियाएँ, दोनों हाथों के अँगूठे सितार पर कहाँ रखे जाते हैं इत्यादि सितार बाज की बारीकियाँ बताना आरंभ किया। अण्णा ने दो-तीन महीने आँखों से ये सब बातें देखी थीं, थोड़ा-सा अभ्यास भी किया था। अब उनको उसे सम-

भने तथा प्रयोग करने में क्या देर लगती। गुरुजी तो आश्चर्य चकित हुए। बोले, "अरे! तू तो पहले से ही सितार बजाता हुआ दीखता है। क्या बजाते थे?" अण्णा ने गोपाल गिरी बुआ के सितार पर थोड़ा अभ्यास करने की बात बतायी। अण्णा की शिक्षा नित्य नियम से आरंभ हुई। रोज रात्रि को १० बजे गुरुजी के यहाँ जाना और दो-ढाई घण्टे सितार का अभ्यास करके घर लौटना, यह क्रम तीन-चार वर्षों तक जारी रहा। सितार वादन में अण्णा ने पर्याप्त प्रगति की, यहाँ तक कि अण्णा का सितार वादन सुनने को संगीत प्रेमी लोग दूर-दूर से दौड़े आते थे। बंबई में एक उदयोन्मुख सितार वादक के नाम से प्रख्यात हो गए। कालेज की पढ़ाई तो चलती ही रही।

अण्णा ने सितार वादन का अभ्यास अपने माता-पिता से छिपाकर किया था। सभ्य समाज में संगीत का व्यवसाय तो दूर रहा, संगीत सीखना भी उस समय सुरापान, द्यूत, वेश्या-गमन की ही भाँति बुरा समझा जाता था। विशेषतया विद्यार्थी दशा में कोई संगीत सुनने-सीखने लगे तो उसको आवारा, बेकार जीवन नष्ट करने वाला, कुटुंब से, समाज से च्युत हुआ समझा जाता था। फिर यह कैसे हो सकता कि सितार सीखने के लिये अण्णा को माता पिता की सम्मति प्राप्त हो? वैसे अण्णा घर के बरामदे में सोते थे। घर का मुख्य दरवाजा बन्द करके बाकी सब लोग अन्दर सोते थे। अण्णा का रात्रि के समय गुरु के घर जाना-आना इस प्रकार सबसे छिपा रहा। सितार में, दो तीन वर्ष के पश्चात् जब पर्याप्त प्रगति हुई, अण्णा के सितार वादन के कार्यक्रम उनकी मित्र मंडली में होने लगे। तब एक रोज ऐसे ही एक कार्यक्रम में किन्हीं साहब ने नाना (पिताजी) को भी बुलाया था। नाना आए और एक ओर बैठ गए। सितार वादन प्रारम्भ हुआ। कार्यक्रम में रंग आ रहा था। सब श्रोतागण मुग्ध होकर झूम रहे थे कि नाना को देखते ही अण्णा घबड़ा गए और बजाते-बजाते रुक गए और दोनों पिता-पुत्र एक दूसरे को देखकर अवाक् रह गए। नाना ने कहा "बजाए जाओ, रुक क्यों गए? महफ़िल का रंग मत बिगाड़ो।" नाना स्वयं भी संगीत के प्रेमी तो थे ही। स्वरमण्डल बजाते थे। कुछ एकाध टुकड़ा अण्णा के गत-तोड़ों का आते-आते उन्होंने सुना ही था, जो उन्हें अच्छा लगा था। अब महफ़िल में आकर अपने पुत्र का सितार वादन सुनने का ही कुतूहल उनमें उत्पन्न हुआ हो तो क्या आश्चर्य? सितार वादन चालू रखने की अनुज्ञा देकर नाना मण्डली में बैठे रहे और उस समय का पूरा कार्यक्रम उन्होंने सुना। अन्त में "अच्छा अभ्यास किया है तुमने" इतना ही कहकर चले गए। इस महफ़िल में अण्णा ने ऐसा मन लगाकर सितार बजाया कि सब श्रोतागण मंत्र मुग्ध से हो गये थे। नाना भी अपने मन में बहुत प्रसन्न हुए थे। पर अपने ही मुँह से अपने लड़के की उसके सम्मुख अधिक प्रशंसा करना उनको अच्छा नहीं लगा। अतएव "अच्छा अभ्यास किया है तुमने" इतना ही कहकर वे चल दिए। पर घर आकर अपनी पत्नी से अवश्य कहने लगे, "सुना तुमने, गजा बहुत अच्छा सितार बजाने लगा है। जाने किस प्रकार हम लोगों से छिपाकर कब इसने यह सब किया।" अम्माजी बोली, "हाँ ठीक है, पर उसको ताकीद देना कि कालेज के शिक्षाक्रम में सितार का दखल न हो"। नाना को यह बात ठीक जँची और अण्णा को सितार के पीछे लगकर अपनी कालेज की पढ़ाई न बिगाड़ने की सूचना मिली।

एकाध वर्ष पूना के डेक्कन कालेज में भी अरणा साहब पढ़े थे। सन् १८८५ में बी० ए० तथा १८८७ में एल० एल० बी० उत्तीर्ण करके वकालत करने लगे। इस अवधि में नाना का देहान्त हो चुका था। अरणा का विवाह हुआ, जिससे एक कन्या उत्पन्न हुई थी। पर विवाह के पश्चात् कुछ ही वर्षों में पत्नी एवम् पुत्री दोनों स्वर्गस्थ हो गईं और अरणा साहब सदा के लिए एकाकी रह गए।

एल० एल० बी० उत्तीर्ण होने के पश्चात् एकाध वर्ष कराची हाईकोर्ट में उन्होंने वकालत की और बहुत सफलता के साथ की। एक ही दावे में उनको अपने मुद्दई की ओर से लड़ना था। उस कार्य में सफलता प्राप्त कर के अरणा साहब पुनश्च बंबई लौट आये और बंबई में वकालत करने लगे। विशेषतया फौजदारी के मामलों में अरणा की वकालत बहुत सफल रही, क्योंकि वे जिरह में (क्रास एक्जामिनेशन में) बहुत कुशल थे। जिरह के द्वारा प्रतिपक्ष का संपूर्ण खंडन कर के अपना पक्ष निःसंदेह प्रस्थापित करते थे। कहते हैं कि अरणा साहब ने ऐसा कोई दावा अपनी वकालत में हाथ में नहीं लिया जिसमें उन्होंने सफलता न प्राप्त की हो।

पत्नी एवम् पुत्री की मृत्यु के पश्चात् संगीत ही उनके जीवन भर का साथी रह गया था। घर की संपत्ति तो कोई बड़ी थी नहीं कि जिस पर जीवन भर निर्वाह हो सकता। अतएव वकालत का केवल चरितार्थ के लिये व्यवसाय करते हुए भी अरणा साहब संगीत सेवा में लगे रहे।

इसी समय बंबई में "गायन उत्तेजक मंडली" नाम से एक संगीत संस्था चल रही थी। उस समय की बंबई में पारसी लोग हिन्दुस्तानी रागदारी संगीत के बड़े प्रेमी एवम् आश्रयदाता थे। गायन उत्तेजक मण्डली संगीत में रुचि रखने वाले कुछ ऐसे ही धनी पारसी सेठियों की चलायी हुई संस्था थी। बंबई आये हुए सब बड़े-बड़े नामांकित गुणी गायक-वादकों के कार्यक्रम उनको यथायोग्य पुरस्कार देकर इस संस्था में आयोजित किये जाते थे। संस्था का मुख्य उद्देश्य ही यह था कि उच्च श्रेणी का रागदारी गायन-वादन सुनने को मिले। उस समय के भारत प्रसिद्ध समस्त गायक-वादकों के कार्यक्रम इस मण्डली में हो चुके हैं।

कराची से लौटकर आते ही अरणा साहब इस गायन उत्तेजक मण्डली के सभासद हुए।

गायक-वादकों के कार्यक्रमों के अतिरिक्त संगीत सीखने की इच्छा रखनेवाले सज्जनों के लिये एक संगीत शिक्षक भी इस गायन उत्तेजक मण्डली में नौकर रखे गये। इनका नाम श्री रावजी बुआ बेलबागकर था। बुआ साहब ध्रुपदिया थे। हैदराबाद दक्खन के जैनुल्ला खाँ नाम के एक उस्ताद थे, जिनके शिष्य बुआ साहब कहलाते थे। अरणा साहब ने अब इन बुआ साहब से गायन सीखना आरंभ किया। कई वर्ष बुआ साहब के पास सीखकर लगभग ३०० ध्रुवपद अरणा साहब ने कण्ठस्थ किए। इसी गायन उत्तेजक मण्डली में और एक उस्ताद अली हुसैन खाँ ख्यालिये नौकर थे। इनसे एवं इनके मामूँ विलायत हुसैन खाँ से सौ-डेढ़-सौ ख्यालों की भी शिक्षा अरणा साहब ने ली। इस संगीत शिक्षा के अतिरिक्त गायन उत्तेजक मण्डली में होने वाले गायन-वादन के कार्यक्रम एवं और कहीं शहर में होने

वाली महफिलों में जाकर संगीत श्रवण का लाभ उठाने में कभी न चूकते थे। इस समय बहुत से पुरानी परंपरा के गायक-वादक जीवित थे। उनमें से कई बंबई प्रान्त में ही आ बसे थे। बड़े-बड़े भारत-विख्यात गायक-वादक दिल्ली, लखनऊ, आगरा, जयपुर, ग्वालियर, पटियाला, बड़ौदा, हैदराबाद दक्खन आदि रियासतों से बंबई आकर अपने गायन-वादन के कार्यक्रम पेश किया करते थे। नत्थन खाँ आगरे वाले, बन्देअली खाँ बीनकार, अलीहुसैन खाँ बीनकार, पन्नालाल बाजपेयी सितारिये, रहमत खाँ ग्वालियर वाले, बालकृष्ण बुआ, तानरस खाँ, अलीहुसैन तथा उनके भाई फतेह अली, हैदर खाँ, मुहम्मद खाँ, बन्ने खाँ आदि सब लोग बंबई आकर अपनी-अपनी कला का प्रदर्शन कर गये थे। इनका गायन-वादन अण्णा साहब ने खूब सुना। बंबई नगर भर के संगीत प्रेमियों ने खूब संगीत श्रवण का आनन्द लूटा। पर इन हजारों-लाखों श्रोताओं में अण्णा साहब ही एक ऐसे श्रोता थे कि जिनको रागदारी संगीत में शास्त्रीय सुसंबद्धता दिखायी दी। हिन्दुस्तानी संगीत के राग एक परंपरागत नियमबद्ध प्रणाली के अनुसार गाए बजाए जाते थे, रागदारी गीत-प्रबन्ध भी स्थूल रूप से सुसंबद्ध परंपरागत बंदिश के अनुसार गाए जाते थे—यह सत्य उनको जँचा और रागदारी संगीत का अधिक सावधानी के साथ उन्होंने अभ्यास आरंभ किया। सर्वसाधारण में प्रचलित सुप्रसिद्ध ऐसे लगभग ७५ रागों का स्वरूप भारत भर में, जहाँ उत्तर भारतीय संगीत का प्रचलन था, एक-सा ही दिखायी दिया। अवश्य ही यह सत्य अण्णा साहब को गायन-वादन के प्रयोगों एवं उनके नियमों की जानकारी से प्रत्यक्ष हुआ। किन्तु इन स्वरूपों को समझाने वाला कोई ग्रन्थ उनको प्राप्त नहीं हुआ। गायन उत्तेजक मण्डली के शिक्षकों से जो कुछ पाठ मिलते थे उनकी एवं बाहर जलसों में अथवा गायक-वादकों की खानगी बैठकों में, जहाँ अवसर पाने पर उपस्थित होने में वे कभी चूकते नहीं थे; जो कुछ चर्चा होती थी, उसको नोट अवश्य किया करते थे। वे इन टिप्पणियों का अभ्यास एवं उन पर विचार करते थे। विचार करते-करते अण्णा साहब के मन में कई कल्पनाएँ आतीं, उनको उन्होंने अपने बही-खाते में लिखना आरंभ किया।

अपना संपूर्ण जीवन संगीत कार्यों के लिये अर्पण करने का निश्चय इसी समय से अण्णा साहब के मन में हुआ। अपना जीवन निर्वाह आमरण स्वाधीन रहे, किसी समय अपना बोझ किसी पर न पड़े, इस हेतु वे लगभग सन् १९१० तक वकालत करते रहे। पत्नी एवं इकलौती कन्या दोनों का स्वर्गवास होने पर अपनी अधेड़ अवस्था में अण्णा साहब कौटुम्बिक उलझनों से विमुक्त हो चुके थे। उनका अपना कोई न रहा। संगीत को ही उन्होंने अपनाया, गले लगाया और जीवन भर उसका साथ न छोड़ा। अपना संपूर्ण प्रेम भंडार संगीत के रागों को ही अर्पण कर दिया और उसी की सेवा में पूरा जीवन बिताया। १९१० तक वकालत के द्वारा जीवन भर अपना उदर-निर्वाह बिना किसी के आगे शरमिंदा हुए चल सके, इतना द्रव्य-संचय होने के पश्चात् उन्होंने वकालत का व्यवसाय सदा के लिये छोड़ दिया और तन-मन-धन से संगीत की ही सेवा में जुट गये।

वे अब तक संगीत की क्रियात्मक शिक्षा सितार पर वल्लभदास दामुलजी से पा चुके थे और गायन का अभ्यास गायन उत्तेजक मण्डली के शिक्षकों से चल रहा

था । पर इस संगीत का पूर्वकालीन रूप एवं उसका इतिहास समझने की उत्कंठा हेतु अण्णा साहब ने संगीत पर जो भी पुस्तकें संस्कृत, अंग्रेजी, मराठी, गुजराती, बंगाली, तेलगु, तमिल में उस समय उपलब्ध थीं, उनका संग्रह कर अध्ययन आरंभ किया । संस्कृत में नारदी-शिक्षा, माण्डूकी-शिक्षा, भरत-नाट्यशास्त्र, संगीतरत्नाकर, संगीत-दर्पण, रागविबोध तथा संगीत-पारिजात ये ही प्राचान ग्रन्थ उस समय उपलब्ध थे । अंग्रेजी ग्रन्थ तो केवल ध्वनिशास्त्र के सिद्धान्तों के विषय में उपयुक्त थे । एक-दो अंग्रेजी ग्रन्थ, कैप्टेन विलर्ड, चिन्नुस्वामी मुदलियार के लिखे हुए अवश्य थे । शेष अंग्रेजी ग्रन्थों में सब जानकारी पाश्चात्य संगीत पर ही थी । बंगला ग्रन्थों में राजा सौरीन्द्र मोहन टैगोर तथा कृष्णधन बनर्जी की लिखी हुई पुस्तकें थीं । मराठी में कोई ऐसी पुस्तक उपलब्ध नहीं थी कि जिससे संगीत की शास्त्रीय जानकारी मिलती । हिन्दी में राधागोविन्द संगीतसार एवं संगीत दर्पण के भाषान्तर उपलब्ध थे । गुजराती में आदितराम तथा डाह्याभाई दलपतराम की लिखी हुई पुस्तकें थीं । इन सब का ध्यानपूर्वक अभ्यास करके इसी निर्णय पर अण्णा साहब पहुंचे कि प्रचलित हिन्दुस्तानी संगीत ग्रन्थोक्त संगीत से बहुत कुछ प्रगत हुआ है किन्तु उसमें जो-जो कुछ नियम-धर्म माने एवं रखे जाते हैं उनको समझाने वाले ग्रन्थों की आज अत्यन्त आवश्यकता है । इस प्रकार लगभग १५ वर्ष तक गायन उत्तेजक मण्डली के शिक्षकों के पास गायन कला सीखते रहे और घर पर ग्रन्थों का अभ्यास करते रहे । प्रचलित संगीत में किसी आधार ग्रंथ अथवा किसी सर्वमान्य प्रणाली एवं गायन शैली के न होने के कारण कई राग रूपों में तथा रागदारी गीत प्रबन्धों के पाठों में मतभेद एवं क्रिया भेद होना अनिवार्य था । इन दस-पंद्रह वर्षों की अवधि में तथा आगे अपने जीवन के अन्तिम २५-३० वर्षों में जो महान् कार्य अण्णा साहब ने किया उसके लिये उनकी मनोभूमि किस प्रकार तैयार हो रही थी; वह उन्हीं के शब्दों में यहाँ उद्धृत करने से अधिक स्पष्ट होगी । मूल लेख मराठी में है । उसका यह हिन्दी भाषान्तर है ।

"संगीत-विद्या सीखना अर्थात् संगीत में बताये हुये राग सीखना यह बात तो स्पष्ट ही है । आज का हमारा समाज संगीत में बिलकुल अनाड़ी है ऐसी बात नहीं है । जनता में संगीत तो प्रचलित है, पर संगीत के शास्त्रीय नियमों का ज्ञान इतना नहीं है जितना कि होना चाहिए । संगीत शास्त्र से हमारा आशय इतना ही है कि उसमें आजकल के प्रचलित राग-रागिनियों का सुन्दर वर्गीकरण हो तथा तत्सम्बन्धित स्पष्ट नियम भी हों । यह स्पृहणीय परिस्थिति हमारे आज के संगीत की नहीं है यह सभी मानते हैं । इसका अर्थ यह नहीं कि जो कुछ हम लोग आज गाते-बजाते हैं वह अनियमित एवं अव्यवस्थित है । कहने का तात्पर्य इतना ही है कि जो हम लोग गाते हैं उसके नियम उत्तम रीति से समझा देने का प्रयत्न अभी तक नहीं हुआ ।

"अपना संगीत बहुत पुराना है यह बात सब मानते हैं । प्राचीन ग्रन्थ भी हम लोगों को मिल सकते हैं यह भी बात सही है । पर हमारा संगीत ठीक उन प्राचीन ग्रन्थों जैसा ही आज भी प्रचलित है, यह नहीं कह सकते । तथापि हमारे संगीत में प्राचीन वर्गीकरण के सिद्धान्त अवश्य लागू किये जा सकते हैं । रुचि-परिवर्तन के अनुसार रागस्वरूपों में भी कहीं-कहीं विभिन्नता भले हुई हो, पर रचना के तत्व तो पुराने ही हैं, यह हम लोग कह सकते हैं ।"

और एक स्थान पर अण्णा साहब कहते हैं :

"कुछ लोग ऐसा दुराग्रह कर लेते हैं कि संसार भर के संगीतों में हमारा हिन्दुस्तान का संगीत ही सबसे अच्छा है। दूसरे किसी भी देश में ऐसा उच्च श्रेणी का संगीत न पहले कभी था न अब है। उनका यह विचार पूर्णतया: यथायोग्य और न्यायोचित नहीं है। इतिहास से यह विदित होता है कि आर्य लोगों की सभ्यता बहुत प्राचीन थी। वे लोग सब प्रकार की विद्याओं में बहुत कुछ प्रगति कर चुके थे। उन्होंने अपना संगीत नियमों से सुव्यवस्थित कर रखा था। यह बात मान्य है कि जिस समय आर्यों का संगीत भारत में पूर्ण स्वरूप में था उस समय पश्चिमी अथवा अन्य किसी भी देश में संगीत शास्त्र का ज्ञान भली-भाँति न था ऐसा कहने के लिये आधार नहीं मिलता। इतने प्राचीन काल में भी अपने यहाँ संगीत बहुत उन्नत अवस्था में था—इस बात पर हमें गर्व होता है। पर प्रश्न यह है कि वे कौन-सा और किस प्रकार से संगीत गाते थे? कितने स्वर गाने के योग्य मानते थे? उनके गाने में जो सिद्धान्त संगीत के दिखाई देते हैं वे विज्ञान शास्त्र की दृष्टि से कहाँ तक शुद्ध हैं इत्यादि बातों पर क्या हम कुछ विचार भी न करें? मैं समझता हूँ, वैसा करने में कोई हानि नहीं है। हमारे वेद संसार में सब से प्राचीन साहित्य के प्रतीक माने जाते हैं। तब भी हम लोग आजकल उनके विषय में क्या समालोचना नहीं करते हैं? वेदों के काल में पंचमहाभूतों की पूजा होती थी, अतः आज भी उसी प्रकार होनी चाहिए ऐसा आग्रह हम लोग करें तो भी धर्म तथा ईश्वर के विषय में उस काल में हमारे पुरखों की कल्पनाएँ वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर आज उतनी खरी नहीं उतरेंगी। हम केवल संतोष भर कर सकते हैं। हमारे प्राचीन संगीत में कौन-कौन-सी बातें उत्तम, और कौन-सी गौण हैं, इसका शोध लगाना हम लोगों का कर्त्तव्य है। हम लोग जानते हैं कि संसार के सब राष्ट्रों ने अपने-अपने संगीत को वैज्ञानिक तत्वों के ही आधार पर सुव्यवस्थित कर के उच्च श्रेणी पर पहुँचाया है। युरोपियन-संगीत पर हम लोग चाहे जितना हँसें पर उसकी कीमत हम रत्तीभर घटा नहीं सकते। हमारे प्राचीन सिद्धान्तों को समझने के लिए पाश्चात्य शास्त्र सिद्धान्तों का उपयोग हम लोगों द्वारा होता है यह बात अनुभव-सिद्ध है। विज्ञान मीमांसा में पाश्चात्य राष्ट्र बहुत कुछ प्रगत हैं, यह बात हमारे यहाँ सब विद्वानों को मान्य है। फिर संगीत में ही वे केवल जड़ बुद्धि हैं, संगीत के स्वरों से अनभिज्ञ हैं, यह कैसे कहा जा सकता है। हम लोग यह भी देखते हैं कि ध्वनिशास्त्र के सिद्धान्तों का ज्ञान हम लोगों को कहाँ से मिला है। पाश्चात्य ध्वनिशास्त्र ही के आधार पर हम लोग ध्वनि की लहरें आदि की बातें करते हैं, इस वस्तु स्थिति को भूलना नहीं चाहिए।"

अण्णा साहब संगीत का अभ्यास एवं ग्रन्थों का पठन करते थे और उनके मन में जो विचार आते रहते थे उनको न केवल अपने लिए कापी में लिख लेते थे, वरन् वे विचार गायन-उत्तेजक-मण्डली के सभासदों को भी पढ़कर सुनाते थे। संगीत पर इस प्रकार के उनके व्याख्यान बराबर हुआ करते थे। इन्हीं व्याख्यानों के फलस्वरूप अण्णा साहब की "हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति" नामक संगीत-शास्त्र चर्चा की पुस्तकमाला तैयार हुई। इसको आरम्भ करते हुए अण्णा साहब लिखते हैं :

"आजकल प्रचार में हिन्दुस्तानी संगीत के नाम से जो संगीत हम लोगों के सन्मुख आता है वह ग्रन्थों में बताए हुए संगीत से बहुत कुछ परिवर्तित हुआ है यह बात तुरंत समझ में आ सकती है। अब इस समय उस प्राचीन संगीत को पुनः प्रचार में लाना असंभव है। पर इसमें सुधार बहुत कुछ हो सकता है। कहीं-कहीं हम लोग देखते हैं, हमारे कुछ राग ग्रन्थों से बहुत अलग नहीं हुए हैं। ऐसे रागों को यदि हम लोग नियम बनाकर सुव्यवस्थित करें तो वे जनता में स्वीकृत होंगे; क्योंकि उनके विषय में ग्रंथों में प्रमाण मिल सकेंगे। और इस प्रकार से सुप्रमाणित संगीत कम से कम सुशिक्षित जनता में प्रिय एवं मान्य अवश्य होगा। इसी कल्पना से यह निबन्ध हमने लिखना आरम्भ किया है। प्रस्तुत लेख प्रारम्भिक है। कोई बड़ा गहन शास्त्र हम लिखने जा रहें हैं, यह बात नहीं है। यह आदर्श ग्रन्थ है यह दावा भी हम नहीं कर रहे हैं। हमारे आज के गायक, प्रचलित राग किस प्रकार गाते हैं तथा ये राग किन युक्तियों के द्वारा सीखे एवं याद किये जा सकते हैं; इस बात को लक्ष्य करके यह लिखा जा रहा है। यह कल्पना सर्वांश में निर्दोष तो न होगी, क्योंकि नयी है। हो सकता है, कहीं-कहीं लोकमत के विरुद्ध हो। पर मन में आये हुए विचार लिख रखने से गायन उत्तेजक मंडली के मित्रों के लिये इनका उपयोग हो सकेगा, ऐसी सूचना मुझे दी गई; अतएव लिख रहा हूँ। लेख केवल अपने मित्रों के उपयोग के लिये लिखे हैं। अतएव उनमें अनुक्रम का विचार नहीं किया गया है। जो-जो विचार जैसे-जैसे मन में आते गये, लिखे हैं। फिर से कभी इनको लिखने का अवसर प्राप्त होगा तो सब बातें ठीक क्रमानुसार लिखने का विचार है। अपने अप्रचलित संगीत को शास्त्र-सम्मत एवं सुव्यवस्थित करने की उत्कंठा है, पर यह कार्य बहुत कठिन है यह भी मैं जानता हूँ।"

संगीत का क्रियात्मक एवं शास्त्रीय अभ्यास करने के पश्चात् भी उनका समाधान न हुआ। तब उन्होंने संगीत शास्त्र के अनुसंधान की दृष्टि से समस्त भारत की यात्रा की। जितनी जानकारी इस विषय पर उपलब्ध थी उतनी संग्रह की और उसके पश्चात् ये उपरोक्त लेख लिखे गए। उन्होंने पहले पश्चिम में गुजरात, काठियावाड़ की यात्रा की। सूरत, भड़ौच, बड़ौदा, नवसारी, अहमदाबाद, राजकोट, बीकानेर, जामनगर, जूनागढ़, भावनगर आदि शहरों में हो आये। तत्पश्चात् दूसरी यात्रा सन् १९०४ में दक्षिण की हुई। जिसमें मद्रास, मैसूर, तंजौर, मदुरा, त्रिवेन्द्रम, इटैयापुरम्, रामेश्वर, बैंगलोर आदि शहरों में जाकर वहाँ संगीतज्ञ विद्वानों के साथ संगीत पर चर्चा की और दक्षिण संगीत प्रणाली का उस समय का शुद्ध-स्वर-मेल तथा उस प्रणाली का पर्याप्त ज्ञान संपादन किया। विशेषतया इटैयापुरम् में श्री सुब्रह्मण्य उपनाम सुब्राम दीक्षित से उनको पंडित व्यंकटमखी की मेलप्रक्रिया का एवं तत्कालीन दाक्षिणात्य संगीत प्रणाली का स्पष्टीकरण प्राप्त हुआ। व्यंकटमखी की चतुर्दण्डिप्रकाशिका का हस्तलेख भी उनको यहीं से प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त कुछ ग्रन्थ, जैसे रामामात्य का स्वर-मेल-कलानिधि, तंजौर के तुलाजीराव भोंसले का लिखा हुआ संगीत-सारामृतोद्धार, रागलक्षणम् इत्यादि हस्तलिखित ग्रंथ तंजौर, मैसूर, मद्रास के पुस्तकालयों से प्राप्त किए और जिन्हें बाद में प्रकाशित भी किया। दाक्षिणात्य संगीत के गायन-वादन कार्यक्रम भी अण्णासाहब ने वहाँ की संगीत सभाओं में

जाकर और संगीतज्ञ विद्वानों को अपने घर पर बुलाकर पर्याप्त सुने। ऐसी ही एक संगीत-सभा मद्रास में हुई थी जहाँ पर दाक्षिणात्य संगीत का गायन प्रयोग उन्होंने सुना था। इस संगीत का वर्णन करते हुए अरणा साहब लिखते हैं :

"मेरे मित्र·······ने "मद्रास मेल पत्रिका" में एक गाने की महफिल की खबर पढ़ी और मुझे बताई। यह गाना उसी दिन शाम को साढ़े छः बजे रामास्वामी स्ट्रीट में गान-मनोहरी एसोसिएशन की तरफ से होने वाला था। मुझे रामास्वामी स्ट्रीट कहाँ पर है, यह पता नहीं था। उन महाशय से मैंने पूछ लिया और उसी पते से चला गया। ऐसी महफिल में बिना बुलाये जाना ठीक न था। पर हम लोगों को मद्रास में अधिक दिन रुकना न था और ऐसा मौका फिर न मिलेगा, यह सोच कर महफिल के ठिकाने पर जा पहुँचा। यह भी विचार किया कि टिकट बिकता हो तो लेकर जाऊँगा। मैं दरवाजे पर जा पहुँचा तो एक साहब ने सीढ़ी की ओर इशारा करके कुछ तमिल भाषा में कहा। मैं ऊपर जाकर जहाँ सब लोग बैठे थे उनमें बैठ गया। मुझे कोई पहिचानता तो था नहीं और न किसी ने मेरी कोई पूछताछ ही की। बाद में मैंने सुना कि यह महफिल ऐसो-सिएशन के मेंबरों ने चंदा करके बुलवायी थी।

"गानेवाली कोई औरत थी। गाना मजे का हुआ। हमारे यहाँ के अनेक रागों की छायाएँ उसके रागों में दिखायी देती थीं। पर उसके राग कौन से थे, यह मैं पहचान न पाया। स्वर तो समझ में आते थे, पर लक्षण याद न होने से राग का नाम कह नहीं सकता था। पूछ भी न पाता था। क्योंकि एक तो मैं बिना बुलाये गया हुआ था, तिस पर यह धृष्टता करना ठीक न होगा यह सोच कर किसी को तकलीफ देना मैंने ठीक न समझा।

"उसका पहला राग सारङ्ग-सा लगता था। पर उसमें धैवत था और ऋषभ में कुछ कोमल गंधार-सा जान पड़ा। शायद उनके यहाँ का नायकी अथवा श्रीराग हो। यहाँ पर नायकी एक लोकप्रिय राग कहलाता है। मैंने आचार्य जी के यहाँ भी यही राग सुना था। यहाँ कान्हड़ा शंकराभरण यानी बिलावल ठाठ का राग करके गाया जाता है। दूसरी एक बात मैंने उसके गाने में देखी। तीव्र म, कोमल ध, नि, सां, कोमल ध, रीं··········सां रीं गं रीं सां ऐसा एक अजीब सुरबेवरा, वह बाई एक चीज़ में गाती थी। और वह बुरा नहीं लगता था। हालाँकि तीव्र ऋषभ और कोमल ध उस राग में थे। खूबी यह थी कि सां रीं गं रीं सां और म ध निसां-इनको अलग-अलग रखकर वह अपनी बढ़त करती थी। बीच-बीच में योग्य स्वर-संगतियाँ कर के इन दोनों में जोड़ देती थी। उस समय ऋषभ उतरा हुआ लगता था, पर आरोही में खुला तीव्र ऋषभ आता था। इसलिये परज से अलग ही वह राग मालूम होता था। इसके बाद तीसरी चीज़ जो उसने गायी, उसमें जोगिया का स्वरूप दिखायी देता था। यहाँ के कनकांगी आदि राग जो बहत्तर मेलों के पहले चक्र में हैं, कुछ-कुछ जोगिया जैसे मालूम होते हैं। क्योंकि उनमें दोनों ऋषभ तथा दोनों धैवत अलग-अलग नाम देकर लिये जाते हैं, ऐसा उनकी रचना से जान पड़ता था। इस चीज़ में आरोही में तीव्र नि और अवरोह में कोमल नि लगती थी। ठाठ तो खैर वहीं था पर ज़ोर धैवत पर न था। मध्यम पर ठहर कर षड्ज पर आना होता था। उस गायिका

की आवाज बुलन्द थी। कभी-कभी ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाती थी तब ज़रा बुरा लगता था। पर सुननेवाले तो उसी जगह सुन्दर-सुन्दर कह के तारीफ करते थे। कुछ देर गाने के बाद आलाप करने की फरमाइश किसी ने की। वे आलाप कान्हड़ा, भैरव, पीलू की तरह थे। साथ करनेवाला बेला खूब मीठा बजाता रहा। मृदंग जो उनके यहाँ तबले की जगह बजाया जाता है, ठीक उसी तरह बज रहा था जैसे कि हमारे यहाँ तवायफों के गाने के साथ बजता है। पंजाबी ठेका और धीमा त्रिताला ही अधिकतर बजते रहे। मेरे विचार में वैसे तालों में हमारे यहाँ के तबलिये बहुत मजे का तबला बजाते हैं। मुझे गाना बहुत पसंद आया यह मैं ज़रूर कहूँगा। यह बाई पहले मैसूर दरबार में नौकर थी। बाद में यहाँ चली आयी थी। यह बात वहाँ के लोगों ने मुझे बतायी। गाते समय किसी तरह के असभ्य हाव-भाव यह बाई न करती थी। शायद उसकी चीज़ भक्तिप्रधान की थी।"

किस सावधानी के साथ अण्णा साहब गाना सुनते थे यह बात उक्त अवतरण से सिद्ध होती है।

कुछ गुणी लोगों को अपने मकान पर बुलाकर दाक्षिणात्य संगीत तालप्रणाली की भी जानकारी उन्होंने प्राप्त की। वहाँ चलते हुए ध्रुव, मठ, रूपक, झंप, अठ, एकताल एवं त्रिपुट ये सात ताल तथा हरएक ताल की विभिन्न जातियों का ज्ञान संपादन किया।

कराची में वकालत करते थे तब एकाध बार हैदराबाद (सिंध) शिकारपुर, लाहौर तथा कच्छ हो आए थे।

सन् १९०७ में अण्णासाहब ने पूरब की यात्रा की। इस यात्रा में वे नागपुर, कलकत्ता, जगन्नाथपुरी, विजयानगरम् तथा दक्खन हैदराबाद गये थे। कलकत्ता में स्वर्गीय राजा सौरीन्द्र मोहन टैगोर से भेंट हुई। अण्णासाहब के संगीतविषयक विचार एवं प्रयत्नों पर राजासाहब बहुत प्रसन्न हुए। दोनों का स्नेह-संबंध दृढ़ हुआ। दोनों ने एक दूसरे के प्रयत्नों में सहायता देने का निश्चय किया। इन दोनों का पत्र व्यवहार राजा साहब के जीवन भर चलता रहा। और भी कई संगीत प्रेमी तथा संगीत व्यवसायी सज्जनों से अण्णासाहब की भेंट एवं संगीत चर्चा हुई। वहाँ के गायक-वादक गुणी जनों के कार्यक्रम सुने।

बम्बई में अपने घर पर संगीत ग्रन्थों का अध्ययन चलता रहा एवं गायन उत्तेजक मण्डली में तथा अन्यत्र उस्तादों से परम्परागत रागदारी चीजों का संग्रह करते रहे। गायन उत्तेजक मण्डली में अब बम्बई के प्रख्यात सारंगी वादक नज़ीर खाँ नौकर हुए थे। इन खाँ साहब की अण्णासाहब पर बहुत श्रद्धा थी। शास्त्रग्रन्थ पढ़कर एवं परंपरागत रागदारी गीतों का संग्रह इकट्ठा कर के प्रचलित संगीत के संबन्ध में कुछ सिद्धांत अण्णासाहब ने निश्चित किये थे, और इन सिद्धांतों को वे व्याख्यान द्वारा गायन उत्तेजक मण्डली में समझाते थे। नज़ीर खाँ साहब इन व्याख्यानों को सुनकर एवं अण्णासाहब के साथ प्रत्यक्ष चर्चा कर के संगीत-शास्त्र में पर्याप्त रस लेने लगे। खाँ साहब के एक शिष्य वाड़ीलाल शिवराम नाम के बम्बई की गुजराती नाटक मंडली में गीत रचना एवं संगीत दिग्दर्शन का कार्य करते थे। साथ-साथ खाँ साहब से राग-

दारी संगीत की शिक्षा भी प्राप्त करते थे। इनको नज़ीर खाँ साहब ने अण्णा-साहब के यहाँ ले जाकर इनका परिचय कराया। वाड़ीलाल जी बम्बई में एक संस्कृत पाठशाला में पुरानी व्याकरण प्रणाली के अनुसार संस्कृत व्याकरण एवं साहित्य का भी अभ्यास किये हुए थे। अण्णासाहब इस समय संगीत के प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ पढ़ ही चुके थे। वाड़ीलाल जी को भी ग्रन्थ समझने की उत्कण्ठा हुई। अण्णासाहब के पास उन्होंने ग्रन्थों का अध्ययन और संग्रह की हुई परंपरागत रागदारी चीजों का शिक्षण आरम्भ किया। वाड़ीलाल जी गायन उत्तेजक मण्डली में जाने लगे। अण्णा-साहब एवं वाड़ीलाल जी का यह गुरु शिष्य सम्बन्ध इतना गाढ़ एवं चिरस्थायी रहा कि वाड़ीलाल जी अण्णासाहब को एक पूज्य देवता मानते हुए उन्हीं के नाम का जप करते रहे। मैं स्वयं वाड़ीलाल जी के सम्पर्क में कई वर्ष रहा। वे खुली महफिल में गाना पसन्द नहीं करते थे। अपने को मुजरे करनेवाला गवैया कहलवाना नहीं चाहते थे। सिखाने का कार्य अवश्य करते थे। मैंने उनको संगीत विद्यार्थियों को सिखाते हुए देखा है। अण्णासाहब की गायनशैली एवं रागों का प्रयोग जिसमें रागदारी संगीत की भव्यता एवं माधुरी ओत-प्रोत थी, वाड़ीलाल जी के कण्ठ से हू-ब-हू प्रकट होती थी। विशेषतः चीजें कहने का उनका ढङ्ग, स्वरों का लगाव, चीज़ के टुकड़ों का जोड़ लगाना, मुकामात (विश्रांतिस्थान) सुनते ही बनता था।

उस्ताद नज़ीर खाँ बंबई में भिंडी बाजार में रहते थे। वहीं वाड़ीलाल जी जाया करते थे। वहीं कहीं पास ही में प्रख्यात नत्थन खाँ गायक के ज्येष्ठ सुपुत्र मुहम्मद खाँ भी रहते थे। इनका आना-जाना नज़ीर खाँ के यहाँ होता था। वाड़ीलाल जी का भी इनसे परिचय हुआ। इन दोनों का अच्छा स्नेह संबन्ध रहा। मुहम्मद खाँ के पास चीजों का संग्रह अच्छा था ऐसी उनकी तारीफ अब भी लोग करते हैं। पर वे सिवाय अपने ही लड़कों को छोड़ करके और किसी को नहीं बताते थे। एक दिन मुहम्मद खाँ वाड़ीलाल जी के साथ कहीं जा रहे थे। रास्ते में दूसरे छोर पर एक और कोई उस्ताद जा रहे थे। उनको देखकर मुहम्मद खाँ ने उनकी ओर इशारा करते हुए वाड़ीलाल जी से कहा, "वह देखो, कौन जा रहे हैं ? बड़े घरानेदार उस्ताद हैं। चीजों का भंडार ही भंडार है इनके पास, इसीलिये कोठीवाल कहलाते हैं। मुहम्मद अली खाँ साहब जयपुर वालों के पुत्र हैं। आशिकअली नाम है इनका। तुम्हारे रावसाहब (अण्णा साहब को नज़ीर खाँ, रावसाहब कहा करते थे) को जिन चीजों के सीखने का शौक है वे इनके पास मिल जाएँगी। चलो तुम्हारी पहचान उनसे करा दूँ।" वाड़ीलाल जी को उन उस्ताद के पास ले जाकर उनकी पहचान करा दी। उस्ताद आशिकअली खाँ उस समय संभवतः आर्थिक संकट में थे और इसीलिये जयपुर से बंबई आये थे। वाड़ीलाल जी तुरन्त अण्णासाहब के यहाँ गए और आशिकअली खाँ की बात उनको बतायी। अण्णासाहब ने उनको ले आने को वाड़ीलाल जी से कहा। दूसरे दिन वाड़ीलाल जी उस्ताद आशिकअली को अण्णासाहब के घर ले गये। बहुत देर तक बातचीत होती रही। रागों पर खूब चर्चा हुई और हर एक राग की दस-दस पाँच-पाँच चीजें उस्ताद ने अण्णा साहब को सुनायीं। बहुत प्रसन्न हुए। उस्ताद को पर्याप्त वेतन देकर चीजें सीखना आरंभ किया।

अण्णासाहब उस्ताद की चीजें अपनी स्वरलिपि में लिखकर फिर उन्हें गाकर सुनाते गये। उस्ताद के साथ कई बार एक-एक चीज दुहराने के पश्चात् उनको वह गाकर सुनाते। उस्ताद द्वारा प्रमाणित होने के पश्चात् ही अण्णासाहब उनको अंतिम रूप से लिपिबद्ध करते थे। यह क्रम कई महीने चलता रहा। इधर बंबई के उस्तादों में खलबली मची कि भातखंडे आशिक अली को लूट रहे हैं। यह सब वार्ता जयपुर तक उस्ताद के पिता मुहम्मद अली साहब के पास पहुँचायी गयी। बड़े मियाँ के क्रोध का पार न रहा। तुरंत जयपुर से बंबई चले आये। इधर अण्णासाहब ने उस्ताद आशिक अली की चीजें कण्ठस्थ तो की ही थीं, उनको स्वरलिपिबद्ध भी कर लिया था। पर इसके अतिरिक्त उनको ग्रामोफोन पर भी रिकार्ड कर के रखा। मुहम्मद अली खाँ साहब बंबई पहुँचे और जाते ही अण्णा-साहब के घर आशिक अली खाँ के साथ पहुँचे। और आशिक अली खाँ के द्वारा सिखाई हुई चीज अण्णासाहब के गले से सुनने की इच्छा प्रकट की। अण्णासाहब ने सब चीजें सुनायीं, रेकार्ड भी सुनाए। सुनकर उस्ताद क्रोध से थर-थर काँपने लगे। आशिक अली खाँ को बहुत भला-बुरा कहा। पर अण्णासाहब ने बड़े मियाँ को समझा कर शान्त किया। "शिष्यस्तेऽहम् शाधि मां त्वां प्रपन्नम्" कहकर संगीत के संबंध में आज तक किया हुआ अपना कार्य, प्रचलित रागदारी संगीत को इन्हीं चीजों के आधार पर शास्त्र-सम्मत नियम-बद्ध करने की आवश्यकता, तत्संबंधी अपने विचार इत्यादि सब उनको समझाया। "सच कहते हो पंडित जी" बड़े मियाँ ने कहा। "हम लोग जो गाते बजाते हैं उसके कायदे कहीं लिखे हुए तो हैं नहीं। घरानों-घरानों में देखता हूँ तो चीजों की तालीम में तफ़ावत दिखायी देती है। अब किसका गाना गलत और किसका सही, यह कहना मुश्किल हो गया है। मैं अपने ही घराने की ये चीजें जब बाहर कहीं सुनता हूँ तो हैरान रह जाता हूँ। मेरे घराने की चीज पहचानना मेरे ही लिये दुश्वार हो जाता है। आपने तो उनको सही-सही सीखा है और वैसा ही गाते हैं, इससे मुझे बड़ी तसल्ली हुई। अब मैं अपनी ओर से आपको कुछ चीजें नज़र करूँगा।" मुहम्मद अली खाँ साहब कई दिन बंबई में रहे और बहुत-सी चीजें उन्होंने अण्णासाहब को सिखाईं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मुहम्मद अली खाँ साहब की भी सेवा यथाशक्ति अण्णासाहब ने की। आशिक अली खाँ साहब को मैंने सन् १९१४ में केवल एक बार देखा था। इन दोनों पिता-पुत्रों की जयपुर के मनरंग घराने की लगभग तीन सौ चीजें अण्णासाहब ने स्वरलिपिबद्ध एवं रेकार्ड करके रखीं। कुछ अप्रसिद्ध रागों की चीजें एवं कायदे भी इन उस्तादों से प्राप्त किए। इन चीजों को सीखकर अण्णासाहब को बहुत संतोष हुआ, उनका आत्मविश्वास बहुत कुछ बढ़ा। उनका संकलित कार्य अब आगे बढ़ाया जा सकता था। अधिकृत रूप से संगीत पर अपने विचार व्यक्त कर सकने की स्थिति होने पर उन्हें बड़ा साहस हुआ। मुहम्मद अली खाँ साहब की एवं अन्य चीजें जो अण्णासाहब ने संग्रह की थीं, उन पर जुगल-बंदियों के रूप में उन्होंने रागों के लक्षणगीत रचने आरंभ किए। लक्षणगीत वे गीत होते हैं जिनमें उनके रागों के नियम, थाट, रागों में लगने वाले तीव्र कोमलादि स्वर, वर्ज्य स्वर, रागजाति, राग में लगते हुए स्वरों की संख्या के अनुसार षाडव ओडव, संपूर्णादि, गाने का समय, वादी-संवादी, विशेष रागवाचक स्वर संगतियाँ इत्यादि समझाए जाते हैं। ऐसे कुछ

लक्षणगीत (मुहम्मद अली खाँ साहब की चीजों की जुगलबंदियाँ) अण्णासाहब ने उनको गाकर सुनाए। सुनकर खाँ साहब बहुत प्रसन्न हुए। अण्णासाहब ने नज़ीर खाँ को भी ये लक्षणगीत सुनाए। नज़ीर खाँ को भी वे बहुत प्रिय लगे। उन्होंने सीख भी लिये। बंबई में कई गायिकाओं को, जो उनसे सीखती थीं, उन्होंने ये लक्षणगीत सिखाये। वे उनको महफिलों में गाती भी रहीं। नजीर खाँ ने अण्णासाहब से शास्त्रीय जानकारी पर्याप्ति संग्रह की थी, कुछ संस्कृत श्लोक भी कण्ठस्थ किये थे। इससे उनकी धाक पेशेवर गायक-वादकों में जमी।

वाड़ीलाल जी ने कुछ समय उदयपुर के जाकिरुद्दीन खाँ साहब से भी नोम् तोम, आलापादि की शिक्षा पाई थी। उन्होंने अण्णासाहब से उनकी तारीफ की। अण्णासाहब ने इनका गाना सुनने का संकल्प किया और अपनी उत्तर भारत की यात्रा के समय में उदयपुर जाना निश्चित किया।

पूर्व भारत की यात्रा कर के थोड़े ही महीनों के पश्चात् अण्णासाहब उत्तर भारत की यात्रा पर चल पड़े। इस यात्रा में वे जबलपुर, इलाहाबाद, बनारस, गया, मथुरा, आगरा, लखनऊ, दिल्ली, जयपुर, बीकानेर, जोधपुर और उदयपुर हो आये। इलाहाबाद में स्वर्गीय पंडित श्रीकृष्ण जोशी से परिचय हुआ, जो उस समय एक बड़े सरकारी ओहदे पर कार्य कर रहे थे और रागदारी संगीत के निःसीम भक्त थे। यह परिचय प्रीतमलाल गुसाईं नामक एक संगीत के विद्वान् के यहाँ हुआ। गुसाईं जी के यहाँ संगीत पर जो चर्चा, जो प्रश्नोत्तर हुए; वे सब उक्त जोशी जी की उपस्थिति में ही हुए थे। प्रीतमलाल जी से पूछे हुए प्रश्नों से एवम् उन प्रश्नों पर हुई दोनों की चर्चा से श्री जोशी जी को अण्णासाहब के संगीत क्षेत्र में किये हुए परिश्रम की पूर्ण कल्पना हुई और उन्होंने अपने यहाँ उनको निमन्त्रण दिया। जोशी जी के यहाँ भी खूब चर्चा हुई। जोशी जी स्वयम् एक सुशिक्षित विद्वान् एवं अनुभवी पुरुष थे। अण्णासाहब ने प्रचलित रागदारी संगीत का रूप, उस पर एक शास्त्र-ग्रंथ निर्माण करने की आवश्यकता, और इसी दिशा में अपने किये हुए प्रयत्न, पुराने शास्त्र-ग्रंथों का निजी अध्ययन, परंपरागत रागदारी गीतों का संग्रह जो कि इस नये शास्त्रग्रंथ के लिये मुख्य आधार था—इन सब बातों पर अपने विचार, संगीत पर अनुसंधान सम्बन्धी यात्राओं का उद्देश्य इत्यादि जोशी जी को समझाया। अपने रचे हुए लक्षणगीत भी सुनाए। जोशी जी को यह सब सुनकर इतना पसंद आया कि वे अण्णासाहब के एक परम मित्र बन गये। दरभंगा के लोचन कवि की राग-तरंगिणी अण्णासाहब को इन्हीं जोशी जी के प्रयत्नों से प्राप्त हुई।

इलाहाबाद, मथुरा तथा दिल्ली में अण्णासाहब को कुछ संगीत विद्वानों के बड़े विचित्र एवं मनोरंजक अनुभव हुए। ग्रन्थ-वाक्यों का अर्थ जैसा कुछ समझ में आया अपनी मनगढंत व्याख्या उस पर लादकर जो संगीत शास्त्र की इमारतें खड़ी की गई थीं, वे उन्होंने देखीं। उनके साथ खूब चर्चा कर के उनकी दिशाभूल कहाँ किस प्रकार हो रही थी, वह अण्णासाहब ने उन्हें समझाया। इस यात्रा में बड़े-बड़े गुणी गायकों के गायन-वादन प्रयोग भी सुने। उन गायकों के साथ राग-रूपों पर चर्चा की। उदयपुर में उस्ताद ज़ाकिरुद्दीन खाँ तथा उनके भाई अल्लाबंदे खाँ का आलाप गान खूब जी भर सुना।

इस प्रकार का आलाप गान अरण्णासाहब ने पहले कभी सुना नहीं था। आलाप गान बहुत सुस्वर एवं मधुर प्रतीत हुआ। अरण्णासाहब को विशेषतया जाकिरुद्दीन खाँ साहब का कण्ठस्वर एवं स्वर लगाने की शैली बहुत पसंद आयी। ध्यानपूर्वक इस आलाप गायन को सुनकर उसकी खूबियाँ विलंबित, मध्य एवं द्रुत का अनुक्रम, जोरदार गमक इत्यादि बातें स्मृति में रख लीं। पश्चात् वे स्वयं इस गायन शैली में रागों के आलाप करने लगे। मैंने उस्ताद जाकिरुद्दीन-अल्लाबन्दे खाँ साहब का गायन सन् १६१२ में सुना था, जब वे बम्बई आये थे। अरण्णासाहब से उस समय उनकी मेल-मुलाकात बम्बई में होती रही। इस समय तक ये खाँ साहब अरण्णासाहब को एक गायक न समझते हुए निरे पंडित समझते थे। पर जब उन्होंने मनरंग घराने की चीजें, रावजीबुआ, अलीहुसैन खाँ और अन्यान्य उस्तादों से सीखी हुई चीजें उनको गाकर सुनायीं तब वे बहुत प्रसन्न हुए। वे अरण्णासाहब को आदरभाव से देखने लगे। जाकिरुद्दीन खाँ के एक सुपुत्र जियाउद्दीन खाँ को मैंने कुछ वर्ष पूर्व देखा था। उनका गाना भी सुना था। जियाउद्दीन खाँ अपने पिता की शैली में ही गाते थे। अल्लाबन्दे खाँ साहब के सुपुत्र स्व० नसीरुद्दीन खाँ अपने समय में पर्याप्त लोकप्रिय गायक थे। इनके तीन पुत्र एवं अल्लाबन्दे खाँ साहब के तीन पुत्र अब "डागर" उपनाम धारण करते हुए गाते हैं।

इस प्रकार ग्रंथों का अध्ययन, क्रियात्मक संगीत की शिक्षा एवं अभ्यास तथा संगीत संशोधनार्थ भारत भर की यात्राएँ समाप्त करके अरण्णासाहब ने सन् १६०६ में अपने चिर-स्मरणीय संगीत ग्रंथ लिखना आरम्भ किया। सर्वप्रथम एक ग्रंथ "श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्" नाम से संस्कृत भाषा में लिखा। संस्कृत में लिखने का उद्देश्य इतना ही था कि भारत के सब प्रदेशों के संगीत शोधक पंडित उसको पढ़ सकें। इसी के स्पष्टीकरण के रूप में मराठी में "हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति" नाम से एक ग्रंथ-माला लिखना आरम्भ किया। इस ग्रन्थमाला का प्रथम भाग श्री मल्लक्ष्यसंगीतम् के साथ ही साथ सन् १६१० में प्रकाशित हुआ। श्री मल्लक्ष्यसंगीत अरण्णासाहब ने अपने कूट नाम "चतुर" के नाम पर प्रकाशित किया। ग्रंथ के आरम्भ में उन्होंने "चतुराख्येन भरतपूर्वखण्डनिवासिना" इन शब्दों से अपना उपमान "भातखण्डे" का संकेत किया है। "हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति" के लिये अपना निजी नाम "विष्णु शर्मा" का उपयोग किया है।

अब इस स्थान पर अरण्णासाहब एवं मेरे निकट संबन्ध की कुछ जानकारी बताना उचित होगा।

अरण्णासाहब के शुभ दर्शन का सोभाग्य मुझे सर्वप्रथम बम्बई में सन् १६०६ में मेरे घर पर ही हुआ था। उस समय मैं श्री अनन्त मनोहर जोशी उर्फ अन्तूबुआ से गायन अपने घर पर ही सीखता था। सन् १६०७ में ही जब मैं ७ वर्ष का था, मेरी संगीत शिक्षा का आरम्भ हुआ था। मेरे पिताजी को संगीत से प्रगाढ़ प्रेम था। स्वयं थोड़ा सितार बजाते थे। सन् १६०७ में मुझे संगीत सिखाने के लिए एक संगीत शिक्षक को, जिनका नाम श्री होनावर कृष्णंभट्ट जी था और जो संगीत सिखाने के काम में उस समय बम्बई में प्रख्यात थे; रख लिया। ये सज्जन उत्तर कन्नड़ देश के सारस्वत ब्राह्मण थे। पटियाला घराने के कालें खाँ के शिष्य थे। इनको मेरे पिताजी ने यह आदेश दे रक्खा

था कि वे मुझे पूर्ण स्वर ज्ञान करा दें। सौभाग्य से कृष्णंभट्ट जी इसी स्वरज्ञान-शिक्षा-कार्य में विशेषज्ञ एवं कुशल थे। थोड़े ही महीनों के पश्चात् मुझे इतना स्वरज्ञान इन्होंने करा दिया कि मोटर हार्न, रेलवे के इंजन की कूक, सुरीले पंछियों की पुकार, घर में रहती हुई थाली कटोरियाँ, चाय के बर्तन, पूजा की घंटी इत्यादि के स्वर सुनकर मेरे तानपुर के षड्ज पर उनके नाम बोल देने की धुन-सी लगी। बचपन तो था ही। भाई, बहनें, माताजी, पिताजी कोई भी अपने-अपने कार्य में व्यस्त हों तो भी उनके सन्मुख जाकर कटोरी थाली बजाते हुए ग, प, ध, इस प्रकार स्वरों के नाम बड़े जोर से पुकारता। कभी-कभी तो मेरे स्वरज्ञान का कौतुक भी होता। स्वरों के नाम ठीक बताता था इस बात की जाँच-पड़ताल भी पिताजी ने की थी और मेरे स्वरज्ञान पर मेरी प्रशंसा भी की। पर बार-बार माता-पिता एवं भाई-बहनों के कानों पर यह गपधप की भनक पड़ने पर सब लोग उकता गए और इस बात पर मैंने डाट भी खायी।

लगभग डेढ़ वर्ष तक स्वरज्ञान एवं कुछ रागों की चीजें कृष्णंभट्ट जी से सीखने के पश्चात् पिताजी ने सन् १९०८ में श्री अनन्त मनोहर जोशी जी को बुलवाकर उनसे मेरी संगीत शिक्षा चालू कराई।

इन्हीं दिनों मेरे पिताजी के एक परिचित वकील साहब श्री शंकरराव कार्नाड नाम के संगीत में अभिरुचि रखने वाले कभी-कभी मेरी संगीत शिक्षा के समय आकर सुना करते थे। उन्होंने ही श्री कृष्णंभट्ट जी को मेरी शिक्षा के लिये रखवाया था। जोशी जी के समय भी श्री शंकरराव आया करते थे। स्वरज्ञान पक्का एवं परमात्मा की कृपा से कण्ठस्वर भी अच्छा होने के कारण मेरा गाना उनको अच्छा लगता था। यह शंकरराव, अण्णासाहब के भी परम मित्र थे वरन् अण्णासाहब को गुरु ही मानते थे। दोनों वकील थे। संगीत प्रेमी दोनों थे अतएव इस मित्रता में विशेष आनन्द था। एक दिन शंकरराव अण्णासाहब को अचानक मेरी शिक्षा के समय हमारे घर ले आये। पिताजी प्रतिदिन मेरी शिक्षा के समय उपस्थित रहते थे, उस दिन भी थे। अण्णासाहब ने गाना सुन और मुझसे कुछ फरमाइशें भी कीं। सप्तक के सब बारह स्वर तीव्र-कोमल उनके क्रम से बिना रुके गाने को कहा। मुझे तो विदित नहीं कि मैंने उनके प्रश्नों के उत्तर ठीक दिये अथवा नहीं। अन्नू बुआ को भी चिन्ता हुई कि मैं ये स्वर लगा सकूँगा अथवा नहीं। पर अण्णासाहब ने चलते समय मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए, "बेटा, तुम अच्छे होनहार हो, सीखते जाओ, नाम पाओगे" यह आशीर्वाद दिया। एक लेमन ड्राप्स की शीशी भी मेरे हाथ में देकर चले गये। उस समय बाल्यावस्था में मुझे क्या पता था कि किसी महा-महापुरुष के हाथ का यह प्रसाद था, नहीं तो मैं आज तक उस शीशी को यत्नपूर्वक रखता। मैंने तो दो-तीन दिन में ही मिठाई खा-खिलाकर शीशी अलग कर दी।

सन् १९१० में मेरे पिता जी शारीरिक अस्वस्थता के कारण समय से पूर्व ही सेवानिवृत्त हो गए। जिसके फलस्वरूप घर की आर्थिक स्थिति में गिरावट आ गई। हम लोग बम्बई छोड़ कर पूना चले गये। मेरी संगीत शिक्षा भी स्थगित हो गई। इसी बीच में अण्णासाहब ने मेरे पिताजी के नाम अपनी नई-नई प्रकाशित दो पुस्तकें "श्री मल्लक्ष्यसंगीतम्,, तथा "हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति" का प्रथम भाग भेज दीं। मेरे पिताजी

संगीत की सुसमंजस जानकारी के लिए तड़पते थे। वे उस समय की प्रामाणिक एवं सफल संगीतशिक्षा प्राप्त करने में आने वाली कठिनाइयों का अनुभव कर चुके थे। अतएव अण्णा साहब की ये दो पुस्तकें पिताजी ने बार-बार बड़ी सावधानी के साथ पढ़ीं। उनकी संगीत सम्बन्धी बहुत-सी उलझनें सुलझ गईं। उन्होंने मेरी संगीत शिक्षा इन्हीं पुस्तकों में बताए हुए मार्ग पर चलाने का निश्चय किया। उनको दृढ़ विश्वास हुआ कि हिन्दुस्तानी संगीत का प्रचलन अब इन्हीं पुस्तकों के लेखक के बताए हुए मार्ग पर ही चलेगा।

कुछ दिन पूना में रहकर हम लोग पुनश्च बंबई लौटे। मेरा गाना तो स्थगित ही रहा। कुछ दिनों के पश्चात् सन् १९११ में एक दिन मेरे पिताजी ट्राम में बैठकर किसी कार्यवश कहीं जा रहे थे कि वहीं अण्णासाहब के दर्शन उनको हुए। औपचारिक नमस्कार इत्यादि होने के पश्चात् अण्णासाहब ने मेरे संबंध में पूछताछ की। पिताजी ने बताया कि चीजें तो सब भूलता जा रहा है, पर स्वरज्ञान तो अब भी अच्छा है। "मेरे पास ले आइये उसको" अण्णासाहब ने कहा और अपना पता पिताजी को बताया। पिताजी मुझे उनके घर ले गये और मेरी संगीत शिक्षा अण्णासाहब के पास पुनः प्रारम्भ हुई। गायन उत्तेजक मण्डली में ही प्रतिदिन शाम को दो घण्टे बैठकर अण्णासाहब मुझे शिक्षा देते रहे। मेरे पिताजी भी साथ रहा करते थे। इस प्रकार मेरा संगीत का अभ्यास नियमित रीति से अण्णासाहब के पास होता रहा। अण्णासाहब सिखाने में बहुत प्रेम एवं शान्ति रखते। एकाध टुकड़ा राग का अथवा चीज का कोई मेरी समझ में आने में विलंब भी लगता तो बिल्कुल शान्ति के साथ मुझसे उसको बार-बार सुनते हुए दुहराते। संगीत अध्यापकों के लिये यह गुण बहुमूल्य है। छात्र के बेसुरे बेताले होने पर हम लोग तुरन्त बिगड़ जाते हैं और भला-बुरा भी बोल जाते हैं। क्योंकि अपस्वर की चोट बड़ी बुरी होती है। आग का चटका-सा अथवा गाली-सा लगता है। सुननेवाला संतप्त हो जाता है। संगीत शिक्षकों को तो यह दिन-प्रतिदिन भुगतना पड़ता है। वरन् अपनी संगीत स्फूर्ति भी खो बैठना पड़ता है। पर अण्णासाहब ने एक बार भी कभी मेरे प्रमादों पर असंतोष नहीं दिखाया। पिताजी अवश्य मुझ पर क्रोध करते। एकाध बार इसी बात पर, कि बिना मूल्य मिलती हुई शिक्षा पर विशेष ध्यान देना मेरा कर्तव्य था, सो न करके अण्णासाहब को व्यर्थ कष्ट दिया, मैंने घर पर लौटकर पिताजी के हाथ की मार भी खायी। पर अण्णासाहब सदा सागर की भाँति शान्त चित्त रहकर ही सिखाते। मुझे लाड़-प्यार में बाबू कहते थे। मेरी संगीत मित्र मंडली में मेरा यही नाम प्रचलित है। स्व० वाड़ीलाल जी, स्व० राजाभैया एवं ग्वालियर के संगीतज्ञ मुझे इसी नाम से पहचानते थे।

मेरी संगीत शिक्षा के साथ-साथ मेरा शिक्षण भी चलता रहा। पर प्रतिकूल आर्थिक परिस्तिवश शिक्षण में बाधा होने लगी। शिक्षण स्थगित रखने की आपत्ति भी आ पड़ी। अण्णासाहब ने ही सन् १९१७ में मुझे बड़ौदा सरकार से मासिक चालीस रुपये का विद्यावेतन दिलवाकर इस आपत्ति से बचाया। अब मेरा सामान्य शिक्षण चलने लगा। अण्णासाहब स्वयम् यह नहीं चाहते थे कि मैं निरा गवैया एक 'बुआ' बन के रहूँ। उनकी मेरे लिए यह अभिलाषा थी कि मैं कम से कम बी० ए० तक शिक्षण पूरा करूँ। बड़ौदे

में ही रहकर अध्ययन करना यह आदेश मुझे वहाँ के सरकार एवम् अण्णासाहब से मिला। उस समय स्व० उस्ताद फैयाज हुसेन खाँ साहब बड़ौदे में ही दरबार-गायक थे। अण्णासाहब ने मुझको उन्हीं के पास अपनी संगीत शिक्षा चालू रखने की आज्ञा दी। मैं उस्ताद के पास सीखता रहा। बड़ौदे में मैं पाँच वर्ष, सन् १९१७ से १९२२ तक रहा। अण्णासाहब हर तीन महीने बाद बड़ौदा सरकार के संगीत विद्यालय के निरीक्षण के लिये बड़ौदे आया करते थे। उस समय मुझको बुलाकर मेरी संगीत प्रगति की पूछताछ, जाँच-पड़ताल अवश्य करते एवं मुझे उपयुक्त सूचनाएँ भी देते रहते। कुछ राग एवम् चीजें भी सिखा जाते। इस प्रकार उनके पास भी मेरी संगीत शिक्षा चालू रही। सन् १९२२ में जब हम लोग बड़ौदा छोड़कर बंबई चले आये, तब फिर मैं अण्णासाहब के पास जाता रहा। सन् १९२६ में बंबई विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ और आगे एम० ए० अथवा एल० एल० बी० पढ़ने का विचार कर ही रहा था कि लखनऊ में "मैरिस म्यूज़िक कालेज" खुला और तुरन्त अण्णासाहब ने मुझको वहाँ बुलवा लिया। अस्तु यह वैयक्तिक वृत्तान्त यहीं समाप्त कर मूल विषय की ओर लौटता हूँ।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के प्रथम भाग छपकर प्रकाशित होने के पश्चात् एक स्वरचित स्वर-मालिका गायन उत्तेजक मंडली के द्वारा एवम् एक लक्षणगीत-संग्रह माला-कल्याण (यमन) थाट, बिलावल थाट तथा खमाज थाट के रागों का छपवा कर प्रकाशित किया।

अण्णासाहब वकालत की परीक्षा पास करके वकालत करने लगे तब वे एक बड़ी जायदाद के ट्रस्टी का भी कार्य करते थे। बंबई के सुप्रसिद्ध वकील शान्ताराम नारायण पाटकर बड़े धनी थे। उनके कई मकान बंबई, मलाड इत्यादि में थे। उनके कोई पुत्र न था, केवल दो कन्याएँ थीं। जिनके विवाह हो चुके थे। पर उन पुत्रियों में से एक का अपने पिता के जीवनकाल में ही देहान्त हो चुका था। बची हुई पुत्री श्रीमती धाकली बाई सीताराम सुकथनकर नामक एक इंजीनियर साहब को ब्याही थी। धाकली बाई के दो पुत्र एवम् तीन कन्याएँ थीं। पर पिता के जीवनकाल में ही धाकली बाई के पति का देहान्त हो गया था। पाटकर साहब ने अण्णासाहब को अपनी जायदाद का ट्रस्टी बनाया और अपने ही यहाँ उनके रहने का प्रबन्ध किया। तब से अण्णासाहब आमरण वहीं रहे। इनकी रहने की कोठी वालुकेश्वर ही के रास्ते पर पास ही थी। श्रीमती धाकली बाई को संगीत का शौक था और स्वयम् तथा उनकी संतान अण्णासाहब के संगीत शोधन कार्य में बहुत रस लेते। अण्णासाहब की संगीत अनुसंधान यात्राओं में सुकथनकर कुटुंब उनके साथ अवश्य रहता। अण्णासाहब की संगीत विषयक यात्रा श्रीमती धाकली बाई की तीर्थ यात्रा, और बच्चों का देशपर्यटन आदि साधने के हेतु सभी ने मिलकर एक साथ कीं। रुपये-पैसों की तो कमी थी नहीं। अतएव ये यात्राएँ पर्याप्त सफल हुईं। सुकथनकर कुटुंब अण्णासाहब को बहुत मानता था। विशेषतया धाकली बाई के द्वितीय पुत्र श्री भालचंद्र सीताराम सुकथनकर ने अण्णासाहब की सेवा उनके अन्तकाल तक की और उनके देहान्त के पश्चात् भी अपने धंधे-रोजगार (वे सालिसिटर थे) के कार्य को सम्हालते हुए अण्णासाहब का संगीत कार्य आगे बढ़ाते रहे। दुर्दैववश अण्णासाहब के

पश्चात् चार ही वर्ष बाद उनका भी देहान्त हो गया। अण्णासाहब की सभी संगीत यात्राओं में एवम् बड़ौदा, दिल्ली, बनारस और लखनऊ में हुई अखिल भारतीय संगीत परिषद् में, जो अण्णासाहब ही की देखभाल में हुई थी, भालचन्द्र राव उनके साथ उपस्थित थे।

अण्णासाहब की ये सब पुस्तकें छप ही रही थीं कि अन्य कुछ संगीत-विद्वानों ने भारतीय संगीत स्वर-सप्तक पर शोध कार्य आरम्भ किया। इन विद्वानों का उद्देश्य यह था कि पाश्चात्य संगीत पंडितों के समझाये हुए ध्वनिशास्त्र के सिद्धांत हमारे प्राचीन ग्रंथों की उक्तियों से भी सिद्ध हो सकते हैं तथा इन्हीं सिद्धांतों द्वारा प्राचीन तथा अर्वाचीन स्वर सप्तक सिद्ध किये जा सकते हैं। इन सज्जनों ने अपने विचार समाचार पत्रों में प्रकाशित किए। इन विचारों के कारण, जिन्हें ग्रंथों का कोई आधार तो था नहीं, लोगों को दिशाभ्रम न हो; इस हेतु अण्णासाहब ने समाचारपत्रों में प्रकाशित विचारों पर समालोचना करना आवश्यक समझा। और हिंदुस्तानी संगीत पद्धति के दूसरे भाग में इन्हीं विद्वानों के विचारों पर लगभग प्रथम १३५ पृष्ठों में चर्चा भी की। उसके पश्चात् भैरव-थाट के सब रागों को एक-एक लेकर ग्रन्थोक्तियों सहित इतिहास समझाते हुए उनका वर्णन उनके प्रचलित स्वरूपों के अनुसार किया। इसी ग्रन्थमालिका के प्रथम भाग में संगीत के कुछ मौलिक सिद्धांत समझाकर उसके पश्चात् कल्याण (यमन), बिलावल तथा खमाज थाटों के रागों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया। दूसरे भाग के पश्चात् ही तीसरा भाग भी छप कर प्रकाशित हुआ। इसमें पूर्वी तथा मारवा थाट के रागों की चर्चा है। स्थान-स्थान पर संदर्भ को नष्ट न करते हुए जहाँ मौका मिला, अपनी संगीत संशोधन यात्राओं में आये हुए विनोदात्मक-प्रसंगों का वर्णन करते हुए अण्णासाहब ने इन राग-चर्चाओं को पर्याप्त मनोरंजक बनाया है।

इसके पश्चात् की महत्वपूर्ण घटना थी बड़ौदा में सन् १९१६ में तत्कालीन बड़ौदा नरेश के प्रोत्साहन से बुलाई गई पहली अखिल भारतीय संगीत परिषद्। यह परिषद् दो महान् व्यक्तियों की चर्चा तथा सहकार्य का फल थी। एक अण्णासाहब एवं दूसरे तत्कालीन बड़ौदा नरेश हिज़ हाईनेस सर सयाजीराव महाराज। विद्या एवं कला के एक महान् पुरस्कर्ता के रूप में इन महाराज का नाम सर्वश्रुत है ही। जहाँ तक मेरा विचार है सब से पुराना संगीत विद्यालय बड़ौदा में ही था। मौलाबक्ष घिस्से खाँ नाम के एक प्रख्यात गायक एवं संगीत अध्यापक इस विद्यालय को चलाते थे। इन खाँ साहब की स्वरलिपिबद्ध गीतों की पाठयपुस्तकें अब भी पुस्तकालयों में उपलब्ध हैं। प्रो० मौलाबक्ष खाँ स्वयं एक महान् परिश्रमी तथा कर्मठ पुरुष थे। उन्होंने अपने जीवन काल में विद्यालय अच्छा चलाया। बड़ौदा सरकार से द्रव्य सहायता पाते-पाते अन्त में वह पूर्णतया बड़ौदा का सरकारी संगीतविद्यालय बन गया पर मौलाबक्ष खाँ के पश्चात् विद्यालय अवनत होने लगा और सन् १९१४-१५ में ऐंसी गिरी हुई अवस्था उसकी थी कि श्रीमन्त महाराज को उस विद्यालय के पुनरुद्धारार्थ उपाय खोजने की आवश्यकता प्रतीत हुई।

अण्णासाहब का नाम उस समय सर्वत्र प्रख्यात था। उनकी तीन-चार पुस्तकें, श्रीमल्लक्ष्यसंगीत-हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के प्रथम तीन भाग, स्वरमालिका, लक्षणगीत-संग्रह इत्यादि प्रकाशित हो चकी थीं। उनको गायकवर्ग में, संगीत प्रेमी लोगों में व संगीत क्षेत्र

में एक अधिकारी पुरुष का स्थान प्राप्त था उस समय बड़ौदा में एक भारतीय ईसाइ सज्जन श्री सैम्युएल जोशी नाम के बड़ौदा कालेज में अंग्रेजी के प्रोफेसर थे। श्रीमती धाकलीबाई के ज्येष्ठ पुत्र डा० विष्णु सीताराम सुकथनकर उर्फ गुलाबराव का और सैम्युएल जोशी का अच्छा स्नेह संबंध था। गुलाबराव जर्मनी में कई वर्ष रहकर संस्कृत में वहाँ से डाक्टर की उपाधि प्राप्त कर के इसी समय भारत लौटकर आये थे और पूने की "डाक्टर भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूट" के प्रधान अधिकारी के पद पर कार्य करते थे। अण्णासाहब का संगीत कार्य तो इन को विदित ही था। इन्हीं के द्वारा सैम्युएल जोशी को अण्णासाहब एवं उनके कार्य का परिचय मिला। सैम्युएल जोशी बड़े प्रभावशाली पुरुष थे। श्रीमान् सरकार सयाजीराव महाराज इनको बहुत मानते थे। बड़ौदा के संगीत विद्यालय के विषय में जब महाराज को चिंता उत्पन्न हुई तो वे ऐसे किसी संगीत विद्वान् की तलाश में लगे कि जो विद्यालय के सुधार के संबंध में उपयुक्त सूचनायें दे सके। अण्णासाहब का नाम महाराज ने सुना ही था। जोशी जी के साथ वार्तालाप करते समय अण्णासाहब का भी नाम आया। जोशीजी ने अण्णासाहब के कार्य, जो वे केवल संगीतप्रेम के ही कारण निःस्वार्थ भाव से कर रहे थे, उसमें उनके द्वारा की हुई प्रगति, उनके प्रकाशन इत्यादि के आद्यन्त वृत्तान्त महाराज को बताए। महाराज ने अण्णासाहब को बड़ौदा आकर संगीत विद्यालय की जाँच-पड़ताल करके उसको रास्ते पर लाने के लिये सुझाव देने के हेतु आग्रह करते हुए एक पत्र लिखवाया। अण्णासाहब तो संगीत संबंधी किसी भी कार्य के लिये सदा तत्पर ही रहते थे, बड़ौदा चले गये।

महाराज के साथ संगीत पर बहुत बातचीत हुई। बड़ौदा के संगीत विद्यालय के पुनर्गठन के संबन्ध में चर्चा करते हुए महाराज ने सर्वप्रथम महत्वपूर्ण "स्वरलिपि" का प्रश्न उठाया। चर्चा इस प्रकार हुई :

महाराज—क्यों पंडित जी, सामुदायिक संगीत शिक्षा के लिये शास्त्रोक्त रीति से लिखी हुई पाठ्यपुस्तकों की एवं उन पुस्तकों के लिये स्वरलिपि प्रणाली की, जो सीधी, सरल एवं स्पष्ट हो, अत्यन्त आवश्यकता है, यह बात आपको जँचती होगी ?

अण्णासाहब—अवश्य, सरकार, यह बात मैं मानता हूँ। पर प्रश्न यह है कि पाठ्य-पुस्तकों में स्वरलिपि द्वारा लिखा क्या जायगा ?

महाराज—(विस्मित होकर) क्यों ? लिखा क्यों नहीं जायगा ? ये ही आपकी राग-रागिणियाँ, उनके बरतने के नियम, स्वरविस्तार, उनकी चीजें ? क्या ये नहीं लिखी जा सकतीं ?

अण्णासाहब—सरकार, लिखी तो जा सकती हैं, पर जो कुछ लिखा जायगा उसको गायक-वादक एवं संगीत विद्वानों से सर्वमान्यता प्राप्त करायी जाय तब वे चलायी जा सकती हैं।

महाराज—(आश्चर्यचकित होकर) अरे ? क्या हमारे संगीत के, राग-रागिणियों के, रागदारी गीत प्रबन्धों के सर्वमान्य एवं निश्चित रूप नहीं है ?

अण्णासाहब—महाराज, कुछ मोटी-मोटी बातों में तो कोई मतभेद नहीं है। पर बहुत-सी ऐसी बातें हमारे संगीत में हैं जिनके संबंध में अनेक गायकों में, घरानों में मतभेद है। इन मतभेदों में कोई तात्विक तथ्य नहीं है। गायक गुणीजन यदि एक साथ मिलकर उन पर चर्चा कर के किसी निर्णय पर आवें तो ये सब मतभेद मिटाए जा सकते हैं।

महाराज—अच्छा, मैं समझ गया। फिर आपका क्या विचार है? गायक-वादक, गुणीजन तथा संगीत विद्वानों को बुलाया जाय?

अण्णासाहब—(नम्रतापूर्वक, धीरे से) यदि यह बात सरकार को स्वीकार हो तो इससे श्रेयस्कर और क्या हो सकता है।

बस, इतना कहना था कि महाराज ने अण्णासाहब को एक अखिल भारतीय संगीत परिषद् की योजना लिखकर सरकार को भेजने के लिये आग्रह किया। फलतः सन् १६१६ के मार्च में पहिली अखिल भारतीय संगीत परिषद् बड़ौदा में वहाँ की सरकार के संयोजन में हुई। इस परिषद् में समस्त भारत के गायक-वादक, गुणीजन एवं संगीत विद्वान्, हिंदुस्तानी एवम् दाक्षिणात्य—दोनों प्रणालियों के पधारे थे और वहाँ बहुत विषयों पर चर्चा हुई, निबंध पढ़े गये, विचार विनिमय हुआ। यह सचमुच एक परिषद् थी। इस प्रकार संगीत परिषदों की प्रथा प्रारम्भ हो गई जो आजतक प्रचलित है। यह बात अवश्य है कि अण्णासाहब के पश्चात् जो संगीत परिषदें समय-समय पर विभिन्न-स्थानों पर होती रहीं वे सब निरी लोकरंजनार्थ, संगीत जलसों के रूप में हुईं। शास्त्रचर्चा का कुछ भी अंश उनमें न रहा। नृत्य का भी खेल इन परिषदों में अत्यधिक परिमाण में होता रहा। वरन् जिस संगीत परिषद् में सुन्दर बालिकाएँ, मनोहर वेशभूषा में रंग-मंच पर आकर न नाचें, उस परिषद् को ईश्वर ही बचावे, ऐसी परिस्थिति आ गई थी। परन्तु इन परिषदों द्वारा उच्च, मध्यम तथा निम्न श्रेणी के जनसमाज को संगीत एवं नृत्य की सुन्दरता का पर्याप्त परिचय हुआ और अब लगभग हरएक कुटुम्ब के बालक-बालिकाएँ इन कलाओं को सीखने का भरसक प्रयत्न करने लगे हैं।

अण्णासाहब के बताये हुए मार्ग पर पुनः यदि संगीत परिषदें होना आरंभ हो जाएँ तो संगीत विषयक बहुत-सी बातें निश्चित एवं सर्वमान्य होकर सब झगड़े मिट जायेंगे। परिषदों की यह कल्पना हमारे संगीत में अण्णासाहब की ही देन है। उनके समक्ष उनके नेतृत्व में बड़ौदा की परिषद् के पश्चात् और परिषदें एक सन् १६१२ में दिल्ली में, एक सन् १६२० में बनारस में तथा दो लखनऊ में सन् १६२४ तथा सन् १६२५ में हुई थीं। इन सब में शास्त्रचर्चा अनिवार्य रूप से हुई थी।

लगभग सन् १६१० में प्राचीन संगीत ग्रन्थों के शुद्ध स्वर सप्तक तथा उसी के आधार पर आजकल के प्रचलित रागों के स्वरस्थानों पर तत्कालीन कुछ संगीत विद्वानों के विचार तथा सिद्धांत समाचारपत्रों में प्रकाशित हुए थे। और उन पर अण्णासाहब ने विस्तृत समालोचना हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के द्वितीय भाग में की थी, इसका उल्लेख ऊपर हो ही चुका है। इन विद्वज्जनों को अण्णासाहब ने निमंत्रण देकर बड़ौदा की संगीत परिषद् में अपने विचार रखने की प्रार्थना की। अतएव यह चर्चा पुनः बड़ौदा की

परिषद् में उठायी गई। मुख्य वाद ग्रंथों के शुद्ध ऋषभ तथा शुद्ध धैवत पर था। प्रति सेकण्ड २४० स्फुरणों के वेग का षड्ज गृहीत कर के उसके अनुसार ग्रंथों का शुद्ध ऋषभ $२६६\frac{२}{३}$ स्फुरण (प्रति सेकण्ड) का होता है और यही ऋषभ प्रचलित काफी-मेल-ग्रंथों के शुद्ध-स्वर-सप्तक का होना चाहिये। इसी मेल का धैवत, उसी षड्ज के अनुसार प्रति सेकण्ड ४०० स्फुरणों का होना चाहिए। यह सिद्धांत उन विद्वानों ने परिषद् के आगे रखा। बहुत लोगों ने इस सिद्धांत का विरोध किया। अन्त में प्रचलित काफी में ऋषभ के स्वर-स्थान को गवाकर सुना जाय इस निर्णय पर पहुँचे और किसी गायक से, जिसे अन्य सभी गायक लोग मानते हों, सुनाने की प्रार्थना की जाय, यह प्रस्ताव पास हुआ। सब गायकों ने उदयपुर के जाकिरुद्दीन खाँ साहब को चुन लिया। संगीत विद्वानों ने एक श्रुतिहार्मोनियम भी साथ लाया हुआ था। जाकिरुद्दीन खाँ साहब ने प्रथम काफी के आरोहावरोह एक-एक स्वर पर ठहरते हुए गाए। तत्पश्चात् ऋषभ पर आकर उसको देर तक गाते रहे। हार्मोनियम पर $२६६\frac{२}{३}$ का ऋषभ बजाकर देखा गया तो वह खाँ साहब के गाए हुए ऋषभ से कहीं नीचे था। खाँ साहब का ऋषभ हार्मोनियम के २७० स्फुरण वेग (प्रति सेकण्ड) के ऋषभ के साथ ठीक मिला। इस प्रकार प्रत्यक्ष उदाहरण द्वारा प्रचलित काफी का ऋषभ $\frac{\text{री}}{\text{सा}} = \frac{२७०}{२४०} = \frac{९}{८}$ सिद्ध हुआ। इसी प्रकार धैवत भी गाया गया और वह भी ४०० के धैवत से जो कि विद्वानों का इष्ट था बहुत ऊँचा सुनाई दिया। इस चर्चा का वृत्तांत बड़ौदा की अखिल भारतीय संगीत परिषद् की रिपोर्ट में प्रकाशित हुआ ही है। दक्षिण के अब्राहम पंडित ने भी विद्वानों के मत का खंडन किया और अपनी दो पुत्रियों से २२-२२ श्रुतियाँ जो उन्होंने अपने मत से निश्चित कर रखी थीं, गवाकर सुनवायीं। श्रुति-हार्मोनियम की श्रुतियों से ये श्रुतियाँ मिलीं नहीं। भारतीय श्रुति-स्वर चर्चा पर इनकी एक बड़ी पुस्तक अंग्रेजी में लिखी हुई प्रकाशित है।

यह श्रुति-स्वर वाद तथा ग्रंथों के शुद्ध स्वरसप्तक की चर्चा अभी भी समाप्त नहीं हुई है। आज भी हमारे संगीत के विद्वान् शोधन में लगे हुए हैं। स्वयं अण्णासाहब के विचार इस विषय में क्या थे, अब इस स्थान पर बताना उचित होगा।

प्राचीन ग्रंथों में से संगीतपारिजात ही एक ऐसा ग्रंथ था कि जिसमें ग्रंथकार ने अति स्पष्ट रूप से शुद्धविकृत स्वर वीणा के तार पर, तार की लम्बाई के विभागों द्वारा बताये थे। दाक्षिणात्य संगीत प्रणाली के कुछ ग्रन्थ विशेषतया रागविबोध सदृश्य उपलब्ध थे। उनकी स्वरों की परिभाषा भी उत्तर भारतीय संगीत के स्वरों की परिभाषा से भिन्न थी। अतएव हमारे यहाँ के संगीत-विद्वान् वहाँ के ग्रन्थों पर दृष्टिपात भी नहीं करते थे। वहाँ की परिभाषा में भैरव, भैरवी, जैसे रागों में शुद्ध ऋषभ, धैवत बताये हुए हैं। कोमल तीव्रादि संज्ञाओं का नाम निशान भी नहीं है। फलतः हमारे विद्वानों ने उनको अलग ही रखा हो तो कोई आश्चर्य नहीं। पर अण्णासाहब ही एक थे जिन्होंने दक्षिण की यात्रा कर के दाक्षिणात्य संगीत प्रणाली का शुद्धमेल तथा उस प्रणाली की परिभाषा समझ कर उसके शुद्ध-विकृत स्वर हमारी उत्तर भारतीय प्रणाली में कौन-से स्वर होंगे, इस बात का स्पष्टी-करण किया। हमारी उत्तर-भारतीय संगीत प्रणाली का मुख्य वाद्य बीन एवं दाक्षिणात्य

संगीत प्रणाली की सरस्वती वीणा पर पर्दों की अवस्था बिलकुल एक-सी थी। अतएव हमारे यहाँ शुद्ध-विकृत मिलकर बारह स्वर प्रचार में थे। वे ही बारह स्वर दाक्षिणात्य प्रणाली में भिन्न परिभाषा में होने चाहिये यह बात स्पष्ट दिखाई देती थी। और इसी बात पर निश्चित रूप से जानकारी प्राप्त करने के लिये अण्णासाहब ने दक्षिण की यात्रा की और उन्होंने ही सर्वप्रथम दाक्षिणात्य एवं उत्तर-भारतीय-संगीत का आपसी साम्य तथा उनके भेद समझाए। साथ-साथ रामामात्य का स्वरमेल-कला निधि, व्यंकटमखी की चतुर्दण्डि-प्रकाशिका, रागलक्षण आदि प्रचलित दाक्षिणात्य संगीत प्रणाली के आधारग्रंथ संपादन कर के प्रकाशित किए। मध्यकालीन ग्रन्थों के अनुसार उत्तर भारतीय संगीत प्रणाली का शुद्धस्वर मेल लगभग काफी मेल एवं दाक्षिणात्य प्रणाली का मुखारी, जो बाद में कनकांगी कहलाया, शुद्ध स्वरसप्तक सिद्ध हुए।

पर उत्तरभारतीय संगीत के प्रत्यक्ष प्रचार में बिलावल सप्तक के ही स्वर, संगीत की प्राथमिक शिक्षा में सिखाए जाते हैं और यह प्रचार कम से कम दो ढाई सौ वर्षों से चलता आ रहा है। बिलावल सप्तक में लगने वाले स्वरों को ऊँचा नीचा कर के तीव्र, कोमल ये विशेषण लगाए जाते हैं। अतएव बिलावल के ही स्वरों को शुद्ध स्वर कहा जाता है। वास्तव में तीव्र कोमल आदि विशेषण केवल स्वरों की ऊँची-नीची अवस्था के सूचक हैं। षड्ज तथा पंचम तो अचल स्वर ही हैं। ऋषभ, गांधार, मध्यम, धैवत तथा निषाद प्रत्येक की दो-दो अवस्थाएँ मुख्यतः मानी जाती हैं। अर्थात् एक नीची तथा दूसरी ऊँची। बिलावल के सप्तक में चल स्वरों में से केवल एक मध्यम के अतिरिक्त शेष सब स्वर अपनी-अपनी ऊँची अवस्था में होते हैं। अतएव ये तीव्र री, तीव्र ग, तीव्र ध एवं तीव्र नि कहलाते हैं। इसी सप्तक में मध्यम अपनी नीची अवस्था में होता है। उसको कोमल मध्यम भी कहते हैं। प्राचीन ग्रंथ भरत नाट्यशास्त्र, रत्नाकर आदि के अनुसार स्वरों की शुद्ध अवस्था उनकी अपनी-अपनी अन्तिम (उच्चतम) श्रुति पर बतायी गई है। पर ये अवस्थाएँ तो श्रुति व्यवस्था की दृष्टि से हुई। स्वरों की विकृतियाँ रत्नाकर में दो प्रकारों से समझायी गयी हैं। एक जबकि स्वर अपनी नियत श्रुति छोड़कर नीचे अपनी पिछली श्रुति पर हटता है अथवा उनपर अगले स्वर की श्रुतियाँ ग्रहण करता हुआ ऊपर बढ़ता है। दूसरे प्रकार से स्वर अपनी नियत श्रुति पर स्थित रहते हुए भी केवल पड़ोस के स्वर के चढ़ने उतरने के परिणाम स्वरूप ध्वन्यन्तर बढ़ने-घटने के कारण विकृत कहलाता है। भरतमुनि ने तो दो विकृत बताये हैं। अर्थात् अन्तर गांधार तथा काकली निषाद जो क्रमशः मध्यम तथा षड्ज की दो-दो श्रुतियाँ ग्रहण कर के विकृत हो जाते हैं। मध्यमग्राम में पंचम, षड्ज ग्राम के पंचम से एक श्रुति नीचे हटता है। उसको एक और विकृत समझा जा सकता था। पर स्वयं भरत कहीं उसको विकृत स्वर नहीं कहते। संगीत रत्नाकर में अवश्य चढ़ते-उतरते हुए तथा दो स्वरों के बीच का ध्वन्यन्तर बढ़ने पर स्वरों का विकृत पाना बताया गया है। पर यह सब बातें श्रुति की परिभाषा में समझाई हुई हैं। संगीतपारिजात में अवश्य वीणा के तार पर उसके विभागों द्वारा शुद्ध विकृत स्वर बताए हैं जिससे उसका शुद्ध स्वरमेल प्रचलित काफी का सप्तक सिद्ध होता है। अहोबल ने वीणा के तार पर अपने शुद्ध-विकृत स्वरों की स्थापना समझाते समय

यह एक आवश्यक प्रतिबन्ध लगाया है कि "षड्ज-पंचम-भावेन षड्ज ज्ञेया: स्वरा बुधैः" अर्थात् "मेरे षड्ज ग्राम में (शुद्ध स्वर सप्तक में) षड्ज-पंचम भाव में (पूर्वांग तथा उत्तरांग के स्वर आपस में षड्ज-पंचम भाव में) समझना चाहिए। अतएव सा से प जिस अनुपात में ऊँचा होगा उसी अनुपात में री से ध, ग से नि तथा म से सां ऊँचा होगा।

$\frac{प}{सा} = \frac{३}{२}$ अतएव $\frac{ध}{री}$, $\frac{नि}{ग}$ तथा $\frac{सा}{म}$ ये सब $\frac{३}{२}$ के बराबर होंगे।"

इस प्रतिबन्ध को लक्ष्य में रखकर यह स्वर स्थापना करनी है। इस विषय पर लिखे हुए अहोबल के श्लोकों में एकाध स्थान पर संदिग्धता है। ऋषभ का स्थान समझाते हुए वे कहते हैं "सपयोः पूर्व भागे च स्थापनीयोऽथ रि-स्वरः"। सा तथा प के बीच के स्थलान्तर के पूर्व तथा उत्तर के दो विभाग हुए अब पूर्व भाग में कहाँ, यह समस्या आ जाती है? पर इसका उत्तर "षड्ज-पंचम-भावेन" इत्यादि उक्ति से वे पहले ही दे चुके हैं। इनमें से पूर्व भाग के अन्दर षड्ज-पंचम-भाव को न तोड़ते हुए ऋषभ का स्थान होगा। षड्ज से पंचम, पंचम से षड्ज-पंचम-भाव से मिलता हुआ तार सप्तक के ऋषभ को ही मध्य स्थान अर्थात् $\frac{१}{२}$ में नीचे लाकर जो ऋषभ मिलेगा वही अहोबल का शुद्ध ऋषभ होगा। इसी से षड्ज-पंचम-भाव से मिलता हुआ धैवत अहोबल का शुद्ध धैवत होगा। शेष सब शुद्ध स्वरों के संबंध में कोई संदिग्धता नहीं है। ये सब स्वर प्रचलित काफी मेल के, २४०, २७०, २८८, ३२०, ३६०, ४०५ तथा ४३२ प्रति सेकण्ड स्फुरणों के हैं। ये ही स्वर वीणा के तार पर घुरच तथा आड़ के बीच में इस प्रकार होंगे :—

सा = १ (घुरच से आड़ तक पूरा तार), री = $\frac{८}{९}$, ग = $\frac{५}{६}$, म = $\frac{३}{४}$, प = $\frac{२}{३}$, ध = $\frac{१६}{२७}$ तथा नि = $\frac{५}{९}$

ऊपर बताया ही गया है कि संगीत-पारिजात तथा उसके समकालीन ग्रन्थों का अर्थात् लोचन की रागतरंगिणी, हृदयनारायण देव का हृदय कौतुक तथा हृदय-प्रकाश, श्रीनिवास का रागतत्वविबोध इत्यादि उत्तर भारतीय संगीत प्रणाली, शुद्धस्वरमेल, आजकल के काफी का था।

इसी सप्तक के निषाद को षड्ज मानकर यही सप्तक नि से नि तक अर्थात् नि सा री ग म प ध नि इन्हीं को क्रमशः सा री ग म प ध नि सां नाम देकर गाने पर बिलावल (आजकल का शुद्धस्वर सप्तक) मिलता है। इसी निषाद को षड्ज की प्रथम श्रुति मानकर एवं उसी पर षड्ज स्थापित कर के 'चतुश्चतुश्चतुश्चैव' इत्यादि स्वरान्तरों के नियम के अनुसार अण्णासाहब ने निम्नलिखित व्यवस्था श्रुतियों की परिभाषा में बतायी। यथा :—

१	२	३	४,	५	६	७,	८	९,	१०	११	१२	१३,	१४	१५	१६	१७,	१८	१९	२०,	२१	२२,
सा				री			ग		म				प				ध			नि	

प्रत्येक शास्त्रकार अपने-अपने समय के ही संगीत का वर्णन करता है। आधि-भौतिक तत्वों की भाँति त्रिकालबाधित नियम संगीत जैसी एक मानव निर्मित कला

में नहीं होते हैं और न हो सकते हैं। संगीत परिवर्तनशील है। देशकालानुसार उसकी रूढ़ियाँ बदलती रहती हैं। भरत मुनि के समय का संगीत मतंग के समय परिवर्तित होकर उसमें राग-गायन का उदय हुआ। मतंग के समय के संगीत में भी आगे चलकर परिवर्तन हुआ। शार्ङ्गदेव ने अपने समय का संगीत समझाते हुए "मार्ग" संगीत के नाम से पूर्व प्रसिद्ध रागों का जो उसके समय प्रचार से गिर चुके थे, उल्लेख किया ही है। भरत के केवल दो विकृत स्वर अंतर गांधार तथा काकली निषाद थे। शार्ङ्गदेव के समय बारह विकृत स्वर प्रचार में आ गये थे। भरत का षड्ज अपने स्थान से हटता नहीं था। शार्ङ्गदेव के षड्ज तथा पंचम दोनों विकृत हो सकते थे; अपने-अपने स्थान से नीचे हट सकते थे। शार्ङ्गदेव के पश्चात् और भी परिवर्तन हुआ। ग्राम मूर्च्छना जाति की प्रणाली मिट गयी। षड्ज तथा पंचम पुनश्च अचल हो गये। नयी रूढ़ि के अनुसार नये शास्त्र नियम बने। उन नियमों को समझाने वाले ग्रन्थ भी लिखे गये। आज के संगीत का शास्त्र अण्णासाहब ने लिखा। आज का संगीत भरत शार्ङ्गदेव का नहीं है, न अहोबल का ही है। उनके शास्त्र में भरत के नाट्यशास्त्र की प्रणाली से भिन्नता हो और यदि वह दोष ही माना जाए तो वर्तमान रूढ़ि का दोष है, शास्त्रकार का नहीं।

अण्णा साहब का मुख्य उद्देश्य उनके समय का प्रचलित संगीत (लक्ष्य संगीत) जनता को स्पष्ट रूप से सरल एवं स्पष्ट रीति से समझाना था। भरत मुनि का षड्ज ग्राम किन-किन स्वरों का था, इस चर्चा में पड़कर मुख्य उद्देश्य को अलग रखना उन्होंने योग्य नहीं समझा और उस चर्चा से तादृश विशेष लाभ न होगा, यह उनकी मान्यता थी। प्राचीन ग्रन्थों की उक्तियों का स्पष्टीकरण अधिकतर उनके समय के संगीत के प्रत्यक्ष प्रचार पर, क्रिया पर निर्भर है। वहाँ निरी तर्कबुद्धि सफल न होगी यह उनका मत था। हरिदास एवं तानसेन के—जो अपेक्षाकृत बहुत अर्वाचीन थे—समय के संगीत का भी पता लगाना कठिन है तब भरत और शार्ङ्गदेव के समय के संगीत का साक्षात्कार करना असंभव-सा है। स्वयंम् 'श्रुति' की ही परिभाषा—जिसपर षड्ज ग्राम तथा मध्यम ग्राम की सिद्धि निर्भर है—इन दो ग्रामों के पंचमों पर निर्भर है। ये दोनों ग्राम उस समय प्रचलित थे। उनके पंचम लोगों के कानों में स्पष्ट थे। अतएव इन पंचमों का ध्वन्यन्तर जिसको भरत मुनि ने श्रुति का परिमाण बताया है उस समय के गायक-वादक निकाल सकते थे। संगीतरत्नाकर की टीका में सिंहभूपाल इस विषय पर विचार करते हुए एक स्थान पर मतंग की एक उक्ति उद्धृत करते हैं, जो इस प्रकार है :

"ननु श्रुतेः किम् प्रमाणम् (मानम्) ? उच्यते। पंचमस्तावद् ग्रामद्वयस्थो लोके प्रसिद्धः। तस्योत्कर्षणापकर्षणाभ्याम् मार्दवादायतत्वाद्वा यदन्तरम् तत्प्रमाणश्रुतिरिति"। मतंग भरत के ही पश्चात् हुए। इनका ग्रन्थ बृहद्देशी नाम का है जिसमें उन्होंने रागों की विस्तृत चर्चा की है जो भरत ने नहीं की थी। श्रुतियों पर चर्चा करते हुए मतंग प्रथम प्रश्न यह उठाते हैं—"भला, श्रुति का परिमाण क्या है ?" और उसके उत्तर में कहते हैं—षड्जग्राम तथा मध्यमग्राम के पंचम तो सब लोगों के परिचित ही हैं। उन्हीं की उच्च-नीचता में जो ध्वन्यन्तर प्राप्त होता है वही श्रुति का परिमाण है। उस समय के वीणाविद्

अपनी वीणा षड्जग्राम में तथा मध्यम ग्राम में केवल अपने कान से सुनकर मिला सकते होंगे। जैसे आज भी किसी भी थाट में हमारे सितारिये अपना सितार मिला लेते हैं। अतएव उस समय के लोगों को भरत की श्रुति परिमाण निकालने में कठिनाई न होती होगी। पर आज वह षड्जग्राम तथा मध्यमग्राम दोनों प्रचार में नहीं हैं और इसी कारण श्रुति परिमाण भी निकालना असंभव हो गया है।

आजकल हमारे कुछ संगीत-विद्वान् भरत के षड्जग्राम का शोध स्वर-संवाद सिद्धान्तों द्वारा करने का प्रयत्न कर रहे हैं। पर भरत ने तो अपने स्वर संवाद "श्रुति" की ही परिभाषा में समझाए हैं। हम लोग अपनी श्रवण-कुशाग्रता द्वारा स्वर-संवाद परख लेंगे और ये ही संवाद भरत को अभिप्रेत होंगे, ऐसा हम प्रतिपादन करेंगे। क्योंकि मानव के कान वैज्ञानिक यंत्रों की भाँति अचूक और सक्षम हैं, उसी प्रकार वे भरतमुनि की भाँति उतने ही श्रवण-कुशाग्र हैं, ऐसा हम मानते हैं। अतः इन सबके फलस्वरूप हम लोगों के अपने इच्छित स्थानों पर भरतोक्त स्वर मिल जायँगे। और फिर क्या है? भरतमुनि का षड्जग्राम हम लोग हथिया लेंगे। सौभाग्य से पाश्चात्य पंडितों ने ध्वनिशास्त्र के मूल सिद्धान्त गणित द्वारा समझा रखे हैं। ध्वन्यन्तरों के परिमाण निर्भ्रान्त बता दिये हैं जिससे हमारे कानों की श्रवण-कुशाग्रता को पर्याप्त सहारा मिलता है; अन्यथा केवल मानव श्रवणेन्द्रिय द्वारा निकाले हुए षड्ज-पंचम संवाद, षड्ज-मध्यम संवाद तथा षड्जान्तर संवाद से बड़ी उलझन में पड़ते। $\frac{3}{2}$, $\frac{4}{3}$, $\frac{5}{4}$ एवं $\frac{6}{5}$ इन्हीं चार संवादों पर हमारा आज का श्रुति-स्वर-ग्राम-मूर्च्छना-जाति-राग वाद खिल रहा है। पर ये ही संवाद भरतुमनि के भी उद्दिष्ट थे यह बात समझने के लिये घोर तपस्या, प्राचीन विभूतियों पर अटल श्रद्धा, उनका हृदगत जानने की पात्रता और परम्परागत-आनुवंशिक संस्कार चाहिये। अण्णासाहब विचारे संभवतः इन सब सौभाग्य-लक्षणों से वंचित रहे। भरत ने जब सा से सां का, री से रीं का, ग से गं का परिमाण द्विगुण बताया है और यह बताने के लिये तार के वायुस्तम्भ के, धात के टुकड़े का नाप-तौल किया ही होगा तब क्या षड्ज ग्राम में सा से प का $\frac{3}{2}$ तथा मध्यमग्राम में री से प का $\frac{4}{3}$ ये परिमाण वे नहीं बता सकते? उन्होंने ये परिमाण श्रुति की ही परिभाषा में क्यों बताए? यदि $\frac{3}{2}$, $\frac{4}{3}$ इत्यादि संवादों के परिमाण वे देते तो यह बात स्पष्ट हो जाती कि हम लोगों की हमारी स्वर-संवादों की कल्पना जो आज है ठीक वही भरत की भी थी। वह वैसी हो भी तो उसकी उक्तियाँ स्पष्ट नहीं हैं। अब यह संदिग्धता उन्होंने क्यों रखी; इस बात पर विचार विनिमय की आवश्यकता है। कान की श्रवण-कुशाग्रता से ही उनको काम लेना होता तो श्रुतियों के आडम्बर की भी आवश्यकता

$$\text{न थी ।}\ \frac{\text{सां}}{\text{सा}}\ \frac{\text{प}}{\text{सा}}\ \frac{\text{म}}{\text{सा}}\ \frac{\text{ग}}{\text{सा}}\ \text{तथा}\ \frac{\text{ग}}{\text{सा}}$$

ये सब संवाद गणित के आँकड़े न बताते हुए भी केवल कान की श्रवण-कुशाग्रता के ही आधार पर बताते। वैसे तो संगीत के मूल ध्वनिशास्त्र के वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर

पाश्चात्य पंडितों द्वारा लिखा हुआ साहित्य, जिसमें गणित-सिद्ध ध्वन्यन्तर परिमाण भी उपलब्ध थे, महर्षि के समय भारत में प्राप्त रहा होगा अथवा नहीं, कहा नहीं जा सकता। पर इन गणितीय आँकड़ों के लिये भरतमुनि को दूसरों पर निर्भर रहना पड़ा होगा, यह कहना धृष्टता होगी। उन्होंने "श्रुति" के ही द्वारा स्वर तथा ग्राम समझाए, इस बात में कुछ तो रहस्य होगा? क्या शास्त्र एवं कला का सामंजस्य करते हुए उनको संवाद तथा गणितीय आँकड़ों से अड़चन प्रतीत हुई? क्योंकि यह अड़चन सदैव रहेगी। प्रत्यक्ष गायन-वादन में गणित के आँकड़ों द्वारा अथवा किसी श्रवण-कुशाग्रता द्वारा निश्चित किये हुए ही स्वर ठीक सदैव लगाने का उत्तरदायित्व गायक-वादकों को स्वीकृत होगा ही, यह कहा नहीं जा सकता। सम्भव है सब श्रुतियाँ समान मानकर पंचम, मध्यम ठीक उन स्थानों पर न आते हों, जहाँ उन्हें भरत चाहते थे; तो इसलिए उनको संवादों का उल्लेख करना पड़ा हो जैसे कि पश्चात् के कुछ ग्रन्थकारों ने किया है। पर इसी को लेकर आज कल के संवादों के परिमाण अर्थात् $\frac{३}{२}$, $\frac{४}{३}$, $\frac{५}{४}$, $\frac{६}{५}$ ये जो भरत को मान्य थे, यह बात ग्रहण करके उन के षड्जग्राम तथा मध्यमग्राम प्रस्थापित करना ठीक समझा। यद्यपि उन्होंने १३ तथा ९ श्रुति के ध्वन्यन्तर क्रमशः षड्ज-पंचम तथा षड्ज-मध्यम संवादों के अतिरिक्त और कोई लक्षण संवादों का नहीं दिया है। हम लोग उन श्रुतियों के परिमाण भी भिन्न-भिन्न मानेंगे, यह सब कहाँ तक शास्त्र विहित होगा; यह एक जटिल-समस्या है। ग्रंथों की भाषा शिथिल होने के कारण उन उक्तियों के भिन्न-भिन्न अर्थ, वाच्यार्थ, व्यंगार्थ, ध्वन्यर्थ निकलना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। "मुनीनाम् पुनराद्यानाम् वाचमर्थोऽनुधावति" यह सुभाषित सर्व विदित ही है।

प्रत्येक शास्त्रकार को उन स्वरों की परिभाषा देने की आवश्यकता है, जिनके द्वारा संगीत वह समझाने जा रहा है। उपलब्ध साधनों द्वारा अपनी-अपनी रीति से उनके ध्वन्यन्तरों के साथ भी समझाना आवश्यक है। भरतमुनि के समय जो स्वरग्राम प्रचलित थे उनके स्वरों के पारस्परिक ध्वन्यन्तर बताने के लिये "श्रुति" जैसे सूक्ष्म-ध्वन्यन्तर के अतिरिक्त और कोई साधन उपलब्ध न रहा हो, गणितीय सिद्धांत द्वारा उन पर नियंत्रण रखना उन्होंने योग्य न समझा हो, कारण कुछ भी हो; श्रुति की ही परिभाषा में स्वरांतरों को समझाना उन्होंने श्रेयस्कर समझा। संगीत लक्ष्यप्रधान शास्त्र है। वह समय-समय के प्रचलन पर आधारित होता है। भरत के षड्जग्राम, मध्यमग्राम, जिनके आधार पर वे श्रुति एवं स्वर-संवाद समझा रहे हैं, आज प्रचार में नहीं हैं। अब उन श्रुतियों एवं उन संवादों को केवल अपने-अपने कान की कुशलता के आधार पर सिद्ध करने का उपदेश हम लोगों को मिल रहा है। इसमें न जाने किसके कान कहाँ पहुँच जायँ। कम-से-कम गणित का भी आधार लिया जाता तो भी उनमें निश्चितता आती। वह तो लिया नहीं गया, यद्यपि उक्त उपदेश का आशय $\frac{\text{प}}{\text{सा}} = \frac{३}{२}$; $\frac{\text{म}}{\text{सा}} = \frac{४}{३}$; $\frac{\text{ग}}{\text{सा}} = \frac{५}{४}$ यही हैं जो स्पष्ट दिखाई देता है।

भरतनाट्यशास्त्र से पूर्व भी ग्रीस के विद्वान् संवादों से परिचित थे, यह एक

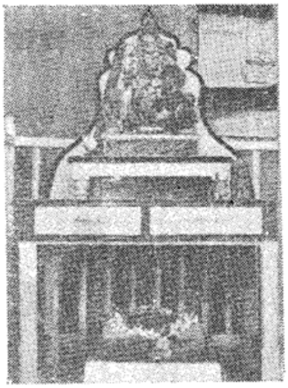
ऐतिहासिक सत्य है। षड्ज-पंचम-संवाद आरोही वर्ण में तथा षड्ज-मध्यम-संवाद अवरोही में, जिसको "सायकल आफ दि फिफ्थ" कहते हैं; ग्रीस के विद्वानों ने भरत-नाट्य-शास्त्र के समय से कई शताब्दियों पूर्व समझाये थे। तो क्या हमारे भरतमुनि इन संवादों के लिये ग्रीक विद्वानों के ऋणी थे ? इन संवादों द्वारा भरत मुनि के षड्ज-मध्यम-ग्राम सिद्ध करने के सिलसिले में यह भी एक बात सिद्ध होने जा रही है कि लगभग वही संगीत प्रणाली भारत में भी भरतमुनि के समय प्रचलित थी, जो ग्रीस में उस समय थी। अब प्रश्न उठता है कि स्वरसप्तक प्रस्थापित करने में कौन किसका ऋणी है ? भारत ग्रीस का अथवा ग्रीस भारत का ? भारत का सबसे प्राचीन उपलब्ध ग्रंथ जिसमें संगीत का कुछ विवरण शास्त्रीय रीति से आया हुआ है, यही भरत का नाट्य-शास्त्र है। वास्तव में यह ग्रंथ नाट्यकला पर लिखा हुआ है। उसका एक अङ्ग—महत्वपूर्ण अङ्ग—संगीत है। उसमें अन्तिम दो-चार अध्याय महर्षि ने संगीत पर लिखे हैं। यह भरत-नाट्य-शास्त्र नाट्यवेद नामक किसी प्राचीन ग्रंथ का—जिसके रचयिता कोई आदिभरत अथवा ब्रह्मभरत नाम के ऋषि समझे जाते हैं—पश्चात् कालीन संस्करण है, ऐसा कुछ विद्वानों का मत है। सम्भव है इस भरत-नाट्य शास्त्र में—जो आज उपलब्ध है—कुछ प्रक्षिप्त भाग हो, जो मूल नाट्यवेद में न रहा हो, पर समय-परिवर्तन के कारण उसको इस पश्चात्-कालीन संस्करण में जोड़ना आवश्यक जान पड़ा हो। यह कहना कठिन है कि संगीत पर लिखे हुए अध्याय केवल रंगभूमि के उपयुक्त संगीत को बताते हैं अथवा संपूर्ण संगीत को एक स्वतंत्र कला तथा शास्त्र के रूप में भी बताते हों। क्या भरत-नाट्य-शास्त्र से पूर्व अन्य देशों में कोई संगीत का साहित्य निर्माण नहीं हुआ था ? ऐसा कोई साहित्य पुस्तक रूप में, चर्चा के रूप में और प्रत्यक्ष प्रयोग के रूप में भारत में उपलब्ध न रहा होगा ? ऐसा न हुआ होगा तो संवादों की कल्पना भरतमुनि की श्रवण-शक्ति का ही फल समझना चाहिये और आज हम लोगों की भी श्रवण-शक्ति भरत मुनि की शक्ति से कम नहीं है, यह भी मानना होगा। तभी हम लोग स्वर-संवादों द्वारा भरत के षड्ज-ग्राम एवं मध्यमग्राम सिद्ध कर सकते हैं।

भरतमुनि के सारणा-चतुष्टय में हम लोग मध्यमग्राम के ऋषम-पंचम-संवाद द्वारा भरत का प्रमाण-श्रुति समझाते हैं। भरत की वीणा पर पर्दे नहीं थे। नौ तार थे। यह एक महत्वपूर्ण बात है। ऋषभ-पंचम का संवाद साधते हुए पंचम के तार को उतारना है। माना कि पंचम, ऋषभ के साथ संवाद को इतना उतारा गया। यही है भरत की प्रमाण श्रुति। अब इस नये उतरे हुए पंचम को षड्जग्राम का ही मानकर वीणा को षड्जग्राम की करनी है। पर इस प्रमाण-श्रुति के नाम से पंचम के अतिरिक्त शेष सब स्वरों के तार एक श्रुति उतारने के लिये किसके कान समर्थ हैं ? और इस प्रथम सारणा का फल क्या ? तो चलवीणा के स्वर ध्रुववीणा के स्वरों से एक-एक श्रुति नीचे बजेंगे। जब ध्रुव वीणा के किसी स्वर से चल वीणा का स्वर समी-करण (तल्लीनता) इस प्रथम सारणा में उद्दिष्ट ही नहीं है तो पंचम के अतिरिक्त अन्य स्वर उनकी अपनी-अपनी पिछली दूसरी श्रुति से ऊपर कहीं भी उतारे गये तो बाधा ही

पारिवारिक



'भातखण्डे हाऊस' बाणगंगा, वालकेश्वर बम्बई ६



दत्तात्रेय का मन्दिर



कनिष्ठ भ्राता
स्व० श्री हरि नारायण भातखण्डे



भ्रातृ-स्नुषा
श्रीमती रमाबाई भातखण्डे



पण्डित भातखण्डे
[१८९६]



पण्डित भातखण्डे
[१९१२]



पण्डित भातखण्डे
[१९१६]

कौन-सी होगी ? इस प्रमाणश्रुति की आवश्यकता क्या है ? क्योंकि दूसरी सारणा में आगे विद्वानों का उपदेश है कि चल वीणा के गांधार निषाद उतने ही उतारे जाएँ कि वे ध्रुव वीणा के क्रमशः ऋषभ धैवत में मिल जाएँ। जैसे प्रथम सारणा में एक प्रमाण श्रुति बतायी गयी—यद्यपि उसका उपयोग षड्ज-ग्राम के सात स्वर स्थानों के अतिरिक्त अन्य अधिक सात-सात स्वर नाद स्थानों की प्राप्ति के सिवाय और कुछ नहीं है—वैसे अन्य एक प्रमाणश्रुति इस दूसरी सारणा में रहनी चाहिये, और इस नये श्रुति प्रमाण से अन्य सब स्वर अर्थात् सा, री, ग, म, ध, नी उतारे जायें। भरत ने तो सारणा समझाते हुए अन्य किसी श्रुति प्रमाण का उल्लेख किया ही नहीं है। उनकी प्रमाण-श्रुति तो केवल षड्जग्राम के पंचम को मध्यम-ग्राम का पंचम बनाने के लिये जो ध्वन्यन्तर आवश्यक है, वही एक समझ में आता है। भरतमुनि के अनुसार दूसरी सारणा में भी चलवीणा में प्रथम पंचम को मध्यम ग्राम का पंचम बनाकर उसकी अपेक्षा वीणा को षड्ज ग्राम की करना है। भरत ने प्रमाण-श्रुति बतायी ही है। उसी परिमाण से पंचम को दूसरी बार और नीचे उतारना है। पर पंडितों को यह परिमाण मान्य नहीं है। अब प्रश्न उठता है कि, प्रथम पंचम उतारा जाए अथवा प्रथम गांधार निषाद ध्रुव वीणा के ऋषभः धैवत के स्थानों पर उतारे जाएँ और तत्पश्चात् ऋषभ का षड्ज मध्यम भाव का संवादी पंचम मिलाया जाए। भरत ने तो केवल इतना ही कहा है कि दूसरी सारणा में जो पहली सारणा के ही सदृश करनी चाहिए—"पुनरपि तद्वदेवापकर्षात्।" चल वीणा के गांधार निषाद ध्रुववीणा के क्रमशः ऋषभ-धैवत में मिल जायेंगे—"गांधार-निषादावपि इतरस्यां ऋषभ-धैवतौ प्रविशतो द्विश्रुत्यधिकत्वात्।" भरत मुनि के अनुसार दूसरी सारणा में चलवीणा के गांधार निषाद, ध्रुव वीणा के ऋषभ धैवत में, तीसरी सारणा में चल वीणा के ऋषभ धैवत ध्रुव वीणा के षड्ज पंचम में तथा चौथी सारणा में चल वीणा के षड्ज मध्यम तथा पंचम ध्रुव वीणा के क्रमशः मंद्र निषाद, गांधार तथा मध्यम में मिल जायेंगे, जबकि पंडितों के अनुसार ये ही स्वर उक्त स्थानों पर मिला लिए जाएंगे। यह एक बड़ा भेद है। कानों की श्रवण-कुशाग्रता के द्वारा संवादों की सहायता से भरत का प्रथम षड्ज-ग्राम मिलाना, तत्पश्चात् सारणा-चतुष्टय द्वारा स्वरों के बीच में भिन्न-भिन्न परिमाण की श्रुतियाँ बिठाना ही भरत का श्रुति-सिद्धांत हो; यह बात जँचती नहीं। इस विचार धारा को मुख्य आधार पाश्चात्यों के ध्वनिशास्त्र सिद्धांतों का ही है; चाहे हम लोग यह ऋण स्वीकार करें या न करें। नहीं तो निरे कानों के भरोसे संवाद परख कर स्वर-ग्राम वीणा पर बाँधना एक अत्याचार होगा। स्वयम् भरतमुनि को यह रीति कहाँ तक ग्राह्य होती, यह भी एक प्रश्न है।

अण्णासाहब अपनी श्रुति-स्वर चर्चा में यह कहते रहे हैं कि ग्रन्थवाक्यों का सरल अर्थ लगाना चाहिए। उन वाक्यों का अर्थ लगाते हुए अपनी निजी कल्पनाएँ तथा ग्रन्थ के पश्चात् काल में प्रचलित विचार, सिद्धान्तादि के द्वारा उनका निर्णय करना उनको उचित नहीं लगता था। और जो रीति-रिवाज, जो प्रथा, जो प्रणाली सदियों पूर्व मिट चुकी है, जब से कि प्रचलित संगीत अपने प्राचीन स्वरूप से बहुत कुछ परिवर्तित हुआ है; तब उनकी, उस प्राचीन स्वरूप की चर्चा उस समाज के लिये करना जिसकी सेवा

में लक्ष्यसंगीत अर्पण किया जा रहा था, निरुपयोगी होगा। केवल ऐतिहासिक घटनाओं के विवरण के अतिरिक्त उसका और कुछ उपयोग न होगा; यही अण्णासाहब की धारणा तथा भूमिका थी। प्रचलित संगीत को मिटाकर पुनश्च प्राचीन संगीत रूढ़ करना, यह विचार उनको ठीक नहीं लगा। उन्होंने अपने ग्रन्थों में बताया ही है कि प्रचलित संगीत अर्थात् लक्ष्यसंगीत का स्पष्टीकरण एक सुबोध, सरल प्रणाली द्वारा करना ही मेरा उद्देश्य है।

शार्ङ्गदेव के पश्चात् ग्राम, मूर्च्छना और जाति की प्रणाली मिटकर उत्तर भारत में राग-रागिणी प्रणाली तथा दाक्षिणात्य संगीत में जन्य-जनक (मेल एवं तज्जन्य राग) प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ। उत्तर भारतीय संगीत के कई प्राचीन ग्रन्थों में भी यह जन्य-जनक प्रणाली ही स्वीकृत की गयी है। एक सप्तक में ही सा से सां तक शुद्ध-विकृत स्वरों का समावेश होने पर मध्यकालीन संगीत पंडितों ने जन्य-जनक प्रणाली प्रचलित की। इस प्रणाली के अनुसार षड्ज तथा पंचम, जो अचल स्वर थे और अब भी हैं, एवं शेष पाँच स्वरों की शुद्ध-विकृत अवस्थाओं में से कोई एक प्रत्येकशः लेकर सप्तस्वर युक्त मेल बनाए गये। एक-एक मेल में लगते हुए स्वर, शुद्ध-विकृत जो कुछ हों; उन्हीं में से पूरे सात, छः अथवा पाँच स्वर जिन रागों में लगते हों, उन सबको एकत्रित करके उस मेल में समाविष्ट करके उनका वर्गीकरण किया गया। अहोबल के संगीत पारिजात में इस प्रकार सहस्रों मेलों की सूची दी गई है, जिनको वे मूर्च्छना कहते हैं; जबकि रागाध्याय में रागों का वर्गीकरण मेलों में न करते हुए प्रत्येक राग के शुद्ध विकृत स्वर बताये गये हैं। अन्य अनेक मध्यकालीन ग्रन्थकार रामामात्य, सोमनाथ, व्यंकटमखी, तुलजेन्द्र आदि दाक्षिणात्य तथा लोचन, हृदयनारायण देव, पुण्डरीक विट्ठल आदि उत्तरभारतीय मेल-राग प्रणाली ही मानते हैं।

राग रागिनी प्रणाली दामोदर के संगीत दर्पण, (नारद के) संगीत मकरंद, पुंडरीक विट्ठल की रागमाला, लोचन की रागतरंगिणी इत्यादि ग्रन्थों में बतायी गई है। परन्तु यह किन तत्वों पर आधारित है, इस बात पर किसी ग्रन्थ में संतोषजनक स्पष्टीकरण न होने के कारण उसको स्वीकार करना शास्त्रीय संदर्भ में मान्य न होगा। हाँ, रागांग-वर्गीकरण की सूचना उसमें अवश्य मिलती है, परन्तु रागों के मध्यकालीन स्वरूपों में भी परिवर्तन होकर आज वे कुछ के कुछ हो गये हैं। उनका राग-रागिनी वर्गीकरण, जो ग्रन्थों में बताया है आज मान्य नहीं हो सकता। अब उनका नया ही वर्गीकरण करना होगा। कान्हड़े, मल्लार, सारंग, नट के प्रकार, कल्याण-प्रकार, केदार, बिहाग प्रकार, बिलावल प्रकार, भैरव प्रकार, तोड़िया इत्यादि रागांग वर्गीकरण राग-रागिनी वर्गीकरण के सदृश्य ही हैं। इस रागांग वर्गीकरण की सूचना आज की प्रणाली में "आश्रय राग" के द्वारा मिलती है। अण्णासाहब ने मेल-राग प्रणाली ही स्वीकृत की है और रागों का वर्गीकरण दस मेलों में किया है। दस लोकप्रसिद्ध एवं लोकप्रिय चौड़े रागों के स्वरों के मेल उन्हीं रागों के नाम देकर उन्होंने समझाए हैं। इन मेलों के नाम तथा स्वरूप इस प्रकार हैं :—

१—बिलावल— सा री ग म प ध नि सां
२—कल्याण— सा री ग मं (तीव्र) प ध नि सां
३—खमाज — सा री ग म प ध नि (कोमल) सां
४—भैरव — सा री (कोमल) ग म प ध (कोमल) नि सां
५—पूर्वी — सा री (कोमल) ग मं (तीव्र) प ध (कोमल) नि सां
६—मारवा — सा री (कोमल) ग मं (तीव्र) प ध नि सां
७—काफी — सा री ग (कोमल) म प ध नि (कोमल) सां
८—आसावरी-सा री ग (कोमल) म प ध (कोमल) नि (कोमल) सां
९—भैरवी — सा री (कोमल) ग (कोमल) म प ध (कोमल) नि (कोमल) सां
१०—तोड़ी — सा री (कोमल) ग (कोमल) मं (तीव्र) प ध (कोमल) नि सां

जिन रागों के नाम इन मेलों (थाटों को) को दिये गये हैं वे सब राग सुपरिचित हैं एवं गायकी की दृष्टि से विस्तृत हैं, जिसके कारण उन्हें आश्रयराग भी कहा गया है। इन रागों के अंग-प्रत्यंगों से अनेक तालमेलजन्य राग बने हुए हैं। मेल द्वारा राग में लगते हुए स्वर तथा आश्रय-राग द्वारा रागांग निश्चित करके रागों के वर्णन किए गये हैं। वास्तव में रागों के आज के प्रचलित स्वरूपों की जानकारी प्राप्त करने में जितनी सहायता अण्णासाहब को परंपरागत रागदारी चीजों से तथा गायक-वादकों के गायन-वादन से मिली, उसकी दशांश सहायता भी मध्यकालीन अथवा प्राचीन ग्रन्थों से नहीं मिली। ग्रन्थों में वर्णन किये हुए भैरव, भैरवी, केदारा, हमीर, बसंत जैसे लोक-प्रसिद्ध प्रचलित रागों के भी स्वर उनके स्वरों से भिन्न हैं। अण्णासाहब ने अपनी हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में प्रत्येक राग का वर्णन करते हुए उसकी पूर्वपीठिका, प्राचीन मध्यकालीन ग्रन्थों में उसका संदर्भ, उसका पूरा इतिहास तथा उसका आज का प्रचलित स्वरूप स्वरलिपि सहित स्पष्ट समझाया है। परंपरागत रूढ़ि को मिटाकर ग्रन्थगत रागस्वरूपों को पुनः प्रचलित करना संगीत जैसी क्रिया सिद्ध कला के संबंध में कहाँ तक लाभकारक है; यह प्रत्यक्ष प्रयोगों द्वारा ही सिद्ध हो सकता है।

भरत मुनि के समय के संगीत का उत्खनन पुराणवस्तु संशोधन की दृष्टि से चाहे उपयोगी हो, पर संगीत के प्रचलित तथा भावी स्वरूप के लिये कहाँ तक उपयोगी होगा, कहा नहीं जा सकता। आज के गायक-वादक अपनी परंपरागत गायन शैली को, अपने परम्परागत राग स्वरूपों को तिलांजलि देकर भरत-शार्ङ्ग-देवादिकों के प्राचीन गाने-बजाने की बात को स्वीकार करेंगे, यह विश्वास अण्णासाहब को न था और इसीसे उन्होंने लक्ष्यसंगीत (आज के प्रचलित संगीत) का ही स्पष्टीकरण करना अपना कर्तव्य समझा। यह उनका कार्य कहाँ तक सफल हुआ, सर्व साधारण जनता को उससे कौन-सा, कितना लाभ हुआ; यह बात सर्व विदित है। इतनी बात निश्चित है कि बिखरी हुई संगीत संपत्ति को एकत्रित करके ग्रन्थित करने के कार्य के लिये

किसी न किसी का जीवन काम आने वाला था। परमात्मा ने अरणासाहब को इसके लिये चुना।

इसी समय जब कि बड़ौदा में संगीत परिषद् हो रही थी, अरणासाहब ने "गीत-मालिका" नाम से अपनी संग्रह की हुई रागदारी चीजों को स्वरलिपि सहित छपवाकर प्रकाशित करना आरंभ किया। हर महीने में एक भाग प्रकाशित होता था। हर भाग में पच्चीस चीजें रहती थीं। मूल्य केवल चार-चार आने रखा। केवल मुद्रण का खर्च निकल आये, उतना ही मूल्य उन्होंने रखा। इस मालिका के तेईस भाग प्रकाशित हुए थे। सब भागों में मिलकर लगभग साढ़े पाँच सौ चीजें स्वरलिपि सहित प्रकाशित हुईं। इस प्रकाशन में दो वर्ष लगे।

इसी बीच में गायन उत्तेजक मंडली के उद्देश्य एवं कार्य में परिवर्तन होने लगा। अरणासाहब का गायन उत्तेजक मंडली के नये संचालकों के साथ मतभेद हुआ। अतएव वे तथा उनके कुछ पारसी मित्र तथा अनुयायी गायन उत्तेजक मंडली से अलग हो गये और अन्य एक पारसी लोगों की ही संस्था "गुड लाइफ़ लीग" के कार्यालय में, जो बम्बई में फ़्लौरा फाउन्टन पर था, संगीत शिक्षा की कक्षाएँ उन्होंने खोलीं। इसमें अरणासाहब स्वयं तथा वाड़ीलाल जी सिखाया करते थे। अन्तूबुआ जोशी के एक शिष्य सीताराम मोदी नाम के थे, जो बाद में अरणासाहब से तथा वाड़ीलाल जी से सीखने लगे थे। इनको भी कुछ वेतन देकर अरणासाहब ने छात्रों को सिखाये गये पाठों को दुहराने के काम पर रखवाया। इस नयी संस्था का नाम "श्री शारदा संगीत मण्डल" था। यह संस्था मकान की चौथी मंजिल पर, तीन जीने ऊपर थी। अरणासाहब की अवस्था उस समय ५६-५७ वर्ष की थी। ब्लड् प्रेशर का रोग उनको था। मकान पर कोई लिफ़्ट थी नहीं। सीढ़ियाँ चढ़ के ही जाना पड़ता था। इन असुविधाओं को सहन करते हुए भी केवल संगीत सेवा व्रत की दृष्टि से एक पाई का भी लोभ न रखते हुए बल्कि अपनी गाँठ से खर्च करके वे यह कार्य करते रहे। वकालत का व्यवसाय सन् १९१० में ही छोड़कर अब अपना सम्पूर्ण समय संगीत की ही सेवा में लगाते रहे। शारदा संगीत मण्डल बहुत लोकप्रिय हुआ और बहुत विद्यार्थी उसमें भर्ती हुए। अरणासाहब का नाम ग्वालियर में भी स्व० महाराज माधवराव सिंधिया के कानों तक पहुँचा। बड़ौदे की संगीत परिषद् की ख्याति समस्त भारत भर में फैल चुकी थी। इस परिषद् के सूत्रधार अरणासाहब ही थे। बड़ौदा राज्य में तो संगीत क्षेत्र में अरणासाहब के ही मार्ग दर्शन से सब काम चल रहा था। स्वयम् श्रीमान् महाराज का अरणासाहब पर पूर्ण विश्वास था और वे अरणासाहब को बहुत मानते थे। कोई आश्चर्य नहीं कि ग्वालियर महाराज पर भी अरणासाहब तथा उनके कार्य का प्रभाव पड़ा हो। सन् १९१६-१७ में किसी कार्यवश ग्वालियर महाराज बम्बई पधारे थे। एक रोज उन्होंने अरणासाहब को अपने बम्बई के निवास स्थान पर आमंत्रित किया। संगीत पर खूब बातचीत हुई। अरणासाहब ने शारदा संगीत मंडल में श्रीमान् महाराज को निमन्त्रित किया। महाराज ने निमन्त्रण तो स्वीकार किया, पर वे सादा लिबास में मण्डल में पधारे। किसी को यह पता न था कि यहाँ ग्वालियर नरेश महाराज माधवराव सिंधिया हैं। महाराज अरणासाहब की

सिखाने की प्रणाली तथा अनुक्रम देखकर बहुत प्रसन्न हुए। मंडल के छात्रों से भी अलग-अलग एक-एक को गवाकर सुनाया गया। महाराज के लिये तो यह एक नया एवं आकर्षक अनुभव था। आश्चर्य और आनन्द-विभोर होकर महाराज अण्णासाहब से बोले "भातखण्डे जी, इसी प्रकार आप ही की देखभाल में मेरे ग्वालियर में एक संगीत विद्यालय चलाया जाय तो कितना अच्छा हो। मुझे आशा ही नहीं, पूरा विश्वास भी है कि ग्वालियर में आपको अच्छे छात्र संगीत शिक्षा के लिए मिलेंगे। क्या आप अपना सहयोग देने की कृपा कीजिएगा?" संगीत क्षेत्र में किसी सत्कार्य के लिए अण्णासाहब को कब इन्कार था। महाराजा ने ग्वालियर लौटते ही एक सरकारी पत्र अण्णासाहब के नाम लिखवाया और उनको ग्वालियर आकर संगीत विद्यालय के सम्बन्ध में विचार-विनिमय करने के लिए आमन्त्रित किया। इधर अण्णासाहब ने स्थूल रूप में संगीत विद्यालय की एक योजना लिखकर रख ली थी। अब ग्वालियर की स्थानीय परिस्थिति एवं सरकार की ओर से मिलने वाली सहायता तथा अन्यान्य सहयोग की सीमा समझकर एक विस्तृत योजना पूर्ण करने हेतु ग्वालियर गए। महाराजा साहब के साथ पूरा विचार-विनिमय हुआ। अण्णासाहब के ही निर्धारित अभ्यास-क्रम एवं शिक्षा-प्रणाली के अनुसार, उनके मार्ग दर्शन में ग्वालियर का प्रख्यात माधव संगीत महाविद्यालय सन् १९१८ में श्रीमान् महाराज माधवराव सिंधिया के कर कमलों द्वारा खुल गया, जो अब भी उसी प्रकार कार्य कर रहा है। महाराज की बहुत इच्छा थी कि अण्णासाहब ग्वालियर में ही रहकर संगीत विद्यालय के प्रधान संचालक का पद ग्रहणकर कार्य करें। पर अण्णासाहब ने अपने जीवन भर कभी किसी की नौकरी नहीं की और न अब करना ही चाहते थे। संगीत द्वारा भी एक पाई का कभी लाभ न उठाया था, न अब चाहते थे। अतः अपनी शिक्षा प्रणाली का संपूर्ण ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त कराने के लिए ग्वालियर के ही छः सात गायकों को चन्द महीनों के लिये बम्बई भेज देने के लिए उन्होंने ग्वालियर सरकार को परामर्श लिखकर भेजा। इस परामर्श के अनुसार सर्व श्री राजाभैया, कृष्णराव दाते, भास्करराव खांडेपारकर, विष्णुबुआ देशपांडे, श्री गोखले, श्री बलवन्त राव सांवले (भजनी) तथा श्री चुन्नीलाल कत्थक इत्यादि सज्जन, जो स्वयम् ग्वालियर गायकी के कुशल गायक थे; बम्बई आकर ग्वालियर सरकार के जयविलास महल में छः-सात महीने ठहरे और प्रतिदिन अण्णासाहब के यहाँ जाकर हिन्दुस्तानी संगीत प्रणाली के मूल सिद्धान्त, राग, उनके नियम, संगीत रचना के सिद्धांत, अण्णासाहब की स्वयं संग्रहीत चीजें, उनके द्वारा रचित लक्षणगीत इत्यादि विषय उनसे सीखने लगे। इसी समय ग्वालियर की संगीत पाठशाला का पंचवर्षीय शिक्षाक्रम भी बनाया गया। हरएक वर्ष के क्रमशः पाठ्यक्रम के राग तथा चीजें इन सज्जनों के साथ निश्चित करके अण्णासाहब ने अब पाठ्यक्रम के अनुसार शालोपयोगी क्रमिक पुस्तक लिखना आरम्भ किया। ग्वालियर से आये हुए गायकों के पास भी स्थानीय गाए जानेवाले पाठों के अनुसार ख्याल, ध्रुवपदों का संग्रह था ही। ग्वालियर की संगीत पाठशाला में इन्हीं का उपयोग करना अण्णासाहब ने उचित समझा। अतएव राजाभैया, दाते, गोखले तथा खांडेपारकर को ग्वालियर के ख्याल, ध्रुवपद स्वरलिपि सहित लिखकर तैयार रखने के लिये अण्णासाहब ने सूचना दी।

स्वरलिपि तो अरगणासाहब ने इन सज्जनों को समझा ही दी थी। इस प्रकार पाठ्य-पुस्तकें भी तैयार होने लगीं। इन सज्जनों के द्वारा लिखकर लाई गई चीजें अरगणासाहब के यहाँ बैठ कर गाई जातीं, जो सबको आती थीं। बहुत सी तो अरगणासाहब के अपने संग्रह में इनमें से लिखी थीं। इनमें पाठभेद हो तो उन पर विचार करके सबकी सम्मति से एक पाठ निश्चित करके उसको पाठ्यपुस्तकों के लिए पक्का करके लिखा जाता था। इस समय तक गीतमालिका की लगभग २२ पुस्तकें छपकर प्रकाशित हो चुकी थीं। अब क्रमिक पुस्तक-मालिका छपना आरम्भ हुआ। गीतमालिका स्थगित हो गई। यही क्रमिक पुस्तकें अब भी भारत भर की संगीत पाठशालाओं तथा विश्वविद्यालयों में जहाँ हिन्दुस्तानी संगीत सिखाया जाता है; पढ़ाई जाती हैं।

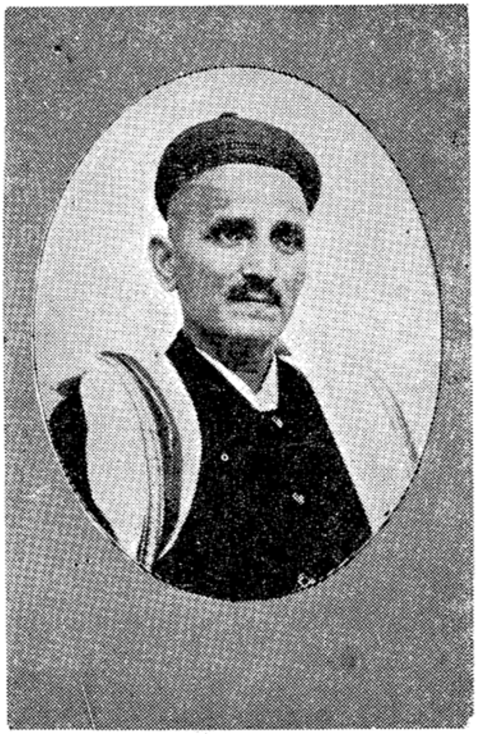
पूर्व भारत की संगीत शोध यात्रा में अरगणासाहब दक्षिण हैदराबाद भी गए थे, यह बताया ही गया है। हैदराबाद में काशीनाथ शास्त्री अर्थात् अप्पा तुलसी नामक एक संस्कृत के विद्वान् से—जिन्होंने संगीत में भी पर्याप्त प्रगति की थी, स्नेह हो गया। अरगणा-साहब के संगीत शोध कार्य से वे भली-भाँति परिचित हुए थे। अरगणासाहब के "श्रीमल्ल-क्ष्यसंगीत" तथा "हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति" प्रथम भाग पढ़कर वे बहुत प्रसन्न हुए। अरगणा-साहब की लिखी हुई संगीत प्रणाली के ही अनुसार, इन शास्त्रीजी ने भी छोटे-छोटे श्लोकों द्वारा राग नियम समझाने वाली छोटी-छोटी पुस्तकें लिखकर अरगणासाहब के पास प्रकाशित करने के लिये भेजीं। इन पुस्तकों के नाम संगीत सुधाकर, संगीत रागकल्प-द्रुमांकुर, संगीत-रागचंद्रिका थे। ये तीनों पुस्तकें संस्कृत में थीं तथा राग-चंद्रिकासार नामक एक और पुस्तक हिन्दी में लिखी हुई थी। इन चारों पुस्तकों को छपवाकर अरगणासाहब ने प्रकाशित किया। अपनी क्रमिक पुस्तकों में भी इन पुस्तकों के श्लोक राग नियमों को समझाते हुए अरगणासाहब ने उद्धृत किए हैं। इसी समय अरगणासाहब ने और छोटी दो पुस्तिकाएँ—अभिनव राग मंजरी तथा अभिनव ताल मंजरी प्रकाशित कीं तथा अभिनव राग मंजरी को संस्कृत भाषा में प्रत्येक राग एवम् प्रत्येक ताल पर श्लोक रचकर प्रकाशित किया है।

अरगणासाहब के संगीत क्षेत्र में अधिकार एवम् उनके किये गये कार्य से परिचित-प्रभावित एक और उस्ताद रामपुर दरबार में थे काले नज़ीर खाँ। बंबई के नज़ीर खाँ तथा उनके भाई-बेटों द्वारा तथा उनकी सिखाई हुई गायिकाओं द्वारा अरगणासाहब के राग-ताल लक्षणगीत इन काले नज़ीर खाँ के सुनने में आए। लखनऊ में अकबरपुर के तालुकेदार ठाकुर नवाब अली साहब के यहाँ काले नज़ीर खाँ का आना-जाना होता था। इन ठाकुर साहब को संगीत से भी बहुत लगन थी। वे हार्मोनियम बहुत कुशलता पूर्वक बजाया करते थे। इन्होंने भी अरगणासाहब का नाम सुना साथ ही अरगणासाहब से पत्र व्यवहार भी किया। अरगणासाहब ने पत्रों द्वारा उनको अपने संगीत संबंधी विचार एवम् प्रचलित संगीत शिक्षा पर अपनी रची हुई प्रणाली समझायी। साथ-साथ अपनी प्रका-शित पुस्तकें भी भेजीं। ठाकुर साहब को इस पत्र-व्यवहार से इतना हर्ष हुआ कि वे तुरंत अपने को अरगणासाहब के शिष्य कहने लगे। अरगणासाहब की ही सम्मति पाकर उन्होंने इसी प्रणाली की उर्दू में एक पुस्तक, मय लक्षणगीतों के प्रकाशित की। इस पुस्तक का

नाम "मारिफुन्नगमात" है। यह पुस्तक विशेष रूप से गायक-वादकों में बहुत पसंद की गई। लगभग सभी गायक-वादक इस पुस्तक को अपने संग्रह में रखते थे और अब भी रखते हैं। ठाकुर नवाब अली साहब सन् १९१२ में बंबई आये थे। मेरी संगीत शिक्षा उस समय अण्णासाहब के पास हो रही थी। मैंने ठाकुर साहब को अण्णासाहब के घर पर देखा था। इसके पश्चात् दूसरी बार गायन उत्तेजक मंडली में भी देखा, जहाँ उनके हार्मोनियम-वादन का कार्यक्रम था। ठाकुर साहब को अपनी युवावस्था से ही संगीत से प्रेम था। बड़े-बड़े कलाकारों की बैठकों में उनका जाना-आना होता था। प्रख्यात हार्मोनियम वादक स्व० गणपतराव भैया की बैठकों में भी जाकर उनका हार्मोनियम वादन ठाकुर साहब ने पर्याप्त सुना था। और उन्हीं के ढंग से हार्मोनियम बजाना आरम्भ किया तथा उसमें पर्याप्त प्रगति भी की। ठाकुर साहब जिस ढंग से, जिस सफाई के साथ हार्मोनियम बजाते थे, उस प्रकार का हार्मोनियम-वादन बंबई में किसी ने इससे पूर्व कभी नहीं सुना था। सब लोग ठाकुर साहब का हार्मोनियम-वादन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। बड़ौदा की अखिल भारतीय संगीत परिषद् के सभापति ये ही ठाकुर नवाब अली साहब थे। इन्हीं ठाकुर साहब की सिफारिश पर काले नज़ीर खाँ अण्णासाहब द्वारा रचित लक्षणगीत तथा उनकी समझायी हुई लक्ष्यसंगीत की प्रणाली अण्णासाहब से ही सीखने बंबई आये और दो-चार महीने रहे थे। पश्चात् रामपुर लौटकर उन्होंने अपनी शिष्याओं को भी ये लक्षणगीत सिखाये। समस्त उत्तर हिन्दुस्तान में अण्णासाहब का नाम प्रख्यात हो गया। रामपुर दरबार में भी अण्णासाहब का नाम ठाकुर नवाब अली साहब तथा काले नज़ीर खाँ द्वारा पहुँचा। ठाकुर साहब का विशेष स्नेह संबंध रामपुर दरबार के साहब ज़ादा प्रिंस सादत अली उर्फ छम्मन साहब से था। छम्मन साहब स्वयम् सुरसिंगार बजाते थे। इनके पिता प्रिंस हैदरअली साहब भी सुरसिंगार बहुत अच्छा बजाते थे और उन्होंने ही छम्मन साहब को सिखाया था। प्रिंस हैदरअली साहब स्वयं प्रख्यात सेनिये बहादुर हुसेन खाँ साहब से सुरसिंगार सीखे हुए थे। छम्मन साहब तानसेन परंपरा के मुहम्मद अली खाँ गिधौरवालों को बहुत मानते थे। ठाकुर नवाब अली साहब ने भी इन मुहम्मद अली खाँ से कुछ होरी ध्रुवपद प्राप्त किये थे जो उनकी मआरिफ-उल-नगमात के दूसरे तथा तीसरे भाग में प्रकाशित हैं। मुहम्मद अली खाँ का एक छायाचित्र भी ठाकुर साहब ने दूसरे भाग में मुखपृष्ठ पर दिया है। ये मुहम्मद अली खाँ तानसेन के पुत्र की वंशपरंपरा के थे। तानसेन की पुत्री के वंशज स्व० वज़ीर खाँ साहब बीनकार इसी समय रामपुर में तत्कालीन रामपुर नरेश हिज हाइनेस नवाब हामिद अली साहब के उस्ताद थे। स्वयं नवाब साहब तानसेन परम्परा के बड़े अभिमानी थे। अपने उस्ताद के अतिरिक्त और किसी का अधिकार संगीत में नहीं मानते थे। जब काले नज़ीर खाँ, ठाकुर नवाबअली साहब तथा स्वयं छम्मन साहब के मुख से अण्णासाहब की प्रशंसा सुनी तो नवाब साहब को भी कुतूहल उत्पन्न हुआ और उन्होंने रामपुर पधारने के लिये अण्णासाहब को एक निमंत्रण पत्र लिखवाया। अब इस समय से अण्णासाहब का स्नेह संबंध रामपुर दरबार के साथ जुड़ गया। इसमें एक विशेषता थी कि रामपुर नरेश स्वयं तथा उनके दरबारी लोग संगीत के केवल जानने वाले ही नहीं वरन् ऊँचे कलाकार भी थे, जिसके कारण अण्णासाहब के

संगीत में अधिकार तथा उनके संगीतोद्धार अभियान का मूल्य वे लोग भली-भाँति समझ सकते थे। नवाब साहब रामपुर तथा उनके उस्ताद वज़ीर खाँ साहब के साथ प्रथम दो-चार बैठकों में बहुत चर्चा एवं वादविवाद हुआ। पर अण्णासाहब ने रामपुर की ही गायन-वादन शैली, राग स्वरूप तथा ध्रुवपद-होरियों के उदाहरणों द्वारा अपने संगीत-सिद्धान्त उनके सम्मुख सिद्ध किये। तब स्वयं नवाब साहब ने लक्ष्यसंगीत प्रणाली को जी जान से मान लिया। तानसेन परंपरा के होरी ध्रुवपद वज़ीर खाँ साहब के पास थे। उनको प्राप्त करने की इच्छा अण्णासाहब की थी। उनको सूचना मिली कि यदि अण्णासाहब नवाब साहब के शिष्य हो जावें तो वे सब होरी ध्रुवपद उनको प्राप्त होंगे। अण्णासाहब नवाब साहब के शिष्य हो गये और नवाब साहब ने एक-दो ध्रुवपद अण्णासाहब को सिखाये और पश्चात् वज़ीर खाँ साहब को आदेश दिया कि पंडित भातखंडे जी अब हमारे घराने के शिष्य हो गये हैं, इनको सब ध्रुवपद, होरियाँ आप ही स्वयं सिखायेंगे। तब से अण्णा-साहब वज़ीर खाँ साहब से ध्रुवपद होरी सीखने लगे। इस प्रकार रामपुर में भी वर्ष भर में दो-तीन बार अण्णासाहब का आना जाना होने लगा। ये सब घटनाएँ सन् १९१७-१८ के पूर्व की हैं। सन् १९१६ में बड़ौदा की प्रथम अखिल भारतीय संगीत परि-षद् के पश्चात् दूसरी परिषद् दिल्ली में सन् १९१८ के दिसम्बर में हुई। इस परिषद् के अध्यक्ष हिज हाइनेस नवाब साहब रामपुर थे। नवाब रामपुर, छम्मन साहब, ठाकुर नवाब अली साहब एवं अण्णासाहब—सब की इच्छा से हिन्दुस्तानी संगीत की एक केन्द्रीय शिक्षण संस्था दिल्ली ही में स्थापित करने का प्रस्ताव इस परिषद् में पहिली बार रखा गया। स्वयं नवाब साहब का विचार इस संस्था के लिये पर्याप्त द्रव्य सहा-यता देने का था। पर इसके पश्चात् कुछ अनिवार्य अड़चनों के कारण ये विचार सफल न हो पाये। इसी बीच में छम्मन साहब का भी स्वर्गवास हो गया। वे अण्णासाहब को बहुत मानते थे, उनकी हर सूचना पर सहमति व सहयोग देते थे। तथापि अण्णासाहब का रामपुर दरबार से स्नेह संबंध बना रहा। वे समय-समय पर रामपुर जाते रहे। दिल्ली की परिषद् में भी भारत भर के बड़े-बड़े गुणी गायक-वादक उपस्थित थे और उनके गायन-वादन के कार्यक्रम हुए। पर सबसे महत्वपूर्ण घटना इस परिषद् में यह थी कि सब घरानेदार गायकवादकों के साथ बैठकर अण्णासाहब ने कई विवादग्रस्त रागरूप, जैसे सारंग प्रकार, तोड़ी प्रकार त्यादि पर सप्रमाण, सोदाहरण चर्चा की और सारंग व तोड़ी प्रकारों के रागरूप सर्व सम्मति से निश्चित हुए। इस चर्चा का उल्लेख अण्णासाहब ने अपनी हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के चौथे भाग में सारंग तथा तोड़ी समझाते समय किया है। इस परिषद् में दिल्ली के एक काश्मीरी पंडित श्री बृजनारायण कौल ने बहुत कार्य किया। इस परिषद् के वे स्थानीय सचिव थे।

अण्णासाहब के इन सब कार्यों में उनके साथ भालचन्द्र सुकथनकार, शंकरराव करनाड सहायक के रूप में सदा रहते थे। परिषदों में उपस्थित रहकर उसकी चर्चाओं में शंकरराव करनाड अवश्य भाग लेते थे। संगीत के एकाध विषय पर निबंध भी पढ़ते थे। सब संगीत परिषदों में वाड़ीलाल जी तथा मैं अपने पिताजी के साथ उपस्थित हुए थे। इन सबके अतिरिक्त अण्णासाहब के एक अन्य प्रिय जन पूने में श्री दत्तात्रेय केशव उर्फ



पण्डित भातखण्डे
[१९१७]



पण्डित भातखण्डे
[१९२४]



पण्डित भातखण्डे [१९२७]



पण्डित भातखण्डे [१९३३]

दादासाहब जोशी थे। अरण्णासाहब की पुस्तकों के प्रकाशन में, जो आर्य भूषण प्रेस में छप रही थीं, उनकी प्रूफ रीडिंग, छपाई आदिकी देख-भाल इन्हीं दादासाहब द्वारा की जाती थी। उन्होंने इस प्रकार अरण्णासाहब के कार्य में पर्याप्त सहयोग दिया। दादासाहब भी अरण्णासाहब के साथ बड़ौदा, रामपुर, ग्वालियर कभी-कभी जाया करते थे। दादासाहब ने कुछ ख्याल गणपतराव मिलवड़ीकर नामक एक गायक से प्राप्त किये थे। अरण्णासाहब का इन गायक महोदय से परिचय दादासाहब के ही द्वारा हुआ। श्री मिलवड़ीकर से अरण्णासाहब ने भी कुछ चीजें ग्वालियर घराने की प्राप्त की थीं। ये सब चीजें बाद में ग्वालियर के गायकों के पास ग्वालियर परंपरा के अनुसार गायी हुई अरण्णासाहब को प्राप्त हुईं। और उन्हें ग्वालियर के पाठों के अनुसार क्रमिक पुस्तक मालिका में छपवाकर उन्होंने प्रकाशित किया। ग्वालियर के गायक बम्बई में अरण्णासाहब के पास आये थे, उससे पहले ग्वालियर के एकनाथ उर्फ माऊ पंडित ने बम्बई आकर अण्णासाहब को अपने घराने की लगभग तीन-चार सौ चीजें दी थीं। माऊ पंडित ग्वालियर के प्रख्यात गायक शंकरराव पंडित के छो भाई थे। कुछ आर्थिक अड़चनों के कारण सन् १९१५-१६ में बंबई आकर संगीत प्रेमी सज्जनों को संगीत शिक्षा देते रहे, जिससे पर्याप्त द्रव्य-प्राप्ति होती रही। अरण्णासाहब चीज की तलाश में सदैव रहते ही थे। एकनाथ जी की वार्ता सुनकर उनसे कुछ चीजें प्राप्त करने के हेतु अरण्णासाहब ने उनको अपने यहाँ बुलवाया और उनका पारिश्रमिक निश्चित करके चीजें लिखना आरंभ किया। इस प्रकार तीन-चार सौ चीजें ग्वालियर के घराने की अरण्णासाहब के पास इकट्ठी हो गईं। जैसे कि ऊपर बताया गया है, ये चीजें ग्वालियर के गायक राजा भैया, कृष्णराव दाते आदि के पास भी मिलीं। कहीं एकाध स्थान पर पाठभेद होता था तो माऊ पंडित जी के पाठों को देखकर दोनों पाठों पर विचार करके शुद्ध पाठ निश्चित कर रखा जाता था। पर ऐसा कभी-कभी ही होता था, क्योंकि ग्वालियर के ख्यालों की रचनाएँ निसार हुसैन खाँ साहब ने शंकरराव पंडित को जिस प्रकार सिखायी थीं, उसी प्रकार उनके घराने में उनके भाई, माऊ पंडित तथा उनके पुत्र श्री कृष्णराव तथा शिष्य राजाभैया, कृष्णराव दाते, खाँडेपारकर इत्यादि सब गाते थे। अत-एव कोई विशेष अन्तर माऊ पंडित के लिखवाए हुए ख्यालों तथा राजाभैया आदि सज्जनों के गाए हुए ख्यालों में नहीं था। वरन् इन लोगों के ख्यालों को माऊ पंडित के लिखाए हुए ख्यालों का आधार मिला।

एकनाथ पंडित से परिचय होने के पहले अरण्णासाहब ने ख्यालों का एक बड़ा संग्रह मिरज के गोखले घराने के कृष्णराव गोखले से भी प्राप्त किया था।

सन् १९१९ दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में तीसरी अखिल भारतीय संगीत परिषद् बनारस में हुई। जिसके सचिव स्वर्गीय शिवेन्द्रनाथ बसू उर्फ सन्नू बाबू थे। जो ये बनारस के ही निवासी एक रईस थे और संगीत से प्रगाढ़ प्रेम रखते थे। अखिल भारतीय परिषद् मंडल के स्थायी सचिव तो अरण्णासाहब स्वयम् ही थे। उन्हीं के बताए हुए मार्ग पर इन अखिल भारतीय संगीत परिषदों के अधिवेशनों का संचालन चलता रहा। अधिकारी घरानेदार गायकों तथा वादकों के साथ बैठकर रागों के संबंध में चर्चा द्वारा मतभेद मिटाकर उनके अधिकृत स्वरूप निश्चित करके प्रकाशित करना इन परिषदों का ध्येय रहा है। बनारस के अधिवेशन में भी उन्होंने गायक-वादकों की सभा बुलायी थी।

रागों पर चर्चा हुई। राग-स्वरूप निश्चित हुए, जिनके अनुसार हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के चौथे भाग में उन रागों को समझाया है।

ठाकुर नवाब अली साहब का प्रगाढ़ स्नेह सम्बन्ध दरियाबाद जिला बाराबंकी, उत्तर प्रदेश के तालुकेदार घराने के साथ रहा। इसका कारण संगीत ही था। क्योंकि इन तालुकेदारों को भी संगीत से उतना ही उत्कट प्रेम था जितना कि ठाकुर नवाब अली साहब को। विशेषतया इस घराने के एक प्रमुख व्यक्ति, राय उमानाथ बली साहब से तो लगातार मेल-मुलाकात संगीत की बैठकों में होती रहती। अण्णासाहब तथा ठाकुर नवाब अली का अच्छा स्नेह रहा है और इन दोनों के बीच संगीत पर पत्र व्यवहार भी होता रहा है, इस बात से राय उमानाथ बली भलीभाँति परिचित थे। अण्णासाहब से मिलने की अत्यन्त उत्कण्ठा राय साहब में जागृत हुई। और इसी हेतु वे अ० भा० संगीत परिषद् के दूसरे दिल्ली अधिवेशन में उपस्थित रहे। दरियाबाद का तालुकेदार घराना बड़ा ही सुसंस्कृत एवं विशेष कला-प्रेमी था। स्वयम् स्वर्गीय राय राजेश्वर बली को संगीत, नाट्य तथा चित्रकला से अत्यन्त प्रेम था। एकाध गायक तथा चित्रकार उनके आश्रित भी थे। चित्रकला पर उपलब्ध अंग्रेजी तथा हिन्दी साहित्य का अच्छा अध्ययन उन्होंने किया था। रामलीला, रासलीला तथा अन्यान्य पौराणिक, धार्मिक नाट्य प्रयोग हर मौके पर उनके यहाँ होते रहते थे। कुछ नाटक तो स्वयम् राजा साहब लिखते और उनके प्रदर्शन करवाते। राजासाहब के अतिरिक्त इस घराने के अन्यान्य सज्जनों को भी संगीत तथा साहित्य, चित्रकलादि का शौक था। राय उमानाथ बली विशेषतया संगीत प्रेमी थे। पढ़ें-लिखे एवं सुसंस्कृत होने के कारण संगीत की नियमबद्ध, समुचित शिक्षा प्रणाली की खोज में थे। अपने आश्रित गायक के पास बैठ कर कुछ अभ्यास उन्होंने किया था। पर उससे उनका समाधान न हुआ। ठाकुर नवाब अली साहब के यहाँ उनका आना-जाना होता ही था। अण्णासाहब का नाम और उनके कार्यों के सम्बन्ध में सुनकर उन्होंने अण्णा साहब से परिचय प्राप्त करने का निश्चय किया। और वे दिल्ली के अधिवेशन में उपस्थित रहे। तभी से अण्णासाहब के साथ उनका पत्र व्यवहार आरम्भ हुआ। अ० भा० संगीत परिषद् के दिल्ली अधिवेशन में एक मध्यवर्ती बड़ी संस्था दिल्ली में ही स्थापित करने का प्रस्ताव रखा गया; पर वह पारित न हो सका। राय उमानाथ बली ने भी एक संगीत संस्था लखनऊ में खोलने की योजना तैयार करके रखी थी। अण्णासाहब को उन्होंने अपनी योजना दिखायी। यह योजना दिल्ली के अधिवेशतु में प्रस्तुत योजना से कुछ छोटी थी। दिल्ली की प्रस्तुत योजना के सम्बन्ध में अण्णासाहब को उस समय उसके सफल होने के पूर्ण आशा थी; पर विध विधान कुछ और ही था दिल्ली की योजना आखिर कागजो में ही रह गइ। बनारस के तीसरे अधिवेशन में भी पुनः दिल्ली वाला प्रस्ताव श्रीमती अतिया बेगम सासिबा, फैजी रहमीन द्वारा रखा गया। पर वहाँ भी यह पनप न पाया। इस बीच में राय उमानाथ बली साहब के प्रयत्न लखनऊ में संगीत शिक्षा संस्था खोलने के सम्बन्ध चल रहे थे। अण्णासाहब के साथ भी इसके सम्बन्ध में आग्रह, का पत्र-व्यवहार चलता रहा। जब बनारस में भी दिल्ली वाला प्रस्ताव सफल ना हुआ, तो राय उमानाथ साहब लखदऊ ही में संगीत परिषद बुलाने के प्रयत्न में लगे।

अण्णासाहब के साथ इसके सम्बन्ध में पत्र व्यवहार शुरू किया। दैववश संयोग से इस समय लखनऊ का शासकीय विभाग भी संगीत परिषद् की योजना के लिये अनुकूल था। उत्तर-प्रदेश के तत्कालीन गर्वनर स्व० सर विलियम मैरिस पौर्वात्य संस्कृत साहित्य तथा कला के साथ सहानुभूति रखने वाले थे। भारतीय तथा यूनानी साहित्य और कला कौशल का तो उन्होंने विशेष अध्ययन किया था। इसी के कारण दरियाबाद के तालुकेदार के साथ उनका विशेष स्नेह-सम्बन्ध था। और सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि इसी समय राजा राय राजेश्वर बली स्वयम् संयुक्त प्रदेश के शिक्षा-मन्त्री थे। इन्होंने लखनऊ में अ० भा० संगीत परिषद् बुलाने की कल्पना सर विलियम मैरिस साहब को समझा कर उनकी सहमति ही नहीं ली, अपितु सहयोग भी प्राप्त किया। राय उमानाथ बली साहब ने संगीत परिषद् के अधिवेशन में तथा लखनऊ में संगीत शिक्षा संस्था स्थापित करने की योजना के सम्बन्ध में रखे जानेवाले प्रस्ताव पर विचार विनिमय करने के लिये अण्णासाहब को दरियाबाद आने के लिये आग्रह-पूर्वक निवेदन किया। अण्णासाहब सन् १९२३ के अन्तिम मास में दरियाबाद गये। राजा साहब दरियाबाद, राय उमानाथ बली तथा अण्णा साहब ने मिलकर एक योजना बनायी। सन् १९२४ के दिसम्बर महीने के अन्तिम सप्ताह में केसरबाग बारादरी लखनऊ में अ० भा० संगीत परिषद् का चौथा अधिवेशन हुआ। अण्णा साहब की योजना के अनुसार इसमें भी समस्त भारत भर के हिन्दुस्तानी गायक-वादक तथा संगीत-पंडितों को आमन्त्रित करके रागों के स्वरूपों पर चर्चा हुई। संगीत शिक्षा संस्था खोलने के लिये पर्याप्त धन इकट्ठा हो नहीं पाया था। अतएव उसका प्रस्ताव इस अधिवेशन में रखा ही नहीं जा सका था। विशेषतया यह प्रस्ताव परिषद् के सम्मुख पुनः रखने के हेतु ही सन् १९२५ के दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में वहीं केसरबाग बारादरी, लखनऊ में अ० भा० संगीत परिषद् का पाँचवाँ अधिवेशन बुलाया गया। लखनऊ के इस अधिवेशन में समस्त संयुक्त-प्रदेश की संगीत प्रेमी जनता उपस्थित थी। लगभग पाँच हज़ार श्रोता आये थे। इस प्रदेश की जनता के लिये तो संगीत परिषद् एक नयी वस्तु थी। संगीत की इतनी बड़ी महफ़िल उन्होंने अपने प्रदेश मेंकभी नहीं देखी थी। परिषद् में रागदारी संगीत के कार्यक्रम भी बड़े मनोरंजक एव् चिरस्मरणीय हुए थे। संयुक्त प्रदेश के लोग यों भी भावप्रधान एवं उदार अन्तःकरण के होते हैं। जो संगीत अभी तक राजप्रासादों में छिपा हुआ था, उसके वैभव का प्रत्यक्ष अनुभव पाकर उस के प्रति उनकी भावनाएँ जागृत हुईं। इस अधिवेशन में प्रस्तुत संगीत विद्यालय सम्बन्धी प्रस्ताव का सभी ओर से बड़े उत्साह के साथ स्वागत हुआ। इस महत्वपूर्ण कार्य को आरम्भ करने भर के लिये धन इकट्ठा हो गया। लखनऊ में हुई इन दोनों संगीत परिषदों में मैं भी उपस्थित था एवं मेरे गाने के कार्यक्रम भी हुए थे, जो पर्याप्त लोकप्रिय हो गये थे।

सन् १९२६ की जुलाई में लखनऊ में केसर बाग के पास ही नील रोड पर, तोपवाली कोठी में हिन्दुस्तानी रागदारी संगीत की कक्षाएँ खुल गईं। अनणासाहब ने मुझे इस संस्था में कार्य करने लिए के आज्ञा दी। मैं इसी वर्ष जून में बंबई विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ था, और आगे एल० एल० बी० करके वकालत

का कार्य करते हुए संगीत की निरपेक्ष सेवा करने की बात सोच रहा था। पर स्वयम् अण्णासाहब की इच्छा थी कि मैं संगीत ही का कार्य करता रहूँ। उनकी आज्ञा हुई कि मैं लखनऊ जाकर वहाँ नयी खुली हुई संगीत संस्था में कार्य करूँ। यह आज्ञा पाते ही मैं अपने पिताजी के साथ लखनऊ चला गया। अण्णासाहब वहाँ पहले ही पहुँच गये थे। उनके साथ श्री दादासाहब जोशी तथा उनके छोटे भाई श्री माधवराव केशव जोशी; जो उस समय बम्बई सरकार के शिक्षाविभाग में डिप्टी इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स के पद से सेवा निवृत्त हुए थे, लखनऊ पहुँचे। विद्यालयों के दैनन्दिन कार्यक्रम तथा उनके संचालन के विषय में एक अनुभवी व्यक्ति के नाते श्री माधवराव जोशी की नियुक्ति संस्था के प्रधानाचार्य के पद पर हुई थी। ग्वालियर के माधव संगीत महाविद्यालय के स्नातक श्री गोविन्द नारायण नातू की भी नियुक्ति गायन विभाग में एक शिक्षक के पद पर हुई। मेरी नियुक्ति उप-प्रधानाचार्य के पद पर हुई। कुछ वादनकारों की भी नियुक्ति की गई। शाहजहाँपुर के सरोद नवाज सखावत हुसैन खाँ तथा लखनऊ के प्रसिद्ध तबला वादक आबीद हुसैन खाँ भी संस्था में लिये गये। लखनऊ के एक दो गायन के उस्ताद छोटे मुन्ने खाँ ख्यालिये तथा अहमद खाँ ध्रुपदिये भी गायन विभाग में नियुक्त किये गये। संस्था की कक्षाओं का कार्य जुलाई १९२६ में आरम्भ हुआ था। पर उसका उद्‌घाटन सितम्बर १६, १९२६ को सर विलियम मैरिस के द्वारा हुआ। अण्णासाहब स्वयं उद्‌घाटन के पश्चात् छः महीने अर्थात् मार्च १९२७ तक लखनऊ में ही रहकर संस्था के काम-काज की देखभाल करते रहे। कभी-कभी कक्षाओं में स्वयं जाकर हम लोगों का मार्ग दर्शन करने के हेतु पाठ भी पढ़ाते थे। अण्णासाहब स्वयं एक कुशल शिक्षक थे। विषय कोई भी क्यों न हो, उसको सरल एवं मनोरंजक बनाकर समझा देने का कौशल उनमें विशिष्ट था। कक्षा चलाते हुए उनको देखते ही बनता था। इधर लखनऊ के उस्ताद छोटे मुन्ने खाँ तथा अहमद खाँ से उनके घरानों की चीजें भी संग्रह करते रहे। ठाकुर नवाब अली साहब को इस बीच में राजा की पदवी सरकार की ओर से प्राप्त हुई थी। राजा नवाब अली साहब भी लगभग रोज आकर अण्णासाहब से मिलते रहे। कक्षाओं में भी जाकर काम-काज की जाँच पड़ताल किया करते। अण्णासाहब का लिखना-पढ़ना यहाँ भी चलता रहा। विलियम पोल के "फिलोसोफी आफ म्यूजिक" जैसे कुछ अँग्रेजी संगीत ग्रन्थों का अध्ययन वे मनोयोग-पूर्वक करते रहे। और उन पर अपने विचारों की टिप्पणियाँ लिखते रहे। कभी मुझको सिखाते भी रहे। राजा साहब अथवा कोई अन्य संगीतज्ञ अण्णासाहब से मिलने आता तो उसके साथ जो संगीत चर्चा होती थी, वह बड़ी रोचक एवं उद्‌बोधक होती। उसको सुनकर हम लोगों को बहुत कुछ लाभ होता। कभी-कभी अण्णासाहब अंग्रेजी उपन्यास भी पढ़ते। इसी समय हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति का चौथा भाग पूने के आर्यभूषण मुद्रणालय में छप रहा था। उसके प्रूफ फार्म दुरुस्त करके पूना लौटाने का कार्य भी चलता रहा। वे दिन भर कुछ न कुछ काम करते ही रहते। मैंने अण्णासाहब को दिन में कभी आराम करते हुए नहीं देखा। मेरे पिताजी, दादासाहब, माधवराव फिर भी मध्याह्न के भोजनोपरान्त आधा घण्टा आराम अवश्य कर लेते थे। पर अण्णासाहब दिन

में कभी बिस्तरे पर लेटते नहीं देखे; यद्यपि रक्त चाप का रोग उनको कई वर्षों से था। संभव है इसी के कारण उनको नींद बहुत कम आती थी।

मार्च १९२७ में, जब संस्था का कार्य ठीक मार्ग पर चलता हुआ देखा, तब अण्णा-साहब बम्बई लौट गये। तब से सन् १९३३ तक वर्ष में एक दो बार अपने निजी खर्चे से लखनऊ आते, हम लोगों का कामकाज देखते, आठ-दस रोज रहकर संस्था का निरीक्षण करते।

सन् १९२८ सितम्बर में श्री माधवराव जोशी सेवानिवृत्त हुए और उनके स्थान पर मेरी नियुक्ति हुई। इसी समय मैरिस कालेज आफ हिन्दुस्तानी म्यूज़िक के लिये लखनऊ के केसरबाग में स्थित कौंसिल चैम्बर की इमारत सरकार की ओर से अनुदान में मिली। कालेज अगस्त १९२८ में इस इमारत में स्थानान्तरित हुआ। मैंने अपना नया कार्य इसी नये स्थान में आरम्भ किया। इसी इमारत से जुड़ी हुई एक छोटी इमारत में मुझे रहने के लिये एक कमरा मिला। इसी एक कमरे में मैं सन् १९५६ के अन्त तक (२८ वर्ष) रहा। प्रधानाचार्य के स्थान पर मेरी नियुक्ति होने के पश्चात् अण्णासाहब लखनऊ आते तो इसी कमरे में ठहरते। मेरे वे दिन, जबकि अण्णासाहब आकर ठहरते बहुत आनन्द के साथ बीतते।

तोपवाली कोठी किराये पर थी। नयी इमारत के लिए किराया तो देना ही पड़ता था। पर किराए की रकम का अनुदान सरकार की ओर से कालेज को प्राप्त था। कालेज के खुलते ही चन्द महीनों में छात्रों की संख्या बढ़ने लगी। यहाँ तक कि सन् १९२७ के आरम्भ में ही तोपवाली कोठी कालेज की बढ़ती हुई कक्षाओं के लिए अपूर्ण प्रतीत होने लगी। अतएव उसी कोठी के पड़ोस की चाँदीवाली कोठी भी किराए पर लेनी पड़ी। सन् १९२७ में जब अण्णासाहब लखनऊ आए, उनके लिए चाँदीवाली कोठी में एक कमरा स्वतन्त्र रखा गया। इसी कमरे में बैठकर वे अपना लेखन-पठन करते थे। कई स्फुट लेख संगीत पर तथा कुछ संगीत ग्रन्थों पर टिप्पणियाँ इसी कमरे में बैठकर लिखी गईं।

सन् १९२६ में, जब कालेज में दुर्गापूजा की १५ दिन की छुट्टियाँ हुईं, अण्णा-साहब मेरे ज्येष्ठ गुरुबन्धु श्री वाड़ीलाल जी तथा मुझको साथ लेकर हरिद्वार गए। एक सप्ताह हम लोग हरिद्वार रहे। वहाँ अण्णासाहब ने हम लोगों को बहुत कुछ बातें भारतीय संस्कृति की उसके इतिहास के सहित समझायीं। संगीत पर भी पर्याप्त उद्बोधक वार्तालाप हुआ।

सन् १९२७ में फिर पुनश्च दुर्गापूजा के अवसर पर अण्णासाहब मुझे लेकर वाराणसी गए। वहाँ हम लोग कमाच्छा में थियोसाफ़िकल सोसायटी में ठहरे। वहाँ के कुछ संगीत प्रेमी सज्जनों से मेरा परिचय अण्णासाहब ने करा दिया। इन सज्जनों ने अपना स्नेह सम्बन्ध आजतक कायम रखा है। इनमें विशेष उल्लेखनीय थे : केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण विभाग के भूतपूर्व मन्त्री डा० बालकृष्ण व्ही० केसकर, जो उस समय वारा-णसी के संस्कृत विद्यापीठ में प्राध्यापक का कार्य करते थे। डाक्टर केसकर का स्नेह संबन्ध

अण्णासाहब के साथ बहुत अच्छा था। हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, क्रमिक पुस्तक मालिका के मराठी शास्त्रीय लेखों का हिन्दी रूपान्तर डा० केसकर ने ही किया था, जो शास्त्र-प्रवेश नामक पुस्तक मालिका के नाम से ३ भागों में छपकर प्रकाशित हुआ था। डा० केसकर ने वाराणसी में हरिनारायण मुकर्जी के पास ध्रुवपदों का अभ्यास किया था और वे अण्णासाहब के संगीत वाङ्मय तथा संगीत प्रचार कार्य से भलीभाँति परिचित थे।

इनके अतिरिक्त श्री महादेव के० सामन्त जो अब भी राजघाट स्कूल, वाराणसी में कार्य कर रहे हैं। वे रागदारी संगीत के अच्छे मर्मज्ञ हैं। दूसरे श्री केव्वकर संजीवराव जो देहरादून के पास झरीपानी में एक स्कूल में कार्य कर रहे हैं, तथा श्री वासुदेवन नामक एक चित्रकला निपुण, जो आजकल मद्रास में हैं—इन सभी के साथ घनिष्ठता हुई। आठ-दस दिन वाराणसी में अण्णासाहब के सान्निध्य तथा थियोसाफ़िकल सोसायटी के उच्च सांस्कृतिक वातावरण में बहुत आनन्द के साथ व्यतीत हुए।

सन् १९३३ तक वर्ष में दो बार लखनऊ आने का क्रम अण्णासाहब का जारी रहा। इस बीच में बहुत से लोग उनसे मिलने आते। विशेषतः लखनऊ युनिवर्सिटी के प्राध्यापक धूर्जटी प्रसाद मुकर्जी, जिनको संगीत से विशेष प्रेम था; अण्णासाहब से मिलने आते। वे संगीत की चर्चा अण्णासाहब से सुनते। भाषण की एक विशेष शैली अण्णासाहब की थी, जिसके प्रभाववश सुननेवाला सुनता ही रहता और अपनी ओर से कुछ बोलना व्यर्थ समझता था। किसी विषय पर अण्णासाहब की बातचीत आरंभ हुई कि उसकी पूरी छानबीन सुन्दर शब्दों में, कभी-कभी हँसी-मजाक के साथ करते हुए उसकी समाप्ति करते थे। सुननेवाले के मन में आती हुई शंकाएँ, कल्पनाएँ मानों उसके हाव भाव, उसके चेहरे से ही समझकर उसकी चर्चा अपने सम्भाषण में उल्लेख करते हुए समाधान करते थे। इस समय श्री दिलीपकुमार राय, जो आजकल पूने में आध्यात्मिक साधना में अपना जीवन बिता रहे हैं, अण्णासाहब के संगीत तथा प्रचारकार्य से प्रभावित हुए। वे अण्णासाहब के प्रशंसकों में विशेष स्थान रखते थे। सन् १९२८ में इन महाशय ने मुझको कलकत्ता ले जाने का आग्रह किया। दो-तीन कार्यक्रम मेरे गाने के इन्होंने कलकत्ते में आयोजित भी किए। मैं अपने पिताजी के साथ कलकत्ता चला गया। हम लोगों को कलकत्ते के एक गणमान्य वकील श्री मुजुमदार साहब के यहाँ ३४ थिएटर रोड पर ठहराया गया। मुजुमदार-साहब दिलीपकुमार राय के सम्बन्धी थे और संगीत से अत्यन्त प्रेम रखते थे। इनके निवास स्थान पर जहाँ हम लोग ठहरे थे, रोज—जब तक हम लोग कलकत्ता रहे—मेरा गाना होता रहा। गुरुदेव अण्णासाहब के आशीर्वाद तथा परमेश्वर की कृपा से कलकत्ते में, क्या घर पर और क्या ओह्वरटाउन हाल में, ये सब कार्यक्रम पर्याप्त सफल हुए। अण्णासाहब की संगीत शिक्षा प्रणाली की अत्यन्त प्रसिद्धि कलकत्ते भर में हुई। बड़ी संख्या में बंगाली संगीत प्रेमी युवक मैरिस कालेज आफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक, लखनऊ में भरती होने आते रहे। सन् १९२९ में दिलीपकुमार राय के दो चचेरे भाई, एक हेमेन्द्रलाल राय तथा उनके कनिष्ठ बन्धु रविन्द्रलाल राय जो आजकल दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दुस्तानी संगीत विभाग के अध्यक्ष पद पर कार्य

कर रहे हैं; लखनऊ आए और मैरिस कालेज में भरती हुए। इनके साथ और भी एक बंगाली युवक अम्बिका चरण मुजुमदार भरती हुए। युवावस्था में ही इनका देहान्त हो गया। ये बहुत होनहार थे। यदि जीवित रहते तो एक नामांकित गायक तथा संगीतज्ञ होकर निकलते। ये तीनों सज्जन कलकत्ता युनिवर्सिटी के उपाधिधार थे। पढ़े-लिखे एवं बुद्धिमान् होने के कारण इन्होंने अच्छी प्रगति संगीत में की। अण्णासाहब जब-जब लखनऊ आते इन तीनों की प्रगति की पूछताछ करते। कभी-कभी इनको कुछ सूचनाएँ भी संगीत के अभ्यास के सम्बन्ध में देतें। मुझे भी इन सभी के अभ्यास तथा प्रगति पर विशेष ध्यान देने को कहते। सन् १९३० में मैंने एक त्रैमासिक "संगीत" नाम से चलाना आरम्भ किया। इसके संचालन में तथा लेखादि द्वारा इन बंगाली सज्जनों ने पर्याप्त सहयोग दिया। दुर्दैववशात् यह संगीत त्रैमासिक द्रव्य के अभाव के कारण दो वर्ष भी न चल सका। पर उसके जितने अंक प्रकाशित हुए, उन सब में बहुत उपयोगी लेख स्वयम् अण्णासाहब के तथा अन्य विद्वानों के लिखे हुए हैं; जिससे इस त्रैमासिक का स्तर पर्याप्त ऊँचा रहा। इसमें व्यावसायिकता का नाम भी न था, यह बात उसको देखते ही स्पष्ट होगी।

अण्णासाहब की निःस्वार्थ संगीत सेवा का प्रभाव राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, पं० मदनमोहन मालवीय तथा विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर पर भी पड़ा। तीनों महापुरुषों के साथ अण्णासाहब का व्यक्तिगत स्नेह-संबंध, वार्तालाप, पत्र-व्यवहार संगीत शिक्षा प्रणाली के संबंध में होता रहता था। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा महामना मालवीय ने विश्वभारती के हिन्दुस्तानी रागदारी संगीत शिक्षा-विभाग में तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत शिक्षा विभाग में अण्णासाहब के ही बताए हुए मार्ग पेर उन्हीं के बनाये हुए पाठ्यक्रम के अनुसार संगीत शिक्षा का कार्य आरंभ किया। विश्वभारती में अब भी हिन्दुस्तानी रागदारी शिक्षा इसी क्रम से चल रही है। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय पर पं० मालवीय जी के स्वर्गवास के पश्चात् न जाने कैसी-कैसी कितनी आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आपत्तियाँ आयीं, जिनके कारण विश्वविद्यालय और विशेष रूप से संगीत विभाग का तो पुनर्गठन-सा हो गया है। महात्मा गांधी जी ने भी अण्णासाहब को अपने यहाँ आमंत्रित करके संगीत शिक्षा के संबंध में उनके साथ विचार-विनियम किया था। यह घटना लगभग सन् १९२५ की होगी। अस्तु।

सन् १९३२ में हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति का चौथा भाग छप कर प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष अण्णासाहब लखनऊ आये थे। सन् १९३३ के अप्रैल में भी आये थे। और यही उनका वहाँ अन्तिम आगमन था। मेरे पास उनके पत्र आया करते थे। मेरे नाम उनका अन्तिम पत्र दि० १२-१०-१९३३ का लिखा हुआ है। इसके पश्चात् सन् १९३३ में ही एक दिन प्रातः अपने कमरे में बैठे हुए वे कुछ पढ़ रहे थे। उसी समय अखबार वाला आया और उसने खिड़की में से अखबार अन्दर डाल दिया। बस यही मानों परमात्मा का बुलावा आया था। अखबार उठाने को अपनी कुर्सी से उठे और तत्काल पक्षाघात का आकस्मिक आक्रमण हुआ और वे गिर पड़े। बिस्तरे पर लिटा दिए गए। दो-ढाई वर्ष उसी अवस्था में पड़े रहे। कोई देखने जाता तो लेटे-लेटे ही बातचीत करते। इसी अवधि में हिन्दुस्तानी

संगीत पद्धति, क्रमिक पुस्तक मालिका का पाँचवाँ तथा छठवाँ भाग छप रहा था। ये दोनों लगभग पूरे छप चुके थे। केवल उनके प्रकाशन की देर थी कि इतने में सन् १९३६ की सितम्बर मास की १९ तारीख को गणेश चतुर्थी के दिन प्रातःकाल संगीत संसार के युगप्रवर्तक यह महापुरुष सदा के लिये अन्तर्हित हो गए।

साङ्गं गीतरहस्यमाकलितमत्युद्बोधितं लीलया।
येन श्रीभरतं प्रतीव पुनरुद्भूतं तमात्मौजसम्॥
गीतग्लानिविनाशकं सुचरितं वाग्गेयकारं मुनिं।
वन्दे विष्णुविभुं वरं गुणमयं नारायणांशं गुरुम्॥

—"सुजान"

प्रेरणा के स्रोत



स्व० उस्ताद मुहम्मदअली खाँ गिधौर वाले

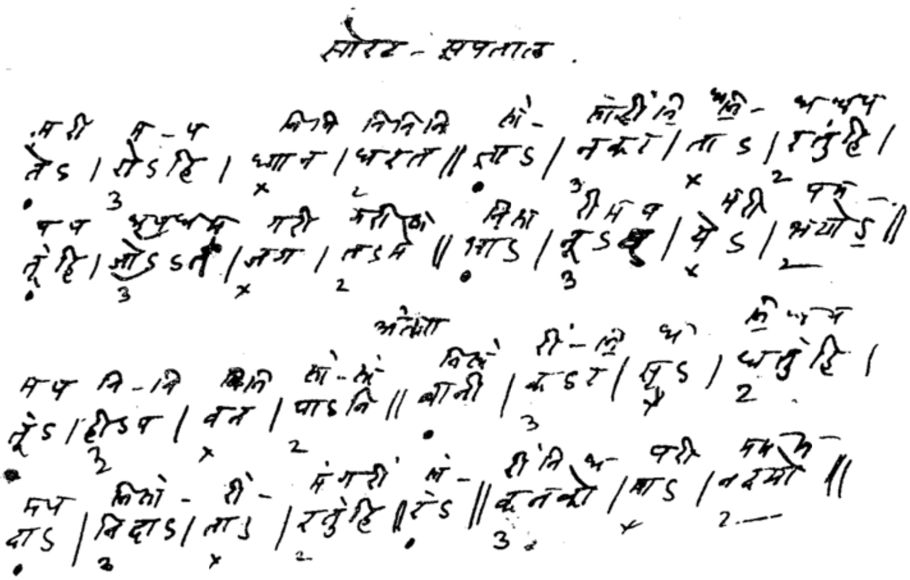


स्व० श्री जीवनजी महाराज



स्व० उस्ताद वज़ीरअली खाँ

प० भातखण्डे की हस्तलिपि में एक गोत



यही वह स्वर लिपि है जिसने समूची परम्परा को चिरजीवी किया।

संगीतोद्धारक पं० भातखण्डे मेरी दृष्टि में

॥ श्री ईश प्रेरणा ॥

श्री भगवान् उवाच

नाट्याचार्य ! सुसाधु साधु भवता यो राग आविष्कृतः ।
तं श्रुत्वा मधुरं प्रसन्नहृदया जाताः स्म सर्वेऽधुना ॥
भूमौ सम्प्रति भिन्नतां प्रचलितां हर्तुं ममादेशतः ।
गत्वैक्यं कुरुतात् सुगायकजने तुभ्यं ममाशीरियम् ॥१॥

ग्रन्थोक्ते विविधे तथा प्रचलिते संगीतके साम्प्रतम् ।
हर्तुं जात विसंगतिं भरत, रे ! शोच्याम् अवस्थां नृणाम् ॥
चातुर्यान्मधुलिट् सुमादिव भवान् उद्धृत्य सारं ततः ।
मुक्ता लक्षणफल्गुतां रचयतु "श्रीलक्ष्यसंगीतकम्" ॥२॥

नैकोऽपि श्रुतिगोचरो नयनगो ग्रंथोऽधुना संस्कृते ।
यो नः सम्प्रति बोधयेत् प्रचलितं सम्यक् सुसंगीतकम् ॥
कर्तुं तत्र सुबद्धतां भरत, रे ! त्वं गच्छ गच्छ क्षितिम् ।
भूयास्त्वं सफलो ममैव कृपया कार्ये शुभे स्वीकृते ॥३॥

—पं० गजानन रामचन्द्र करमरकर शास्त्री, इन्दौर

संगीतोद्धारक पं० भातखण्डे मेरी दृष्टि में

संगीतोद्धारक पं० भातखण्डे मेरी दृष्टि में

प्रभाकर नारायण चिंचोरे, संगीत निपुण

स्वर्गीय पं० रावसाहब भातखण्डे है तो अवश्य एक व्यक्ति का नाम, परन्तु अपने योजनापूर्ण कार्यों द्वारा वे स्वयं एक विशाल संस्था के रूप में संगीत के इतिहास में चिर-स्मरणीय हो चुके हैं। नादोपासना उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र चुन लिया था। उसके अनुपम आनन्द का वास्तविक अर्थ में आस्वाद लेकर वे स्वर, ताल के पीछे दीवाने हो गये थे व साथ-साथ अपने समय की उसकी दयनीय परिस्थिति देख कर तिलमिला उठे थे। कहते हैं सुर की चोट सबसे गहरी होती है। उनके लिए संगीत न तो पेट पालने का और न क्षणिक मनोरंजन का साधन था। संगीत मानव-समाज के चरम उत्क्रांति का प्रतीक होता है। अपने देशवासियों ने उसे कितनी कल्पकता, साधना, आत्मीयता से पाला-पोसा, इसका वास्तविक रूप सारे विश्व के सम्मुख रखकर मातृऋण से अंशतः मुक्त होने के उदात्त विचार से वे इस क्षेत्र में आये। जीवन के अन्तिम क्षण तक अपना प्रत्येक श्वास वे केवल संगीत के लिए ही लेते रहे। अपने निसर्गदत्त एवं अर्जित सभी साधन केवल इसी एकमात्र लक्ष्य की प्राप्ति के प्रति उन्होंने अर्पित किये। उन्होंने अपने लिये एक ऐसा सुनियोजित कार्यक्रम बना लिया कि, उनके नाममात्र उच्चारण से भारतीय संगीत का सौ डेढ़ सौ वर्षों का साक्षात् चित्र ही सामने खड़ा हो जाता है। प्रथितयश संगीत समालोचक स्व० गोविन्दराव टेम्बे, राव साहब के सम्बन्ध में एक प्रसंग पर लिखते हैं: "विद्यादान में अत्यन्त कृपण एवं चर्चा, चिकित्सा आदि में अरुचि रखने वाले गत दो पीढ़ियों के गायकों से सभी प्रसिद्ध व अनेक अप्रसिद्ध रागों के स्वरूप व उनके गीत आत्मसात् करके पूर्वापर ग्रंथोक्त स्वरूपों से उनका भेद एवं साम्य दिखाना, दक्षिण पद्धति के अनुसार रागों के ठाठ कायम करके उनका वर्गी-करण करना, पाठान्तर के लिए सुलभ संस्कृत श्लोकों की रचना करना, इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार की अत्यन्त उपयुक्त जानकारी समस्त जीवन भर कष्ट सहकर एकत्रित करना एवं जिज्ञासुओं के लिये आधारभूत ऐसे ग्रंथ निर्माण करना, इस प्रकार के केवल अकेले एक व्यक्ति के प्रचण्ड कर्तव्यों का मूल्यांकन करना अथवा उसकी यथायोग्य प्रशंसा करना भी अशक्य प्राय है।" आगे चलकर वे लिखते हैं: "श्रीमान् पं० भातखण्डे के इन ग्रंथों के उपरान्त उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पर विवेचनात्मक ऐसे किसी ग्रन्थ की अब कोई आवश्यकता ही नहीं है।"

पूना के प्रो० जी० एच० रानडे ऐसे ही एक अन्य प्रसंग पर रावसाहब के विषय में लिखते हैं: "उनका यह कार्य एक प्रचण्ड कार्य था। समझ में नहीं आता अकेले

एक व्यक्ति ने यह सब कैसे किया और जो किया वह केवल एक ही जीवन काल में। अन्ततः पं० भातखण्डेजी ने नितान्त असम्भव को सम्भव कर दिखाया है।"

अपने इन अगणित एवं असम्भव कार्यों में पदार्पण करने के समय से ही ऐसा प्रतीत होता है, उन्होंने अपने लिए जीवन के कुछ सिद्धान्त चुन लिए थे जिनका वे आजीवन अनुसरण करते रहे। स्वाधीनता संग्राम के प्रक्षुब्ध वातावरण में विधिशास्त्र का अध्ययन करने वाले रावसाहब भातखण्डे को संगीत में जीवन की सार्थकता का आभास होना उस विद्या का ही अहोभाग्य समझना चाहिए। संगीत सेवा में उनके कार्यरत होने की पार्श्वभूमि के विषय में पूछने पर वे कहते थे कि प्रत्येक मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुसार ही कार्य करना चाहिए। स्वयं वकील होते हुए भी राजनीति में पड़ना अपने लिए मैंने इसलिए व्यर्थ समझा कि आवश्यक राजनैतिक गुणों का मुझमें सर्वथा अभाव है। संगीत सेवा के अतिरिक्त जीवन में मैं कुछ नहीं कर पाया इसका मुझे दुःख नहीं है अपितु सन्तोष ही है। एक ही व्यक्ति विभिन्न कार्यक्षेत्रों मे ठोस सेवा कर सके यह कदापि सम्भव नहीं है।

भाषा, इतिहास, अर्थशास्त्र, तत्वज्ञान, न्यायशास्त्र, विज्ञान आदि महाविद्यालयीन पाठ्यक्रम के विषयों की समृद्धता की तुलना में संगीत की उस समय की शोचनीय अवस्था को देखकर ही उसके उद्धार की प्रेरणा उन्हें मिली हो तो क्या आश्चर्य ! जो समाज स्कूल कालेजों में दी जाने वाली विद्याओं को श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखता था वही समाज संगीत को अनावश्यक ही नहीं, उपेक्षणीय भी समझता था। स्कूल-कालेज से शिक्षित छात्र राजमान्य राजेश्री कहलाते थे। गायन-वादन के उपासकों को अपने आश्रयदाताओं के इशारे पर उनकी इच्छानुसार चलना पड़ता था। गायन-वादन का पेशा मुट्ठी भर निरक्षर घरानेदारों के लिए ही सीमित हो गया था और उनकी विद्या का आस्वाद लेना राज-दरबारों तक प्रवेश पाने वाले भाग्यशालियों के लिए ही सम्भव था।

सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम ने भारतवासियों के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक नया मोड़ दिया। साम्राज्यों के पतन के बाद छोटी-बड़ी रियासतों ने गायक-वादकों को आश्रय दिया था। शास्त्र-विद्या की चर्चा भले ही लुप्त हो गई हो, परन्तु गायन-वादन के प्रात्यक्षिक राजे-रजवाड़ों के यहाँ, नवाब-तालुकेदारों के यहाँ प्रायः होते रहते थे; और यहीं पर संगीत की जो भी बातें होतीं उससे उसके कलापक्ष का आंशिक विकास होता रहा। इनमें से प्रायः सभी शासकों ने खुलकर अथवा छिपकर सन् सत्तावन के संग्राम में हिस्सा लिया। विदेशी हुकूमत ने इन्हें चुन-चुन कर कुचल डाला, इनका आर्थिक स्थैर्य ध्वस्त कर डाला, भारतीय विद्या-संस्कृति के प्रति इनके मन में अश्रद्धा निर्माण हो, ऐसे सभी काम कर डाले। अकेले लखनऊ के नवाब वाजिदअली शाह के गिरफ्तार हो जाने पर ही गायक-वादकों के सैकड़ों घर-बार ध्वस्त हो गये। ग्वालियर में बड़े मुहम्मद खाँ से हद्दू—हस्सु खाँ बनाने की राजाओं की टकसाल बन्द हो गई। सन् सत्तावन के गदर के बाद जो हद्दू खाँ गुजर गए तो उनके स्थान की पूर्ति के लिए जयाजीराव सिन्धिया दूसरे हद्दू खाँ बना नहीं सके। सुजाउद्दौला के पतन के साथ-साथ वास्तविक रूप से गायक-वादकों के गुणीजन खानों पर काल की वक्र दृष्टि पड़ने लगी और उनके जीवन का संगीत नष्ट होने लगा। आज दिल्ली तो कल लखनऊ, परसों जयपुर तो नरसों ग्वालियर; ऐसी भागदौड़ में समूची परम्परा की सुरक्षि-

तता संकटग्रस्त हो गई। वादकों के साज़ अंधेरी कोठरियों में बन्द होकर धूल खाने लगे, गायक अपने पुराने कीमती कपड़ों की मरम्मत करके तन ढाँकने लगे, उनकी खुराक़, नशे-पानी की बन्दियाँ खत्म हो गईं। पुरानी आदतें और भी अधिक बिगड़ने लगीं। उन्नीसवीं सदी के प्रथम दस-बीस वर्षों से लेकर बीसवीं सदी के पन्द्रह-बीस वर्षों के अन्दर—लगभग सौ साल में, उत्तर भारतीय संगीत के सभी अच्छे-अच्छे प्रतिनिधि एक के बाद एक दुनिया से उठने लगे। उपर्युक्त देशकाल परिस्थिति के परिणामस्वरूप जब राज-दरबारों की हालत गिर गई और घरानेदार गायकों की पहले जैसी परवरिश करना उन्हें कठिन प्रतीत होने लगा। दरबारों में तोहफे मिलना बन्द हो गया। तब ये सारे गुणीजन बम्बई जैसी माया नगरी में अवसर पाते ही आने लगे। रावसाहब ने जब से होश संवारा तभी से अपनी इस उज्ज्वल परम्परा को पुनः स्थैर्य प्रदान करने का प्रण किया। वे न तो किसी रियासत के राजा थे और न किसी जायदाद के मालिक, परन्तु होता वही है जो मंज़ूर-ए-खुदा। विलुप्त होने वाली इस कला को प्रत्येक व्यक्ति के लिए सहज साध्य बनाना, उसे आधुनिकतम विद्या का स्वरूप प्रदान कराने का काम विधाता को उन्हीं के द्वारा करा लेना था।

उनकी संगीत की शिक्षा तो बाल्यकाल से ही चल रही थी। अब उन्हें उच्चतम रागदारी संगीत को सुनने-सीखने की सुविधा भी प्राप्त होने लगी थी। गायनोत्तेजक मंडली उनकी इस आकांक्षापूर्ति के लिए कामधेनु के रूप में उनके समक्ष आयी। देश के लगभग सभी गणमान्य कलाकारों को वे सुन सके। आधुनिक शिक्षा से सुसज्जित उनके प्रगल्भ मस्तिष्क को चिन्तन, मनन करने का अवसर मिला। चर्चा तथा विचार-विनियम करते समय खंडित ग्रंथवाक्यों के अस्पष्ट सिद्धान्तों की ओर भी उनका ध्यान गया। भारतीय संगीत की गौरवशाली परम्परा की अनुभूति अवश्य हुई; परन्तु उसके इतिहास की आधारभूमि छिन्न-भिन्न स्वरूप में प्रतीत होने लगी। हम क्या गाते हैं और ऐसा क्यों गाते हैं, इन प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने की तीव्र आकांक्षा हुई। अन्य सभी शास्त्रों की प्रगति के लिए एक से एक बढ़ कर समालोचक, समीक्षक, गवेषक तथा लेखक अविरत रूप से अपने विषय की उन्नति करने में जुटे हुए हैं, परन्तु संगीत शास्त्र में ऐसा कोई भी ठोस कार्य कहीं पर भी होता हुआ नहीं पाया गया। विदेशों में संगीत व संगीतज्ञों की परिस्थिति से भारतीय संगीत की तुलना करने पर और भी अधिक विषण्णता होने लगी।

"संगीत की जड़ सामवेद में है। शिवजी और पार्वती के मुख-गह्वर द्वारा रागों की सन्तति गिर पड़ी, रागों के ब्याह हुए तथा आगे चलकर उनको बच्चे भी पैदा हुए। बैल, बकरा आदि जानवरों की चिल्लाहट ने सप्त-स्वरों को जन्म दिया, उनमें भी कोई काले निकले तो कोई पीले पड़ गये। फिर स्वरों की बस्ती के लिए अलग-अलग भूमिखण्ड, शरीरस्थ नाड़ियाँ और चक्र, ब्राह्मण और बनिया स्वरजाति" आदि अनेक मनगढ़न्त गप्पें हाँकनेवाले दांभिक और मुखर व्यक्ति उस जमाने में बड़े संगीतशास्त्रज्ञ तथा पण्डित कहलाते थे। वे कभी न पढ़े, न समझे। रत्नाकर दर्पण आदि एक-दो ग्रन्थों के नामोच्चारण कर के तथा "सप्तसूर, तीन ग्राम, इकईस मूरछान, उनचास कूटतान, सुधमुद्रा, सुधबानी" आदि बेतुके तुक श्रोताओं को सुनाकर चकित कर देते थे। गायकों में कभी आपसी चर्चा होती, तब "शिवजी के मुख से भैरों राग निकल पड़ा, उस समय ब्रह्माजी का मुख किस तरफ था ?" इस प्रकार

के मूर्खतापूर्ण सवाल पूछकर सामने वाले गायक-वादक को पराजित कर देते थे। उस जमाने में संगीतशास्त्र की हालत इतनी गिरी हुई थी कि ऐसे निरर्थक बकवास को ही संगीत-शास्त्र मानते थे एवं ऐसे बकवास करनेवाले को ही बड़ा संगीतशास्त्रज्ञ कहते थे। यदि ऐसे पंडित उच्च जाति के हों तो उनकी दृष्टि में पेशेवर मुसलमान गायक पतित, अधम, दुराचारी हो जाते थे। ऐसी निरर्थक चर्चाओं से विद्या की उन्नति होने के बजाय यदि ह्रास ही होता गया तो क्या आश्चर्य? प्रत्यक्ष गायन-वादन करने वालों में अधिकतर मुसलमान ही होते थे। वे सदैव सुर-ताल की सेवा में रत रहने के कारण वस्तुत: भावुक, भोले, बालक जैसे सरल होते हुए भी बाहरी व्यवहार में घमण्डी, दुराग्रही, मनमौजी, कटुभाषी और क्रोधी हो चुके थे। इनमें से लगभग सभी निरक्षर होने के साथ-साथ व्यसनाधीन भी हो चुके थे। ईर्ष्या, द्वेष, कपटभाव का जहाँ-तहाँ प्रादुर्भाव हो चुका था। विद्यादान के लिए समाज में किसी को भी वे सत्पात्र नहीं समझते थे। जब कभी महफिलों में कला प्रदर्शन करते तब स्वर-ताल की अर्चना के साथ-साथ घमण्ड, कटाक्ष एवं बड़प्पन दिखाने में अपनी शक्ति का अपव्यय करते थे, और शेष समय में अपने चाहने वालों को इकट्ठा करके दूसरे कलाकारों की बेछूट निन्दा करने में इतिकर्त्तव्यता समझते थे और यही उनकी शास्त्रीय चर्चा भी थी। इनके आश्रयदाता जो भी थोड़ी संख्या में बचे हुए थे, वे संगीत के दङ्गल आयोजित कराते थे, प्रतिद्वंद्वी कलाकार अपने हथियार, औजारों सहित मुकाबले के लिये तैयार किये जाते थे, विजयी कलाकार को ऐसे तोहफे, इनामात और तारीफ के पुरस्कार दिए जाते थे कि अभागा गायक स्वयं को भगवान् से भी ऊँचा समझने की धृष्टता करता था। शासक इन उस्तादों से और उस्ताद शासक से गंडा बाँधते थे। कहीं-कहीं पर तो आपस में बेटी-व्यवहार भी हुआ था। खुश हुए तो गायक को बड़ी से बड़ी जागीर दे डाली, उसको प्रशासन का ज्ञान न होते हुए भी अफसर बना डाला और नाराज हुए तो उन्हीं तोहफों को छीन कर देश-निकाला दे दिया। स्वयं शासक ही आश्रित को गुरुदेव मानकर उसके पैर छूने लगे। इन सारी परिस्थितियों का विपरीत परिणाम हुए बिना कैसे रह सकता था? एक बार शासक की कृपा पा जाने पर इन्हीं खानदानी कलाकारों के लिये आलसी, गर्वीले, दुराचारी बन जाना स्वाभाविक ही था। ऐसे लोगों से संगीत की तालीम पाना निश्चित ही अपने को बरबाद करना था।

इसी अंग्रेजी शासन काल में बम्बई शहर आधुनिक साधन सामग्री से, नवीन विचारधाराओं से, जीवन के हर क्षेत्र में प्रखर बुद्धि रखने वाले व्यक्तियों से, साहित्य-ग्रन्थों से समृद्ध रहता था। संगीत पर पाश्चात्य विद्वानों द्वारा लिखे हुए अनेक ग्रन्थ रावसाहब के देखने में आये। उन ग्रंथकारों की वैचारिक मंथन बुद्धि, विषय का सांगोपांग विवेचन करने की प्रवृत्ति, नवीन विचारधाराओं का मुक्तकंठ से स्वागत करने का गुण, तर्कयुक्त गंभीर विद्या-व्यासंग आदि से रावसाहब अत्यंत प्रभावित हुए। डा० बर्न के "हिस्ट्री आफ म्यूजिक" ग्रन्थ के अध्ययन से उनपर अद्भुत प्रभाव पड़ा। तत्कालीन पाश्चात्य संगीत का संबंध ग्रीक संस्कृति के परमोच्च उत्क्रान्ति काल तक सुसंगत रीति से प्रस्थापित करने के उन विद्वानों के प्रयत्नों ने उन्हें मोहित कर डाला। अर्थात् ऐसे कष्टप्रद प्रयासों की तर्क शुद्धता के लिए उन देशों में प्राचीन ग्रन्थ-साहित्य समझाने वाले महापंडित लोग डा० बर्न

जैसे प्रयत्नवादियों को सुलभ रीति से प्राप्त हो सके थे। उन्हें अति प्राचीन समय का ज्ञान भी सहज साध्य था, परन्तु अपने देश में प्रथम तो इतने प्राचीन ग्रन्थ ही दुष्प्राप्य हैं; अविश्रान्त परिश्रम से यदि प्राप्त किए भी गये तो उन्हें जानने-समझाने वाले मिलना दुष्कर। संस्कृत पंडितों को भाषा का उत्तम ज्ञान होते हुए भी उनका यह ज्ञान संगीत शास्त्र समझाने के लिए निरुपयोगी था। सामवेद के संगीत से प्रारम्भ कर उसका सम्बन्ध बीसवीं सदी तक प्रस्थापित करना यदि सम्भव हो सका तो कितना उपकारी होगा; ऐसा रावसाहब समय-समय पर कहते थे। परन्तु इस प्रकार से सम्बन्ध प्रस्थापित करने का कार्य एकदम संतोषजनक तर्क संगत और साधार होना चाहिए, ऐसा उनका सिद्धान्त था। पाश्चात्य विद्वानों के इस प्रकार के मौलिक ग्रन्थों का अत्यंत श्रद्धायुक्त अन्तःकरण से वे अध्ययन करते थे।

संगीत की उच्च परम्परा का संवर्धन करनेवाले गायकों के प्रदर्शन में वे मनःपूत तान-बाज के स्थान पर गायन के नियमों को देखते थे। गायनोत्तेजक मण्डली में जो कलाप्रदर्शन हुआ करते थे, उनके विषय में रावसाहब का यह मत था, कि गायक जो कुछ गाता था उसके लिए ग्रंथ-प्रमाण प्रस्तुत करने का दुराग्रह वहाँ पर नहीं किया जाता। परन्तु रागों के वर्णन, नियम पहले से ही समझाकर बाद में उन्हीं नियमों का पालन करते हुए उन रागों को गाना आवश्यक होता है। जिन नियमों से वे आज गायन कर रहे हैं, वही नियम उनके गायन में सदैव दिखने चाहिए। गायक तानबाजी में भले ही निष्णात हो; परन्तु उसके गायन में नियम-धर्म होने ही चाहिए। गले से टेढ़ी-मेढ़ी तानें मारना विद्या नहीं है। नियमों का पालन करते हुए उन्हें गाना कुशलता है। परम्परागत गीत भिन्न-भिन्न खानदानों के सैकड़ों वर्षों के व्यासंग, अनुभवों का सारतत्व होता है। उन्हें श्रद्धायुक्त अन्तःकरण से ज्यों का त्यों गाना परम्परा के संरक्षण, संवर्धन के लिए नितान्त आवश्यक होता है। और यही तो हमारे संगीत इतिहास की श्रृंखला की कड़ियाँ हैं। उनका रक्षण करनेवाले ही देश का हित कर सकते हैं। सौभाग्य से ऐसे महान् गायकों से उनका सम्पर्क भी होता रहा व वार्तालापों में से ही संगीत को सुसम्बद्धित विद्या का स्वरूप प्रदान करने की तीव्र इच्छा उनमें जागृत हुई। बम्बई में अपने मित्रों से भारतीय संगीत पर जो भी संस्कृत, प्राकृत वाङ्मय प्राप्त हुआ, उसका वे खूब मनन-चिन्तन करते, उनके कठिन एवं संदिग्ध अंशों पर टिप्पणियाँ लिख कर मित्रों से समझने का प्रयत्न करते और ग्रंथ यदि प्रामाणिक होता तो महत्वपूर्ण अंशों का भाषान्तर करके रख लेते थे। उनके मित्रों में अधिकतर गुजराती, पारसी, महाराष्ट्रीय सज्जन थे। मराठी एवं गुजराती भाषाओं में ग्रंथों के अनुवाद का कार्य वे स्वयं करते अथवा इन मित्रों से करा लेते। उनकी यह धारणा थी कि किसी भी ग्रंथ के संगीत को समझने के लिये उस ग्रंथ के स्वराध्याय एवं रागाध्याय—ये ही दो प्रमुख अध्याय हैं। अपनी संस्मरणीय भारतयात्रा प्रारम्भ करने के पूर्व रावसाहब ने संगीत का लगभग सभी साहित्य छान-बीन डाला था। सैकड़ों ध्रुवपद, धमार, ख्याल आदि लिपिबद्ध करा कर उनके आधार पर रागों के वास्तविक स्वरूप भी अपने तथा अपने मित्रों के लिये निश्चित कर लिए थे। स्वयं अध्ययन करते रहते व दूसरों को शिक्षा देते। कुछ मित्रों को अपनी भावी योजनाओं में सहायता प्रदान करने के लिए प्रेरित करते। संगीत विद्या के प्रसारार्थ देश के सभी महत्वपूर्ण नगरों में संगीत के क्लब अर्थात् समाज

होने चाहिए, ऐसा वे अपने मित्रों से समय-समय पर कहते रहते थे। एक प्रसंग पर वे लिखते हैं: "ऐसी संस्था के उद्देश्य इस प्रकार होने चाहिए—संगीत के सभी प्राचीन अर्वाचीन ग्रंथ (जो भी उपलब्ध हैं वे) संग्रहीत करना, उन्हें मुद्रित कर प्रकाशित करना, उनके अनुवाद करना, समय-समय पर सभा-सम्मेलन बुलवा कर उनमें विद्वानों द्वारा संगीत शास्त्र पर व्याख्यान आयोजित करना, संगीत पर औपपत्तिक मन्त्रणा और चर्चा करना, वर्तमान संगीत पद्धति के उत्क्रमण का इतिहास तैयार करना, उसकी रागरचना को उत्तम रीति से सुव्यवस्थित करना, उसी व्यवस्था को ग्रंथ रूप से चिरजीवी करना, योग्य अधिकारी व प्रसिद्ध गायकवादकों की सम्मति से वादग्रस्त रागरूपों का निर्णय करना, बड़े-बड़े रजवाड़ों के आश्रित गुणीजनों की सहायता उन्हीं संस्थानिकों की मदद से प्राप्त करना, गायक-वादकों के घरानों का इतिहास संस्थानिकों के कागज-पत्रादि से प्राप्त करना, प्रसिद्ध गायकों के मुजरे समय-समय पर करवा कर अप्रसिद्ध राग साधारण जनता को सुनवाने की संधि प्रदान करना, उत्तम गायकों को संस्था में नियुक्त कर उनसे नियमानुसार क्रमबद्ध शिक्षण दिलवाना, स्वयं गायक-वादकों को रागनियमों का व लिपि का ज्ञान कराना, संस्था के कार्यों का लेखा-जोखा रखना वा उसे मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित करना इत्यादि, इत्यादि।"

गायनोत्तेजक मण्डली को इस दिशा में उन्होंने बहुत हद तक स्थैर्य प्रदान किया था। उनके समय में संगीत विद्या के प्रीत्यर्थ राजे-रजवाड़े, सरदार-जागीरदार, सेठ-साहुकार आदि धनी एवं सुसम्पन्न समाज व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से जो भी परिश्रम, धन व्यय करते थे, उसके फलस्वरूप संगीत विद्या की उन्नति कहाँ तक हो रही है; इस पर भी वे गंभीरता से विचार करते रहते थे। सर्वत्र उदासीनता का वातावरण होते हुए भी संपत्ति के इस प्रकार के अपव्यय को रोक कर अपने देशवासियों में संगीत विद्या के उद्धार की सच्ची भावना निर्माण करने का उन्होंने निश्चय कर लिया था। अपनी लक्ष्य-पूर्ति के लिए बम्बई शहर में जो भी साधन-सामग्री उन्हें प्राप्त हुई, वह इतनी पर्याप्त थी कि यात्राएँ प्रारम्भ करने के पूर्व ही संगीतोद्धार की दिशा में एक देशव्यापी सुसम्बद्ध योजना उन्होंने बना डाली थी। परन्तु अपने विचारों की, मन्तव्यों की पुष्टि के लिए अन्य स्थानों के सभी सुप्रसिद्ध विद्वानों, गायक-वादकों से वे एक बार प्रत्यक्ष साक्षात्कार करना चाहते थे। अपने शहर में संगीत में लोकाभिरुचि निर्माण करने की दृष्टि से जो भी कुछ चल रहा था, उस पर वे संतुष्ट थे। परन्तु देश के अन्य भागों में विद्या की सद्यःस्थिति क्या है, इसका प्रत्यक्ष अनुभव लेकर ही संगीत का प्रामाणिक इतिहास वे लिखना चाहते थे।

भरी जवानी के उल्हासपूर्ण दिनों में कौटुम्बिक जीवन का उध्वस्त हो जाना रावसाहब के लक्ष्यपूर्ति के लिए मानो एक वरदान ही सिद्ध हुआ।

अपनी पुत्री तथा पत्नी को खो कर उन्होंने संगीत को ही अपनी संतान तथा जीवन-संगिनी के रूप में हृदयंगम किया। अतः संगीत ही उनका जीवन व प्राण बन गया। फलस्वरूप उनका हृदय प्रेम, भक्ति, लगन एवं त्याग की भावना से ओत-प्रोत हो गया। सुकथनकर परिवार से उनकी स्थावर सम्पत्ति के ट्रस्टी के रूप में वे पहले से ही परिचित थे। इस परिवार को तीर्थ यात्रा कराने का नैमित्तिक कारण लेकर उपरोक्त

विशिष्ट उद्देश्य से भ्रमण की योजना उन्होंने बनाई। संगीत की दृष्टि से देश का भौगोलिक सर्वेक्षण कर उसे चार प्रमुख अंचलों में बाँट लिया। दक्षिण, पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर की इन चार यात्राओं में संगीत की सद्यःस्थिति का उन्हें संपूर्ण ज्ञान हो गया। प्रायः यह देखने में आया कि संगीत के साधक शास्त्री, पंडित, गायक, वादक देश के संपन्न एवं बड़े-बड़े नगरों में धनी, रईसों के आश्रय में वास्तव्य करते हैं। ऐसे नगरों की व व्यक्तियों की सूची तैयार कर उनकी जानकारी अपने मित्रों से प्राप्त कर रखते थे। उन नगरों के प्रमुख ग्रन्थालयों, संगीत प्रसारक क्लबों (मंडली) से अपना परिचय करने के उद्देश्य से वे अपने पारसी, गुजराती मित्रों के पत्रादि साथ में रख लेते थे। उन विशिष्ट प्रदेशों की प्राप्त जानकारी पर आधारित संगीत विषयक सैकड़ों महत्वपूर्ण एवं विवादास्पद प्रश्नों की एक विस्तृत सूची अपने पास सदैव रखते थे तथा प्रसंगानुसार उन-उन विषयों पर शंका समाधान करा लेते, अपने निर्णयों एवं सिद्धान्तों से प्रभावित कर उनकी पुष्टि करा लेते व नयी जानकारी प्राप्त होने पर टीका टिप्पणियाँ लिख लेते। इस प्रकार की एकत्र की हुई जानकारी अपने विश्वासपात्र मित्रों में तथा अधिकार प्राप्त शिष्यों में पत्रों द्वारा प्रसारित करना मानों उनका दैनिक कार्यक्रम ही हो गया था। नये स्थान में पहुँचते ही अपने साथ आये हुए लोगों के धार्मिक कार्य निपटा कर उन्हें किसी के साथ शहर के प्रेक्षणीय स्थान देखने हेतु भिजवाकर स्वयं संगीत का शोध कार्य करने चल पड़ते थे। नगर के संगीत प्रेमी, उनमें शास्त्र चर्चा करने वाले, प्रत्यक्ष गायन-वादक करने वाले, संगीत पर धन एवं समय व्यतीत करने वाले जितने भी सज्जन होते; उनसे भेंट कर क्रमशः संगीत की चर्चा, श्रवण एवं चिंतन किये बिना वे आगे नहीं बढ़ते थे। महत्वपूर्ण ग्रंथ संग्रहीत करना, उनकी पांडुलिपियों की हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त करना अथवा उन्हें क्रय करना, संगीत विषयक लेखादि के सारांश लिख रखना; यह क्रम निरन्तर चलता रहता था। आगामी दिनों के कार्य-क्रम की रूपरेखा गीता बाइबिल के पाठ की तरह सदैव उनके मुख में तैयार रहती थी। वे जहाँ-जहाँ भी गये संगीत जैसे उपेक्षित विषय पर जटिल से जटिल समस्याओं की एवं छोटी-छोटी बातों की जानकारी प्राप्त करने का उनका उत्साह देखकर लोग हैरान हो जाते थे तथा समझते थे कि वे एक निरुद्योगी व्यक्ति हैं, फुरसत होने के कारण मनमौजी की तरह समय व्यतीत कर रहे हैं। परन्तु स्वयं एक यशस्वी वकील होने के कारण रावसाहब इन व्यक्तियों के साथ कुछ ऐसी पद्धति से वार्तालाप अथवा प्रश्नोत्तर करते थे कि इच्छित लक्ष्य पूर्ण हो जाने के सभी साधन अपने आप उनके सामने प्रकट हो जाते। लोगों में कहीं ऐसा भ्रम न हो जाय कि वे एक व्यवसायी गायक हैं अथवा संगीत विद्या का दिखावटी शौक रखने वाले साधारण व्यक्ति हैं, इस हेतु अपने व्यवहार में वे जरा भी न्यूनता नहीं आने देते थे। अपना सामाजिक स्तर उन्होंने किसी कीमत पर कभी भी गिरने नहीं दिया। संगीत उद्धार के लिए संगीत-जीवी समाज का सामाजिक, शैक्षणिक दर्जा ऊँचे से ऊँचा रहना चाहिए, ऐसी उनकी धारणा थी। उपरोक्त सभी अवसरों पर वे अत्यन्त नम्रता पूर्वक व्यवहार करते थे। दूसरों का अपमान करना, उनकी अज्ञानता का उपहास करना, स्वयं अपना ही ज्ञान ऊँचा दिखाकर उन्हें लज्जित करना, छिद्रान्वेषण, छींटाकशी, कटुभाषण आदि वे सतर्कता पूर्वक सदैव टालते। किसी भी परिस्थिति में अपना संयम नहीं खोते थे। प्रश्नोत्तरों में मूल विषय को इस प्रकार चतुराई से गति देते कि अन्ततः

या तो कुछ-न-कुछ नई जानकारी प्राप्त कर लेते अथवा अपने मत की पुष्टि करा लेते थे। संगीत के शोधकार्य में जिन व्यक्तियों से कुछ भी लाभ न होगा ऐसे किसी संगीत रस-विहीन प्रतिष्ठित तथा धनवान व्यक्तियों से भेंट करने में अथवा उनकी सभाओं में जा कर अपना आदर-सत्कार करा लेने में वे अपना समय कभी भी नष्ट नहीं करते थे। जहाँ भी अपनी उद्देश्य पूर्ति की आशा की किरण उन्हें दिखाई देती वहाँ कितनी भी कठिनाई सह कर बड़ी श्रद्धा व लगन से पहुँच जाते और एकदम निःसंकोच हो कर यथोचित प्रश्नों पर चर्चा करते। किस व्यक्ति ने कौन-सा ग्रंथ पढ़ा हुआ है, उसमें उसका अधिकार कितना है, संस्कृत ग्रंथों की सांगीतिक भाषा का उसे यथार्थ ज्ञान है अथवा नहीं, इसका निष्कर्ष वे अपनी कुशाग्र बुद्धि से बातों ही बातों में तुरन्त निकाल लेते। वर्तमान संगीत के साथ रत्नाकर व उसके बाद के ग्रंथों की खण्डित शृंखलाएँ वे जोड़ना चाहते थे। पुरानी पद्धति का यथा-सम्भव आधार लेकर प्रचलित रागों की सम्यक् व्याख्या करते हुए अपने विचार श्लोकबद्ध सरल संस्कृत भाषा में अनुभवसिद्ध रीति से, स्थान-स्थान पर ग्रंथाधार देते हुए "लक्ष्यसंगीत" के रूप में प्रकट करना उनका प्रमुख ध्येय था। रागों के चित्र, मूर्ति, रंग, देवता, पुत्र-भार्या-स्नुषा आदि पौराणिक बातें इस युग में चलेंगी, उनसे संगीत का लाभ न हो कर हानि ही होगी, संगीत और धर्म परस्पर भिन्न रहने चाहिए, ऐसा उनका विश्वास था। स्वनामधन्य संगीत के जानकार कहलाने वाले अधिकांश लोगों से उन्हें निराशा ही मिली। परन्तु दक्षिण के सुब्राम दीक्षित, बंगाल के सौरीन्द्र मोहन ठाकुर, हैदराबाद के काशीनाथ उर्फ अप्पा तुलसी उन प्रमुख संगीत शास्त्रियों में से हैं, जिनसे उन्होंने आगे चल कर बहुत लाभ उठाया।

शास्त्रचर्चा के लिए अनुपयुक्त लोगों से वे रागों के नियम, उनके स्वरूप, खानदानी गीत आदि संग्रहीत करते व महत्वपूर्ण प्रायोगिक प्रश्नों पर विचार विमर्श करते। ऐसे लोगों से भूल कर भी शास्त्र-चर्चा नहीं किया करते थे। उनके सम्मान और प्रतिष्ठा को लेशमात्र ठेस न पहुँचाने की वे सावधानी रखते। स्वरचित लक्षण गीत स्वयं गाकर अपने सत्प्रयत्नों का उन्हें परिचय कराते व सहायता प्रदान करने को प्रोत्साहित करते। आवश्यकता पड़ने पर उन्हें आर्थिक मदद देते तथा बम्बई में उनके जलसों का आयोजन करा देते। उच्च परम्परा का संरक्षण करनेवाले गायकों से ही वे प्रभावित होते थे। संगीत विद्या की उन्नति में बाधाएँ डालने वाली जो भी शक्तियाँ समाज में उन्हें दिखाई देतीं, उन पर मर्माघात करने में वे लेशमात्र भी न डगमगाते; वरन् संगीत विद्या की उन्नति के पोषक सभी तत्वों को बढ़ावा देने के नये-नये प्रयास ढूँढ़ निकालते थे।

रावसाहब की इन संस्मरणीय शोध यात्राओं का विस्तृत वर्णन उनकी सरस मधुर वाणी से सुनने का अहोभाग्य उनके जिन अगणित शिष्यों एवं प्रशंसकों को प्राप्त हुआ, वे अपने आपको आज धन्य समझते होंगे। ग्वालियर-लखनऊ के उनके प्रवास में परम आनन्द के ऐसे अविस्मरणीय क्षण बार-बार आते रहते थे। उनकी स्मरण-शक्ति इतनी तीव्र थी कि ऐसे असंख्य प्रसंगों का वर्णन सम्बन्धित स्थल, काल तथा व्यक्तियों के निर्देश सहित छोटी से छोटी बात को न छोड़ते हुए, लगातार करते जाते। स्वयं अपनी आँखों देखी संगीत की सद्यःस्थिति मित्रों को समझाना, उनमें प्रेम जागृत करना; यही उनके एकमात्र उद्देश्य का सभी सुनने वाले अनुभव करते।

चित्र द्वय--



स्व० राजा सौरिन्द्र मोहन टैगोर



स्व० पं० काशीनाथ उर्फ अप्पा शास्त्री तुलसी

पण्डित भातखण्डे की हस्तलिपि में 'लक्ष्य सङ्गीत' का कुछ अंश —



From the manuscript of Pt. Bhatkhande's 'Lakshya-Sangeetam' in his own hand

From the manuscript of Pt. Bhatkhande's 'Lakshya-Sangeetam' in his own hand



'शास्त्र को प्रचार के साथ हाथ में हाथ मिलाकर रहने के लिये तत्पर रहना चाहिये और यदि प्रचार ने समाज पर दृढ़ अधिकार जमा लिया हो तो शास्त्रकारों के मन्तव्यों का यथा-सम्भव अनुसरण करते हुए नई शास्त्र रचना करनी चाहिए।"



स्व० आचार्य भास्करराव खाण्डेपारकर



स्व० हिज हाइनेस महाराजा
माधवराव सिन्धिया



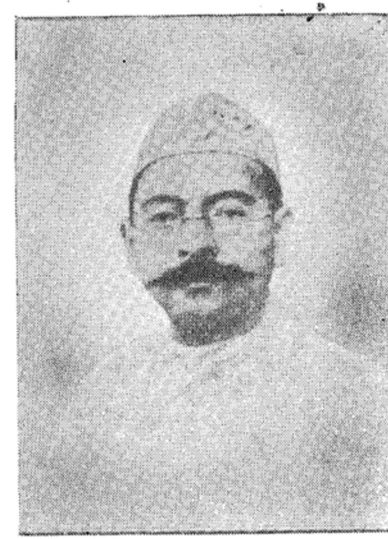
स्व० श्रीमन्त बलवन्तराव शिन्दे



स्व० ठाकुर नवाब अली खाँ



स्व० हिज हाइनेस नवाब
हामिद अली खान बहादुर



स्व० साहबज़ादा सादतअली खान
उर्फ़ छम्मन साहब



स्व० आचार्य भास्करराव खाण्डेपारकर



स्व० हिज हाइनेस महाराजा
माधवराव सिन्धिया



स्व० श्रीमन्त बलवन्तराव शिन्दे

अनावश्यक बातों का चर्वितचर्वण करने और आवश्यक सिद्धान्तों को समझाते समय संदिग्ध हो जाने के प्राचीन ग्रंथकारों की दोषपूर्ण शैली पर रावसाहब ने अपनी पुस्तकों में स्थान-स्थान पर निराशा व्यक्त की है। उन ग्रंथकारों के सप्तक निर्धारण के प्रकरणों पर तो उन्होंने पर्याप्त मनस्ताप व्यक्त किया है। सोमनाथ, अहोबल, व्यंकटमखी आदि मध्यकालीन ग्रंथकारों से उन्होंने सर्वप्रथम यही बोध लिया कि संगीत प्रगमनशील है और समयानुसार उसका शास्त्र बदलता है, उसे नया बनाना पड़ता है। वर्तमान राग चाहे वे हिन्दुओं के हों अथवा मुसलमानों के, हैं तो वे भारतीयों के ही बनाये हुए। उनका अनादर करना सर्वस्व को खो देना है। यदि उन रागों के लिए ग्रंथों में आधार मिले तो ठीक है, उसे स्वीकार किया जाय; यदि न मिले तो उसके नियम बनाये जायँ। इन विचारों की पृष्ठभूमि पर कल्पनातीत परिश्रम से प्राप्त की हुई विद्या को वे सुसम्बद्धित करने के लिए शोधकार्य में उपरोक्त यात्राओं के समय से ही लग गये थे। जिसके परिणाम-स्वरूप वर्तमान संगीत पर संस्कृत भाषा में तीन सैद्धान्तिक ग्रंथों का रावसाहब ने निर्माण किया। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, ग्रन्थकारों के संगीत को समझने के लिए उनके स्वराध्याय व रागाध्यायों पर ही वे अधिक ध्यान देते थे। अपने "श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्" के लिये भी उन्होंने ये ही दो अध्याय चुने और संगीत शास्त्र सम्बन्धी सभी आवश्यक विषयों पर प्रकाश डाला। असंदिग्ध भाषा में अपने विचारों और ऐतिहासिक तथ्यों की व्याख्या करना रावसाहब का वैशिष्ट्य है। रावसाहब की अन्य दो रचनाएँ "अभिनव-रागमंजरी" तथा "अभिनव-तालमंजरी" अपने नाम को सार्थक करती हैं। इन तीनों सिद्धान्त ग्रन्थों के लिए संस्कृत भाषा का उपयोग कर उन्होंने भारतीय परम्परा में अपने अटूट विश्वास का परिचय दिया, तो अत्यन्त सरल भाषा का प्रयोग करते हुए आज तक के गूढ़ तत्वों को गूढ़तर बनाने के पूर्वापर दोष से बचा लिया।

अपने सिद्धान्त जन-जन तक पहुँचाने के लिये रावसाहब ने हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति नामक चार भाष्य-ग्रन्थों का निर्माण किया। लगभग तीन हजार पृष्ठों में मानो उत्तर भारतीय संगीत का साद्यंत इतिहास लिख डाला। प्रारम्भ में उद्धृत श्री गोविन्दराव टेम्बे के उद्गार इन्हीं भाष्य-ग्रन्थों से सम्बन्धित हैं। भाष्य-ग्रन्थों के लिए इस बार रावसाहब ने मातृभाषा मराठी का उपयोग किया। अथक परिश्रम और निरन्तर चिन्तन से प्राप्त की हुई विद्या कम से कम समय में सुस्पष्ट रीति से जनता के सम्मुख रख देना वे चाहते थे। अपने विचार मातृभाषा में व्यक्त करना सहज सुलभ होता है, इसी दृष्टि से रावसाहब ने इन ग्रन्थों के लिए मातृभाषा का अवलम्बन किया। अपने कार्यों का मूल्यांकन देशवासियों पर छोड़ दिया। मराठी, संस्कृत के साथ-साथ हिन्दी, अँग्रेजी भाषाओं पर उनका प्रभुत्व; उनकी विशाल गीतरचना एवं स्फुट लेखादि से स्पष्ट होती है।

अपने सिद्धान्तों की यथार्थता प्रगट करने एवं विगत आचार्यों के वास्तविक मन्तव्यों को स्पष्ट करने के उद्देश्य से प्राचीन, मध्यकालीन महत्वपूर्ण ग्रन्थों का अनुवाद सहित प्रकाशन रावसाहब की एक अन्य संगीत सेवा है। वास्तव में ये सभी प्रकाशन उनके अपने परिश्रम का फल था, परन्तु इन कार्यों से आर्थिक लाभ तथा वैयक्तिक यश संचित करने की लालसा से वे एकदम अलिप्त रहे। ग्रन्थ प्रकाशनों पर अपना वास्तविक नाम प्रगट

न होने देना उनके विनयपूर्ण स्वभाव का परिचायक है। प्रकाशनों का नगण्य मूल्य उनकी निःस्वार्थता का एवं ज्ञान प्रसार की तीव्रतम उत्कण्ठा का ही द्योतक था। उन्होंने अपने अनेक संगीतानुरागी मित्रों को पुस्तकें भेंट कर संगीत का सक्रिय साधक बनाया। संगीत विद्यालयों में श्रद्धा एवं लगन से अध्ययन करने वाले कितने ही छात्रों को प्रकाशन का पूरा संग्रह पुरस्कार स्वरूप उन्होंने दिया। ग्रन्थ-प्राप्ति के उद्देश्य से गये हुए किसी निर्धन अथवा सामान्य परिस्थिति के परिचित या अपरिचित संगीत जिज्ञासु को वे विमुख नहीं लौटाते थे। रावसाहब के संगीत सिद्धान्तों की आधारशिला परम्परागत गीत व उनमें निहित रागरूप हैं। ग्वालियर, जयपुर व रामपुर के प्रवाहों का त्रिवेणी संगम उनके गीतसंग्रह में हुआ है। रावजीबुवा बेलबागकर तथा गरणपतिबुवा मिलवड़ीकर से प्राप्त ग्वालियर के सैकड़ों गीतों की जाँच-पड़ताल एकनाथ पंडित व राजाभैया के गीतों से कराई जा कर उनके अन्तिम स्वरूप अन्य अनेक विद्वानों की सहायता से निश्चित किये गये। आशिक अली, अहमद अली से प्राप्त जयपुर के ख्यालों पर मुहम्मद अली खाँ कोठीवाल की स्वीकृति ली गई। अनेक प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध रागरूपों पर तथा उनके पुराने गीतों पर जुगलबंदी बाँधना, हररंग उपनाम से अनेक गीतों की रचना करना; इन सारी बातों में मुहम्मद अली कोठीवाल (हररंग) ने रावसाहब को बहुत प्रोत्साहित किया। 'सोहनी को चतुर सुनाय, हररंग को मन रिझाय' अथवा 'नाचत चतुर कान, हरख भरो हररंग' इस प्रकार का गुरु-शिष्यों का यह आदान-प्रदान 'कहे मियाँ तानसेन, सुनो शाह अकबर' की तुलना में संगीत के सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाता है। रामपुर घराने के गीत-संग्रह में रावसाहब को जिन्होंने सहायता दी; उनमें नवाब छम्मन खाँ, राजा नवाबअली खाँ, नज़ीर खाँ के नाम उल्लेखनीय हैं। नवाब साहब हामिदअली खाँ के वे गंडाबंध शागिर्द हुए थे, जिससे तानसेन कुल-दीपक नवाब वज़ीर खाँ एवं मुहम्मद अली खाँ गिधौरवाले की तालीम उन्हें प्राप्त हुई। ग्वालियर के ख्याल, ध्रुवपद, ख्यालनामे, तराने; जयपुर के ख्याल व अप्रसिद्ध रागों के गीत, सरगमें; रामपुर के ध्रुवपद, धमार, सादरे; इस प्रकार हिन्दुस्तानी संगीत की इन तीनों प्रमुख परम्पराओं के विभिन्न शैली में सैकड़ों गीत रावसाहब को उपलब्ध हो गये। वर्षों तक इन गीतों के रिकार्ड उन गायकों की सुघड़ आवाज़ में रावसाहब तथा उनके भाग्यशाली शिष्य-मित्र सुनते गये और सही-सही स्वर-लिपियाँ बनाते गये। उस जमाने में तार पर रिकार्ड किये गये ये गीत इन लोगों ने लालच में आ कर इतनी बार सुने कि अन्त में वे रेकार्ड ही नष्ट हो गये। स्व० पंडित वाड़ीलाल के मुख से उन गायकों को, उनके गीतों की समग्र जानकारी प्रत्यक्ष उदाहरणों सहित सुनना—सचमुच एक बड़ा ही आनन्द था। परन्तु उन गीतों की स्वरलिपियाँ उन रिकार्डों के नष्ट होने पर भी कागजों में सुरक्षित थी तथा उनके लिखाने वालों की स्वीकृति भी प्राप्त कर ली जाती थी। इन्हीं स्वरलिपियों ने आज संगीत को अमरत्व प्रदान किया है।

जिन गायकों से उन्होंने ये सारे गीत प्राप्त किये थे और जिन्होंने इनके प्रकाशन के लिये उन्हें अनुमति प्रदान की थी, उन सभी गुरुजनों के, शिष्यों के, मित्रों के नाम अपनी क्रमिक पुस्तक मालिका भाग ४ में उन्होंने दिये हैं। प्रसंगवशात् अपने शिष्य-मित्रों को गुरु स्थान का सम्मान देना उनके सुसंस्कृत एवं उदार मन का परिचायक है। संगीतोद्धार के जो-

जो साधन उन्हें उपलब्ध हुए, उनका उन्होंने पूरा-पूरा उपयोग किया। गुरु-शिष्य-परम्परा को भी अपनो इच्छित ध्येयपूर्ति में बाधक नहीं होने दिया।

नत्थन पीरबक्ष परम्परा के अनुयायी श्री राजाभैया पूछवाले को ग्वालियर के सभी गायक-वादकों में सर्वाधिक सुसंस्कृत एवं तालीम के अनुसार ज्यों का त्यों गानेवाला विश्वासपात्र गायक रावसाहब मानते थे। उनसे सैकड़ों ख्याल, ध्रुवपद, ख्यालनामे, तराने उन्होंने प्राप्त किये थे। आगे चल कर इन गीतों की संख्या क्रमिक पुस्तकों में इतनी अधिक हो गई कि इन पुस्तकों का वास्तविक ग्रंथकार किसको कहा जाना चाहिये; यह विवाद स्वयं रावसाहब ने ही राजाभैया के समक्ष उपस्थित किया। एक प्रसंग पर तो ग्रंथकार के स्थान पर राजाभैया का नाम छापने का उन्होंने प्रस्ताव रखा। कृतज्ञता, नम्रता से ओतप्रोत यह अनोखा आग्रह सुनकर सभी सुननेवाले आश्चर्य चकित हो गये। राजाभैया को उनके ही गुरु-बांधवों ने एक हार्मोनियम बजानेवाला संगतकार समझकर वर्षों तक उनकी उपेक्षा की थी। इधर रावसाहब तानबाजी की चमक-दमक, उछल-कूद, केवल कंठ-माधुर्य को ही प्रधानता न देकर गायकों में परम्परा के संरक्षण के गुणों को महत्व देते थे। अर्थात् परम्परागत गीतों को वेदमंत्रों के अनुसार हूबहू पेश करने के राजाभैया के असामान्य गुण का उन पर सर्वाधिक परिणाम हुआ। संगीतोद्धार के लिये साथियों की तलाश में राजा भैया का किया हुआ उनका चयन कितना फलदायी हुआ, यह बात सभी लोग भली भाँति जानते हैं। गीतसंग्रह पर राजाभैया का नाम अंकित करने के रावसाहब के प्रस्ताव का सभी साथियों ने विरोध किया। अपनी घोर तपस्या के परिणाम में अर्जित की हुई प्रतिष्ठा, अधिकार, लोकमान्यता का लाभ संगीतोद्धार में सम्पूर्णतः होना ही चाहिये, ऐसा साथियों का युक्तिवाद मानकर बाद में यह विवाद सदा के लिये मिटाया गया। रावसाहब का व्यक्तित्व प्रकाशित करने वाली यह घटना स्वयं राजाभैया ने डबडबाई हुई आँखों से मुझे सुनाई थी। सहृदय पाठक राजाभैया को रावसाहब का उस्ताद मानेंगे अथवा एक साथी या शिष्य? विद्या के आदान-प्रदान में महापुरुषों के विचार कदापि संकुचित नहीं रहते हैं। यह तो समझने वालों की शिक्षा-दीक्षा पर निर्भर रहता है। जिन साथियों ने संगीतोद्धार की दिशा में रावसाहब को सहायता दी, उनके प्रति स्थान-स्थान पर उन्होंने कृतज्ञता व्यक्त की है।

बिलसी के साहबजादा सादतअली खान बहादुर, जिन्हें छम्मन साहब के संक्षिप्त नाम से संगीत जगत् जानता है, उनके साथ भी रावसाहब के ऐसे ही मधुर सम्बन्ध थे। छम्मन साहब रामपुर के अधिपति स्वर्गीय नवाब साहब हामिद अली खान बहादुर के भ्रात्रीय थे। जिन्हें अपने पिता एवं चाचा से तानसेन-परम्परा की परमोच्च शिक्षा प्राप्त हुई थी। रामपुर रियासत में होम मेम्बर के दायित्वपूर्ण पद पर वे अधिष्ठित थे। उच्च परम्परा की संगीत की शिक्षा, राजपरिवार का सदस्यत्व, शासकीय अधिकार, आधुनिक शिक्षण से सुसज्जित छम्मन साहब का संगीत को आधुनिकतम बना देने के लिये विचार-पोषक रहना रावसाहब के लिये एक सुयोग था। छम्मन साहब का व्यक्तित्व, उनकी विद्या रावसाहब के लिए रामपुर में सर्वाधिक आकर्षण का केन्द्र था। छम्मन साहब का सन् १९२२ में अचानक स्वर्गवास होने तक उन्होंने उनसे भरपूर सहायता ली। मल्लार, सारंग, तोड़ियाँ, बिलावल,

कान्हड़े के उपरागों का विवाद इन्हीं छम्मन साहब की सहायता से अखिल भारतीय संगीत परिषद् के अधिवेशनों में बहुमत से प्रस्ताव पारित करते हुए, सदैव के लिये मिटाये गये थे ।

पारस्परिक आदान-प्रदान के परिणाम में दोनों संगीतोद्धारकों में वैचारिक एकता इतनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी थी कि सुनने वाले एक ही बात को दो भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से सुनने जैसा अनुभव करते । अपने मारिफुन्नग़मात भाग दो (सन् १९२४) के पृष्ठ ५५ पर ठाकुर नवाबअली साहब बिहाग राग में एक ध्रुवपद प्रस्तुत करते हैं । ध्रुवपद पर गायक की सील लगाते समय "नवाब छम्मन साहब और श्रीमान् बी० एन० भातखण्डे" ऐसी दोनों की मिली जुली मुहर प्रयोग में लाई है ।

"जो लों मारतंड, चंद्र सोहे असमान मांहि, शीष सेस भू अचल बनी रहे ॥
जो लों गंगा जमना कि धार धरो मंडल में, जो लों कैलास में कुबेर सो धनी रहे ॥
जो लों छीर सागर, उजागर जहाँ बीच, जो लों विष्णु-चक्र असुरन परगनी रहे ॥
सादत के प्रभु रसिक श्री नवाब बहादुर जो तो लों जग रावरी सो कीरत बनी रहे ॥"

ध्रुवपद के आभोग में छम्मन साहब अपने नाम को अंकित करते अपने अर्थात् दोनों गायकों के गुरुवर्य नवाब हामिद अली खान बहादुर का गुणगान करते हैं । गीत के संचारी में छम्मन साहब 'विष्णु-चक्र' का उल्लेख करते हुए अपने प्रिय गुरुभाई रावसाहब का 'तीव्र चक्र' अर्थात् 'विष्णु' द्वारा रचा हुआ संगीतोद्धार का अभियान असुरों को परगसने में सिद्ध हो, अथवा असुरों के परगने में उसका प्रभाव बना रहे; ऐसी मनोकामना व्यक्त करते हैं । प्रारंभ में जब यह गीत बना था, रावसाहब ने इसे ग्वालियर की धरती पर भी बोया । 'ज्वाल विष्णु चक्र असुरन पर बनी रहे' ऐसे शब्द प्रयोग उस समय रखे गये थे । हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, क्रमिक पुस्तक मालिका भाग ३ के पृष्ठ २३३ पर भी यह गीत यत्र-तत्र सुधार के बाद प्रकाशित हुआ है । अत्यंत स्पष्ट है, उपरोक्त गीत का निर्माण इन दोनों महान् शिल्पियों के सहकार्य का परिणाम था। कौन-सा टुकड़ा किसने किसको सुझाया ऐसी अटकलें आज लगाना एकदम अनावश्यक है । परन्तु दोनों संस्करणों में दिए हुए स्वरकरण से रामपुर एवं ग्वालियर प्रणालियों की अच्छाइयों का समन्वय करने के रावसाहब के सुविचारों का प्रत्यक्ष उदाहरण मिल जाता है । ग्वालियर के बिहाग-स्वरूप में अवरोही धैवत व रिखब का खुला प्रयोग कलात्मकता की दृष्टि से रावसाहब को अच्छा नहीं लगा । वहाँ पर वे रामपुर का अनुसरण ग्वालियर में हो, ऐसा चाहते थे । इसी प्रकार विवादी के रूप में अवरोही तीव्र मध्यम का ग्वालियर वाला अल्प प्रयोग रामपुर के स्वरूप के साथ ग्रहण किया गया तो 'लक्ष्यसंगीत' के बिहाग की शोभा और अधिक बढ़ जायगी; ऐसा सोचते । फलत: रामपुर की निप और गसा वाली मींड की लपेट ग्वालियर में प्रविष्ट हुई और ग्वालियर वाला $^{\text{म}}$प $^{\text{ध}}$म॑ $^{\text{प}}$म॑, $^{\text{म॑}}$ग म ग सुरबेत्रा आगे चलकर रामपुर में पहुँच जाने की व्यवस्था हो गई । साथियों के, उच्च घरानों के समादर का और छम्मन साहब तथा रावसाहब की वैचारिक एकता का और क्या प्रमाण चाहिये ?

चौवालीस वर्ष की अपूर्ण आयु में अचानक छम्मन साहब का स्वर्गवास हो जाने से रावसाहब की भावी योजनाओं को बहुत भारी क्षति पहुँची। राजधानी देहली में नेशनल अकादमी आफ म्यूज़िक की स्थापना का उनका रंगीन स्वप्न ध्वस्त हो गया और रामपुर में भी कोई अच्छा-सा विद्यालय स्थापित न हो सका। आयु से अठारह वर्ष छोटे होते हुए भी रामपुर के गायक-वादकों में छम्मन साहब को ही वे सर्वाधिक आदर से देखते, जिसका उल्लेख अपने भाष्य-ग्रन्थों में उन्होंने स्थान-स्थान पर किया है। इन दोनों महापुरुषों की वैचारिक एकता ने घरानों की गर्त में फँसी हुई इस कला को "हिन्दुस्तानी संगीत" के विशाल प्रांगण में प्रविष्ट कराया था। सुशिक्षित संगीत-सेवियों के लिये नये युग का शुभारम्भ था।

मारिफुन्नगमात के प्रसिद्ध लेखक राजा नवाब अली अकबरपुर के तालुकेदार थे। रावसाहब के विशाल गीतसंग्रह में, अखिल भारतीय संगीत परिषद् के अधिवेशनों की सफलता में, मैरिस कालेज आफ हिन्दुस्तानी म्यूज़िक की स्थापना एवं प्रबंध में राजा नवाबअली साहब का उन्हें संपूर्ण सहयोग प्राप्त था। राजासाहब के परम मित्र राय उमानाथ बली के मुख से इन दोनों के पारस्परिक संबंधों की मनोहारी चर्चा मैंने सुनी है। मारिफुन्नगमात के प्रकाशन का श्रेय राजासाहब अपने उस्ताद एवं परम मित्र रावसाहब को देते हैं। प्रथम भाग में उनके ही सारे गीत उद्धृत करते हैं। भूमिका, विषय-प्रवेश में अत्यंत स्पष्ट शब्दों में अपनी असीम श्रद्धा, कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। स्वराध्याय एवं तालाध्याय के दोनों प्रकरण रावसाहब की केवल अनुमति प्राप्त कर ही नहीं, अपितु शास्त्रीय विश्लेषण के उनके विचारों से प्रेरित होकर राजासाहब ने लिखे थे। असंदिग्ध भाषा में प्रकाशित इन स्वीकारोक्तियों की आज यदि कोई तोड़मरोड़ करने लगे तो हमारे उन बुजुर्गों की दिवंगत आत्मा को कितना क्लेश पहुँचेगा, इसकी कल्पना संगीत-प्रेमी वाचक स्वयं ही कर सकते हैं। आत्मसम्मान बढ़ाने के एक साधन में संगीत का उपयोग करने वालों के विरुद्ध ही तो रावसाहब ने संगीतोद्धार का अपना अभियान प्रारंभ किया था।

जनता के सम्मुख प्रामाणिक जानकारी रखने की उन्हें इतनी तीव्र आकांक्षा थी कि सन् १९२२ में गीतों के पाठभेदों पर विचार करने के उद्देश्य से हरिद्वार में एक सेमिनार बुलाई गई। स्व० माधवराव सिंधिया को भी इस कार्य में सहायता देने के लिये प्रेरित किया। फलस्वरूप राजाभैया आदि ग्वालियर के सात-आठ गायक अपने कागज-पत्रादि सहित हरिद्वार पहुँच गये।

गीतों के स्वरकरण पर इन विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए व रावसाहब ने अपने विस्मयकारक तर्कसंगत युक्तिवाद से मौखिक परम्परा के कारण भ्रष्ट हुए स्वरकरणों में सुधार किया। ऐसे प्रस्तावों पर जब तक ग्वालियर के इन विद्वानों की स्वीकृति प्राप्त नहीं होती थी, तब तक रावसाहब अपना दृष्टिकोण समझाने की बराबर चेष्टा करते रहते थे। गीतों का शुद्धिकरण सामूहिक चर्चा के द्वारा करना उनके विनम्र स्वभाव का एवं लोकतान्त्रिक प्रणाली में विश्वास का परिचायक है। प्रत्येक गायक को भाषा ज्ञानी होना ही चाहिए, ऐसा कोई नियम नहीं तथा सभी भाषाज्ञानी सांगीतिक भाषा का मर्म जानते हैं, ऐसा कहना भी उचित नहीं। गीतों के शाब्दिक पाठभेदों की यथार्थता का निर्णय संगीतज्ञ व भाषाज्ञानी परस्पर सहयोग से ही कर सकते हैं। इसी उद्देश्य से हरिद्वार की

इन बैठकों में शास्त्री, पंडित, मौलवी तथा परम्परा पर सच्ची श्रद्धा रखने वाले गायकों को रावसाहब ने एकत्रित किया और संग्रहीत प्रत्येक गीत की छानबीन कर छात्रों के लिए पाठ्य-पुस्तकों में सम्मिलित करने हेतु उन्हें उपयुक्त बनाया।

प्रसिद्ध किया हुआ गीतसंग्रह भारतीय रागों के सद्य.स्वरूप का प्रामाणिक चित्रण करनेवाला संग्रह होने के साथ-साथ इनका क्रमिक अध्ययन, मुख्यतः विद्यालयों के लिये उपलब्ध कराना था। अर्थात् छात्रों के हाथ में पड़ने वाला साहित्य, जहाँ तक हो सके निर्दोष एवं आज तक के सभी वाग्गेयकारों का, सभी खानदानों का, सभी गीतशैलियों का एक मिला-जुला भारतीय एकात्मकता को प्रकाशित करनेवाला होना नितान्त आवश्यक था। खानदानों के संकुचित वातावरण से विद्यालयों को अलिप्त रखने की उनकी इच्छा थी। एक खानदान के गायक द्वारा दूसरे खानदान को निकृष्ट समझने के कारण राष्ट्रीय एकता पर जो मर्माघात हुए हैं, उस पर वे व्याकुल हो उठे थे। हर गायक ने अपने इर्द-गिर्द खानदान, परम्परा, कुलाचार की कृत्रिम दीवारें ऐसी-ऐसी खड़ी कर रखी थीं कि कला के निरंतर विकास के सारे मार्ग अवरुद्ध हो गये थे। रामपुर का ग्वालियर से मतलब नहीं और ग्वालियर का जयपुर से मतलब नहीं। बेटे के खानदान की तालीम बेटे के ही वंश में पड़ी रहेगी और बेटी के खानदान के गीत अन्यत्र नहीं सिखाये जायेंगे। उस्ताद के मुख से जिन चीजों को चेले ने सुना केवल उन्हीं चीजों को वह अंत तक गाता रहेगा। दूसरे खानदानों में उनसे अधिक अच्छी चीजें अथवा संपूर्ण स्थायी-अंतरा भले ही उपलब्ध हों, परन्तु उन्हें कदापि न स्वीकारना; यही अपने खानदान का वैशिष्ट्य समझा जाता था। चीजों पर, रागों पर खानदान की मुहरें लग जातीं, जिनके कारण एक प्रकार का वर्ण-विद्वेष गायक-वादकों में फैल चुका था। सच्ची कला, सच्ची परम्परा के प्रतिनिधित्व के रूप में रामपुर, ग्वालियर, जयपुर के गीतों को एक बार स्वीकार कर चुकने के बाद इन गीतों को समस्त जनता की निधि वे बनाना चाहते थे। सदारंग अदारंग के ख्याल गीतों को "भिखमंगों के लिए बनाए हुए गीत" जैसे कुतर्कों से बचाना उनका ध्येय था। जयपुर के ख्यालों का ग्वालियर में समादर होने पर ही संगीत में राष्ट्रीय दृष्टिकोण जागृत होगा। ग्वालियर के वैशिष्ट्य को सम्हालते हुए रामपुर के गीतों का वहाँ अभ्यास हो, यह उनकी इच्छा थी। ग्वालियर के गीतों पर गायक का नाम निर्देश न करते हुए ग्वालियरी मुहर न लगा देने के राजाभैया के आग्रह में यही राष्ट्रीय-एकता की भावना प्रतीत होती है। कम से कम अपने स्कूली अध्ययन के समय तक तो छात्रों को ऐसी तोड़-फोड़ की बातें ज्ञात नहीं करानी चाहिए। हर घराने की खूबियाँ-कमियाँ जानने-परखने की वैचारिक क्षमता आ जाने पर ये छात्र इन गीतों का विश्लेषण, अभ्यास करते हुए संगीत के हिन्दुस्तानियत्व को पुष्ट करने में अपने आप समर्थ हो जावेंगे। परन्तु ऐसे प्रगल्भ विचार के अभ्यासक उस समय हिन्दुस्तानी क्रमिक पुस्तक मालिका के दायरे में ही क्यों अटके रहेंगे ? वे प्रत्येक सुन्दर वस्तु को चारों ओर से जुटाने लगेंगे। 'खून की तालीम' का गीत, 'दूध के रिश्ते' का गीत, 'लखनौ के कव्वालों' का ख्याल, 'नचैयों' के गीत, 'तनैतों' की फूलझड़ी, 'जयपुरिया' गीत—ऐसे उपहास भरे लेबुल लगाकर आधुनिक विद्यालयों में उनकी शिक्षा देना रावसाहब के आदर्शों के अनुसार नहीं था। हो सकता है राजाभैया, छम्मन साहब, ठाकुर नवाबअली साहब ने

इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर गीतों पर अपने-अपने नाम का सिक्का लगवाना पसंद नहीं किया। जिन अभ्यासकों को गायकों के नाम जानना अत्यावश्यक हो जायगा उनके लिए खास गवैयों के लिए लिखे हुए 'मारिफुन्नगमात' का प्रकाशन क्रमशः चल ही रहा था। ठाकुर नवाब अली साहब की स्वीकारोक्ति के अनुसार मारिफुन्नगमात भी तो रावसाहब की प्रेरणा का, मार्गदर्शन का फल था। अन्यथा अपने जीवित रहते हुए ही इन सभी महापुरुषों ने रावसाहब के विचारों से असहमत होने का प्रतिवाद क्यों नहीं किया? कम से कम राजाभैया के मुख से इस विषय पर मैंने जो विचार सुने थे वे तो 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति' इस नाम को सार्थक करनेवाले ही थे। अपने: उस्तादों से पर्याप्त मात्रा में तालीम न मिलने के कारण रावसाहब की पुस्तकों के शरण में अब आये हुए कुछ विद्वानों को 'वज़ीरखाँ की मनपसंद चीजें', 'छम्मन साहब की पसंद के धमार-सादरे', 'नज़ीर खाँ के गाये हुए गीत', 'गिद्धौरवालों की चीजें', 'जयपुरवालों की चीजें' आदि जंजाल को पनपानेवाला मसाला उन पुस्तकों में न मिलने के कारण घोर निराशा होना स्वाभाविक ही है। रावसाहब ने इन सभी उत्तमोत्तम गीतों को एकत्रित कर उन्हें 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति' की एक विशाल बलिष्ठ धारा में परिणत कर दिया था। समस्त भारतीय जनता की सामूहिक निधि में इन गीतों ने राष्ट्रीयता का एक अलग ही रंग पा लिया है। अब उन पर घरानों के धब्बे नहीं हैं। उन पर भारतीयत्व छा गया है।

वे सारे गीत अब न दूध के हैं और न खून के, न राजाभैया के और न छम्मन साहब के। मेरे जैसे सैकड़ों के, पाठकों जैसे कोटि-कोटि संगीत प्रेमियों के हैं। जनता की निधि जनता में बिखेर देने के रावसाहब के व्रत को उन्होंने सार्थक किया है।

इसी प्रसंग पर एक संस्मरण मुझे याद आता है। एक वयोवृद्ध एवं अधिकार-प्राप्त संगीत महर्षि का प्रदर्शन मैं सुन रहा था। संध्या-समय होने से कोमल रिखब, शुद्ध गांधार और दोनों मध्यमों के प्रयोग सहित प्रारम्भिक आलाप चल रहे थे। १५-२० मिनट तक अपने राग को प्रगट न होने देने का कलाकार प्रयत्न कर रहे थे। स्वरों के विशुद्ध गुंजन में राग की यथार्थ कल्पना के बिना मस्ती का वातावरण बन गया था। श्रोताओं में से एक ने मुझसे पूछा : "चिचोरे जी, कौन सा राग है यह?" उत्तर देते हुए मैंने कहा, "राग अपनी हंडी में अभी बंद है, महक पाते ही बताऊंगा।" जिज्ञासु मित्र से रहा न गया। वे भिन्न-भिन्न रागों के नाम लेने लगे। हमारी फुसफुसाहट से कलाकार की समाधि भंग हुई। इस बार उन्होंने मुझ से ही राग का वास्तविक नाम जानना चाहा। मैंने कहा : "अभी तक तो न पूरिया था, न पूरियाधनाश्री, न पूर्वी थी, न गौरी भी और न ही श्री"। पुनः आलाप जारी हुए और अचानक राग के घूँघट खोलते ही मैंने भी तपाक से उत्तर दिया, 'ललितागौरी से प्रणयचेष्टा हो रही थी'। कलाकार हँस दिये और मैं भी उनकी कुशलता से प्रभावित हुआ। कुछ देर बाद 'ए मुरली वाले साँवरे नेक मारग दे हो बताय रे' इस धमार के पद-विन्यासों पर आलाप के चरण बाँधना प्रारंभ हुआ। परिचित गीत को सुनने से मैं भी अपनेपन को महसूस कर रहा था। कलाकार ने पुनः मुझसे पूछा, 'यह गीत तुम्हें याद है?' मेरे 'हाँ' करते ही अपना प्रदर्शन रोक कर कहने लगे 'यह कदापि संभव नहीं। यह धमार तानसेन के बेटे के वंश का है, जिसे मरहूम वज़ीर खाँ साहब ने अपनी मृत्यु के छः मास

पूर्व केवल मुझे ही सिखाया था। अपनी एकमात्र संतान प्यारखाँ के मर जाने पर उन्हें अपार दुःख हुआ। अपनी विद्या छुपा कर रखने के परिणाम में स्वयं संगीत ने ही मुझे शाप दिया अन्यथा इतने परिश्रमों के बाद तैयार किया हुआ मेरा सुयोग्य बेटा मुझसे क्यों छीन लिया जाता ? मनस्ताप की उस अवस्था में इस धमार को मैंने पाया था। हमारी यह गुप्त-विद्या तुम्हारे पास कैसी गई ? अच्छा, सुनाओ तो देखें अस्ताई-अंतरा।' मैंने अपनी तालीम के अनुसार अस्ताई गाई। कलाकार भी मेरे साथ हो लिये। और मानो एक ही घराने की तालीम जैसा अस्ताई-अंतरा हम दोनों ने गाया। अंत में कलाकार का भ्रम दूर करने के लिए मैंने अपने गुरुदेव का नाम ले कर कहा 'रातांजनकर जी से मैंने इसकी तालीम पाई।' आत्मसंतोष के लिए कलाकार ने कहा, 'वे तो पढ़े-लिखे हैं। कई जगहों से मसाला इकट्ठा किया है। हो सकता है किसी अच्छे उस्ताद से सीख लिया होगा। परन्तु भातखंडे जी को यह सब उच्च तालीम नहीं मिली थी।'

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के क्रमिक भाग छः के पृष्ठ क्रमांक ६७ का उस समय मुझे स्मरण नहीं था। विवाद उपस्थित कर संगीत का आनंद नष्ट करना मैंने उचित नहीं समझा और चुप हो गया। रात को उसी धमार की स्वरलिपि भातखंडे जी की पुस्तक में पाते ही आत्मविश्वास से और रावसाहब के सत्प्रयत्नों से हृदय गद्गद् हो उठा। दूसरे दिन कलाकार महोदय को पुस्तक दिखाने पर उत्तर मिला, 'भातखंडे तो बहुत चालाक था। वकील भी था न ? हमारे उस्ताद को ठगा कर लूट लिया होगा।' मैंने पुनः प्रतिवाद करते हुए कहा : 'यह धमार रामपुर से नहीं, जयपुर वाले आशिकअली खाँ से भातखंडे जी को मिली।' वार्तालाप के इस प्रसंग पर वे प्रायः निरुत्तर हो चुके थे, परन्तु फिर भी चलते-चलते उन्होंने मुझसे कह ही दिया कि 'भातखंडे जी को तो केवल अस्ताई-अंतरा ही मिला था। मुझे संचारी और आभोग भी मिला है।' कलाकार का मुझपर अत्यन्त प्रेम था और मैं भी उनकी विद्या के सामने नतमस्तक था। 'तुम्हारे जैसों को मैं अवश्य सिखाऊँगा' ऐसा मुझे आश्वासन भी इस चर्चा के फलस्वरूप दिया गया।

इन्हीं शब्दों सहित एक धमार ठाकुर नवाब अली साहब मारिफुन्नगमात भाग २, पृष्ठ ११२ पर प्रस्तुत करते हैं। वहाँ गायक का नाम 'मोहम्मद अली खाँ' (गिधौर वाले) दिया है। ललितागौरी का यह धमार वहाँ पर केवल कोमल धैवत से दिया है। और रचना लगभग दो मध्यम वाली गौरी के सदृश्य है। रावसाहब के दिए हुए इस धमार को देखने से यही प्रतीत होता है कि उनके निरन्तर संग्रह एवं व्यासंग करते रहने के कारण कालांतर से जहाँ भी उनका मत परिवर्तन हुआ जिज्ञासुओं के सम्मुख अनेक प्रसंगों पर वे रखते आये हैं। सम्भवतः रावसाहब द्वारा संग्रहीत इन सभी गीतों के स्वरकरण उन्हें विभिन्न गायकों से प्राप्त हुए होंगे। जब एक ही गीत को चार-पाँच स्थानों से प्राप्त किया था तो उसकी प्राप्ति का दायित्व किसी एक पर रख छोड़ना कहाँ तक उचित होता ? और इन सब की नामावली से छात्रों को अथवा सर्वसाधारण पाठकों को क्या लाभ होता ? स्व० वाड़ीलाल, राजाभैया ने तो यहाँ तक बताया था कि ध्रुवपद-धमार-सादरों में ऐसे कई गीत थे जिनके स्थायी-अंतरा-संचारी-आभोग ऐसे चार-चार तुक थे। ग्वालियर के कुछ बड़े ख्याल भी चार तुकी बने हुए थे। परन्तु पुस्तकों का आकार बढ़ जाने के साथ-साथ उनका मूल्य भी

बढ़ना क्रमप्राप्त हो जाता। और ऐसी भारी भरकम पुस्तकों को प्रतिदिन विद्यालयों में ले जाना छोटे-छोटे बालकों को कठिन भी हो जाता। इन सब विचारों से यही लगता है कि समय की माँग पूर्ति रावसाहब ने अपनी पुस्तकों द्वारा यथायोग्य कर दी थी। इन पुस्तकों को कामधेनु समझना कहाँ तक न्यायोचित होगा ? प्रत्येक विद्या में पुस्तकों का महत्व एक निश्चित सीमा तक ही होता है। उनपर अधिक दायित्व डालना बुद्धिमानी नहीं है और साथ-साथ उनसे घृणा करना भी वर्तमान युग के लिए स्वयं को अयोग्य साबित करना है।

जिस बीसवीं शती के प्रथम पूर्वार्ध ने संगीत का प्रचुर साहित्य उपलब्ध करा दिया, विद्या के क्रमिक विकास के सारे सूत्र सुशिक्षितों के हाथों में चुन-चुन कर समर्पित किये, उसके उद्धार का देशव्यापी आन्दोलन खड़ा करा दिया, जिसमें भाग लेनेवाले कंधे से कंधा मिला कर एकत्रित हुए, कलाकारों का मनोमालिन्य बहुत हद तक दूर किया, हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाइयों को एक मंच पर उपस्थित करते हुए विदेशी हुकूमत के उस जमाने में भी, संगीत में ओत-प्रोत हमारी भावात्मक-एकता के गुणों को प्रकाशित किया; उस उज्ज्वल इतिहास पर कालिख पोतने का अट्टहास संगीत की सेवा नहीं है। कुछ समय पूर्व भातखण्डे-पलुस्कर वाद ने भी वातावरण दूषित किया था। उस जहरीले विवाद की बेसुरी चिल्लाहट आज भी समय-समय पर उपस्थित की जाती है। वैचारिक मतभेदों का सदुपयोग कर लेना चाहिए न कि दुरुपयोग। समाज में संगीत के प्रति अनास्था, अनादर निर्माण करने वाली कोई भी छोटी-बड़ी हरकत करना आत्मघात है। सखोल व्यासंग, विद्या, साधना, तपस्या, चारित्र्य के अभाव में समाज पर अपनी-अपनी धाक जमाने के लिए ऐसी बातों का आश्रय पेशेवर गायक-वादक लेते आये हैं। डाक्टर, वकील, कवि, साहित्यकार, मजिस्ट्रेट, प्रोफेसर, इन्जीनियर जैसे सभी गणमान्य व्यक्ति अपनी-अपनी विद्या में तो उत्तमोत्तम साहित्य को ढूंढ़-ढूंढ़ कर उनका अध्ययन करते हैं। वहाँ पर ईर्ष्या-विद्वेष को तिलांजलि देकर अपने विषय की हर छोटी-बड़ी समस्या की चर्चा-आलोचना करते हुए उनको हल करा लेते हैं। परन्तु ये ही सज्जन जब हमारे संगीत पर सोचने लगते हैं तो वही निराक्षरों की-सी बातें करने लगते हैं। संगीतोद्धार में बाधा निर्माण करने वाली इन प्रवृत्तियों के खिलाफ रावसाहब ने निर्भीकता से लिखा है।

रावसाहब, सौरीन्द्र मोहन ठाकुर, छम्मन साहब, ठाकुर नवाब अली, अब्राहम दीक्षित, जाकिरुद्दीन अलाबन्दे, कारनाड, सुकथनकर, वाड़ीलाल, राजाभैया, फ्रेडलिस, अप्पा तुलसी, दत्तात्रेय जोशी, ब्रिजकिशन कौल, राय राजेश्वर बली, प्रेमवल्लभ जोशी, शिवेन्द्र बसु, नारायणराव रातांजनकर, प्रो० एस० एल० जोशी, क्लेमेन्ट्स, देवल, फैयाज खाँ, विष्णु दिगम्बर, सयाजीराव, माधवराव सिंधिया, बलवन्तराव सिंधिया, नवाब हामिद अली खाँ बहादुर, विलियम मैरिस, बैरिस्टर जयकर, मदनमोहन मालवीय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे सैकड़ों महामानवों ने खून-पसीना एक कर संगीत की प्रतिष्ठा बढ़ाई। संगीत की इज्जत बढ़ाना और सांस्कृतिक एकात्मकता प्रस्थापित कराने के लिये उसे सक्षम बनाना--यही उस आन्दोलन का एकमात्र लक्ष्य था। यह तो केवल एक संयोग है कि संगीत द्वारा समूचे

भारतीय समाज को एक सूत्र में बाँधने के उस समय के इन सैकड़ों सुशिक्षित संगीत प्रेमियों के वे विचार रावसाहब की शक्तिशाली लेखनी को लिखने पड़े। उस अमरलेखनी ने सिर्फ तीस-चालीस वर्ष के भीतर संगीत शास्त्र के साहित्य का अविरत रूप से सृजन कर डाला। कोई माने या न माने यह एक नितान्त सत्य है कि रावसाहब का वह प्रचण्ड साहित्य भण्डार ही आज के संगीत-विद्वानों का एकमात्र प्रेरणा-स्थान है। संगीत में ऐसा विशाल और निष्पक्ष साहित्य-सृजन इस देश में आज तक नहीं हो पाया है।

गीतरचना की दिशा में रावसाहब ने जो कुछ किया है वह भी उनके बहुमुखी संगीत सेवा का एक सुदृढ़ स्तंभ है। नये-नये गीत रच कर सदारंग-अदारंग पर मात करना उनका उद्देश्य नहीं था। जिन रागों में परम्परागत गीतों के उत्तमोत्तम नमूने मौजूद हैं, वहाँ पर अपनी शक्ति का अपव्यय उन्होंने नहीं होने दिया। स्थायी के एक-दो टुकड़ों में मृतवत् पड़े हुए रागों में नवीन गीत रचना कर उनमें प्राण फूँक दिये, उनके गुणों का सम्पूर्ण विकास कर उन्हें पुनः राग कहलाने योग्य बना दिया। जिन गीतों के स्वरकरण पर वे आकर्षित हुए, परन्तु शब्द रचना निम्नकोटि की प्रतीत हुई वहाँ पर उन्होंने नवीन शब्दयोजना की अथवा जुगलबन्दी का प्रयास किया। सैकड़ों लक्षणगीतों की रचना ही संगीत की एक अन्य विस्मृत परम्परा को पुनरुज्जीवित करने का तथा अपने संगीत सिद्धान्त पेशेवर गायक-वादकों एवं सभी संगीत शिक्षार्थियों तक पहुँचाने का उनका सहज सुलभ और प्रभावशाली प्रयास था। दूसरों से वार्तालाप वे अवश्य ध्यानपूर्वक करते थे, परन्तु जब भी वे चुपचाप बैठे रहते अथवा अकेले रहते, गीत गुनगुनाना बराबर जारी रहता, हाथ की उँगलियों से लयकारी चलती रहती और ऐसे ही क्षणों में वे गीत रचना करते जाते।

कवि का भावुक हृदय उन्होंने स्वभावतः पाया था।

"गाजे राजे, घन गरजत, अत बरसत, द्रुम बेली सब हरखत।
चातक शिखि करत शोर, घन घन घन राजे ॥ स्थायी ॥
इंदर धनुख सोहत नभ, दामिनि दमकत चमकत।
राग मलारी उचरत, कवि चतरा आजे ॥" अन्तरा ॥

गौड़मल्हार के इस गीत में उस राग का एक अनोखा स्वरूप प्रगट करते हुए बहुवर्णित वर्षा ऋतु के उल्हासपूर्ण वातावरण की शोभा प्रगट की है।

"इन में कौन राधिका रानी,
सब मेला में ढूंढ़न जाऊँ, जानुँ प्रेमरस खानी ॥ स्थायी ॥
रुकमनि पूछत चलि सखियन सों, प्रेम चतुर मृदुबानी,
जिस पर प्रभुजी प्रेम रखत है, यहि क्या पुरन कमानी ॥" अन्तरा ॥

स्त्री-सुलभ ईर्ष्या के माध्यम से भक्तवत्सल कृष्ण भगवान् के उदात्त व्यक्तित्व को प्रगट करने के लिए दरबारी जैसे विशाल एवं बहुरंगी राग के अतिरिक्त और क्या उपयुक्त होता? एक सौ चार अंश तक शीत ज्वर से पीड़ित होते हुए भी सुहा राग की सुहावनी छबि में,

"सोहत गल बीच बैजंती माला,
मोर मुकुट नैन विशाला ॥ स्थायी ॥
मकराकृत कुण्डल ललट कचाला,
चतरा के हररंग प्रभु नंदलाला ॥" अन्तरा ॥

नंदलाला का ही सान्निध्य वे अनुभव करते रहे। नंदलाला के रूप में अपने गुरुदेव 'हररंग' को देख कर त्रिताल में निबद्ध सुहा राग के इस गीत में दादरे का प्रवाह निर्माण कर देना उनके संगीतमय हो जाने का साक्षी है।

"बरसन के बादर कारे,
उमड़ घटा घन बिजरी चमके, दिन तरवर हरियाला रे ॥ स्थायी ॥
नंद कुंवर फरज़नवा सखि, जमना टट त्रिगवा रे,
मोर धरे सिंगार सुघर अत, राग मलार उचारे" ॥ अन्तरा ॥

सुरमल्हार के इस पुराने गीत पर जुगलबन्दी का दूसरा निम्नांकित गीत बना कर रावसाहब ने प्रकृति के दो परस्पर विरोधी चित्र प्रस्तुत कर दिए हैं। इसी राग में एक ही स्वर-संगीत द्वारा केवल उच्चारण की कुशलता से दो परस्पर विरोधी प्रसंग वर्णित किए गए हैं।

"बरखा रुत बैरी हमारे।
मास अखाड़ घटा घन गरजत, पियु परदेस हमारे ॥ स्थायी ॥
दादर, मोर, पपैया, चातक, पियु-पियु करत पुकारे,
अब न सहत सखि चतुर बिरह दुख, निकसत प्रान हमारे" ॥ अन्तरा ॥

उथले विचार के गायकों को मारवा राग में विस्फारित नेत्रवाली, नग्न खड्ग धारण करते हुए सर्वत्र संहार, मार-काट करने वाली रणचण्डी का स्वरूप मिला तो राव साहब को उसी राग में विरहिणी नायिका की विरह व्यथा भी प्रतीत हुई।

"जाओ मोहन मोरे फौंद परोना,
कपटि कुटिल हम, आप भले हो, गुननिधान और श्याम सलोना ॥ स्थायी ॥
मन्द मति हम, कान चतुर तुम, बिरह बिथा भले हमको सतावत,
मौंदिर में अब देर परेगी, क्यों पूछो तुम हमरो रोना" ॥ अन्तरा ॥

सम्भवतः रावसाहब यह प्रगट करना चाहते थे कि वर्तमान राग सृष्टि में से एक-एक को पकड़कर उन पर ग्रंथोक्त सात-आठ-नौ अथवा दस रसों को थोप देना नितान्त अन्याय होगा, इससे उनकी कलाभिव्यक्ति मर्यादित, संकुचित हो जायगी। रावसाहब के इन अनुपम प्रयत्नों से संगीत उनके रग-रग में किस प्रकार भिन गया था इसका अनुमान होता है।

संगीतानुरागी भावी पीढ़ी के लिये रावसाहब ने जो विशाल मुद्रित साहित्य पीछे छोड़ा है उसमें अथवा अपने स्नेही-बांधवों को समय-समय पर लिखे हुए पत्रों में स्वयं

अपने विषय में उन्होंने बहुत कम अवसरों पर लिखा है। गीत रचना के उनके विषय तो आमूलाग्र संगीतमय रहे।

> **"काहे मदन इतनो श्रम !**
> **बिरथा मो मन को हरन, कोकिल बस करो निष्फल,**
> **कलरव अपनो मनोरम ॥ स्थायी ॥**
> **मुग्धा तुमरे कटाक्ष, लोल मधुर स्निग्ध परम,**
> **हमतें क्यूँ डारो तुम, हर सों जब लागि लगन ॥" अन्तरा ॥**

उत्तर रात्री के परज राग में निबद्ध इस शब्दावली के साथ प्राणिमात्र का सन्तुलन अस्त-व्यस्त कर देने वाले कामदेव को ही रावसाहब ललकारते हैं। मुझे विचलित करने के तुम्हारे सारे प्रयास व्यर्थ हो जाएँगे। क्योंकि मैं 'हर' में पूर्णतया विलीन हो गया हूँ। 'हर' शब्द से अपने गुरुदेव मुहम्मद अली कोठीवाल की ओर भी वे संकेत करते हैं। चतुर, चतर, चतरा, चत्र, चेत, हररंग, हर आदि विभिन्न नामाभिधानों सहित रचे हुए सभी गीत पण्डित भातखंडे की रचनाएँ हैं। 'चतुर' नामाभिधान से उन्होंने सिद्धान्त-ग्रन्थों की रचना की थी, जिसका वे गीत रचना में भी उपयोग करते रहे।

जयपुर के मनरंग घराने के वंशज आशिक अली, अहमद अली बन्धुद्वयों से सैकड़ों गीत प्राप्त हो जाने पर इस काम में उनके वालिद मुहम्मद अली खाँ के आशीर्वाद की राव साहब को आवश्यकता हुई। निरन्तर प्रयास से वह भी साध्य हुआ। वे उनके शागिर्द हो गये। स्वरचित ऐसे अनेक गीत उन्होंने मुहम्मद अली खाँ को समर्पित किये हैं।

> **"हर को हर हर में पछाना,**
> **आलक आद निरंजन तू ही,**
> **घट-घट बीच समाना ॥ स्थायी ॥**
> **गुपत प्रगट तू दोउ जगत में**
> **कहुं जाहिर कहुँ छाना**
> **अलख-अलख लख रूप वाहि को**
> **हररंग रूप समाना" ॥ अन्तरा ॥**

त्रिताल में निबद्ध मालकौंस राग में इस गीत द्वारा अपने दार्शनिक विचारों का परिचय देते हुए गुरुदेव के नाम का रावसाहब मानो जयघोष कर रहे हैं। ऐसे अनुपम गीत को स्मृतिग्रंथ द्वारा सर्व प्रथम प्रकाशित करते हुए सचमुच आनन्द होता है। निबद्ध, अनिबद्ध गान की व्याख्या सहित आलाप के दस लक्षण समझानेवाला उनका एक लक्षण गीत ऐसे ही प्रथम बार वाचकों को समर्पित किया जा रहा है। 'चतुर' जिन लक्षणों को मानता है ऐसे रागालाप अपनी 'दरबारी' चाल ढाल में 'झूमते' हुए इस गीत में देखिये :

> **"राग अलाप लच्छन माने (चतुर गुनि माने)**
> **ग्रह, अपन्यास, न्यास सों अंश,**

मोंदर, तार, ओडव, खाडो,
अल्प, बहुत साच पछाने (बखाने) ॥ स्थायी ॥
रूपक गीत खण्ड करे गुनि,
सुरपद ताल चत्र सुजाने,
आक्षिपतिक पद लय जाने" ॥ अन्तरा ॥

ध्रुवपद शैली का विस्तार एवं गांभीर्य ख्याल-गीतों में भी दृष्टिगोचर हो इस उद्देश्य से 'दरबारी' का यह दूसरा गीत विपुल तानों एवं सार-गर्भित भाषा से परिपूर्ण है :

"सुमरन कर मन पवित्र निरगुन परब्रौह्म,
फिर पछतावे गो तू मानि, वृथा अभिमान
जरा कहीं अरे अरे मन ॥ स्थायी ॥
जोबन स्वरूप तन, हो जावे दहन,
नहिं साथ संगाध, कलत्र पुत्र वतन,
जो चाहे मुक्ति को, चतुर तू जतन
सुमिरन कर मन पवित्र निर्गुन परब्रौह्म" ॥ अन्तरा ॥

वर्तमान रागसृष्टि के तथा प्राचीन-अर्वाचीन साहित्य ग्रंथों के अध्ययन, मनन, चिन्तन का निचोड़ उनके गीतों में प्रवाहित हुआ है। उनके इन गीतों ने सभी रागों को पुष्ट किया है। गीतों के ये नमूने कण्ठस्थ हो जाने पर रागों की गायकी समृद्ध होती है।

ऋतुसंहार में कालिदास ने वर्षा का वर्णन जिन पंक्तियों में किया है उनमें से चार श्लोकों का सारांश मेघमल्हार में रचित रावसाहब के ध्रुवपद में पाया जाता है। जुगलबन्दी का यह प्रयास रागदारी गीत रचना के लिये अनुकरणीय है। जहाँ तक हो सका महाकवि के ही शब्दों को रागोचित स्वरूप दिया गया है :

ससीकराम्भोधरमत्तकुञ्जर- स्तडित्पताकोऽशनिशद्बमर्दलः ॥ समायतो राजवदुद्धतद्युतिर घनागमः कामिजनप्रियः प्रिये ॥१॥	आयो अब बरखा रुत ओत्कट कांति नरेश अम्बोधर नग प्रमत्त कामीजन सब हरखत ॥ स्थायी ॥
नितान्तनीलोत्पलपत्रकान्तिभिः क्वचित्प्रभिन्नाञ्जनराशिसन्निभैः ॥ क्वचित्सगर्भप्रमदास्तनप्रभैः समाचितं व्योम घनैः समन्ततः ॥२॥	चमकत दामिनि पताक, डंका भयो असनी रव, केष्ण बरन मधुर मेघ गगन भज्यो समतान्त ॥ अन्तरा ॥
तृषाकुलैश्चातकपक्षिणां कुलैः प्रयचितास्तोय भरावलम्बिनः ॥ प्रयान्ति मन्द बहुधारवर्षिणो बलाहकः श्रोतमनोहरस्वनाः ॥३॥	बहुधार घन बरसत, तोय भार मन्द चलत, अत मनहर नाद करत चातक कुल सब हुलसत ॥ संचारी ॥

प्रभिन्नवैदूर्यनिभैस्तृणाङ्कुरैः
समाचिता प्रोत्थिकन्दलीदलैः
विभाति शुक्लेतररत्नविभूषिता
वराङ्गनेव क्षितिरिन्द्रगोपकैः ॥४॥

अभिनव दूर्वा, कौंदलि
मौंडित छिति सोहत अत
भूखन नव रतनादिक
भेख बधु चतुर कहत ॥ आभोग ॥

सांगीतिक भाषा में साहित्यिक गुणों की रक्षा करने के ये प्रयास भावी गीतकारों का यथेष्ट मार्गदर्शन करते हैं ।

"सखि ! आज प्रमाद भईला,
साजन आप तजीला ॥ स्थायी ॥
चादु बचन कछु श्रवन न कीने अर्पित हार तजीला,
बोध सखीजन के अवमाने, पच्छाताप भईला ॥ अंतरा ॥
चरनन ते गिर पर्यो चतुर सखि, तबहुं न हाथ गहीला,
कलहान्तरिता कहत नायिका, जिया में दाग़ रहीला ॥" अंतरा ॥

नायिकाओं की विभिन्न अवस्थाओं पर संगीत में चतुर गीत रचना हुई है । उपरोक्त गीत में रावसाहब कलहान्तरिता नायिका का वर्णन करते हैं। रागदारी गीतों में शब्द एवं स्वर एक दूसरे के पोषक होते हैं। अतः अच्छे गीतों का निर्माण एक शास्त्र का विषय है। उनकी रचना के अपने नियम होते हैं। "आज प्रमाद भईला, सखि आज प्रमाद भईला, साजन आप तजीला, आज प्रमाद भईला" इस प्रकार से अपने प्रमादों पर पश्चात्ताप व्यक्त करनेवाली नायिका "अर्पित हार तजीला" कहते समय

सा
ग — ग ग | ग म — म म |
अ S र्पि त | हा S र त |

रे गग मप धनि धप | मग रेसा रेनि सा — |
जी S S S S S S S | S S S S S S ला S |

इस छोटी-सी तान से हार के तज देने की क्रिया को प्रदर्शित करती है। यही रावसाहब की रचना चातुर्य की महानता है। फेंक दिया हुआ हार रेनि सा —
S S ला S

इस टुकड़े के साथ जमीन पर गिर जाना, आगे चल कर चरनन ते गिर पर्यो चतुर सखि, तबहुँ न हाथ गहीला'

कहते समय सां — — रे गं | रें गं गं रें सां नि सां — | नि ध — प — |
हा S S थ ग | ही S S S S S S | ला S S S |

इस छोटे-से खटके के साथ अभिमान सहित हाथ का झिड़कना रावसाहब की यथार्थता का चित्र प्रस्तुत करने के कौशल का छोटा-सा उदाहरण है ।

रावसाहब के लक्षणगीतों ने तो आबाल-वृद्ध सभी संगीत जिज्ञासुओं को सम्मोहित कर दिया था। 'गुनि गावत काफी राग' घर-घर में गाया जाने लगा। उनके बनाए हुए लक्षणगीतों का संग्रह विभिन्न प्रकार के गीतों से परिपूर्ण है। (१) रागों के लक्षणगीत, (२) शास्त्रीय सिद्धान्तों पर बनाए हुए लक्षण गीत तथा तालों के लक्षणगीत। "सखि आज प्रमाद भईला" यह गीत भी उस दृष्टि से लक्षणगीत ही कहलाएगा।

राग-रचना एवं संगीत के शास्त्रीय सिद्धांतों पर लिखे हुए सैकड़ों लक्षणगीत संगीत के नभो-मंडल पर आज छा गये हैं। इन गीतों ने वर्तमान रागों की सूरत-शक्लें, उनके बर्ताव सुनिश्चित कर दिये हैं। उनके ये सभी गीत अपने अद्भुत सांगीतिक गुणों के कारण इतने प्रिय एवं परिणामकारी हो चुके हैं कि रागों के साथ छेड़छाड़ करने वाले किसी भी सिरफिरे गायक-वादक को जनता अब शान्ति से नहीं सुनती। हर छोटी-बड़ी महफ़िल में उसे टोकने वाले अनेक खड़े हो जाते हैं। सिद्धांत विषयक लक्षणगीतों में कला स्थैर्य प्रदान करने वाली बातों का रहस्योद्घाटन कर दिया है। शास्त्रीय गूढ़ार्थों को सुगम एवं मनोरम कर दिया है। 'अब चतुरदौंडि मत व्यंकटमखि सुनाय' इस गीत को मुखस्थ करते ही बहत्तर थाटों की मेलनक्रिया जिह्वाग्र हो जाती है। अथवा 'मूलक्रम आद लिखत' याद करते ही खंडमेरू का रहस्य स्पष्ट हो जाता है। आगामी पृष्ठों में ऐसे कुछ गीत पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किये जाएँगे।

लयकारी के स्पंदन से स्वरपंक्तियाँ प्राणयुक्त हो जाती हैं। ताल उन्हीं पंक्तियों को आकार देता है, उनको स्वरूप प्रदान करता है। ताल में बँधी हुई आकृति समझदारों के हाथ में जाने पर कलाकृति हो जाती है। भारतीय रागरचना की भाँति तालसृष्टि ने भी रावसाहब को उतना ही मोहित किया था। प्रचलित दस-पंद्रह तालों में अपनी अधिकांश रचनाओं का निर्माण करते हुए कतिपय अप्रचलित तालों में भी उन्होंने अपने गीत गाये हैं।

"जय जय सारंगपाणे !
मां परिपालय तारय
दीनं अनाथं मां भवभय-हर ॥ स्थायी ॥
मन्दोऽहं पतितोऽहं शरणागत
इह न अन्यं जाने कमपि
चतुर ! करुणा-कर ! ॥" अन्तरा ॥

बीस मात्रा के मुकुन्द ताल में निबद्ध संस्कृत भाषा की यह रचना विविध मात्रा-विभागों से बने हुए तालों द्वारा संगीत को समृद्ध बनाने का ही एक प्रयास है।

"नाचत गजलीला मिल जुवतिसन,
जमुना तट पर खेलत मनमोहन ॥ स्थायी ॥
अगणित भाव करत लय नव परन,
चतर हंसत लघु लघु लघु लघु विरम ॥" अंतरा ॥

सत्रह मात्रा वाले गजलीला ताल के इस लक्षणगीत में ताल का लक्षण 'लघु, लघु, लघु, लघु, विरम' इस अर्थपूर्ण भाषा में रावसाहब करते हैं। यह गीत भी पाठकों की सेवा में प्रथम बार समर्पित किया जा रहा है।

रावसाहब के लक्षणगीत एवं अन्य गीत रचना का मार्मिक अध्ययन करने पर संगीत में उनकी रुचि-अरुचि का बोध हो जाता है। ध्रुवपद व ख्याल वर्तमान प्रबन्ध-गीतों की दो प्रमुख एवं प्रतिष्ठित शैलियाँ हैं। चाहे शास्त्रों के प्रगाढ़ अध्ययन का परिणाम कहिए अथवा रामपुर के प्रथितयश गायकों का प्रभाव कहिए, ध्रुवपद की शैली उन्हें अधिक प्रिय थी, ऐसा अनेक स्थानों पर प्रतीत होता है। उनकी अधिकांश गीत रचना झपताल, चौताल में हुई है। त्रिताल में निबद्ध उनके अनेक गीत, ध्रुवपद के ढाँचे पर बनी हुई ग्वालियर की प्रौढ़ एवं विस्तृत ख्याल गायन शैली ने उनको कितना मोहित किया था; इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। इन सभी गीतों का स्वरकरण वर्तमान रागसृष्टि में रावसाहब की चिरस्मरणीय देन है। गीत का प्रारम्भ ही ऐसे चुने हुए टुकड़ों से वे करते कि रागस्वरूप एक विशाल चट्टान पर खड़ा हुआ प्रतीत होता था। जिन "पते की तानों" को सीखने-समझने के लिए पुराने उस्तादों के पास सालों व्यतीत करने पड़ते थे, उन्हें इन लक्षण गीतों में चुन-चुन कर स्थान-स्थान पर सजा दिया है। राग के स्थायी अन्तरे का उठाव, उसके क्रमिक विकास एवं उपसंहार का यथार्थ ज्ञान हो जाता है। प्रत्यक्ष गायन में राग का स्वरूप प्रस्थापित करने एवं उसका विस्तार करने के लिए ये सारी बातें आवश्यक होती हैं और तभी तो उनके गीतों का खानदानी गायक-वादकों ने इतना समादर किया।

मरहूम नज़ीर खाँ साहब ने इन गीतों का पेशेवर गायकों में इतना प्रचलन किया कि उस समय के बड़े-बड़े कलाकार भी रावसाहब के लक्षण गीतों को कंठस्थ कर अपने रागों को सुधार लेते थे। अकबरपुर के राजा नवाबअली खान ने 'मारिफुन्नगमात' के अपने प्रथम भाग में रावसाहब के लक्षण गीतों को ही रागों के सर्वोत्तम नमूने के रूप में सम्मिलित कर लिया था। मरहूम उस्ताद बुन्दू खाँ सारंगिये को रावसाहब के सभी लक्षणगीत मुखस्थ थे और उन्हें महफिलों में बजाते हुए स्वयं मैंने अनेक बार सुना है। 'गावो बागेसरी' इतनी ही पंक्ति वे अनेक बार बजाते रहते और सिर्फ इतने से टुकड़े में ही बागेश्री की आत्मा कैसी सजीव हो गई है, इसका रसास्वादन अपने श्रोताओं को कराते रहते। "मनि बरज गाय" भूपाली के लक्षणगीत में 'राग भेद समझायँ चतर' इस पंक्ति को बजाते समय अपनी आँखों से आँसू टपकाते हुए बुन्दू खाँ को स्वयं मैंने देखा है। रावसाहब के विषय में वे अक्सर कहा करते : 'ऐसा सुलझे हुए दिमाग़ का कारीगर हिन्दोस्तान में आज तक पैदा नहीं हुआ।'

संगीत विद्या के उत्थान के लिए अक्षरशः तन, मन, धन का बलिदान करते हुए रावसाहब ने अपनी परिस्थिति का अधिक से अधिक उपयोग किया। देश के कोने-कोने से ढूँढ़ कर संकलित किया हुआ साहित्य नितान्त आधुनिक प्रणाली से इतनी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कराया कि सदियों से पिछड़े हुए संगीत की प्रतिष्ठा अन्य सभी विद्याओं के समकक्ष हो गई।

उन्नीसवीं सदी में इन्हीं खानदानी गीतों के खंडित अंश पाने के लिये सालों इधर उधर भटकना पड़ता था। विद्योपासक जनता के कष्टों को देख कर उनका हृदय रो पड़ा। खानदानी छुपे खजाने लुटाकर बग़ावत करने का उन्होंने प्रण कर लिया। सन् १९१९ से लेकर अपने अंतिम क्षणों तक एक-एक पैसे में लगभग दो-दो गीत उन्होंने भारतवासियों के घर-

घर में बिखेर दिये। विश्व के संगीत इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ, जो रावसाहब ने अक्षरशः निष्कांचन होते हुए वर्तमान संगीत को बचाये रखने के उत्तुंग विचारों से इस देश में किया, परन्तु फिर भी इतने पर वे सन्तुष्ट नहीं थे। देश की समस्त सांगीतिक प्रवृत्तियों का, क्रियाकलापों का संरक्षण, संवर्धन, संचालन अविरत रूप से चलता रहे, इस दृष्टि से एक देशव्यापी केन्द्रीय संस्था का निर्माण वे करना चाहते थे।

सन् १९१६ से लेकर १९२५ की अवधि में रावसाहब के नेतृत्व में अखिल भारतीय संगीत परिषद् के पाँच अधिवेशन क्रमशः बड़ौदा, दिल्ली, बनारस एवं अंतिम दोनों लखनऊ में हुए। इस परिषद् के वे स्थायी सचिव थे तथा सभी सम्मेलनों में उनकी शक्ति एवं प्रेरणा केन्द्रित रही। सयाजीराव गायकवाड़ ने उनकी सभी योजनाओं में मुक्त हस्त से सहयोग देना स्वीकार किया और भारतवर्ष में प्रथम बार इस परिषद् के तत्वावधान में उत्तर-दक्षिण प्रयोग का स्वप्न साकार हुआ। उच्च परम्परा के प्रायः सभी गायक-वादक यहाँ एकत्रित हुए और संगीत विषयक चर्चा, वाद-विवाद के पश्चात् एकमत से कुछ निर्णय भी लिए गए। सारंग, मल्हार, तोड़ी, कान्हड़े, बिलावल के विभिन्न प्रकारों पर अंतिम निर्णय लिए गए। स्वरलिपि, थाट-राग वर्गीकरण, रागांग-रागवर्गीकरण आदि पर खूब चर्चा हुई और रावसाहब के कार्यों का सभी गायक-वादकों ने मुक्त कंठ से समर्थन किया। संगीत विद्या को नष्ट होने से बचाने के लिए देश व्यापी आंदोलन खड़ा किया गया। सन् सोलह की बड़ौदे की परिषद् में क्रान्ति का बिगुल बजा दिया गया। रामपुर के मरहूम नवाब हामिदअली खाँ, नवाब छम्मन खाँ, राजा नवाब अली, उमानाथ बली, सुरीन्द्र बसु आदि सभी शिक्षित संगीत साधकों ने सामूहिक शिक्षा के युग का प्रारम्भ करना निश्चित किया। घरानों के मतभेद भूलकर संगीत विद्या की उन्नति के सभी साधन जुटाने के लिए एक विशाल संघठन ने जन्म लिया। संघठन का सभी भार रावसाहब को ही उठाना पड़ा। वे ही तो इसके जन्मदाता थे। परन्तु प्रसिद्धि पराङ्मुख एवं निरपेक्ष सेवक होने के कारण स्वयं कर्णधार होते हुए भी उन्होंने सदैव दूसरों को ही सम्मानित पदों पर अधिष्ठित किया।

उस समय किसी ने स्वप्न में भी नहीं सोचा होगा कि दूध-खून के रिश्ते पर पाली-पोसी हुई सेनियों की विद्या हम आप जैसे साधारण व्यक्तियों को किसी जमाने में किसी कीमत पर उपलब्ध हो सकेगी। खानदानी उच्च गायक कहलवाना सेनियों का ही अधिकार हो गया था। जो भी गायक दुनिया से उठ जाता अपने साथ सदियों का खजाना ले जाता। जयपुर तथा ग्वालियर के गीत प्राप्त हो जाने पर रामपुर के गायकों के गीत प्राप्त करने की उन्हें इच्छा हुई। बिना उनके उन्हें अपना गीत-संग्रह अपूर्ण लगने लगा। यह रावसाहब की ही सूझ-बूझ का परिणाम है कि दूध-खून की तालीम सब के लिए खुल गई। देश में तानसेन परम्परा का समादर पुनः होने लगा और संगीत में एकाधिकार की प्रथा मिट गई। आज हम आप सब, अपने देश की संगीत-सम्पदा के सही अर्थ में मालिक हैं।

देहली के सम्मेलन में केन्द्रीय संस्था की स्थापना का प्रश्न उठाया गया। बम्बई में गायनोत्तेजक मंडली, शारदा संगीत मंडल का संगठन इस दिशा में उनके प्रारम्भिक प्रयास थे। अब इसे अखिल भारतीय स्तर देने का विचार किया गया। ऐसी विशाल संस्था

(अकादमी) के उद्देश्य-विधान का प्रारूप रावसाहब ने स्वयं प्रस्तुत किया, परन्तु पराधीन देश में इतनी बड़ी योजना साधन के अभाव में कार्यान्वित न की जा सकी।

यदि कोई निष्पक्षता से देखे तो संगीत के प्रत्येक अंग-उपांग की श्री-वृद्धि करने के समस्त साधन रावसाहब ने उपलब्ध करा दिये हैं। निःस्वार्थ एवं सुनियोजित प्रयत्नों की फलश्रुति क्या हो सकती है, इसका उदाहरण स्वयं अपने अनगणित कार्यकलापों से प्रस्तुत कर दिया। अपने लेखों में उन्होंने ऐसा कोई विषय नहीं छोड़ा, जो संगीतोद्धार की दिशा में आज भी अति आवश्यक हो। हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, चतुर्थ भाग के उत्तरार्ध में स्थान-स्थान पर रावसाहब ने अपने जीवन की इतिकर्तव्यता हो चुकने का संकेत किया है। उन अंतिम अनमोल घड़ियों में अपने जीवन का समूचा निचोड़ देशवासियों के सम्मुख रख देने की उन्हें त्वरा हो गई थी। वास्तव में रिसर्च नाम की कोई पृथक् वस्तु नहीं होती है। वह तो अभ्यास का अथवा विचार करने का एक तरीका होता है। योग्य दिशा में विचार करते रहने की प्रवृत्ति ही उस विषय की प्रगति में उपयोगी सिद्ध होती है। किन कारणों से संगीत की अवनति हुई और क्या करने पर उसका उद्धार होगा, इसका वे स्थान-स्थान पर उल्लेख करते आये हैं। भावी पीढ़ी में योग्य दिशा से विचार करने की प्रवृत्ति अर्थात् रिसर्च की मनोवृत्ति का विकास करना—यही उन दिनों में उनका प्रमुख लक्ष्य रहा था।

अपने जीवनकाल में रावसाहब ने सचमुच ऐसा विशाल कार्य किया जो सहस्त्रों वर्षों में न हुआ था। कम से कम संगीत के इतिहास में तो ऐसा कोई अन्य उदाहरण प्राप्त नहीं होता।

क्रान्तिकारी शिक्षाशास्त्री भातखण्डे

क्रान्तिकारी शिक्षाशास्त्री भातखण्डे

प्रभाकर नारायण चिंचोरे
संगीत निपुण

सन् १९१८ में दिल्ली की अखिल भारतीय परिषद् में समस्त देश के लिये संगीत शिक्षा की समुचित व्यवस्था पर जम कर चर्चा हुई। राजधानी दिल्ली में ही संगीत की मध्यवर्ती संस्था स्थापित की जाय, ऐसा रावसाहब का आग्रह था। देश के इस नव जागरण के सभी कर्मठ सहकारियों ने रावसाहब के विचार शिरोधार्य कर लिये थे। परन्तु ऐसी किसी संस्था की स्थापना तत्काल न हो सकी। लखनऊ की कान्फ्रेन्सों में यही विषय पुनः विचारार्थ रखा गया। इस बार की चर्चा रावसाहब ने स्वयं अपने विस्तृत भाषण से ही प्रारम्भ की। 'दि माडर्न हिन्दुस्तानी राग सिस्टिम एण्ड द सिम्पलेस्ट मेथड आफ स्टडिइंग द सेम' इस शीर्षक से पढ़ा हुआ रावसाहब का वह प्रदीर्घ निबंध संगीत का शास्त्रीय पक्ष अब पूर्णरूप से परिपक्व हो चुकने की घोषणा करता है। शास्त्रीय पक्ष की इस सुदृढ़ वेदी पर खड़ा हुआ संगीत का कला पक्ष भी बलिष्ठ हो जाने की साक्षी देता है। अबोध बालक से लेकर आधुनिक शिक्षण से सुसज्जित देश के सभी नरनारियों के लिये संगीत की क्रमबार शिक्षा अन्य सभी विषयों की भाँति सुसाध्य हो सकेगी; ऐसा आश्वासन देते हैं। इतिहास, विज्ञान, विधि, वैद्यक शास्त्र के समान शिक्षण क्षेत्र में संगीत का महत्व स्वीकार कर उसे वही स्थान प्राप्त होना चाहिये, ऐसा अनुरोध करते हैं। अपने देश की आर्थिक-सामाजिक समस्याएँ सुलझाने में संगीत एक प्रभावी माध्यम होगा। संगीतानुरागी समाज स्वस्थ, संतोषी एवं सुखी होता है, अतः राष्ट्रव्यापी उलझनों को सीमित रखने में, उनका उन्मूलन करने में संगीत एक प्रखर उपाय है, ऐसा कहते हुए उसे देश भर में शिक्षा का अनिवार्य विषय निर्धारित करने का अनुनयन करते हैं। रावसाहब के उस भाषण के मूल अंश पाठकों के लिये उद्बोधक होंगे।

"हिन्दुस्तानी संगीत में सुसम्बद्धित शिक्षण की आवश्यकता पर जोर देते ही लोग पूछने लग जाते हैं : इसके लिए पाठ्यपुस्तकें कहाँ हैं ? ऐसी कोई सुसम्बद्ध पद्धति ही कहाँ है ? क्या और कैसा शिक्षण प्राप्त किया जाय ? परन्तु मैंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि, संगीत पर वास्तविक अनुराग रखनेवालों को ऐसा सभी साहित्य प्रचुर मात्रा में प्राप्त हो सकेगा। गत पन्द्रह-बीस वर्षों से पुरानी गुरु-शिष्य-प्रणाली से शिक्षण प्राप्त करने में सालों व्यतीत करना बहुतांश लोग पसन्द नहीं कर रहे हैं। किसी ख्यातनाम खाँ साहब के शागिर्द कहलाने भर के संतोष के लिए, उस्ताद के स्वेच्छानुसार कल्पनातीत समय बरबाद करने के उपरांत भी दो-एक रागों के अस्पष्ट ज्ञान पर कृतकृत्य मान लेना अब किसी को अच्छा नहीं लगता। इन उस्तादों के शागिर्द जो भी कुछ गा-बजा लेते हैं, उसमें

उनके स्वयं के कल्पनाओं की दौड़ ही अधिक रहती है अथवा उस्ताद से संयोगवश पाई हुई फुटकर जानकारी में अन्यत्र ग्रहण की हुई बातों का पुट रहता है। ऐसी अनिश्चित शिक्षण-प्रणाली से अब कोई संतुष्ट नहीं होता। इसके अतिरिक्त यह पुरानी प्रणाली सामूहिक-शिक्षा के लिए तो सर्वथा अनुपयुक्त है, इसके पीछे समय की बरबादी अक्षम्य है। परन्तु अब लेखकगण इस परिस्थिति का सामना करने के लिए कटिबद्ध हो चुके हैं तथा वे चाहते हैं संगीत विद्या अब सभी इच्छुकों के लिए सुसाध्य हो जानी चाहिए। केवल अब इतना ही आवश्यक है कि इस विद्या की आवश्यकता के विषय में लोक जागृति हो जानी चाहिए तथा संगीत की शिक्षा प्रत्येक विद्यालय में अनिवार्य रूप से रखी जाने के लिये एक स्वर से माँग करनी चाहिए। यह सच है कि देश भर में विभिन्न स्थानों पर संगीत के विद्यालय हैं, परन्तु उनमें एकसूत्रता का अभाव है, सर्वमान्य ऐसी कोई एक शिक्षण पद्धति भी नहीं हे। इन विद्यालयों में विद्या के प्रचार के स्थान पर अपना-अपना वर्चस्व दिखाने का ही उद्देश्य रहता है। सभी जानते हैं कि विगत दिनों में संगीत को राजाश्रय प्राप्त था। संगीत को सुयोग्य एवं सुदृढ़ स्थान पर स्थापित करना देश के शासकों को ही केवल सम्भव है। संगीत का पुनरुद्धार तभी पूर्ण रूप से हो सकेगा जब इस विद्या को हमारे मंत्री गण, विश्वविद्यालयों के कुलपति एवं उप-कुलपति अथवा हमारे प्राचार्य गण एवं विधान-सभा के सदस्य गण ऐसा समझने लगेंगे कि, सांपत्तिक स्वातंत्र्य अथवा चुंगी नाके की योजना की अपेक्षा दैनंदिन जीवन के साथ संगीत का महत्व अधिक गहरा एवं दूरगामी है। जनता को व्यापार का स्वातंत्र्य एवं संरक्षण देने में वे उनके लिए केवल तन ढाँकने मात्र का प्रयत्न कर रहे हैं, परन्तु उन्हें संगीत देने पर वे उन को प्रत्यक्ष जीवनदान ही देंगे। संगीत उनके शारीरिक गात्रों के खिचाव को दूर कर डाक्टरों के बिलों से उनकी मुक्ति करेगा। मानसिक तनाव एवं क्लेशों से विमुक्त हो जाने के कारण सारा विश्व संतोष एवं शांति अनुभव करेगा जो किसी शासकीय विधान द्वारा मिलना असम्भव है। संगीत द्वारा हम अपने राष्ट्र को स्थैर्य, स्वास्थ एवं संतोष प्रदान कर सकते हैं।"

अन्य विद्याओं की तुलना में संगीत को किसी भी दृष्टि से न्यून न समझने की रावसाहब की यह हृदय-वेदना सन् १९२४ की है। अपना दृष्टिकोण बहुत से सहृदय गायक-वादकों को, सुशिक्षित मित्रों, अधिकारियों को तब तक वे समझा चुके थे। संगीतोद्धार का उनका आंदोलन राष्ट्रव्यापी हो चुका था। रामपुर-ग्वालियर के सहकार्य ने उनके प्रयत्नों को बल एवं स्थैर्य प्रदान किया था। उच्च खानदान के इन्हीं सुशिक्षित गायक-वादकों पर अटल विश्वास, अपार स्नेह होने के फलस्वरूप देश के प्रत्येक नागरिक को सुरीला बनने की सुविधा दीजिए; ऐसी अपील अपने उक्त भाषण द्वारा राज्यकर्ताओं को वे कर सके। संगीत सर्वदृष्टि से अब समृद्ध हो चुका है ऐसा आश्वासन भी दे सके। देश के अधिकांश ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ गायकवादकों का सहकार्य प्राप्त कर ऐसा उत्साहदायी वातावरण बनाने के उनके प्रयत्नों के पीछे वर्षों की प्रखर तपस्या है। जिस समय वे स्वयं अध्ययन कर रहे थे, संगीत के क्षेत्र में घनघोर निराशा छायी हुई थी। असम्बद्ध आचार और असभ्य व्यवहार कलाकार का सामान्य लक्षण ही हो गया था। दान करने पर विद्या की शोभा बढ़ती है, अज्ञान सर्व पापों का मूल है, आत्मश्लाघा मनुष्य को अंधा कर देती है, परिवर्तन तथा लोकाभिरुचि के

अनुसार अपने को ढाल लेने पर ही विद्या की उन्नति होती है, विनय ही मनुष्यत्व का लक्षण है, दूसरों का समादर करना अपने आपका आदर कर लेना है आदि सदाचरण के मूलभूत रीतिरिवाजों से संगीत समाज अनभिज्ञ था।

क्या शास्त्री, क्या पण्डित, क्या कला का प्रात्यक्षिक प्रदर्शन करने वाले गायक-वादक, समस्त संगीतजीवी समाज अशिक्षितों का एक मजमा जम गया था। व्यासंग नाम से कोई वस्तु होती है इतना तक संगीत की शास्त्र-चर्चा करने वाले नहीं जानते थे। अपने आप को भूल जाना स्वरताल की सच्ची साधना की परिणति है। इसी को अन्य शब्दों में मदहोशी भी कहा जा सकता है। गायक-वादकों की इस मदहोशी का तथा अन्य संगीतानुरागियों के भ्रमर सदृश्य स्वरताल का आकण्ठ रसपान करते हुए विद्या की उन्नति का मूलाधार संगीत शास्त्र-नगण्य मानने की सहज सुलभ प्रवृत्तियों का यथेच्छ दुरुपयोग कर के कुछ भी बरगलाना इसी को ही ये स्वयंभू शास्त्री-पंडित संगीत सेवा समझते थे। विद्या की निरन्तर उन्नति के लिए संगीत-समाज आधुनिक शिक्षा विचारों से सुसज्जित होना ही चाहिए, ऐसी रावसाहब की धारणा दृढ़ हो चुकी थी।

सुशिक्षित संगीत-साधकों के हाथ में ही इस विषय का भविष्य वे सौंप देना चाहते थे। अपने निष्कर्षों को जन-साधारण तक पहुँचाने के लिए, संगीत द्वारा देश का वातावरण सुखमय बनाने के लिए सहस्रों होनहार कलाकार निर्माण कर उनमें निरपेक्ष सेवा-वृत्ति जागृत करा देना वे चाहते थे। संगीत की शिक्षा सहज सुलभ व प्रभावशाली हो, इस दृष्टि से उन्होंने एक नूतन शिक्षा प्रणाली बना डाली। यह वह जमाना था जब कि तान आलापों के छोटे से छोटे टुकड़ों की सरगम बताना एक कठिनतम कार्य समझा जाता था। वर्षों तक गीतों का स्वरकरण रावसाहब कापियों पर नोट करते रहे। उन्हें अपना समय बरबाद करने वाला सिरफिरा समझा गया, परन्तु जिस दिन स्वरलिपि सहित गीतों का संग्रह प्रकाशित किया गया; खानदानी गायक-वादकों में भगदड़-सी मच गई। बम्बई में शिक्षित नवयुवकों को संगीत के प्राथमिक पाठ देने के लिए हाथ में चाक ले कर काले तख्ते के सामने भव्य शरीर-यष्टिवाले रावसाहब खड़े हो जाते तब खानदानी गायक-वादक आश्चर्य से मुँह में उँगली दबाए रह जाते। एकाध सप्ताह तक शिक्षार्थियों को सुरताल में लगाकर महीने डेढ़ महीने में सरगम पलटे गवाना, तीन-चार मास में ही ध्रुवपद, धमार गवाना, नया गीत पाँच-सात मिनिट के अन्दर हूबहू गवा लेना; इन सारे उनके नवीन प्रयोगों का सम्मोहन जैसा असर हो जाता। उनके प्रभाव में आकर खानदानी गायक-वादक जब स्वरलिपि, राग-ठाठ, रागों के वैशिष्ट्यपूर्ण टुकड़ों का आधार श्लोक-दोहों के साथ प्रस्तुत करने लगते तब गायकवाड़, शिंदे जैसे राजे-महाराजे, धनी-सम्पन्न लोग आश्चर्य से मंत्रमुग्ध हो जाते। अपने संस्थानों में संगीत के संरक्षणार्थ हजारों रुपये खर्च करने पर भी दो-दो तीन-तीन तपों में जो साध्य नहीं होता वह रावसाहब की नूतन शिक्षा प्रणाली से चन्द महीनों में साकार हुआ देखकर आनन्दविभोर हो गये। रावसाहब ने भी इस सुअवसर का पूरा-पूरा फायदा उठाया। ग्वालियर, बड़ौदे में प्रत्यक्ष जा कर वहाँ की परिस्थिति का अवलोकन किया। कौन व्यक्ति इस काम के लिये उपयुक्त है और कौन अनुपयुक्त, किस में कितना ज्ञान है, कौन घमण्ड में अंधा हो गया है और संगीत पर किसका सच्चा प्रेम है,

इसकी पहिचान करने में वे अत्यन्त निष्णात थे। पात्रता के अनुसार दायित्वपूर्ण कार्यों का विभाजन अपने मित्रों-शिष्यों में करा देने की उनकी चातुर्यपूर्ण योजना का ही यह फल था कि इतने अल्प समय में संगीत ने आशातीत उन्नति की।

संगीत की शैक्षणिक व्यवस्था की दिशा में उन्होंने प्रथमतः दो योजनाएँ बनाईं। जिन्हें लघु योजना व बृहत् योजना कहा जा सकता है। लघु योजना के अन्तर्गत ग्वालियर, बड़ौदा के कतिपय गायकों को उपयुक्त समझ कर तीन-चार मास के लिए रावसाहब के पास बम्बई भेज दिया गया। रागों के नियम-धर्म तथा संगीत सिद्धान्तों का ज्ञान कराते हुए स्वरलिपि के माध्यम से कक्षावार संगीत की शिक्षा के विषय में उन्हें अवगत कराया गया। स्वरज्ञान व तालज्ञान अपनी इस नवीन शिक्षा प्रणाली की नींव है और उसे अल्प समय में करा देने के नये-नये रोचक तरीके समझाए। संगीत विद्यालयों के प्रशासन के विषय में जानकारी दी। शिक्षाप्रसार में रावसाहब का अदम्य उत्साह, लगन और व्याकुलता देख कर इन सारे प्रशिक्षित आचार्यों ने उनके अंगीकृत कार्य में अपने को न्यौछावर कर देने का प्रण किया। ग्वालियर, बड़ौदा के संगीत विद्यालयों का भार बाद में इन्हीं को सौंपा गया। सर्वश्री विष्णुबुआ देशपांडे, राजाभैया पूछवाले, कृष्णराव दाते, भास्करराव खांडेपारकर, बलवन्तराव भजनी (साँवले), बापूराव गोखले, चुन्नीलाल कत्थक—इन सात व्यक्तियों का इस कार्य के लिए चुनाव हुआ था। ग्वालियर के संगीत ज्ञानदीप को पुनः प्रज्वलित करने के लिए मानो नये सप्तक का पुनर्निर्धारण किया गया। इसी सप्तक की तान आज ग्वालियर में सर्वत्र सुनी जा रही है।

बृहत् योजना के अन्तर्गत उनके आज तक के सभी अनुभवों का सार एवं नानाविधि शैक्षणिक प्रयोग समाविष्ट होते हैं। निकट भविष्य में ही देश भर के सभी नगरों में शास्त्रीय संगीत के प्रचारार्थ असंख्य विद्यालय खुलेंगे व ऐसे सभी विद्यालयों में नूतन-शिक्षा-प्रणाली से सुसज्जित एवं पढ़े-लिखे अध्यापकों की आवश्यकता होगी; इस दृष्टि से पंच-वर्षीय शिक्षा की योजना बनाई। इस योजना के सम्बन्ध में अब ग्वालियर में उनके द्वारा किये गये प्रयासों पर ही मुख्यतः विचार किया जायगा। जिससे किसी विद्यालय के क्रमिक विकास का प्रत्यक्ष उदाहरण सामने रखते हुए रावसाहब की कार्यकुशलता का, योजना-चातुर्य का पाठकों को यथार्थ रूप से परिचय दिया जा सके।

संगीतोद्धार के लिए रावसाहब ने जो कुछ भी कार्य हाथ में लिये, उनके प्रति उनका एक अत्यन्त व्यावहारिक दृष्टिकोण रहा है। किसी भी योजना को कार्यान्वित करते समय कितना परिश्रम, धन एवं काल व्यतीत हो रहा है और उसके बदले में कितनी सफलता मिल रही है, इसकी ओर वे सदैव जागरूक रहते थे और संशोधन करने के लिए सदा तत्पर रहते थे। ग्वालियर जैसी बड़ी रियासत का शासक अन्तःस्फूर्ति से संगीत विद्यालय स्थापित कर भारत-वर्ष के संगीत को आधुनिक युग के लिए उपयुक्त बनाने की महत्वाकांक्षा रखता है और इस कार्य में अपने प्रिवी पर्स से आवश्यक उतनी द्रव्य सहायता देने के लिए उद्यत रहता है, इन सारी परिस्थितियों का अधिक से अधिक उपयोग कर लेने का उन्होंने निश्चय कर लिया। उन्हें जिस साधन की आवश्यकता प्रतीत हुई उसे तत्काल उपलब्ध करा देने के शासकीय आदेश जारी हो गये। नगर के सभी प्राथमिक, पूर्व माध्यमिक, माध्यमिक शाला,

Malabar Hill, Bombay
21.1.33.

My dear Babu -

I have very sad news for you this time. Our dearest friend Shankarrao Karnad breathed his last the day before yesterday at about 12.30 noon. Of heart failure. It will be impossible to express what grief that has brought on me. He was more than my own brother to me all these twenty five years past. As you know he was the only friend I had to whom I always turned for advice. I mourn his loss more perhaps than any of his relatives. I feel as if my right hand is broken. That also means, my interest in life is considerably diminished. I saw him only a day or two before you went to him. Never for a minute thought he was so near his end. Such is life. God's will be done — Hope you are well.

Thank you for the copies of Sangit.

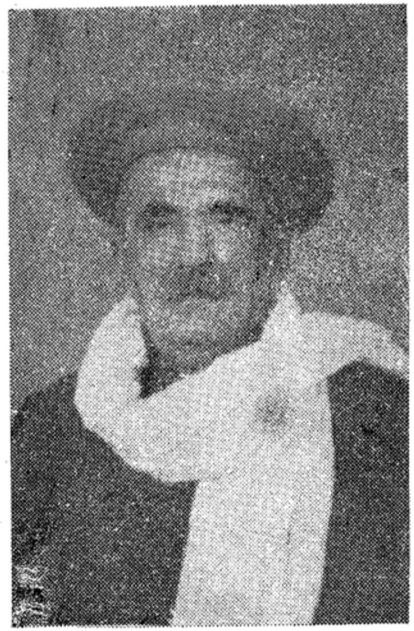
Yours aff
Anna

डॉ० श्री० ना० रातांजनकर को सम्बोधित पं० भातखण्डे का अंग्रेजी हस्तलिपि में एक पत्र

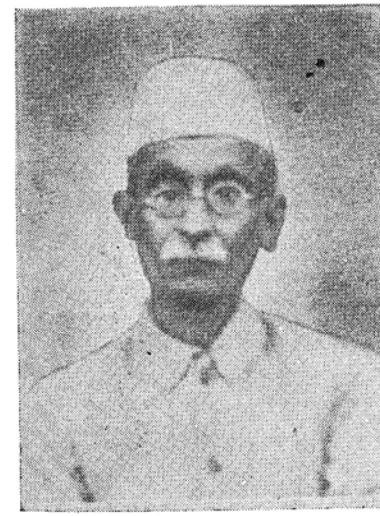
शिष्य-त्रय



पद्मभूषण डॉ० श्री० ना० रातांजनकर



संगीतालंकार स्व० आचार्य राजाभैया पूछवाले



स्व० पं० वाड़ीलाल शिवराम नायक

सहयोगी चतुष्टय



स्व० शंकरराव कारनाड़, स्व० भालचन्द्र सुकथनकर, स्व० ब्रिजकिशन कौल
एवं राय उमानाथ बली सहित पण्डित भातखण्डे



स्व० प्रो० एस० एल० जोशी



स्व० हिज हाइनेस महाराजा सर सयाजीराव गायकवाड़



स्व० आचार्य एम० फ्रेडलिस

नार्मल स्कूल आदि शैक्षणिक संस्थाओं के प्रधानों को आदेश दिए गए। परिणामस्वरूप निर्धारित तिथि एवं स्थल पर सायं चार बजे संगीत शिक्षा के इच्छुक छोटे-बड़े बालक एकत्रित किये गए। उपयुक्त विद्यार्थियों के चयन के लिए रावसाहब ने एक नवीन तरीका ढूँढ़ निकाला। अपने पास एक लम्बी सीटी रख लेते, जिसकी लम्बाई ज्यादा करने पर स्वर ऊँचा व कम करने पर स्वर नीचा हो जाता। प्रारम्भ में सभी बालकों को एक पंक्ति में खड़ा किया गया व प्रत्येक बालक की आवाज की जाँच की गई। सीटी से किसी एक स्वर को बजाकर उससे लड़कों को आवाज मिलाने के लिए कहते। दो, तीन विभिन्न स्वर प्रत्येक बालक को पूछते जाते। सीटी की आवाज का अनुकरण अपने गले से जो बालक कर पाते, उन्हें विद्यालय में प्रवेश दिया जाता। निर्धारित तिथि पर प्रारम्भिक जाँच का यह कार्य एक दो घण्टों में निपटा कर सभी बालकों को एक बड़े सभागृह में बुलाया गया, जहाँ पर लगभग डेढ़ सौ छात्रों को लेकर सामूहिक संगीत शिक्षा का प्रथम पाठ स्वयं रावसाहब ने दिया। किसी एक स्वर को प्रथम स्वयं सुना कर बालकों को उसे दोहराने के लिए कहते। यदि कोई भूल से उनके साथ गा देता तो दोनों हाथ ऊँचे उठा कर उसे रोक देते। दो-तीन ध्वनियों का ऊँचा-नीचा-पन समझाकर प्रत्येक ध्वनि के बोध के लिए करांगुलियों के संकेत निश्चित कर लेते। ध्वनि परिचय की जाँच कभी संकेतों से, तो कभी गाकर करते। प्रथम दो दिन तक सा से म तक अर्ध-सप्तक का परिचय, कसरत के विभिन्न तरीकों से हँसते-खेलते हुए करा दिया। तत्पश्चात् दूसरे अर्ध-सप्तक की तालीम दी गई। छात्रों का उत्साह बना रहे, इस हेतु किसी छात्र को खुली एवं निर्दोष आवाज से गाने के लिए कहते तो दूसरे को उन स्वरों को पहिचानने के लिए कहते। पाँच-छः दिन इस प्रकार की तालीम स्वयं देकर बालकों से दस अलंकार उन्होंने सुन लिए तथा आगामी कार्य की प्रणाली शिक्षकों को समझा कर रावसाहब बम्बई चले गये।

छात्रों के स्वरज्ञान व तालज्ञान की शिक्षा के विषय में रावसाहब का मत था कि ग्वालियर एक इतिहास-प्रसिद्ध संगीत नगरी है। यहाँ पर शिक्षण के लिए आनेवाले सभी छात्र पहले से ही संगीत का आंशिक ज्ञान एवं आंतरिक प्रेम रखते हैं। अतः ऐसे छात्रों को अधिक से अधिक दो-तीन मास तक यह शिक्षा दे कर उन्हें रागों की शिक्षा की ओर ले जाना चाहिए। प्रारम्भिक पाठ चाहे कितने भी रोचक बनाए जायँ, अधिक समय तक किसी के धैर्य की परीक्षा नहीं करनी चाहिए। प्रथम एक-दो वर्ष तक अर्थात् विद्यार्थियों में संगीत की वास्तविक रुचि निर्माण होने तक अत्यन्त सावधानी से एवं परिश्रमपूर्वक शिक्षकों को मेहनत करनी चाहिए, ऐसा वे सदैव करते रहते थे। उन्हें स्वर में लाकर अर्ध-सप्तक, सप्तक, द्वादशस्वरित-सप्तक, दस थाटों के सप्तक, अलंकार, पलटे आदि सभी एक के बाद एक तुरन्त सिखा देना चाहिए। इस कार्य में हाथ की उँगलियों का उपयोग, स्वर-नाम सुन कर गाना, काले तख्ते पर लिखे अनुसार गाना, गा कर उसे पुनः लिखना, विभिन्न स्वरों को षड्ज मान कर निश्चित स्वर समुदाय गवाना, क्रमिक पुस्तक प्रथम भाग के स्वरवाचन पाठों तथा काल-साधन पाठों को अत्यन्त श्रद्धापूर्वक गवाना आदि विभिन्न प्रकार की सूचनाओं का आग्रहपूर्वक पालन किया जाय; ऐसी वे प्रधानाध्यापक महोदयों को सूचना देते रहते थे। रागों की शिक्षा में भी काले तख्ते का उपयोग करना चाहिए, ऐसी उनकी इच्छा थी। राग

का स्वरप्रस्तार छोटे-छोटे टुकड़ों की सहायता से बोर्ड पर लिख कर सिखाना चाहिए। कभी-कभी उनमें जान बूझ कर गलतियाँ कर छात्रों से उनका सुधार कराना चाहिए। नया गीत प्रारम्भ में ही अपने गले से न सुना कर बोर्ड पर केवल लिख दिया जाय, तत्पश्चात् स्वरलिपि की सहायता से मुकाम की जगहों पर ध्यान देते हुए टुकड़ों-टुकड़ों में गवाना चाहिए। गलतियाँ होने पर सहानुभूति पूर्वक उन्हें दुरुस्त कराना चाहिए। ठीक गाने पर छात्रों को प्रोत्साहित करना चाहिए। इतना सब हो जाने पर ही गीत उत्तम रीति से उन्हें गाकर सुनाना चाहिए। अपने साथ विद्यार्थियों को गाने देना उनका अहित करना है। प्रथम दो वर्ष की तालीम संगीत विद्यार्थी के भावी जीवन की नींव है। उसे मजबूत बनाना शिक्षक का कर्तव्य है। उनको इस शिक्षा के प्रति दुर्लक्ष्य करना घोर अन्याय है, ऐसा रावसाहब कहा करते थे।

अपने प्रयोगों के प्रारम्भिक दो-तीन वर्ष तक बहुत बड़ी राग-संख्या निर्धारित कर प्रत्येक राग में आठ-दस गीत ख्याल, ध्रुवपद शैली के सिखाए गये थे। ग्वालियर अपनी परिपक्व ख्यालगायकी के लिए प्रसिद्ध है। अतः यहाँ का वैशिष्ट्य कायम रखने के लिए इस गायन शैली पर अत्यधिक जोर दिया गया। गायन चाहे किसी भी शैली का हो, आवाज तैयार कर लेने के बाद एक ही राग में विभिन्न प्रकार के गीत जब तक नहीं सिखाये जाते; राग के अंगप्रत्यंग समझकर गाना कठिन हो जाता है। गीतों की रचना करना महान् आचार्यों के कार्य होते हैं। वैशिष्ट्यपूर्ण, कलात्मक एवं आकर्षक स्वरसमुदायों को चुनते हुए, उन पर अपने स्वानुभवों का पुट चढ़ाकर विचार और परिश्रम के बाद वे गीतों की रचना करते हैं। और ये ही गीत रागों के उत्तमोत्तम नमूने हैं, जो राग गायन को समृद्ध करते हैं, उसमें विविधता निर्माण करते हैं। गीतों के भंडार कण्ठस्थ करना गायक की श्रेष्ठता का लक्षण माना जाता है। ध्रुवपद शैली ने ख्याल को जन्म दिया। स्थैर्य, गांभीर्य, परिपक्वता, वजन, निर्दोष उच्चारण, तान की सफाई आदि गायकी के आवश्यक गुणों का परिपोष बिना ध्रुवपद की सहायता के ख्याल गायकों में नहीं आता। इन दोनों गीत शैलियों में अपने विद्यार्थियों को शिक्षा देने का रावसाहब का आग्रह उनकी दूरदर्शिता का, परम्परा में अगाध प्रेम का द्योतक है। अभ्यास करना एक आनंद का विषय है, अपना परम कर्तव्य है, यह भावना छात्रों में जागृत होनी चाहिए, ऐसा वे सदैव कहते रहते थे। अभ्यास का अर्थ नीरस मजदूरी नहीं।

उन्नत स्मरणशक्ति गायक का दूसरा महान् गुण है। किसी प्रसंग का मस्तिष्क पर परिणाम हो कर उसका पुनः-पुनः स्मरण होते रहना मनुष्य का स्वभाव-धर्म है। भारतवर्ष की सभी विद्याएँ मौखिक परम्परा से जीवित रही हैं। वेदों के जमाने से एकपाठी-द्विपाठी आचार्यों का समाज में आदर होता आया है। केवल दो-चार बार गाया, सिखाया हुआ गीत सदैव के लिए मुखस्थ हो जाना एक महान् गुण है। अपनी तालीम की छोटी-छोटी बातें बिना अधिक परिश्रम के याद रखना संगीत शिक्षा में अत्यावश्यक होता है। ऐसे ही लोग अधिक से अधिक शिक्षा ग्रहण कर उसका सदुपयोग भी कर पाते हैं।

संगीत विद्या में कलात्मकता का बहुत बड़ा अंश आज तक गुरु-शिष्यों की मौखिक परम्परा पर निर्भर रहा है, भविष्य में भी रहेगा। मुखस्थ करते रहने के मनुष्य

के स्वाभाविक गुणों का प्रयत्नपूर्वक विकास करने पर ही ऐसे लोग संगीत परम्परा के संरक्षक हो जाते हैं। छात्रों की स्मरणशक्ति का यह विकास क्रमशः एक विशिष्ट पद्धति से करना चाहिए। हिन्दी के दोहों एवं संस्कृत के श्लोकों के पाठान्तर से प्रारम्भ कर सिद्धान्त-ग्रन्थों तक छात्रों से मुखोद्‌गत कराना रावसाहब का अध्यापकों के लिए स्थायी निर्देश था। फलस्वरूप गायकी की समृद्धता, तानों (रागों के स्वरसमुदायों) की विपुलता, सांगीतिक भाषाज्ञान, ग्रंथकारों के विषय प्रतिपादन का क्रम एवं पद्धति, परम्परा में आस्था, अपने अर्जित ज्ञान को आधार मिल जाने के कारण आत्मविश्वास आदि अत्यावश्यक गुणों का स्वतः विकास हो जाता है। अल्पमूल्य पर निकट भविष्य में ही सुसम्बद्धित स्वरूप में संगीत की पाठ्यपुस्तकें प्रचुर संख्या में उपलब्ध हो जावेंगी, विद्यालय में नियमानुसार प्रवेश पा लेने पर गुरुमुखी विद्या का गुप्त भंडार बिना अधिक परिश्रम के अब प्राप्त होने लगेगा। फलतः संगीत साधना के प्रति छात्रों का दुर्लक्ष्य हो जाना संभव है, ऐसा दूरगामी विचार कर पाठान्तर की ओर उन्होंने प्रारम्भ से ही सब का ध्यान आकृष्ट किया था। छात्रों के रग-रग में लयकारी भिन जाय, प्रत्यक्ष गायन करने के प्रसंगों पर लयकारी के विभिन्न नमूने वे दिखा सकें, उनका तालज्ञान परिपक्व हो कर उनमें आत्मविश्वास निर्माण हो, इस उद्देश्य से तबला पखावज के सैकड़ों बोल-परन उनसे याद करवाये जाते थे। आगे चल कर गायन के विद्यार्थियों को तबले पर ठेके, छोटे-छोटे बोल, परन भी बजाते रहना चाहिए; ऐसा वे कहते रहते थे। उँगलियों से मात्राएँ गिनकर, तालियाँ दे-दे कर गायन करने की रीति की वे समय-समय पर भर्त्सना करते थे। ठेका एवं लयकारी के प्रवाह का प्रभाव गायक के मन पर रहना चाहिए न कि बाह्य साधनों पर। गायन में रसिकता होनी चाहिए न कि मात्राओं का हिसाब। तबले का ठेका कान से सुन कर गायन करने की आदत छात्रों में प्रारम्भ से ही डालनी चाहिए, जिसके लिए कक्षा में १५-२० मिनिट का समय प्रतिदिन देना चाहिए; ऐसा वे आग्रह पूर्वक कहते थे।

संगीत में सामूहिक शिक्षा का युग प्रारम्भ होने के समय से ही रावसाहब जैसा मार्गदर्शक पाने के कारण नगर में चारों ओर उत्साह का वातावरण फैल गया था। उनके छोटे से छोटे निर्देश का श्रद्धापूर्वक पालन किया जाता। उनके व्यक्तित्व का तथा कार्यों का इतना गहरा प्रभाव था कि शिक्षक एवं छात्र दिन-रात संगीत साधना में ही डूबे रहते थे, और यही उनका नित्य का पूजा पाठ हो चुका था। गायन-वादन के जलसे, अखंड संगीत सप्ताह तो स्थान-स्थान पर होते रहते थे। विद्यालय में सीखे हुए खानदानी गीतों की प्रतिदिन आवृत्ति करना ही भगवान् का नामस्मरण हो गया था। रामनवमी, हनुमान-जयंति, दत्त जयंति, जन्माष्टमी, गणेशचतुर्थी आदि उत्सव पर्वों पर नगर के संगीत मुमुक्षु बालक-वृद्ध मंदिरों में सार्वजनिक रूप से अथवा अपने-अपने घरों में समय-समय पर ऐसे आयोजन कर के अपने लिए संगीतमय वातावरण बनाते थे। कुछ घरों में तो रावसाहब के सैद्धान्तिक संस्कृत ग्रन्थों का पाठ गीता-रामायण की तरह धार्मिक विधि से किया जाता था। स्नानादि से निपट कर रेशमी वस्त्र परिधान करते हुए भगवान् के सामने बैठ कर धूप, दीप से वातावरण को पवित्र बनाते हुए संगीत के छात्र एकत्रित होकर रावसाहब के 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्', 'अभिनव-राग-मंजरी' ग्रन्थों का पाठ करते रहते थे। अभिभावक बालकों के इस उत्साह में स्वयं भी

सम्मिलित होते और ऐसे आयोजनों का शैक्षणिक महत्व बढ़ाते हुए उन्हें प्रोत्साहित भी करते।

माधव-संगीत विद्यालय के आचार्य स्व० राजाभैया पूछवाले निष्ठा, लगन, श्रद्धा का मूर्तिमन्त उदाहरण थे। एक पैर से लँगड़े होते हुए भी स्नानादि से निवृत्त होकर कम से कम पाँच देवालयों में दर्शन हेतु जाना, रास्ता चलते समय 'श्री समर्थ आण्णासाहेब भातखण्डे गुरुभ्यो नमः' अथवा 'संगीतोद्धारक भातखण्डे गुरुभ्यो नमः' लगातार कहते रहना उनका नित्य का कार्य हो गया था। प्रत्येक मन्दिर में जा कर भगवान् के दर्शन, प्रदक्षिणा हो जाने पर सामने बैठकर कम से कम पाँच खानदानी गीतों को तान-अलापों के साथ किन्तु संक्षेप में गाये बिना आगे नहीं बढ़ते थे। नित्य की पूजा करते समय जब मिलने वाले आ जाते तो एक बार 'भातखण्डे गुरुभ्यो नमः' कहकर उससे बातें प्रारम्भ करते। एक-दो क्षण जहाँ भी व्यर्थ जावेंगे ऐसा प्रतीत होता तो संगीत के अपने तीनों गुरुदेवों का वे नाम-स्मरण करते रहते थे। रेल के सफर में स्नान-पूजादि सम्भव न होने पर १०-१५ गीतों का पाठ ही कर लेते थे। संगीत ही उनका साक्षात् आराध्य देवता था। ऐसे तपस्वी आचार्यों का छात्रों पर ऐसा अमिट प्रभाव पड़ता कि, विद्यालय से सम्बन्धित कोई भी व्यक्ति रावसाहब की शिक्षा-दीक्षा के अतिरिक्त किसी भी बात में अपना समय व्यतीत करना उसे बरबाद करना ही समझता था।

इस प्रकार एक अभूतपूर्व वातावरण में सामूहिक शिक्षा का श्री गणेश होने पर प्रचुर संख्या में विद्यार्थी आने लगे और विद्यालय का क्रमशः विकास होने लगा। प्राथमिक कक्षाओं में विद्यार्थियों की संख्या कम रहे ऐसी शिक्षकों की इच्छा रहती थी, परन्तु रावसाहब तो सामूहिक शिक्षा के पुजारी थे। शिक्षा पर व्यय अधिक और उसकी अपेक्षा लाभ कम हो, इस परिस्थिति को उन्होंने कभी बरदाश्त नहीं किया। कक्षा में अधिक से अधिक छात्र-संख्या देख कर वे पुलकित हो उठते थे। प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगाने के बदले शिक्षण का नया ही तरीका ढूँढ़ निकालते थे। प्राथमिक कक्षाओं में कम से कम पन्द्रह छात्र न होने पर शिक्षक की अनावश्यकता की ओर अधिकारियों का ध्यान आकर्षित करते। तीस-चालीस विद्यार्थी प्रविष्ट कर परीक्षा के लिए केवल चुने हुए दस-पाँच विद्यार्थी भेज कर परीक्षा फल की प्रतिशत वृद्धि कराने की शिक्षकों की प्रवृत्ति पर वे क्षोभ व्यक्त करते, शिक्षकों की कर्त्तव्य-पराङ्मुखता का विरोध करते। विद्यालय के महत्वपूर्ण शिक्षण का प्रारम्भ तृतीय वर्ष से होता है जिसकी परिणति एक सुशिक्षित कुशल गायक व यशस्वी शिक्षक के रूप में पंचम वर्ष की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद होती है। अतः इन तीन वर्षों की शिक्षा-पद्धति एक विभिन्न दृष्टिकोण से बनाई गई थी।

विद्यालय की अन्तिम परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले विद्यार्थी की योग्यता क्या होनी चाहिए; इस विषय में रावसाहब कहते हैं : "विद्यालयीन शिक्षा पूर्ण करते हुए ये सारे विद्यार्थी विभिन्न नगरों में जा कर अध्यापन का कार्य करेंगे। उनके यशापयश पर लोकमत बनने वाला है और यही अपनी नूतन शिक्षा-पद्धति की फलश्रुति है। इन विद्यार्थियों के गायन का स्तर जितना उच्च होगा, उतना विद्यालय के भविष्य के लिए हितप्रद है। इन विद्यार्थियों को गायकी सहित पचास राग जानना चाहिए। उनके गायन में प्रौढ़ता, सभा

गायन का रंग, शिक्षा की स्पष्ट झलक, सुडौल, मोहक एवं कलापूर्ण मींड-गमक युक्त गायकी का प्रदर्शन, अस्खलित, दानेदार तानों सहित होना चाहिए। पाठान्तर के साथ-साथ स्वरोच्चारण, शब्दोच्चारण निर्दोष होने चाहिये। सभाढीठता एवं सभा को वश में करने की कला उनमें होनी चाहिये। अपने गायन का आकर्षण एवं प्रभाव प्रारम्भ से अन्त तक कायम रखने की पात्रता उनमें होनी चाहिये। भावी जीवन में संगीत विषयक विभिन्न जिम्मेदारियाँ सम्हालने के लिए आवश्यक सभी गुणों का उनमें समावेश होना चाहिये। संगीत क्षेत्र में ग्वालियर के अपने विद्यालय में जो नूतन प्रयोग हो रहे हैं, उनकी ओर सारे देश का ध्यान लगा हुआ है। ये प्रयोग ग्वालियर के एवं विद्यालय के गौरव को बढ़ाने में सिद्ध हुए, तो वे सभी लोग स्वेच्छा से अपने अनुयायी हो जावेंगे।"

विद्यालयीन शिक्षण पूर्ण हो जाने के प्रमाण-पत्र की इस अन्तिम परीक्षा का स्तर अन्य विषयों के डिप्लोमा, ग्रेज्युएट परीक्षा के समकक्ष हो, इसलिए समय-समय पर सूचनाएँ प्रस्तुत कर रावसाहब ने उसे आधुनिकतम बना दिया। संगीत में भी लिखित परीक्षा प्रारम्भ करना, उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ श्रेणी में परीक्षा फल तैयार करना, शासकीय राजपत्र में उसे घोषित करवाना, विशेष स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को सुवर्ण एवं रौप्य-पदक प्रदान करना, वार्षिक जलसों के नाम से दीक्षान्त समारोहों में महाराजा सिंधिया के करकमलों द्वारा उपाधि-पत्र वितरण कराना आदि सभी आवश्यक सुधार वे क्रमशः करते गये।

परीक्षोत्तीर्ण छात्रों के उज्ज्वल भविष्य के लिए रावसाहब सदैव चिन्तित रहते थे। उनके योग्य उन्हें व्यवसाय मिलता रहे ऐसे प्रयत्न भी करते थे। परन्तु कुछ ऐसे भी छात्र उन्हें मालूम थे, जिन्हें व्यवसाय के अभाव में गायन का रियाज़ छोड़ देना पड़ता था; जिससे सधे हुए गले बिगाड़ बैठते थे। कुछ लड़के अठारह वर्ष की आयु के पूर्व ही शिक्षण समाप्त कर लेते थे तो कुछ ऐसे भी होते जो थोड़ा-सा मार्ग-दर्शन मिल जाने पर यशस्वी गायक हो जाने की क्षमता रखते थे। ऐसे सभी विद्यार्थियों का अभ्यास चलता रहे व सुदूर विद्यालयों के लिए अच्छे शिक्षकों की कमी कभी भी प्रतीत न हो, इस दृष्टि से कभी तो उनके डिप्लोमा एकाध वर्ष के लिये रोक लिए जाते अथवा छात्रवृत्ति दे कर उन्हें अपने ही विद्यालय में शिक्षक नियुक्त कर लिया जाता। शिक्षकों के रिक्त स्थान पर इन्हीं प्रशिक्षित छात्रों को नियुक्त किया जाता। विद्यार्थी अधिक अभ्यास करके विशेष यश सम्पादित करे, इस आत्मीय भावना से उत्तीर्ण हो जाने पर भी उन्हें रोक लिया जाता अथवा राजाभैया के निरीक्षण में आगे का अभ्यास करते रहने की ताक़ीद दी जाती। अपने नियमित अभ्यास से एवं आचरण से जब तक ये छात्र राजाभैया को सन्तुष्ट कर उनका प्रशस्तिपत्र प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक उन्हें उत्तीर्ण घोषित नहीं किया जाता। उपरोक्त सभी बातें आज के विद्यार्थी जगत् को एवं विद्यालयों के प्रशासकों को अन्यायपूर्ण एवं आश्चर्यजनक लगेंगी, किन्तु विद्यार्थियों एवं विद्यालयों का स्तर ऊँचा रहना चाहिए; उनकी इस उदात्त हेतु की सराहना किये बिना नहीं रहा जाता।

संगीत का वर्त्तमान अभ्यासक्रम रावसाहब के शैक्षणिक प्रयोगों का एवं अनुभवों का निष्कर्ष है। एक बहुत बड़ी महत्वाकांक्षा लेकर उन्होंने ग्वालियर में शिक्षण-कार्य प्रारम्भ किया। विद्यालय के प्रारम्भिक दिनों में प्रथम वर्ष के लिए पच्चीस राग, और द्वितीय

एवं तृतीय वर्षों के लिये बीस-बीस राग निश्चित किये गये थे। अंतिम वर्ष की परीक्षा तक सवा सौ-डेढ़ सौ रागों का ज्ञान कराया गया था, जिनमें नब्बे राग गायकी सहित सिखाये गये थे। कुछ वर्ष तक बड़े परिश्रम से यह अभ्यासक्रम चलता रहा, परन्तु विद्यालय शासकीय होने के कारण समय की पाबन्दी, घोषित छुट्टियाँ, शिक्षकों के विभिन्न अवकाश, उपयुक्त भवन का अभाव आदि कारणों से उसमें परिवर्तन करना पड़ा। पचहत्तर राग संख्या तक रावसाहब को स्वीकार करना पड़ा, परन्तु यह संख्या भी आगे चलकर अधिक प्रतीत होने लगी। अन्त में ग्वालियर के गायकों में प्रसिद्ध ऐसे पैंतालीस रागों का अभ्यास-क्रम निश्चित हुआ, जो आज देश के विभिन्न विद्यालयों में चल रहा है। बाद में लखनऊ के विद्यालय के लिये भी यही अभ्यासक्रम स्वीकृत हुआ।

ग्वालियर के संगीत विद्यालय से रावसाहब का आन्तरिक प्रेम था। उसे सर्व दृष्टि से वे अपना विद्यालय समझते थे। उसके यशों का श्रेय, शिक्षकों को देते व अपनी नूतन शिक्षा पद्धित की उपयोगिता देख कर संतुष्ट होते। यहाँ के शैक्षणिक प्रयोगों से सारा देश प्रभावित हो रहा है, यहाँ के समान शिक्षण अन्यत्र कहीं भी दिया नहीं जा रहा है; ऐसा वे सदैव कहते थे। यहाँ के विद्यार्थियों में किसी भी प्रकार की त्रुटि न रहे इस दृष्टि से शिक्षकों को समय-समय पर निर्देश देते, कार्य संतोषप्रद न होने पर कड़े से कड़े शब्दों में उन्हें चेतावनी देते, वेतन-वृद्धि रोक देते और जिम्मेदारी के कार्य से हटा देते। शिक्षकों की ज्येष्ठता का मूल्यमापन विद्यालय में उनकी उपयोगिता पर निर्धारित करते। निर्भीकता से मार्गदर्शन करने में न चूकना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे।

संगीत में मौखिक शिक्षा के साथ-साथ पाठ्यपुस्तकों का प्रचलन अत्यावश्यक है, ऐसी उनकी धारणा थी। पाठ्यपुस्तकों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट करते समय वे अपने स्वानुभवों का उल्लेख करते। विद्यार्थियों की शिक्षा शिक्षकों की इच्छा पर छोड़ देना उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया। जो शिक्षक पाठ्यपुस्तकों का सम्पूर्ण उपयोग नहीं करते, निर्धारित कार्य पूर्ण करने का दायित्व स्वीकार नहीं करते, मनमाना शिक्षण देते; उन्हें विद्यालय से अलग कर देने तक की सूचनाएँ अधिकारियों को देते। विद्यार्थियों को आगे की कक्षाओं में उन्नत करते ही अभ्यासक्रम के अनुसार क्रमिक-पुस्तकों की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। संगीत शिक्षा प्रणाली के आधार स्तंभ के रूप में दस थाट व उनके आश्रय-राग रावसाहब ने मान लिए थे। आश्रयरागों में गीतों का प्रकाशन तक उन्होंने पूर्व से ही सोच रखा था। क्रमिक पुस्तक मालिका के तृतीय एवं चतुर्थ भाग विद्यालय की आवश्यकता-नुसार वहाँ के अध्यापकों की सहायता से तैयार किए गये। पंचवर्षीय अभ्यासक्रम में उप-रोक्त चारों पुस्तकों का अध्ययन हो जाने पर स्नातकोत्तरीय अभ्यासक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों की आवश्यकता गायन विषय के लिये प्रतीत होने लगी। इस दिशा में भी रावसाहब ने सारी बातें सोच रखी थीं। परन्तु गायन के समान अब तबला, मृदंग, सितार, नृत्य की शिक्षा भी क्रमवार एवं सुसंगठित रूप से आयोजित करनी चाहिए, ऐसा उनका दृढ़ संकल्प था। इन विषयों के शिक्षकों को इसका महत्व समझा कर पाठ्यपुस्तकें लिखने हेतु प्रोत्सा-हित किया। बिना पाठ्यपुस्तक के किसी भी विषय की शिक्षा विद्यालय में न देने का उन्होंने नियम बना दिया। सिखाये जानेवाले ख्यालों की गायकी क्रमबद्ध रीति से छात्रों को प्राप्त

हो इस दृष्टि से 'तान मालिका' दो भागों में तैयार करने के लिये राजाभैया को उन्होंने उद्युक्त किया। ग्वालियर की ख्यालगायकी का वे देश भर में प्रसार एवं प्रचार करना चाहते थे। पुस्तक राजाभैया के नाम से प्रकाशित होने पर गायकी के इस ढंग का प्रभाव समस्त देश की गायकी पर पड़े ऐसा उनका विश्वास था। अध्यापकों द्वारा तैयार की हुई पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन शिक्षा-विभाग उन्हें योग्य पारिश्रमिक दे कर करे, जिससे यह कार्य बिना कठिनाई के आगे भी चलता रहे। फलतः देश भर की संगीत शिक्षा के मार्गदर्शन का श्रेय ग्वालियर के विद्यालय को मिले; ऐसी उनकी इच्छा थी।

संगीत कला का उत्कर्ष गुणीजनों को श्रवण कर ही अधिक समाधान कारक रीति से होता है। सौभाग्य से ग्वालियर, बड़ौदा, इन्दौर, रामपुर जैसी सम्पन्न रियासतों में ऐसे गुणीजन बहुत बड़ी संख्या में उस समय थे। दरबार में उनके गायन-वादन यदा-कदा ही होते थे। नियमित कार्य करते रहने की आदत न रहने से अपनी कला दूसरों को न सुनाने की प्रवृत्ति उनमें अपने आप बढ़ जाती थी। ऐसे गुणीजनों को यदि उचित हो तो अतिरिक्त अल्प वेतन दे कर उनकी विद्या का लाभ संगीत विद्यालय के छात्रों को दिये जाने से उनका गायन अधिक ओजस्वी होगा; रावसाहब का ऐसा भी मत था। विद्यार्थियों की आवश्यकता शिक्षकों से जान कर उन रागों के नियम-धर्म पहले से ही तैयार कर यदि ऐसे प्रदर्शन बीच-बीच में आयोजित किये गये तो विद्यार्थियों का हित होगा और रियासत के सर्वसाधारण लोगों को उनकी कला सुनने का अवसर मिलेगा। बड़ौदे में ऐसी व्यवस्था कार्यान्वित करने में रावसाहब अत्यन्त सफल हुए थे। इसलिए वे ग्वालियर में भी यह प्रथा चालू करना चाहते थे। एक प्रसंग पर तो उन्होंने यहाँ तक सुझाव दिया था कि विद्यालय के किन्हीं दो प्रशिक्षित छात्रों को ख्यालगायन में नैपुण्य सम्पादन करने के लिए ग्वालियर के दो प्रमुख कलाकारों के पास आवश्यक आदेशों सहित भेजा जाय। ख्याल गायकी की विशेष योग्यता (स्पेशलाइज़ेशन) ही उनका लक्ष्य था।

शिक्षा के क्षेत्र में अन्यत्र जो भी कुछ हो रहा है उसका यथार्थ ज्ञान अपने विद्यार्थियों को हो, वे कूपमंडूक न रहें, गवैयेपन के दोष उनमें न आने पावें, विनय एवं पात्रता के साथ-साथ उनकी कला का विकास हो; इस दृष्टि से ग्वालियर, बड़ौदा के विद्यालयों में पारस्परिक स्नेह सम्बन्ध जोड़ देना वे चाहते थे। होनहार छात्रों को ज्येष्ठ शिक्षकों की निगरानी में बड़ौदा, रामपुर, इन्दौर भेज कर वहाँ के गुणीजनों की विद्या का लाभ उन्हें कराया जाय, इस दृष्टि से छात्रों के शैक्षणिक भ्रमण समय-समय पर आयोजित कराना वे चाहते थे।

पेशेवर गायक-वादक, शास्त्री-पंडित, अध्यापक-छात्र, विद्यालयों के संरक्षक-प्रशासक, सांगीतिक गतिविधियों को आश्रय प्रदान करने वाले धनिक, इन सभी का सहयोग संगीत विद्या का सर्वांगीण विकास होने में मिलता रहे, इस दृष्टि से जहाँ पर जो उचित प्रतीत हुआ; उसका अवलम्बन करते हुए निर्भीकता से रावसाहब उनका मार्गदर्शन करते रहे। जहाँ-जहाँ पर भी संगीत का कुछ कार्य होता है वहाँ वह भली प्रकार से हो, समाज का अधिक लाभ हो, उससे संगीत की उन्नति ही हो ऐसे उदात्त विचारों से प्रेरित हो कर एक अन्य उपेक्षित संगीतजीवी वर्ग के उद्धार में भी रावसाहब ने सभी आवश्यक प्रयत्न किए। संगीत

चाहे गणिकाओं का हो अथवा प्रशिक्षित अध्यापकों का हो, उसे वे लेशमात्र भी विकृत अवस्था में नहीं देख सकते थे। ग्वालियर के तवायफ स्कूल में रावसाहब ने समय-समय पर जो मार्गदर्शन एवं सुझाव दिये वे संगीतोद्धार के लिए चतुर्दिक प्रयत्नों में सम्मिलित हैं।

रावसाहब की नूतन शिक्षा प्रणाली आठ दस वर्षों की अल्पावधि में ही पूर्णरूप से विकसित होती हुई प्रतीत होने लगी। दूर-दूर के छात्र यहाँ आने लगे और यहाँ से शिक्षा प्राप्त कर विभिन्न नगरों में शिक्षा कार्य करने लगे। इस विद्यालय के अतिरिक्त अन्य स्थानों में भी संगीत विद्या का लाभ जिज्ञासुओं को मिले, इस उद्देश्य से नगर के विभिन्न मुहल्लों में एक-दो वर्ष के पाठ्यक्रम की सुविधा सहित छोटी-छोटी शाखाएँ प्रारम्भ करने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। राज्य के अन्य बड़े नगरों में विद्यालय ने केन्द्रीय संस्था का एक स्वरूप धारण किया। ग्वालियर के इतिहास, नूतन प्रणाली के स्वागत एवं एकत्रित किये हुए सभी साधनों से प्रेरित होकर ग्वालियर में संगीत विश्वविद्यालय की स्थापना का स्वप्न रावसाहब देखने लगे।

विद्यालय की स्थापना के प्रारम्भिक दिनों में साल में तीन-चार बार रावसाहब ग्वालियर पधारते रहे। अपने हाथ से बोये हुए पौधे ने जब जड़ें पकड़ीं, तब वर्ष में दो बार आते रहे। अपने मार्गदर्शन की धूप में संवेदना का पानी सींच कर एक माली की तरह उसकी देखभाल करते रहे। उनकी निरपेक्ष सेवावृत्ति, असामान्य व्यक्तित्व, कर्तव्यनिष्ठा तथा स्पष्टवादिता ने राजकुटुंबियों से लेकर छोटे-छोटे बालकों तक को प्रभावित कर डाला था। वे जब ग्वालियर पधारते, चेतना की लहर दौड़ जाती। विद्यालय के प्रथम दीक्षान्त समारोह पर नगर में किए गए उनके भव्य सम्मान का दृश्य जिन महाभागों ने अपनी आँखों से देखा, माधवराव महाराज के शब्द अपने कानों से सुने, भारतीय संगीत में सामूहिक शिक्षा का युग प्रारम्भ करने वाले छात्रों का गायन श्रवण किया, उन्हें 'नर जब करनी करे, तो नर का नारायन होत' तुलसी के इस वचन की सत्यता प्रतीत हुई होगी।

उनके वात्सल्यपूर्ण दृष्टिपात से विद्यार्थी अपने को धन्य मान लेते। उनके सान्निध्य में उत्साह एवं स्फूर्ति के स्रोत की प्राप्ति का अनुभव करते। ऐसे ही एक प्रसंग पर विद्यालय के वार्षिक जलसे में रावसाहब की उपस्थिति से प्रोत्साहित हो कर छात्रों ने जो एक संवाद प्रस्तुत किया, उसे यहाँ पर उद्धृत किया जा रहा है। संवाद श्री राजा भैया पूंछवाले का लिखा हुआ है, जिसका विषय 'भातखंडे साहब की शिक्षा पद्धति' है।

श्री शंकर

जल्सा माधव संगीत विद्यालय

सन् १९३३ ई० : संवत् १९८९

विषय : प्राचीन व अर्वाचीन संगीत शिक्षण पद्धति पर एक सद्गृहस्थ व दो विद्यार्थियों का संवाद।

स्थल : एक विविक्षित रास्ते से दो विद्यार्थी उत्सुकता के साथ गड़बड़ से जा रहे हैं।

सद्गृहस्थ : बालकों ! किस गड़बड़ से जा रहे हो ?

दोनों विद्यार्थी : आज हमारे माधव संगीत विद्यालय का वार्षिक जलसा है, वहाँ जा रहे हैं।

स० गृ० : जल्से में क्या-क्या प्रोग्राम है ?

पहला वि० : इस जल्से में अच्छा गायन-वादन करने वाले विद्यार्थियों का गाना-बजाना हो कर उनको कुछ इनाम तक्सीम की जावेगी और जिन विद्यार्थियों ने माधव संगीत विद्यालय का कोर्स पूरा किया है व जो अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं उनको सर्टिफिकेट्स दिए जावेंगे।

स० गृ० : यह कोर्स पूरा करने लिए कितना अवकाश लगता है ?

दूसरा वि० : जो विद्यार्थी विद्यालय के नियमित समय पर रोजाना हाजिर रह कर अपने क्लास का अभ्यास, साथ दिलचस्पी करता है, वह पाँच वर्ष की अवधि में कोर्स पूरा कर सकता है।

स० गृ० : संगीत विषय इतना कठिन होकर तुम पाँच साल की अल्प अवधि में इसे किस तरह पूर्ण कर सकते हो ?

प० वि० : संगीतकलानिधि प्रो० गुरुवर्य भातखंडे साहब ने जो 'नोटेशन पद्धति' का प्रसार किया है उसकी सहायता से बहुत ही आसानी से स्वरज्ञान हो जाता है एवं कोर्स में नियत किए हुए पचास रागों का सशास्त्र शिक्षण लेकर इस अवधि में हमारे विद्यालय के विद्यार्थी वे राग सारे अच्छी तरह गा-बजा सकते हैं।

स० गृ० : क्या, इतने अल्प अवकाश में शिक्षण पाए हुए तुम विद्यार्थी अपने गायन-वादन द्वारा जनता के चित्त का रंजन कर सकते हो ?

दू० वि० : क्यों नहीं। अब वह पुराना ज़माना कहाँ रहा है कि जिस ज़माने में उस्ताद के सहवास में दिन रात अपना काल व्यतीत करके उनकी सब तरह से चाकरी करते हुए भी १२—१४ वर्ष व्यतीत हो जाते थे। तब भी पूरी तौर से संगीत का शिक्षण प्राप्त होने का अभाव था। जो कुछ भी थोड़ा-सा प्राप्त होता था, उसमें बहुत-सी त्रुटियाँ रह जाती थीं, जिनके बाबत उस्ताद से समझायश लेना उनके नाराज होने के खौफ से दुश्वार होता था।

स० गृ० : ये तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है। अब तो बहुत ही थोड़े अवसर में निष्कपट रीति से माधव संगीत विद्यालय में संगीत का शिक्षण मिलने की सुविधा हो गई है। अब मेरा ये एक सवाल कि, जिस-जिस समय पर मैंने तुम्हारे विद्यालय के पास-याफ़्ता विद्यार्थियों का गायन-वादन सुना है, बेशक वे अपना राग सशास्त्र गाते-बजाते हैं। लेकिन वही राग पुराने जमाने की शिक्षा पाए हुए श्रद्धावान् लोग अपनी गुरु-परम्परा को सम्हाल कर तासीर, वजनदारी और साथ तैयारी के गाते हैं। वह बातें तुम लोगों के गाने-बजाने में नहीं दिखतीं, इसकी क्या वजह है ? इस जमाने में ऐसी सुविधा से शिक्षण पाए हुए तुम सरीखे विद्यार्थियों को तो उन पुराने जमाने की शिक्षा पाए हुए लोगों से संगीत कला में ज्यादा निष्णात 'गानपटु' होना चाहिये था।

दोनों वि० : इसका कारण हमारी समझ में अभी तक नहीं आता है।

स० गृ० : इसका कारण यही है कि, एक तो तुम लोग अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद गाने-बजाने का रियाज़ करना बिलकुल ही छोड़ देते हो। इस वजह से तुम्हारे गाने-बजाने की तैयारी दिन-ब-दिन कम हो जाती है। दूसरे, अपने उस्ताद का सहवास छोड़ कर उन पर श्रद्धा भी रखते नहीं। तुम खुद उस्ताद से भी ज्यादा योग्यता के हो गए हो, ऐसा तुम लोगों में गर्व उत्पन्न हो जाता है। और अपनी गुरु-परम्परा को भूलकर स्वैर गायन-वादन करने लगते हो। इसी वजह से गाने में तासीर भी नहीं रहती। इसलिये अब तुम सब विद्यार्थी अपनी इस निरर्थक, अज्ञान-मूलक भूल को छोड़कर आत्म-निरीक्षक बनने का अभ्यास करो व ऐसे निष्कपट रीति से शिक्षण देने वाले अपने शिक्षक-वर्ग पर पूर्ण श्रद्धा रख कर उनका सहवास अधिकाधिक करने के लिए सावधान रहो। ऐसी सुविधा से प्राप्त की हुई विद्या का नित्यशः बने उतना रियाज़ करो। जिससे तुम लोगों के गाने-बजाने में तैयारी व तासीर पैदा होगी। जो संगीत विद्या का शिक्षण पेश्तर के जमाने में मिलना परम कष्ट-साध्य था, किन्तु अब वही शिक्षण बहुत आसानी से एक अल्प काल में प्राप्त होने के लिए हमारे संगीत-कलानिधि गुरुवर्य प्रो० भातखंडे साहब ने परम उदारता के साथ 'हिन्दुस्तानी संगीत शिक्षण पद्धति' का प्रसार भारतवर्ष में सर्वत्र किया है। और उन्हीं के दीर्घ प्रयत्न से श्रीमंत सरकार स्व० माधवराव महाराज साहब सिंधिया ने तुम संगीत मुमुक्षु विद्यार्थियों की सुविधा के लिए इस माधव संगीत विद्यालय की स्थापना सन् १९१८ में की है। इस विद्यालय की देखरेख अब हमारे परमदयालु श्रीमंत सरकार जार्ज जिवाजीराव महाराज साहब सिंधिया और अन्य अधिकारी वर्ग कर रहे हैं, जिसका सार्थक होकर सारे भारतवर्ष में इस विद्यालय के विद्यार्थियों का नाम रोशन होगा।

दोनों वि० : आपका कहना बिलकुल सच है। आप के इस उपदेशानुसार हम सब विद्यार्थी अब अनुकरण करने की कोशिश अवश्य करेंगे।

सर्व : बोलो, हमारे परम दयालु श्रीमंत सरकार जार्ज जिवाजी महाराज़ साहब सिंधिया की जय ! संगीतकलानिधि श्री गुरुवर्य प्रो० भातखण्डे साहब की जय !

(पटाक्षेप)

ऐसा लगता है कि अपने नाम की जयजयकार सुनकर रावसाहब सन्तुष्ट न हुए होंगे। संगीत से व्यक्तिवाद को हटा कर समष्टिवाद की प्रतिष्ठा करना उनके बहूद्दिष्टों में से एक उद्दिष्ट था। नूतन शिक्षा प्रणाली से प्रभावित, लाभान्वित इन अबोध बालकों के उत्साह में व्यक्तिवाद की अस्पष्ट रेखा उन्हें दिखाई दी हो और ऐसे प्रसंगों से अलिप्त हो जाने की इच्छा जागृत हुई हो तो क्या आश्चर्य ! ग्वालियर को सन् १९३३ की उनकी यह भेंट अंतिम भेंट सिद्ध हुई।

ऐसे थे संगीतोद्धारक रावसाहब भातखण्डे।

नया मन्वन्तर

नया मन्वन्तर

पण्डित विष्णु नारायण भातखण्डे द्वारा लिखित
माधव संगीत महाविद्यालय, ग्वालियर की परीक्षा एवं निरीक्षणों के वृत्तान्त

लेखानुक्रम एवं विषय-सूची

१. विषय-प्रवेश — सम्पादकीय

२. कक्षावार वृत्तान्त एवं सूचनाएँ — सन् १९२०

सामूहिक शिक्षा के लिये पाठ्यक्रम निर्धारण का प्रारम्भिक प्रयास। प्रथम वर्ष में सोलह रागों में ११२ चीजें, द्वितीय वर्ष में १४ राग सुडौल गायकी सहित, तृतीय वर्ष में २० राग गायकी की प्रौढ़ता सहित। चार-वर्षों में तीन सौ ख्याल, डेढ़ सौ ध्रुवपद, तान-आलाप, रागों की सूक्ष्म विशेषताएँ, विभिन्न अलंकार, लय तथा रागोचित विश्रांति-स्थान, रागों के श्लोक, दोहे, सरगम, लक्षणगीत मुखस्थ करना, तंबुरा तबला मिलाना, महफिलों में गायन करना आदि। विद्यालय का दैनिक कामकाज। प्रधानाध्यापक, शिक्षक तथा संचालकों के कर्तव्य। सिखाये हुए गीत किसी न किसी पुस्तक में होने ही चाहिये। गीत-मालिका की उपयुक्तता। शास्त्रीय विषयों पर व्याख्यान, साप्ताहिक बैठकें तथा अध्यापन सम्बन्धी विभिन्न सूचनाएँ।

३. हेडमास्टर महोदय को सूचनाएँ — सन् १९२१

संगीत के शास्त्र व कला पक्ष का समन्वय, पाठान्तर, पिछले अभ्यास की पुनरावृत्ति, गायकी में परिपक्वता, वैचित्र्य, रंजकत्व, सुघड़ कंठ का बनाना, तानबाजी के मोह को मर्यादित रखना, गायन में सजीवता निर्माण करना, ध्रुवपद शिक्षा दुर्लक्षित न करना, समय-समय पर लिखित व मौखिक जाँच कराना, शिक्षकों को कक्षा के पाठ कंठस्थ रहना आदि विषयों पर सुझाव।

४. वार्षिक परीक्षा के परिणाम, वृत्तान्त तथा आगामी सत्र के लिये सूचनाएँ — सन् १९२२

प्रौढ़ और मोहक गायकी, ख्याल गायन में स्वरोच्चार, शब्दोच्चार, मुखड़ा मिलाने की रीति का महत्व। तृतीय वर्ष के अन्त तक ३० राग ख्याल, ध्रुवपद, गायकी, शास्त्र-ज्ञान सहित होने चाहिये। ज्येष्ठ शिक्षक व आमंत्रित गायकों को सुनना। कक्षाकार्य क्रमवार लिख रखना। समझदार नागरिकों को आमंत्रित करना। अनपढ़ शिक्षकों की निरुपयोगिता। सरगमें व पल्टों का स्वरज्ञान में महत्व। मुख-विकृति की ओर ध्यान देना। ज्येष्ठ शिक्षकों से सहायता लेना। तृतीय वर्ष

से ख्याल-गायन की वास्तविक शिक्षा। गला तैयार करना। अभ्यास की पुनरावृत्ति विचारपूर्वक करना। स्वरोच्चार, शब्दोच्चार, पदच्छेद, आकर्षक महफ़िली ढंग का गायन चतुर्थ वर्ष में ही तैयार हो जाना चाहिये। अपना राग आधे घन्टे तक गाने की क्षमता। अभिनवरागमंजरी का महत्व। सिखाने योग्य सभी बातें छात्रों को पंचम वर्ष में मिल जानी चाहिये।

५. **अर्धवार्षिक निरीक्षण, कक्षावार वृत्तान्त व सूचनाएँ** **अप्रैल, सन् १९२५**

पिछले कार्य की आवृत्ति का महत्व। अंतिम परीक्षा तक ४५ रागों की शिक्षा। तवायफ स्कूल पर सेंट्रल स्कूल का नियन्त्रण। राज्य के कलाकारों से विद्यालय को लाभ प्राप्त करना। छात्रों की अनुपस्थिति पर प्रतिबंध। वार्षिक परीक्षा में बैठने के लिये छात्रों की योग्यता का निर्धारण। क्वालिटी बिफोर क्वांटिटी। लयदारी, सम पर आने की कला, कणों की सफाई, विश्रांति-स्थान, अवग्रह बदलना। सीखे हुए रागों की आवृत्ति का महत्व। फुर्तीले विद्यार्थियों को गायकी की कला विशेष रूप से सिखानी चाहिये। पंचम वर्ष परीक्षा विद्यालय की शिक्षा का सर्वोत्तम नमूना होना चाहिये। यहाँ पर कड़ाई से जाँच-परीक्षा किये बिना परीक्षा में न बैठने दिया जाय। तवायफ स्कूल पर सुझाव।

६. **वार्षिक परीक्षा के परिणाम, वृत्तान्त व सूचनाएँ** **नवम्बर, सन् १९२५**

कक्षा में छात्र-संख्या की मर्यादा। छोटी आयु के छात्रों की शिक्षा अनुभवी शिक्षकों द्वारा दी जाय। कार्यालय के कामकाज से छात्रों का नुकसान न हो। प्रत्येक राग में एक सरगम, एक लक्षणगीत, एक बड़ा ख्याल, दो छोटे ख्याल, एक ध्रुवपद, एक धमार, श्लोक, दोहों सहित तैयार होना चाहिये। कक्षा व्यवस्था सुविधा का प्रश्न है, शिक्षकों की ज्येष्ठता का नहीं। परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने पर भी ज्येष्ठ शिक्षकों की सहमति से ही प्रमाण-पत्र दिये जायँ। स्टैण्डर्ड सदैव ऊँचा रहना चाहिये।

दरबारी गायक-वादकों की कला का विद्यार्थियों को लाभ। बड़ौदे में की हुई व्यवस्था। छात्र व शिक्षकों की शैक्षणिक यात्राएँ, विद्या का आदान-प्रदान, गुणी लोगों को सुनने से संगीत कला का उत्कर्ष। कूप-मण्डूकता नष्ट कराना। विनय एवं पात्रता बनाये रखना। वाद्य-संगीत की कक्षाएँ सुयोग्य विद्वानों से संचालित करना। सेन्ट्रल स्कूल की शाखाएँ स्थान-स्थान पर खोलना। निकट भविष्य में संगीत की युनिवर्सिटी। संगीत संस्कृति का अटूट अंग है। विद्यालय से प्रशिक्षित छात्र सुयोग्य शिक्षक होंगे। तवायफ स्कूल का पुनर्गठन।

७. **अर्ध-वार्षिक निरीक्षण का वृत्तान्त तथा विशेष सूचनाएँ** **अप्रैल, १९२६**

शिक्षकों की गैरहाजिरी से छात्रों का अपरिमित नुकसान। परीक्षा में योग्यतानुसार श्रेणियाँ घोषित करना। चीजों की संख्या बढ़ाने की अपेक्षा स्वरस्थान, शब्दोच्चार, स्वरोच्चार, गाने का ढंग, ताल साधन की ओर ध्यान देना चाहिए। तानों की सुसंगतता, उन्हें स्थायी से जोड़ना, शाला के शिक्षणक्रम तथा शिक्षापद्धति में एकसूत्रता, महफ़िली रंग के गायन को सुनाना तथा छात्रों से गवाना

चाहिए। उम्मीदवार गायकों की महफिलों द्वारा शिक्षा। नोटेशन केवल तालीम मात्र है। चीजें याद करना, गले घुमाने की अपेक्षा गायन की वास्तविक कला पर ध्यान जाना चाहिए। शनिवार की बैठकों का महत्व। वरिष्ठ शिक्षकों की अन्य शिक्षकों पर निगरानी। लिखित रूप से परीक्षा प्रारम्भ हो।

८. **वार्षिक परीक्षा का विवरण सूचनाओं सहित** **नवम्बर, १६२६**
विद्यालय की उपाधि का अन्यत्र आदर। परीक्षोत्तीर्ण छात्रों के भविष्य पर सुझाव। केवल स्वरज्ञान कराने में छात्रों को प्रवेश कक्षा में लम्बे समय तक रख छोड़ना अन्याय है। सभी छात्र यथाशीघ्र कोर्स को लगा देने चाहिए। तबले के बोल पहिचान कर गायन करने का अभ्यास नीचे की कक्षा से करना इष्ट होगा। कक्षा में कम छात्र संख्या शिक्षक का दोष है। हार्मोनियम से गायन की कक्षाओं में बाधा। सुयोग्य शिक्षकों के अभाव में सितार-शिक्षा प्रारम्भ न हो। दरबारी गायक-वादकों के पास विद्यालय के प्रशिक्षित छात्र कलात्मक शिक्षा प्राप्त करने हेतु भेजना। स्कालर्शिप की व्यवस्था। विद्यालय में दरबारी गायकों के प्रदर्शन उनकी इच्छा पर न छोड़ना। तवायफ स्कूल व सेन्ट्रल स्कूल में आदान-प्रदान।

९. **वार्षिक परीक्षा का विवरण सूचनाओं सहित** **नवम्बर, १६२७**
प्रारम्भिक कक्षाओं पर ज्येष्ठ शिक्षकों की निगरानी। अनुभवी व दक्ष शिक्षक विद्यालय में रखे जायँ। शिक्षकों के रिक्तस्थान पर प्रशिक्षित स्कालरों की नियुक्ति की जाय। योग्य शिक्षकों की पदोन्नति। खर्चीला तवायफ स्कूल। वाद्य-विभाग की पाठ्यपुस्तकें।

१०. **वार्षिक परीक्षा का वृत्तान्त, आगामी वर्ष की व्यवस्था सूचनाओं सहित**
नवम्बर, १६२८
छात्रों की अनुपस्थिति पर कड़ा प्रतिबन्ध। साथसंगत तबला शिक्षण का एक अंग। अभ्यासक्रम पुस्तक रूप से तैयार न करने वाले तथा इच्छानुसार शिक्षा देने वाले शिक्षकों के प्रमोशन रोक दिए जायँ, सेवा से पृथक् किया जाय। हार्मोनियम के लिए भी उच्च प्रतीक के गीत हों। नृत्य की भी पुस्तकें हों। सिंधिया स्वर्ण पदक तथा रौप्य पदक की व्यवस्था। वार्षिक जल्सों में प्रमाणपत्र वितरित हों। परीक्षाफल सरकारी गजट में प्रकाशित हो। विद्यालय की कार्य-बाहुल्यता व आफिशियल विजिटरों की नियुक्ति। तवायफ स्कूल पर सुझाव। कार्यालयीन पत्र-व्यवहार शिक्षण में एक बाधा। गायकी अच्छी तैयार होने पर ही प्रमाणपत्र दिए जायँ। स्कालर-शिक्षकों की नियुक्ति हितप्रद होगी।

११. **वार्षिक परीक्षा का वृत्तान्त तथा कक्षावार सूचनाएँ** **नवम्बर, १६२६**
शिक्षकों की वेतनवृद्धि, पदोन्नति। तबला, मृदंग कक्षा की व्यवस्था। विद्यालय की शाखाएँ, पोस्ट ग्रेज्युएट कक्षा की पूर्व तैयारी। राज्य के सभी विद्यालयों के लिए संगीत का पाठ्यक्रम। शिक्षकों की अनुपस्थिति। डेमास्ट्रेशन। ग्वालियर की गायकी का पुस्तकरूप से प्रकाशन। तबला, मृदंग, हार्मोनियम की पुस्तकें। ध्रुवपद शिक्षा का महत्व।

१२. वार्षिक परीक्षा का वृत्तांत व कक्षावार सूचनाएँ **नवम्बर, १९३०**

प्रिपरेटरी कक्षाओं की दुर्दशा व सुझाव । छात्रों की उपस्थिति का निर्धारण। ठेके, बोल, परन का विशेष अभ्यास। कक्षा में शिक्षकों का कर्तव्य। तालाक्षर सुनकर गाने की आदत। तीसरी कक्षा में रागसंख्या अधिक नहीं है। नीचे की कक्षा दुर्लक्षित होने पर ऊँची कक्षा में शिक्षकों का काम अकारण बढ़ जाता है। गायकी अपूर्ण होने पर प्रमाणपत्र न दिया जाय। मराठा बोर्डिङ्ग की संगीत कक्षाएँ। सितार, तबला-पखावज की शिक्षा में पर्याप्त सुधार की आवश्यकता तथा राज्य के सितार-वादकों को विद्यालय का कार्य दिए जाने पर सुझाव।

PANDIT VISHNU N. BHATKHANDE,
B. A., L.L. B.,
HIGH COURT PLEADER (RETD.)

SHANTARAM HOUSE.
MALABAR HILL,
BOMBAY. NO. 6.

९२५
11-1-1926

मोतमहाल गेस्ट

मेहेरबान रावसाहेब जी. व्ही. अंबार्डेकर,
सेक्रेटरी, माधव संगीत विद्यालय

मी मुंबईहून शुक्रवार ता. 20 रोजीं निघून येथे
दुसरी रोजीं पोहोंचलों. ता. 23 सोमवार पासून विद्यालय
सुरू व्हावयाचें होतें परंतु त्या दिवशीं किंग जार्ज यांच्या मातुश्रींच्या
संबंधें सुटी देण्यांत आली होती, म्हणून परीक्षा दुसऱ्या दिवशीं
मंगळवार ता. 24 पासून सुरू करण्यांत आली. परीक्षा स.
चालून, आज तबलजी [illegible] परीक्षेनें संपली. [illegible]
[illegible] वर्गांतून किती किती मुलें बसली व त्यांनीं क
त्या रिपोर्टावरून दिसून येईल. एकंदरीत शाळे-
रीतीनें चाललें आहे असें मला दिसून आलें. विद्यालय.
बापूराव हे बरेच दिवस आजारी राहिल्यामुळें व पुढें ते बाह
वर्गाच्या मुलांचें काम करीत नसे पडले होते. त्यांचे ऐवजी !
अग्निहोत्री यांनीं उणीव भरून काढण्याचा बराच प्रयत्न केला
[illegible] वर्गापासून गायकी सुरू बोर्ड तयार करण्याचा प्रबंध सुरू

दिसम्बर १९२५ की वार्षिक परीक्षा के वृत्तान्त की हस्तलिपि का पत्रांक तीन
(अपनी सद्यःस्थिति में खंडित अंश नष्ट हो चुका है)

मि. बळवंतराव यांनी साध्या वर्गांत धृपदें सांगण्याचें काम चांगलें केलें आहे. त्यांच्या रीतीमुळे मुलांचे तईचें ज्ञान फार चांगलें दृष्टीस पडत आहे. सीनियर वर्गांच्या लोकांना वेळ पडत असल्यामुळें व त्यांना ख्याल तानांसह उत्तम गावयाचे असल्या[illegible] वेळ असतो, हें लक्षांत घेऊन चवथ्या व पांचव्या वर्षांच्या वर्गांत धृपदांची कांहीं शिकविणी तरी चालेल. ते विद्यार्थी पास झाल्यावर हवें तर पुढतें करतील

वर्गांतून पिअरीचें शिक्षण फार काळजीनें झालें पाहिजे आहे. प्रत्येक पिअरी तयार करवून घेतली पाहिजे. मी अशीहि योजना आतां करणार आहें की फक्त वरच्या तीन वर्गांत "पिअरी" ची परीक्षा लेखी घेतां यावी. दोन तासांचा पेपर देऊन त्याची उत्तरे लेखी मुलांनी द्यावयाची अर्थात् वार्षिक परीक्षा आतां क्रमानें "लेखी" व "तोंडी" घरण्याचा बेत आला आहे. या योजनेतें मुलांचें ज्ञान पक्कें होऊन त्यांना या विषयावर लिहितां येऊं लागेल

मास्तरांना जेव्हा रजा हवी तेव्हां घेतां आल्यानें वर्गांचें फार नुकसान होतें हें अनुभवास येत आहे त्यांतून एक दोन मास्तर एकदम रजेवर गेल्यानें तर शिक्षणाचा फारच हयगय होते. योग्य कारणांशिवाय रजा मास्तरांनी घेऊं नये व शाळेच्या कामाकडे दुर्लक्ष करूं नये, असें माझें मत आहे असा प्रकार या महामारीत झाल्यानें मुलांचें फारच नुकसान झालें आहे

वि. ना. भातखंडे

हेड मा. स्कूल - म्युझिक स्कूल:

सदर रिपोर्टस आपण सर्व मास्तरांनीं लक्षपूर्वक वाचून प्रोफेसर साहेबांनीं लिहिल्याप्रमाणें कामाची व्यवस्था ठेवावी. तितकी चांगली करावी - या संबंधी एकवेळ मी आपणाशी चर्चा करणार आहे. - G. V. Ambardekar

[illegible]

अप्रैल १९२६ के अर्धवार्षिक निरीक्षण वृत्तान्त की हस्तलिपि का पत्रांक सत्रह

पत्र का खंडित अंश नष्ट हो चुका है।

नया मन्वन्तर

शिक्षा क्षेत्र में पण्डित भातखण्डे जी का सम्बन्ध मुख्यतः तीन विद्यालयों से आया। बड़ौदा शासकीय संगीत विद्यालय, ग्वालियर का माधव संगीत महाविद्यालय तथा लखनऊ का मैरिस कालेज आफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक उन प्रमुख विद्यालयों में से हैं, जिन्होंने पण्डित जी से प्रेरणा पाई, पितृवत् वात्सल्य पाया। उनका वर्तमान स्वरूप पण्डित जी के ही घोर परिश्रम का फल है। ग्वालियर तथा लखनऊ के विद्यालयों को तो स्वयं पण्डितजी ने ही जन्म दिया था। अपनी आयु के सत्तावनवें वर्ष से लेकर तिहत्तरवें वर्ष तक इन विद्यालयों को साल में दो-तीन बार भेंट देना उनका निश्चित कार्यक्रम हो गया था। विद्यालय के प्रारम्भिक दिनों में तो महीनों तक ग्वालियर में उनका वास्तव्य रहता था। स्व० माधवराव सिंधिया के व्यक्तिगत मेहमान के रूप में सरकारी नौतालाव गेस्ट हाउस उनका निवास-स्थान था। और उनके आदर एवं आतिथ्य में कहीं भी न्यूनता न पड़ने देने के अधिकारियों को निश्चित आदेश थे। किसी भी प्रकार से उनका समय नष्ट न हो इस लिए एक पृथक् घोड़ागाड़ी (विक्टोरिया) उनके लिए सदैव तैयार रहती थी। पण्डितजी की संगीत से संबन्धित सभी सूचनाओं पर अविलम्ब अमल करने के अधिकारियों को आदेश थे। अपने राज्य की संगीत परम्परा को पुनरुज्जीवित करने की सिंधिया महाराज को इतनी तीव्र आकांक्षा थी, कि विद्यालय के छात्रों का गायन-वादन वे समय-समय पर सुनते रहते और पण्डितजी से परामर्श करते रहते। विद्यालय की समस्त व्यवस्था अपने निजी खर्च से वे कराते थे, जो उनके जीवन के अंतिम क्षणों तक बराबर चलती रही।

इधर पण्डितजी भी अपनी शारीरिक अस्वस्थता एवं व्यक्तिगत अड़चनों की यत्किंचित् परवाह न करते हुए एक 'मिशनरी' की भाँति विद्यालय में जाकर प्रत्येक छात्र एवं शिक्षक के कार्य का अवलोकन करते, सुझाव देते, आवश्यकता पड़ने पर निर्देश देते। अधिकृत रूप से विद्यालय का किसी भी प्रकार का भार वहन न करते हुए भी उसके वास्तविक संचालक की भाँति वे सभी कार्य देखते। उनकी इच्छा अन्तिम आदेश का रूप धारण कर लेती। अपने दैनिक कार्यक्रम में संगीत विषयक सभी छोटी-बड़ी घटनाओं का क्रमवार वृत्तान्त लिखकर उन पर अपने विचार निर्भीकता से प्रगट करना मानों उनका नित्यकर्म ही हो गया था। माधव संगीत महाविद्यालय के अपने इन निरीक्षणों का, परीक्षाओं का वृत्तान्त अति विस्तृत रूप से उन्होंने लिख रखा है। जिन्हें पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि विद्यालय में प्रयुक्त नूतन शिक्षा प्रणाली के यशापयश का नैतिक उत्तर-दायित्व उन्होंने अपने ऊपर उठा लिया था। शैक्षणिक आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त विद्यालय के प्रशासन का भार भी वे उठाते रहे और समय-समय पर पथ-प्रदर्श

करते रहे। संगीत की उन्नति के लिए अच्छे गायक, अच्छे श्रोता, अच्छे व्याख्याकार, अच्छे छात्र, अच्छे शिक्षक, अच्छे प्रशासक, संक्षेप में प्रचुर संख्या में सुशिक्षित एवं निरपेक्ष सेवक अविरत रूप से बनानेवाली किसी सुदृढ़ एवं विशाल संघटणा का वे निर्माण करना चाहते थे। संगीत के उज्ज्वल भविष्य की आशाएँ उन्होंने इन्हीं शिक्षण संस्थाओं पर केन्द्रित की थीं। आधुनिक पद्धति के किसी विद्यालय को जिन बातों की आवश्यकता होती है, उन सभी साहित्य-उपकरणों से सुसज्जित करने में वे सदैव तत्पर रहते। उनके सामने संगीत विषयक ऐसी कोई भी समस्या नहीं थी; जिसका उन्होंने अचूक निदान न किया हो और उसका उपाय न बताया हो। अपने समय में संगीत विद्या प्राप्त करने के लिए जो-जो भी कठिनाइयाँ उन्हें उठानी पड़ी थीं, उन सब पर कुठाराघात करना वे चाहते थे। संगीत शिक्षा को विश्वविद्यालयीन अभ्यासक्रम का सम्मान वे दिलाना चाहते थे। किसी भी विद्या की उन्नति के लिए जिस बुनियादी साहित्य की आवश्यकता होती है, वह सब उन्होंने संगीत के लिए उपलब्ध करा दिया था। स्नातकस्तर के पंच-वर्षीय अभ्यासक्रम की सफलता का अनुभव कर लेने के उपरान्त स्नातकोत्तरीय अभ्यासक्रम की योजना भी उन्होंने बना रखी थी तथा इस हेतु पर्याप्त साहित्य एकत्रित कर लिया था। गायन विषय में यथेष्ट प्रगति हो जाने पर वाद्य संगीत को सुनियंत्रित करने का उन्होंने विचार किया। विद्यालय में सिखाए जाने वाले सभी विषयों की पाठ्यपुस्तकें होनी ही चाहिए, ऐसा नियम भी बना डाला। वाद्यविभाग के शिक्षकों से आग्रह किया गया, अधिकारियों द्वारा आदेश दिए गये, वेतन वृद्धि रोक दी गयी, सेवा से पृथक् करा देने की धमकियाँ भी दी गयीं। वाद्यविभाग के एक-दो विषयों को लेकर कुछ प्रारम्भिक पुस्तकें तैयार की गयीं, परन्तु भातखण्डे जी के समान किसी अन्य के बलिष्ठ हाथों के अभाव में गरीब के गरीब ही रह गये। वाद्यविभाग की पाठ्यपुस्तकें तैयार करने के लिए उनके पास समय का अभाव था। परन्तु फिर भी क्या और कैसे करना है, इसका उत्कृष्ट चित्र उन्होंने गायक-वादकों के सम्मुख खड़ा कर दिया था। ऐसा लगता है कि स्वयं वादकों ने ही इस कार्य में रुचि नहीं ली, अन्यथा अपने वाद्यों की क्रम-वार शिक्षा के विषय में वे आज तक इतने उदासीन क्यों रहते ? उन वाद्यों की सर्वमान्य पाठ्यपुस्तकें क्यों न बनाते ? यदि इस देश में खानदानी गतों का भंडार ख्यातनामा वादकों के पास सचमुच अब भी मौजूद है तो उसे लिपिबद्ध करा कर प्रत्येक राग में १५-२० भिन्न-भिन्न शैलियों की गतें प्रकाशित करना नितान्त आवश्यक है। अन्यथा परम्परागत गीतों का आधार लेकर नई गतें बनाई जायँ, जो विद्यालयों के लिए सर्वमान्य व सहज प्राप्त हो सकें। पं० भातखण्डे जी के समान धैर्य से दृढ़ संकल्प किए बिना यह कार्य संभव नहीं है।

वादन-विभाग की कमजोरी के कारण गायन विषय का क्रमिक विकास रोके रखना वे नहीं चाहते थे। नूतन शिक्षा प्रणाली से परीक्षोत्तीर्ण स्नातकों का देश में जो सम्मान हो रहा था, समाज में संगीत के प्रति जो अभिरुचि उन्होंने देखी थी; उससे वे अत्यन्त संतुष्ट हो रहे थे। ग्वालियर में आकर प्रत्येक बार कुछ न कुछ नये सुधार सुझाते और उन्हें कार्यान्वित करने के तरीके बताते। यहाँ की शिक्षा पद्धति पर उन्हें अभिमान था। वे उसे देश का सर्वोत्कृष्ट संगीत विद्यालय मानते थे। 'संगीत विश्वविद्यालय, की मूल कल्पना पं०

भातखण्डे जी की ही थी, जिसका प्रथम उल्लेख सन् १९२५ में उन्होंने ग्वालियर में किया था तथा इस कल्पना को बार-बार दोहरा कर संगीत प्रेमियों में उत्साह का मंत्र फूँक दिया था। आज जब ऐसा विश्वविद्यालय देश को मिला है तो उसे सुदृढ़ बनाने में उनके वे विचार अवश्य उपयोगी सिद्ध होंगे।

संगीत जैसे विषय में सामूहिक शिक्षा के क्षेत्र में जो सज्जन आज अथक् परिश्रम कर रहे हैं, अपनी त्रुटियों का अनुभव करते हुए भी उनका अचूक निदान नहीं कर पाते हैं, अथवा कर्त्तव्यच्युत शिक्षकों को मार्गदर्शन करने में अपने को असमर्थ पाते हैं; उनके लिए पण्डित जी की लेखनी द्वारा लिखे हुए इन वृत्तान्तों का बहुत उपयोग होगा।

संगीत की स्नातकीय परीक्षा उत्तीर्ण हो जाने का अर्थ अत्यंत सीमित होता है। सुनियंत्रित पद्धति से शिक्षण पाये हुए ये स्नातक संगीत के अमर्यादित क्षेत्रों में किसी भी सांगीतिक विषय पर योग्य दिशा से कार्यारम्भ करने के लिए सत्पात्र हो जाते हैं। अच्छे-बुरे की परख करने की उनमें क्षमता आ जाती है। अतः किसी के प्रयत्न पर भी गलत रास्ते में भटक जाना उनके लिए पहले जैसा सहज नहीं होता। स्नातक यदि ध्येयवादी हो तो साधारण अधिकार वाले गायक की सहायता से भी अपनी उन्नति कर सकता है और वही स्नातक यदि ऊँचे खानदानी उस्ताद के पास गया तो पाँच वर्ष का काम एक ही वर्ष में पूर्ण कर सकता है। सारांश यह है कि, साधारणतया संगीत की भव्य अट्टालिका के प्रवेश द्वार तक पहुँचने योग्य होता है। परन्तु दुर्भाग्यवश इन स्नातकों के सम्मुख उनके शिक्षक एवं पालक ऐसा कुछ भी आदर्श नहीं रख पाते, जिसको प्राप्त करने की इच्छा उनमें जाग उठे। अधपके स्नातक जब स्वयं शिक्षक बन जाते हैं अथवा बना दिये जाते हैं, तब तो उन विद्यालयों की तथा वहाँ के बालकों की अवस्था और भी दयनीय हो जाती है। परिणाम स्वरूप अब ऐसे भी बहुत से संगीत प्रेमी हो गए हैं जो विद्यालयीन शिक्षण पर तनिक भरोसा नहीं रखते। आदर्श रहित शिक्षक अपने छात्रों को भी आदर्श विहीन बना देता है। अपनी साधना छोड़कर घमण्डी, कर्त्तव्यच्युत एवं निरंकुश बन जाता है। विद्यालय यदि शासकीय हो तो ऐसा योग्य शिक्षक नियम, उप-नियमों की छत्रछाया में और भी अधिक निरंकुश बन जाता है और यदि गैर सरकारी हो तो अनियमित रूप से मिलने वाले अल्पवेतन की पूर्ति के लिए दिन में क्लर्की करने के बाद शाम को थकावट के कारण, स्वभावतः अन्यमनस्क रहता है। ऐसे सभी विद्यालयों में आदर्श का अभाव एक बहुत विकट समस्या बन चुकी है। संगीत में सामूहिक शिक्षा के आद्यप्रवर्तक पण्डित भातखण्डे जी के वे विचार विद्यालयों के प्रशासक, शिक्षक एवं छात्रों के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत कर सकने में प्रेरणादायी सिद्ध होंगे। जैसे-तैसे परीक्षा उत्तीर्ण कर लेना जिनका एकमात्र उद्देश्य हो गया है, उन्हें अपनी प्रत्येक कक्षा में क्या-क्या प्राप्त करना है, इसका अनुमान हो सकेगा।

उपाधि के प्रमाणपत्र प्राप्त कर लेने पर उस प्रमाणपत्र के गौरव का सदैव रक्षण करना प्रत्येक छात्र का कर्त्तव्य है। संगीत एक ऐसी विद्या है, जिसकी परीक्षा केवल एक बार होती है। परन्तु संगीतकार की परीक्षा जीवन पर्यन्त होती रहती है। उस परीक्षा में सफल होने के लिये उनमें संगीत के प्रति आंतरिक प्रेम निर्माण हो जाना चाहिये। शिक्षकों तथा छात्रों को अपने दायित्व का ज्ञान इन वृत्तान्तों से होगा, ऐसा विश्वास है। राजाभैया

को अपनी कला के प्रदर्शन से संतुष्ट कर उनका प्रशस्तिपत्र प्राप्त कर लेने पर ही उपाधिपत्र वितरित किए जाने का पं० भातखण्डे जी का नियम यह प्रदर्शित करता है कि संगीत में गुरु तथा शिष्यों के वैयक्तिक संबंधों की नैतिकता कितनी उच्च होनी चाहिये।

प्रत्येक छात्र के लिए विद्यालय के प्रारम्भिक दिन अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं। प्रारम्भ के भटके हुए जीवन भर भटकते ही रहते हैं। इन्हीं दिनों में उनमें संगीत के प्रति अनुराग उत्पन्न हो जाने पर आगे के सभी कार्य शिक्षकों के लिए सुलभ हो जाते हैं। यदि प्रारम्भिक कक्षा के शिक्षक बुद्धिमान, परिश्रमी, कल्पक एवं विद्या में पारंगत न हों तो अच्छे छात्रों का निर्माण होना कदापि सम्भव नहीं। विभिन्न साधनों द्वारा संगीत के प्रति छात्रों का प्रेम बनाए रखना उनका प्रथम कर्त्तव्य है। बिना कुछ सोचे समझे अथवा बिना पूर्व तैयारी के कक्षा में पहुँच जाना महापाप है। शिक्षकों की पदोन्नति उनकी कार्यकुशलता पर, विद्यालय में उनकी उपयोगिता सिद्ध हो जाने पर निर्भर होनी चाहिए, न कि सेवा काल पर। पण्डित भातखण्डे जी के वे विचार इस दिशा में आज की परिस्थिति में तो अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हैं।

संगीत एक ऐसा विषय है जिसका ज्ञान विद्यालयों के शासीवर्ग को होता ही है, यह सर्वदा सम्भव नहीं। इन विद्यालयों की आवश्यकताएँ जानकर वैसे साधन उपलब्ध करा देना, उनका प्रशासन एवं शिक्षण प्रभावी बनाने के लिये आवश्यकताओं की पूर्ति करा देना शासीवर्ग का कर्त्तव्य होता है। इस दिशा में पण्डित भातखण्डे जी के लेख सदैव अनुकरणीय हैं।

संगीत एक श्रवणविद्या है। उसकी उन्नति उसके कलाकारों को श्रवण करते रहने से होती है। इस सत्य को प्रगट करते समय खानदानी पेशेवर गायक-वादकों के गुणावगुणों के प्रति पंडित भातखण्डे ने सदैव सचेत रहने की आग्रहपूर्वक प्रार्थना की है। अपनी विद्या लोगों को सुनाने के लिए उन्हें बाध्य करना चाहिए, परन्तु विद्यालय के भविष्य से संबंधित कोई भी कार्य उनको सौंप देना विद्या का अहित करना है, ऐसा भी वे निर्भीकता से कहते थे। अपनी कलाकुशलता का मोहजाल बिछाकर शिक्षार्थियों को दिशाभूल कर देने के सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं। अपनी प्रतिष्ठा जमाने के लिए विद्या का अहित करने में भी ये लोग नहीं चूकते। इनके भुलावे में न पड़ने के संबंध में पं० भातखण्डे द्वारा प्रगट किया हुआ कटु सत्य आज भी विचारणीय है।

संगीत का सुखद वातावरण समाज की उन्नति का साधन बने, अतः जहाँ पर भी वह गाया बजाया जाता है उनका स्वरूप निर्मल, विशुद्ध एवं पवित्र भावनाएँ जाग्रत करने वाला होना चाहिए; ऐसा उनका आग्रह था। तवायफों के कोठों का संगीत भी समाज में मलिन विचारों का प्रादुर्भाव करने वाला नहीं होना चाहिए। उनके ये विचार आज की परिस्थिति में अक्षरशः अनुकरणीय हैं।

मुख्याध्यापक को विद्यालय के बहुविध विकास में सहायता देने के लिए विज़िटर्स, सुपरवाइज़र्स, निरीक्षक, परीक्षक, सेक्रेटरी आदि विभिन्न प्रकार के अवैतनिक पदों का निर्माण कर सेवा भाव रखने वाले संगीतानुरागी एवं स्पष्टवादी सज्जनों की उन पदों पर

नियुक्ति करने के पं० भातखण्डे के सुझाव संगीत में लोकतांत्रिक प्रणाली की आवश्यकता सिद्ध करते हैं।

सारांश में संगीत विद्यालयों की उन्नति के लिए उन वृत्तान्तों का आज भी उतना ही महत्व है जितना कि उनके लिखने के समय में था। उन पर मनन, चिंतन करते हुए विद्या को योग्य दिशा में ले जाने के सभी साधन जुटाना आज की परिस्थिति में संगीत विश्वविद्यालय का प्रमुख कर्त्तव्य है। विद्यालयों में सुयोग्य एवं कार्यक्षम शिक्षकों का अभाव नित्य की चर्चा हो चुकी है। अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण की योजना बनाई जाय, दीर्घ-कालीन तथा अल्पकालीन प्रशिक्षण केन्द्र खोले जायँ, ऐसे सुझाव बार-बार प्रस्तुत किए जाते हैं। पं० भातखण्डे द्वारा लिखे हुए ये वृत्तान्त इस दिशा में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगे। ऐसे प्रशिक्षण केन्द्रों में संगीत शिक्षा के मूलभूत उद्देश्यों को लेकर उच्च शिक्षा तक विद्यालयों को, उनके प्रबन्धकों को, अध्यापकों को क्या-क्या करना चाहिए; इसकी जानकारी पर आधारित एक पृथक् एवं क्रमवार अभ्यासक्रम तैयार किया जा सकता है।

संक्षेप में संगीत पर खर्च होने वाले एक-एक पैसे पर दृष्टि रखते हुए उसका अधिक से अधिक उपयोग किया जा सके, ऐसा सभी कुछ करने के लिए पं० भातखण्डे जी के उन विचारों पर गंभीरता से चिन्तन किया जाना इस गरीब देश के लिए आज तो अत्यावश्यक हो गया है। संगीत जगत् में पं० भातखण्डे जी के ये विचार निरंतर प्रेरणादायी सिद्ध होंगे, ऐसा विश्वास है।

इस कार्य के लिए इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ को उन लेखादि की फाइलें प्राप्त करा कर मध्यप्रदेश के शिक्षा-विभाग ने महान् उपकारी एवं प्रशंसनीय कार्य किया है। माधव संगीत महाविद्यालय, ग्वालियर के निरीक्षण एवं परीक्षा वृत्तान्तों की ऐसी कुल दस फाइलें विश्वविद्यालय ने चार वर्ष पूर्व जब प्राप्त कीं, तब उन फाइलों की अवस्था एकदम जीर्णशीर्ष थी। बहुत-से पत्रादि दीमक ने नष्ट कर दिए थे। उन्हें यथा-संभव पुनर्ग्रथित कर खण्डित अंशों की पूर्ति की। वृत्तान्तों में स्थान-स्थान पर विभिन्न व्यक्तियों के नामों का उल्लेख था। संपादक मण्डल ने ऐसे प्रायः सभी नामों का उल्लेख न करते हुए लेखों की मौलिकता सुरक्षित रखने का श्रद्धापूर्वक प्रयत्न किया है। जहाँ पर भी नामों का निर्देश रखा गया हैं वह लेखों का भावार्थ समझने के लिए आवश्यक प्रतीत होने के कारण ही है। मूल लेख मराठी में हैं। उनके भाषान्तरण में यत्र-तत्र दोष रहे हों तो पाठक क्षमा प्रदान करेंगे—ऐसी आशा है।

मध्यप्रदेश में ग्वालियर पण्डित भातखण्डे जी की कर्मभूमि रही है। प्रदेश भर के संगीत का आज का हरा-भरा उद्यान भातखण्डे जी की ही योजनाओं का फल है। संगीत सम्राट् तानसेन ने मध्यप्रदेश को गौरवान्वित किया तो पण्डित भातखण्डे जी ने उसे शिक्षा के क्षेत्र में सबका अगुआ बना दिया। सारे राष्ट्र को उसका संगीत साक्षात् भरत के रूप में पुनः एक बार प्रदान किया। उनके इन अनन्त उपकारों से अंशतः ऋणमुक्त होने की इच्छा से शिक्षा-विभाग का सहाय्य लेकर किए हुए संगीत विश्वविद्यालय के ये अल्प प्रयास संगीत की उन्नति में सफल हों, यही एक मात्र अभिलाषा है।

—सम्पादक

पं० भातखण्डे द्वारा लिखित परीक्षा एवं निरीक्षणों के वृत्तांत

कक्षावार वृत्तान्त एवं सूचनाएँ

सन् १९२०

केवल शिक्षकों के लिए

प्रथम वर्ष : इस विद्यालय के प्रथम वर्ष के अभ्यास में पच्चीस राग रक्खे गये थे। इतने सब राग यथायोग्य रीति से पूर्ण हो जावेंगे, ऐसी उम्मीद नहीं थी। परन्तु ऐसी संगीत प्रिय भूमि के बालकों में सुरीलापन सम्भव है, यह समझ कर केवल प्रयोग की दृष्टि से इतने राग अभ्यासक्रम में रख दिए थे। वर्ष के अन्त में ऐसा ज्ञात हुआ कि शिक्षकों ने बड़े प्रयत्न के उपरान्त सोलह राग तैयार करवाए। वे भी जैसे होने चाहिए वैसे नहीं हुए। प्रत्येक राग में दो सरगम, एक लक्षणगीत, एक गीत, दो ख्याल तथा एक ध्रुवपद—ऐसी सात-सात चीज़ें मुझे चाहिए थीं। सोलह रागों में इस प्रकार ११२ चीजें होनी चाहिए थीं। उतनी चीजें थोड़े ही विद्यार्थियों ने की हैं, ऐसा पाया गया। प्रथम वर्ष के अन्त में स्वरज्ञान अच्छा हो जाना चाहिए था। विद्यार्थियों का वह नहीं हुआ। विद्यार्थियों की उपस्थिति पर अधिक ध्यान देना चाहिए। प्रथम व द्वितीय कक्षा का काम ठीक नहीं हुआ। लड़कों के अभ्यास के विषय में निम्न कठिनाइयाँ बताई गईं :

(१) लड़कों का प्रधान विषय न होने के कारण वे ध्यान नहीं देते।
(२) शीत और ग्रीष्म काल में दो-दो मास तक पालकों ने उन्हें विद्यालय में नहीं आने दिया।
(३) नगर में प्लेग, इन्फ्लुएन्ज़ा इत्यादि रोग फैले थे।
(४) शिक्षकों की बीमारी और उनका छुट्टी पर जाना।
(५) शिक्षकों को पढ़ाने के अनुभव की कमी।

कुछ भी कारण हों सोलह राग पढ़ाए गए। छः महिने सुर लगाने में गए ऐसा भी बताया गया।

द्वितीय वर्ष : इस वर्ष नए राग चौदह ही लिए गए हैं। जबकि पाठ्यक्रम में बीस रक्खे गए थे। ज्येष्ठ विद्यार्थियों को स्वरज्ञान रागज्ञान अच्छा हुआ। परन्तु प्रत्येक राग में सात चीजें सभी लड़कों की तैयार नहीं थीं। ध्रुवपद संतोषजनक रीति से नहीं हुए। अभी तक लड़कों के गायन में रसिकता प्रतीत नहीं हुई। कुछ लड़कों ने चीजें अच्छी सुनाईं। पर ऐसे लड़कों का शास्त्रीय-ज्ञान कम दिखा। दूसरी कक्षा में विद्यार्थियों को कोई

भी स्वर पढ़ने आना चाहिए । बताया हुआ कोई भी स्वर-समुदाय तुरन्त गाकर दिखाना चाहिए । उपरोक्त दोनों बातें पर्याप्त मात्रा में ठीक प्रतीत हुईं । मात्रा-विभागों के अनुसार सुडौल रीति से ख्याल कैसा गाना चाहिए, यह शिक्षकों ने स्वयं उत्तम गाकर विद्यार्थियों को सुनाना चाहिए । एक ही पंक्ति प्रत्येक बार विभिन्न प्रकार से कैसी गाई जाती है, यह भी सिखाना चाहिए । गायन में लड़कों को रुचि उत्पन्न हो यह अपना कर्त्तव्य है । उसे केवल नीरस मजदूरी न समझ कर उनका गायन रंजक प्रतीत होना चाहिए । दूसरी कक्षा के लड़कों की तैयारी अच्छी है ।

कौन-सा गीत किस लय में गवाना उचित है, यह शिक्षक पर निर्भर है । ख्याल की उचित लय शिक्षकों ने निश्चित करनी चाहिए । गायन आरम्भ करने के पहले सा, ग, प, सां कैसे लगाना यह लड़कों को बताना चाहिए । इस कक्षा में अब हाथ से ताली पीटकर, उँगलियों से मात्रा गिनने की आवश्यकता नहीं । वह सारा मन में हो जाना चाहिए । दूसरे वर्ष के लड़कों को शिक्षक ने योग्य मार्ग पर लगाना चाहिए । उनमें गुरुभक्ति निर्माण होनी चाहिए । गुरु के प्रति लेशमात्र भी अश्रद्धा मन में न होनी चाहिए ।

तृतीय वर्ष : इस वर्ष में शिक्षकों को बहुत महत्व के कार्य करने हैं ।

(१) शिक्षकों ने बहुत से स्वर-समुदाय गाना और विद्यार्थियों ने उनकी सरगम करना । एक लड़का गावे और दूसरा उसकी सरगम करे ।

(२) शिक्षकों ने सरगम के केवल अक्षर बताना और लड़कों ने वे सब गाकर दिखाना ।

(३) लड़कों के गाने में प्रौढ़ता लाना व उनका गाना श्रोताओं को रुचिकर लगे, ऐसा करना । उच्चार—"बोल कहना" यह एक बड़ी विद्या है ।

(४) शिक्षकों ने शीघ्र तान लेना और विद्यार्थियों से उसका अनुकरण करवाना । ऐसा करते समय जानबूझकर स्वयं गल्तियाँ करना और उनमें लड़कों से सुधार करवाना । ख्याल के वैशिष्ट्य पूर्ण अलंकारों की ओर लड़कों का ध्यान आकर्षित करना ।

(५) रागों का मिश्रण कर लड़कों से उन्हें पृथक्-पृथक् करवाना ।

(६) सप्ताह में एक बार शिक्षकों ने अच्छा गायन लड़कों को सुनाना और लड़कों ने उसे ध्यान पूर्वक सुनना ।

(७) लड़कों के गले तानों के लिए उपयुक्त कराना । उनको आकार की जोरदार तानें पढ़ाना । तानों की तैयारी में आरोह-अवरोह की तानें अच्छी जोरदार होने के लिए इकार, उकार का भी आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जाय ।

(८) प्रथम सम्पूर्ण तानें पढ़ाई जायँ और उन पर बने उतनी मेहनत ली जाय ।

(९) फिर उनके टुकड़ों को विभिन्न प्रकार से क़ैद लगाकर गवाना चाहिए ।

(१०) घर में मेहनत करने की प्रवृत्ति लड़कों में अपने आप निर्माण होनी चाहिए ।

(११) सा रे ग म प ध नी सां यह रेला कम से कम चार या पाँच थाटों में तैयार करवाना चाहिए । जैसे यमन, भैरव, भैरवी, बिलावल, काफ़ी इत्यादि । फिर छोटी-छोटी तानों की ओर ध्यान दिया जाय । तत्पश्चात् एक-एक स्वर आरोह-अवरोह में कम करके चार-चार पाँच-पाँच स्वरों के टुकड़े अच्छे तैयार करवा लिए जायँ ।

ग्वालियर संगीत विद्यालय के तृतीय वर्ष का पाठ्यक्रम

नये राग २०

१—गौरी, २—पूर्या, ३—मारवा, ४—जेत, ५—मालवी, ६—तिलककामोद, ७—जयजयवंती, ८—अडाणा, ९—शाहाना, १०—सुहा, ११—सुघराई, १२—बिंदरावनी सारंग, १३—शुद्धसारंग, १४—मियाँ की मल्लार, १५—मेघमल्लार, १६—गौड़मल्लार, १७—विभास (मारवा थाट), १८—जोगिया, १९—देवगिरी, २०—जेतश्री ।

विशेष सूचनाएँ शिक्षकों के लिए :

क—श्लोक, सरगमें, दोहे, लक्षणगीत, गीत और ख्याल आदि शिक्षकों ने विद्यार्थियों से इस वर्ष भी करवाना है, ऐसा पृथक् कहने की आवश्यकता नहीं ।

ख—सिखाए हुए रागों में नये ख्याल व नए ध्रुवपद लाल स्वर में पढ़ाए जायँ । चार वर्ष में ३०० ख्याल व १५० ध्रुवपद करना है ।

ग—सप्ताह में एक बार शिक्षक ने अपना गायन छात्रों को सुनाना चाहिए तथा अपने साथ पीछे बैठाकर उन्हें गाने देना चाहिए । स्वयं छोटी-छोटी तानें गाकर उनका अनुकरण करने के लिए उन्हें उत्साहित करना चाहिए ।

घ—शास्त्र पर छोटे-छोटे व्याख्यान देना, विभिन्न विषयों पर प्रश्न पूछते रहना और इस प्रकार लड़कों का ज्ञान दृढ़ करना चाहिए ।

ङ—स्वयं छोटे-छोटे टुकड़े गाकर लड़कों से उसकी सरगम कराना । बोर्ड पर किसी राग का स्वरप्रस्तार लिखकर उसमें जानबूझकर की हुई त्रुटियाँ उनसे ठीक करवाना ।

च—किसी सरल राग का विस्तार टुकड़ों-टुकड़ों में गाकर उनकी पुनरुक्ति लड़कों से यथामति करवाना ।

छ—नया गीत प्रारम्भ में ही गाकर न दिखाते हुए केवल बोर्ड पर लिखकर स्वर-लिपि की सहायता से लड़कों से उसे गवाना चाहिए । त्रुटियों का सुधार उनसे ही करवाते हुए, उचित प्रसंग पर उन्हें प्रोत्साहित करते हुए सम्पूर्ण गीत उन्हें उत्तम रीति से गाकर सुनाना चाहिए ।

ज—रागों के छोटे टुकड़े गाकर उन्हें पहचानने के लिए लड़कों से कहना तथा उनके उत्तरों के कारण पूछना । गलतियाँ होने पर उन्हें समझाना ।

झ—लड़कों की हाजिरी रोज लेना । गैरहाजिर रहने पर पालकों की चिट्ठी मंगवाना ।

ञ—लड़कों का लिखित कार्य नियत करा दिया जाय और कक्षा में अंक देने का क्रम आरम्भ किया जाय ।

ट—वर्षान्त में इन अंकों, उपस्थिति तथा सुव्यवहार का परिणाम छात्रवृत्ति प्राप्त करने पर होगा, ऐसी समझायश विद्यार्थियों को स्पष्ट रीति से दी जाय ।

ठ—जिन ज्येष्ठ विद्यार्थियों की इच्छा शुक्रवार या शनिवार को शिक्षकों की बैठकों में आने की होगी, उनको बारी-बारी से विशेष आपत्ति न लेते हुए आने देना चाहिए ।

ड—लड़कों को तम्बूरा व तबला मिलाना सिखाना चाहिए ।

ढ—लड़कों को कभी-कभी अपने घर गाने के लिए बुलाकर पहले उन्हें गाने दिया जाय। ऐसे प्रसंगों पर दो-चार इष्टमित्रों को आमंत्रित किया जाय।

ण—प्रत्येक माह में भाऊसाहब परचुरे तथा रावसाहब भिड़े को कक्षा का कार्य दिखाने के लिए तीन-चार बार निमंत्रित कर लिखित अभिप्राय प्राप्त करना।

त—प्रति माह प्रत्येक कक्षा में क्या कार्य हुआ, उसकी तफसील उनके लिए विशेष रूप से तैयार किए हुए पुस्तक में लिखकर सचिव महोदय के हस्ताक्षर प्राप्त करना।

थ—कभी-कभी लड़कों के माता-पिता को शिक्षण दिखाने के लिए बुला कर लड़कों की अनुपस्थिति उनके ध्यान में लाना।

द—प्रत्येक शिक्षक ने कम से कम एक घंटा गाने का अभ्यास नियमित रूप से घर पर करना चाहिए। अपने विद्यार्थियों के मन में अपने प्रति सदैव आदर हो, यह बात ध्यान में रखनी चाहिए।

ध—नया राग सिखाते समय तत्सम्बन्धी जानकारी "हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति" में से पढ़ कर समझाना तथा प्रत्यक्ष उदाहरण गले से गाकर सुनाना।

न—बीच-बीच में नगर के समझदार व्यक्तियों को तथा सरदार, जागीरदारों को विद्यार्थियों का कार्य अवलोकन करने के लिए आमंत्रित कर उनका योग्य सम्मान करना तथा उनका लिखित अभिप्राय प्राप्त करना।

प—श्रीमंत सरकार के सामने लड़कों को उपस्थित करने का प्रसंग आने पर प्रत्येक बार नये-नये गीत रचकर सिखाना और गवाना चाहिए। ऐसे समय में भाऊसाहब व रावसाहब की सहायता लेनी चाहिए। ऐसे बहुत से गीत सदैव तैयार रखने चाहिए।

फ—तृतीय वर्ष में दस-बीस लड़के अच्छे ढंग से तथा सहज रीति से गा सकेंगे, ऐसी महत्वाकांक्षा शिक्षकों में होनी चाहिए। एक राग १५-२० मिनट गाते आना चाहिए, ऐसा ध्येय होना चाहिए।

ब—माह में कम से कम दो पत्र मुझे लिख कर सारी बातों से अवगत कराया जाय। परन्तु इस सम्बन्ध में मेरा ऐसा कोई आग्रह नहीं है। शिक्षक यदि चाहें तो मुझे लिख सकते हैं।

भ—कक्षा में भाषण देते समय सदा संगीतशास्त्र की चर्चा, उदाहरणार्थ—रागों की परस्पर भिन्नता, उनकी पकड़, उनके महत्वपूर्ण अंश, इतिहास इत्यादि विषयों पर ही होनी चाहिए। प्रति-दिन कुछ न कुछ नया सीखने की इच्छा विद्यार्थियों में बनी रहनी चाहिए। अनावश्यक ऐसी कुछ भी बातें न बोलनी चाहिये।

म—लड़कों के साथ कठोर शब्दों का प्रयोग न किया जाय। उनसे प्रेम का व्यवहार करते हुए ही शिक्षक का प्रभाव उन पर रहना चाहिए। विद्यालय में लड़के न आना मुख्यतः शिक्षकों की योग्यता-अयोग्यता पर ही निर्भर रहता है। लड़कों की बीमारी में स्वयं जाकर उनकी पूछताछ करने से प्रेम बढ़ता है और वे भी वैसा ही व्यवहार करने लगते हैं। इससे प्रेम बढ़ेगा।

य—मैं यहाँ उपस्थित हो जाने पर गत सभी महिनों की रिपोर्ट मेरे समक्ष रखनी चाहिए। सारांश अपने महाराज के विद्यालय की कीर्ति देश भर में जल्द से जल्द कैसी फैलेगी,

इसके प्रति जागरूक रहकर इसी में अपनी इति-कर्तव्यता समझनी चाहिए। अपने प्रयत्नों के परिणामों की ओर बाहर के अनेक लोगों का ध्यान लगा हुआ है। अपने को यहाँ यश मिलने पर वे अपने अनुयायी हो जावेंगे।

र—विद्यालय के सुधार संबंधी विचार प्रथमतः शिक्षकों की शुक्रवार की बैठक में करते हुए सूचनाएँ सचिव महोदय के सम्मुख रखनी चाहिए।

ल—प्रधानाध्यापक पर सारी शाला की जिम्मेदारी है। प्रत्येक कक्षा की शिक्षा, विद्यार्थियों की उपस्थिति तथा शिक्षकों के नियमित रूप से आने जाने पर उनका ध्यान रहना चाहिए। चाहे जिस कक्षा में किसी भी समय जाकर लड़कों को प्रश्न पूछने का अधिकार उनको है।

व—सभी कक्षाओं में ध्रुवपद पढ़ाना प्रधान अध्यापक की सुविधानुसार होगा। वह उनका प्रमुख विषय है।

श—विद्यालय रात्रि के ठीक आठ बजे तक खुला रहना चाहिए।

ष—प्रत्येक शिक्षक के पास अभ्यासक्रम के सभी गीत स्पष्ट लिखे हुए होने चाहिए। उनको कण्ठस्थ रखना इष्ट है। पूरे वर्ष का अभ्यास क्रम कार्यारम्भ के प्रथम सप्ताह में तैयार हो जाना चाहिए। सिखाए हुए अन्य गीत, ख्याल आदि किसी न किसी पुस्तक में होने चाहिए।

स—द्वितीय वर्ष के अन्त में कम से कम सौ ख्याल व पचास ध्रुवपद पढ़ाना चाहिए। गीतमालिका में आए हुए ख्याल-ध्रुवपद लड़कों के लिए घर पर समझकर याद करने में सुविधा होगी। तान, आलाप क्रमिक पुस्तक मालिका भाग २ के साथ सिखाने पर ठीक होगा। समझकर गला तैयार करने में उनका बहुत उपयोग होगा।

ह—ग्वालियर में बाहर से यदि कोई भी गायक-वादक आया, तो उसे आग्रह पूर्वक अपनी शुक्रवार-शनिवार की बैठक में बुलाकर उसका गायन रखने के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। ऐसे प्रसंगों पर सचिव-महोदय को प्रथम सूचना देनी चाहिए। सभी निश्चित हो जाने पर ज्येष्ठ विद्यार्थियों को सुनने का अवसर देना चाहिए।

वि. ना. भातखंडे
—परीक्षक

हेडमास्टर महोदय के सूचनार्थ

सन् १९२१

इस वर्ष (१९२१) की परीक्षा में निम्न बातें ध्यान में आईं। लड़कों ने थियरी का महत्व अभी भी ठीक प्रकार से नहीं समझा है। इसकी ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। रागों की परस्पर भिन्नता पर कक्षाओं में चर्चा करते हुए थियरी पक्की करानी चाहिए। पिछले दो वर्षों का काम लड़के भूलते जा रहे हैं। यह तो अत्यन्त असन्तोष-कारक सिद्ध होगा। इस वर्ष विशेष रूप से राग कम रखे गए थे। पिछला काम नित्य दोहराया जाकर तैयार होगा, ऐसी मुझे आशा थी।

लड़कों के गायन में अभी भी परिपक्वता उत्पन्न करने की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। उसमें वैचित्र्य लाने की ओर ध्यान देना चाहिए। केवल स्वरलिपि पढ़कर रंजकत्व नहीं आता। आवाज लगाना, योग्य विश्रान्ति लेना, ख्याल में विभिन्न मुखड़ों सहित सम पर आना यह सब ज्ञात कराना आवश्यक होता है। गायकी की ओर अभी से ही ध्यान जाना चाहिए।

प्रथमतः आलाप तानें आकार में गवाकर, तत्पश्चात् गीत में जोड़ देने के लिए मैंने कहा था। ऐसा कम से कम अब तो प्रारम्भ करना ही चाहिए। गायन में जो निर्जीवता प्रतीत होती है वह दूर की जाय।

श्लोक तथा दोहे याद कराने की ओर ध्यान दिया जाय। उनका भावार्थ अच्छा मालूम होना चाहिए।

जल्द तान लेने के मोह में पड़ कर अनेक लड़कों ने अपने गले बिगाड़ डाले हैं। जवालंकार उत्तम रीति से साधे बिना तानें अच्छी तरह नहीं जमेगीं, ऐसा मैंने कहा ही था। इसी कारण से तानें इतनी द्रुत लेने की आवश्यकता नहीं। वह लेते समय कुछ लड़के बेसुरे होते हैं। इस ओर ध्यान दिया जाय।

ध्रुवपद सभी लड़कों के तैयार नहीं थे। ऐसा होना ठीक नहीं है।

अब प्रति माह अथवा दो माह के बाद लड़कों की परीक्षा लिखित व मौखिक ली जाय। इस परीक्षा का परिणाम रिकार्ड में रखा जाय। इनके अंक वार्षिक परीक्षा के समय विचारार्थ रहेंगे तथा उन पर छात्रवृत्ति भी निर्भर रहेगी।

तृतीय कक्षा में ध्रुवपद शिक्षण का दायित्व श्रीमान् हेडमास्टर महोदय पर रहेगा। ख्याल की शिक्षा दो ज्येष्ठ शिक्षकों द्वारा दी जाय। यही शिक्षक बीच-बीच में निम्न कक्षाओं में जाकर वहाँ ख्याल ध्रुवपदों की शिक्षा ठीक है अथवा नहीं, यह देखें।

शिक्षकों को अपनी कक्षा का अभ्यास कण्ठस्थ रहना चाहिए। यदि न हों तो इसी माह में ही तैयार कर लें। शिक्षकों का कोर्स तैयार है अथवा नहीं इस बात को हेडमास्टर देखें। जिनका तैयार न हो उन्हें चेतावनी दें।

कक्षाओं में जाकर वहाँ थियरी कैसी पढ़ाई जा रही है यह भी वे देखें तथा यदि संभव हो तो कक्षाओं में स्वयं व्याख्यान भी दें। साप्ताहिक गायन के दिनों पर ज्येष्ठ विद्यार्थियों को उनकी सुविधानुसार अवश्य बुलाया जाय तथा गायन में ध्यान रखने योग्य बातें उदाहरणों सहित समझाई जायँ।

वि. ना. भातखंडे
Examiner

वार्षिक परीक्षा के परिणाम एवं सूचनाएँ

सन् १९२२

वृत्तांत

इस वर्ष की वार्षिक परीक्षा के परिणाम, तत्संबन्धी मेरी सूचनाएँ व मेरा मत प्रस्तुत करता हूँ, जो इस प्रकार है :—

इस वर्ष परीक्षा के लिए कुल पाँच कक्षाएँ उपस्थित थीं। जिनमें चतुर्थ वर्ष कक्षा के अर्थात् उच्च कक्षा के दो विभाग थे। जिनमें आठ और छः ऐसे कुल चौदह लड़के थे। इस कक्षा के लड़के सर्वसाधारण दृष्टि से अच्छे तैयार हैं, तथापि गायकी जितनी प्रौढ़ और मोहक होनी चाहिए उतनी प्रतीत नहीं हुई। लड़कों को अच्छा गायन सुनवाने की व्यवस्था की जाय, ऐसी सूचना मैंने अपनी पिछली रिपोर्ट में की थी। इस ओर शिक्षकों का पर्याप्त ध्यान गया हुआ प्रतीत नहीं होता। लड़कों को अभी भी ढंग से ख्याल गाना नहीं आता। उनके स्वरोच्चार व शब्दोच्चार की ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया प्रतीत नहीं हुआ। तान लेने की रीति व उसे पूर्ण करते हुए मुखड़ा मिलाने की रीति मँजी हुई प्रतीत नहीं हुई। लड़के कक्षा में नियमित रूप से नहीं आते, ऐसा शिक्षकों का कहना है। यह दोनों कक्षाएँ चार वर्ष की अवधि को देखते हुए अधिक तैयार होनी चाहिए थीं, ऐसा मैं समझता हूँ।

तृतीय वर्ष की कक्षा के लड़के अपेक्षानुसार तैयार नहीं हो पाये। ख्याल व ध्रुवपद जितने चाहिए थे, उतने नहीं हो पाये। सम्पूर्ण अभ्यासक्रम श्लोक दोहों सहित मुखोद्गत नहीं था। तानों का काम बहुत पिछड़ा हुआ दिखाई दिया। तृतीय वर्ष अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। इस वर्ष की कक्षा में लड़कों के गले अच्छे तैयार होने चाहिए। स्वर स्थान, लय-ताल का ज्ञान उत्तम होना चाहिए था। इन बातों में बहुत त्रुटियाँ दिखाई दीं। जिस कारण ज्येष्ठ शिक्षकों के काम की जिम्मेदारी निष्कारण अधिक बढ़ गई। तृतीय वर्ष के अन्त तक लड़कों को तीस राग भलीभाँति आने चाहिए व उनके ख्याल सुनने योग्य होने चाहिए। लड़कों का शास्त्र-ज्ञान अच्छी तरह हो जाना चाहिए। इस कक्षा में लड़के बहुत ही कम होने के कारण कार्य अच्छी तरह हो सकता था।

(१) इन्फेन्ट क्लास (प्रिपरेटरी क्लास)···को दिया जाय। इस कक्षा में मुख्य उद्देश्य लड़कों को स्वरज्ञान करा देना है। जो लड़के तैयार होंगे उनको प्रथम कक्षा में भेज दिया जाय। यह कक्षा कैसी चल रही है, इस ओर हेडमास्टर ध्यान दें। इस कक्षा में नियमित अभ्यासक्रम की चीजें पढ़ाई गईं तो अच्छा ही है। इस कक्षा पर ज्येष्ठ शिक्षकों

की सदा दृष्टि रहनी चाहिए । और कक्षाध्यापक को उनकी सम्मति से चलना चाहिए । हेडमास्टर की देखरेख जितनी अधिक रहेगी, उतना अच्छा ।

इस वर्ष हेडमास्टर महोदय को जान बूझकर पृथक् कक्षा नहीं दी है । इनका मुख्य कार्य सारे विद्यालय पर देखरेख रखना है । शाला अभ्यासक्रम पूर्ण होने की जिम्मेदारी उन पर है । किसी भी शिक्षक का कार्य अपूर्ण रहा तो उसका जवाब हेडमास्टर को देना पड़ेगा । इस देखरेख के अतिरिक्त हेडमास्टर साहब सब कक्षाओं में ध्रुवपद सिखावें । सभी कक्षाओं में उन्होंने प्रत्येक सप्ताह में एक बार जाकर ध्रुवपद पढ़ाना चाहिए । शिक्षकों की बैठकों के दिन उन्होंने निश्चित कर देना चाहिये । हेडमास्टर को विद्यालय का निरीक्षण प्रत्येक माह में करना चाहिए और उस समय भाऊसाहब को बुलाना चाहिए । निरीक्षण का वृत्तांत संक्षेप में लिख कर उस पर भाऊसाहब का अभिप्राय लेना चाहिए । वृत्तांत में कौन-सा काम हुआ और कौन-सा बाकी रहा; यह स्पष्ट रूप से और क्रमवार लिखा जाय ।

शिक्षकों की शनिवार की बैठक पहले की ही तरह होती रहे । हेडमास्टर साहब बीमार हों तो भी अन्य शिक्षकों ने उपस्थित रहकर बैठक चालू रखनी चाहिए । इस बैठक में ऊपर की तीन कक्षाओं को उपस्थित रहने की आज्ञा दी जाय । ऐसी बैठकों का उद्देश्य लड़कों को मुख्य रूप से गाना सुनाना है । बाहर के प्रतिष्ठित लोग आयें तो कोई बात नहीं । लड़कों की शनिवार की बैठक में बाहर के समझदार व्यक्तियों को बुलाना इष्ट होगा । उनकी दी हुई उपयुक्त सूचनाओं की ओर शिक्षक अवश्य ध्यान दें । बाहर के अन्य गायकों की कला लड़कों को सुनने का लाभ जितना अधिक मिले, उतना अच्छा । इस ओर शिक्षकों का ध्यान अवश्य रहे ।

प्रथम वर्ष के दो विभाग परीक्षा में सम्मिलित हुए थे । उनमें से एक कक्षा श्री······की थी । इस कक्षा में यद्यपि सारा अभ्यास पूर्ण नहीं हो पाया फिर भी बहुत से लड़कों को स्वरज्ञान वा तालज्ञान हो गया था । किन्तु शास्त्र का ज्ञान थोड़े ही लड़कों को था । चीजें गाने की रीति जैसी चाहिए, वैसी सधी प्रतीत नहीं हुई । फिर भी लड़के होनहार देखे गए । सरगमों और चीजों में छोटी-छोटी तानें जोड़ी जातीं, तो अच्छा होता । अभ्यासक्रम पूरा न होने का कारण शिक्षकों की अनुपस्थिति प्रतीत होता है ।

शिक्षकों की अनुपस्थिति के कारण लड़कों का नुकसान होना इष्ट नहीं । परन्तु हेडमास्टर ने वरिष्ठ अधिकारी के रूप में दूसरी योग्य व्यवस्था क्यों नहीं की, यह समझ में नहीं आता । इस कक्षा के अभ्यासक्रम का बहुत-सा भाग अभी भी शेष है ।

प्रथम वर्ष का दूसरा विभाग श्री······का था । इसमें लगभग बारह विद्यार्थी परीक्षा के लिये थे । इस विभाग का कार्य बहुत थोड़ा हुआ था । अभ्यासक्रम व शास्त्रीय ज्ञान कुछ नहीं दिखाई दिया । लड़कों का यह वर्ष व्यर्थ गया, ऐसा कहना पड़ेगा । यह कक्षा केवल इन कक्षाध्यापक के भरोसे पर नहीं चलेगी । लिखने-पढ़ने के अभाव में उनका कक्षा में शिक्षा देना सम्भव न होगा । इस कक्षा के कुछ विद्यार्थियों का स्वरज्ञान अच्छा था । उतना

दूसरे लड़कों का नहीं था। बहुत-से लड़कों के कण्ठ मधुर थे। यदि उनकी ओर योग्य ध्यान दिया गया तो उनमें से कुछ लड़के अच्छे गायेंगे।

प्रथम वर्ष कक्षा श्री……को दी जाय। कक्षा में कुछ लड़कों के गले बहुत मधुर हैं और उनको स्वरज्ञान भी हो रहा है। इस कक्षा में प्रारंभ में दस थाटों के राग सिखाए जायँ। प्रत्येक राग में सरगम, लक्षणगीत, दो ख्याल और एक ध्रुवपद पढ़ावें। दूसरी क्रमिक पुस्तक में लिखा हुआ शास्त्रीय ज्ञान पढ़ावें। सरगमें सिखाते समय नये-नये स्वरों के पलटे बनाकर सिखावें और वे ही फिर आकार में गवा लें। लड़कों से प्रेम का वर्त्ताव रखें। वे शाला छोड़कर न जायँ, इस ओर ध्यान दिया जाय।

द्वितीय कक्षा के लड़के श्री……के पास ही रहने दिये जायँ। उनके अभ्यासक्रम के राग तो सिखाए जा चुके हैं, परन्तु अभी अच्छी तरह तैयार नहीं हुए हैं। उनमें चीजें कम हुई हैं और कुछ लड़कों का स्वर व ताल ज्ञान अच्छा नहीं हुआ है। स्वर स्थानों पर अधिक परिश्रम की आवश्यकता है। इस ओर संबंधित शिक्षक को ध्यान देना चाहिये। अभ्यासक्रम पूर्ण हो जाने पर ज्येष्ठ शिक्षकों ने यह काम देख लेना चाहिये। चीजों का चयन ज्येष्ठ शिक्षकों द्वारा किया जाय। सरगम व चीजें पढ़ाते समय छोटी-छोटी तानें सिखाने का क्रम प्रारम्भ से ही रखा जाय। लड़कों को मुखविकृति की आदत नहीं लगनी चाहिए। बीच-बीच में ज्येष्ठ अध्यापकों को कक्षा में बुलाकर लड़कों का काम दिखाया जाय। जो सलाह वे दें, उसका उपयोग करना चाहिये। ज्येष्ठ शिक्षकों ने भी ऐसी सहायता देनी चाहिये।

द्वितीय वर्ष की कक्षा में ग्यारह लड़के थे। इन लड़कों ने अपना सारा अभ्यास क्रम उत्तम प्रकार से तैयार किया हुआ ज्ञात हुआ। लड़कों का स्वर व ताल का ज्ञान अच्छा प्रतीत हुआ। स्वरोच्चार व शब्दोच्चार ठीक थे। इस कक्षा में प्रायः सभी लड़के तैयार पाये गये।

तृतीय वर्ष कक्षा के लड़कों ने अपनी तैयारी उत्तम दिखाने पर उन्हें छः माह बाद अगली कक्षा में भेज देने में कोई बाधा नहीं। तृतीय वर्ष की कक्षा श्री……के ही पास रखी जावे। इस कक्षा में नये राग ग्यारह पढ़ाना है। रागों के नाम व चीजें पहले ही निश्चित कर दी गई हैं। ख्याल-गायन की वास्तविक शिक्षा तृतीय वर्ष से ही होती है। इसलिये लड़कों को उत्तमोत्तम तानें, स्वरोच्चार व शब्दोच्चार यहाँ से ही पढ़ाये जायँ। इस कक्षा पर ज्येष्ठ-अध्यापकों ने ध्यान दिया तो हितकर होगा। राजाभैया की कक्षा में जो तानें पढ़ाई जायेंगीं, वैसी ही इस कक्षा में पढ़ाई जा सकीं तो अच्छा होगा। श्री भास्करराव ने राजाभैया की सलाह से तानें पढ़ाने का काम किया तो लड़के अच्छे गाने लगेंगे। तृतीय वर्ष के अंत तक लड़कों के गले अच्छे तैयार हो जाने चाहिये।

चतुर्थ वर्ष के लड़के प्रथम छः माह राजाभैया के पास व अन्तिम छः माह दाते-साहब के पास रहें। इन दोनों ज्येष्ठ शिक्षकों की गायकी का लाभ लड़कों को मिले, एतदर्थ यह योजना सुझाई है। इन लड़कों पर शिक्षकों को अधिक परिश्रम करना पड़ेगा। उनके गले अभी तक अच्छे तैयार नहीं हुए हैं। प्रत्येक राग में दो ध्रुवपद, दो अथवा तीन ख्याल, लक्षणगीत, सरगम व अन्य गीत—इतनी सब चीजें होनी चाहिये।

चतुर्थ वर्ष के लड़कों के स्वरस्थान उत्तम होने चाहिये। गायकों के गुणावगुण उन्हें समझा देना चाहिये। पिछले वर्ष के अभ्यास की पुनरावृत्ति विचारपूर्वक करने का ध्यान में रखना चाहिये। चतुर्थ वर्ष के अन्त तक लड़कों की गायकी बहुत कुछ तैयार हो जाना इष्ट है। छः महीने के उपरान्त इस कक्षा में जो लड़के मन्दबुद्धि व आलसी प्रतीत हों, उन्हें पिछली अर्थात् तीसरी कक्षा में भेज देना चाहिये।

आगामी शिक्षा सत्र के लिये सूचनाएँ

दो सीनियर क्लासों (चतुर्थ वर्ष कक्षा) में कुल चौदह विद्यार्थी हैं, ऐसा ज्ञात होता है। दोनों की एक कक्षा बना कर श्री दाते जी को सौंपी जाय। वह कक्षा उनके पास छः माह तक रहे। इस अवधि में शिक्षक उन लड़कों को उत्तम गायकी की शिक्षा दें। शिक्षक को उन विद्यार्थियों के सामने प्रतिदिन एक घंटा गाना व बचे हुए समय में विद्यार्थियों को गवाना चाहिये। उनके स्वरोच्चार, शब्दोच्चार व पदच्छेद की ओर ध्यान दिया जाय। प्रसिद्ध गायक जिस ढंग से अपनी चीजें महफ़िल में गाते हैं, उस ढंग के अनुकरण का प्रयत्न होना चाहिये। इस वर्ष यदि नये राग न लिए गये तो भी कोई बात नहीं। अब लड़कों का गायन लोगों को रुचिकर हो, ऐसा होना चाहिए। प्रसिद्ध ऐसे बीस ही राग चुनकर प्रत्येक राग में दो बड़े ख्याल व दो छोटे ख्याल तैयार कराये जायँ।

छः महीने के उपरान्त सीनियर क्लास बचे हुये आधे-वर्ष के लिये श्री राजाभैया को सौंपना चाहिये। उन्होंने भी श्री दाते के समान स्वयं गाकर लड़कों को गवाना चाहिये। लड़कों की तान मधुर व ढंगदार होनी चाहिये। इतना होने पर लोगों को प्रसन्न करने योग्य अपना राग ठीक आधे घण्टे तक गाने की क्षमता लड़कों में आनी चाहिये—यह उद्देश्य रखना है।

गायन की परीक्षा चीजों की संख्या पर नहीं, अपितु उनकी मोहकता पर होती है। यह तत्व शिक्षकों ने सदा मन में रखना चाहिए।

लड़कों से अभिनव-राग-मंजरी तैयार कराई गई तो अधिक उपयुक्त होगा। पंचम वर्ष अन्तिम कक्षा होने के कारण, लड़कों को जितनी भी बातें विद्यालय में सिखाने योग्य हैं; वह सब इस वर्ष उन्हें मिल जानी चाहिये। इन लड़कों की तैयारी पर अपनी पद्धति की एवं शिक्षकों की योग्यायोग्यता निश्चित होगी।

हेडमास्टर महोदय सब कक्षाओं को ध्रुवपद पढ़ावें व कक्षाएँ इस क्रम से लें :—

सोमवार : रा० दाते साहब की कक्षा	५ से ६ तक
मंगलवार : राजाभैया की कक्षा	,,
बुधवार : भास्करराव की कक्षा	,,
गुरुवार : गोखले साहब की कक्षा	,
शुक्रवार : बलवन्तराव की कक्षा	,,

प्रत्येक कक्षा में एक घण्टा शिक्षण देने के बाद बचे हुए समय में विभिन्न कक्षाओं में जाकर उनके कार्य को देखें। मुख्यतः उत्तम स्वर व शब्दोच्चारण का प्रारंभ इसी कक्षा से होता है। प्रत्येक शिक्षक के कार्य का उत्तरदायित्व उन पर ही है। उन्हें निरीक्षण के लिये समय मिले, इसीलिये नियमित कक्षा का कार्य नहीं दिया गया है।

दिनांक १३-४-२२

वि. ना. भातखंडे
— परीक्षक

नौतलाब गेस्ट हाउस,
लश्कर
दि० २१ अप्रैल, १९२५

मेहरबान रावसाहब जी० व्ही० अंबर्डेकर की सेवा में

मैं तारीख १४ अप्रैल १९२५ को यहाँ आया तथा दूसरे दिन से (ता० १५ से) कक्षा-निरीक्षण का कार्य आरम्भ किया। यह कार्य कल सायं पूर्ण हुआ। प्रत्येक कक्षा में कार्य किस प्रकार हुआ है तथा उस सम्बन्ध में क्या करना इष्ट है, यह मैंने स्थान-स्थान पर लिखा है। शिक्षकों को भी मौखिक निर्देश दिये हैं। सभी कक्षाओं में अभ्यास का आधा भाग तैयार किया हुआ मैंने देखा। उच्च कक्षाओं में गायकी अभी भी जैसी चाहिए, वैसी सधी नहीं। लड़के अल्पवयीन होने से उन्हें गायकी का रहस्य विदित नहीं हुआ तो कोई आश्चर्य नहीं। फिर भी शिक्षकों को वह उत्तम साध्य कराने की ओर यथा-सम्भव प्रयत्न करना इष्ट है। बारम्बार कक्षाओं में शिक्षक यदि स्वयं प्रत्यक्ष आलाप तानें अच्छी तरह गाकर दिखाते रहे तो बहुत लाभ होगा, ऐसा मैं समझता हूँ। कुछ कक्षाओं में ऐसा प्रतीत हुआ कि लड़के पिछली कक्षाओं का कार्य भूलते जा रहे हैं। सप्ताह में एक दिन पिछले कार्य की आवृत्ति की गई तो ठीक होगा। इस वर्ष अन्तिम परीक्षा के लिए पैंतालीस राग हो सकेंगे, ऐसा नहीं लगता। वस्तुतः यह कोई अच्छी बात नहीं है। परन्तु नीचे की कक्षाओं में गायकी की कमजोरी रहने से ऐसा हुआ, यह शिक्षकों का कहना है। एक दृष्टि से यह ठीक भी है। तथापि यथाशक्ति परिश्रम करके जितने राग हो सकें, उतने तैयार करा लेना आवश्यक है। अब श्री गुणे की कक्षा से ही अभ्यासक्रम के साथ-साथ गायकी का कार्य जारी रखने से बाद में काम में त्रुटि न रहेगी, ऐसी आशा है। आगामी छमाही के लिए मैं निम्नानुसार कुछ सूचनाएँ देना चाहता हूँ। उचित प्रतीत होने पर उन्हें कार्यान्वित करने की व्यवस्था की जाय।

(१) प्रारम्भिक कक्षा से दस उत्तम लड़के चुनकर उन्हें द्वितीय कक्षा में भेजा जाय। ऐसा करने का कारण संलग्न रिपोर्ट में बताया है।

(२) द्वितीय वर्ष की कक्षा से पाँच अच्छे लड़के तृतीय वर्ष की कक्षा में भेजे जायँ। कारण रिपोर्ट में है ही।

(३) तवायफ स्कूल के शिक्षक श्री··············को सप्ताह में कम से कम एक दिन सेन्ट्रल स्कूल में पढ़ाने के लिए भेजा जाय। उनके स्थान पर सेन्ट्रल स्कूल के शिक्षक ने जाकर तवायफ स्कूल की ज्येष्ठ लड़कियों को पाठ्यक्रम ख्याल गायकी सहित सिखाना चाहिये। वहाँ के शिक्षक हेडमास्टर साहब की आज्ञानुसार कक्षाओं में जाकर अपनी तैयार की हुई तानें व ठुमरियाँ सिखायेंगे। ऐसा करने से दोनों विद्यालयों का हित होगा।

मेरी ऐसी भी एक सूचना है कि, अपने यहाँ के प्रसिद्ध सरोदिये श्री हाफीज खाँ का आलाप व ठुमरियों का काम अपने ज्येष्ठ विद्यार्थियों को सुनने का अवसर सप्ताह में कम से कम एक बार मिलना चाहिए। अपना काम लड़कों के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए वे सहर्ष तैयार हैं। इतना ही नहीं वे अपना काम उन्हें सिखाना भी चाहते हैं, ऐसा मुझे ज्ञात हुआ है। उनके काम को सुनने से लड़कों की बहुत प्रगति होगी, ऐसा मुझे लगता है। यह प्रयोग करके देखा जाय, ऐसी मेरी सूचना है। विद्यालय की ओर से ऐसा कोई पत्र जाने पर श्री हाफीज खाँ समय निकाल कर लड़कों की मदद करेंगे, ऐसा मुझे विश्वास है। वे एक अच्छे वादकों में से हैं। उनका कौशल्यपूर्ण वादन सुनकर लड़कों का ज्ञान बढ़ेगा और हित भी होगा। अपनी ओर से उन्हें पत्र जाने पर उनका गौरव होगा। कोई विशेष आपत्ति न हो तो ऐसा पत्र लिखने की व्यवस्था की जाय।

विद्यार्थी शाला में नियमित रूप से उपस्थित नहीं रहते, ऐसी शिकायत शिक्षकों की ओर से हमेशा आती रहती है। इस विषय में विद्यार्थियों को अब धीरे-धीरे ताकीद देना उचित है। मैं ऐसी सूचना करता हूँ कि जो विद्यार्थी महिने में तीन से अधिक बार अनुपस्थित रहेगा, अर्थात् आगामी छः माह तक बिना उचित कारण के जिसकी अठारह से अधिक अनुपस्थिति होगी, उसे वार्षिक परीक्षा में बैठने की अनुमति न दी जाय। उपर्युक्त अनुपस्थिति की मर्यादा बढ़ाना आवश्यक प्रतीत हो तो वह आपकी व हेडमास्टर साहब की इच्छा पर निर्भर है। परन्तु ऐसा कुछ प्रतिबन्ध रखना अब इष्ट है। किसी प्रकार की रोक के अभाव में शिक्षकों के परिश्रम कभी-कभी व्यर्थ हो जाते हैं—यह सत्य है।

चतुर्थ व पंचम कक्षाओं की अक्टूबर माह में एक जाँच परीक्षा (प्रिलीमिनरी) लेने की प्रथा अब आरम्भ की जाय। इस परीक्षा में जो विद्यार्थी भली प्रकार उत्तीर्ण होंगे, उन्हें ही वार्षिक परीक्षा में सम्मिलित होने दिया जाय। अब लोगों में इस विषय की रुचि उत्पन्न हो रही है तथा शाला के प्रति आदर भी बढ़ रहा है। अतः ऐसे कुछ निर्बन्ध लगाना हित कर ही होगा। अन्य कालेजों में ऐसी परीक्षा सदैव ली जाती है।

वि. ना. भातखंडे

Examiner

अर्धवार्षिक वृत्तांत

कक्षा प्रिपेरेटरी : इस कक्षा में लगभग पचास विद्यार्थी हैं । उनमें से बहुत से उपस्थित रहते हैं ऐसा देखा गया । कुछ थोड़े ही लड़कों के गले रास्ते पर आने लायक हुए हैं । उन्हें अब स्वरज्ञान भी हो रहा है, ऐसा प्रतीत हुआ । ऐसे लड़के इस कक्षा में दस बारह निकलेंगे । इनके विषय में मैं ऐसी सूचना करना चाहता हूँ कि इन लड़कों को उच्च कक्षा में जाने दिया जाय । वार्षिक परीक्षा के लिए अभी भी छः महीने हैं । इन लड़कों की प्रथम क्रमिक पुस्तक तैयार हुई है । परीक्षा में इनमें से सभी उत्तीर्ण हुए तो ठीक ही है। यदि न भी हुए तो उनका इसमें कोई नुकसान नहीं है । यह सूचना हेडमास्टर व कक्षा-अध्यापक को पसंद है । बाकी चालीस लड़कों के दो वर्ग किये जाकर पहले विभाग में साधारण सुरीले लड़के रखे जायँ । दूसरे विभाग में अनुपस्थित रहने वाले व एकदम कमजोर लड़के रखे जायँ । कुछ दिन तक इन दोनों विभागों में आधा-आधा समय बाँट लिया जाय । सुरीले लड़कों की ओर बीच-बीच में हेडमास्टर साहब ध्यान दें । जो भी संभव हो वह किया जाय । इस कक्षा का मुख्य उद्देश्य लड़कों को सुर में लाना व उन्हें थोड़ा-बहुत स्वरज्ञान करा देना, इतना ही है । यह काम बहुत कठिन नहीं है, ऐसा मैं समझता हूँ ।

कक्षा प्रथम वर्ष : इस कक्षा में पाठ्यक्रम की तैयारी अच्छी थी । प्रथम क्रमिक पुस्तक में दिए हुए दस रागों में आठ राग अब तक हो चुके हैं । लड़कों को स्वरज्ञान ठीक हुआ है । कुछ लड़के अनुपस्थित रहते हैं, ऐसी शिक्षकों की शिकायत है । इस अनुपस्थिति के संबन्ध में एक सूचना करने का बहुत दिन से मेरा विचार है ।

वर्ष के अन्त में जिनकी अनुपस्थिति बिना उचित कारण दिखाए निर्धारित दिनों से अधिक होगी, उन्हें वार्षिक परीक्षा में कदापि न बैठने दिया जाय । यह नियम वरिष्ठ कक्षाओं में तो अवश्य लगाया जाय ।

तीसरे, चौथे व पाँचवें वर्ष के लड़कों की अनुपस्थिति के कारण बहुत नुकसान हो रहा है । कभी-कभी तो शिक्षकों के किये हुए परिश्रम व्यर्थ हो जाते हैं ।

इस कक्षा के संबंध में ऐसी सूचना करना चाहता हूँ कि कक्षाध्यापक अपनी कक्षा से पाँच अच्छे लड़के चुनकर उन्हें ऊपर की अर्थात् द्वितीय वर्ष कक्षा में भेजें । तथा प्रिपरेटरी की नीचे की कक्षा से दस सुरीले लड़के अपनी कक्षा में प्रविष्ट करा लें । कौन से दस लड़के लिये जायँ, यह हेडमास्टर साहब बतायेंगे । अभी बचे हुए दो राग सब लड़कों के साथ इन्हें भी सिखाए जायँ तथा बाद में आवृत्ति के समय शेष आठ राग सभी लड़कों के साथ पुनः होंगे ही ।

यदि नये लड़के परिश्रम नहीं करते हैं अथवा नियमपूर्वक शाला में नहीं आते हैं तो उन्हें वार्षिक परीक्षा में बैठने की अनुमति न दी जाय । बस, इतना पर्याप्त है और ऐसा ही समझा कर लड़कों को ऊपर लिया जाय ।

इस कक्षा में छोटी-छोटी तानें सिखाने की छूट रखी है । यहाँ फिलहाल सिखाई हुई तानें कुछ क्लिष्ट हैं । तानें अधिक सुलभ, मधुर व लड़कों के गले फिरने के लिए उपयुक्त

किस प्रकार होनी चाहिए, यह उदाहरणों सहित कक्षाध्यापक को मैंने समझाया है। उस आधार पर और भी छोटी-बड़ी नयी तानें वे बनायेंगे तथा विद्यालय के रिकार्ड के लिए लिख कर देंगे। तानें कब, कहाँ व कैसी लेना, उनको गाकर बीच-बीच में चीज के बोलों का उच्चार कैसे करना; यह इस कक्षा से ही छात्रों को सिखाना है। गाते समय लड़कों के गले का माधुर्य नष्ट न हो, ऐसी सावधानी शिक्षकों ने रखनी चाहिए। तात्पर्य इस कक्षा का काम छः माह की दृष्टि से संतोषप्रद है।

द्वितीय वर्ष : इस कक्षा में लड़कों की संख्या अल्प है। कोर्स का काम उत्तम चल रहा है। गायकी सहित लड़कों के पाँच राग इसी प्रकार तैयार हुए हैं तथा वार्षिक परीक्षा तक शेष पाँच राग इसी प्रकार तैयार हो जावेंगे। श्लोक, दोहे, थियरी, आदि का आधा काम हो चुका है। इस कक्षा में प्रथम वर्ष की कक्षा से पाँच अच्छे लड़के लिए जायँ। कक्षाध्यापक इन्हें अपने लड़कों के साथ बचे हुए पाँच राग प्रथम सिखा दें। वे तैयार हो जाने पर पिछले पाँच रागों की आवृत्ति करते समय नये लड़कों की ओर विशेष ध्यान दें। जो लड़के कमजोर रहेंगे, उन्हें वार्षिक परीक्षा में बैठने की अनुमति न दी जाय। स्वरोच्चार व तानें उत्तम साध्य होने का प्रयत्न इस वर्ग से ही सावधानी से होना चाहिए। उल्टा-सीधा गला घुमाना, मुँह बिगाड़ना; यह दोष न रहने दिये जायँ। प्रत्येक तान सुलभता से व सफाई से निकले, इस ओर सावधानी रखी जाय। Quality before Quantity यह नियम गायन के शिक्षकों को ध्यान में रखना है। कक्षा का काम अच्छा चल रहा है।

तृतीय वर्ष : इस कक्षा में परीक्षा के लिए नौ छात्र उपस्थित थे। कक्षा में आधा अभ्यास क्रम तैयार हुआ है। गायकी का काम जितना चाहिए व जिस सफाई से होना चाहिए, अभी तैयार नहीं हुआ है। बहलावे व तानें गाकर योग्य रीति से पुनः सम पर आना, छात्रों को साध्य नहीं हुआ है। उसी प्रकार स्वरों के स्थान भी किंचित् आगे-पीछे होते हैं, इनकी ओर शिक्षक को विशेष ध्यान देना चाहिये। प्रत्येक राग का श्लोक अर्थ सहित तैयार हो व अभ्यासक्रम के सारे गीत कण्ठस्थ हों। पूर्व में सीखे हुए राग भूलते हुए दिखाई दिये। आठ दिन में एक बार आवृत्ति करते रहने से पिछला काम भी तैयार रहेगा। तानें, बहलावे बोर्ड पर एक-एक लिखकर अनेक बार शिक्षक ने गाकर दिखाना चाहिये व उन्हें लड़कों से उत्तम प्रकार से गवाना चाहिए। विभिन्न प्रकार से बार-बार सम पर आने की कला सिखानी चाहिए। एक तान उत्तम साध्य हुए बिना दूसरी न लेने दी जावे। लड़कों को लयदारी इसी वर्ष से सिखानी चाहिये। दो मात्रा के अक्षर एक मात्रा में गाना, विभिन्न कण सफाई से लगाना, गाते समय विश्रान्ति के स्थान, अवग्रह बदलना यह सभी बातें अच्छे शिक्षक को इसी वर्ष से कक्षा में सिखानी प्रारंभ करनी चाहिये। जो लड़के बिना किसी कारण के एक माह में तीन से अधिक बार अनुपस्थित रहेंगे, उन्हें निर्देश दिया जाय कि ऐसी अनुपस्थिति आगामी छः माह में चलती रहने पर वार्षिक परीक्षा में बैठने की अनुमति नहीं दी जावेगी। इस नियम का सचमुच पालन किया जाय।

कक्षा चतुर्थ वर्ष . कक्षा में अभ्यासक्रम का आधा कार्य हुआ है। लड़कों की तैयारी ठीक चल रही है। गायकी का काम अभी भी कम है। परन्तु उसकी सारी जिम्मेदारी शिक्षक पर नहीं डाली जा सकती। गत वर्ष के शिक्षक महोदय की अस्वस्थता के कारण

गायकी का काम बहुत पिछड़ गया था। लड़कों को कम से कम पंद्रह रागों की गायकी आज तैयार चाहिए थी। परन्तु अब तक केवल सात रागों की ही तैयारी हुई है। आगामी छः मास में शेष तेरह राग पूर्ण किये जायँ तभी तो वार्षिक परीक्षा के लिए बीस राग तैयार हो सकेंगे। आवश्यकता होने पर शिक्षक महोदय के घर जाकर पिछले बचे हुये राग लड़कों को तैयार कर लेना चाहिये। कक्षाध्यापक अतिरिक्त समय में सिखाने के लिए तैयार भी हैं। अभी तक सिखाये हुए सात रागों की गायकी जितनी परिपक्व होनी चाहिए, उतनी नहीं हुई है। कुछ लड़के गाते समय ताल में भी गलतियाँ कर रहे थे। इस ओर शिक्षक ध्यान दें। कुछ लड़कों का पाठान्तर अच्छा नहीं था। चीज के बोल व स्वरों का अच्छा उच्चारण करने की ओर इस कक्षा से ही ध्यान देना चाहिए। छात्रों का गायन श्रोताओं को आनन्ददायक होना चाहिए। गायन सुघड़ होना चाहिए। हेडमास्टर साहब व राजाभैया ने समय-समय पर इस कक्षा में जाकर लड़कों के कसरत की ओर ध्यान देना चाहिए। कक्षा के विद्यार्थी फुर्तीले हैं। उन्हें अब गायकी की कला सिखानी चाहिये। सारांश इस कक्षा में कोर्स का काम ठीक चल रहा है।

पंचम वर्ष : इस कक्षा का काम अच्छा चल रहा है। कक्षा में सीनियर व जूनियर—ऐसे दो विभाग हो चुके हैं। सीनियर कक्षा में कुछ लड़के बहुत अच्छे हैं, जूनियर कक्षा में अभी भी बहुत से रागों की गायकी होनी है। मुझे लगता है, इन जूनियर विद्यार्थियों ने फाइनल परीक्षा में इसी वर्ष बैठने की जल्दी न करना हितप्रद होगा। फाइनल परीक्षा अर्थात् अपने विद्यालय की शिक्षा का अन्तिम व सर्वोत्तम नमूना है, ऐसी धारणा होने से इस परीक्षा में उत्तीर्ण होनेवाले विद्यार्थियों को गायकी सहित पचास राग आने चाहिए। उनके गायन में महफिल के गायन की प्रौढ़ता होनी चाहिए। लड़कों की तानें अस्खलित, मधुर एवं श्रोताओं को तत्काल लुभानेवाली होनी चाहिए। केवल कोर्स कण्ठस्थ हो जाने से काम बन गया, ऐसा नहीं समझना चाहिए। सभाढीठता एवं सभा को रिझाने की कला, यह दो बातें साध्य हो जानी चाहिए।

इस कक्षा के लिए मैं ऐसी सूचना करना चाहता हूँ कि आगामी अक्तूबर माह में एक जाँच परीक्षा हेडमास्टर व राजाभैया ने लेनी चाहिए तथा उसमें जो अच्छे उत्तीर्ण होंगे, उन्हें ही नवंबर की फाइनल परीक्षा में बैठने की अनुमति प्रदान की जाय। यह जाँच परीक्षा अच्छी कड़ी ली जाय। आगामी छः माह में जिन विद्यार्थियों की अठारह से अधिक अनुपस्थिति होगी उन्हें परीक्षा में न बैठने दिया जाय। श्री बलवंतराव मास्टर ने सभी कक्षाओं में ध्रुवपद सिखाने का काम चलाया है। यह उनका प्रिय विषय होने से लड़कों की ध्रुवपद गायकी में अब बहुत सुधार दिख रहा है। इसी प्रकार हेडमास्टर महोदय अपने निरीक्षण कार्य के अतिरिक्त सुभान खाँ की कक्षा को सहायता देते रहे हैं, परिणामतः इस कक्षा के लड़के अब सुर में आ गए हैं। उनमें से कुछ को तो स्वरज्ञान हो भी गया है।

तवायफ स्कूल : इस शाला में दो सीनियर व छः जूनियर लड़कियाँ परीक्षा के लिए थीं। सीनियर लड़कियों को स्वरज्ञान अच्छा हुआ है। वह छोटी चीजें व राग गाती हैं। तथापि उनका शिक्षण अभी भी ठीक पद्धति से नहीं चल रहा है, ऐसा कहना पड़ता है। बड़े ख्यालों की तालीम व गायकी उन्हें अभी तक नहीं मिली। यह काम यहाँ के दोनों

शिक्षक महोदयों से शीघ्र पूरा हो सकेगा, ऐसा प्रतीत नहीं होता। बड़े ख्याल व उनकी गायकी सेंट्रल स्कूल के शिक्षकों के अतिरिक्त अन्य कोई शिक्षक लड़कियों को नहीं सिखा सकता, ऐसा मुझे लगता है। सीनियर लड़कियों को क्रमवार तालीम न होने से वे उल्टे-सीधे राग व चाहे जैसी तानें गाती हैं। यह ढंग बदलकर प्रथमतः नियमित कोर्स का कार्य पूर्ण करने पर बचे हुए समय में पाठ्यक्रम के बाहर के गीत उन्हें सिखाना हितकर होगा। ठुमरियाँ आदि गाना उन्हें आना ही चाहिए, परन्तु कोर्स के ध्रुवपद ख्याल सिखाना भी इष्ट है। यदि सेंट्रल स्कूल के एक शिक्षक वहाँ जाकर सिखाने लगें तो दोनों विद्यालयों का लाभ होगा। सीनियर लड़कियाँ शीघ्र ही अच्छा गाने लगेंगी, ऐसा लगता है।

जूनियर छः लड़कियों से स्वरों पर अच्छी मेहनत ली गई है। यह लड़कियाँ स्वर पहचानने लगी हैं। बाहर की चीजें भी गाती हैं। क्रमिक प्रथम पुस्तक उनसे यदि अभी ही तैयार करवाई गई तो ठीक होगा। यह कराये बिना अन्य चीजें न सिखाई जायँ। सीनियर लड़कियों को बलवन्तराव जी ध्रुवपद बताते हैं। अतः यह कार्य अब ढंग से होगा। इस बार सीनियर शिक्षक ने मेहनत अच्छी की है। परन्तु शिक्षा का कोई क्रम व पद्धति न रहने से कार्य नियमित नहीं हुआ। इस प्रकार का रिमार्क हेडमास्टर ने भी बार-बार दिया है। अब वे क्रमानुसार कार्य करने के लिए तैयार हैं। वार्षिक परीक्षा के लिए 'दूसरी क्रमिक पुस्तक' तैयार चाहिये।

वि. ना. भातखंडे

Examiner

पं० वि० ना० भातखण्डे, बी० ए० एल० एल० बी०,
हाईकोर्ट वकील (रिटा०)

शांताराम हाउस
मलबार हिल,
बम्बई नं० ६

क्र० ६२४
११–१–१९२६

शिविर : नौतलाब गेस्ट हाउस,
लश्कर,
दिनांक : ३०-१२-२५

मेहरबान रावसाहब जी० व्ही० अंबर्डेकर,
सेक्रेटरी,
माधव संगीत विद्यालय,
लश्कर

मैं बम्बई से शुक्रवार दिनांक २० को चलकर यहाँ शनिवार की दोपहर में आ पहुँचा। दिनांक २३ सोमवार से विद्यालय की परीक्षा प्रारम्भ होनी थी। परन्तु उस दिन किंग जार्ज की मातुश्री के निमित्त सर्वत्र अवकाश दिया गया था। अतः परीक्षा दूसरे दिन अर्थात् मंगलवार दिनांक २४ से प्रारम्भ की गई। परीक्षा सात दिन तक चलकर आज तवायफ स्कूल की परीक्षा के बाद समाप्त हुई। इस वर्ष किस कक्षा से कितने-कितने लड़के बैठे तथा उन्होंने कैसा कार्य किया, यह वृत्तान्त से ज्ञात होगा। संक्षेप में शाला का कार्य ठीक चल रहा है। विद्यालय के शिक्षक श्री बापूराव अनेक दिन तक अस्वस्थ रहे तथा बाद में उनका देहान्त हो जाने से उनकी कक्षा के लड़कों का कार्य बहुत पिछड़ गया था। उनके स्थान पर श्री सदाशिवराव अग्निहोत्री ने कमी की पूर्ति करने का बहुत प्रयत्न किया। उसी प्रकार उच्च कक्षा में गायकी सहित कोर्स तैयार करने का क्रम प्रारम्भ किया गया है। भविष्य में सभी कक्षाओं का कार्य सुनियमित रूप से चलता रहेगा, ऐसा विश्वास है। अब सभी शिक्षक नई पद्धति से तालीम लेकर अच्छे शिक्षक हो जाने से सभी कार्य व्यवस्थित तथा शीघ्रता से होने में कोई कठिनाई न होगी।

इस वर्ष पाँचवीं कक्षा के लड़कों की तैयारी प्रमाणपत्र प्राप्त करने लायक हो चुकी है। तथापि उन्हें प्रमाणपत्र अभी न दिये जायँ, ऐसी सूचना मैं कर रहा हूँ। कारण वृत्तांत में स्पष्ट किए हैं, जिनकी ओर मेहरबान ध्यान दें। इसके अतिरिक्त नये वर्ष की कक्षाएँ, उनका कार्यक्रम आदि बातें सूचनाओं सहित वृत्तान्त के साथ सादर प्रस्तुत कर रहा हूँ। उन सूचनाओं पर विंचार किया जाकर तदनुसार सम्पूर्ण व्यवस्था होगी, ऐसी आशा है।

भवदीय,

वि. ना. भातखंडे
परीक्षक

सन् १९२५ की वार्षिक परीक्षा के परिणाम तथा वृत्तान्त

प्रिपरेटरी (बाल वर्ग) : इस कक्षा में कुल अट्ठाईस लड़के हैं जिनमें से बीस परीक्षा में बैठे और बारह उत्तीर्ण हुए। बचे हुए आठ लड़कों का स्वरज्ञान कमजोर है। कुछ लड़कों के स्वरोच्चार अभी भी अच्छे नहीं हैं। इन बीस छात्रों के अतिरिक्त शेष आठ छात्र केवल शुद्ध स्वर ही पहिचानते हैं, परन्तु उन्हें कोई भी अलंकार या पल्टे सिखाये नहीं गये। कुछ लड़कों की आवाज मधुर है तथा उनमें से कुछ तो बहुत ही अच्छे हैं। कक्षा का कार्य ठीक चल रहा है। यह कक्षा विद्यालय के नियमित पाँच वर्ष के अभ्यासक्रम के अतिरिक्त है। इसमें नयी भरती पाए हुए लड़कों को कुछ ही महीनों में स्वर में लाकर स्वरज्ञान कराते हुए प्रथम वर्ष की कक्षा में बैठने लायक बना देना, इतना ही उद्दिष्ट है। इस कक्षा में लड़के छोटी आयु के हैं तथा बराबर अनुपस्थित रहते हैं, ऐसी शिकायत है। कक्षा के छात्रों का परीक्षा-परिणाम संलग्न है।

सूचना : इन अट्ठाईस लड़कों की कक्षा-व्यवस्था इस प्रकार हो। इन लड़कों के दो विभाग चौदह-चौदह लड़कों के बनाए जायँ। तथा उनमें से 'अ' विभाग में बारह परीक्षोत्तीर्ण लड़के आवेंगे। उन्हें प्रथम वर्ष कक्षा के शिक्षक के आधीन कर दिया जाय। दूसरा 'ब' विभाग हेडमास्टर विष्णुबुआ को दिया जाय। इन दोनों विभागों में क्रमिक पहली पुस्तक प्रारम्भ करनी है। फिलहाल हेडमास्टर 'अ' विभाग पर देखरेख कर ही रहे हैं। ये सभी लड़के कम उम्र के हैं। अतः मेरी इस सूचना के अनुसार प्रथम वर्ष के कोर्स की जिम्मेदारी अनुभवी व्यक्ति पर रहेगी। छोटी आयु के लड़कों को अच्छा शिक्षक देने से लड़कों पर उनका प्रभाव रहता है तथा उन्हें अच्छा मार्ग भी मिलता है। लड़कों के स्वरोच्चार अच्छे हो जावेंगे और उन्हें मुँह बिगाड़ने की आदत नहीं लगेगी। हेडमास्टर पर सारे विद्यालय की देखरेख का दायित्व होने से पहले वर्ग का कार्य उनको सौंप दिया जाय, ऐसी सूचना करता हूँ।

और एक ऐसी ही आवश्यक सूचना करने का निश्चय मैंने किया है। हेडमास्टर साहब दफ्तर का अपना काम लड़कों के सामने अन्य शिक्षकों की मदद से न करें। यह काम उन्हें स्वयं ही करना चाहिए। शिक्षक लोग दफ्तर का कार्य शाला के अधिकांश समय में ही करते हैं जिससे गायकी तैयार होने में बाधा निर्माण होती है। इस प्रकार की शिकायतें छात्रों द्वारा मेरे पास आने से मैंने यह सूचना दी है। उनकी यह शिकायत मुझे अनुचित नहीं लगी। कार्यालय का काम सहायक शिक्षकों का नहीं है। कोई भी शिक्षक छात्रों के पढ़ाई के काम में बाधा लाते हुए कार्यालय का कोई कार्य न करें, इस प्रकार का लिखित आदेश एक बार जारी किया जाना चाहिए। ऐसा होने पर सब ठीक हो जायगा। शाला के समय में लड़कों की तालीम के अतिरिक्त अन्य कोई भी काम न करना ही हितप्रद है। दफ्तर का सारा पत्र व्यवहार स्वयं हेडमास्टर महोदय अपने बचे हुए समय में करें।

प्रथम वर्ष : इस सत्र में इस कक्षा से आठ लड़के परीक्षा में बैठे, जिनमें से छह उत्तीर्ण हुए। किन्तु उनका अभ्यास ठीक नहीं गाया गया। केवल स्वरज्ञान ही हुआ है।

कक्षा में तीन छात्रों का अभ्यास क्रम पूर्ण नहीं हुआ था। ऐसा ज्ञात हुआ कि, ये लड़के कक्षा में देरी से भर्ती हुए थे। इस बार कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या इतनी कम देखकर आश्चर्य होता है। ऐसा होने का वास्तविक कारण ज्ञात किया जाकर उसे सुधारने का प्रयत्न किया जाय।

सूचना : इस बार प्रिपरेटरी वर्ग के लड़कों में जो अनुत्तीर्ण हुए हैं, उनमें बहुत से अच्छे हैं। उन्हें विद्यालय छोड़ने न दिया जाय। हेडमास्टर साहब ने आगामी वर्ष की अपनी कक्षा में उन्हें रख लेना इष्ट होगा। इस कक्षा में पहली पुस्तक पूर्ण की जाय तथा छोटी-छोटी तानें सिखाने का क्रम रखना है। ऐसी तानें किसी छोटे ख्याल को शोभा देने लायक होनी चाहिए। ये तानें गले से ठीक साध्य हो जाने पर आगामी वर्ग में उनका छोटे ख्यालों में उपयोग होगा, यह उद्देश्य है। इन तानों की जाँच यदि राजाभैया स्वयं करते हुए शिक्षकों को देंगे तो अधिक सुविधाजनक होगा। आगामी वर्ष में यह वर्ग तात्या के पास रखना ठीक होगा। इस कक्षा में लड़कों के स्वरस्थानों तथा अच्छी-बुरी आदतों की ओर शिक्षकों को पूर्ण ध्यान देना है। स्वरस्थान उत्तम रीति से सम्हालकर तानों का अभ्यास करवाना चाहिए।

द्वितीय वर्ष : इस कक्षा में केवल आठ लड़के परीक्षा में बैठे और वे सभी उत्तीर्ण हुए। कक्षा का कार्य अत्यन्त संतोषप्रद है। कोर्स के सभी दस राग गायकी सहित उत्तम तैयार हुए हैं। अपनी नूतन शिक्षा पद्धति के अनुसार शिक्षकों को अब ऐसा ही कार्य करना है। प्रत्येक वर्ष के अभ्यासक्रम में जो राग होंगे उन्हें गायकी सहित तैयार कराना, यह अपना नियम है। जिन लड़कों की गायकी पाठ्यक्रम के अनुसार नहीं है, उन्हें ऊपर न चढ़ाया जाय; ऐसा स्थायी नियम होना चाहिए। श्री नारायण के कक्षा का परीक्षाफल बहुत अच्छा है। इस कक्षा में जिन लड़कों का अभ्यास गायकी सहित नहीं हुआ था, उन्हें परीक्षा में नहीं बैठने दिया। एक दृष्टि से यह ठीक ही हुआ, ऐसे चार लड़के थे।

सूचना : आगामी सत्र के लिए इस कक्षा में नीचे की प्रथम वर्ष कक्षा से छह लड़के आयेंगे। वे तथा श्री नारायण के स्वयं अपनी कक्षा के परीक्षा में न बैठे हुए—ऐसे सभी छात्र रहेंगे। इस वर्ष के लिए गायकी सहित क्रमिक दूसरी पुस्तक के दस राग नियुक्त हैं। प्रत्येक राग में एक सरगम, एक लक्षण गीत, एक बड़ा ख्याल अथवा दो छोटे ख्याल, एक ध्रुवपद, एक धमार तथा गायकी—इतना काम कक्षा में तैयार होना चाहिए। इसके अतिरिक्त दूसरी पुस्तक में दी हुई थिअरी, श्लोक, दोहे, मंजरी के श्लोक आदि तो हैं ही। यही क्रम प्रत्येक पुस्तक के लिए समझना है। इस दूसरे वर्ष की कक्षा में श्री सदाशिवराव अग्निहोत्री की नियुक्ति हो। वास्तव में श्री तात्या कार्यालय की दृष्टि से वरिष्ठ हैं। परन्तु इस वर्ष यह कक्षा श्री सदाशिव की ओर ही रखी जाय, ऐसी सूचना है। ऐसा होने पर भी श्री तात्या की ज्येष्ठता में बाधा आने की सम्भावना नहीं। यह कक्षा की सुविधा का प्रश्न है। श्री गुणे को तीसरे साल की कक्षा देने पर अच्छा ही होगा। अर्थात् आज श्री गुणे के पास जो लड़के हैं, वे आगामी वर्ष में तीसरी कक्षा में भी उन्हीं के पास रहेंगे। उनके द्वितीय कक्षा के रिक्त स्थान पर श्री सदाशिव आयेंगे। श्री गुणे ने इस वर्ष क्रमिक दूसरी पुस्तक

की गायकी सिखाई है। उनकी ताजी मेहनत का लाभ अगले वर्ष में अन्य किसी वर्ग के लड़कों को होगा। अतः इस कक्षा पर श्री सदाशिव के नियुक्ति की सूचना की है।

तृतीय वर्ष : इस वर्ष इस कक्षा से आठ लड़के परीक्षा में बैठे। जिनमें से पाँच उत्तीर्ण हुए। परीक्षाफल को देखते हुए यह कक्षा तथा इसके ऊपर की कक्षाएँ पुराने नियमों से संचालित होने से अनेक योग्य व अयोग्य कारणों से पिछड़ी हुई है। उन कारणों का पता लगाने की आज आवश्यकता नहीं है। इस कक्षा के विद्यार्थी गायकी तैयार किये बिना उत्तीर्ण होते आये थे। यही एक प्रमुख कारण कहा जा सकता है। इस तृतीय कक्षा में पाठ्यक्रम पूर्ण करके श्री सदाशिव राव ने सभी रागों की अब गायकी तैयार करवायी है। कक्षा का समुचित काम अच्छा हुआ है, इसमें संदेह नहीं। वास्तव में इन सब विद्यार्थियों के पच्चीस राग गायकी सहित तैयार होने चाहिए तथा ऐसा प्रयत्न किया भी है।

सूचना : आगामी सत्र के लिए इस कक्षा में क्रमिक पुस्तक का तीसरा भाग संपूर्ण तैयार हो जाना चाहिए। इस कक्षा पर श्री गुणे की नियुक्ति की जाय। इस कक्षा में उत्तीर्ण होकर आये हुए आठ छात्र तथा श्री सदाशिव की कक्षा के अनुत्तीर्ण तीन, ऐसे कुल ग्यारह लड़के हो जावेंगे। आगामी वर्ष की कक्षा में तीसरी पुस्तक गायकी सहित तैयार चाहिए।

चतुर्थ वर्ष : यह कक्षा भी पुरानी व्यवस्था से आज तक चल रही थी। इसके सभी छात्र केवल तीन वर्ष से शाला में हैं। अर्थात् नाम मात्र के लिए चौथा वर्ग होने पर भी लड़के तीन वर्ष की शिक्षा के ही हैं। अब चालू वर्ष में वे फाइनल (पंचम वर्ष) की कक्षा में जावेंगे।

इस वर्ष वार्षिक परीक्षा में आठ लड़के बैठे, जिनमें पाँच उत्तीर्ण हुए। कक्षा में कोर्स नियमित बीस रागों का पूर्ण हो कर गायकी केवल तेरह रागों की हुई थी। पिछली कक्षा के यही तेरह राग श्री अग्निहोत्री की कक्षा में तैयार करा लेने से भास्करराव को इस वर्ष चौथी कक्षा का काम देना सुलभ हुआ था। श्री भास्करराव ने अपनी नई कक्षा में बिना गायकी के तेरह राग तैयार कर देने पर चौथे वर्ष के अंत में लड़कों के गायकी सहित सभी राग हो जावेंगे। अतः इस सत्र में भास्करराव के सभी छात्र चौथे वर्ष के लिये उन्हीं के पास रखे जायँ। अर्थात् उनके पास जो आठ लड़के हैं वे तथा श्री अग्निहोत्री की कक्षा से उत्तीर्ण हुए पाँच ऐसे कुल तेरह लड़के होंगे। इस कक्षा में दो भिन्न-भिन्न अभ्यासक्रम के लड़के एकत्रित हो रहे हैं, यह सच है। परन्तु योग्य रागों की योजना करके भास्करराव इन सभी लड़कों के हित की राग-व्यवस्था करा लें। इस कक्षा में क्रमिक चौथी पुस्तक आरंभ होती है।

पंचम वर्ष : इस पंचम वर्ष की कक्षा में चौदह विद्यार्थी परीक्षा में बैठे थे। इन विद्यार्थियों का पाठ्यक्रम प्रायः पूर्ण हो चुका है। परन्तु गायकी अपूर्ण हुई है। गायकी के तीस राग हुए हैं तथा शेष तीसरी पुस्तक के भी कुछ राग हुए हैं। अपने विद्यालय के नियमानुसार क्रमिक पुस्तक के ४५ राग गायकी सहित तैयार हुए बिना प्रमाण-पत्र दिया नहीं जाता। जिनके तीस राग तैयार हैं तथा शेष राग तैयार होने जा रहे हैं, ऐसे प्रमाण-पत्र देने योग्य पाँच विद्यार्थी हैं।

उपर्युक्त विद्यार्थियों के पन्द्रह राग गायकी सहित तैयार होना शेष हैं। अतः मैं ऐसी सूचना करता हूँ कि इन लड़कों को ये राग तैयार किये बिना प्रमाण-पत्र अथवा डिप्लोमा न दिया जाय। ये पन्द्रह राग उत्तम तैयार होने के लिये चार माह लगेंगे, ऐसा राजाभैया का मत है, जिससे मैं भी सहमत हूँ। आगामी अप्रैल माह की भर्ती के समय इन लड़कों से ये राग सुनकर उन्हें डिप्लोमा दिया गया तो सभी बातें ठीक हो जावेंगी।

इस कक्षा में·············नाम का एक विद्यार्थी है। उसका भी कोर्स पूर्ण होकर गायकी तीस रागों की हुई है। परीक्षा में ऐसा पाया गया कि उसके स्वर-स्थानों में कुछ कमजोरी है तथा तान जितनी साफ और खूबसूरत चाहिये वैसी नहीं है। बचे हुये पन्द्रह राग व गला तैयार करने के लिये उसे छह माह की अवधि चाहिये। आगामी निरीक्षण के समय इन रागों की कड़ी परीक्षा लेकर यदि उसने अपनी सारी तैयारी बताई तथा तानें जल्द, साफ व सुरीली गाईं तो उसे जून अथवा जुलाई में सर्टिफिकेट दिया जाय। यह फाइनल के विद्यार्थी हैं। उनके अच्छे-बुरे गायन पर तथा तैयारी पर लोकमत बनने की संभावना है। अतः उन्हें फिलहाल प्रमाण-पत्र देना उचित न होगा। अपने विद्यालय के संबंध में अब लोगों का मत ऊँचा है। उसका स्टेंडर्ड जितना ऊँचा रहेगा उतना ठीक है, ऐसा मेरा मत है।

श्री राजाभैया की कक्षा का काम बहुत अच्छा हुआ है।

उनकी कक्षा में विभिन्न तैयारी के लड़के हैं। जिनके उन्होंने तीन समूह बनाकर परीक्षा के लिये तैयार किया था। उनके लिये यह भूषणास्पद है।

सूचना : इस पाँचवीं कक्षा में जो चौदह लड़के हैं उन्हें आगामी एक वर्ष के लिये उसी कक्षा में रखा जाय। प्रमाण-पत्र दिये जाने पर यह संख्या घटकर आठ या नौ रह जायगी। यही आठ-नौ लड़के आगामी वर्ष में डिग्री की परीक्षा में बैठेंगे। इस संख्या में यदि कुछ कमी हो गई तो राजाभैया ने भास्करराव की कक्षा से एक दो होनहार लड़के अपनी कक्षा में लेना चाहिये। इस प्रकार की अड़चनें अब केवल एक वर्ष तक ही रहेंगी। तीसरे वर्ष के लड़के अपना सारा अभ्यासक्रम गायकी सहित तैयार करके एक बार चौथे वर्ष में आ जाने पर सभी काम सुनियमित चलने लगेगा। क्रमिक चौथी पुस्तक गायकी सहित इन चार वर्षों में तैयार कराके महफिल का रंगदार, मोहक तथा शास्त्रकला युक्त गायन सीखने के लिये पाँचवें वर्ष में लड़कों को प्रविष्ट कराना यह उद्देश्य है।

विशेष सूचना

संगीत विद्यालय के उच्च श्रेणीय छात्रों को नानाविधि अर्थात् भिन्न-भिन्न प्रकार के गायन अथवा वादन सुनने का अवसर मिलना चाहिये। अपने यहाँ शागिर्द पेशा में उस्ताद·········एक सुविख्यात सरोदवादक हैं। यदि सप्ताह में एक बार उन्हें तथा किसी अन्य कलाकार को निमंत्रित किया गया और ऐसे अवसरों पर अपने विद्यालय में आकर छात्रों के समक्ष उन्होंने अपनी कला का प्रदर्शन किया तो इसमें छात्रों का हित ही होगा। उस्ताद······को इस कार्य के उपलक्ष में, आवश्यक प्रतीत होने पर, अल्प-सा वेतन भी शिक्षा विभाग से दिया जावे। उनका सरोद-वादन सुनने से छात्रों के गायन में मींड व

गमक बिना प्रयास से आ जावेगी। यथाक्रम से बढ़नेवाला राग का विस्तार, जो अब उनकी गायकी में आना आवश्यक है, वह भी साध्य होगा। गायकी का सारा जोर इस समय जो तानों पर है उसमें वैचित्र्य आना आवश्यक है। छात्रों के गायन में तान वैसे तो चाहिए ही, परन्तु केवल तानों का गायन कुछ समय पश्चात् नीरस हो जाता है। अतएव उनकी गायकी में मींड-गमक-युक्त उत्तम व मधुर आलाप का होना नितान्त आवश्यक है। केवल म्यूजिकल जिम्नास्टिक से ही आनन्द नहीं आता।

इस विषय में मैं सूचित करना चाहता हूँ कि,······की यह नियुक्ति प्रारम्भ में एक वर्ष के लिए ही की जावे। विद्यालय में नियमितता से आकर मुक्त हृदय से अपनी कला छात्रों के सामने यदि वे प्रदर्शित करते रहे, तथा इसका उपयोग छात्रों के लिए लाभ-प्रद हो रहा है, ऐसा शिक्षकों को प्रतीत हुआ तो ही यह नियुक्ति प्रत्येक बार एक-एक साल के लिये बढ़ाई जाय। तात्पर्य केवल इतना ही है कि, स्थायी रूप से यह नियुक्ति अनुभवों पर ही की जाय। विद्यालय में प्रति सप्ताह उस्ताद को कौन-सा राग बजाना है, इसकी सूचना उन्हें श्रीमान् हेडमास्टर साहब व श्री राजाभैया ने पूर्व से ही देना चाहिये, ताकि वे सारे राग उस्ताद घर से ही देखकर आ सकेंगे। इस प्रदर्शन में उच्च तीन कक्षाओं को ही प्रारंभ में सम्मिलित किया जाय। शागिर्द पेशा के गुणीजनों से विद्यालय के कार्य में सहयोग लेने की यह कल्पना कोई अश्रुतपूर्व नहीं है। इस प्रकार की व्यवस्था श्रीमंत गायकवाड़ सरकार के साथ जब मैं उटकमंड में था, तब उनकी आज्ञा से बड़ौदे के विद्यालय में करवाई थी। मेरी वह सूचना उन्हें अत्यधिक पसंद आई। आज लगभग पाँच वर्षों से उनके यहाँ बड़ा वेतन पानेवाले श्रेष्ठ व गुणी मुसलमान गायक बड़ौदा स्कूल आफ म्यूजिक में प्रतिदिन न्यूनतम दो घंटे तक काम करते हैं। वहाँ पर रशियन सज्जन भी हैं। उन्हें ६००) मासिक वेतन दिया जाता है, इतना ही नहीं पर वे बड़ौदे के एक कलाकार हैं और वहाँ के विद्यालय में यूरोपीय स्टाफ नोटेशन से आजकल पढ़ाते हैं। शागिर्द पेशा के गुणीजनों का गायन-वादन यदा-कदा ही होता है। अतः उनके पास पर्याप्त समय शेष रह जाता है। परिणामस्वरूप अपना गाना-बजाना किसी को न सुनाने की प्रवृत्ति उनमें बढ़ी हुई कई रियासतों में मैंने अनुभव की है। उन विद्वानों से यदि ऐसा कराया गया तो उनकी अपनी कला परिष्कृत रहकर जनता भी उनसे लाभ उठा सकेगी। अपने यहाँ तो स्वयं सरकारी विद्यालय को ही उनका लाभ होगा, अतः मेरी यह नम्र सूचना विचारार्थ प्रस्तुत है।

दूसरी सूचना मेरी इस प्रकार है। अपने यहाँ से उपाधि प्राप्त करने वाले छात्रों को थोड़ी-थोड़ी संख्या में किसी शिक्षक के साथ भेजकर निकटवर्ती रियासतों के दरबारी गायक-वादकों का गाना-बजाना सुनने का अवसर यदि दिया गया तो अच्छा होगा। संगीत कला का उत्कर्ष गुणी लोगों को सुनने से ही अधिक समाधानकारक रीति से होता है। उदाहरण के लिए, इन्दौर-बड़ौदा तथा रामपुर आदि शहरों में अच्छे गुणी लोग रियासत की सेवा में रखे जाते हैं। इन स्थानों में वहाँ की सरकार से अनुमति प्राप्त कर थोड़े-थोड़े भिन्न-भिन्न छात्रों को किसी ज्येष्ठ शिक्षक के साथ इन गुणीजनों को सुनने हेतु भेजा गया तो छात्रों का हित होगा। यह काम बहुत बड़े खर्चे का प्रतीत नहीं होता। मुझे तो लगता है कि उन

रियासतों को इसमें समाधान ही होगा। इसमें से कुछ रियासतें तो हमारे विद्यालय के ज्येष्ठ शिक्षकों का सहर्ष स्वागत करेंगे तथा एक-दो दिन उनके भोजन व निवास का प्रबंध भी कर देंगे। बड़ौदा व इन्दौर रियासतों को ऐसी व्यवस्था अच्छी ही लगेगी, ऐसा मेरा अनुमान है। परन्तु इसी प्रकार की व्यवस्था अपनी रियासत में भी करनी पड़ेगी। अपना विद्यालय देखने के लिए जब वहाँ के छात्र व शिक्षक आवेंगे, तब आगे चलकर उनका भी आदर-सत्कार हमें करना होगा।

यह व्यवस्था आज ही व्यवहार में लाई जाय, ऐसा मेरा आग्रह नहीं है। परन्तु ऐसा होना अतिआवश्यक है, इतना ही मेरा कहना है। अपने छात्रों को अन्य स्थानों पर कला की प्रगति कैसी हो रही है, उनकी कूप-मण्डूकता नष्ट हो जावे, उनमें गायकों के सर्व साधारण दोष न आने पावें व साथ ही साथ विनय एवं पात्रता बनी रहकर उनकी कला में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहे, ऐसी मेरी अभिलाषा है। योग्य समय पर सूचना का उचित विचार किया जाय।

तीसरी सूचना ऐसी करना चाहता हूँ कि, अब अपने विद्यालय में वाद्य सिखाने की कक्षाएँ प्रारंभ की जानी चाहिए। अपने वाद्य अर्थात् बीन, सितार व पखावज। सितार-पखावज बजानेवाले विद्वान् अपनी रियासत में सेवारत है, ऐसा मुझे ज्ञात हुआ है। उन्हें शिक्षा-विभाग की ओरसे वेतन देकर कक्षाओं में सिखाने का काम दिया गया तो बहुत लाभ हो सकेगा। अपने यहाँ बहुत से नागरिक सितार सीखने के लिए तैयार हैं, ऐसा मेरा अनुमान है। जिन छात्रों का कण्ठ मधुर नहीं है, उन्हें वाद्य सीखने का अवसर मिलेगा। पखावज वादकों में प्रसिद्ध मृदंगाचार्य श्री सुखदेवप्रसाद के वंश के लोग यहाँ हैं। उनकी 'बोलपरन' आदि कला रियासत के विद्यालय में ही अपने छात्र संपादित कर सकेंगे। सम्भव होने पर इस सूचना का विचार किया जाये। बड़ौदे में सितार, तबला, सारंगी, बीन, पखावज व शहनाई आदि की नियमित कक्षाएँ होती हैं, जिनमें वहाँ के कलाकार शिक्षा देते हैं। ग्वालियर में अब पुनः संगीत का उद्धार हो रहा है, इसलिये यह सूचना दी है। चतुर्थ सूचना मेरी ऐसी है कि, शक्य होनेपर अपनी रियासत के महत्वपूर्ण ऐसे दो-तीन जिलों में माधव संगीत विद्यालय की शाखाएँ स्थापित की जायँ। मेरा अंतिम ध्येय यही है कि, ग्वालियर एक संगीत की यूनिवर्सिटी बन जाये। ऐसा होने में यदि कुछ समय लग गया तो भी यह अपना एक ध्येय होना चाहिये। संगीत अत्यन्त महत्व का विषय है और वह अपनी संस्कृति का अटूट अंग है। उज्जैन जैसे जिले के व भारी जनसंख्या वाले शहर में ऐसी शाखा स्थापित की जाये, ऐसा मेरा मत है। एक प्रधान शिक्षक व अपने विद्यालय की शिक्षा-प्राप्त एवं तैयार ऐसे दो तरुण युवक वहाँ भेजने पर उज्जैन में विद्यालय अच्छा चलेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

पाँचवीं सूचना नगर के तवायफ स्कूल के विषय में है। इस विद्यालय का कार्य समाधानकारक नहीं है। आज तक मैं वहाँ का कार्य देखता आया हूँ। वहाँ की लड़कियों को उनके अपने गायन के अतिरिक्त उच्च प्रकार का शिक्षण मिले, वे लिखना-पढ़ना सीखें, उन्हें अपनी उन्नति का मार्ग मिल जाय, अपने तथा अपने आश्रितों के भरण-पोषण का सामर्थ्य प्राप्त हो जाय—ऐसा मूल उद्देश्य इस विद्यालय के लिए था। परन्तु इतने वर्षों के

अनुभव से मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस विद्यालय पर होनेवाले व्यय की अपेक्षा वहाँ शास्त्र व कला की प्रगति कोई उल्लेखनीय नहीं हुई। इन्सपेक्टरों ने अनेक बार आलोचनाएँ कीं, उपयुक्त सूचनाएँ भी दीं। परन्तु उसका कोई उपयोग नहीं हुआ।

सात-आठ साल तक दिया हुआ इस विद्यालय की लड़कियों का शिक्षण देखने पर वह अत्यंत निम्नस्तरीय प्रतीत हुआ। स्वयं उनकी कही जानेवाली कला का शिक्षण भी अन्य स्थानों की अपेक्षा कोई बहुत प्रशंसनीय नहीं ज्ञात हुआ। यह स्कूल भविष्य में शिक्षा-विभाग से संबंधित रहने में अब मुझे कोई औचित्य नहीं लगता। उसे पुनः शागिर्द पेशे में लौटाया जाय तो ठीक होगा। उच्च ख्याल, ध्रुवपदों की शिक्षा से उनके नित्य गायन में बाधा होती है, ऐसा कहनेवालों को तब कोई अवसर नहीं रहेगा। स्कूल का कार्य समाधानकारक नहीं है। इस विषय में एक अन्य कारण यह भी हो सकता है कि वहाँ की लड़कियाँ जड़-बुद्धि की हैं। परन्तु यह भी असत्य नहीं है कि वहाँ के शिक्षकों में इन लड़कियों को शिक्षा देने का सामर्थ्य नहीं है। सारांश इस स्कूल का संबंध अपने शिक्षा-विभाग से इसी प्रकार जारी रखना योग्य नहीं है, ऐसा मैं समझता हूँ। वहाँ पर होनेवाले व्यय से ही शिक्षा-विभागीय प्रमुख संगीत विद्यालय में वाद्यों की कक्षाएँ प्रारंभ की जा सकेंगी।

वि. ना भातखंडे
Examiner

नौतलाब गेस्ट हाउस,
लश्कर
२६-४-१६२६

मेहरबान रावसाहब जी० व्ही० अंबर्डेकर,

आनरेरी सेक्रेटरी श्री माधव संगीत विद्यालय, लश्कर की सेवा में आपके आज्ञा-पत्र के अनुसार मैं बम्बई से दिनांक २२ अप्रैल गुरुवार को रवाना होकर दिनांक २३ अप्रैल शुक्रवार को अपरान्ह ग्वालियर आ पहुँचा। इसी रोज विद्यालय जाकर छमाही निरीक्षण का कार्य शुरू किया। कार्य कल सायंकाल अर्थात् दिनांक २८ को पूर्ण हुआ। जो बातें ध्यान में आईं, उनका विवरण निम्नानुसार है।

प्रथमतः पंचम वर्ष का अभ्यासक्रम जिन विद्यार्थियों का तैयार हो चुका है व जिन्हें अब प्रमाण-पत्र वितरित करना है, उनका निरीक्षण किया; जो शुक्रवार तथा शनिवार को सम्पन्न हुआ। फाइनल परीक्षा उत्तीर्ण इन छात्रों ने अपना निर्धारित काम कर लिया है, ऐसा ध्यान में आया। बचे हुए गायकी के राग भी तैयार कर लिए हैं। उनके गायन में चमक, सफाई अर्थात् महफिली रंग जितना चाहिए था, उतना प्रतीत नहीं हुआ। जिसके लिए प्रमुख कारण ठीक ऐसे समय पर श्री राजाभैया का अवकाश पर चले जाना है। राजाभैया की गैरहाजिरी में उनके क्लास का काम श्री भास्करराव करते हैं। वे यथाशक्ति परिश्रम कर रहे हैं। परन्तु स्वयं राजाभैया की देख-रेख में जिस प्रकार कार्य होता वैसा नहीं हुआ, ऐसा कहना पड़ता है। इनमें से कुछ लड़के अच्छे गाते हैं, यह सच है। परन्तु फाइनल के सभी छात्र अच्छे गानेवाले हों, यह अपना ध्येय है। फाइनल के इन कुछ लड़कों के गायन में अभी भी सुधार होना है। परन्तु इस सुधार के लिए उनके प्रमाण-पत्र अधिक समय तक रोकने की अब आवश्यकता नहीं है। उनमें से अधिकतर छात्र ग्वालियर के ही हैं। उनकी आयु भी अल्प है। अतः राजाभैया पुनः उपस्थित होते ही और कुछ दिन तक उनकी निगरानी में अपनी गायकी सुधार लें, ऐसी मेरी सूचना है। राजाभैया ने भी गत चार माह में अपनी कक्षा को दुर्लक्षित कर लड़कों का नुकसान किया है। अतः इन प्रमाण-पत्र प्राप्त विद्यार्थियों की भारी त्रुटियाँ निवारण करना उचित है। इस विद्यालय में गोवा-निवासी और भी एक सज्जन हैं। उनके विषय में पिछली बार मैंने विशेष आलोचना की थी। उन्होंने भी यथाशक्ति परिश्रम करके अपना काम पूर्ण किया है। अतः उन्हें भी प्रमाण-पत्र दिया जा सकता है। उनका गला उनकी अवस्था के अनुसार सरलता से नहीं घूमता है। उनके सहपाठियों की अपेक्षा उनका गायन उतना आकर्षक नहीं है। परन्तु

शाला का नियत कार्य उन्होंने पूर्ण किया है। अतः उन्हें प्रमाण-पत्र देने की मैं सिफारिश करता हूँ।

आगामी वर्ष से फाइनल परीक्षा उत्तीर्ण विद्यार्थियों की प्रथम व द्वितीय इस प्रकार से श्रेणियाँ घोषित की जायँ। जिससे सभी लड़के समान स्तर के हैं, ऐसा कहने के लिए गुंजाइश न रहेगी। ऐसी श्रेणियाँ बी० ए०, एम० ए० आदि परीक्षाओं में होती हैं। यही व्यवस्था संगीत में भी की जाय। उनकी श्रेणियाँ प्रमाण-पत्रों में अंकित हों। ऐसा करने पर उच्च श्रेणी प्राप्त करने के लिए लड़के परिश्रम करेंगे।

प्रिपरेटरी विभाग

१. **श्री हेडमास्टर का वर्ग** : यहाँ पन्द्रह लड़के हैं। जिनमें से छह लड़के जाँच हेतु उपस्थित किये थे। शेष सभी कमजोर हैं, ऐसा ज्ञात हुआ। यह छः लड़के अच्छे हैं। उनके स्वरस्थान तथा स्वरज्ञान भी अच्छा है। वे अब कोर्स का काम कर रहे हैं। उन्हें अब तानों का शिक्षण मिले, इस दृष्टि से प्रथम वर्ष कक्षा में भेजा जाय। इनमें से कुछ वार्षिक परीक्षा में भी उत्तीर्ण हो सकेंगे। ये लड़के, आगे की कक्षा में जाने पर प्रिपरेटरी विभाग दो की कक्षा के दस लड़के, जिनके अलंकार अच्छे हुए हैं, हेडमास्टर महोदय को अपनी कक्षा में लेने चाहिए। उनकी कक्षा इस प्रकार बीस लड़कों की रहेगी। हेडमास्टर की निगरानी में लड़कों के स्वरस्थान अच्छे होते हैं, ऐसा मुझे प्रतीत हुआ।

प्रिपरेटरी विभाग २ : कक्षा में तीस-पैंतीस लड़के हैं। प्रतिदिन की उपस्थिति पच्चीस है। दस लड़कों को थाट व स्वर कुछ-कुछ समझ में आने लगे हैं। कक्षा के सम्बन्ध में विशेष लिखने लायक कुछ भी नहीं है। कक्षाध्यापक नियमित काम करते हैं, ऐसा प्रतीत हुआ। इस कक्षा के दस विद्यार्थी विष्णुबुआ को देने हैं।

प्रथम वर्ष : कक्षा में कोर्स का काम पूर्ण होकर अब तानें बताई जा रही हैं। इन छोटे बच्चों को तानें लिखा देने के लिए पिछली बार राजाभैया को सूचित किया था, परन्तु यह काम नहीं हुआ है। किसी छोटे चलती लय के ख्याल की तानें जैसी गाई जाती हैं, वैसी ही; किन्तु सरल एवं सीधी तानें इस कक्षा के लिए होनी चाहिए। लड़कों के गले सहज में घूमें, उनके स्वरस्थान न बिगड़ें, उनका गायन श्रोताओं को मधुर लगे; यही लक्ष्य होना चाहिए। कुछ लड़कों के स्वर-स्थान अच्छे नहीं थे। तानें गाकर पुनः ताल में कठिनाई से आ पाते हैं। इस कक्षा में तान को अधिक महत्व नहीं है। तानें कम होने पर भी चलेगा। परन्तु स्वरज्ञान व स्वर-स्थानों की ओर सर्वाधिक ध्यान रहे। शिक्षक ने अपना काम ठीक किया है, परन्तु वस्तुतः लड़कों की ओर उन्होंने अब अधिक ध्यान देना चाहिए।

द्वितीय वर्ष : इस कक्षा में छः माही का कोर्स ठीक हुआ है। गायकी भी ठीक है। ख्याल अभी भी अच्छी तरह गाने नहीं आता। मात्राएँ गिनकर गाने जैसा लगता है। इसकी ओर शिक्षक का ध्यान रहे। कुछ लड़कों के स्वर-स्थान ठीक नहीं हैं। बड़े ख्याल गाकर तानें लेते समय ताल की ओर ध्यान नहीं रहता, इस पर भी शिक्षक ध्यान दें। इस कक्षा में लड़कों को ख्याल-गायन का प्रसंग नवीन होने से आरम्भ में कुछ दोष रहना अपरिहार्य ही है। परन्तु उन्हें पहले से ही अच्छे मार्ग पर चलाना हितकर होता है। चीजों

की संख्या बढ़ाने की अपेक्षा स्वरस्थान, शब्दोच्चार, स्वरोच्चार, गाने का ढंग, तालसाधन आदि की ओर इसी कक्षा से ध्यान देना ठीक होगा। महीने में एक बार इस कक्षा की गायकी की ओर राजाभैया ने ध्यान देना चाहिए तथा कक्षाध्यापक को उनकी सलाह से अपना काम करना चाहिए, तब सब ठीक होगा।

तृतीय वर्ष : इस कक्षा के छात्रों ने छः माह का अपना पाठ्यक्रम पूर्ण किया है। कक्षा का काम अन्य एक शिक्षक अस्थाय रूप से देख रहे हैं। कारण यहाँ के नियत कक्षाध्यापक ऐसे ही समय में अवकाश पर चले गये हैं। शिक्षक की अनुपस्थिति का परिणाम लड़कों को भुगतना पड़ रहा है। चीजें कण्ठस्थ हो चुकी हैं। परन्तु गायकी में मोहकता नहीं है। ग्वालियर की खास गायकी का रंग भी उनके गायन में नहीं दिखाता। तानों की सुसंगतता तथा उन्हें स्थायी से जोड़ना, स्वरस्थान, स्वर और शब्दों का उच्चार आदि बातों में बहुत त्रुटियाँ हैं। राजाभैया व भास्करराव ने गायकी के पाठ जो लिखकर रखे हैं, उसे इन सभी विद्यार्थियों को प्रथमतः तैयार करना चाहिए। वह हो जाने पर शिक्षक ने यदि नये-नये राग बताये तो हितकारक होगा। शाला के शिक्षण में एक-सूत्रता रहना इष्ट है। वह साध्य होनेपर आगे का विशेष अभ्यास कराना शिक्षकों के उत्साह व कुशलता पर रहेगा।

सारांश नियत कक्षाध्यापक पुनः उपस्थित होने पर राजाभैया अथवा भास्करराव को कक्षा में बीच-बीच में बुलाकर, अपनी गायकी व बड़े ख्यालों का काम कैसे चल रहा है, यह उन्हें दिखाना चाहिए जो बहुत हितकर होगा। कारण ये छात्र बाद में उन्हीं शिक्षकों के पास जायेंगे। महफिली रंग का गायन लड़कों को इसी कक्षा से सिखाना है, यह सदा ध्यान में रखा जाय। शिक्षक ने बार-बार कक्षा में चीजें गाकर सुनानी चाहिए, तथा लड़कों को भी हूबहू वैसी ही गाकर शिक्षक को सुनानी चाहिए। ऐसा नित्य का शिक्षण-क्रम रहने से समस्त साध्य हो जाता है।

चतुर्थ वर्ष : इस कक्षा में भास्करराव के स्थान पर नवनियुक्त शिक्षक काम करते हैं। वे नये व अननुभवी होने से जो लाभ भास्करराव से होता वह नहीं हो रहा है; यह स्पष्ट ही है। नये शिक्षक ने लड़कों का छः माह का कोर्स करवा लिया है। कुछ रागों की गायकी भी बताई है। लड़के बड़ा ख्याल अभी अच्छी तरह गा नहीं पाते। तान लेने में तथा लेकर पुनः ताल के साथ स्थायी के मुखड़े पर आने में बहुत कसर है। स्वर-स्थान, शब्दोच्चार आदि जैसे चाहिए वैसे सुन्दर नहीं हैं। इन सारी बातों की ओर बीच-बीच में भास्करराव ध्यान दें। यही लड़के आगामी वर्ष फाइनल परीक्षा में बैठनेवाले हैं। अतः इसी कक्षा में उनका गायन अच्छा हो जाना चाहिए। राजाभैया की गैरहाजिरी का इस कक्षा पर भी परिणाम हुआ है, ऐसा निरीक्षण के समय प्रतीत हुआ। इधर कुछ दिनों से थियरी की ओर शिक्षकों का ध्यान जितना चाहिए उतना नहीं जा रहा है। आगामी छः माह में थियरी उत्तम तैयार होगी, ऐसा शिक्षक प्रयत्न करें। कक्षाध्यापक अपनी बुद्धि के अनुसार मन लगाकर काम करते हैं। परन्तु पढ़ाने का अनुभव उन्हें थोड़ा ही होने से कुछ त्रुटियाँ रहना स्वाभाविक है। इस कक्षा में कुछ लड़के अच्छे होनहार हैं। उनकी ओर ध्यान देने पर वे शाला को अच्छा यश देंगे। इस कक्षा में तथा तीसरे वर्ष की कक्षा में ख्याल गायन

प्रौढ़ तथा सुडौल होना चाहिए। इन बातों को साध्य करने का उपाय यही है कि राजाभैया तथा भास्करराव ने समय-समय पर नीचे की कक्षाओं में जाकर वहाँ की गायकी पर ध्यान देना चाहिए। एक बार ढंग बिगड़ जाने पर वह अन्त तक बाधक होता है। केवल चीजें किसी तरह नोटेशन के अनुसार याद करने पर सारा काम हो गया, ऐसा समझना गलत है। नोटेशन तो केवल तालीम मात्र है। रागों की भिन्न-भिन्न प्रकार की खूबियाँ श्रोताओं के सामने प्रकट करना—यह गायकी है। तालीम पूर्ण हो जाने पर गायकी का काम हाथ में लेना है। चीजें जैसी महफिल में गायी जाती हैं, उसी तरह गाने के लिए सिखाना शिक्षक का काम है। इस पर ज्येष्ठ शिक्षकों का जितना ध्यान रहेगा उतना अच्छा ही है।

पंचम वर्ष : इस कक्षा में लगभग नौ-दस विद्यार्थी हैं। जो आगामी नवम्बर में सर्टिफिकेट यानी फाइनल की परीक्षा में बैठेंगे। इस कक्षा में राजाभैया के स्थान पर भास्कर राव काम कर रहे हैं। नियत शिक्षक से लड़कों को जो लाभ होता है, वह अस्थायी रूप में काम करने वाले व्यक्ति से नहीं होता, यह स्पष्ट ही है। इस कक्षा को चार महीने से राजाभैया की देखभाल व तालीम न होने से इनका बहुत नुकसान हुआ है। लड़कों की गायकी पर इस कक्षा में महफिल के गायन का रंग जो आना चाहिए, वह नहीं आया। शब्दोच्चार, स्वरोच्चार में भी पर्याप्त त्रुटियाँ दिखाई दीं। पाठ्यक्रम की चीजें याद हो चुकी हैं। गायकी भी कुछ रागों की हुई है, परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। वापस आने पर राजाभैया ने अधिक परिश्रम करके सारी त्रुटियाँ दूर करनी चाहिए। थियरी का काम भी यथायोग्य रीति से नहीं हुआ है। आगामी छः माह तक ऐसा ही चलता रहा तो ये लड़के प्रमाण-पत्र पाने योग्य नहीं होंगे—ऐसी शंका है।

विशेष सूचना

इस बार विशेष सूचना करने लायक कुछ प्रतीत नहीं हुआ। तथापि दो-तीन सूचनाएँ यहाँ पर कर देता हूँ।

(१) लड़कों का जितना ध्यान, चीजें याद करने की ओर तथा गला घुमाने की ओर जा रहा है, उससे अधिक गायन की वास्तविक कला संपादन करने की ओर जाना चाहिए।

(२) शनिवार की बैठकों में शिक्षकों का गायन उच्च तीन कक्षाओं को सुनवाने में यह उद्देश्य है कि, ज्येष्ठ शिक्षकों का तथा हेडमास्टर महोदय का गायन बारबार सुनने का उन्हें अवसर मिले तथा उनका अनुकरण भी वे कर सकें। मुझे ज्ञात हुआ कि शनिवार की बैठक में राजाभैया व भास्करराव कभी-कभी गाते हैं, परन्तु हेडमास्टर कदापि नहीं। हेडमास्टर महोदय ने प्रत्येक बार ध्रुवपद का अपना गायन लड़कों को सुनाना ही चाहिए। अन्य शिक्षकों की भाँति उनके पास परिश्रम व महत्व का ऐसा कोई काम नहीं है। विशेष परिश्रम करते हुए प्रति सप्ताह उन्हें उच्च कक्षा के छात्रों को ध्रुवपद सुनाना चाहिए। प्रति शनिवार को उन्हें महल में जाना पड़ता है, यह भी ज्ञात हुआ। यदि ऐसा है तो बैठक का दिन ही बदल दिया जाय। इन बैठकों को मैं बहुत महत्व देता हूँ।

जिनमें सीनियर शिक्षकों के पीछे जूनियर शिक्षक बैठकर गायन में मदद करें। बैठक में प्रमुख महत्व सीनियर शिक्षकों के गायन का है।

(३) राजाभैया व भास्करराव को नीचे की कक्षाओं में समय-समय पर जाकर वहाँ की ख्यालगायन शैली तथा तानें सुसंगत लेने का ढंग छात्रों को सिखाना चाहिए। जूनियर शिक्षकों को अभी इतना अनुभव नहीं है। ये लड़के चाहे जैसा गाकर उच्च कक्षा में आये तो फिर उन्हें सुधारना कठिन होगा। लड़कों के ख्यालगायनों में अभी बहुत सुधार की आवश्यकता प्रतीत होती है।

(४) श्री बलवन्त ने सभी कक्षाओं में ध्रुवपद बताने का काम अच्छा किया है। उनकी मेहनत से लड़कों को लय-ज्ञान अच्छा हुआ है। सीनियर लड़कों को काम अधिक रहता है। उन्हें तानों सहित ख्याल उत्तम गाना है। अतः समय कम रहता है, यह ध्यान में रखते हुए चतुर्थ व पंचम वर्ष ध्रुवपद का काम चुना हुआ सीमित ही सिखाया गया तो भी ठीक है। परीक्षा उत्तीर्ण होने पर इच्छानुसार ये विद्यार्थी आगे का काम तैयार कर सकते हैं।

(५) कक्षाओं में थियरी का शिक्षण सावधानी से कराना चाहिए। प्रत्येक छात्र से थियरी तैयार करायी जाय। मैं अब ऐसी भी योजना करने वाला हूँ कि, फिलहाल केवल उच्च तीन कक्षाओं में थियरी की परीक्षा लिखित रूप से हो। दो घण्टे का प्रश्न-पत्र देकर उनके उत्तर लिखित रूप से लड़के दें। अर्थात् वार्षिक परीक्षा अब लिखित व मौखिक दोनों रूप से कराने का समय आया है। इस योजना से लड़कों का ज्ञान पक्का होगा तथा इस विषय पर वे लिख भी सकेंगे।

(६) शिक्षक लम्बी छुट्टी पर अपनी इच्छानुसार चले जाते हैं जिससे कक्षा का बहुत नुकसान होता है। इसपर भी जब एक ही साथ दो शिक्षक अवकाश पर चले जाते हैं तब तो बहुत ही बाधा उत्पन्न होती है। योग्य कारणों के सिवाय शिक्षक अवकाश न लें। शाला के कार्य की ओर दुर्लक्ष्य न करें, ऐसा मेरा मत है। उपरोक्त बातों से इस छमाही में लड़कों का बड़ा नुकसान हुआ है।

वि. ना. भातखंडे
— परीक्षक

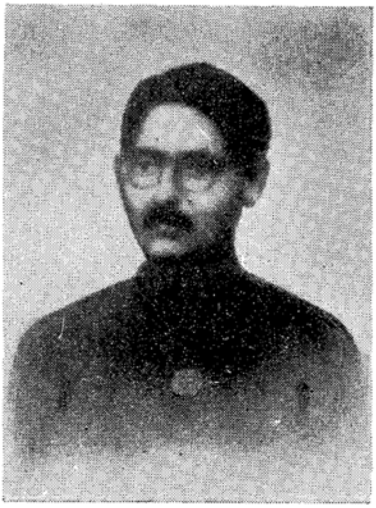
कर्मठ शिष्य-मित्र



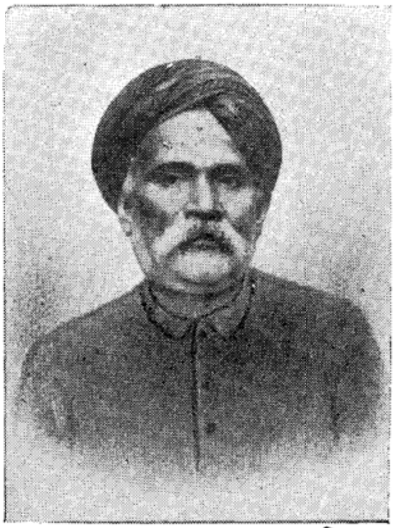
स्व० श्री भालचन्द्र सीताराम सुकथनकर



स्व० श्री शंकरराव कारनाड़



स्व० प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी



स्व० श्री नारायण गोविन्द रातांजनकर



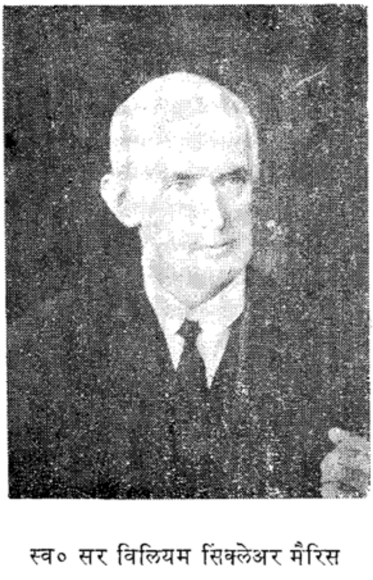
स्व० श्री ब्रिजकिशन कौल



राय उमानाथ बली



स्व० राय राजेश्वर बली



स्व० सर विलियम सिंक्लेअर मैरिस

नौतलाब गेस्ट हाउस,
दि० १९ नवम्बर १९२६,
लश्कर

सन् १९२६ के वार्षिक परीक्षा का विवरण

मेहरबान रावसाहब जी० व्ही० अंबर्डेकर,

सेक्रेटरी,

श्री माधव संगीत विद्यालय

आपके आज्ञापत्रानुसार मैं दिनांक १०-११-२६ बुधवार को यहाँ आ पहुँचा। तथा दिनांक ११ नवम्बर गुरुवार से श्री माधव संगीत विद्यालय की वार्षिक परीक्षा प्रारम्भ की। परीक्षा का काम कल सम्पूर्ण हुआ। परीक्षाफल संलग्न है। जिससे प्रत्येक कक्षा सम्बन्धी विस्तृत जानकारी ज्ञात होगी।

(२) सभी बातों को देखते हुए विद्यालय का कार्य अच्छा प्रतीत हुआ। विशेषतः तीसरी व चौथी कक्षा के लड़कों का काम अधिक संतोषजनक रहा।

(३) इस वर्ष फाइनल अर्थात् पाँचवें वर्ष की कक्षा में पाँच विद्यार्थी थे। परन्तु परीक्षा के पूर्व उन्होंने एक ऐसा लिखित पत्र दिया कि अनेक कारणों से उनकी गायकी का काम तैयार नहीं हो पाया तथा इस त्रुटि के कारण इस वर्ष वे परीक्षा में बैठना नहीं चाहते। उनके इस पत्र के कारण उनकी परीक्षा नहीं ली गई। उनको दी जाने वाली छात्र-वृत्ति इस वर्ष बन्द हो जायगी, ऐसा उन्हें समझा दिया है। इस वर्ष उपाधि का अन्यत्र बहुत आदर होने से उत्तम रीति से अभ्यास न किये हुए विद्यार्थी यदि परीक्षा में न भी बैठे तो कोई अनुचित नहीं, ऐसा मुझे प्रतीत होता है।

(४) मैं अब एक ऐसी सूचना करता हूँ कि, प्रतिवर्ष अक्टूबर माह में हेडमास्टर व राजाभैया फाइनल के विद्यार्थियों की जाँच करें तथा इससे जो विद्यार्थी अच्छी प्रकार से उत्तीर्ण होंगे, उन्हें ही नवम्बर की परीक्षा में बैठने की अनुमति दी जाय।

(५) भविष्य में और भी एक बात की ओर ध्यान देना आवश्यक होगा। अपने विद्यालय से फाइनल परीक्षा उत्तीर्ण हुए विद्यार्थी उचित व्यवसाय के अभाव में अपने गायन की मेहनत छोड़ देते हैं तथा गला बिगड़ने न देने की ओर ध्यान नहीं देते। अब भविष्य में भिन्न-भिन्न शहरों में संगीत की कक्षाएँ प्रारम्भ करने का समय आनेवाला है। अतः फाइनल उत्तीर्ण तथा मधुर और तैयार गले के विद्यार्थी इस काम के लिये उपलब्ध होते रहना इष्ट होगा। यही अपना साध्य होने के कारण एक ऐसा नियम करना हितकर

होगा कि, फाइनल परीक्षा उत्तीर्ण हो जाने पर वह विद्यार्थी और एक वर्ष अथवा छः माह तक श्री राजाभैया की निगरानी में अच्छी मेहनत करते हुए उनका प्रशस्ति-पत्र प्राप्त कर ले। ऐसा प्रशस्ति-पत्र प्राप्त करने पर ही उन्हें उनका डिप्लोमा दिया जाय। जो विद्यार्थी बाहर से आये हुए होंगे तथा जिन्हें सालभर यहाँ रहना सम्भव न होगा, उनके लिए यह नियम लगाने की आवश्यकता नहीं। परन्तु अपने राज्य में नियुक्ति करते समय इस प्रकार प्रशस्ति पत्र प्राप्त किए हुए विद्यार्थियों को प्राथमिकता दी जाने में कोई बाधा प्रतीत नहीं होती। विलायत में बैरिस्टर की परीक्षा पास करने पर एक वर्ष तक किसी अच्छे प्रसिद्ध बैरिस्टर की देखरेख में काम किये बिना फाइनल सर्टिफिकेट न देने का नया नियम अब हुआ है। ऐसे नियमों से विद्यालय का तथा शिक्षा-विभाग का हित ही होगा, ऐसी मेरी धारणा है। विद्यार्थियों की परीक्षा पुनः लेने की आवश्यकता नहीं। वे योग्य मेहनत किए हुए हैं, ऐसा प्रशस्ति-पत्र केवल प्राप्त कर ले। यह सूचना जब भी उचित हो कार्यान्वित की जाय।

प्रिपरेटरी प्रथम विभाग : इस कक्षा में नवीन प्रविष्ट विद्यार्थी स्वरों को लगाने के उद्देश्य से रखे जाते हैं। वार्षिक परीक्षा के लिए इस कक्षा में छब्बीस लड़के थे। जिनमें से कुछ परीक्षा में नहीं बैठे तथा कुछ कच्चे हैं। केवल ग्यारह लड़के प्रथम वर्ष की कक्षा में चढ़ाये जाकर जनवरी के प्रारम्भ में उनकी पुनः जाँच की जाय। जो लड़के स्वर में हों उन्हें ऊपर चढ़ाया जाय। लगभग पाँच लड़के ऊपर चढ़ाने से पहले वर्ष के दोनों विभागों में लड़कों की संख्या समान हो जायगी। "ए" विभाग में सभी अच्छे लड़के व "बी" में कमजोर, ऐसा हो जाने पर हेडमास्टर की कक्षा से कुछ अच्छे लड़के "बी" विभाग में रख दिए जायँ तथा उनके स्थान पर प्रिपरेटरी से आये हुए लड़के रखे जायँ। दोनों कक्षाओं में पहले वर्ष का पाठ्यक्रम पूरा करना है। अतः ऐसा करने में कोई बाधा नहीं। प्रिपरेटरी की कक्षा में लड़कों को बारह-बारह माह तक डाले नहीं रखना चाहिए। लड़के स्वर में आ जाने पर उन्हें ऊपर की दोनों कक्षाओं में बाँट दिया जाय। बाँट देने की यह व्यवस्था जनवरी के अन्त तक की जाय। इन नये लड़कों के कारण कोर्स के विद्यार्थियों का नुकसान न हो, इस ओर मात्र ध्यान दिया जाय। इस समय पहले वर्ष के "बी" विभाग पर जो शिक्षक काम करते हैं वे अस्थायी होने से श्री खण्डेराव के लौट आने तक "बी" विभाग का काम करते रहेंगे। श्री खण्डेराव ऊपर किले में चले जाने पर उनकी यह कक्षा श्री तात्या को सौंप दी जाय। आगे चलकर तात्या को उज्जयिनी में संगीत कक्षा प्रारम्भ करने के लिए यदि भेजा गया तो श्री बलवन्तराव को पहले वर्ष का "बी" विभाग दिया जाय। बलवन्तराव सभी कक्षाओं में सप्ताह में एकबार जाकर ध्रुवपदों की विशेष तालीम दें। ध्रुवपद का प्रारम्भिक एवं सरल काम कक्षाध्यापक स्वयं करें। जिन कक्षाओं पर ध्रुवपद के लिए वे जावेंगे, उन कक्षाओं के शिक्षकों ने बलवन्तराव की कक्षा का काम चलाना चाहिए। बलवन्तराव अनुभवी शिक्षक होने से ऐसी योजना सुझाई है।

इस बार पहले वर्ष की कक्षा में गायकी कच्ची रही। अतः ऐसी सूचना करता हूँ कि, एक वर्ष के लिए श्री बालाजी पाठक जैसे होनहार विद्यार्थी को, जो गत वर्ष उत्तीर्ण हुआ है, प्रतिमाह दस रुपये की विशेष छात्रवृत्ति देकर उसे इस कक्षा की गायकी तैयार

करने के लिए कक्षाध्यापक को सहायता प्रदान करने का काम सौंप दिया जाय। यदि ऐसी छात्रवृत्ति की उसे आवश्यकता न हो तो प्रतिदिन डेढ़ घण्टे अन्य आवश्यक काम दिया जाय। ऐसे विद्यार्थियों से यह भी निश्चित कर लिया जाय कि वे राजाभैया के सामने प्रतिदिन प्रातः दो घण्टे गायन की मेहनत करें, वर्षान्त बाद उनका प्रशस्ति-पत्र प्राप्त करें तथा विद्यालय में प्रतिदिन घण्टे डेढ़ घण्टे काम भी करें। ऐसा होने से विद्यार्थी का तथा विद्यालय का हित होगा।

प्रिपरेटरी द्वितीय विभाग : इस कक्षा की स्थिति प्रिपरेटरी प्रथम विभाग से कुछ आगे की है, ऐसा नहीं समझना चाहिए। इस कक्षा में पहली क्रमिक पुस्तक सम्पूर्ण सिखाना है। कक्षा के लड़के वर्षान्त के बाद दूसरे साल की कक्षा में जायेंगे, यह सदा ध्यान में रखना है। इस बार इस कक्षा का काम बहुत पिछड़ गया है। कक्षा में अप्रैल से नियमित शिक्षक के अभाव में जो एक नये शिक्षक काम करते थे वे कक्षा को ठीक तरह तैयार नहीं कर पाये। अतः बाद में उनके स्थान पर श्री रामजी ने परिश्रम करके लड़कों से कुछ काम तैयार करवा लिया। ये नवनियुक्त शिक्षक सेन्ट्रल स्कूल में कोई भी कक्षा ठीक तरह सँभाल पायेंगे, ऐसा प्रतीत नहीं होता। इस सम्बन्ध में मैं ऐसी सूचना करता हूँ कि, उन नये शिक्षक को अपने पूर्व स्थान पर भेज दिया जाय तथा श्री तात्या मास्टर को पहले वर्ष की कक्षा सौंप दी जाय। आज जो लड़के इस कक्षा में हैं उन्होंने बारह माह पूर्ण नहीं किए हैं, ऐसा ज्ञात हुआ। वे अब हेडमास्टर के पास जायेंगे और इस कक्षा में प्रिपरेटरी कक्षा से उत्तीर्ण हुए लड़के आ जावेंगे।

प्रथम वर्ष : इस कक्षा से कुल इक्कीस विद्यार्थी परीक्षा में बैठे थे। जिनमें चार अत्यंत कमजोर हैं। अतः उन्हें ऊपर की कक्षा में न भेजा जाय। अर्थात् सत्रह लड़के इस कक्षा से ऊपर जावेंगे। इनमें से कुछ लड़के होनहार भी हैं। लड़कों का स्वरज्ञान अच्छा प्रतीत हुआ। जिसका श्रेय श्री हेडमास्टर महोदय को है। कक्षा में पहिले साल की गायकी जैसी होनी चाहिये, वैसी तैयार नहीं थी। परन्तु आगामी कक्षा में पुनः ये ही दस राग तैयार कराने हैं। गायकी के लिये भी वहाँ समय मिलेगा, ऐसा समझकर उन्हें ऊपर की कक्षा में भेजने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। तथापि इन लड़कों की कमजोरी से ऊपर की कक्षा के शिक्षक का कार्य किंचित् बढ़ जायगा, इसमें संदेह नहीं। प्रथम वर्ष की गायकी की उत्तम तानें श्री राजाभैया के पास तैयार हैं। जिन लड़कों की तानें तैयार न होंगी, उन्हें ऊपर की कक्षा में चढ़ाया नहीं जायगा, ऐसी ताक़ीद पहले से ही देनी चाहिये। कक्षा का काम ठीक प्रतीत हुआ। गायकी का प्रारंभ अब इस कक्षा से किया जाता है। अतः शिक्षक इस ओर दुर्लक्ष्य न करें।

प्रथम वर्ष (ब) : परीक्षा में बीस लड़के थे। जिनमें से प्रायः सभी स्वर में आ चुके हैं। कुछ लड़कों का स्वरज्ञान भी अच्छा हुआ है। कक्षा में चार लड़के एक दम कच्चे हैं। उन्हें ऊपर चढ़ाने में कोई अर्थ नहीं। शेष सोलह लड़के (अ) विभाग में भेजने हैं। इस क्लास के संबंध में शिक्षकों की कुछ भ्रान्त धारणा हो रही है, ऐसा मुझे प्रतीत होता है।

द्वितीय वर्ष : इस कक्षा से परीक्षा में कुल नौ विद्यार्थी सम्मिलित हुये, जिनमें केवल सात ऊपर की कक्षा में भेजने लायक प्रतीत हुए। इनके अतिरिक्त इस कक्षा में और भी

पाँच-छः लड़के हैं। परन्तु उनकी तैयारी न होने से उन्हें परीक्षा में सम्मिलित नहीं किया गया, ऐसा मालूम हुआ। लड़कों ने कोर्स के गीत तैयार किये हैं, परन्तु उनकी गायकी समाधानकारक प्रतीत नहीं हुई। दो साल की दृष्टि से लड़कों के गले तैयार नहीं पाये। यह त्रुटि शिक्षक के ध्यान में लाई गई है। भविष्य में वे अधिक ध्यान देंगे, ऐसी मुझे आशा है। कुछ लड़के ताल भी ठीक सँभाल नहीं पाते हैं। समय-समय पर तबले के साथ उन्हें गवाकर तबले के बोलों का परिचय भी करा देना हितकर होगा। यह दोष कुछ प्रमाण में वरिष्ठ कक्षाओं में भी मैंने पाया। लड़के केवल अपने हाथ के ताल को ही ध्यान में रखते हुए गाते हैं, यह अच्छा नहीं। तबले के बोल पहिचान कर उसके अनुसार गायन करने का अभ्यास नीचे की कक्षा से ही कराना इष्ट होगा। थियरी की ओर भी कक्षा में अच्छा ध्यान नहीं दिया गया।

तृतीय वर्ष : इस कक्षा में केवल पाँच ही विद्यार्थी हैं। वे सभी परीक्षा में बैठे थे। इनमें से चार उत्तीर्ण हुए। उन्हें अब ऊपर की कक्षा में चढ़ाया जाय। एक विद्यार्थी का अभ्यास अभी तक अच्छा नहीं हुआ है। कक्षा में कम लड़के होने का कारण ऐसा बताया गया कि चार-पाँच लड़के अन्य स्थानों के थे, जो वापस नहीं आये। कक्षा का काम अच्छा हुआ है।

चतुर्थ वर्ष : इस कक्षा से कुल दस विद्यार्थी परीक्षा में बैठे थे। जिनमें से आठ अच्छे पास हुए। अब उन्हें पाँचवें वर्ष में अर्थात् श्री राजाभैया की कक्षा में चढ़ाया जाय। कक्षा का काम बहुत अच्छा हुआ है।

नये बजट में एक हारमोनियम शिक्षक, एक सितार शिक्षक व एक तबला शिक्षक ऐसे स्थान स्वीकृत हुए हैं, ऐसा मुझे ज्ञात हुआ। मेरी ऐसी नम्र सूचना है कि विद्यालय में फिलहाल हारमोनियम चालू न किया जाय। पेटी की कक्षा आरंभ करने से अच्छे पेटी-वादक तो निकलेंगे ही नहीं, परंतु गायन की कक्षाओं में बाधा उत्पन्न होगी। विद्यार्थियों को हारमोनियम सुलभ प्रतीत होकर वे गायन की ओर दुर्लक्ष्य करेंगे। योग्य स्वरज्ञान के अभाव में उन्हें हारमोनियम भी अच्छा नहीं आयेगा।

सितार शिक्षक रखने की जल्दबाजी आज ही करने की आवश्यकता मुझे प्रतीत नहीं होती। आगे चलकर हिन्दुस्तान में प्रसिद्धि पाया हुआ तंतकार यदि कोई मिला तो दो साल के लिये अपने विद्यालय में रखकर उत्तम स्वरज्ञान प्राप्त किये हुए विद्यार्थियों के लिये एक कक्षा आरंभ की जा सकती है। मुझे लगता है, शागिर्द पेशे में मरहूम बाबू खाँ के पुत्र नौकर हैं। आवश्यकता प्रतीत होने पर कुछ भत्ता देकर उसे सितार शिक्षण का काम दिया जा सकता है। निम्न कोटि का तंतकार रखने की अपेक्षा बिलकुल ही न रखना अच्छा, ऐसा मेरा अनुभव है। अपने वहाँ और भी सितारिये नौकर हैं। उन्हें लिखित आदेश होने पर वे भी सितार सिखा सकेगें। उनकी कला का प्रदर्शन विद्यार्थियों के सामने बीच-बीच में होना चाहिये, ऐसी सूचना प्रत्येक रिपोर्ट में मैं करता आया हूँ। उसपर भी इस बार विचार हो, ऐसी प्रार्थना है।

मुझे अब ऐसा भी मालूम हुआ है कि, शागिर्द पेशा खाते में अन्य दो कुशल गायकों की नियुक्ति हुई है। मेरे पिछले रिपोर्टों में मैं सूचना करता आया हूँ कि, माधव संगीत

विद्यालय के उच्च तीन कक्षाओं के विद्यार्थियों को विभिन्न रंग-ढंग का गायन सुनने की संधि मलने पर उनका बहुत हित होगा । जब सुदैव से ऐसा योग आया है तो मेरी प्रार्थना है कि, उपरोक्त दोनों गवैयों को सप्ताह में दो बार माधव संगीत विद्यालय में जाकर गाने का लिखित आदेश दिया जाय । जिससे लड़कों की गायकी तुरंत सुधर जायगी, ऐसा मुझे विश्वा है । इतना ही नहीं, इन दोनों गवैयों ने अपने साथ एक अथवा दो सीनियर लड़कों को लेकर बैठना चाहिये । यह विद्यालय सरकारी है तथा गवैये भी सरकारी नौकर हैं । अतः मेरी सूचना सहज अमल में लाने योग्य प्रतीत होती है । अभी तक शागिर्द पेशे में गवैये नहीं थे । जिससे यह प्रार्थना मान्य होने में विलंब हुआ । कै० श्रीमन्त महाराज ने यह प्रार्थना मान्य किया हुआ मेरे स्मरण में है । शाला में जाकर कम से कम घंटे भर लड़कों को सुनाना, यह उनकी इच्छा पर छोड़ना नहीं चाहिये । उन्हें लिखित आदेश विभाग की ओर से दिया जाने पर सब ठीक होगा । मेरी ऐसी भी सूचना है कि प्रति वर्ष दस रुपये की एक स्कालरशिप फाइनल में जो प्रथम आयेगा उस विद्यार्थी को दी जाय। स्कालरशिप एक वर्ष के लिये ही हो । कालेजों में फैलोशिप होती है । उसी प्रकार की यह भी होगी । ऐसा विद्यार्थी न मिलने पर उसके नीचे का चुना जाय । अपने अभ्यास में प्रगति करते हुए शाला में जो भी काम दिया जायगा वह उसे करे, ऐसा उससे आश्वासन लिया जाय ।

और भी एक सूचना ऐसी करना चाहता हूँ कि, अब सरकारी नौकरी में···तथा··· हैं । उनकी भिन्न-भिन्न कलाएँ अपने विद्यालय के विद्यार्थियों को प्राप्त हों, इसलिये इन दोनों कलावन्तों के पास अपनी शाला के दो-दो होनहार विद्यार्थी, जिन्हें वे पसन्द करेंगे; भेज दिये जायँ । इन विद्यार्थियों ने ख्यालगायन में निपुणता संपादन करना चाहिये । अन्य शब्दों में ऐसा कहा जाय कि ये विद्यार्थी प्रारंभिक गायकी अथवा कला संपादन करके उसमें ही विशेषता प्राप्त करें । जो आगे चलकर संगीत व्यवसाय करना पसंद करेंगे, ऐसे ही विद्यार्थी अधिक उपयुक्त होंगे । इसी प्रकार दो विद्यार्थी······के पास उनकी कला प्राप्त करने के लिये दिये जायँ । इन विद्यार्थियों को कहाँ व कब भेजना, इसका निर्णय अधिकारी करें ।

तवायफ स्कूल : इस शाला की परीक्षा में पाँच लड़कियाँ बैठी थीं । इनमें दो लड़कियाँ ठीक हैं । ये लड़कियाँ शाला में चार-पाँच वर्ष से पढ़ रही हैं। अतः उनको स्वर-ज्ञान अब हो गया है । छः-सात रागों के ख्याल गायकी सहित हो जाना कोई आश्चर्यजनक नहीं है । इतना काम सेंट्रल स्कूल के लड़के दो साल में तैयार कर लेते हैं । इन लड़कियों की गायकी व ख्याल गाने के ढंग में भी बहुत-सा सुधार होना है । शाला पर होने वाले व्यय को देखते हुए किया हुआ कार्य बहुत ही अल्प प्रतीत होता है । वहाँ पर नियत अध्यापक की सहायता के लिये एक···गवैया भी है । उसका काम लड़कियों के गायन में कुछ भी व्यक्त नहीं हुआ । ऐसा मुझे कहा गया कि वे ईदूखाँ के घराने के हैं । कक्षा सिखाने की कला उन्हें शायद अभी तक मालूम नहीं है । मेरी सूचना है कि गायक महोदय को दो-तीन महीने सेंट्रल स्कूल में हेडमास्टर की निगरानी में क्लास सिखाने की कला साध्य करने के लिये भेजा जाय तथा उनके स्थान पर कुछ दिनों के लिये······को भेजा जाय । ······भी उसी विभाग में नौकर हैं । अतः यह तबादला किया जा सकता है । ······दो-तीन वर्षों से

प्रिपरेटरी वर्ग सिखाते हैं । अतः तवायफ स्कूल की छोटी लड़कियों को स्वर में लाने का काम वह तुरंत करेंगे ।···सेन्ट्रल स्कूल में काम सीखेंगे तथा विद्यार्थियों को गायकी कैसी सिखाई जाती है, इस पर ध्यान देंगे । उसी प्रकार शिक्षकों की शनिवार की बैठक में गाने की उन्हें आदत भी पड़ेगी । और भी एक सूचना है कि······और······इन दो लड़कियों को सेन्ट्रल स्कूल के सीनियर लड़के ख्याल व गायकी कैसे गाते हैं, यह देखने के लिये माह में एक-दो बार सेन्ट्रल स्कूल में भेजा जाय ।

कक्षा में शिक्षक गायकी कैसे सिखाते हैं व लड़के कैसे गाते हैं, यह सारा इन लड़कियों के समझ में आयगा । ऐसे समय पर नियत शिक्षक की उपस्थिति इष्ट होगी । समय व स्थल हेडमास्टर निश्चित करें । तवायफ स्कूल के मास्टर शिक्षकों की बैठक में गाते नहीं, इसलिये ख्याल तथा उसकी गायकी वे योग्य रीति से पढ़ा नहीं पाते हैं । ऐसा आक्षेप आज पाँच वर्षों से मैं सुन रहा हूँ । और उसमें तथ्य भी है । मेरी उपर्युक्त सूचना-पालन से इन आक्षेपों को स्थान न रहेगा । ··········को ख्याल व उसकी गायकी प्रत्यक्ष सुनकर एवम् शिक्षकों में बैठकर गाये बिना सिखाना नहीं आयेगा, वह स्पष्ट ही है । अतः ऐसा करने के लिये उन्हें आदेश होना हितकर है । लड़कियों को यदि ख्याल-ध्रुवपद का गाना सिखाना है तो वह काम योग्य अधिकारी के द्वारा योग्य प्रकार से ही होना चाहिये । सारांश इस तवायफ स्कूल में अच्छा सुधार करने का अब समय आया है । यदि ऐसा न हुआ तो परिणाम कुछ भी न होकर सभी व्यर्थ होगा, ऐसी मुझे शंका है । यदि ख्याल-ध्रुवपद का गायन इन्हें न सिखाकर इनका खास गायन अर्थात् ठुमरी, दादरा इत्यादि सिखाने का निश्चित हुआ तो स्कूल में भेजने की आवश्यकता न रहेगी । प्रारंभ में दो वर्ष स्वरज्ञान इत्यादि करा देना पर्याप्त है ।

V. N. Bhatkhande
Examiner

नीतलाब, लश्कर
दिनांक ६ नवंबर १९२७

मेहरबान रावसाहब जी० व्ही० अंबर्डेकर बी० ए०,
सेक्रेटरी,
माधव संगीत विद्यालय,
लश्कर

की सेवा में,

आपके पत्र के आदेशानुसार संगीत विद्यालय की इस साल की वार्षिक परीक्षा लेने हेतु दि० २८ अक्टूबर, शुक्रवार को मैं यहाँ आकर उपस्थित हुआ। दूसरे दिन अर्थात् शनिवार दि० २९ को परीक्षा कार्य आरंभ किया, जो प्रायः सप्ताह भर चलता रहा। कक्षाओं में छात्रसंख्या अधिक होने से प्रातः व सायं दोनों समय पर परीक्षा कार्य चालू रहा। कुल मिलाकर एक सौ लड़के विभिन्न कक्षाओं से परीक्षा में बैठे थे। इस बार फाइनल अर्थात् पंचम वर्ष में ग्यारह लड़के परीक्षा में बैठे। जिनमें छः उत्तीर्ण हुए। उनके नाम रिपोर्ट में लिखे हैं। इस वर्ष उन्हें प्रमाण पत्र दिये जायँ, ऐसी मेरी सिफारिश है। शेष लड़कों के अभ्यासक्रम के राग व उनकी गायकी जैसी चाहिए, वैसी तैयार नहीं थी। अतः उन पर बाद में विचार किया जाय।

(अग्रिम अंश पूर्णतः खण्डित है)

इस वर्ष प्रिपरेटरी के तीन विभाग हैं। इनमें लड़कों को स्वरज्ञान नहीं हुआ है। इन कक्षाओं में दो-दो वर्षों के कुछ लड़के हैं, ऐसा ज्ञात हुआ। अर्थात् इन तीनों विभागों में स्वरज्ञान की ओर शिक्षकों ने योग्य ध्यान नहीं दिया। प्रथम दो विभागों में लगभग तीस लड़कों में से पाँच भी शीघ्रता से स्वर नहीं पहचान सके, यह देखकर आश्चर्य लगता है। तथापि प्रथम वर्ष की कक्षा में पुनः ये ही राग सिखाए जाते हैं, अतः कुछ लड़कों को ऊपर की कक्षा में भेजने की सूचना रिपोर्ट में की है। इसी प्रकार स्वरोच्चार व स्वरस्थान की ओर भी दुर्लक्ष्य हुआ है। इस ओर हेडमास्टर का ध्यान जा सकता था। कक्षा के प्रत्येक लड़के की ओर ध्यान न दिया जाने से उनका स्वरज्ञान हो नहीं पाया।

(अग्रिम ८ पंक्तियाँ खण्डित हैं)

इस विषय में ऐसा कहा गया है कि कक्षा के शिक्षकों के तबादले होते रहे। फलतः यह वर्ग एक ही शिक्षक के पास पूरे वर्ष भर नहीं था। यदि ऐसा हुआ हो, तो कक्षा की संपूर्ण जिम्मेदारी उन पर न रहेगी। तथापि कक्षा के लड़के कच्चे रहकर उन्हें ऊपर चढ़ा देने से ऊपर की कक्षा के शिक्षक का काम बढ़ जायगा, इसमें शंका नहीं। अब नीचे से

ऊपर आने वाले लड़के नये हैं तथा प्रारम्भ से ही उस शिक्षक के पास रहेंगे। इनके शिक्षण का सारा भार उन्हीं पर होगा। इस संबंध में ऐसी सूचना है कि आगामी जनवरी माह के अन्तिम सप्ताह में प्रिपरेटरी व प्रथम वर्ष इन दो वर्गों की परीक्षा हेडमास्टर व राजाभैया ने अच्छी तरह लेनी चाहिये। जिसकी रिपोर्ट वरिष्ठों को सादर किया जाय। यदि प्रथम वर्ष का काम कम हुआ हो, तो इस शिक्षक को किले की कक्षा दी जाय तथा श्री तात्या को इनके स्थान पर रखा जाय।

(अग्रिम भाग खण्डित है)

तीसरी, चौथी व पाँचवीं कक्षाओं का अर्थात् श्री सदाशिव, श्री नारायण व श्री राजाभैया की कक्षाओं का काम एकदम संतोषकारक रहा। इस संबंध में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं।

अब आगामी वर्ष के लिए प्रिपरेटरी व फर्स्ट ईयर कक्षाओं की व्यवस्था कैसी की जाय, इस विषय में एक-दो सूचनाएँ करना चाहता हूँ।

(१) प्रिपरेटरी कक्षा में एक-एक दो-दो वर्षों तक लड़कों को डाल रखना किसी भी दृष्टि से योग्य नहीं होगा। इस कक्षा में नवीन प्रवेश के लड़के आने पर उन्हें स्वर में लाया जाय। अल्प स्वरज्ञान दो-तीन माह में करवाकर उन्हें प्रथम वर्ष का अभ्यासक्रम सिखाना चाहिए। यह बात पिछले वर्षों की रिपोर्टों में मैंने लिखी थी। ऐसा कहना ही पड़ता है कि, चालू वर्ष में इस कक्षा का काम बिल्कुल ठीक नहीं हुआ। अतः ऐसी सूचना है कि, इस कक्षा के शिक्षक को इस वर्ष जनकगंज शाला में भेजा जाय। तथा वहाँ काम करने वाले शिक्षक को इधर बुलाकर उन्हें इस कक्षा का काम सौंपा जाय।

(अग्रिम भाग खण्डित है)

लय व स्वर न पहिचानने वाले चौदह लड़के इस बार प्रिपरेटरी में हैं। उसी में अब नयी भर्ती के भी जायेंगे। इनमें कुछ अच्छे कंठ के होना संभव है। यदि ऐसा हुआ तो वहाँ भी दो विभाग करने पड़ेंगे।

(अग्रिम भाग खण्डित है)

इन दो विभागों में से पहिला विभाग श्री रामजी मास्टर को दिया जाय व दूसरा छात्रवृत्ति प्राप्त श्री राजूरकर को। वे प्रतिदिन एक घण्टा शाला में आकर सिखायें। श्री राजूरकर को स्कालरशिप देते समय उनसे यह निश्चित किया हुआ है, ऐसा मुझे ज्ञात हुआ। दूसरे विभाग में भर्ती होनेवाले लड़के आयु से छोटे हैं तथा अब सर्दी का मौसम होने से उन्हें एक घण्टा शिक्षण प्रतिदिन मिला तो पर्याप्त है। पहिले विभाग में लड़कों को अल्प स्वल्प स्वरज्ञान हुआ ही है तथा वे शीघ्र ही प्रथम वर्ष की कक्षा में उन्नत होंगे। वे उच्च कक्षा में चले जाने पर नवीन प्रवेश के लड़के श्री रामजी व राजूरकर इन परीक्षोत्तीर्ण शिक्षकों के पास रहेंगे।

आगामी जनवरी में प्रिपरेटरी कक्षा की परीक्षा लेकर हेडमास्टर महोदय निश्चित करें कि कौन-से व कितने लड़कों को ऊपर चढ़ाना है। आगामी प्रथम वर्ष के श्री विष्णुपंत की कक्षा में प्रिपरेटरी के दोनों विभागों से उत्तीर्ण ग्यारह लड़के व उनकी कक्षा में जो अनुत्तीर्ण हुए हैं ऐसे कुल मिलाकर अट्ठाईस लड़के होंगे। यह कक्षा काफी बड़ी होगी। अतः

इसके दो भाग किये जायँ। जिसमें से एक श्री रामजी को व दूसरा श्री राजूरकर को सौंप दिया जाय।

(अग्रिम भाग खण्डित है)

जनवरी माह में रामजी मास्टर की ओर से अच्छे स्वरज्ञान के दस-बारह लड़के उत्तीर्ण हुए तो पहिले वर्ष के दोनों विभाग अधिक से अधिक बीस-बीस के होंगे। ऐसा होने पर कोई आपत्ति नहीं।

एक सूचना और ऐसी करना चाहता हूँ कि, चतुर्थ वर्ष के स्थायी शिक्षक श्री भास्करराव को उनकी इस कक्षा के लिए उज्जयिनी से पुनः बुलाया जाय। वे अच्छे अनुभवी व दक्ष शिक्षक होने से तीन माह के लिए की हुई उनकी वहाँ की नियुक्ति समाप्त हो गई है। अतः उन्हें यहाँ बुलाना सेन्ट्रल स्कूल के हित में होगा, ऐसा मुझे लगता है। उज्जैन के उनके स्थान पर श्री.........अथवा इसी वर्ष उत्तीर्ण हुए श्री.........अथवा अन्य कोई जो वहाँ जाने के लिए तैयार है उसे भेजा जाय। परन्तु अपने विद्यालय में शिक्षा पाकर तैयार हुआ कोई उम्मीदवार न मिलने पर यदि बाहर का ही नियुक्त करना हो तो उसको अपने विद्यालय की पद्धति श्री राजाभैया से सीखनी चाहिए। ऐसा यदि हुआ तो ही उसे उज्जैन भेजा जाय। इस व्यक्ति को अनुभव कम होगा, इसलिए फिलहाल एक वर्ष के लिए रखा जाय। उस कक्षा का कार्य आगामी वार्षिक परीक्षा में ज्ञात हो जायगा। काम यदि अपने सेन्ट्रल स्कूल की पद्धति के अनुसार अच्छा रहा तो यह नियुक्ति स्थायी की जाय। उज्जैन से भास्करराव अपने नियमित स्थान पर उपस्थित होने पर तीसरे वर्ष की कक्षा श्री गुणे के पास आयगी। तथा दूसरे वर्ष की कक्षा श्री सदाशिव अग्निहोत्री के पास पुनः आयेगी। तब सभी कक्षाओं की व्यवस्था उत्तम हो जावेगी। इस योजना में उज्जैन के वे शिक्षक पुनः रिक्त स्थान हो जावेंगे। परन्तु उनकी नियुक्ति अस्थायी होने से ऐसा होना स्वाभाविक ही है। चूंकि उन्होंने सेन्ट्रल स्कूल में काम किया है तथा वह राजी हो तो उज्जैन को जाने की प्रथम संधि दी जाय तो ठीक होगा। मेरा मत ऐसा है कि, भविष्य में अपने सेन्ट्रल स्कूल की ओर मुख्यतः ध्यान देना इष्ट होगा। यहाँ सभी शिक्षक अच्छे कैसे हुए, चतुर ही रखना हितकर होगा। अपना सेन्ट्रल स्कूल अब प्रगति पथपर है। धीरे-धीरे वह एक आदर्श विद्यालय बन रहा है। इसी दृष्टि से यह सूचना की है।

चौथी सूचना है कि, श्री राजाभैया, भास्करराव व गुणे इनका कार्य प्रतिवर्ष अच्छा प्रतीत होने के कारण स्वीकृत हुई पदोन्नति उन्हें इस वर्ष से मेहरबान सरकार यदि प्रदान करें तो आनन्द की बात होगी। मेरे मत से ये शिक्षक उस पदोन्नति के पात्र हुए हैं। इसी प्रकार हेडमास्टर के लिए स्वीकृत तरक्की दी जाना अच्छा ही है, ऐसी मेरी नम्र सूचना है। उसपर विचार करना शिक्षा विभाग पर निर्भर है।

तवायफ स्कूल में परीक्षा के लिए मैं गया था। कम उम्र की सात-आठ लड़कियाँ प्राथमिक शिक्षण की तथा एक पहिले की थी। स्कूल की तालीम में कोई खास बात प्रतीत नहीं हुई। यहाँ पर होने वाले व्यय के अनुमान में आज तक कुछ भी कार्य नहीं दिखाई दिया, ऐसा मैं प्रतिवर्ष कहता आया हूँ तथा इस वर्ष भी मेरा यही मत है। प्रशिक्षित एवं अनुभवी शिक्षकों के बिना वहाँ पर यश मिलने की सम्भावना बहुत कम है।

अभी-अभी प्रारम्भ की हुई तबला-पखावज-हारमोनियम की कक्षायें मैंने देखीं। उनका काम ठीक चल रहा है। इन कक्षाओं के विद्यार्थियों को अन्य व्यवसायों के कारण समय थोड़ा ही मिलता है। फिर भी उनका शिक्षण अभी तो ठीक ही चल रहा है। सभी प्राथमिक शिक्षण लिखित रूप से हो, ऐसा अपने विद्यालय का एक उत्तम नियम है। अतः इन वाद्यों के कक्षाध्यापकों ने अपनी-अपनी पुस्तकें लिखने का कार्य प्रारम्भ किया है जो ठीक ही है। और एक वर्ष के बाद पुस्तकें तैयार होकर सभी काम सुव्यवस्थित होगा, ऐसा शिक्षकों का कहना है। वह किस प्रकार होता है देखा जाय।

इस वार्षिक-परीक्षा का फल मय रिपोर्ट के साथ सादर प्रस्तुत है।

आपका

दिनांक ७-११-१९२७

वि. ना. भातखंडे

परीक्षक

नौ-तलाब गेस्ट हाउस,
लश्कर, दि० १६-११-२८

मेहरबान, रावसाहब जी० व्ही० अंबर्डेकर,
डे० इन्स्पेक्टर जनरल आफ एज्युकेशन,
ग्वालियर

की सेवा में,

आपके आज्ञापत्र दिनांक १५ अक्टूबर १९२८ के अनुसार माधव संगीत विद्यालय की वार्षिक परीक्षा लेने हेतु शनिवार दिनांक १० नवम्बर १९२८ को मैं लश्कर आ पहुँचा। विद्यालय की परीक्षा का कार्य सोमवार दिनांक १२ से प्रारंभ किया, और कल रविवार दिनांक १८ को वह समाप्त हुआ। परीक्षाफल इसके साथ प्रस्तुत कर रहा हूँ। इस वर्ष सब कक्षाओं का कार्य मुझे संतोषजनक प्रतीत हुआ। प्रथम वर्ष से छात्रों को छोटी-छोटी तानें सिखाने का उपक्रम अच्छा सधा हुआ है, ऐसा उनके कक्षा कार्य से दिखाई दिया। सारांश यह उपक्रम अच्छा सिद्ध होगा, यह स्पष्ट है।

(आगे की दस पंक्तियाँ खण्डित हैं)

क्रमिक पहली पुस्तक में से स्वरवाचन के कुछ पाठ नहीं पढ़ाये गये, यह मैंने शिक्षकों से पहिले ही बताया था। इन पाठों को तैयार करने से इस पुस्तक में दिये हुये रागों के अंग व स्वरस्थान अच्छे हो सकते हैं। परीक्षा में प्रथम वर्ष के छात्रों से ये पाठ मैंने पढ़वाये, किन्तु कुछ लड़कों से वे रटवाये नहीं गये अर्थात् उनका अभ्यास नहीं करवाया गया; ऐसा देखने में आया। ये पाठ बड़ी सोच समझ कर तथा जान बूझ कर पहिली पुस्तक में समाविष्ट किये हैं। उनका अस्खलित पठन होना चाहिए। और तो क्या, वे इस प्रकार तैयार हुए बिना लड़कों को तानें सिखाना व्यर्थ है, ऐसा मैं कहूँगा। वैसे ही कालसाधन यानी नोटेशन का पाठ भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वह अच्छी प्रकार सधे बिना शिक्षकों को चीजें नहीं सिखानी चाहिए, ऐसा मुझे लगता है। प्रथम वर्ष में बहुत से छात्रों को उन पाठों के पढ़ने में कठिनाई प्रतीत हुई। इस पाठ के अन्तर्गत समस्त भाग शिक्षक ने उत्तम रीति से तथा शीघ्रता से पढ़कर सुनाना चाहिए तथा विद्यार्थियों से पढ़वाना चाहिए। कुछ लड़के होनहार तथा अच्छी आवाज वाले होते हैं, किन्तु अधिक गैरहाजिर रहने से उनकी तैयारी अधकच्ची रहती है। इस प्रकार की शिकायतें शिक्षकों की ओर से बारबार मेरे पास आती हैं। इस सम्बन्ध में मेरी यह सूचना है कि जो लड़के हमेशा गैरहाजिर रहते हैं या जिनकी उपस्थिति कम से कम कुल उपस्थिति की आधी नहीं होती, उनको वार्षिक परीक्षा में सम्मिलित न किया जाने का नियम बनाया जावे।

(आगे की ६ पंक्तियाँ पूर्णतः खण्डित हैं)

अपने विद्यालय में तबले की एक कक्षा है। उस कक्षा में निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। इन विद्यार्थियों में से एक-दो विद्यार्थियों को गायन के दूसरे व तीसरे दर्जे में एकाध घंटा साथ-संगत के लिए यदि कहा जाय तो दोनों का ही हित होगा। तबला और मृदंग बजाने वाले विद्यार्थियों के लिए साथ-संगत करना, यह उनके शिक्षा का ही एक अंग है। इसलिए विद्यालय का यह कार्य वे स्वीकार करेंगे, ऐसा मुझे विश्वास है। यह कार्य विद्यार्थियों को नौकरी के तौर पर नहीं करना है। तबले के विद्यार्थियों को गायन की साथ-संगत के लिए भेजने से उन्हें साथ-संगत करने की संधि मिलेगी और गायन की कक्षाओं को भी तबले की संगत का लाभ होगा। इस प्रकार साथ-संगत करने वाले विद्यार्थियों का कार्य यदि हेडमास्टर को संतोषजनक दिखाई दिया तो वे उन्हें भविष्य में २) रुपये छात्रवृत्ति मिलने हेतु सिफारिश करेंगे। वस्तुतः साथ-संगत करना, यह शिक्षा का ही एक अंग होने से उसके लिए छात्रवृत्ति देने की कोई आवश्यकता नहीं है। जो विद्यार्थी इस प्रकार साथ-संगत करने के लिए तैयार नहीं होंगे, उन्हें विद्यालय में निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं रहेगा; यह स्पष्ट है।

अपने विद्यालय में तबला व मृदंग की कक्षा है और वह जिस शिक्षक के तरफ है, उन्होंने आज दो वर्ष हो गये, परन्तु अपनी पाठ्यक्रम की पुस्तकें तैयार नहीं कीं।

(आगे की ११ पंक्तियाँ खण्डित हैं)

इस विद्यालय में प्रत्येक विषय की तालीम मौखिक एवं पुस्तक के माध्यम से दी जावे, ऐसा विद्यालय का नियम है। तालीम शिक्षकों के मर्जी पर रखने से विद्यालय का हित नहीं होता, यह मेरा अनेक वर्षों का अनुभव है। जो शिक्षक अपना अभ्यासक्रम पुस्तकरूप से प्रसिद्ध करने के लिए तैयार न हों, उन्हें इस विद्यालय में नियुक्त ही न किया जावे, यह मेरी नम्र सूचना है। तात्पर्य, तबला व मृदंग की दो क्रमिक पुस्तकें हेडमास्टर साहब को उनसे प्राप्त होने तक उन शिक्षकों को प्रमोशन न दिया जावे, यह मेरा सुझाव है।

इसी प्रकार यह नियम हार्मोनियम व सितार की कक्षाओं को भी लागू किया जाय, यह अलग से बताने की जरूरत नहीं। हार्मोनियम के शिक्षक ने अपनी पहिली क्रमिक पुस्तक मुझे बताई। उनका यह उपक्रम मुझे ठीक लगा। हार्मोनियम में ठुमरी, दादरे छोटे-छोटे गीत तथा चलती लय के ख्याल आदि अच्छे बजते हैं। अतः इस प्रकार के लोकप्रिय गीतों का समावेश पुस्तक में किया जाना इष्ट होगा। मि० माधवराव के लिए राजाभैया व चुन्नीलाल जी की मदद से इस प्रकार के गीतों का समावेश अपनी पुस्तक में करना हितकर होगा। उन्होंने अपनी पुस्तक में जो गीत दिए हैं, वे कुछ उच्च प्रति के मुझे प्रतीत नहीं हुए। उन्हें बदलने की सूचना मैंने दी है। चलती लय की चीजों का संग्रह मि० राजाभैया से प्राप्त कर लेना हित कर होगा। उन्हें ऐसा करने की संधि दी जाए।

(आगे का कुछ भाग खण्डित है)

तवायफ स्कूल के प्रिंसिपल भी नृत्य विषय पर अपनी कुछ पुस्तकें तैयार कर रहे हैं। पुस्तक का कुछ अंश उन्होंने मुझे दिखाया, जो मुझे अच्छा मालूम हुआ। पुस्तकें तैयार होने पर उनके मुद्रण की व्यवस्था विद्यालय द्वारा कराई जाय। इन पुस्तकों की माँग देश

के अन्य भागों में होगी। यदि ऐसा न हुआ तो भी इस विषय पर पुस्तकें प्रकाशित करने की प्रवृत्ति देश में बढ़ेगी और यह भी इष्ट होगा।

यहाँ मैं और एक सूचना करना चाहता हूँ, जो इस प्रकार है। चूंकि माधव संगीत विद्यालय यह सम्पूर्ण देश में एक ही प्रमुख विद्यालय होने जा रहा है, और उसमें से उत्तीर्ण हुए विद्यार्थियों की चारों ओर से माँग हो रही है। अब इस विद्यालय के लिए महाराजा सिन्धिया गोल्ड मेडल नाम से एक मेडल रखा जाय और प्रतिवर्ष विद्यालय की अंतिम परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होकर प्रथम स्थान प्राप्त करनेवाले विद्यार्थी को वह दिया जाय। इस प्रकार मेडल घोषित होने पर उसे प्राप्त करने के हेतु बाहर से भी विद्यार्थी आने लगेंगे। इस मेडल को देखकर नगर के बड़े-बड़े सरदारों के मन में भविष्य में मेडल देने की इच्छा होगी और उनके द्वारा भिन्न-भिन्न कक्षाओं में उत्तीर्ण होकर प्रथम स्थान पानेवाले विद्यार्थियों को रौप्य मेडल दिए जावेंगे। उन मेडल्स पर उन-उन सरदारों के नाम अंकित किये जायँ। ऐसा होते-होते भविष्य में ग्वालियर में ही संगीत का विश्वविद्यालय बनेगा, ऐसी मुझे आशा है।

(आगे की ११ पंक्तियाँ खंडित हैं)

मैं और एक सूचना करना चाहता हूँ, जो इस प्रकार है :—

विद्यालय में फायनल परीक्षा उत्तीर्ण विद्यार्थियों का एक वार्षिक जलसा आयोजित कर महाराजा मेडल इस जलसे में ही दिया जाय। इस जलसे से विद्यार्थियों का उत्साह बढ़ेगा और चारों ओर उनकी ख्याति होती रहेगी। फाइनल परीक्षा उत्तीर्ण छात्रों के नाम गजेट में प्रकाशित होते हैं अथवा नहीं, मैं नहीं जानता। उत्तीर्ण हुए विद्यार्थियों के लिये डिप्लोमा यानी एक प्रकार की अध्यापकों की सनद ही होने से उनके नाम सरकारी गजेट में जाहिर होना हित कर होगा। उनके नाम जाहिर होने से चाहे जो गायक 'हम ग्वालियर से शिक्षित हैं' ऐसा नहीं कह सकेंगे और डिप्लोमा भी नहीं बता सकेंगे। यदि यह सूचना अधिकारियों की दृष्टि से अमल में लाने योग्य हो तो उस सम्बन्ध में अनुकूल विचार किया जावे। मेरी एक सूचना यह है कि, मि० तांबे साहब व प्रो० बाजपेई साहब को दो अथवा तीन साल के लिए विद्यालय के आफिशियल व्हिजिटर्स नियुक्त किये जायें। उनको इस विषय का ज्ञान होने से वे समय-समय पर विद्यालय में पधारकर शिक्षकों के कार्य का निरीक्षण करेंगे और उन्हें योग्य सलाह देंगे। विद्यालय की आवश्यकताएँ अथवा कमियों को सेक्रेटरी साहब के सम्मुख प्रस्तुत करेंगे। मुझे लगता है कि, उक्त दोनों सज्जन यह सूचना पसन्द करेंगे। विद्यालय पर इस प्रकार की देखभाल रहने से उसमें पर्याप्त सुधार होगा, ऐसा मुझे विश्वास है। अब विद्यालय में भिन्न-भिन्न कक्षाएँ प्रारम्भ हो जाने से उसका काम बढ़ गया है। हेडमास्टर साहब को अन्य कार्य होने से सब तरफ ध्यान देना कठिन होगा। यह सूचना योग्य प्रतीत होती हो तो उक्त दो व्हिजिटरों की नियुक्ति की जाय।

(अग्रिम अंश खण्डित है)

और एक सूचना करने की मेरी इच्छा है और वह तवायफ स्कूल के सम्बन्ध में है। इस स्कूल की गायकी के सम्बन्ध में मुझे प्रतिवर्ष अपनी रिपोर्ट में असमाधान व्यक्त करना

पड़ता है। इस वर्ष भी व्यक्त कर रहा हूँ। यदि तवायफ स्कूल अपने शिक्षा विभाग की एक स्थायी संस्था समझती है तो उसकी ओर अधिक ध्यान देना क्रमप्राप्त है। इस स्कूल में जो दो स्त्रियाँ उच्च प्रति का गायन गाने योग्य हो गई हैं, उन्हें मैं सात-आठ वर्षों से देखता आया हूँ। वे पाँच-छः बड़े ख्यालों के अतिरिक्त ख्याल गायन में और कुछ भी नहीं गा सकतीं। स्त्रियों के गाने योग्य चीजें ठुमरी, गजल आदि वे गाती हैं। किन्तु अभी उन्हें ग्वालियर की वह प्रसिद्ध गायकी नहीं गाते बनती, जो मंगोबाई आदि स्त्रियाँ गाती हैं। वह गायकी सीखने की उन्हें प्रबल इच्छा है, ऐसा प्रतीत हुआ। यदि वे ग्वालियर के बाहर कहीं गाने के लिए गईं तो वहाँ उनका दर्जा बहुत ही नीचे का रहेगा, ऐसा मुझे लगता है। इन समस्त बातों को ध्यान में रखते हुए मैं ऐसा सूचित करना चाहता हूँ कि इस वर्ष अपने विद्यालय से उत्तीर्ण विद्यार्थियों में से एक स्कालर पसन्द करके उसे वहाँ के प्रिन्सिपल के नियन्त्रण में दिया जाय और इन दो स्त्रियों का ख्यालगायन उसे सौंप दिया जाय। वह शिक्षक इन सीनियर लड़कियों को हफ्ते में दो या तीन बार विलम्बित ख्यालों की शिक्षा दिया करें। ख्याल सिखाने का कार्य वहाँ के प्रिन्सिपल के तरफ देने में अब कोई अर्थ नहीं। यह कार्य उनसे निकाल लेने पर उन्हें सेन्ट्रल स्कूल के विद्यार्थियों को ठुमरी सिखाने का कार्य दिया जाय।

(अग्रिम कुछ पंक्तियाँ खंडित हैं)

अपने माधव संगीत विद्यालय में विद्यालय का पत्रव्यवहार सम्हालने हेतु अभी तक कोई लेखक नियुक्त नहीं किया गया है। उसका समस्त कार्य श्री राजाभैया को अपने निजी समय में करना पड़ रहा है। शायद काम अधिक न होने के कारण अभी तक लेखक नहीं दिया गया, ऐसा लगता है। फिर भी, चूँकि राजाभैया अपने निजी समय में यह कार्य करते आये हैं, इसलिये यदि उन्हें पाँच रुपये अतिरिक्त वेतन दिया गया तो न्यायोचित होगा। इस सूचना पर विचार किया जाना सम्भव हो तो वह अवश्य किया जाय।

सर्वसाधारण रूप से इस वर्ष विद्यालय का काम संतोषजनक दिखाई दिया। उसमें विशेष रूप से मि० विष्णुपन्त, मि० सदाशिवराव, मि० गुणे इनका कार्य अधिक संतोषप्रद रहा। फायनल में इस वर्ष आठ विद्यार्थी सर्टिफिकेट देने योग्य हुए देखे गये, जिनमें से एक की कुछ रागों की गायकी जितनी अच्छी होनी चाहिये उतनी नहीं हुई, ऐसा मि० राजाभैया से ज्ञात हुआ। अतः मेरी यह सूचना है कि, यद्यपि वे उत्तीर्ण हुए हैं, जब तक उन शेष रागों की गायकी तैयार कर राजाभैया का समाधान नहीं करते, तब तक उन्हें प्रमाणपत्र न दिया जाय। तैयार होने पर ही दिया जाय। शेष सात विद्यार्थियों को इस वर्ष प्रमाणपत्र दिये जायँ।

(अग्रिम भाग खंडित है)

आगामी वर्ष की कक्षा-व्यवस्था आदि

इस बार प्रिपरेटरी कक्षा से इक्कीस लड़के परीक्षा में सम्मिलित हुए। उनमें से ग्यारह अच्छे स्वरज्ञान वाले ऊपर की कक्षा में चढ़ाने योग्य थे। इसके अतिरिक्त लगभग पंद्रह लड़के स्कालर शिक्षक के पास हैं। अतः अब पहिले वर्ष की कक्षा में उपरोक्त ग्यारह

लड़के व कुछ अनुत्तीर्ण हुए लड़के रहेंगे। चालू सत्र में पहली कक्षा के दो विभाग थे। इन दोनों विभागों से पाँच लड़के उत्तीर्ण हुए, जिन्हें मिलाकर पहले वर्ष के अभ्यासक्रम के लिये सोलह लड़के हो जावेंगे। स्कालर शिक्षक के पास पुराने व नये प्रवेश के लड़के बहुत हो जाने पर उन लड़कों के दो विभाग किये जायँ। एक स्कालर शिक्षक को दिया जाय व दूसरा हेडमास्टर रख लें। जनवरी के अन्त में पुनः स्वरज्ञान की परीक्षा लेकर जो लड़के अच्छे प्रतीत होंगे, उनका प्रथम वर्ष का और एक विभाग किया जाकर उसे स्कालर शिक्षक को सौंप दिया जाय। ऐसा करने से प्रथम वर्ष के पुनः दो विभाग हो जावेंगे। ऐसे दो-तीन विभाग रहना हितकर ही है। जो लड़के उत्तीर्ण होंगे, वे दूसरे वर्ष में जावेंगे।

(अग्रिम पंक्तियाँ खंडित हैं)

वि. ना भातखंडे

Examiner

नौतलाब गेस्ट हाउस,
लश्कर, दि० २१-११-२६

श्री माधव संगीत विद्यालय,
वार्षिक परीक्षा, नवंबर १९२९,
रिपोर्ट एवं रिजल्ट्स,

मेहरबान रावसाहब,
जी० व्ही० अंबर्डेकर,
की सेवा में

आपके पत्रानुसार दि० ८ नवंबर १९२९ को बंबई से रवाना होकर दूसरे दिन अर्थात् दिनांक ९ नवंबर शनिवार को ग्वालियर में उपस्थित हुआ। और सोमवार दिनांक ११-११-२९ से परीक्षा का कार्य प्रारंभ किया। विद्यालय में कक्षाएँ अधिक होने के कारण और बीच में दो दिन मेरा स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण परीक्षा का कार्य आज समाप्त हुआ।

भिन्न-भिन्न कक्षाओं में जो बातें देखी गईं, उन्हें कक्षाओं के परीक्षाफल के पत्रों पर मैंने अंकित की हैं। इस वर्ष की परीक्षा में जो कुछ ज्ञात हुआ तत्सम्बन्ध में सूचनाएँ देने का यहाँ पर विचार है।

(१) यह खेद से कहना पड़ रहा है कि इस वर्ष नीचे की तीनों कक्षाओं का अर्थात् प्रिपरेटरी व प्रथम वर्ष की कक्षाओं का कार्य जितना ठीक होना चाहिये था, उतना संतोषप्रद नहीं हुआ। कक्षा के शिक्षकों में बार-बार परिवर्तन होना, यह एक तथा छात्रों की लापरवाही, यह दूसरा कारण बताया गया। प्रिपरेटरी कक्षा में स्वरज्ञान कराने का प्रयत्न नहीं हुआ, उसी प्रकार स्वरस्थानों पर भी योग्य ध्यान नहीं दिया गया। तात्पर्य इन कक्षाओं की देखभाल अच्छी नहीं हुई, यही कहना पड़ेगा। प्रथम वर्ष की कक्षा में अभ्यासक्रम पूर्ण कर कुछ बातें भी बताई गयी हैं, परन्तु तानें ताल को छोड़कर गायी जाती हैं, अतः प्रारंभ से ही तानें ठेके के साथ गाने की आदत डालना हितप्रद होगा। ठेका लगाने के लिये अब तबला कक्षा के विद्यार्थी हैं ही।

द्वितीय वर्ष : दूसरी कक्षा का बहुतांश अभ्यासक्रम गायकी सहित पूर्ण हुआ है। परंतु एक राग तोड़ी सिखाना शेष रह गया। उसी प्रकार ध्रुवपद का काम पिछड़ा हुआ देखा गया। श्री बलवंतराव के समय जो ध्रुवपदों की गायकी होती थी, वह अब पीछे पड़ जाना ठीक नहीं है। इसके अतिरिक्त अनेक छात्रों के स्वरस्थान बेढब और तानें ताल में नहीं थीं। इन छात्रों को भी शुरू से ठेके के साथ सिखाना लाभप्रद होगा। बड़े ख्याल विद्यार्थी अच्छी तरह नहीं गा सके। अतः हेडमास्टर का ध्यान इस बात पर जाना आवश्यक है।

तृतीय वर्ष : कक्षा तीसरी में दो राग नहीं सिखाए गए। अब यह कार्य आगामी वर्ष के कक्षाध्यापक को करना पड़ेगा, अर्थात् उसे पूर्ण करने में उसका समय व्यतीत होगा और अपना नियमित काम पिछड़ जायगा। इस कक्षा में बड़े लड़कों के भर्ती की ओर जितना अधिक ध्यान दिया जायगा, उतना हितप्रद होगा। ध्रुवपद के काम नहीं सिखाए गये। पाठान्तर ठीक हुआ है।

चतुर्थ वर्ष : कक्षा चौथी के विद्यार्थियों का पाठान्तर ठीक पाया गया। परन्तु ख्याल सुडौल रीति से प्रस्तुत करना, उसे भरना विद्यार्थियों को सिखाया हुआ नहीं देखा गया। विद्यार्थियों की तानें स्पष्ट थीं व बीच-बीच में लय ताल छोड़ जाती थीं। इस बाबत मैंने शिक्षकों को एवं हेडमास्टर को समझा दिया है।

पंचम वर्ष : फाइनल अर्थात् पंचम वर्ष कक्षा में प्रमाणपत्र देने योग्य विद्यार्थी इस वर्ष मुझे तीन ही दिखाई दिए। शेष दो की तैयारी उत्तम होने में अभी लगभग छः मास की अवधि है। आगामी अप्रैल माह में इनकी पुनः परीक्षा लेकर यदि योग्य तैयारी देखी गई तो सार्टीफिकेट देने बाबत विचार किया जा सकेगा। उसी कक्षा में और तीन छात्र हैं। उनकी तैयारी अच्छी न होने के कारण उन्हें आगामी वर्ष के लिए रखा जाय। एक छात्र की उपस्थिति तो केवल छब्बीस दिन पाई गई। फाइनल की इस कक्षा में थियरी बहुत कमजोर है। इस ओर शिक्षक ने विशेष ध्यान देना चाहिए।

विशेष सूचना

विद्यालय के हेडमास्टर प्रतिवर्ष दो-चार माह तक श्रीमन्त महाराज साहब से साथ बाहर रहते हैं, ऐसा अनुभव से देखने में आया है। इसलिए मैं सूचित करना चाहता हूँ कि उनके पास हेडमास्टर का कार्य न रखते हुए अब राजाभैया को उक्त कार्य सौंपा जाये। अर्थात् भविष्य में राजाभैया की नियुक्ति हेडमास्टर के स्थान पर की जाय तथा उन्हीं पर पूरे विद्यालय की तालीम की जिम्मेदारी सौंप दी जाय। अनेक वर्षों से वे प्रथमवर्ष का कक्षा-कार्य कर रहे हैं। अतः ऐसी नियुक्ति में किसी प्रकार की अड़चन उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं है। मुझे तो लगता है, राजाभैया को वह पद देना सर्वथा योग्य होगा।

इस प्रकार राजाभैया का दर्जा बढ़ा देने के कारण उन्हें वेतन वृद्धि देना क्रमप्राप्त ही है। इसलिए मेरी यह सूचना है कि हेडमास्टर नियुक्त करने पर उनका वेतन जो रुपये ५० है, वह रुपये ६० किया जाय। उनसे शिक्षा पाकर बाहर गये हुए विद्यार्थी प्रति माह १०० रुपये प्राप्त कर सकते हैं, ऐसा देखा गया है।

वर्तमान हेडमास्टर को इस प्रकार से पदमुक्त कर देने पर उन्हें संगीत विभाग का सुपरवाइजर बना दिया जाय, ऐसी मेरी सूचना है। वे विद्यालय के एक कमरे में अपना छोटा-सा आफिस रखें और जब ग्वालियर में हों, तब नियमित रूप से विद्यालय में उपस्थित होकर समस्त कक्षाओं के कार्य पर ध्यान दें। प्रत्येक कक्षा में जाकर छात्रों का ख्याल गायन सुनकर स्वरस्थान, ताल आदि बातों पर ध्यान दें व उस सम्वन्ध में श्री हेडमास्टर महोदय की सेवा में सुझाव पेश करें। इसके अतिरिक्त स्थानीय भिन्न-भिन्न जगहों में अथवा शहरों में खोले गये विद्यालयों को भी खुद जाकर देखें और सेक्रेटरी साहब को रिपोर्ट करें। इस

सुपरविज़न की एक डायरी रखें और उसमें रोज किया हुआ कार्य लिख रखें। यह डायरी सेक्रेटरी साहब की ओर भेजकर उस पर उनके हस्ताक्षर प्राप्त करें।

समस्त कक्षाओं में बड़े ख्याल की गायकी का कार्य किस प्रकार चल रहा है, यह राजाभैया समय-समय पर जाकर देखें और उसमें सभी उचित सुधार तत्काल किया करें। विद्यालय की तालीम का समस्त उत्तरदायित्व उन पर ही रहेगा।

आजकल विद्यालयों में कार्यालय एक बड़ी अड़चन का विषय हो गया है। विद्यालय के समय में राजाभैया को यह कार्य करना पड़ता है, जिससे लड़कों का बहुत नुकसान हो रहा है। इस सम्बन्ध में मैं यह सूचित करूँगा कि, कार्यालय का काम अलग-अलग विभागों में बाँटा जाकर भिन्न-भिन्न शिक्षकों को सौंप दिया जाय। राजाभैया के पास केवल वार्षिक रिपोर्ट लिखने का कार्य दिया जाय। हेडमास्टर के नाते उनकी जवाबदारी अधिक बढ़ जाएगी, इसलिए उन्हें अन्य कार्य न दिया जाय।

सुपरवाइजर जब शहर में हों, तब वे भी कार्यालय का कुछ भार अपने ऊपर लें, जिससे अन्य शिक्षकों को अपने नियमित कार्य करने के लिए समय मिलता रहेगा।

तबला व मृदंग कक्षा के शिक्षक ने अभी तक अपनी पुस्तक तैयार नहीं की, जिससे कार्य में बहुत कठिनाई आ रही है। अपने विद्यालय में पुस्तक के माध्यम से शिक्षा देने की प्रथा होने से मेरी यह सूचना है कि, आगामी अप्रैल तक ये शिक्षक अपनी पुस्तकें तैयार कर हेडमास्टर को सादर करें। यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया तो वरिष्ठ अधिकारी उन्हें इस कार्य के लिए बाध्य करे। साथ ही उन्हें आदेश दिया जावे कि, उनका सम्बन्ध विद्यालय के साथ होने से हेडमास्टर के हुकुम की तामील करना इष्ट है। शनिवार की बैठक का नियम उनकी कक्षा के लिए भी लागू है, यह उन्हें समझाया गया है। इस विषय में शिक्षकों की कुछ गलत धारणा हो गयी थी, यह ध्यान में आने के कारण जान बूझकर यह सूचना मैं दे रहा हूँ। शनिवार के दिन शिक्षक सीनियर लड़कों को अपना गायन सुनाते हैं, उस समय तबला शिक्षक उपस्थित रहें और हेडमास्टर के कहने पर शिक्षकों के साथ तबला अथवा पखावज पर संगत करें और उनसे हिलमिल कर रहें।

विद्यालय में दो तबलची हैं। उन्हें चौथी और पाँचवीं कक्षा में भेजा जाय। निम्नस्तरीय कक्षाओं में तबला क्लास के लड़कों को बारी-बारी से उनकी तरफ भेजना हितकर होगा। ऐसा करने से तबला सीखने वाले विद्यार्थियों को साथ करने की संधि मिलेगी और उनका हित होगा। लड़के पसन्द करना हेडमास्टर पर सौंपा जाय। साथ करने के लिए यदि विद्यार्थी इन्कार करें तो उन्हें विद्यालय में शिक्षण न दिया जाय।

इस समय सितार की एक छोटी-सी कक्षा प्रारम्भ हुई है। और उस पर मि० मालवनकर की नियुक्ति हुई है। इस कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने पर बाबू खाँ के नाती अहमद खाँ को शिक्षक नियुक्त करना अनुचित न होगा। किन्तु यह नियुक्ति छात्र-संख्या पर निर्भर रहेगी। यदि अहमद खाँ विद्यालय में नौकर हुए तो उनकी तालीम की पुस्तक तैयार करने के लिए मि० मालवनकर को कहा जाय।

विद्यालय की एक शाखा उज्जैन में दो साल से खोली गई है, उसकी स्थिति अपेक्षाकृत संतोषजनक नहीं है। इस सम्बन्ध में मेरा सुझाव है कि, सेन्ट्रल स्कूल के शिक्षकों

राग केदार, ताल त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

सा सा री सा	म — म —	म म म म	प — प प
छि न ल व	का ऽ ष्टा ऽ	नि मि ष क	ला ऽ त्रु टि
०	३	×	२
मं — प प	ध — प प	मं प धप	म म री सा
बि ऽ न्दु अ	णू ऽ द्रु त	द्रु त लघु	गु रु प्लु त ॥
०	३	×	२

अंतरा

प — प सां	— सां सां सां	सां — सां सां	— रीं सां सां
ती ऽ न मा	ऽ गं ग्र ह	चा ऽ र ती	ऽ न ल य ।
०	३	×	२
सां सां सां ध	सां सां सां सां	सां रीं सां रीं	सां निध प
द्र त म ध	बि ल मि त	अं ऽ ग ल	घु न सों ऽ
०	३	×	२
म — म म	प — प —	ध — प प	ध प म —
मा ऽ र ग	दे ऽ शी ऽ	भे ऽ द ता	ऽ ल के ऽ ।
०	३	×	२
सां सां रीं सां	ध ध प —	प धप म	म री सा सा
च त र क	र त प्र ऽ	स्ता ऽ र त्रि	वि ध ज ति ॥
०	३	×	२

संग्राहक—डॉ० श्री० ना० रातांजनकर

में से एक प्रौढ़ व अनुभवी शिक्षक कम से कम एक वर्ष के लिए उज्जैन भेजा जाय। ऐसा न करने से वह विद्यालय बन्द करने की परिस्थिति आ सकती है। इस सूचना पर शीघ्र विचार होना आवश्यक है।

भिन्न-भिन्न मोहल्लों में प्रथम वर्ष का अभ्यासक्रम पढ़ाने हेतु कक्षाएँ खोलना हितकर होगा। वैसा ही एक-दो प्रमुख शहरों में विद्यालय की शाखाएँ प्रारम्भ करने से संगीत की अभिरुचि बढ़ेगी और उसका प्रसार भी अच्छा होगा।

माधव संगीत विद्यालय को अब बारह वर्ष हो चुके हैं, और उसकी कीर्ति सम्पूर्ण देश में फैल गई है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। इस विद्यालय से उत्तीर्ण ग्रेज्युएट्स अन्यत्र प्रोफेसर की हैसियत से कार्य कर रहे हैं, यह बात सर्वविदित है। सम्पूर्ण देश में कहीं भी अपने विद्यालय से अधिक उच्चतर का शिक्षण नहीं दिया जाता, यह मैं जानता हूँ। इसलिए मेरी नम्र सूचना है कि, अपने विद्यालय को अब 'माधव संगीत कालेज' यह नाम दिया जाय। कुछ समय बाद यदि पोस्ट ग्रेज्युएट कक्षा प्रारम्भ करनी पड़ी, तो वह चलाने के लिये आवश्यक साहित्य, पुस्तकें, अभ्यासक्रम आदि उपलब्ध हो सकेगा; किन्तु इस कक्षा की आज आवश्यकता नहीं है। लखनऊ मैरिस कालेज में भी अपने विद्यालय के अनुसार शिक्षा देने की वर्तमान योजना है।

अब धीरे-धीरे स्टेट के प्राथमिक व मिडिल स्कूल्स में संगीत विषय प्रारंभ किया जाना हितप्रद होगा। इस संबन्ध में अभ्यासक्रम आदि निश्चय हेतु तज्ञों की एक कमेटी बनाई जाय। इस काम में मेरे अनुभवों का कुछ उपयोग हो सकता हो तो कमेटी को अपनी राय और सहायता देने में मुझे आनन्द होगा। किन्तु यह कार्य पूर्ण विचार करने के पश्चात् ही हाथ में लेना ठीक होगा।

मेरी और एक सूचना इस प्रकार है कि, प्रत्येक माह के अन्त में विद्यार्थियों का उस माह के अभ्यास का एक डिमांस्ट्रेशन रखा जाय, जो समस्त संगीतप्रेमी लोगों के लिए खुला हो। इस अवसर पर शिक्षकों एवं पुराने छात्रों को भी अपनी कला का प्रदर्शन जनता के सम्मुख करने के लिए कोई प्रतिबन्ध न हो। इस प्रदर्शन के लिए सुपरवाइजर महोदय स्वयं जाकर प्रतिष्ठित सज्जनों को निमंत्रित करें।

शिक्षकगण विद्यालय में समय पर उपस्थित नहीं होते हैं और यदि होते भी हैं, तो पूर्ण समय तक शिक्षण कार्य नहीं करते हैं। प्रायः विद्यालय की छुट्टी समय के पूर्व ही करके घर चले जाते हैं। बातचीत में व्यर्थ समय बिताते हैं, इन बातों की ओर हेडमास्टर साहब बिलकुल ध्यान नहीं देते, यह बात मेरे कानपर उन विद्यार्थियों द्वारा आई थी, जो खासकर गाना सीखने के लिए ही बाहर गाँवों से ग्वालियर आये हुए हैं। इस समाचार में विशेष तथ्य नहीं होगा, ऐसी मुझे आशा है। फिर भी यदि ऐसा कुछ होता हो तो हेडमास्टर साहब ने समय पर ही ध्यान देना हितकर होगा। ठीक पाँच बजे समस्त शिक्षक विद्यालय में उपस्थित हैं अथवा नहीं, यह स्वयम् हेडमास्टर को ही जाकर देखना चाहिये। मस्टर पर उपस्थित के हस्ताक्षर करने की एवम् उपस्थिति का समय अंकित करने की प्रथा तो विद्यालय में होगी ही। यदि न हो तो प्रारम्भ की जाना हितप्रद होगा। सवा पाँच होने पर चपरासी ने मस्टर हेडमास्टर के टेबल पर लाकर रखना चाहिए, जिससे कौन-कौन

से शिक्षक आये हैं और कौन से नहीं, तुरन्त मालूम होगा। इस ओर सुपरवाइजर महोदय भी ध्यान दें, तो वह हितप्रद होगा।

गत वर्ष अपने सम्माननीय विजिटर श्री ताम्बे साहब व श्री बाजपेई साहब कितनी बार विद्यालय में पधारे, उन्होंने आकर क्या रिमार्क दिए और कौन सी सूचनाएँ दीं, उनमें से कौन-कौन-सी अमल में लाई गईं आदि बातें हेडमास्टर साहब ने मेरे सामने नहीं रखीं। उक्त सज्जन जब भी विद्यालय में पधारे, तब उनके सामने विजिटर्स बुक प्रस्तुत करना, यदि वे उचित समझें तो सूचनाएं देने संबंध में उन्हें विनंति करना यह कार्य हेडमास्टर का है। बाहर के बड़े लोगों को विद्यालय का काम देखने हेतु आमंत्रित करने का कार्य सुपरवाइजर ही अच्छा कर सकते हैं। उसे वे ही करें तो ठीक होगा। मैं सोचता हूँ कि, यह आमन्त्रण प्रत्येक माह में होनेवाले डिमांस्ट्रेशन के अवसर पर दिया जाना ठीक है। ऐसा करने से विद्यालय में किस प्रकार का कार्य चल रहा है, यह उन्हें विदित होकर उत्तरोत्तर उनकी सहानुभूति बढ़ती रहेगी। प्रत्येक डिमांस्ट्रेशन के दो दिवस पूर्व बोर्ड पर सूचना लगाई जाए।

विद्यालय में सिखाए जानेवाले ख्यालों की गायकी अर्थात् तानें आदि अब पूरी लिखी जा चुकी हैं। इन तानों की दो छोटी-छोटी पुस्तकें 'तान-मालिका' इस नाम से शासन की ओर से मुद्रित करना एक बड़ा कार्य होगा। ऐसी पुस्तक की माँग चारों ओर से हो रही है। यह कार्य थोड़े ही खर्च का और अति आवश्यक है। गायकी की इन पुस्तकों का देश की गायकी पर भी कुछ परिणाम होना सम्भव है। अपनी पुस्तकें प्रकाशित होने पर गायकी की और भी पुस्तकें देश में प्रकाशित होने लगेंगी। और ग्वालियर की गायकी का जोर से प्रचार होगा। अपनी आज की चार हिन्दुस्तानी क्रमिक पुस्तकों में १५०० चीजें हैं। इन चीजों के लिए उपयुक्त गायकी प्रकाशित होना आवश्यक है। यह कार्य खुद राजाभैया ने कर रखा है। उन्हें ऐसा कहा जाने पर गायकी की पुस्तकें वे दो-तीन महीने में तैयार कर देंगे। उनकी इस मेहनत के लिए शासन की ओर से उचित पारिश्रमिक दिया जाना अनुचित नहीं होगा। तानमालिका पुस्तकों में क्रमिक पहिली, दूसरी, तीसरी और चौथी पुस्तकों की गायकी आनी चाहिए। पुस्तकें तैयार हो जाने पर उन्हें विद्यालय से क्रय करने की सुविधा सभी को मिलनी चाहिए। अल्पावधि में ही शासन ने किए हुए खर्च की भरपाई हो जावेगी। पुस्तक पर हेडमास्टर राजाभैया का नाम अंकित करने से पुस्तकों का प्रसार अधिक होगा। इसी प्रकार सितार, तबला, पखावज आदि की पुस्तकों का काम भी हाथ में लेने योग्य है। ग्वालियर कालेज की तालीम में कुछ त्रुटि न रहे, यही मुख्य उद्देश्य है। पुस्तकों के अभाव में संगीत कला की आज तक कितनी हानि हुई, यह कहने की अवश्यकता नहीं।

तबला और पखावज की कक्षाओं का कार्य ठीक चल रहा है। विद्यालय में ताल विषयक 'अभिनय तालमंजरी' के श्लोक पढ़ाए जाते हैं, यह अच्छा ही है। विद्यार्थियों से पर्याप्त मेहनत ली जा रही है, यह भी देखने में आया। इन तैयार हुए विद्यार्थियों को भिन्न-भिन्न कक्षाओं में ख्याल, ध्रुवपद, धमार आदि गीतों की साथसंगत मिलने से सबका हित होगा। आगामी वर्ष में इनके अभ्यासक्रम की पुस्तकें प्रकाशित हो जाने पर

कार्य अधिक सुलभ होगा और विद्यालय के यश में वृद्धि होगी। इन कक्षाओं के परीक्षाफल संलग्न हैं।

हार्मोनियम कक्षा का कार्य आस्ते-आस्ते, किन्तु ठीक चल रहा है। यह कक्षा शहर के वयस्क विद्यार्थियों के लिए होने के कारण और वे इस विषय को लगन से, किन्तु अल्प समय तक ही सीखते हैं; इस कारण यह शिक्षा उत्तम एवं अधिक आकर्षक होना कठिन है। फिर भी इस परिस्थिति में शिक्षक अपना कर्त्तव्य उत्साहपूर्वक करते हैं और सब कार्य लिखित रूप में तथा व्यवस्थित ढंग से कर रहे हैं, ऐसा देखा गया। परीक्षाफल संलग्न है। इन कक्षाओं में अपनी विद्यालय की पुस्तकों में से सरल चीजें व सरगमें सिखाना यदि वे उचित समझें तो सिखा सकते हैं।

इस वर्ष ध्रुवपद का काम पिछड़ गया है, यह मैंने कहा ही था। इस संबंध में यह सूचित करना चाहता हूँ कि, ध्रुवपद गायकी का कार्य आगामी वर्ष श्री बलवंतराव के पुत्र तात्या मास्तर जो मराठा बोर्डिंग में कार्य कर रहे हैं, उन्हें दिया जाए। वे ध्रुवपद की गायकी जानते हैं और वह सिखाने की उनकी इच्छा भी है, ऐसा ज्ञात हुआ है। मराठा बोर्डिंग का अपना कार्य सम्हालते हुए यह नया कार्य करने के लिए यदि वे तैयार हों तो भी प्रत्येक शिक्षक की ध्रुवपद संबंधी जिम्मेदारी समाप्त हुई, ऐसा न समझा जाय। यह तो उन शिक्षकों को अतिरिक्त सहायता के रूप में किया जा रहा है।

सितार की कक्षा बिलकुल नई होने के कारण उस संबंध में लिखना नहीं चाहता हूँ। इस कक्षा की पुस्तकें प्रकाशित होने पर उसमें विद्यार्थियों की संख्या बढ़ेगी और वे अपना कार्य शीघ्रता से करेंगे।

इस वर्ष के वार्षिक परीक्षा का वृत्तांत अंकित किया है और उचित सूचनाएँ भी दी हैं। उनमें से जो सूचनाएँ उचित प्रतीत होंगी तथा अमल में लाने योग्य होंगी, उन्हें शीघ्र कार्यान्वित किया जावेगा, ऐसी आशा है।

वि. ना. भातखंडे
परीक्षक

नौतलाब गेस्ट हाउस,
लश्कर-ग्वालियर,
दिनांक ११-११-१९३०

मेहरबान जी० व्ही० अम्बर्डेकर साहब,
सेक्रेटरी,
माधव संगीत कालेज,
की सेवा में,

गत मास में प्राप्त आपके आज्ञापत्र के अनुसार मैं दिनांक ३१ अक्टूबर १९३० को बंबई से रवाना हुआ और दिनांक १ नवंबर, शनिवार को ग्वालियर आकर उपस्थित हुआ। सोमवार दिनांक ३ से कालेज की वार्षिक परीक्षा का कार्य प्रारम्भ किया। रोज ४ से ७ तक ३ घंटे परीक्षा का कार्य चलता रहा और वह कल दिनांक १० सोमवार को समाप्त हुआ। परीक्षा के परिणाम इस रिपोर्ट के साथ संलग्न हैं। परीक्षा में जो-जो बातें देखी गईं, उन्हें निम्न प्रकार से प्रस्तुत कर रहा हूँ।

इस वर्ष प्रिपरेटरी तथा प्रथम वर्ष की दो कक्षाओं का कार्य संतोषप्रद प्रतीत नहीं हुआ। प्रिपरेटरी कक्षा में उन्नीस छात्र होते हुए केवल आठ प्रथम वर्ष कक्षा में भेजने योग्य देखने में आये। परंतु उनका भी स्वर-ज्ञान कोई अच्छा था, ऐसा नहीं। उनके स्वरस्थान अच्छे नहीं थे। ऐसा मालूम हुआ कि भरती के समय ५०-६० छात्रों ने प्रवेश प्राप्त किया था और उनमें से कम होते-होते उन्नीस छात्र परीक्षा में सम्मिलित करने योग्य शिक्षक की निगाह में आये। परीक्षा में कितने छात्र सम्मिलित नहीं किए और कुल हैं कितने, यह बात स्टेटमेन्ट से स्पष्ट नहीं हुई। प्रिपरेटरी कक्षाओं की दुर्दशा गत दो वर्षों से मेरी निगाह में आ रही है। इस कक्षा के प्रति बहुत ही लापरवाही हुई है। कक्षा पर जो शिक्षक नियुक्त हैं उन्हें न तो सिखाने का अनुभव है और न ही स्वरज्ञान कराने की तरकीबें मालूम हैं। यह कक्षा उनके अकेले के पास रखने से विद्यालय का हित नहीं होगा। नये भरती के छात्रों को शीघ्रता से स्वरज्ञान करवाकर उनका प्रथम वर्ष का पाठ्यक्रम प्रारम्भ कर दिया जाय, यह अपना उद्देश्य है। छात्रों का कण्ठ मधुर है और योग्य शिक्षक मिलने पर उन्हें स्वरज्ञान शीघ्र हो सकता है, ऐसा मैंने पाया। लड़कों को षड्ज में आवाज मिलाने में भी कठिनाई हुई, ऐसा देखने में आया। इस शिक्षक को दिसंबर तक और एक मौका दिया जाय। इस अवधि में लड़कों को अधिक तैयार कर ऊपर की कक्षा में चलने योग्य बना दें, और यदि उनकी ओर से यह नहीं हुआ तो उनके स्थान पर स्कालर की योजना की जावे, ऐसा मुझे लगता है।

प्रथम वर्ष की दोनों कक्षाओं का कार्य अपूर्ण एवं असंतोषजनक प्रतीत हुआ। विद्यार्थियों को तालज्ञान अच्छी प्रकार से नहीं हुआ था। उनकी तानें गले से साफ नहीं निकलती थीं तथा बीच-बीच में वे बेताल व बेलय होती हुई पाई गई। प्रथम वर्ष की कक्षा तो अपनी पद्धति की नींव है। लड़कों के स्वरस्थान अनेक बार बहुत ही खराब मालूम हुए। कुछ विद्यार्थी तो हार्मोनियम का स्वर छोड़कर ही गाते थे। कुछ विद्यार्थियों को तार षड्ज में मिलते न बना। परिणामस्वरूप उनका गायन बेसुरा तथा रसहीन लगने लगा। कुछ लड़कों को ठेके के बोलों की पहिचान न होने के कारण ताल से बाहर गई हुई तानों को सुधारते न बना। लड़कों को ठेके के बोलों की अच्छी पहचान करा देना शिक्षक का आद्य कर्तव्य है। इस हेतु प्रारम्भ के एक-दो माह में प्रतिदिन कम-से-कम पंद्रह मिनट उस कार्य में लगाना इष्ट है। एक बार बेताल और बेसुरा गाने की आदत विद्यार्थियों को लगने दी तो वह आखिर तक बनी रहेगी, इस ओर शिक्षक अवश्य ध्यान दें। प्रथम वर्ष में चार ही ताल होने से उनके बोल मुखोद्गत कराते हुए बजाने को सिखाया गया तो वह अति हितकर होगा। इस पहिले वर्ष के दोनों विभागों से परीक्षा में केवल नौ-नौ छात्र सम्मिलित किये गये थे। बाद में मुझे यह ज्ञात हुआ कि, इन कक्षाओं में और भी विद्यार्थी हैं। किन्तु उनका अभ्यास शिक्षकों को संतोषप्रद प्रतीत न होने के कारण उन्हें परीक्षा में सम्मिलित नहीं होने दिया। वस्तुतः ऐसा करना अनुचित है, कारण ७५ प्रतिशत उपस्थिति रहने पर विद्यार्थी को परीक्षा में बैठने देना चाहिये था। ऐसा करने से उत्तीर्ण विद्यार्थियों का प्रतिशत-प्रमाण बढ़ा है, परन्तु विद्यार्थियों के साथ भी अन्याय हुआ है। प्रत्येक कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या कम और उन पर होनेवाला व्यय अधिक, ऐसा दिखने का संभव है। आगामी वर्ष में ऐसा न हो।

द्वितीय वर्ष : दूसरे वर्ष की कक्षा में सर्वसाधारणतः कार्य ठीक पाया। परीक्षा में ग्यारह विद्यार्थी सम्मिलित हुए थे, उनमें से सात उत्तीर्ण हुए। उन्हें ऊपर की कक्षा में प्रवेश देने में कोई बाधा नहीं। कक्षा में प्रत्येक राग में पाँच-पाँच तानें बताई गई हैं, किन्तु वे जितनी साफ निकलनी चाहिये, उतनी नहीं निकलतीं। बहुत से विद्यार्थियों के स्वरस्थान खराब देखे गये, और उनकी तानें बीच-बीच में बेताल होती हुई दिखाई दीं। इस कक्षा में भी प्रारम्भ से ही ठेके की पहचान करानी चाहिये, क्योंकि सच्ची गायकी इसी कक्षा से प्रारम्भ होती है। तबले की कक्षा का कोई विद्यार्थी इस कक्षा में रोज एक घण्टे के लिये देना हितप्रद होगा। तिलवाड़ा और एकताल—ये ख्यालगायकों के मुख्य ताल माने जाते हैं। अतः उनकी अच्छी पहचान होना इष्ट है। लड़के हाथ से ताल देकर चीज गा सकेंगे, किन्तु तानें लेते समय ऐसा भली प्रकार से करना संभव नहीं। ताल के बोलों की ओर देखकर ही गाने की आदत उन्हें लगनी चाहिये। इस ओर श्री हेडमास्टर का ध्यान जाना चाहिये। लड़कों का पाठान्तर ठीक पाया।

तृतीय वर्ष : तीसरे वर्ष की कक्षा समाधानकारक नहीं थी। इस कक्षा से ग्यारह विद्यार्थी परीक्षा में सम्मिलित हुए और उनमें से सात उत्तीर्ण हुए। गायकी का कार्य संतोषजनक नहीं पाया। प्रत्येक राग में एक छोटा ख्याल, एक बड़ा ख्याल और एक ध्रुवपद मय गायकी के तैयार होने चाहिये। लड़के नीचे की कक्षा का कार्य पूर्ण किये हुए नहीं होते हैं, कक्षोन्नति हो जाने पर बार-बार अनुपस्थित रहते हैं, पाठान्तर नहीं करते हैं, अभ्यास

की ओर ध्यान नहीं देते आदि बहाने व्यर्थ हैं। प्रत्येक राग में दस-दस तानें होनी चाहिये। बजाय इसके पाँच-पाँच तानें तैयार करने के लिए कहा जाने पर भी कार्य अपूर्ण व असंतोष-प्रद रहे, यह शिक्षक के लिए भूषणास्पद नहीं है। तीसरी कक्षा में पंद्रह राग संख्या अधिक है, यह भी एक कारण कहा गया था। परन्तु यह कठिनाई इतने वर्ष तक न आते हुए अब ही निर्माण हुई, यह भी आश्चर्य है। इस वर्ष दो राग कम किये जायँ, ऐसी सूचना मैंने हेडमास्टर को दी है। ऐसा करने से कक्षा में तेरह राग सिखाए जा सकेंगे। वैसे ही कुछ धमार भी कम करने की अनुमति मैंने दी है। ग्वालियर की तारीफ ख्याल गायन के लिए है, अतः वे गायकी सहित उत्तम रीति से तैयार हों; यह उद्देश्य है। श्री व जौनपुरी—ये दो राग इस कक्षा में न लेते हुए वे चौथी कक्षा को सौंप दिये जायँ, यह सूचना मैंने दी है। इस कक्षा में भी गाते-गाते स्वर छूट जाना और एकाध समय तानें बेताल हो जाना आदि प्रकार देखने में आया। मैं समझता हूँ इस कक्षा पर राजाभैया ने बहुत ध्यान देना चाहिए। विद्यालय के कार्य की सच्ची जवाबदारी इस वर्ष से ही प्रारम्भ होती है। चार लड़के इसी कक्षा में रह जावेंगे। कभी-कभी कक्षा में पर्याप्त छात्रसंख्या न होने के कारण कमजोर लड़कों को ऊपर की कक्षा में चढ़ाना कोई भूषणास्पद तो नहीं, किन्तु कहीं-कहीं मुझे ऐसा करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। भविष्य में हर महीने में कम से कम एक बार तो भी जाकर राजाभैया ने प्रत्येक कक्षा के विद्यार्थियों की तथा शिक्षकों की हाजिरी एवं विद्यार्थियों की गायकी देखना हितकारक होगा।

चतुर्थ वर्ष : चतुर्थ वर्ष की कक्षा के शिक्षक कर्तव्यपरायण एवं उत्साही हैं। इनकी कक्षा से इस वर्ष सात विद्यार्थी परीक्षा में सम्मिलित हुए। उनमें एक विद्यार्थी बहुत ही कमजोर देखा गया, अतः उसे प्रमोशन न दिया जाय। इस कक्षा में भी नीचे से आए हुए विद्यार्थी अपूर्ण कोर्स किए हुए तथा गायकी में कमजोर थे, ऐसा सुना। यह सच भी हो सकता है, परन्तु ऐसा नहीं होना चाहिए। ऐसा होने से ऊपर की कक्षा के शिक्षक का कार्य अकारण बढ़ता है यह सच है, तथापि कक्षाध्यापक अपना समय विद्यार्थियों को देने के लिए तैयार रहते हैं और पिछला काम उनसे ठीक करा लेते हैं, ऐसा सुनकर संतोष हुआ। आगामी वर्ष में उन्हें बारह राग सिखाने होंगे। कारण, तीसरी कक्षा में दो राग छोड़ने की अनुमति मैंने दी है।

पंचम वर्ष : पंचम वर्ष की फायनल की कक्षा का कार्य पूर्ण हुआ है। यद्यपि विद्यार्थियों का कोर्स और गायकी पूर्ण हो चुकी है, तथापि उनके गायन में परिपक्वता, ढंग, महफिल का रंग, तानों की सफाई आदि बातें, जो हमेशा होनी चाहिए, उतनी उच्च स्तर की नहीं पाई गयीं। सात विद्यार्थी परीक्षा में सम्मिलित हुए और पाठान्तर व गायकी तैयार होने से वे सब उत्तीर्ण हुए, किन्तु उनके गायन में चमक दमक जितनी चाहिए, उतनी अभी नहीं आई; ऐसा कहना पड़ेगा।

इनमें से पाँच विद्यार्थियों को आगामी जलसे में प्रमाणपत्र देने में कोई बाधा नहीं। एक विद्यार्थी गत वर्ष का ही है, गायकी अपूर्ण होने से उसे प्रमाण-पत्र नहीं दिया था। अब उसने अपनी गायकी पूर्ण की है, अतः उसे प्रमाणपत्र देने में कोई आपत्ति नहीं। अभी सर्टिफिकेट के जलसे को कुछ समय है। इस अवधि में उन पाँच विद्यार्थियों को अपनी

गायकी में सुधार करने हेतु पर्याप्त समय मिलेगा, उसका लाभ वे अवश्य उठावें; ऐसी मैं सिफारिश करता हूँ। शेष दो विद्यार्थी अच्छे बुद्धिमान हैं, किन्तु उनकी गायकी उच्च स्तर की होने के लिए चार-पाँच महीनों का समय पर्याप्त नहीं है। अतः उनके सर्टिफिकेट्स आगामी जलसे में न दिये जायँ। नवम्बर तक ये दोनों विद्यार्थी उत्तम तैयार हो जावेंगे, यह मुझे विश्वास है। उस समय तक प्रतीक्षा करने में इनका हित है। सर्टिफिकेट देने के पश्चात् विद्यालय में आने का और गायकी की कमी को पूर्ण करने का अधिकार नहीं रहता, यह स्पष्ट है। इन दो विद्यार्थियों का वह अधिकार कायम रहे, इसीलिए इन्हें सर्टिफिकेट न दिये जाने के सम्बन्ध में मैंने सूचना दी है।

मराठा बोर्डिंग की संगीत कक्षा से कुछ विद्यार्थी इस वर्ष परीक्षा में सम्मिलित हुए थे। इस कक्षा की ओर से यह पहला ही प्रयत्न था और उस दृष्टि से वह अच्छा रहा। उस कक्षा में मुझे कुछ विद्यार्थी होनहार दिखाई दिये। मुख्यतः विद्यार्थियों को पर्याप्त स्वरज्ञान हुआ दिखाई दिया। उनका इन्टोनेशन भी अच्छा था। एक साल के हिसाब से कार्य कम पाया गया। किन्तु इन विद्यार्थियों को संगीत विषय के लिए समय कम मिलने के कारण उनका कार्य सेन्ट्रल विद्यालय जैसा होना संभव नहीं था, यह स्पष्ट है। दूसरी बैच में बहुत से विद्यार्थी अभी कमजोर हैं। यह प्रयत्न इसी प्रकार जारी रहकर इस कक्षा में से भी धीरे-धीरे ग्रेज्युएट तक के विद्यार्थी निकलें, यह मेरी मनोकामना है। कुछ लड़कों के कण्ठ मधुर हैं व उचित प्रयत्न करने पर वे उत्तम रीति से गा सकेंगे, ऐसी मुझे उम्मीद है। इस कक्षा को जितना अधिक उत्तेजन मिलेगा, उतना अच्छा होगा। दूसरी बैच में से एक विद्यार्थी का अभ्यास अच्छा था। यद्यपि यह सब सच है, तथापि आपका ध्यान एक बात की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। मराठा बोर्डिंग की संगीत कक्षा में छात्र बहुत कम हैं। क्या इतने छात्रों के लिए अधिक वेतन प्राप्त करनेवाला शिक्षक रखना उचित होगा? एक कक्षा में कम से कम पंद्रह विद्यार्थी होने चाहिए, ऐसा अपना नियम है। यदि वे उतने न हों तो सेन्ट्रल स्कूल के शिक्षकों को बाहर भेजना सुविधाजनक नहीं होगा। इसलिए मुझे लगता है कि, यह कक्षा केवल मराठा बोर्डिङ्ग के विद्यार्थियों तक ही मर्यादित न रखते हुए, बाहर के समस्त छात्रों के लिये खुली रखी जानी ठीक होगा। बोर्डिंग के अधिकारियों को यदि यह सूचना ठीक प्रतीत हुई, तो उसे अमल में लाने का प्रयत्न किया जाय। अन्यथा मि० तात्या साँवले को पुनः सेन्ट्रल स्कूल में बुलाया जाकर उनके पास हेडमास्टर उचित कक्षा दें।

इस वर्ष तबला-पखावज कक्षा की परीक्षा मि० पर्वतसिंह के सुपुत्र की मदद से ली गई। उन्हें "एक्सपर्ट" के नाते सहायता के लिए आमंत्रित किया गया था। इस कक्षा में अभ्यासक्रम पूर्ण किए हुए दो विद्यार्थी देखने में आये। इन दो विद्यार्थियों को आगामी जलसे में सर्टिफिकेट देने में हर्ज नहीं। शेष विद्यार्थियों का कार्य ठीक चल रहा है।

इस वर्ष गायन की तीसरी, चौथी तथा पाँचवीं कक्षाओं की थियरी की लिखित परीक्षा के परिणाम संलग्न हैं। पेपर किस प्रकार लिखे जाते हैं, यह समझाया ही गया है।

आगामी वर्ष में तबला व पखावज कक्षा की परीक्षा भी लिखित व मौखिक होना निश्चित किया है और उसकी जानकारी शिक्षक एवं विद्यार्थियों को दी है।

सितार कक्षा का कार्य अभी तक संतोषप्रद नहीं है। इस कक्षा से केवल चार विद्यार्थी परीक्षा में दाखिल किए गए थे। समयावधि के प्रमाण में कार्य कम ही देखा गया। मेरे मत से सितार कक्षा में कम से कम बारह विद्यार्थी होने चाहिए। सितार "एक्सपर्ट" अभी तक विद्यालय को प्राप्त नहीं हुआ, यह स्पष्ट है। उसके प्राप्त होने तक यश मिलना सम्भव नहीं।

हार्मोनियम कक्षा में कुल चौदह विद्यार्थी परीक्षा में सम्मिलित हुए थे। उनमें से दो तृतीय वर्ष के, पाँच द्वितीय वर्ष के और सात प्रथम वर्ष के थे। तृतीय वर्ष के विद्यार्थी कुछ ठीक बजाते हैं, फिर भी उन्हें अभी तक हार्मोनियम का खास बाज़ साध्य हुआ नहीं दिखाई दिया। मेरा ख्याल है कि उन्हें अभी बहुत मेहनत करनी चाहिए।

आगामी वर्ष के लिए कुछ सूचनाएँ

नए भरती के अनुसार स्कालर की नियुक्ति होनी चाहिए। उस स्कालर को चाहिए कि नये छात्रों को तीन माह में स्वर का ज्ञान कराकर, अलंकार सिखाकर, प्रथम वर्ष के कोर्स में दाखिल करा दें और यही इस प्रवेश कक्षा का ध्येय है। इस कक्षा में एक-एक दो-दो साल तक छात्रों को घिसवाना नहीं चाहिए। यदि वे नियमित रूप से न आते हों, तो हाजिरी रजिस्टर से उनके नाम कम किये जाकर हेडमास्टर सेक्रेटरी साहब को रिपोर्ट करें और उनकी आज्ञा के अनुसार कार्य करें।

परसों श्रीमन्त महारानी साहिबा से मैंने विनंति की कि, सितार सिखाने के लिए सरकारी नौकर को कुछ अतिरिक्त वेतन देकर हफ्ते में तीन दिन विद्यालय में सितार सिखाने की आफिशियल सूचना दी गई तो विद्यालय के सितार कक्षा का बहुत हित होगा। महारानी साहिबा को यह सूचना पसन्द आई और यह कल्पना मेम्बर साहब के सम्मुख रखने के लिए मुझे आज्ञा दी। उक्त महाशय को दरमाह रुपये १५) अलौंस पर हफ्तें में तीन बार बुलाया गया तो बहुत ही अच्छा होगा। महारानी साहिबा की ऐसी स्पष्ट इच्छा देखकर ही यह बात मेम्बर साहब के सम्मुख प्रस्तुत करते भी मैं विनन्ति कर रहा हूँ।

श्रीमन्त महारानी साहिबा ने मुझे यह भीं कहा है कि, इसी प्रकार अलौंस देकर···का उपयोग यदि हार्मोनियम कक्षा के लिए हुआ, तो उन्हें पसन्द होगा।

V. N. Bhatkhande
Examr

संग्रहीत तथा रचित अप्राप्य गीत

पं० भातखण्डे द्वारा

संग्रहीत तथा रचित अप्राप्य गीत

संग्रहीत गीत तालिका

क्रमांक	राग	आद्याक्षर	ताल	प्राप्ति-स्थान
१.	यमन	शाहा जे कर्म	एकताल	आशिकअली
२.	मलुहा केदार	कैसे उजियारी	तिलवाड़ा	आशिकअली
३.	गुणकली	मोहे लेत रस	तिलवाड़ा	मुहम्मदअली
४.	सूहा	आज रे बधावरा	तिलवाड़ा	(?)
५.	शहाना	सासाधधनि̱पमप	त्रिताल	(?)
६.	जौनपुरी	मलिया झूम रहे	एकताल	आशिकअली
७.	जौनपुरी	मलिया झूम रहे	रूपक	आशिकअली
८.	मालकंस	काल की चिरैया	तिलवाड़ा	आशिकअली
९.	तोड़ी	सगुन बिचारो रे	तिलवाड़ा	आशिकअली
१०.	गूजरी तोड़ी	एरी माई आज	तिलवाड़ा	हैदरखाँ
११.	गूजरी तोड़ी	समझ मन गोरख धंधा	त्रिताल	मुहम्मदअली
१२.	कालिंगड़ा	हरी आला बनावन	झपताल	(?)
१३.	बहार	आयो है बसंत	झपताल	(?)



श्री गणपति बुवा भिलवड़ीकर



स्व० पं० दत्तात्रेय केशव जोशी



स्व० उस्ताद नज़ीर खाँ मुरादाबाद वाले



स्व० श्री एकनाथ उर्फ भाऊ पंडित

आदर्श गायक



स्व० उस्ताद जाकिरुद्दीन खाँ एवं अलाबन्दे खाँ बन्धुद्वय

प्रिय गायक



स्व० उस्ताद फैयाज़ हुसेन खाँ

पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे द्वारा संग्रहीत गीतों के कुछ नमूने स्व० श्री शंकरराव कारनाड़ के पत्र-संग्रह से यहाँ पर उद्धृत किये हैं। मूल पत्रादि पं० भातखण्डे की हस्तलिपि में हैं। गीतों के साथ दी हुई टिप्पणियाँ भाषांतरित की हैं। गीत-संग्रह की यह बहुत बड़ी फाइल प्रो० बी० आर० देवधर ने संगीत नाटक अकादमी, देहली तक पहुँचाकर उसे सुरक्षित किया है। नया गीत प्राप्त होते ही उसकी अनेक प्रतियाँ बनाकर अपने मूल स्वरूप में शिष्य-मित्रों को भेजना पं० भातखण्डे की परिपाटी बन चुकी थी। गीत क्रमांक १२ और १३ डॉ० श्री० ना० रातांजनकर ने उपलब्ध किये हैं। सम्भवतः ऐसे अनेक गीत आज भी जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े होंगे। उनके संकलन का प्रयत्न राष्ट्रीय भावना से होना चाहिये। प्रत्येक गीत भले ही नया अथवा अप्रकाशित न हो, परन्तु उसका मूल स्वरूप, प्राप्ति-स्थान आदि की दृष्टि से जिज्ञासुओं के लिये उनका आज अत्यंत महत्व है। संशोधनात्मक प्रवृत्ति से किये हुए गीतों के अभ्यास से ही संगीत का छिपा हुआ इतिहास पुनर्गठित होना सुलभ हो जाएगा।

—संपादक

राग यमन, ताल एकताल (विलम्बित)

स्थायी

								प			म पग शाऽ
प	–	–	,ध	नि(सां)	–	निध	प	ग	–	ध	प
हा	ऽ	ऽ	,जे	क ऽ	ऽ	र्म ऽ	ऽ	ब	ऽ	र्म	ने
३		४		×		०		२		०	

ग											
री	ग	री	सा	पग	प	–	गरी	प	ग	–	री
ग	ऽ	ऽ	र	दर	वे	ऽ	श ऽ	नि	ग	ऽ	ऽ
३		४		×		०		२		०	

सा री | सा सासा | री ग | री गमंपप | प ग | प री
ऽ ऽ | र ब र | हा ऽ | ले मऽऽनू | खे ऽ | स्ते ओ
३ ४ × ० २ ०

गमं प | – गरी | प ग | – री | सा री | सा ,पग
दिल रे | ऽ श ऽ | नि ग | ऽ ऽ | ऽ ऽ | र ,शाऽ
३ ४ × ० २ ०

अन्तरा

प ग | प धप | सां – | –रीं सां | सांसांनिध निध | सां रींनि
ह र | चं ऽऽ | दे ऽ | ऽने अम् | लाऽऽऽ ऽय | के ऽऽ
३ ४ × ० २ ०

गं रीं | सां (सां) | पपधनि सांनि | निध प | सां रीं | सां –
ऽ ब | क ऽ | शाऽऽऽ ऽइ | शेऽ तो | ब रे | मन् ऽ
३ ४ × ० २ ०

नि ध | प गमंपप | प ग | –ध प | प ग | प –री
म नि | ग ऽऽऽर | ब ऽ | ऽर्क र | में ऽ | खे ऽश्
३ ४ × ० २ ०

प ग | री सा, पग |
नि ग | ऽ र, शा ऽ |
३ ४

गायक—आशिक अली

मुखड़े का पाठभेद

म॑
प ग
शाऽ

प
प — | — — ध | रींरींसांनि सां | निध प | ग — | ,ध प |
हा ऽ | ऽ ऽजे | क ऽ ऽ ऽ ऽ | मं ऽ ऽ | ब ऽ | ,मं ने |
३ ४ × ० २ ०

री ग | री सां
ग ऽ | ऽ र
३ ४

टिप्पणी—मेरे स्मरण के अनुसार आशिक अली ने शा ऽ । हा ऽ । ऽ जे ऐसा ही गाया था । मैंने दूसरों को ऊपर लिखे हुए पाठान्तरित मुखड़े के अनुसार अपनी सम रखते हुए सुना है । इसी प्रकार थोड़ी सावधानी से अंतरा भी ठीक किया जा सकता है ।

Bhatkhande

सूचना—यमन राग में यही ख्याल 'शाहानामा' शीर्षक से ग्वालियर में झूमरा ताल में गाया जाता है । स्थायी की सम

म॑ नि
सारेगम॑ प म॑प पम॑ | निध प म॑प,ध
हेऽऽऽऽ ऽऽ शाऽ | हाऽ ऽ ऽऽ,ज
३ ×

सां ध सां प ध
निसां निध सांसांरींरीं सांनिसां | नि ध प | नि नि (प)-म॑प इत्यादि
क ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ | रं ऽ ऽ | ब ऽ मं ऽ ऽ न्
२ ० ३

प्रकार से 'हा' अक्षर पर दी जाती है । शाहानामे की पंक्तियाँ स्व० राजाभैया पूछवाले से निम्नानुसार प्राप्त हुई थीं । "हे शाहा जकरं बर्मन् मनिगर दरवेश निगर बहाले मने ख्वाहिश्ता निगर ।। हर्चन्द नेयं लायेक बक्शाई शे तो बर्मन् मनिगर बर्कमें अहे ख्वेष निगर ।।"

मुखड़े का पाठभेद

मं
प ग
शाऽ

प
प — | — — ध | रींरींसांनि सां | निध प | ग — | ,ध प |
हा ऽ | ऽ ऽ जे | क ऽ ऽ ऽ ऽ | मंऽ ऽ | ब ऽ | ,मं ने |
३ ४ × ० २ ०
री ग | री सां
ग ऽ | ऽ र
३ ४

टिप्पणी—मेरे स्मरण के अनुसार आशिक अली ने शा ऽ। हा ऽ। ऽ जे ऐसा ही गाया था। मैंने दूसरों को ऊपर लिखे हुए पाठान्तरित मुखड़े के अनुसार अपनी सम रखते हुए सुना है। इसी प्रकार थोड़ी सावधानी से अंतरा भी ठीक किया जा सकता है।

Bhatkhande

सूचना—यमन राग में यही ख्याल 'शाहानामा' शीर्षक से ग्वालियर में झूमरा ताल में गाया जाता है। स्थायी की सम

मं नि
सारेगमं प मंप पमं | निध प मंप,ध
हेऽऽऽ ऽ ऽऽ शाऽ | हाऽ ऽ ऽऽ,ज
३ ×

सां ध सां प ध
निसां निध सांसांरींरीं सांनिसां | नि ध प | नि नि (प)-मंप इत्यादि
क ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ | रं ऽ ऽ | ब ऽ मं ऽ ऽ न्
२ ० ३

प्रकार से 'हा' अक्षर पर दी जाती है। शाहानामे की पंक्तियाँ स्व० राजाभैया पूछवाले से निम्नानुसार प्राप्त हुई थीं। "हे शाहा जकरं बर्मन् मनिगर दरवेश निगर बहाले मने ख्वाहिश्ता निगर ।। हर्चन्द नेयं लायेक बक्शाई शे तो बर्मन् मनिगर बर्कमें अहे ख्वेष निगर ।।"

स्पष्टतः उपरोक्त दोनों पाठभेद त्रुटिपूर्ण हैं। स्वर लिपि के अभाव में ऐसे उत्कृष्ट गीत भी क्या से क्या हो जाते थे, इसका यह उत्तम उदाहरण है। सम्भवतः इन्हीं कारणों से पं० भातखण्डे जी ने ऐसे सैकड़ों परम्परागत गीतों का शुद्धीकरण किया था। उन पर जुगलबन्दियाँ बाँधीं अथवा उनके ऐसे प्राप्त स्वरूप में उन्हें सुशिक्षितों के हाथों में न देना श्रेयस्कर समझा।

—सम्पादक

राग मलुहा केदार, ताल तिलवाड़ा (विलम्बित)

स्थायी

		ध	नि
री सा — म,मग	प सा — —	प सा — —	सा री सा —
कै से ऽ उ,जिऽ	या री ऽ ऽ	प्या री ऽ ऽ	ला ग त ऽ
३	×	२	०
नि सा	ग	ध	
सा मग प —	प (प) — ग	ग म प ग	म री सा ऽ
त नऽ मों ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
३	×	२	०
नि सा	ग	प	री
सा मग प प	प (प) — ग	ग म प ग	म री नि सा
पि याऽ घ र	ना ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ हीं ऽ।।
३	×	२	०

अंतरा

म म म म	प	नि	नि नि
ग ग ग ग	गमप गम री सा	सा धप सा सा	सासा सा सारी सा
म न रं ग	पीऽऽ ऽऽ त म	क वन दे स	गव न कीऽ नो
३	×	२	०

(नि़ सा) सा मग प —	ध प प (प) मंपध	(मं) प मग मरी री	नि़ नि़ सा —
का हेऽ ना ऽ	प ठा ई पऽऽ	ती याऽ ऽ ऽ ऽ	री ऽ ऽऽ ॥
३	×	२	०

अथवा

अथवा	नि़ सा सा —
	ऽ ऽ री ऽ
	०

अथवा

(नि़ सा) सा मग प —	ध प — पग	मंपध पपग	(ग री) म री नि़ सा
का हेऽ ना ऽ	प ठा ऽ ईऽ	पऽऽ तीयाऽ	ऽ ऽ ऽ री
३	×	२	०

गायक — आशिक अली

राग गुणकली, ताल त्रिताल (विलम्बित)

स्थायी

पप धनि सांरीं सांसां	सां — ध —	सां — ध प	(मं) प सां — सां
मोऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ	हे ऽ ऽ ऽ	ले ऽ ऽ त	र स ऽ ब
०	३	×	२

ध — प प	पप धध पप पप	मम मम रीरी सा	(नि़ सा) सा ध़ — प़
ती ऽ य न	सोऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ	ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽ	सु घ ऽ र
०	३	×	२

सा — री सा	(नि़ सा) सा प प ग	मरी सा री सा	मम रीम मरी सासा
ना ऽ ऽ र	सु र ज न	वाऽ प्या रे को	माऽ ऽऽ ऽऽ ऽन ॥
०	३	×	२

अन्तरा

				सां				मं	मं	मं					
प	प	–	प	ध	–	सां	सां	गं	गं	गं	रीं	पं	–	गं	गं
स	ज	ऽ	सिं	गा	ऽ	ऽ	र	सु	ख	मा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	न
०				३				×				२			

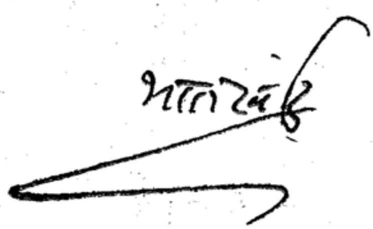
प				सां				ग				सां			
ग	प	सां	सां	ध	–	प	ग	प	ग	प	–	ध	सां	सां	सां
सा	ऽ	ऽ	ज	नी	ऽ	ऽ	ऽ	बे	ग	ऊ	ऽ	ठ	ऽ	च	ल
०				३				×				२			

गं सां
सां सां सां सां । रीं गं रीं सां(सां) । सां – ध प

ऽरींऽ सांऽ(सां) धधमधप मममरीसा
तऽऽ ऽऽऽ ऽऽऽऽऽ ऽऽऽऽन
२

गायक—मुहम्मद अली

टिप्पणी—गीत का अंत बेतुका था, जिसे मैं ठीक-ठीक समझ न सका।



राग सूहा, ताल तिलवाड़ा (बिलम्बित)

स्थायी

प
नि
,आ

म म प | प नि प | प प
प,मप ग ग म, म प | सां – निसां नि | म प मप ,मप | सां – निसां ,नि नि
ज,ऽऽ रे ऽ ऽ ,ब ऽ | धा ऽ ऽऽ वा | ऽ ऽऽऽ ,ब ऽ | ने ऽ ऽऽ ,लाऽ
३ × २ ०

म म म सा नि प म
प, मप ग ग म निप | सां गम री सा | सां म म ,प | मपनिनि पमपग म ,नि
ड, ऽऽ ले ऽ के ऽ ऽ | ऽ घ ऽ ऽ र | गा ऽ वो ,मा | ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ई ,आ
३ × २ ०

अन्तरा

प म प सां प सां सां सां नि
म पप निप ,निनि | सां सांसां रींनिसां सां | निप ,नि नि सां – सां | रीं सां,सांरीं सांप निप
बा ऽल केऽ घ र | ब्या ह र चोऽऽ है | अत ,सुं गं ऽ ऽ ध | अं ग, मऽ लाऽ ऽयो
३ × २ ०

म म म म म म सा नि म
प गगम प,निप सां | प,मप गगम री सा | साम म प प | मपनिनिपम पगम म नि
आ छेऽब्र ने,ऽऽ को | गै,ऽऽ येऽब्र जा ये | रीऽ झा इ ये | माऽऽऽऽऽ ऽऽऽई आ
३ × २ ०

टिप्पणी

प्रिय शंकरराव,

इसे तुम्हारे अनुमोदन के लिए भेज रहा हूँ। यह उस धमार पर आधारित है जिसके बारे में तुमने पिछले रविवार को संकेत किया था।

शुभ कामनाओं सहित—

V. N. Bhatkhande

सूचना—सम्भवतः यह गीत पं० भातखण्डे की रचना है। नवीन गीत रचना की दिशा में उनके प्रयत्नों की पृष्ठभूमि क्यों और कैसी बनती थी, इसका यह प्रत्यक्ष उदाहरण है।

—सम्पादक

राग शहाना, सरगम (त्रिताल)

स्थायी

नि नि	ध	ध	
सा सा ध ध	। नि प म प	। सां – नि प	। म प ग म
०	३	×	२
प			प म
नि प ग म	। रे रे सा –	। सा सा म म	। म प ग म
०	३	×	२
ध		प	
नि ध नि प	। ध म प प	। सां – नि प	। म प ग म ॥
०	३	×	२

अन्तरा

प म प नि सां	— सां नि सां	सां नि सां रें सां	सां प नि सां नि॒ प
०	३	×	२
नि॒ ध नि॒ प	ध म प प	प सां — नि॒ प	प म प ग॒ म
०	३	×	२
प म नि॒ प ग॒ म	रे रे सा —	सा सा म म	प म म प ग॒ म
०	३	×	२
ध नि॒ ध नि॒ प	ध म प प	प सां — नि॒ प	म प ग॒ म ॥
०	३	×	२

राग जौनपुरी (सारंगांग तथा देसी अंग)—एकताल

स्थायी

सा री	रीग॒ सारी	प मरी	मरीमरी म	री सा	री सा
म लीं	याऽ ऽऽ	झू ऽऽ	ऽऽऽऽऽ	म ऽ	र हैं
३	४	×	०	२	०

नि़ सानि़	री सा	नि़ सा	री सा	प नि़॒ प	नि़॒ प	नि़॒ सा	— नि़॒सा
नि मुऽ	वा ऽ	अथवा मो ऽ	रे ऽ	शो ऽ	ऽ ऽ	के ऽ	ऽ ऽऽ
३	४	३	४	×	०	२	०

सा री	सा री री	म म ग॒ ग॒	सा म री	— सा	रीरीसानि़ सा
वा री	या ऽ	ई ऽ	ऽ ऽ	ऽ सो	ऽऽऽऽऽ ॥
३	४	×	०	२	०

अन्तरा

प	प			सां	
म प	नि॒ प	सां —	निसां सां	नि सां	सां सां
ह रे	ह रे	पा ऽ	तऽ वा	लो ने	लो ने
३	४	×	०	२	०
नि	प				
सां निप	नि॒ प	प पम	नि॒ प	म रीरी	सा नि़सा
ला ऽऽ	ग त	वा ऽऽ	ही के	तो ऽड	ले ऽऽ
३	४	×	०	२	०
सा	री				
नि़ सा	मरी म	नि॒ प	सां —	निसांरींरीं सांनि॒पम	पमरीसा रीसा
ध न	हीऽ ऽ	ध न	वा ऽ	ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ ऽऽ ।
३	४	×	०	२	०

गायक--आशिक अली

राग जौनपुरी, ताल रूपक (मध्यलय)

स्थायी

		री			नि़
सा री	रीग॒ सारी	प मरी म	री सा	री सा	सासा रीसा
मा लि	याऽ ऽऽ	झू ऽऽ ऽ	म ऽ	रं हे	नि मु वाऽ
२	३	⊗	२	३	⊗

अथवा | सासा री सा
नि मु वा ऽ
⊗

प			नि	सा	म म
नि़ – प़	नि़ प़	सा – नि़सा	सा री	री री	ग़ ग़ म
शो ऽ ऽ	ऽ ऽ	के ऽ ऽ ऽ	वा री	आ ऽ	ई ऽ ऽ
२	३	⊗	२	३	⊗

सा		
री –	सा –	रीरीसानि़ सा नि़सा
रे ऽ	सो ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ र ॥
२	३	⊗

अंतरा

प	प		नि		सां
म प	नि़ प	सां सां सां	सां सां	सां सां	सां रीं सां
ह रे	ह रे	पा तु वा	लो ने	लो ने	ला ऽ गी
२	३	⊗	२	३	⊗

प		म			
नि़ प	नि़ प	प म नि़प प	म री	सा नि़सा	– – –
रे ऽ	ऽ ऽ	वाऽ हींऽ के	तो ड़	ले ऽऽ	ऽ ऽ ऽ
२	३	⊗	२	३	⊗

सा		
निं़सा रीम	पप नि़प	रींरींसानि़ पमरीसा रीसा
धन हींऽ	धन वाऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
२	३	⊗

अथवा

म		
नि़ सा रीम	प प	नि़ प
ध न हींऽ	ध न	वा ऽ ॥
⊗	२	३

टिप्पणी—गीत का अंतिम अंश संतोषप्रद नहीं है।

Bhatkhande

सूचना—'मलिया झूम रहे' जयपुरवाले श्री आशिक अली से प्राप्त जौनपुरी राग का यह गीत दो पाठ भेदों में दिया है। गीत का राग भी संदेहास्पद है। एक ही गायक के कण्ठ से दो पाठ भेदों का पाना मौखिक परम्परा की अनिश्चितता दर्शाती है। स्वरलिपि के अभाव में ऐसे परिवर्तन हो जाना स्वाभाविक ही तो था। —सम्पादक

राग मालकौंस, ताल त्रिताल (विलम्बित)

स्थायी

सा री नि सा ग म नि
निसा —साध —नि | सा सा म मग | म ग म ध | नि सा —निसां
काऽ ऽलकी ऽचि | रै या बो लेऽ | प र उ रे | सोऽ ऽ ऽऽ
३ × २ ०

म म म सा म नि म म
सां निध निध म | ग ग म ग सा | म नि ध नि | ध म गग म सा
ओ ऽऽ ऽऽ ऽ | ऽऽ ऽ ऽ ऽ | प ल उ घ | र ग ईऽ ऽऽ ॥
३ × २ ०

नि, सा गध — ,नि |
का, ऽ लकी ऽ ,चि |
३

अन्तरा

सा सां सां
म म मग ,ग | म म नि ध | नि नि सां ,सां | सां — सां सां
हम कोऽ ,आ | व त ब द | ग ये ऽ ,स | दा ऽ रं ग
३ × २ ०

सां सां नि
नि नि सां सां | सां नि ध म | धनि सांनि ध नि | ध म गम गसा
अ ज हूँ न | आ ऽ ये ऽ | पौंऽ ऽऽ था ऽ | डोऽ ऽऽ लेऽ॥
३ × २ ०

गायक—आशिक अली

राग तोड़ी, ताल तिलवाड़ा (विलम्बित)

स्थायी

प ध॒		नि॒	सा
ध॒ म॑ग॒ री॒ग॒ री॒सा	री॒ – सा नि॒सा	सा – नि॒ ध॒	नि॒ सा सारी॒ सारी॒ग॒
स गुऽ ऽऽ नबि	चाऽ ऽ ऽऽ	रोऽ ऽ ऽ	रे ऽऽऽ ऽऽऽ
३	×	२	०

ग॒		सा	ध॒
री॒ सा नि॒सानि॒सारी॒ नि॒ध॒	ध॒ नि॒ सा ,सा	नि॒ –ध॒ नि॒ ध॒ प	म॑ ध॒ नि॒ सा
ब म ऽऽऽऽऽ नाऽ	पि या ऽ ,क	ब ऽ ऽ ऽऽऽ	आ ऽ ऽ ऽ
३	×	२	०

	नि॒		ग॒
री॒ ग॒ री॒ सा	ध॒ नि॒ सा –	नि॒ सा सारी॒ सारी॒ग॒	री॒ – सा नि॒सा
वे ऽ गे ऽ	मो ऽ रे ऽ	ऽ ऽ ऽऽ ऽऽऽ	दे ऽ रे ऽऽ ॥
३	×	२	०

अंतरा

म॑ नि सां		ध॒	
प प ध॒ ,नि	सां सां सां –, निसां	म॑ ध॒ निसां सांरीं॒सांरीं॒गं॒	रीं॒ सां निसां,निसांरीं॒सां निध॒
पि या के ,आ	व न की ऽ, ऽ ऽ	क ह देऽ रेऽऽऽऽ	मों ऽ ऽऽ, ऽऽऽऽ सोंऽ
३	×	२	०

ध॒	ध॒ ध॒	ग॒	
नि ध॒ प –, म॑प	म॑प म॑पध॒ म॑ ग॒	री॒ – ग॒ ग॒	म॑ध॒निध॒ ध॒म॑ग॒री॒ ग॒री॒सा
तो ऽ हे ऽ, ऽऽ	दूऽ ऽऽऽगी ऽ	द ऽ ऽ छ	ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽना।
३	×	२	०

गायक—आशिक अली

गूजरी तोड़ी, ताल धीमा त्रिताल (न अधिक विलंबित न अति द्रुत)

स्थायी

धु म॑ गु धु म॑ धु	धु रीं सांनि सां निधु	धु म॑ गु धु —	धु म॑ गु रीरी सा
ए रि मा ई	आ ऽऽ ऽ जब	धा ऽ वा ऽ	सा ऽ जन वा
३	×	२	०

अथवा

धु म॑ गु रि सा
सा ऽ ज न
०

सा नि़ सारी नि़ धु़	सा सा री गुगु	म॑ गु गु म॑री गु	धु म॑ धुधु धु म॑धु म॑गु
घ रऽ अ त	आ नं द सन	बा ज़ि लोऽ ऽ	मो रे मं दिल राऽ
३	×	२	०

अन्तरा

नि धु म॑ गु	म॑ म॑ धु —	म॑ धु नि नि	सां — सां —
च तु र मा	ल नि यां ऽ	बि न बि न	ला ऽ ई ऽ
३	×	२	०
नि धु धु धु	नि सां सांरीं गुं	रीं — सां सां	सां निसां निसांरीं नि धु
सु घ र मा	ल नि यांऽ ऽ	हा ऽ र गु	थाऽ ऽऽऽ ई ऽ
३	×	२	०
नि धु गुं रीं गुं	रीं नि सांरीं नि धु	नि धु नि — सांरीं	नि धु म॑ गु
बे ऽ ला च	मे ऽऽ ली ऽ	के ऽ ऽ हर	वा ऽ ऽ ऽ ॥
३	×	२	०

गायक—हैदर खाँ, धार

सूचना—हिंदुस्तानी संगीत पद्धति भाग चौथा (सन् १९३२ की आवृत्ति) के पृष्ठ ९५२ पर पं० भातखण्डे ने इस गीत का उल्लेख किया है। इस प्रसंग पर पाठकों के लिए वह गीत स्वर लिपि सहित उपलब्ध हो रहा है। हैदर खाँ द्वारा लिखाई हुई अंतरे की अंतिम पंक्ति त्रुटि पूर्ण प्रतीत होती है। एक ही गीतखण्ड में 'हार' शब्द का दो बार आ जाना ठीक नहीं है। 'बेला चमेली के हरवा' के स्थान पर 'बेला चमेली केवरा' शब्द सयुक्तिक है। शुद्धिकरण के लिए पं० भातखण्डे अपनी कलम केवल ऐसे ही स्थानों पर चलाते थे। परिवर्तित पंक्ति ऐसी हो जावेगी —

नि	
ध नि — सांरीं	नि ध मं ग
के ऽ ऽ ऽव	रा ऽ ऽ ऽ
२	०

—सम्पादक

राग गूजरी तोड़ी, ताल त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

ग	री री	सा	नि स
सा री री सा	ग ग री सा	नि — सा री	नि — ध —
म झ म न	गो ऽ र ख	धौं ऽ ऽ ऽ	धा ऽ ऽ ऽ
०	३	×	२
ध			सा
मं ध — नि	सा — सा सा	सारी सारीग री सा	नि सारी नि ध
ज़ मी ऽ आ	का ऽ स प	रऽ ऽऽऽ दो उ	क ड़ीऽ या ऽ
०	३	×	२
री — ध ध	मं ग ग ग	मं री ग —	री — सा सा
पाँ ऽ च प	ची ऽ स प्र	बौं ऽ ऽ ऽ	धौ ऽ ऽ, स ॥
०	३	×	२

अंतरा

ध		नि	
मं ग मं ध	सां — सां सां	ध नि सां रीं	निसां निसांरीं नि ध
जा ऽ दि न	ते ऽ उ र	झो ऽ सु र	झोऽ ऽऽऽ न हिं
०	३	×	२
सां		ध ध	
नि ध मं ग	री ग री सा	नि नि ध मं	ग — री, सा
या ऽ झ ग	रे ऽ स न	मैं ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ धा, स ॥
०	३	×	२

गायक—मुहम्मद अली

राग कालिंगड़ा, ताल झपताल (दोनों मध्यम)

स्थायी

पर्म — ध	नि सां	नि — ध	प —
हऽ ऽ री	आ ऽ	लाऽ व	ना ऽ
३	×	२	०
पर्म — ध	नि सां	नि ध प	मंप —
वऽ ऽ न	पू ऽ	र ऽ न	चंऽ ऽ
३	×	२	०
गम — ग	री सा	म ग म	प ध
ऽऽ ऽ द्र	मि स	स दा हु	से न
३	×	२	०
नि सां रींरीं	सां नि	धनि सां नि	ध प
जै ऽ नु ल	आ व	दीन ऽ के	नं द ॥
३	×	२	०

अंतरा

ध —	पर्म — ध	नि सां	सां सां —
दी ऽ	नऽ ऽ के	का ऽ	र न ऽ
×	२	०	३
नि ध	नि सां —	रीं सां	रींसां — —
इं द्र	व रु ऽ	नी ऽ	ऽऽ ऽ ऽ
×	२	०	३
रीं गं	गं — रीं	सां नि	ध सां रीं
वा ऽ	मैं ऽ ल	छु टि	वा ऽ स
×	२	०	३
सां नि	ध सां नि	ध प	
चा रो	ज ग सु	गं ध ॥	
×	२	०	

सूचना—कालिंगड़े के साथ परज के संयोग का संकेत पं० भातखण्डे ने किया है। परंतु वह प्रयोग दोनों मध्यमों सहित किया जाय, ऐसा उनका मन्तव्य नहीं था। अर्थात् ऐसे गीत लक्ष्यप्रधान न होने के कारण प्रकाशित न किये होंगे। —सम्पादक

राग बहार, (सा री ग म प ध नि) ताल झपताल

स्थायी

					म म			नि	नि
सा	म	—	पनिम	प	ग ग		म	ध	ध
आ	ऽ	ऽ	यो	ऽ	है ऽ		ब	सं	ऽ।
२			०		३			×	

नि									
ध	नि	सां	—	सां	ध	नि	सां	रीं	रीं
त	ब	औ	ऽ	र	बा	ऽ	ऽ	ग	न।
२			०		३			×	

सां	नि	सां	सां	—	नि	सां	रीं	सां	रीं
ब	सी	ऽ	है	ऽ	धू	ऽ	म	बे	ऽ।
२			०		३			×	

						सां			
नि	सां	—	ध	ध	नि	नि	सांनि	प	म
लि	न	ऽ	प	ग	पुं	ऽ	ज	अ	रु।
२			०		३			×	

			म	म					
नि	म	प	ग	ग	म	पम	प	म	री
पी	ऽ	रु	द	र	शा	ऽऽ	न	है	ऽ।
२			०		३			×	

अंतरा

निध	निध	नि	सां	नि	सां	—	सां	सां	सां
गुं	ऽ	ज	ऽ	र	हे	ऽ	भं	व	र।
×		२			०		३		

नि	सां	सां	नि	सां	सां	—	सां	नि	सां
ड	व	र	ड	व	र	ऽ	फू	ऽ	ले।
×		२			०		३		

मं गं	—	मं	पंमं	पं	मं गं	मं गं	मं	रीं	सां	
फ़	ऽ	ल	न	में	फ	लि	त	ऽ	स ।	
×		२			०		३			
रीं	—	सां	सां	सां	नि	सां नि	सांनि	ध	नि	
मी	ऽ	र	म	सु	गं	ऽ	ध	स	र ।	
×		२			०		३			
म	नि	ध	नि	सां	ध	—	नि	—	सां	
सा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	न	
×		२				०	३			
रीं	सां									
है	ऽ ।									
×										

सूचना—बहार राग में कोमल धैवत का प्रयोग लक्ष्यप्रधान तो था ही नहीं, वरन् छात्रों तथा सुशिक्षितों के लिये भ्रमपूर्ण भी हो जाता ।

—सम्पादक

पण्डित भातखण्डे द्वारा

रचित अप्राप्य गीत

राग	क्रमांक	आद्याक्षर	ताल	प्राप्तिस्थान
यमन	१	हे मन गाय प्रभू को भाई	त्रिताल	गीतमालिका भा० २, पृ०सं० १८
भूपाली	२	धर चतुर सुघर गुरु चरना	त्रिताल	,, ,, ३, ,, ३
हमीर	३	हमें समझावो चतरवा हमीर	त्रिताल	,, ,, ६, ,, १४
	४	शंभो महादेव	झपताल	,, ,, १, ,, १४
केदार	५	पदारथ आद कहे संगीत	त्रिताल	,, ,, २१, ,, ६
	६	छिन लव काष्टा	त्रिताल	श्री० ना रातांजनकर
	७	धीरोदात्त ललित	सूलताल	गीतमालिका भा० ४, पृ० सं० १३
	८	गावत नाम प्रभुको	मल्लताल १३ मात्रा,	श्री० ना० रातांजनकर
कामोद	९	रेरेपप मपधधप कामोद की जान	झपताल	गीतमालिका भा० ६, पृ०सं० १७
छायानट	१०	सूच्छम सुर साथ गावे	चौताल	श्री० ना० रातांजनकर
मालश्री	११	मेल कल्याण ओड़व राग	रूपक	गीतमालिका भा० १०, पृ० सं० २१
हिंडोल	१२	एमन सुर मिलाय	सूलताल	,, ,, ४, ,, २४
अलैया बि०	१३	गुनि गाय अष्टभेद	चौताल	,, ,, १७, ,, १४
नवरोचिका	१४	नवरोचिका रूप बखाने	तीव्रा	इन्साइक्लोपीडिया १, पृ०सं० ४२
सरपरदा	१५	जब से सजन परदेस सिधारे	त्रिताल	गीतमालिका भा० ३, पृ०सं० १३
देवगिरी बि०	१६	जब सिरिधर मुख	त्रिताल	,, ,, १, ,, ७
देसकार	१७	साधत सुर सूंदर	सूलताल	बालाभाऊ उमड़ेकर
बिहाग	१८	राग बिहाग चतुर गुनि गावत	त्रिताल	गीतमालिका भा० ११, पृ०सं० ४
	१९	तीव्रा कुमुदवती मन्दा	त्रिताल	श्री० ना० रातांजनकर
	२०	द्रुत द्वय विरम	चंद्रक्रीड़ा ९ मात्रा,	बालाभाऊ उमड़ेकर
	२१	जय जगपाला रे	जगपाल ११ मात्रा,	बालाभाऊ उमड़ेकर
मांड	२२	नंदलाल जी छो गालो ठाड़ो	दादरा	एम० के० सामन्त
	२३	दीन बन्धु दीननाथ	दादरा	एम० के० सामन्त
	२४	प्रभु मेरी करनी पर मत जैयो	त्रिताल	एम० के० सामन्त
देस	२५	जा रे जा जा रे पतंगबा	चित्रताल १५ मात्रा,	श्री० ना० रातांजनकर

तिलककामोद	२६ ताल मणि गाय सुजन	मणिताल ११ मात्रा,	श्री० ना० रातांजनकर
सोरठ	२७ रघुवर तेरोहि दास कहाऊँ	त्रिताल	गीतमालिका भा० ३, पृ०सं० ४
नागस्वरावली	२८ पधसा गमगसा गमप गम गसा	त्रिताल	श्री० ना० रातांजनकर
भैरव	२९ तीवर तरतीवर तीवरतम	सूलताल	गीतमालिका भा० २, पृ०सं० १४
	३० भैरव विभास परभात गुनकरि गवरि	झपताल	,, ,, १६, ,, ४
	३१ दीन दयाल कृपाल	त्रिताल	,, ,, १७, ,, ३
अहीर भैरव	३२ कर जोर मोर	चौताल	इन्साइक्लपीडिया १, पृ० सं० ६१
श्री	३३ वादी समवादी अनुवादी के भेद	चौताल	गीतमालिका भा० १०, पृ०सं० १२
	३४ तमोगुण राजसगुण सत्वगुण	सूलताल	,, ,, २, ,, १९
परज	३५ मोरे मन कर नाम सुमरन	फरोदस्त १३ मात्रा,	श्री० ना० रातांजनकर
	३६ नाचत गजलीला	गजलीला १७ मात्रा,	श्री० ना० रातांजनकर
	३७ काहे मदन इतनो श्रम	एकताल	गीतमालिका भा० २, पृ०सं० ७
मालिगौरा	३८ कर याद चतुर तूं आज	त्रिताल	श्री० ना० रातांजनकर
बि० सारंग	३९ बिलसत बिन्द्रावनी अधग	झपताल	गीतमालिका भा० ६, पृ०सं० १०
	४० जय जय सारंगपाणें	मुकुन्दताल २० मात्रा,	श्री० ना० रातांजनकर
लंका० सा०	४१ रट हर प्रिया को नाम	झपताल	इन्साइक्लोपीडिया १, पृ०सं० १३२
हंस-किंकिणी	४२ नये नये सिंगार सखी	झपताल	श्री० ना० रातांजनकर
नीलांबरी	४३ चतुर गुनिवर राग बरनत	तीव्रा	बालाभाऊ उमड़ेकर
दरबारी	४४ राग अलाप चतुर गुनि माने	झूमरा	श्री० ना० रातांजनकर
चंद्रकौंस	४५ चंद्रकौंस के गुन गाय	त्रिताल	बालाभाऊ उमड़ेकर
देव गांधार	४६ गावत मिल गांधार	सूलताल	इन्साइक्लोपीडिया १, पृ०सं० १५३
आभीरी	४७ संग लिये अभीर गन	झपताल	,, १, ,, १५४
कौंसी	४८ हे जगदीश चतुर मुरार	तीव्रा	,, १, ,, १६१
मालकौंस	४९ मूल क्रम आद लिखत	चौताल	गीतमालिका भा० ५, पृ० सं० २१
	५० हर को हर हर में पछाना	त्रिताल	श्री० ना० रातांजनकर
भैरवी	५१ कौन सौतन में बिरमाय	यतिशेखर ३० मात्रा,	श्री० ना० रातांजनकर
	५२ गावत सरस ताल	सारस ताल १८ मात्रा,	गी० भा० ६, पृ०सं० ३
तोड़ी	५३ जाय शरन तुं मुकौंदा मोरे मन	त्रिताल	,, ,, ६, ,, १९
	५४ गिरिधर चरन कमल	त्रिताल	,, ,, ६, ,, २१
	५५ नाहक पीतड़ि तोड़ी हमते	त्रिताल	,, ,, ६, ,, २३
बहादुरीतोड़ी	५६ अनुद्रुत द्रुत बिराम	सूलताल	इन्साइक्लोपीडिया १, पृ० सं० १७४

'लक्ष्यसङ्गीत' की ओजस्वी गायिका एवं उसके कुशल वादक :—



श्रीमती अंजनीबाई मालपेकर

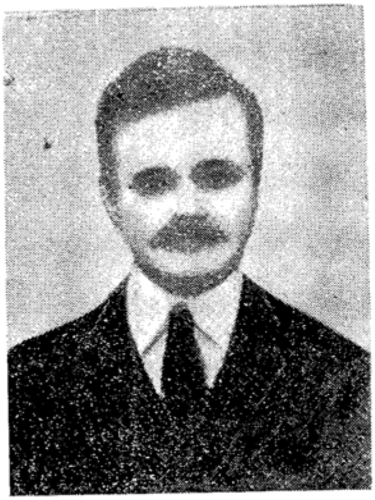


स्व० उस्ताद बुन्दू खाँ

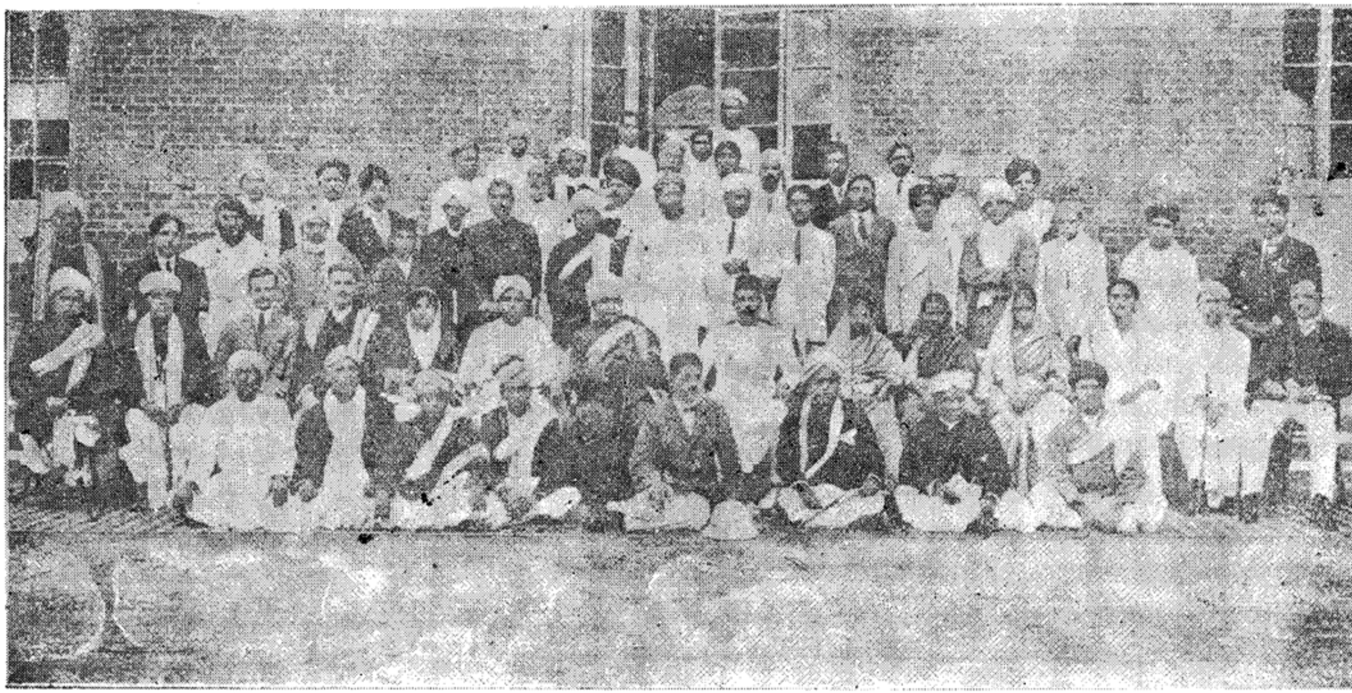
समकालीन विद्वान्



स्व० श्री कृष्णाजी बल्लाल देवल



स्व० ई० क्लेमेन्ट्स, आई० सी० एस०



बड़ौदा में अखिल भारतीय संगीत परिषद् के प्रथम अधिवेशन में विद्वानों के बीच
परिषद् के स्थायी सचिव पं० भातखण्डे
[१९१६]

इस पुस्तक में आये हुए ताल-लक्षण गीतों के लिए उपयुक्त ठेके

चन्द्रक्रीड़ा-मात्रा ६

मात्रा—१ २ | ३ ४ | ५ | ६ ७ ८ ९ |
ठेका —धि त्रक | धी ना | त्रक | धा धी धी ना | तबला
ताल —× २ ३ ४

जगपाल-मात्रा ११

मात्रा—१ २ ३ ४ ५ / ६ ७ | ८ ९ | १० ११ |
ठेका —धा ति ट धा ऽ / क त्ता | तिट कत | गदि गिन | मृदंग
ताल —× २ ३ ४

ठेका —धा ऽक धी धी ना । त्रक धी । ना धी । धी ना । तबला
ताल— × २ ३ ४

मणिताल-मात्रा ११

मात्रा—१ २ ३ | ४ ५ / ६ ७ ८ | ९ १० ११ |
ठेका —धा धिन नक | धेत धेत / धिन नक तिट | कत गदि गिन | मृदंग
ताल—× २ ३ ४

ठेका —धीं ऽ त्रक । धी ना । तिं ऽ ना । धी धी ना । तबला
ताल —× २ ३ ४

मल्लताल-मात्रा १३

मात्रा—१ २ ३ ४ | ५ ६ ७ ८ | ९ १० | ११ १२ | १३ |
ठेका —धिं धिं धागे त्रक | धिं ऽ धा त्रक | तू ना | कत् ऽत्ता | त्रक | तबला
ताल —× २ ३ ४ ५

फरोदस्त-मात्रा १३

मात्रा—१ २ | ३ ४ | ५ ६ | ७ ८ ९ | १० ११ १२ १३ |
ठेका —धि त्रक | धी ना | तू ना | क त्ता त्रक | धी ऽक धी ना | तबला
ताल —× २ ३ ४ ५

चित्रताल-मात्रा १५

मात्रा—१ २ | ३ ४ ५ | ६ ७ ८ ९ | १० ११ १२ १३ | १४ १५
ठेका —धा धिट | धा दि त्ता | धा धे धे त्ता | तिट कत गदि गिन | धा कत्
ताल —× २ ३ ४ ० मृदंग

ठेका —धी ना । धी धी ना । तू ना क त्ता । त्रक धी ना धी । धी ना ।
ताल —× २ ३ ४ ० तबला

गजलीला-मात्रा १७

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	
ठेका —	धा	धी	ट्ट	धा	क	द्धी	ट्ट	धा	तिट	कत	गदि	गिन	
ताल —	×				२				३				

१३	१४	१५	१६	१७	
धा	तिट	कत	गदि	गिन	मृदंग
४					

ठेका —धा धि धि धा । तृक धि धि धा । तू ना क त्ता ।
ताल —× २ ३

त्रक धि धागे नधा त्रक । तबला
४

सारस ताल-मात्रा १८

मात्रा —	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	
ठेका —	धा	धी	ट्ट	धा	तिट	धा	क	द्धा	तिट	धा	क	द्धी	ट्ट	धा	
ताल —	×				२		३		४		५				

१५	१६	१७	१८	
तिट	कत	गदि	गिन	मृदंग

मुकुन्दताल-मात्रा २०

मात्रा —	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
ठेका —	धा	धी	ट्ट	धा	क	द्धा	तिट	धा	क	द्धी	ट्ट	धा
ताल —	×				२		३		४			

मात्रा —	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	
ठेका —	तिट	धा	दिं	ता	तिट	कत	गदि	गिन	मृदंग
	५								

यतिशेखरताल-मात्रा ३०

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
ठेका—	धी	ऽक	धी	ना	धी	धी	ना	धी	धी	ना	तू	ना	क	त्ता
ताल—	×		२				३				४		५	

मात्रा—	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६
ठेका—	त्रक	धीं	धीं	ना	धागे	त्रक	तू	ना	धिं	त्रक	धी	धी
ताल—	६				७		८		९			

मात्रा—	२७	२८	२९	३०	
ठेका—	ना	धी	धी	ना	तबला
	१०				

—'सुजान'

रचित गीत

पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे द्वारा रचित इन कतिपय गीतों को 'अप्राप्य' इसलिए कहा गया है कि इन गीतों को बाद में हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति ग्रंथमाला के क्रमिक भागों में अथवा राजा नवाबअली साहब के मारिफुन्नगमात में स्थान नहीं दिया गया था। इनमें से बहुत से गीत सन् १९१६ से लेकर १९२१ तक प्रकाशित गीतमालिका के सत्रह भागों में प्रसिद्ध हो चुके हैं। गीतमालिका की यह प्रतियाँ आज तो केवल देखने के लिए भी दुर्लभ हो गयी हैं। अखबार के सस्ते कागज पर छपे हुए इन छोटे-छोटे भागों में १५ से २० तक संगृहीत अथवा रचित गीतों की स्वरलिपि बड़े टाइप में, मात्र चार आना मूल्य पर उस समय बेची गईं। ऐसा लगता है, परम्परागत गीत सस्ते दामों पर अधिक संख्या में उपलब्ध करा देने के पं० भातखण्डे के अभियान का यह एक अंश है। इस प्रसंग पर पाठकों की सेवा में इन अप्राप्य गीतों को उपलब्ध कराया जा रहा है। शेष गीतों के प्राप्ति-स्थान का उल्लेख गीत के अंत में किया है। ताल-लक्षण-गीतों की अप्रचलित तालों के ठेके डॉ० श्री० ना० रातांजनकर ने विशेष अनुरोध पर जिज्ञासुओं के लिए तैयार किये हैं।

—सम्पादक

राग यमन, ताल त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

			ग
सा री सा सा	ग – ग री	ग मं प –	री – सा –
हे ऽ म न	गा ऽ य प्र	भू ऽ को ऽ	भा ऽ ई ऽ
३	×	२	०

			ध़
सा सा नि़ नि़	सा ग री सा	नि़ ध़ सा –	नि़ नि़ प़ –
क ल जु ग	सा ऽ ध न	दू ऽ जो ऽ	ना ऽ हीं ऽ।
३	×	२	०

अंतरा

प ग प प	प नि ध सां	नि नि सां –	नि ध प –
नि त उ ठ	भ ट क भ	ट क तूं ऽ	फि र ता ऽ
३	×	२	०

		प	ग
मं मं प ध	नि ध प –	ग – ग प	री – सा –
ह र रं ग	प्र भु को ऽ	ची ऽ नो ऽ	ना ऽ हीं ऽ।।
३	×	२	०

—गीतमालिका भाग २, पृष्ठ १८

राग भूपाली, ताल त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

सां सां

ध र

		ग	प
ध प ग री	सा ध़ सा री	प ग ग –	ध प ग री
च तु र सु	घ र गु रु	च र ना ऽ	त र ना ऽ
०	३	×	२

प सां		सां	प
ग प ध सां	ध प ग री	गं रीं सां रीं	सां ध सां सां
भ व नि ऽ	स्त र ना ऽ	दु ख ह र	ना ऽ, ध र।।
०	३	×	२

अंतरा

प	सां		
ग ग ग ग	प — ध ध	सां — सां सां	सां रीं सां सां
जो इ जो इ	ध्या ऽ व त	वां ऽ छि त	पा ऽ व त
०	३	×	२

			सां
सां ध ध ध	सां सां रीं रीं	सां रीं गं रीं	रीं सां धप ग
टा ऽ र त	पु न र ज	न म औ र	म र नाऽ ऽ
०	३	×	२

प		ग	
ग — ग री	ग — ध प	री — री सा	सा री सा सा
छां ऽ ड वृ	था ऽ अ भि	मा ऽ न स	क ल अ ब
०	३	×	२

सां — गं रीं	सां — प ध	रीं सां ध प	ग — सां सां
जा ऽ श र	ना ऽ सं ऽ	सृ ति हृ र	ना ऽ ध र।
०	३	×	२

—गीतमालिका भाग ३, पृष्ठ ३

राग हमीर, ताल त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

ध	ध		नि
नि ध सां सां	नि नि म॑प ध	म॑ प ग म	ध — — ध
ह में स म	झा ऽ वोऽ च	त र वा ह	मी ऽ ऽ र ।
२	०	३	×

सां	नि		
नि ध रीं सां	ध — प ध	म॑प ध प —	प प प ध
ह में स म	झा ऽ वो पि	यऽ र वा ऽ	क व न मे
२	०	३	×

— ध प प	ग म री सा	— री सा सा	सां सां ध सां
ऽ ल औ र	क व न वा	ऽ दि सु र	क व न स
२	०	३	×

	नि		नि
सां रीं सां नि	ध — प ध	म॑ प ग म	ध — — ध
म य क हे	धी ऽ र च	त र वा ह	मी ऽ ऽ र ॥
२	०	३	×

अंतरा

प प प प	सां — सां सां	सां सां सां सां	सां रीं सां सां
क व न वि	लो ऽ म क	व न अ नु	लो ऽ म क ।
×	२	०	३

सां सां सां सां			नि
ध ध ध ध	सां सां सां सां	सां रीं सां सां	ध ध प प
सु र सं ऽ	ग त क व	न गु नि ज	न सु म त
×	२	०	३

		नि	
सां सां गं मं	रीं सां रीं सां	ध — प ध	म॑ प ग म
क व न अं	ऽ ग क हे	धी ऽ र, च	त र वा ह
×	२	०	३

नि
ध — — ध
मी ऽ ऽ र
×

—गीतमालिका भाग ६, पृष्ठ १४

राग हमीर, ताल झपताल (मध्यलय)

स्थायी

×	२	०	३
	सां सां		सां
सां –	ध – रीं	सां –	ध नि̱ प
शं ऽ	भो ऽ म	हा ऽ	दे ऽ व
			म
मं प	ध ध प	प –	ग म री
भा ऽ	स्व र शि	वा ऽ	कां ऽ त
ग म	ध ध प	मग मरी	सा री सा
प शु	प त स	दाऽ ऽऽ	नं ऽ द
	सां		सां
सां सां	ध ऽ रीं	सां सां	ध नि̱ प
गि रि	जा ऽ प	त म	हे ऽ श ।।

अंतरा

×	२	०	३
प –	सां – सां	सां सां	सां रीं सां
गं ऽ	गा ऽ ध	र त्रि	ने ऽ त्र
सां			सां
ध –	सां – रीं	सां –	ध नि̱ प
शू ऽ	ली ऽ म	हे ऽ	शा ऽ न
सां –	गं मं रीं	सां रीं	सां – सां
पं ऽ	च व द	न पु	रा ऽ रि
	सा		सां
सां सां	ध सां रीं	सां सां	ध नि̱ प
भ ज	च त र	तू ग	णे ऽ श ।।

—गीतमालिका भाग १, पृष्ठ १४

राग केदार, ताल त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

प प

	ग		
प – ध प	म – री सा	री – सा –	म – – म
दा ऽ र थ	आ ऽ द क	हे ऽ सं ऽ	गी ऽ ऽ त ।
२	०	३	×

			ग
	प – प प	ध – प प	म – री सा
	ना ऽ द श्रु	ती ऽ स्व र	ग्रा ऽ म मू ।
२	०	३	×

	सा	नि नि ध	
– री सा –	सां – सां –	ध ध सां रीं	सां – म, प
– छं ना ऽ	सा ऽ धा ऽ	र न की ऽ	री ऽ त, प ।।
२	०	३	×

अंतरा

प			
प – प सां	– सां सां सां	सां – सां सां	सां रीं सां सां
ग्रा ऽ म रा	ऽ ग उ प	रा ऽ ग रा	ऽ ग पु नि ।
०	३	×	२

सां सां ध			सां
ध – ध सां	– सां सां सां	सां रीं सां –	ध नि प –
चा ऽ र अं	ऽ ग औ र	ती ऽ नों ऽ	भा ऽ षा ऽ ।
०	३	×	२

	ध	ग	
म – म –	प – प –	म – री –	सा री सा –
जो ऽ जा ऽ	ने ऽ सो ऽ	जा ऽ ने ऽ	वा ऽ को ऽ ।
०	३	×	२

सा	सां ध	
सां – सां सां	ध – सां रीं	सां – म प
च ऽ त्र क	हे ऽ पं ऽ	डि ऽ त, प ।।
०	२	×

—गीतमालिका भाग ६, पृष्ठ २१

राग केदार, ताल सूलताल (मध्यलय)

स्थायी

सा	री	सा	—	म	—	म	म	म	म
धी	ऽ	रो	ऽ	दा	ऽ	त्त	ल	लि	त ।
×		०		२		३		०	
(ग) म	—	प	—	ध	ध	प	म	—	म
धी	ऽ	रो	ऽ	द्ध	त	सु	शां	ऽ	त ।
×		०		२		३		०	
(ग) म	—	प	प	सां	—	रीं	सांनि	ध	प
ना	ऽ	य	क	भे	ऽ	द	कऽ	ह	त ।
×		०		२		३		०	
(ग) म	—	ध	प	(ग) म	—	री	सा	री	सा
सा	ऽ	हि	त	शा	ऽ	स्त्र	सु	म	त ॥
×		०		२		३		०	

अंतरा

(मं) प	—	सां	सां	सां	सां	सां	रीं	सां	सां
द	ऽ	क्षि	ण	श	ठ	अ	नु	कु	ल ।
×		०		२		३		०	
(नि) ध	—	सां	रीं	सां	नि	ध	प	म	म
धृ	ऽ	ष्ट	च	तु	र	ज	न	म	त ।
×		०		२		३		०	
(ग) म	—	प	प	(नि) सां	रीं	सां	नि	ध	प
उ	ऽ	त्त	म	अ	ध	म	म	ध्य	म ।
×		०		२		३		०	
(ग) म	म	ध	प	(ग) म	—	री	सा	री	सा
गु	णि	उ	प	भे	ऽ	द	क	र	त ॥
×		०		२		३		०	

—गीतमालिका भाग ४, पृष्ठ १३

राग केदार, ताल मल्लताल (मात्रा १३)

स्थायी

सा म प प	मं प ध ध	मं प	प म	म
गा ऽ व त	ना ऽ म प्र	भू ऽ	को ज	ब
×	२	३	४	५
म – म म	प – ध प	म म	री री	सा
मा ऽ न व	पा ऽ व त	सु ख	वि श	द
×	२	३	४	५
सा – सा –	री – री सा	सा सा	(सा)ध़ ध़	प़
मृ ऽ त्यू ऽ	लो ऽ क वि	ष य	त ज	ता
×	२	३	४	५
सा – म –	प – ध प	म म	री री	सा
मि ऽ थ्या ऽ	ज्ञा ऽ न सुं	ज नि	त स	ब ॥
×	२	३	४	५

अंतरा

प – सां सां	सां – सां सां	(सां)ध ध	सां रीं	सां
गा ऽ य के	दा ऽ र गु	ण सु	नि य	म
×	२	३	४	५
(सां)सां सां ध ध	सां सां रीं सां	सां नि	ध प	म
ल घु द्व य	द्रु त द्व य	ए क	वि र	म
×	२	३	४	५
म – म –	म म प प	सां सां	ध ध	प
सं ऽ तो ऽ	षि त म न	प्र भु	च त	र
×	×	३	४	५
सां सां रीं रीं	सां – ध प	म प	म री	सा
ब क स त	वां ऽ छि त	अ म	र प	द ॥
×	२	३	४	५

संग्राहक—श्री० ना० रातांजनकर

राग कामोद, ताल झपताल (मध्यलय)

स्थायी

(म)री	री	प	—	प	मं	प	ध	ध	प
×		२			०		३		

(मं)प	—	ध	—	प	(म)प	—	म	—	म
का	ऽ	मो	ऽ	द	की	ऽ	जा	ऽ	न।
×		२			०		३		

(ग)म	—	ध	—	प	(ग)म	सा	(सा)री	—	सा
क	ऽ	ल्या	ऽ	ण	सु	र	मे	ऽ	ल।
×		२			०		३		

(ग)म	री	प	ध	प	(ग)म	सा	री	—	सा
म	ऽ	ध्य	म	जु	ग	ल	मा	ऽ	न।।
×		२			०		३		

अंतरा

प	प	सां	सां	सां	सां	रीं	सां	—	सां
रि	प	क	ह	त	स	म	बा	ऽ	द
×		२			०		३		

सां	सां	रीं	—	सां	रीं	सां	(सां)ध	—	प
ग	नि	अ	ऽ	ल्प	प	र	मा	ऽ	न
×		२			०		३		

(ग)म	म	प	—	प	(प)सां	सां	सां	ध	प
प्र	थ	म	ऽ	प	ह	र	को	नि	स
×		२			०		३		

(मं)प	—	ध	ध	प	(ग)म	सा	री	—	सा
मा	ऽ	न	त	च	तु	र	गा	ऽ	न।।
×		२			०		३		

—गीतमालिका भाग ६, पृष्ठ १७

राग छायानट, ताल चौताल (बिलम्बित)

स्थायी

ध	—	प	प	प	प	प	री	री	ग	गम	प
सू	ऽ	च्छ	म	सु	र	सा	ऽ	ध	गा	वेऽ	ऽ
×		०		२		०		३		४	
म	प	ग	म	री	सा	सा	—	—	(सा)ध़	—	प़
गु	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	नि	जो	ऽ	ऽ	जा	ऽ	ने
×		०		२		०		३		४	
सा	—	—	—	—	री	री	—	री	ग	(री)ग	प
शा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	स्त्र	ऽ	प्र	ऽ	ऽ	ऽ
×		०		२		०		३		४	
म	—	—	—	प	ग	—	म	री	सा	री	सा
मा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	न ॥
×		०		२		०		३		४	

अंतरा

प	—	प	सां	—	सां	सां	सां	रीं	सां	—	सां
ला	ऽ	ग	डाँ	ऽ		द	प	ट	घाँ	ऽ	स
×		०		२		०		३		४	
सां	सां	रीं	गं	मं	पं	मं	गं	मं	रीं	सां	सां
स	ज	ऽ	से	हे		औ	र	ऽ	ग	हृ	त
×		०		२		०		३		४	
सां	सां	ध	ध	प	धपमप	ग	म	प	सा	री	सा
जु	र	त	फु	र	तऽऽऽ	सु	र	त	तु	र	त
×		०		२		०		३		४	
सा	सा	—	ध़	—	प़	सा	री	(सा)री	ग	(री)ग	प
क	र	ऽ	दि	ऽ	ख	ला	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
×		०		२		०		३		४	

म —	— —	प ग	— म	री सा	री सा
ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ वे
×	०	२	०	३	४

	म			सा	री
सा —	ग प	प सां	ध प	री ग	ग प
ता ऽ	ही ऽ	जा ऽ	नो ऽ	स ऽ	ऽ ऽ
×	०	२	०	३	४

म —	— —	प ग	— म	री सा	री सा
ग्या ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ न ॥
×	०	२	०	३	४

संचारी

ग —	म ग	— म	प —	प प	— प
स ऽ	प्त सू	ऽ र	ती ऽ	न ग्रा	ऽ म
×	०	२	०	३	४

प प	— —	— प	ध —	प प	— प
ए की	ऽ ऽ	ऽ स	मू ऽ	र छा	ऽ न
×	०	२	०	३	४

री ग	— ग	म प	म गप	मरी सा	री सा
बा ऽ	ऽ रा	ऽ ऽ	बी ऽऽ	ऽऽ क्र	ऽ त
×	०	२	०	३	४

				सा	री
सा सा	— ध़	— प़	सा री	री ग	ग प
उ नं	ऽ चा	ऽ स	कू ऽ	ऽ ऽ	ट ऽ
×	०	२	०	३	४

म —	— —	प ग	— म	री सा	री सा
ता ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ न ॥
×	०	२	०	३	४

आभोग

प	प	—	सां	—	सां	सां	—	रीं	सां	—	सां
य	ह	ऽ	भे	ऽ	द	गा	ऽ	य	बे	ऽ	के
×		०		२		०		३		४	
सां	सां	—	रीं	गं	मं	पं	गं	मं	रीं	सां	—
क	हे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	जा	ऽ	वे	है	ऽ
×		०		२		०		३		४	
				सां				म		री	
सां	सां	रीं	सां	ध	ध	प	—	री	ग	ग	प
ह	र	रं	ग	क	ह	त	ऽ	ब	ऽ	ऽ	ऽ
×		०		२		०		३		४	
म	—	—	—	प	ग	—	म	री	सा	री	सा
खा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	न ।।
×		०		२		०		३		४	

संग्राहक—श्री० ना० रातांजनकर

राग मालश्री, ताल रूपक (मध्यलय)

स्थायी

मं	प			म	
प —	ग प	ग सा सा	सा —	ग प	प — प
मे ऽ	ल क	ल्या ऽ ण	ओ ऽ	ङ व	रा ऽ ग
२	३	०	२	३	०

मं					
प प	ग सा	सा ग प	प —	सां —	सां पग
रि ध	व र	ज दिं न	चौ ऽ	थे ऽ	प्र ह र
२	३	०	२	३	०

प			मं		
ग —	प प	सां — प	प गमं	ग प	ग सा सा
मा ऽ	ल सि	री ऽ को	क रऽ	त ब	खा ऽ न ।।
२	३	०	२	३	०

अंतरा

मं			नि		
प —	सां सां	सां — सां	सां, गंसां	गं पं	गं — सां
पं ऽ	च म	वा ऽ दि	अ तुऽ	ही ऽ	सो ऽ हे
२	३	०	२	३	०

			प		
सां सां	प ग	सा ग प	सां सां	पग गप	ग सा सा
म नि	सु र	अ ऽ ल्प	च तु	रऽ प्रऽ	मा ऽ न ।।
२	३	०	२	३	०

—गीतमालिका भाघ २०, पृष्ठ २१

राग हिन्दोल, ताल सूलताल (मध्यलय)

स्थायी

(सा) सां	—	सां	सां	सां	सां	सां	सां	—	ध
ऐ	ऽ	म	न	सु	र	मि	ला	ऽ	य
×		०		२		३		०	

म॑ध	म॑ध	(ध) सां	सां	सां	—	ध	म॑	—	ग
रिऽ	पऽ	सु	र	दे	ऽ	छु	पा	ऽ	य
×		०		२		३		०	

ग	—	सा	सा	(सा) ध़	—	म़॑	ध़	सा	सा
गा	ऽ	व	त	प्रा	ऽ	त	स	म	य
×		०		२		३		०	

सा	—	ग	—	(ग) म॑	म॑	म॑	ग	—	सा
हिं	ऽ	दो	ऽ	ल	क	क	हा	ऽ	या
×		०		२		३		०	

अन्तरा

(म॑) ग	—	म॑	ध	(ध) सां	—	सां	—	सां	सां
धै	ऽ	व	त	वा	ऽ	दीं	ऽ	सु	र
×		०		२		३		०	

सां	—	(सां) गं	—	सां	सां	सां	ध	ध	ध
गौं	ऽ	धा	ऽ	र	सु	स	ह	च	र
×		०		२		३		०	

			सा											
सा	सा	।	ग	ग	।	मं	ध	।	नि	ध	।	सां	ऽ	
×			०			२			३			०		

मं													
सां	सां	|	ध	मं	|	मं	ग	|	मं	ग	|	—	सा
ह	र	|	रं	ग	|	म	न	|	रि	झा	|	ऽ	य
×			०			२			३			०	

—गीतमालिका भाग ४, पृष्ठ २४

राग अलैया बिलावल, ताल चौताल

स्थायी

नि			नि			नि					
सां	सां	–	ध	नि॒	प	ध	नि॒	ध	प	म	ग
गु	नी	ऽ	गा	ऽ	य	अ	ऽ	ष्ट	भे	ऽ	द
×		०		२		०		३		४	

म			म						ग		
री	म	री	ग	म	प	म	ग	म	री	–	सा
रा	ऽ	ग	नी	ऽ	बि	ला	ऽ	ऽ	व	ऽ	ल
×		०		२		०		३		४	

			म			म		सां			
सा	सा	सा	ग	म	री	ग	प	ध	नि	सां	सां
स	क	ल	सू	ऽ	र	शु	ऽ	ध्द	जा	ऽ	में
×		०		२		०		३		४	

		सां		सां	ध	ध			ध		
सां	सां	गंरीं	सां	नि	नि	प	–	नि	नि	सां	—
प्र	थ	मऽ	प्र	ह	र	का	ऽ	ऽ	ल	है	ऽ।।
×		०		२		०		३		४	

अन्तरा

			नि	नि							
प	प	–	ध	ध	नि	सां	सां	–	सां	–	सां
अ	लै	ऽ	या	ऽ	शु	क	ल	ऽ	ना	ऽ	ट
×		०		२		०		३		४	

नि		रीं				नि		सां			
सां	गं	गं	मं	गं	रीं	सां	रीं	सां	ध	नि॒	प
औ	ऽ	र	इ	म	नि	ल	ऽ	च्छा	सा	ऽ	ग
×		०		२		०		३		४	

(प)ध धम	म ग	प प	नि ध	(नि)सां —	रीं सां
को ऽऽ	क भ	स र	प र	दा ऽ	पु नि
×	०	२	०	३	४
सां —	(सां)गं रीं सां	नि ध नि	प —	नि (ध)नि	सां —
दे ऽ	व ऽ गि	री ऽ ऽ	जा ऽ	ऽ ति	है ऽ ॥
×	०	२	०	३	४

—गीतमालिका भाग १७, पृष्ठ १४

राग नवरोचिका, ताल तीव्रा

स्थायी

म़ प़	ध़ प़	नि़ नि़ सा	सा —	री सा	ग री सा
न व	रो ऽ	चि का ऽ	रू ऽ	प ब	खा ऽ ने
२	३	×	२	३	×
सा सा	ग म	प ध प	ध प	म ग	म ऽ ऽ
२	३	×	२	३	×
प ग	म री	सा — —	सा री	ग सा	प़ ध़ प़
२	३	×	२	३	×

अन्तरा

सा सा	ग म	प — प	म म	प ग	म री सा
को ई	न व	रो ऽ ज	गु नि	ज न	मा ऽ ने
२	३	×	२	३	×
सा री	ग सा	ध़ ध़ प़	प ग	प ग	री — सा
पं ऽ	डि त	सु म त	च त	र ब	खा ऽ ने
२	३	×	२	३	×

—इन्साइक्लोपीडिया आफ हिंदुस्तानी म्यूजिक से उद्धृत

राग सरपरदा, ताल त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

	ग नि		नि
सा सा गभ ग	प प ध नि	सां – रीं सां	रींसांनिसां – ध प
ज ब सेंऽ स	ज न प र	दे ऽ स सि	धाऽऽऽ ऽ रे ऽ
०	३	×	२
गम गमप म ग	म ग म री	ग म प ग	गम रीग सारी सा
तऽ बऽऽ तें बि	प त भ इ	जि या में ह	माऽ रेऽ आऽ लि ।।
०	३	×	२

अन्तरा

ग सां सां		नि	गं
प – नि नि	सां – रीं सां	सां गं गं मं	री सां ध प
रै ऽ न दि	ना ऽ मो हे	जु ग प्री बि	त त सं ब
०	३	×	२
	नि		ग
प ध ध मग	प – ध नि	सां – धप ध	धम ग री सा
क ब आ वेंऽ	गे ऽ ह र	रं ऽ गऽ ह	माऽ रे आ लि ।।
०	३	×	२

—गीतमालिका भाग ३, पृष्ठ १३

राग देवगिरी बिलावल, ताल त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

	ध़	री	
सा री ग री	सा नि़ध़ सा सा	गम गग मप म	ग री सा –
ज ब सि रि	ध रऽ मु ख	दऽ रऽ सऽ न	पा ऽ वं ऽ
३	×	२	०
म	म	री	
सा सा ग –	प – ध प	म गग प म	ग री सा –
त ब वा ऽ	री ऽ छ ब	प रऽ हों ऽ	जा ऽ ॐ ऽ ।।
३	×	२	०

अंतरा

प	प	नि	नि	सां	सां	सां	सां	निं	ध	सां	सां	नि	निध	प	प
मि	गं	म	द	अ	ग	रु	क	पू	ऽ	र	कुं	कु	मऽ	मि	ल
३				×				२				०			
सा	–	म ग	प	प	प	ध	प	म	री गग	मप	म	ग	री	सा	–
सौ	ऽ	गं	ऽ	ध	स	क	ल	त	नऽ	मेंऽ	म	ला	ऽ	वुं	ऽ॥
३				×				२				०			

सूचना—सम्भवतः यह गीत पं० भातखण्डे की रचना है।

—गीतमालिका भाग १, पृष्ठ ७

राग देसकार, ताल सूलताल

स्थायी

ध	–	ध	ध	सां	सां	ध	–	प	प
सा	ऽ	ध	त	सु	र	सं	ऽ	द	र
×		०		२		३		०	
सां	सां	ध	प	ध	प	ग	री	सा	–
×		०		२		३		०	
री	री	ग	री	ग	प	ध	ध	प	ध
×		०		२		३		०	
सां	–	सां	रीं	सां	सां	ध	ध	प	प
प्रा	ऽ	त	स	म	य	म	नो	हृ	र॥
×		०		२		३		०	

अंतरा

ग	–	प	ध	सां	–	सां	सां	सां	सां
उ	ऽ	त्त	र	अं	ऽ	ग	स	ब	ल
×		०		२		३		०	
सां	–	रीं	–	सां	रीं	सां	ध	प	ध
दे	ऽ	शी	ऽ	का	ऽ	र	वि	म	ल
×		०		२		३		०	

सां	—	ध	प	ग	री	ग	री	सा	सा
धै	ऽ	व	त	वा	ऽ	दी	ऽ	स्व	र
×		०		२		३		०	
सा	सा	री	री	ग	—	प	प	प	प
म	नि	क	र	त्या	ऽ	ग	च	त	र।।
×		०		२		३		०	

संग्राहक—बालाभाऊ उमड़ेकर, ग्वालियर

राग बिहाग, ताल त्रिताल

स्थायी

सा	—	ग	म	प	—	नि	नि	सां	सां	सां	सां	नि	—	प	प
रा	ऽ	ग	बि	हा	ऽ	ग	च	तु	र	गु	नि	गा	ऽ	व	त
०				३				×				२			
ग	म	ग	म	ग	म	प (ध)	—	ग	—	म	गरी	सा	री	सा	सा
शु	ऽ	द्ध	सु	र	न	को	ऽ	ठा	ऽ	ठ	बऽ	ना	ऽ	व	त।।
०				३				×				२			

अंतरा

ग	म	ग	म	प	प	नि	—	सां	सां	सां	सां	नि	सां	सां	सां
आ	ऽ	रो	ऽ	ह	न	में	ऽ	रि	ध	न	ल	गा	ऽ	व	त
०				३				×				२			
सां	—	सां	सां	नि	—	प	—	प	प	नि	नि	सां	नि	प	प
म	ऽ	ध्य	म	सों	ऽ	शं	ऽ	क	र	को	ब	चा	ऽ	व	त
०				३				×				२			
ग	म	ग	म	प	—	नि	नि	सां	गं	रीं	सां	नि	नि	प	प
वा	ऽ	दि	गं	धा	ऽ	र	नि	खा	ऽ	द	सु	स	ह	च	र
०				३				×				२			
ग	म	ग	ग	ग	म	ध	प	म	ग॒	म	गरी	सा	री	सा	सा
रा	ऽ	त	द्वि	ती	ऽ	य	प्र	ह	र	मों	रिऽ	झा	ऽ	व	त।।
०				३				×				२			

—गीतमालिका भाग १२, पृष्ठ ४

राग बिहाग, ताल त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

ग म ग म	प प नि नि	सां — सां —	नि — प प
ती ऽ व्रा ऽ	कु मु द व	ती ऽ मं ऽ	दा ऽ अ रु
०	३	×	२
ग म ग —	ग म ध प	ग ग म ग	नि़ नि़ सा —
छ ऽ न्दो ऽ	व ति श्रु ति	च तु र ख	र ज की ऽ
०	३	×	२
म ग — म	प — नि —	सां सां सां सां	नि — प प
द या ऽ व	ती ऽ रं ऽ	ज नि र ति	का ऽ त्र य
०	३	×	२
ग म ग ग	ग म ध प	ग — म ग	नि़ — सा सा
मा ऽ न त	स ब गु नि	री ऽ ख ब	की ऽ श्रु ति ॥
०	३	×	२

अंतरा—१

ग म ग म	प — नि नि	सां — सां सां	सां सां सां सां
रौ ऽ द्री ऽ	क्रो ऽ धि गं	धा ऽ र ग	ह त नि त
०	३	×	२
सां — गं रीं	सां — नि नि	प — नि नि	सां नि प —
व ऽ ज्रि प्र	सा ऽ र नि	मा ऽ र्ज नि	प्री ऽ ती ऽ
०	३	×	२
ग म ग म	प — नि नि	सां — गं रीं	सां नि प —
म ऽ ध्य म	की ऽ क्षि ति	र ऽ क्ता ऽ	सं ऽ दी ऽ
०	३	×	२
ग म ग —	ग म ध प	म ग म ग	नि़ — सा सा
प नी आ ऽ	ला ऽ प नि	पं ऽ च म	की ऽ श्रु ति ॥
०	३	×	२

अंतरा—२

म	ग	—	म	प	—	नि	नि	सां	—	सां	—	सां	—	सां	सां
म	दं	ऽ	ति	रो	ऽ	हि	णि	र	ऽ	म्या	ऽ	धै	ऽ	व	त
०				३				×				२			
सां	गं	सां	सां	सां	—	नि	—	प	—	नि	नि	सां	नि	प	—
रा	ऽ	ख	त	उ	ऽ	ग्रा	ऽ	क्षो	ऽ	भि	णि	नी	ऽ	की	ऽ
०				३				×				२			
ग	म	ग	म	प	प	नि	नि	सां	सां	गं	रीं	सां	नि	प	प
र	त	ना	ऽ	क	र	द	र	प	न	म	त	सं	ऽ	म	त
०				३				×				२			
ग	म	ग	ग	ग	म	प	प	ग	—	म	ग	नि़	—	सा	सा
च	त	र	क	हे	ऽ	स	ब	ना	ऽ	म	य	था	ऽ	म	ति ॥
०				३				×				२			

संग्राहक—श्री० ना० रातांजनकर

राग बिहाग, ताल चंद्रक्रीड़ा—मात्रा ६ (मध्यलय)

स्थायी

प	प	म	ग	प	म	ग	नि़	सा
द	त	द्व	य	बि	र	म	ल	घु
×		२		३	४			
सा	—	सा	ग	सा	नि़	प़	प़	नि़
ता	ऽ	ल	घु	नि	वि	च	र	त
×		२		३	४			
नि़	—	सा	—	ग	म	ग	नि़	सा
सं	ऽ	गी	ऽ	त	द	र	प	न ॥
×		२		३	४			

अंतरा

प	प	नि	—	सां	सां	—	सां	—
ग्र	ह	सं	ऽ	ख्या	मा	ऽ	त्रा	ऽ
×		२		३	४			

सां	गं	मं	गं	सां	नि	प	सां	नि
जा	ऽ	मे	ऽ	अ	त	सो	ह्	त
×		२		३	४			
ग	—	म	प	नि	सां	—	गं	सां
चं	ऽ	द्र	श्री	ऽ	ड़ा	ऽ	क	हे
×		२		३	४			
प	प	ग	म	ग	सा	री	नि़	सा
अ	नु	स	र	न	क	र	म	न।
×		२		३	४			

संग्राहक—बालाभाऊ उमड़ेकर,

राग बिहाग, ताल, जगपाल—मात्रा ११ (मध्यलय)

स्थायी

गम	पनि	सां	नि	प	गम	प	ग	मग	नि़	सा
हेऽ	जग	पा	ला	रे	तुम	हो	दी	नद	या	ला
×					२		३		४	
प़	नि़	सासा	–ग	–सा	गम	पप	ग	मग	नि़	सा
की	जे	कृपा	ऽदृ	ऽष्टि	भऽ	क्तन	के	प्रति	पा	ला ॥
×					२		३		४	

अंतरा

पप	निनि	–नि	सांसां	सांसां	सांगं	मंगं	सां	निनि	प	नि
लघु	विरा	ऽम	सन	कर	त्रय	द्रुत	की	खट	मा	त्रा
×					२		३		४	
गम	गम	पनि	सांगं	निसां	सां-निध	पप	ग	म - गरे	नि़	सा
मंऽ	गल	गाऽ	यच	तर	सऽफऽ	लक	रो	भऽवऽ	या	त्रा ॥
×					२		३		४	

संग्राहक—बालाभाऊ उमड़ेकर

राग मांड, ताल दादरा

स्थायी

नि़	
सा	सा
न	न्द

ग			ग			ग			म		
री	ग	–	म	प	–	म	ग	–	गम	प	–
ला	ल	ऽ	जी	छो	ऽ	गा	लो	ऽ	ठाऽ	डो	ऽ
×			०			×			०		

प											
ग	ग	म	गरी	ग	सा	सा	–	–	–	–	सा
ज	मु	ऽ	नाऽ	ऽ	के	ती	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	र
×			०			×			०		

सां	सां	नि	ध	(म)	–	प	–	–	प	प	ध
ज	मु	ऽ	ना	के	ऽ	ती	ऽ	ऽ	र	ठा	डो
×			०			×			०		

ध						ग	ध	ग			
रीं	सां	नि	ध	प	ध	म	प	म	प	प	ध
ज	मु	ऽ	ना	के	ऽ	ती	ऽ	ऽ	र	ठा	डो
×			०			×			०		

ध		म				ग	ध				
रीं	सां	नि	ध	प	ध	म	प	म	ग,	सा	सा
ज	मु	ऽ	ना	के	ऽ	ती	ऽ	ऽ	र,	न	न्द
×			०			×			०		

अंतरा

ग											
म	म	–	म	–	म	प	–	प	पध	नि	–
ज	मु	ऽ	ना	ऽ	सो	हा	ऽ	ब	तीऽ	रे	ऽ
×			०			×			०		

प प प	ध — रीं	सां — —	ध सां सां
नि र्म ल	या ऽ को	नी ऽ ऽ	ऽ ऽ र
×	०	×	०
सां सां सांनि	ध प ध	प ग —	गम प —
क म लऽ	न की ऽ	शो भा ऽ	न्याऽ री ऽ
×	०	×	०
म ग म	गरी स री ग	सा — —	सा, सा सा
भ म र	नऽकी ऽऽ	भी ऽ ऽ	र, न न्द
×	०	×	०

इत्यादि

संग्राहक—एम० के० सामंत, वाराणसी.

राग मांड, ताल दादरा

स्थायी

			सा सा
			दी न
(म)री ग —	(ग)म प —	ग — म	(री)ग सा सा
बं धू ऽ	दी न ऽ	ना ऽ थ	हो दी न
×	०	×	०
(म)री ग —	मध प —	ग — ग	गम प —
बं धू ऽ	दीऽ न ऽ	ना ऽ थ	म्हाऽ रो ऽ
×	०	×	०
(प)म गरी सा	सारी ग रीसा	सा — —	—, सा सा
बि नऽ ऽ	तीऽ ऽ सुऽ	नो ऽ ऽ	ऽ, दी न
×	०	×	०

अंतरा (१)

सां	सां	नि	ध	–	म	प	प	प	पध	नि	–
म्हा	रे	ऽ	तो	ऽ	ऽ	श	त्रु	ध	णाऽ	जी	ऽ
×			०			×			०		
प	प	प	ध	नि	नि	सां	–	–	ध	सां	सां
भ	क्ति	क	र	न	न	दे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	त
×			०			×			०		
सां	सां	सांनि	ध	(प)म	म	प	–	ध	नि	सांनि	धप
का	म	क्रोऽ	ध	म	द	लो	ऽ	भ	म्हा	रीऽ	ऽऽ
×			०			×			०		
(प)सां	सां	नि	ध	ध	नि	प	–	ग	मध	प	–
सु	म	ति	को	ह	र	ले	ऽ	त	म्हाऽ	री	ऽ
×			०			×			०		
पम	ग	रीसा	साऽरी	ग	रीसा	सा	–	–	–,	सा	सा
बिऽ	न	ऽऽ	तीऽ	ऽ	सुऽ	नो	ऽ	ऽ	ऽ,	दी	न
×			०			×			०		

इत्यादि

अंतरा (२)

सां	सां	नि	ध	म	म	प	–	प	पध	नि	–
भ	व	सा	ग	र	के	च	ऽ	क्र	मेंऽ	ऽ	ऽ
×			०			×			०		
प	प	प	ध	नि	नि	सां	–	–	ध	सां	सां
आ	न	प	ड्यो	म	ज	धा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	र
×			०			×			०		

सां सां सांनि	ध (प)म म	प प ध	नि सांनि धप
क रु णाऽ	भ व न	क बी र	जी काऽ ईऽ
×	०	×	०
(प)सां सां नि	(नि)ध ध नि	(ध)प — ग	मध प —
म्हा ने क	रो प्र भु	पा ऽ र	म्हाऽ री ऽ
×	०	×	०
पम ग रीसा	सारी ग रीसा	सा — —	—, सा सा
बिऽ न ऽऽ	तीऽ ऽ सुऽ	नो ऽ ऽ	ऽ, दी न
×	०	×	०

इत्यादि

संग्राहक—एम० के० सामंत, वाराणसी

राग मांड, ताल त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

म	(री री)ग ग सा सा
प्र	भु ऽ मे री
	२

(ग)री री म —	प प (प)ध ध	सां — धप म	गरी ग सा सा
क र नी ऽ	प र म त	जैं ऽ योऽ, प्र	भूऽ ऽ मे री
०	३	×	२
री री म —	प प (प)ध ध	सां — नि ध	सां — सां —
क र नी ऽ	प र म त	जै ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ यो ऽ
०	३	×	२

अंतरा (१)

सां — सां नि	ध — (प)म म	प प प प	(ध)प ध नि —
मैं ऽ बु ध	ही ऽ न भ	ऽ क्ति क हाँ	जो ऽ नो ऽ
०	३	×	२

ध प प ध सां	सां – सां रीं रीं	गं गं (सां) –	ध – सां –
तु म द या	ऽ ल चि त	र हि ह्यो ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
०	३	×	२
सां सां सां सांनि	प ध ध (म) –	ग सा री ग	ग – सा –
क प टि कुऽ	टि ल अ ऽ	ध म अ प	रा ऽ धी ऽ
०	३	×	२
सा सा सा रीं –	सां नि प ध	सां – धप, म	री ग ग सा सा
अ प नी ऽ	ओ ऽ र नि	बै ऽ होऽ, प्र	भू ऽ मे री
०	३	×	२ इत्यादि

अंतरा (२)

म म म म	म – म म	प — प प	प ध नि –
ब हु त ग	ई ऽ थो रि	आ ऽ य र	ही ऽ है ऽ
०	३	×	२
प – प –	ध — ध रीं	सां — नि ध	सां — सां –
मे ऽ री ऽ	ओ ऽ र चि	तै ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ यो ऽ
०	३	×	२
सां – सांनि ध	— ध (म) –	ग सा री ग	ग — सा –
सू ऽ रऽदा	ऽ स के ऽ	नि क ट न	आ ऽ बै ऽ
०	३	×	२
नि सा सा रीं रीं	ध सां नि प ध	सां सां धप, म	री ग ग सा सा
ज म अ प	ने ऽ से ऽ	क हि ह्योऽ, प्र	भू ऽ मे री
०	३	×	२ इत्यादि

संग्राहक — एम० के० सामन्त, वाराणसी

राग देस, ताल चित्रताल (१५ मात्रा)

स्थायी

सां	रीं	सां	नि	धप	ध	म	ग	सा	री	म	प	ध	म	गरी
जा	रे	जा	जा	रेऽ	प	तं	ग	वा	इ	त	नो	सं	दे	सऽ
×		२			३				४				०	

म	म	प	नि	नि	सां	सां	सां	सां	निसांरीं	सां	नि	निध	म	प
अ	ब	र	हो	ना	जा	य	मों	से	छाँऽऽ	डो	प	रऽ	दे	स ॥
×		२			३				४				०	

अंतरा

म	म	प	नि	नि	सां	सां	सां	सां	नि	सां	सां	नि	सां	सां
बि	र	हा	न	ल	त	न	स	ब	क	र	त	द	हु	न
×		२			३				४				०	

नि	नि	नि	नि	नि	सां	सां	सां	सां	निसांरीं	सां	नि	निध	म	प
तु	म	च	तु	र	जा	य	क	हो	इऽऽ	त	नो	संऽ	दे	स ॥
×		२			३				४				०	

संग्राहक—श्री० ना० रातांजनकर

राग तिलककामोद, ताल मणिताल (११ मात्रा)

स्थायी

(नि़)प़	नि़	सा	री	सा	(ग)री	म	गरी	(नि़)सा	रीग	सा।
ता	ऽ	ल	म	णि	गा	ऽ	यऽ	सु	जऽ	न
×			२		३			४		

ग री	ग	मप	पध	म	ग	—	सा	री	ग	सा
ने	ऽ	कऽ	धऽ	र	भा	ऽ	व	तूं	म	न ।।
×			२		३			४		

अंतरा

म	—	प	नि	नि	सां	सां	सां	नि	सां	सां
जा	ऽ	सों	[illegible]	रे	ज	न	न	म	र	न
×			२		३			४		

नि	सां	रीं	सां	प	प	ध	म	ग	सा	नि़
भ	व	ज	ल	धि	च	त	र	त	र	न ।।
×			२		३			४		

संग्राहक—श्री० ना० रातांजनकर

राग सोरट, ताल त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

म	री	प	प	प सां	नि॒	प ध	प	म री	ग	सा	री	म	—	—	री
र	घु	व	र	ते	ऽ	रो	ही	दा	ऽ	स	क	हा	ऽ	ऽ	ऊँ
२				०				३				×			

म	री	प	प	म री	—	म री	—	प	—	ध	म	म	री	म	गरी
र	घु	व	र	ते	ऽ	रो	ऽ	ना	ऽ	म	ज	पूं	ऽ	नि	सऽ
२				०				३				×			

नि़सा	ग री	नि़	सा	री	—	म	—	प	—	नि	नि	सां	—	रीं नि॒	धप
बाऽ	ऽ	स	र	ते	ऽ	रे	ऽ	ही	ऽ	गु	न	गा	ऽ	ऽ	ऊंऽ ।।
२				०				३				×			

अंतरा

म	म	म	प	नि	सां	सां	–	नि	–	सां	सां	नि	सां	रीं	रीं
तु	म	ही	ऽ	मे	ऽ	रे	ऽ	प्रा	ऽ	न	जि	व	न	ध	न
०				३				×				२			
गं	नि	नि	–	सां	–	सां	–	म	प	नि	सां	नि	सां	रीं	रीं
तु	म	ही	ऽ	मे	ऽ	रे	ऽ	प्रा	ऽ	न	जि	व	न	ध	न
०				३				×				२			
												नि	रीं		
नि	नि	नि	नि	सां	नि	सां	सां	सां	नि	रीं	सां	सां	नि॒	ध	प
तु	मे	त	ज	अ	न	त	न	जा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ॐ
०				३				×				२			
		नि॒ सां						म							
सां	सां	ध	नि॒	प	ध	म	म	री	री	री	गरी	सा	री	नि़	सा
तु	म	रे	ऽ	च	र	न	क	म	ल	को	ऽऽ	म	ध	क	र
०				३				×				२			
म	म														
री	री	म	म	प	–	नि	नि	सां	–	निसांरींनि॒	धप	प	री	म	प
र	त	न	ह	री	ऽ	सु	ख	पा	ऽ	ऽऽऽऽ	ॐऽ	र	घु	व	र ॥
०				३				×				२			

सूचना—इस गीत की शब्द-रचना तुलसीदास जी की है।—सम्पादक

—गीतमालिका भाग ३, पृष्ठ ४

राग नागस्वरावली, ताल त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

प़	ध़	सा	–	ग	म	ग	सा	ग	म	प	ग	म	ग	सा	–
दे	ऽ	खे	ऽ	ही	ऽ	म	न	ल	ज	त	चं	ऽ	द्र	मा	ऽ
३				×				२				०			

ग	म	प	प	सां	प	ध	म	ग	सा	ग	प	म	ग	सा	—
सुं	द	र	सु	र	त	वा	की	अ	त	हि	स	लो	ऽ	नी	ऽ
३				×				२				०			

अंतरा

ग	म	प	ध	सां	—	गं	सां	गं	मं	पं	गं	मं	गं	सां	सां
का	ऽ	ब	र	नु	ऽ	स	खी	मो	ऽ	म	न	की	ऽ	ग	त
३				×				२				०			
सां	सां	ध	प	ध	म	ग	प	सां	प	ध	म	ग	ग	सा	—
नि	र	खि	नि	र	खि	सु	ध	बु	ध	बि	स	रा	ऽ	नी	ऽ ।।
३				×				२				०			

सूचना—दक्षिण भारत के नागस्वरावली राग की यह 'सरगम' पं० भातखण्डे ने उत्तरी शैली में बनाई है। शब्द-रचना बाँध कर डॉ० रातांजनकर ने उसे गीत में परिणत किया है।—**सम्पादक**

राग भैरव, ताल सूलताल (मध्यलय)

स्थायी

सा

ध॒	—	प	प	म	प	ध॒	प	म	ग
ती	ऽ	व	र	त	र	ती	ऽ	व	र
×		०		२		३		०	
मग	मग	री॒	री॒	ग	प	म	ग	री॒	सा
तीऽ	ऽऽ	व	र	त	म	रे	ऽ	ख	ब
×		०		२		३		०	
सा	—	ध़॒	—	नि़	सा	री॒	—	सा	सा
सा	ऽ	धा	ऽ	र	न	अं	ऽ	त	र
×		०		२		३		०	
मग	री॒	ग	प	म	ग	री॒	—	सा	सा
मृऽ	दु	म	ग	त	म	ती	ऽ	व	र ।।
×		०		२		३		०	

अन्तरा

ग	ग			नि					
म	म	प	प	ध॒	ध॒	नि	सां	सां	सां
ती	ऽ	व	र	त	म	म	ऽ	ध्य	म
×		०		२		३		०	

नि	नि								
ध॒	ध॒	नि	सां	री॒ं	सां	नि	सांनि	ध॒	प
मृ	दु	पं	ऽ	च	म	ध	रिऽ	स	म
×		०		२		३		०	

म				नि		ध		नि	
ग	म	प	—	ध॒	ध॒	सां	—	ध॒	प
नी	ऽ	कै	ऽ	शि	क	का	ऽ	क	लि
×		०		२		३		०	

ध॒	सां	ध॒	प	मग	मग	री॒	री॒	री॒	सा
मृ	दु	ख	र	जऽ	विऽ	कृ	त	सु	र ॥
×		०		२		३		०	

संचारी

						नि			
सा	—	ध॒	—	ध॒	—	ध॒	—	प	प
सा	ऽ	तो	ऽ	शु	ऽ	द्ध	ऽ	स्व	र
×		०		२		३		०	

				नि				नि	
ध॒	—	ध॒	ध॒	ध॒	प	सां	—	ध॒	प
श्रां	ऽ	न	मि	ल	त	सुं	ऽ	द	र
×		०		२		३		०	

						ग			
मग	मग	री॒	—	ग	प	री॒	—	सा	—
द्राऽ	ऽऽ	बिं	ऽ	श	ति	सं	ऽ	ख्या	ऽ
×		०		२		३		०	

सा						ग			
ध़॒	—	नि़	सा	री॒	—	री॒	—	सा	सा
मा	ऽ	न	त	सो	ऽ	मे	ऽ	श्व	र ॥
×		०		२		३		०	

आभोग

मग	म	प	प	ध॒	ध॒	नि	सां	सां	सां
मेऽ	ऽ	ल	र	च	त	म	नो	ह	र
×		०		२		३		०	
री॒ं	–	री॒ं	री॒ं	सां	सां	निं	सां	ध॒	प
शु	ऽ	द्ध	बि	कृ	त	सु	स	र	ल
×		०		२		३		०	
				नि				निं	
मग	म	प	–	ध॒	ध॒	सां	सां	ध॒	प
प्रऽ	ऽ	स्ता	ऽ	र	नि	य	म	स	र
×		०		२		३		०	
प		नि				ग			
सां	सां	ध॒	प	मग	मग	री॒	री॒	सा	सा
गु	नि	ख	र	सांऽ	ऽऽ	क	च	त	र।।
×		०		२		३		०	

—गीतमालिका भाग २, पृष्ठ १४

राग भैरव, ताल झपताल

स्थायी

सा					नि			म	म
ध॒	–	ध॒	ध॒	ध॒	ध॒	–	प	प	प
भै	ऽ	र	व	बि	भा	ऽ	स	प	र
×		२			०		३		
					ग				
मग	मरी॒	री॒	ग	प	म	ग	म	री॒	सा
भाऽ	ऽऽ	त	गु	न	क	रि	ग	व	रि
×		२			०		३		
नि़		नि़							
सा	—	ध़॒	–	ध़॒	नि़	सा	री॒	–	सा
सौ	ऽ	रा	ऽ	ष्ट्र	आ	ऽ	हे	ऽ	री
×		२			०		३		

ग		म							
म	री॒	ग	म	प	म	ग	म	री॒	सा
शि	व	जो	ऽ	गि	रा	ऽ	म	क	री ॥
×		२			०		३		

अंतरा

		नि							
म	प	ध॒	—	ध॒	नि	सां	सां	—	सां
आ	ऽ	नौं	ऽ	द	बं	ऽ	गा	ऽ	ल
×		२			०		३		
नि							नि		
ध॒	—	नि	सां	रीं॒	रीं॒	सां	ध॒	—	प
पौं	ऽ	च	म	ल	ल	त	पू	ऽ	वं
×		२			०		३		
							नि		
प	ध॒	नि	सां	रीं॒	सां	—	ध॒	प	—
च	तु	र	क	हे	मे	ऽ	घ	रौं	ऽ
×		२			०		३		
ग									
म	री॒	ग	म	प	म	ग	म	री॒	सा
ज	नि	मे	ऽ	ल	रा	ऽ	ऽ	ग	नी ॥
×		२			०		३		

—गीतमालिका भाग १६, पृष्ठ १४

राग भैरव, ताल त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

								नि़							
सारी॒	मग	री॒	री॒	नि़	सा	री॒	सा	ध़॒	—	ध़॒	नि़	—	सा	सा	सा
दीऽ	ऽऽ	न	द	या	ऽ	ल	कृ	पा	ऽ	ल	आ	ऽ	ज	प्र	भु
०				३				×				२			
म	ग	म	मग	री॒	—	ग	म	प	म	ग	म	ग	री॒	—	सा
प	ति	त	नऽ	के	ऽ	हो	ऽ	तु	म	हि	प्र	ति	पा	ऽ	ल
०				३				×				२			

नि
नि़ सा ग म | ध — प — | म ग री गम | प री — सा
से ऽ व क | ली ऽ जे ऽ | अ प नो संऽ | ऽ भा ऽ ल ॥
० ३ × २

अंतरा

नि
म म प प | ध ध नि — | सां — सां सां | नि सां सां —
ज न म ज | न म लो ऽ | पा ऽ प क | मा ऽ यो ऽ
० ३ × २

नि सां नि
ध ध ध ध | नि नि सां — | रीं रीं सां सां | नि सां ध प
कु म त कु | टि ल हों ऽ | तु म बि स | रा ऽ यो ऽ
० ३ × २

म नि
ग म म प | — प प प | ध — ध सां | ध — प प
रो ऽ म रो | ऽ म अ प | रा ऽ ध भ | यो ऽ स ब
० ३ × २

सां नि
नि नि सां सां | ध नि ध प | मग मग री गम | प री — सा
श र न च | त र को ऽ | कीऽ ऽऽ जे निऽ | ऽ हा ऽ ल ॥
० ३ × २

—गीतमालिका भाग १७, पृष्ठ ३

राग अहीर भैरव, ताल चौताल

स्थायी

नि़ री | ग म | ग — | री सा | सा — | सा ग
क ऽ | र ऽ | जो ऽ | र ऽ | मो ऽ | र मो
२ ० ३ ४ × ०

म म | ग म | प ध | नि प | — म | प —
ऽ र | जो ऽ | ब ऽ | नि ऽ | ऽ ब | नी ऽ
२ ० ३ ४ × ०

ग	री	ग	री	—	सा	—	नि़	ध़	—	प़	सा
का	ऽ	ऽ	मि	ऽ	नि	ऽ	ऽ	का	ऽ	म	की
२		०		३		४		×		०	
—	री	ग	प	म	ग	री	ग	री	—	—	सा
ऽ	च	ढ़ा	ऽ	ई	ऽ	ऽ	क	मा	ऽ	ऽ	न ॥
२		०		३		४		×		०	

अंतरा

प	ध	सां	नि	सां	सां	रीं	सां	नि	सां	सां	प
अं	ज	ऽ	न	ऽ	प	ल	क	वा	ऽ	च	ब
×		०		२		०		३		४	
ध	नि	सां	सां	रीं	—	सां	ध	म	ध	—	नि
र	नी	ऽ	न	जा	ऽ	त	ऽ	ल	गा	ऽ	व
×		०		२		०		३		४	
सां	रीं	गं	रीं	सां	—	ध	रीं	सां	नि	ध	प
त	ऽ	च	त	र	ऽ	ही	ऽ	बे	ऽ	ऽ	ऽ
×		०		२		०		३		४	
ग	म	री	सा								
ऽ	ऽ	ऽ	नी								
×		०									

—इन्साइक्लोपीडिया आफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक से उद्‌धृत

राग श्री, ताल चौताल (विलम्बित लय)

स्थायी

सा		ग						नि़			
री	—	री	—	सा	सा	सा	—	सा	री	सा	सा
वा	ऽ	दी	ऽ	स	म	वा	ऽ	दी	ऽ	अ	नु
×		०		२		०		३		४	

सा						नि़		सा			
नि़	री	ग	री	सा	—	सा	—	री	नि़	ध़	प़
वा	ऽ	दी	ऽ	के	ऽ	भे	ऽ	द	क	ह	त
×		०		२		०		३		४	

ध़						सा			ग		
म	—	प़	नि़	सा	सा	री	री	री	री	सा	सा
रा	ऽ	ग	रू	ऽ	प	प्र	क	ट	क	र	त
×		०		२		०		३		४	

ध़		ध़				री					
म	ध	म	—	ग	री	म	ग	री	री	सा	सा
वे	ऽ	वा	ऽ	दी	ऽ	सु	र	ब	र	ज	त ॥
×		०		२		०		३		४	

अंतरा

नि़				सां							
सा	री	सा	—	नि	नि	सां	—	सां	नि	सां	सां
बा	ऽ	दी	ऽ	ज	हाँ	रा	ऽ	ज	क	र	त
×		०		२		०		३		४	

सां						सां					
नि	सां	रीं	—	सां	—	नि	सां	नि	ध	प	प
स	म	वा	ऽ	दी	ऽ	मं	ऽ	त्री	ऽ	व	त
×		०		२		०		३		४	

ध	ध										
म	म	प	ध	म	ग	री	री	ग	री	सा	सा
अ	नु	वा	ऽ	दी	ऽ	अ	नु	च	र	म	त
×		०		२		०		३		४	

सा								री			
री	रीं	रीं	—	सां	—	री	री	ग	री	सा	सा
बे	ऽ	बा	ऽ	दी	ऽ	रि	पु	स	म	झ	त ॥
×		०		२		०		३		४	

संचारी

नि़		सा				म		प			
सा	सा	प	प	प	प	प	प	ध	—	प	प
स	प	री	ध	ग	नि	मि	थ	सं	ऽ	ग	त
×		०		२		०		३		४	

म॑	प	ध॒	ध॒	प	प	नि	रीं॒	नि	ध॒	प	प
द्वा	ऽ	द	श	श्रु	ति	अं	ऽ	त	र	ग	त
×		०		२		०		३		४	

(म॑)प	ध॒	म॑	ग	री॒	री॒	म॑	ग	री॒	री॒	सा	सा
सा	ऽ	धा	ऽ	र	न	नि	य	म	क	ह	त
×		०		२		०		३		४	

(नि़)सा	—	री॒	री॒	सा	सा	(म॑)प	—	ध॒	ध॒	प	प
को	ऽ	बि	द	स	ब	शा	ऽ	स्त्र	सु	म	त ।।
×		०		२		०		३		४	

आभोग

(म॑)प	प	ध॒	ध॒	प	प	नि	नि	सां	नि	सां	सां
ज	ब	नि	य	मि	त	सु	र	ब	र	जि	त
×		०		२		०		३		४	

नि	—	सां	रीं॒	सां	सां	नि	सां	नि	ध॒	प	प
मा	ऽ	न	त	स	मु	चि	त	उ	प	ग	त
×		०		२		०		३		४	

(सा)री॒	—	री॒	(म॑)प	प	प	म॑	प	नि	ध॒	प	प
गी	ऽ	त	र	ह	स	य	ह	अ	द	भु	त
×		०		२		०		३		४	

नि	सां	नि	ध॒	प	—	(ध॒)म॑	ग	(री॒)ग	री॒	सा	सा
ह	र	रं	ग	को	ऽ	नि	त	अ	भि	म	त ।।
×		०		२		०		३		४	

—गीतमालिका भाग १०, पृष्ठ १२

राग श्री, ताल सूलताल (मध्यलय)

स्थायी

री री	री री	मं ग —	री री	सा सा	री री	री री	मं री प	ग री	सा —
त मो	गु ण	रा ऽ	ज स	गु ण	स ऽ	त्व गु	ण तृ	ति य	रे ऽ
×	०	२	३	०	×	०	२	३	०
री —	री प	प प	ध ध	— प	मंप पध	मं ग	री —	ग री	सा ऽ
मू ऽ	ल प्र	कृ ती	सु भा	ऽ य	जिऽ नऽ	व्या ऽ	प्यो ऽ	ज ग	रे ऽ।।
×	०	२	३	०	×	०	२	३	०

अन्तरा

प —	ध प	नि —	सां सां	सां सां	रीं —	सां सां	नि सां	नि ध	प प
रा ऽ	ज स	ता ऽ	म स	गु ण	जी ऽ	व क	र व	ज ब	ब स
×	०	२	३	०	×	०	२	३	०
री —	प प	प प	— ध	प प	मंप ध	मं ग	री मं	ग री	सा —
पा ऽ	व त	प र	ऽ ब्र	ऽ ह्म	सऽ ऽ	त्व गु	णि च	त र	रे ऽ।।
×	०	२	३	०	×	०	२	३	०

—गीतमालिका भाग २, पृष्ठ १९

राग परज, ताल फरोदस्त (१३ मात्रा)

स्थायी

सां नि	सां नि	ध प	मं — प	मं ध प गम ग
मो रे	म न	क र	ना ऽ म	सु म रऽ न
×	०	२	३	०

नि़	—	री	ग	ग	ग	मं	—	ध	सां	नि	मं	ध
जा	ऽ	य	स	र	न	भा	ऽ	व	ध	र	ध	न ॥
×		२		३		४			५			

अन्तरा

ग	—	ग	ग	मं	ध	नि	सां	सां	सां	सां	सां	सां
गा	ऽ	य	प	र	ज	रा	ऽ	ग	सु	ल	च्छ	न
×		२		३		४			५			
नि	रीं	गं	रीं	सां	—	नि	मं	ध	सां	नि	मं	ध
ता	ऽ	ल	फ	रो	ऽ	द	ऽ	स्त	श	र	ग	न ॥
×		२		३		४			५			

संग्राहक—श्री० ना० रातांजनकर

राग परज, ताल गजलीला (१७ मात्रा)

स्थायी

नि	—	सां	रीं	सां	नि	ध	प	मं	ध	सां	नि	ध	प	ग	म	ग
ना	ऽ	च	त	ग	ज	ली	ऽ	ला	ऽ	मि	ल	जु	व	ति	ज	न
×				२				३				४				
नि़	री	ग	—	ग	ग	मं	ध	नि	—	मं	ध	नि	सां	नि	मं	ध
ज	मु	ना	ऽ	त	ट	प	र	खे	ऽ	ल	त	ग	न	मो	ह	न ॥
×				२				३				४				

अंतरा

ग	ग	मं	ध	नि	सां	सां	सां	सां	सां	सां	सां	नि	रं	सां	सां	सां
अ	ग	णि	त	भा	ऽ	व	क	र	त	ल	य	न	व	प	र	न
×				२				३				४				
नि	नि	रं	गं	रीं	सां	सां	सां	नि	नि	मं	ध	नि	सां	नि	मं	ध
च	त	र	ह	स	त	ल	घु	ल	घु	ल	घु	ल	घु	वि	र	म ॥
×				२				३				४				

संग्राहक—श्री० ना० रातांजनकर

राग परज ताल एकताल (मध्यलय)

स्थायी

नि	—	सां	रीं॒	नि	सां	सां	नि	सां	नि	ध॒	प
का	ऽ	हे	म	द	न	इ	त	नो	ऽ	श्र	म
×		०		२		०		३		४	
म॑	ध॒	ध॒नि	सांनि	ध॒	प	ध	प	ग	म	ग	ग
बि	र	थाऽ	ऽऽ	मो	ऽ	म	न	के	ह	र	न
×				२		०		३		४	
नि़	सा	ग	म	प	ध॒	नि	नि	सां	—	सां	सां
को	ऽ	कि	ल	ब	स	क	रो	नि	ऽ	स्फ	ल
×		०		२		०		३		४	
सां	नि	सां	रीं॒	सां	नि	सां	नि	सां	नि	म॑	ध॒
क	ल	र	व	अ	प	नो	ऽ	म	न	र	म ॥
×		०		२		०		३		४	

अन्तरा

ग	—	ग	—	म॑	ध॒	सां	—	नि	सां	—	सां
मु	ऽ	ग्धा	ऽ	तु	म	रे	ऽ	क	टा	ऽ	च्छ
×		०		२		०		३		४	
सां	रीं॒	सां	रीं॒	नि	सां	नि	—	ध॒	नि	नि	नि
लो	ऽ	ल	म	धु	र	स्नी	ऽ	ग्ध	प	र	म
×		०		२		०		३		४	
सा	सा	ग	—	म॑	ध॒	नि	—	सां	—	सां	सां
ह	म	ते	ऽ	क्यों	ऽ	डा	ऽ	रो	ऽ	तु	म
×		०		२		०		३		४	
सां	सां	रीं॒	गं	रीं॒	सां	सां	नि	सां	नि	म॑	ध॒
ह	र	सों	ऽ	अ	ब	ला	ऽ	गि	ल	ग	न ॥
×		०		२		०		३		४	

—गीतमालिका भाग २, पृष्ठ ७

राग मालिगौरा, ताल त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

														सा म॑	ग म॑
														क	र
ग	–	ऱी	सा	नि॒	ध॒	नि॒	ऱीनि॒	(प॒)	–	–	म॑ग	म॑	ग	–	ग
या	ऽ	द	च	तु	र	तू	ऽऽ	आ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ज
०				३				×				२			
ध म॑	म॑	ग	ग	ध म॑	–	ध	म॑	सा	–	सा	सा	ग नि॒	ऱी	सा	सा
गौ	ऽ	रा	ऽ	के	ऽ	सु	र	शा	ऽ	स्त्र	सु	सं	ऽ	म	त
०				३				×				२			
ऱी नि॒	नि॒	नि॒	नि॒	नि॒	ऱी	ग	–	गप	म॑प	ग	ऱी	सा	सा,	सा	सा
ग	म	न	सि	री	ऽ	के	ऽ	ठाऽ	ऽऽ	ऽ	ठ	प	र,	क	र ॥
०				३				×				२			

अंतरा

म॑ ग	–	ग	ध म॑	म॑	म॑	ध	म॑	सां	–	सां	–	नि सां	ऱीं	सां	सां
स	ऽ	म्पू	ऽ	र	न	सं	ऽ	वा	ऽ	दी	ऽ	रि	प	स्व	र
०				३				×				२			
सां	–	सां	सां	सां	निऱीं	नि	–	(प)	–	प	म॑ग	म॑	–	ग	ग
धे	ऽ	व	त	दो	ऽऽ	ऊ	ऽ	को	ऽ	ऊ	ऽऽ	मा	ऽ	न	त
०								×				२			
सां	–	नि	ध म॑	म॑	ध	म॑	ग	ग	–	म॑	ग	ऱी	ऱी	सा	सा
गा	ऽ	य	न	क	र	तू	ऽ	सं	ऽ	धि	स	म	य	ग	
०				३				×				२			
ध॒	–	नि॒	नि॒	नि॒	ऱी	ग	ग	गप	म॑प	ग	ऱी	सा	सा,	सा	सा
पू	ऽ	र	त	स	ब	म	न	काऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ज,	क	र ॥
०				३								२			

संग्राहक—श्री० ना० रातांजनकर

राग बिंद्राबनी सारंग, ताल झपताल (मध्यलय)

पम
बिऽ

स्थायी

म
री सा | नि़ सा सा | री – | म री ऽ || म री | म नि़ प | ध प | पम री म
ल स | त बिं द | रा ऽ | ब नी ऽ || अ ध | ग अ नु | लो ऽ | मऽ क अ
० | ३ | × | २ | ० | ३ | × | २

ध सां
री म | प नि नि | नि सांनि | पम री पम
ग वि | लो ऽ म | रा ऽऽ | गऽ नि, बिऽ
० | ३ | × | २

अंतरा

मं मं
म प | नि सां सां | नि सां | सां – सां || नि सां | रीं रीं मं | रीं सां | नि सां सां
रि प | क र त | स म | त्रा ऽ द || दि व | स दू ऽ | जे ऽ | पे हे र
० | ३ | × | २ | ० | ३ | × | २

सां रीं | सां रीं नि | सां – | नि़ पम री || म प | सां नि़ पम | री री | म री पम
अ ग | ध म ध | मां ऽ | दि छऽ ब || च तु | र अ मिऽ | म म | म त, बिऽ
० | ३ | × | २ | ० | ३ | × | २

—गीतमालिका भाग ६, पृष्ठ १०

राग सारंग, ताल मुकुन्द— (मात्रा २०)

स्थायी

म
नि नि सां सां | नि – | सां सां | नि़ – प – | म – नि़ प री— सा सा
ज य ज य | सा ऽ | रं ग | पा ऽ णे ऽ | मां ऽ प रि पा ऽ ल य
× | २ | ३ | ४ | ५

नि़ – सा सा | री म | प म | री – सा — | सां – नि़ प म री सा सा
ता ऽ र य | दी ऽ | न म | ना ऽ थं ऽ | मां ऽ भ व भ य ह र ॥
× | २ | ३ | ४ | ५

अन्तरा

प म — नि॒ प	नि —	सां सां	सां — सां —	नि सां रीं मं रीं रीं सां सां
मं ऽ दो ऽ	हं ऽ	प ति	तो ऽ हं ऽ	श र णा ऽ ग त इ ह
×	२	३	४	५
नि — सां —	रीं —	साँ —	नि॒ नि॒ प प	म प नि॒ प री — सा सा
ना ऽ न्यं ऽ	जा ऽ	ने ऽ	क म पि त्र	तु र क रु णा ऽ क र ॥
×	२	३	४	५

संग्राहक—श्री० ना० रातांजनकर

राग लंकदहन सारंग, ताल झपताल

स्थायी

प नि॒ सा री री	री सा सा	सा सा	नि॒ — प़
र ऽ ऽ ऽ ट	हं र प्रि	या को	ना ऽ म
×	२	०	३
म़ प़	नि़ नि़ सा	री री	सा री सा
त न	म न दु	रि त	ध ऽ न
×	२	०	३
ग॒ ग॒	ग॒ म री	सा सा	नि॒ — प़
क र	ले ऽ तू	अ प	ने ऽ ऽ ॥
×	२	०	३

अंतरा

म प	नि सां सां	सां —	नि सां सां
जो ई	जो ऽ ई	ध्या ऽ	व ऽ त
×	२	०	३
मं मं	मं रीं सां	सां —	सां नि॒ प
प र	म फ ल	पा ऽ	व त ऽ
×	२	०	३

प	री	री	म	री	सा	—	नि़	सा	सा
सा	ऽ	रं	ऽ	ग	पा	ऽ	णी	ऽ	को
×		२			०		३		

ग	ग	म	री	सा	सा	सा	नि़	—	प़
भ	ज	च	त	र	अ	प	ने	ऽ	ऽ ।।
×		२			०		३		

—इन्साइक्लोपीडिया आफ हिंदुस्तानी म्यूज़िक से उद्धृत

राग हंसकिंकिणी, ताल झपताल (मध्यलय)

स्थायी

म		म							
ग	ग	ग	म	प	म	पग	री	सा	सा
न	ये	न	ये	सिं	गा	ऽऽ	रं	स	खि
×		२			०		३		

सा				म					प
नि़	नि़	सा	ग	ग	ग	म	प	म	ग
का	मि	नी	ऽ	र	चा	ऽ	ये	ऽ	ऽ ।।
×		२			०		३		

अंतरा

		सां	सां						
म	प	नि	नि	—	सां	—	सां	सां	—
हा	ऽ	थ	में	ऽ	कं	ऽ	क	मी	ऽ
×		२			०		३		

प		सां		सां					
म	प	नि	सां	गं	रीं	सां	नि	ध	प
हं	ऽ	स	ग	त	सो	ऽ	हे	अ	त
×		२			०		३		

ध							म		
प	नि	ध	प	प	ध	प	प	म	ग
गौ	ऽ	र	त	न	सिं	ह	क	टी	ऽ
×		२			०		३		

(कण: म, प)
नि̣ सा | ग म प | प म | प म ग
च तु | र म न | भा ऽ | ये ऽ ऽ ।।
× २ ० ३

संग्राहक—श्री० ना० रातांजनकर

राग नीलांबरी, ताल तीव्रा

स्थायी

प प प | ध प | म ग ‖ म — प | म. प | ग॒ री
च त र | गु नि | व र ‖ रा ऽ ग | ब र | न त
× २ ३ × २ ३

(कण: म म म)
ग॒ ग॒ ग॒ | री री | सा — ‖ नि̣ सा सा | ग म | प म
नी लां ऽ | ब री | को ऽ ‖ सं ऽ पू | र न | सु र
× २ ३ × २ ३

(कण: म म)
म प — | ग॒ ग॒ | म —
स ब ऽ | च प | ल ऽ ।।
× २ ३

अंतरा

म — म | प प | नि नि ‖ सां — सां | नि नि | सां सां
ठा ऽ ठ | क र | ह र ‖ पं ऽ स | म न | ह र
× २ ३ × २ ३

सां रीं सां | रीं रीं | सां — ‖ नि नि सां | नि॒ — | प प
ल ज त | अ नु | लो ऽ ‖ म ग त | धै ऽ | व त
× २ ३ × २ ३

प ध प | म ग॒ | म — ‖ प सां सां | नि॒ ध | प —
सं ऽ ग | त स | प ऽ ‖ जु ग ल | म त | गा ऽ
× २ ३ × २ ३

प ध प | म ग॒ | म — |
अ मि त | सु ख | दा ऽ |
× २ ३

संग्राहक—बालाभाऊ उमडेकर

राग दरबारी, ताल झूमरा (विलम्बित)

स्थायी

म सा नि॒
ग॒ – री सा | री – सा | नि॒ सा री री | ध॒ नि॒ सा।री
रा ऽ ग अ | ला ऽ प | ल ऽ च्छ न | मा ऽ नेऽ
३ × २ ०

म नि॒ सा सा नि॒
ग॒ – री सा | री – सा | नि॒ सा सा री री | ध॒ नि॒ प
रा ऽ ग अ | ला ऽ प | च तु र गुनि | मा ऽ ने
३ × २ ०

नि॒ सा
म प ध॒ नि॒ | सा – सा | नि॒ सा री री | सा नि॒ सा
ग्र ह अ प | न्या ऽ स | न्या ऽ स सों | अं ऽ श
३ × २ ०

सा प
नि॒सा रीध॒ नि॒ प | सां – सां | म – प प | नि॒ – प
मोंऽ ऽऽ द र | ता ऽ र | ओ ऽ ड व | खा ऽ डो
३ × २ ०

प प म
सां – सां सां | नि॒ – प | म – प पनि॒ | प ग॒ ग॒
अ ऽ ल्प ब | हू ऽ त्त | सा ऽ च पऽ | छा ऽ ने
३ × २ ०

म
अथवा पनि॒ | प ग॒ ग॒मप
बऽ | खा ऽ नेऽऽ
०

म – री सा |
रा ऽ ग अ | इत्यादि
३

अंतरा

नि
म प ध नि | सां – सां | नि – सां सां | रीं सां सां
रू ऽ प क | गी ऽ त | खं ऽ ड क | रे गु नि
३ × २ ०

मं मं नि
गं गंमं रीं सां | रीं – सां | नि – सां रीं | ध नि प
सु रऽ प द | ता ऽ ल | च ऽ त्र सु | जा ऽ ने
३ × २ ०

नि म मम
रीं – सां सां | ध नि प | म म प पनि | प मग गग
आ ऽ क्षि प | ती ऽ क | प द ल यऽ | जा ऽऽ नेऽ ॥
३ × २ ०

संग्राहक—श्री० ना० रातांजनकर

राग चंद्रकौंस, ताल त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

म –
चं ऽ

म ग री सा | नि सा ध नि | सा – – – | म – – –
द्र कौं ऽ स | के ऽ गु न | गा ऽ ऽ ऽ | य ऽ ऽ ऽ
० ३ × २

ग – म – | ध – नि – | सां सां नि ध | प नि – प
आ ऽ सा ऽ | को ऽ ठा ऽ | ठ ब ना ऽ | ऽ ऽ ऽ य
० ३ × २

मं	—	मं	मं	रीं	सां	सां	सां	<u>नि</u>	<u>नि</u>	ध	म	<u>नि</u>	—	म	म
मा	ऽ	ल	कौं	ऽ	स	अं	ग	दि	ख	ला	य	ऽ	ऽ	य	चं।
०				३				×				२			

अंतरा

ग	—	म	—	<u>ध</u>	<u>नि</u>	सां	सां	सां	सां	सां	सां	सां	सां	—	—
आ	ऽ	रो	ऽ	ह	न	रि	प	व	र	जि	त	च	तु	ऽ	ऽ
०				३				×				२			
—	सां	सां	सां	<u>नि</u>	<u>ध</u>	—	—	—	—	—	—	नि	—	—	म
ऽ	र	दि	ख	ला	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	य
०				३				×				२			
मं	—	मं	मं	<u>गं</u>	रीं	सां	—	<u>नि</u>	—	सां	<u>नि</u>	ध	प	म	—
म	ऽ	ध्य	म	सु	र	को	ऽ	जा	ऽ	न	स	म	झ	ले	ऽ
०				३				×				२			
ग	—	म	—	<u>ध</u>	<u>नि</u>	सां	सां	<u>नि</u>	ध	—	प	<u>नि</u>	प	म,	म
का	ऽ	फी	ऽ	त	न	क	दि	खा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	य,	चं।।
०				३				×				२			

संग्राहक—बालाभाऊ उमड़ेकर

राग देवगांधार (गांधारी—एक प्रकार), ताल सूलताल

स्थायी

भ	प	<u>ध</u>	<u>ध</u>	प	सां	—	<u>नि</u>	सां	सां
गा	व	त	मि	ल	गां	ऽ	धा	ऽ	र
×		०		२		३		०	

नि	नि	सां	सां	रीं	नि	नि	ध	ध	प
सं	पु	र	न	रू	प	क	ह	त	है
×		०		२		३		०	

म	प	ध	म	प	ग	म	प	रीं	सां
रु	ऽ	षि	क	ह	त	च	त	र	सों
×		०		२		३		०	

ध	ध	प	म	प	ग	ग	री	री	सा
ह	र	खा	व	त	म	न	ह	म	रो।।
×		०		२		३		०	

अंतरा

म	म	प	ध	प	सां	सां	रीं	सां	सां
को	म	ल	क	र	त	ग	म	ध	नि
×		०		२		३		०	

गं	गं	रीं	रीं	सां	रीं	सां	नि	ध	प
नि	स	दि	न	गा	वुं	ए	हि	ठ	नी
×		०		२		३		०	

मं	गं	रीं	सां	रीं	सां	नि	ध	ध	प
दि	न	को	गु	नि	ज	न	गा	व	त
×		०		२		३		०	

म	प	ध	म	प	ग	ग	री	री	सा
स	म	य	प	ह	ले	प्र	ह	र	के।।
×		०		२		३		०	

—इन्साइक्लापीडिया आफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक से उद्धृत

राग आभीरी, ताल झपताल

स्थायी

म	म	प	प	सां	सां	—	नि॒	ध॒	प
सं	ग	लि	ये	अ	भी	ऽ	र	ग	न
×		२			०		३		
ग॒	म	प	ध॒	प	ग॒	म	ग॒	री	सा
ना	ऽ	च	त	म	द	न	मो	ह	न
×		२			०		३		
म़	प़	नि़॒	सा	सा	म	ग॒	री	सा	सा
सां	ऽ	व	री	सु	र	त	सु	श	म
×		२			०		३		
रीं	सां	रीं	नि॒	सां	—	रींसां	नि॒	ध॒	प
ध	न	ध	न	श्री	ऽ	बिर	ज	ध	न॥
×		२			०		३		

अंतरा

प	प	ग॒	म	प	नि॒	नि॒	सां	सां	सां
सु	ग	म	प	म	स	हि	त	ध	न
×		२			०		३		
नि॒	सां	सां	गं॒	रींसां	सां	—	नि॒	ध॒	प
सं	ऽ	पु	र	नऽ	र	ऽ	क्त	ग	न
×		२			०		३		
गं॒	गं॒	मं	पं	पं	गं॒	मं	गं॒	रीं	सां
अ	ध	र	मु	र	ली	ऽ	की	सु	न
×		२			०		३		

रीं नि | सां रीं सां | नि सां | नि ध प
ह र | त च त | रा ऽ | को म न
× २ ० ३

—इन्साइक्लोपीडिया आफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक से उद्धृत

राग कौंसी, ताल तीव्रा

स्थायी

सा — | ध नि | सा म म || म ग | म प | ग री सा
हे ऽ | ज ग | दी ऽ श || च तु | र मु | रा ऽ र
२ ३ ⊗ २ ३ ⊗

नि नि | नि नि | सा — सा || म ग | म ग | री सा सा
भ व | भ य | हा ऽ र || दु ऽ | ख नि | वा ऽ र ।।
२ ३ ⊗ २ ३ ⊗

अंतरा

म ग | म ध | नि सां सां || सां सां | सां रीं | सां — सां
ह म | तो ऽ | श र न || च र | न तु | म्हा ऽ र
२ ३ ⊗ २ ३ ⊗

सां सां | सां सां | नि ध म || म ध | नि सां | नि ध म
क र | नि र | धा ऽ र || हे ऽ | क र | ता ऽ र
२ ३ ⊗ २ ३ ⊗

म प | ग म | री — सा || नि ध | म ध | नि सा सा
तु म | हो अ | पा ऽ र || प ति | त उ | धा ऽ र
२ ३ ⊗ २ ३ ⊗

सां	सां	सां	नि॒	ध॒	म	म	म	ध॒	नि॒	ध॒	म	ग॒	सा
इ	त	नी	ऽ	बि	न	त	ली	ऽ	जे	बि	चा	ऽ	र ।।
२		३		⊗			२		३		⊗		

—इन्साइक्लोपीडिया आफ हिन्दुस्तानी म्युजिक से उद्धृत

राग मालकौंस, ताल चौताल (तानप्रस्तार)

स्थायी

सा	—	सा	—	(नि॒)ध॒	नि॒	सा	—	म	म	म	ग॒
मू	ऽ	ल	ऽ	क्र	म	आ	ऽ	द	लि	ख	त
×		०		२		०		३		४	

म	ग॒	म	ध॒	नि॒	नि॒	ध॒	नि॒	ध॒	म	म	म
पू	ऽ	र	ब	सु	र	अ	ध	मों	ध	र	त
×		०		२		०		३		४	

म	ग॒	म	(नि॒)ध॒	नि॒	सां	सां	सां	नि॒	सां	—	सां
ज	द	पू	ऽ	र	ब	उ	प	रि	ह	ऽ	त
×		०		२		०		३		४	

सां	सां	सां	—	नि॒	ध॒	नि॒	नि॒	ध॒	नि॒	ध॒	म
त	ज	वा	ऽ	को	ऽ	पु	र	ब	ग	ह	त ।।
×		०		२		०		३		४	

अंतरा

(म)ग॒	—	म	—	(नि॒)ध॒	—	नि॒	—	सां	—	सां	सां
पा	ऽ	छे	ऽ	तें	ऽ	शे	ऽ	ष	ऽ	स्व	र
×		०		२		०		३		४	

नि											
सां	—	सां	सां	नि	ध	नि	—	ध	नि	ध	म
दे	ऽ	त	च	त	र	सू	ऽ	ने	ऽ	घ	र
×		०		२		०		३		४	
			नि						मं		
म	ग	म	ध	नि	सां	सां	—	सां	गं	सां	सां
मू	ऽ	ल	ऽ	क्र	म	सों	ऽ	पू	ऽ	र	त
×		०		२		०		३		४	
सां	सां	नि	ध	नि	—	ध	नि	ध	म	म	म
गु	नि	ज	न	प्र	ऽ	स्ता	ऽ	र	क	ह	त ।।
×		०		२		०		३		४	

—गीतमालिका भाग ५, पृष्ठ २१

सूचना—इसी का अन्य एक पाठभेद एकताले में ख्याल शैली पर बना है। जिसमें स्थायी की अंतिम पंक्ति 'वा के पूरब को गहन' तथा अंतरेकी अंतिम पंक्ति 'हररंग प्रस्तार कहत' इस प्रकार बताई है।—सम्पादक

राग मालकौंस, ताल त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

ध
ग म
ह र

ग	—	सा	सा	सा	सा	ध	नि	सा	—	म	—	—	—	—	—
को	ऽ	ह	र	ह	र	में	प	छा	ऽ	ना	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
०				३				×				२			
ग	म	ग	सा	सा	—	सा	सा	नि	—	सा	सा	ध	नि	ध	म
आ	ऽ	ल	क	आ	ऽ	द	नि	रं	ऽ	ज	न	तू	ऽ	ही	ऽ
०				३				×				२			
		म		ग	नि										
म	म	ग	ग	म	ध	नि	सां	सां	—	नि ध	नि	ध	म	ग	म
घ	ट	घ	ट	बी	ऽ	च	स	मा	ऽ	ऽ ऽ	ऽ	ना	ऽ,	ह	र
०				३				×				२			

अंतरा

म	म	ग	ग	म	ध	नि	—	सां	—	सां	सां	नि	नि	सां	—
गु	प	त	प्र	क	ट	तू	ऽ	दो	ऽ	ऊ	ज	ग	त	में	ऽ
०				३				×				२			

नि	सां	सां	—	सां	सां	नि	ध	म	ध	नि	—	ध	नि	ध	म
क	हु	जा	ऽ	हि	र	क	हु	छा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ना	ऽ
०				३				×				२			

म	म	ग	ग	म	ध	नि	सां	सां	—	सां	गं	—	सां	सां	—
अ	ल	ख	अ	ल	ख	ल	ख	रू	ऽ	प	वा	ऽ	हि	को	ऽ
०				३				×				२			

सां	सां	सां	सां	सां	—	नि	ध	मध	नि	ध	नि	ध	म,	ग	(म)म
ह	र	रं	ग	आ	ऽ	प	लु	भाऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ना	ऽ,	ह	र
०				३				×				२			

संग्राहक—श्री० ना० रातांजनकर

राग भैरवी, ताल यतिशेखर (३० मात्रा)

स्थायी

म	म	पध	प	म	म	री	री	सा	री	नि	नि	सा	सा
कौ	न	सौऽ	त	न	में	बि	र	मा	ये	प्या	रे	मो	रे
×		२				३				४		५	

सा :धु प धु | पधु निधु | प म | गु म गुम पम | गु री सा सा

अ ज हुँ न | आऽ ऽऽ | व त | कै से रऽ हेऽ | जि या धी र ॥

६ ७ ८ ९ १०

अंतरा

धु म | धु धु नि नि | सां — सां सां | नि नि | सां रीं

जा वो | च त र स | खी ऽ ज न | पि यु | सों ल

× २ ३ ४ ५

सांनि सां धु प | प गं | रीं गं | सां रीं सांनि धु | पम गु री सा

गीऽ ल ग न | छि न | छि न | उ ठ तऽ जि | यऽ पी ऽ र ॥

६ ७ ८ ९ १०

संग्राहक—श्री० ना० रातांजनकर

राग भैरवी, ताल सारस (१८ मात्रा)

स्थायी

सा री म म | प धु | प म | — म | री सा री म | (ग) री — सा सा

गा ऽ व त | स र | स ता | ऽ ल | च तु र गु | नी ऽ ज न

× २ ३ ४ ५ ६

(नि) धु — धु नि | सा — | री नि | सा सा | री सा री म | (ग) री — सा सा

भै ऽ र वि | रा ऽ | ग म | धु र | ह र ख त | मो ऽ म न ॥

× २ ३ ४ ५ ६

अंतरा

प					सां नि॒
ध॒ म ध॒ नि॒	सां रीं॒	सां सां	– सां	नि॒ – सां –	रीं॒ सां ध॒ प
को ऽ म ल	क र	त सू	ऽ र	वा ऽ दी ऽ	म ऽ ध्य म
×	२	३	४	५	६

प प					री॒
ध॒ ध॒ प प	प ध॒	प म	– म	री॒ सा री॒ म	ग॒ री॒ सा सा
स म य प्र	भा ऽ	त ता	ऽ ल	ल द त्र य	ल ल स न
×	२	३	४	५	६

—गीतमालिका भाग ६, पृष्ठ ३

राग तोडी, ताल त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

री॒	नि़	नि़	
ग॒ :– री॒ री॒	सा सा ध॒ ध॒	सा री॒ ग॒ –	मं मं ध॒ ध॒
जा ऽ य श	र न तुं मु	कौं ऽ दा ऽ	मो रे म न
०	३	×	२

ध॒	ग॒ नि़		
मं ग॒ री॒ री॒	री॒ सा ध॒ नि़	सा री॒ सारी॒ ग॒	ग॒ – – –
जा ऽ य श	र न तुं मु	कौं ऽ ऽऽ ऽ	दा ऽ ऽ ऽ
०	३	×	२

ग॒			सा नि़
ग॒ ग॒ री॒ री॒	– सा सा सा	नि़ – सा –	री॒ सा ध॒ –
वि म ल भा	ऽ व ध र	अं ऽ तः ऽ	क र णा ऽ
०	३	×	२

नि	सा	(री) ग	ग	|	मं	मं	ध	ध	|	मं	ध	नि	ध	|	मं	ग	री	सा
टू	ऽ	ट	त	|	स	ब	भ	व	|	फं	ऽ	ऽ	ऽ	|	ऽ	ऽ	दा	ऽ ।।
०					३					×					२			

अंतरा

मं	—	ध	—	|	मं	ग	मं	ध	|	नि	—	सां	सां	|	सां	—	सां	—
मे	ऽ	रा	ऽ	|	मे	ऽ	रा	ऽ	|	ना	ऽ	क	छु	|	ते	ऽ	रा	ऽ
०					३					×					२			
नि	सांरीं	गं	—	|	रीं	रीं	सां	सां	|	नि	—	सां	रीं	|	(सां) नि	—	ध	—
झू	ऽऽ	टा	ऽ	|	क	ल	जु	ग	|	धं	ऽ	ऽ	ऽ	|	धा	ऽ	ऽ	ऽ
०					३					×					२			
मं	ध	नि	सां	|	नि	ध	प	प	|	मं	ग	री	री	|	ग	री	सा	सा
दो	ऽ	दि	न	|	का	ऽ	ज	ग	|	च	ऽ	त्र	स	|	म	झ	स	ब
०					३					×					२			
नि	सा	(री) ग	ग	|	मं	ध	नि	ध	|	(ध) सां	—	नि	ध	|	मं	ग	री	सा
सां	ऽ	च	रा	|	ऽ	क	गो	ऽ	|	बिं	ऽ	ऽ	ऽ	|	ऽ	ऽ	दा	ऽ ।।
०					३					×					२			

—गीतमालिका भाग ६, पृष्ठ १९

राग तोडी, ताल त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

(सा)री री ग ग	री री सा सा	(नि)ध ध नि सा	सा री ग ग
गि रि ध र	च र न क	म ल सु म	रे ऽ न र
०	३	×	२
(ध)मं मं ग ग	मं ध नि ध	मं ग री ग	री — सा सा
न र ह र	ना ऽ रा ऽ	य न प र	मे ऽ स र॥
०	३	×	२

अंतरा

(ग)मं — ग ग	(ध)मं — ध ध	सां सां सां —	(नि)सां रीं सां सां
आ ऽ प न	में ऽ अ प	नि न से ऽ	वा ऽ क र
०	३	×	२
नि — सां सां	रीं — सां —	नि — सां रीं	नि — ध ध
का ऽ चि म	टी ऽ को ऽ	तु ऽ च्छ क	ले ऽ व र
०	३	×	२
(ध)मं ध (ध)सां —	नि — मं ग	री री री ग	री — सा सा
धु ल जा ऽ	वे ऽ गो ऽ	छि न में ऽ	न ऽ श्व र
०	३	×	२
(सां)रीं गं रीं रीं	(गं)रीं — सां सां	(सा)री ग री री	(ग)री री सा सा
सा ऽ चि क	हे ऽ स म	झा ऽ य गु	नि च त र॥
०	३	×	२

—गीतमालिका भाग ६, पृष्ठ २१

राग तोडी, त्रिताल ताल (मध्यलय)

स्थायी

सारी ग री सा	नि — सा री	नि — ध —	नि सा सारी ग
नाऽ ऽ ह क	पी ऽ त डि	तो ऽ डी ऽ	ह म तेंऽ ऽ
०	३	×	२
री — री री	(ग) री — सा —	नि — सा री	नि — ध —
ना ऽ क छु	बो ऽ ली ऽ	ना ऽ क छु	चा ऽ ली ऽ
०	३	×	२
नि सा ग ग	मं मं ध ध	सां नि ध मं	ग — री सा
ला ऽ ज श	र म स ब	छो ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ डी ऽ ॥
०	३	×	२

अंतरा

(प) मं — प ध	मं ध मं ध	नि — सां सां	नि सां सां सां
या ऽ द आ	व त मो हे	रा ऽ ग नि	मू ऽ र त
०	३	×	२
(नि) ध — ध ध	नि — सां —	(सां) रीं गं रीं सां	निसां रींसां नि ध
मे ऽ ल व	रा ऽ ली ऽ	री ग ध म	बिऽ कऽ र त
०	३	×	२

म॑	ध	नि	सां	नि	ध	म॑	ग	री	ग	री	री	(ग)री	—	सा	सा
स	म	वा	ऽ	दी	ऽ	सु	र	रे	ऽ	ख	ब	धै	ऽ	व	त
०				३				×				२			
नि़	सा	ग	ग	म॑	म॑	ध	—	सां	नि	ध	म॑	ग	—	री	सा
चां	ऽ	द	सु	र	ज	की	ऽ	जो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	डी	ऽ ।।
०				३				×				२			

—गीतमालिका भाग ६, पृष्ठ २३

राग बहादुरी तोड़ी, ताल सुलताल

स्थायी

ध	ध	प़	प़	ध़	ध़	री	री	—	सा
अ	नु	द्र	त	द्रु	त	वि	रा	ऽ	म
×		०		२		३		०	
सा	री	ग	ग	री	ग	री	सा	—	सा
ल	घु	गु	रु	प्लु	त	नि	शा	ऽ	न
×		०		२		३		०	
नी़	सा	ग	ग	म॑	री	ग	म॑	—	ध
मा	ऽ	न	त	ता	ऽ	ल	अं	ऽ	ग
×		०		२		३		०	
म॑	ध	म॑	ग	री	ग	री	री	—	सा
शा	ऽ	स्त्र	सु	म	त	प्र	मा	ऽ	न
×		०		२		३		०	

अन्तरा

नी़	सा	ग॒	ग॒	म॑	म॑	प	—	ध॒	प
स	म	बि	स	म	अ	ना	ऽ	घा	त
×		०		२		३		०	
म॑	म॑	ध॒	ध॒	नी	सां	नी	ध॒	प	प
अ	ती	ऽ	त	ग्र	ह	आ	ऽ	ग	म
×		०		२		३		०	
म॑	ध॒	नी	सां	रीं॒	गं॒	गं॒	म॑ रीं॒	ग॒	म॑
द्रु	ऽ	त	म	ध्य	वि	लं	ऽऽ	बि	त
×		०		२		३		०	
ध॒	नी	ध॒	म॑	ग॒	री॒	ग॒	री॒	—	सा
भे	ऽ	द	च	त	र	प्र	मा	ऽ	
×		०		२		३		०	

—इन्साइक्लोपीडिया आफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक से उद्धृत

स्मृतियों के संचित पराग

अस्मिन्भारतखण्डे प्रभात्यपूर्वो हि भातखण्डेऽयम् ।
स्वररसज्ञानविमूर्छन—माधुर्योज:प्रसाद—सन्दाता ।।

पं० ललितापति शास्त्री बाजपेयी, भीमपुरे

ग्वालियर
दिनांक ११ दिसम्बर १९२४
('जयाजी प्रताप' से उद्धृत)

जुग जुग जीवो रे
मोरे गुरुराई,
चतुर सुजान
गुण निधान
अपनो सुधारो काजे ।। स्थायी ।।
जो मोपे दया तें कीन्ही,
का बिध होऊँ
अब उतराई,
दे हो बता आज ।। अंतरा ।।

—डा० श्री० ना० रातांजनकर "सुजान"

(यमनीबिलावल, तिलवाड़ा में निबद्ध)

अनुक्रम

१ संशोधनात्मक प्रवृत्ति की नींव तथा राष्ट्रीय दृष्टिकोण
पद्मविभूषण ह० वि० पाटस्कर, भू० पू० राज्यपाल (म० प्र०)

२ हमारी खुश किस्मती से ऐसा आलिम प्रोफेसर हमको मिल गया
स्व० श्रीमंत महाराज माधवराव सिंधिया, ग्वालियर

३ उन्होंने मुझे सुसंस्कृत किया
स्व० संगीतरत्नालंकार आचार्य राजाभैया पूछवाले, ग्वालियर

४ बड़े से बड़ा वेतन भी उन्हें आदर्शों से च्युत न कर सका
स्व० आचार्य भास्कर रामचन्द्र खाण्डेपारकर, उज्जयनी

५ वे मेरे उस्ताद थे और परम मित्र भी
स्व० राजा ठाकुर नवाब अली खाँ, अकबरपुर

६ सारा देश इनकी कृतियों से व्याप्त है
स्व० पं० फिरोज फ्रामजी, पूना

७ पण्डित जी से मैंने प्रेरणा पाई
स्व० उस्ताद बुन्दू खाँ

८ विशिष्टानाम् विशिष्टेषु संगमो गुणवान् भवेत्
स्व० रावबहादुर स० गो० परचुरे, ग्वालियर

९ ग्वालियर के संगीत का उत्थान किया
स्व० रावसाहब गो० ना० अम्बर्डेकर, ग्वालियर

१० गायनकला का लोप और राजपरिवार की व्याकुलता
स्व० श्री वि० गं० ओदक, ग्वालियर

११ संगीत कला गरीब-अमीर सबके लिए सुलभ हो गई
स्व० रावबहादुर ल० भा० मुले, ग्वालियर

१२ उत्तर प्रदेश का परम सौभाग्य
राय उमानाथ बली, लखनऊ

१३ भारतीय विद्या-संस्कृति का अखूट भण्डार
महाराणा विजयदेव जी, धरमपुर

१४ ऐसा धमार मैंने नहीं सुना
प्रो० नारायण लक्ष्मण गुणे, इलाहाबाद

१५ मैं भी कितना भाग्यशाली हूँ !
प्रो० बालाजी श्रीधर पाठक, इलाहाबाद

१६ पण्डित जी की अदालत में ध्रुवपद का मुकदमा
आचार्य गो० ना० नातू, लखनऊ

१७ स्नेह के अथाह सागर
प्रो० विष्णु शामराव अत्रे, ग्वालियर

१८ खानदानी परम्परा के वास्तविक संरक्षक
प्रो० बा० ना० मुण्डी, ग्वालियर

१९ गुरु-शिष्य का अलौकिक प्रेम
श्री एम० के० सामन्त, वाराणसी

२० पास हुए हो, परन्तु प्रमोशन नहीं
आचार्य बालासाहब पूछवाले, ग्वालियर

२१ कुशल एवं परिपक्व गायक
आचार्य रा० मा० अग्निहोत्री, ग्वालियर

२२ बम्बई के भातखण्डे और उनके बण्डा का मैं बण्डा
आचार्य बालाभाऊ उमड़ेकर, ग्वालियर

२३ हम गायकों का भाग्य खुल गया
श्रीमती अंजनीबाई मालपेकर, बम्बई

२४ वे क्षण सर्वोत्तम थे
पद्मभूषण उस्ताद अलाउद्दीन खाँ, मैहर

२५ अन्ततः मुझे भी वही रास्ता अपनाना पड़ा
स्व० गायनाचार्य रामकृष्ण बुवा वझे, पूना

२६ संगीत के आधुनिक भीष्माचार्य
प्रो० ग० ह० रानडे, पूना

२७ संसार भर के संगीत के इतिहास में अनन्यतम
ठाकुर जयदेव सिंह, वाराणसी

२८ हर कोई शिक्षक नहीं हो सकता
आचार्य गोविन्दराव राजूरकर, अजमेर

२९ मेरे कण्ठ के सुधार का श्रेय पं० भातखण्डे को ही है
आचार्य एम० ए० गोलवलकर, इन्दौर

३० एक पथभ्रष्ट को कर्तव्य की अनुभूति
आचार्य वा० भा० खाण्डेपारकर, उज्जयनी

३१ रावसाहब के शब्दों में उनकी अपनी कहानी
श्री दाराबशा एम० कात्रक, बम्बई

३२ संत और कैसे होते हैं ?
श्री ग० ना० रातांजनकर, बम्बई

३३ बड़ों की बड़ी बातें
आचार्य विष्णु अण्णाजी कशालकर, इलाहाबाद

३४ स्वरलिपि एक सुविधा है, अपने वैशिष्ट्य का प्रदर्शन नहीं
आचार्य हिरजीभाई आर० डाक्टर, बड़ौदा

३५ वर्तमान संगीत को अमृत दान दिया।
श्री प्रभुलाल गर्ग, हाथरस

३६ भातखण्डे जी के सिद्धान्त उर्दू में समझाये
श्री विश्वम्भर नाथ भट्ट, आगरा

३७ यही भवन भावी संस्कारों का आधार
श्री सुदामा प्रसाद दुबे, खातेगाँव

३८ संगीत-नगरी में बिखरे हुए पराग
'जयाजी प्रताप' से उद्धृत

नमित सीस हम सबके
चतुरा के चरनन में,
जीवन जिन धन्य कियो
गीत-सेवा अरपन में ॥ स्थायी ॥

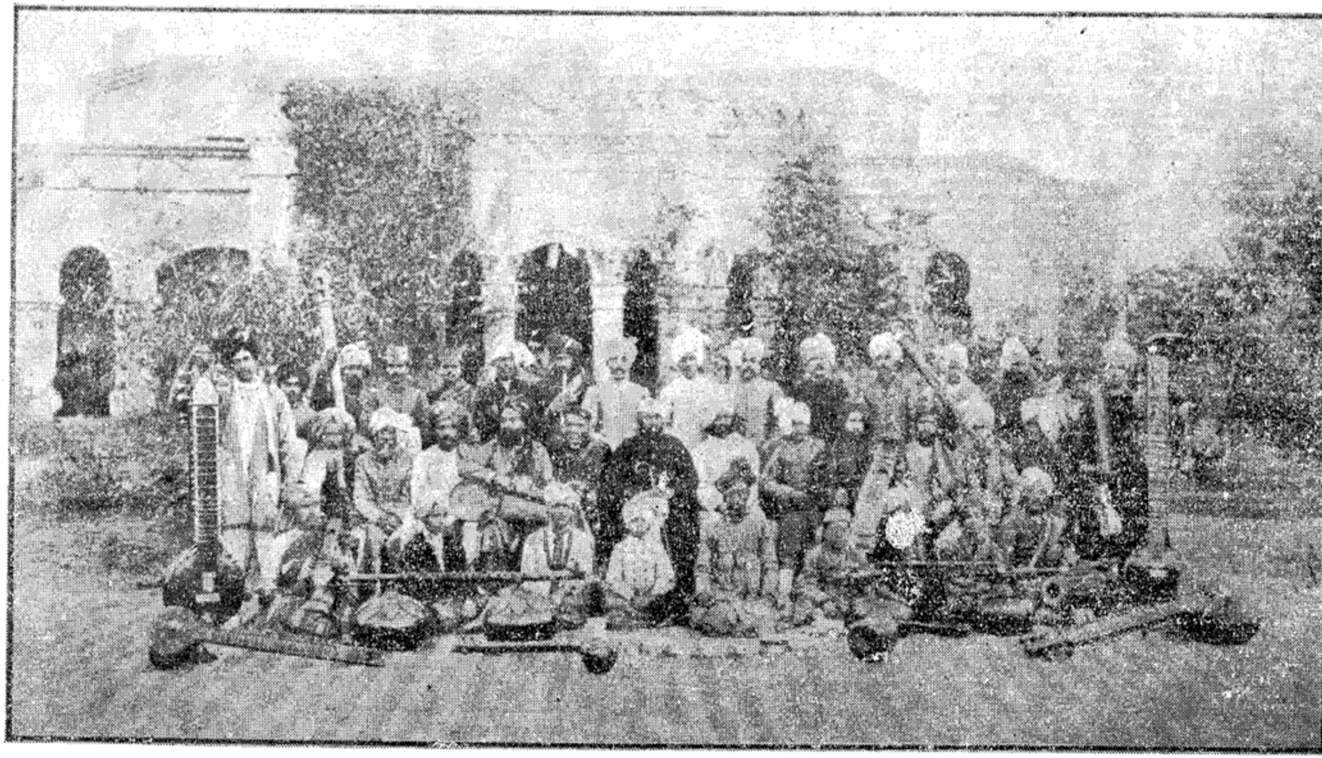
गीत - वाद्य - निरत नाद
गृह - गृह में छाय रह्यो,
शास्त्र - भेद कर बखान
पायो मान गुनियन में ॥ अन्तरा ॥

ऐसे गुनी, गुरु, ग्यानी,
सरसति के लाल, चतुर,
श्रद्धाञ्जलि अरपित यह
उनके गुन गानन में ॥ अन्तरा ॥

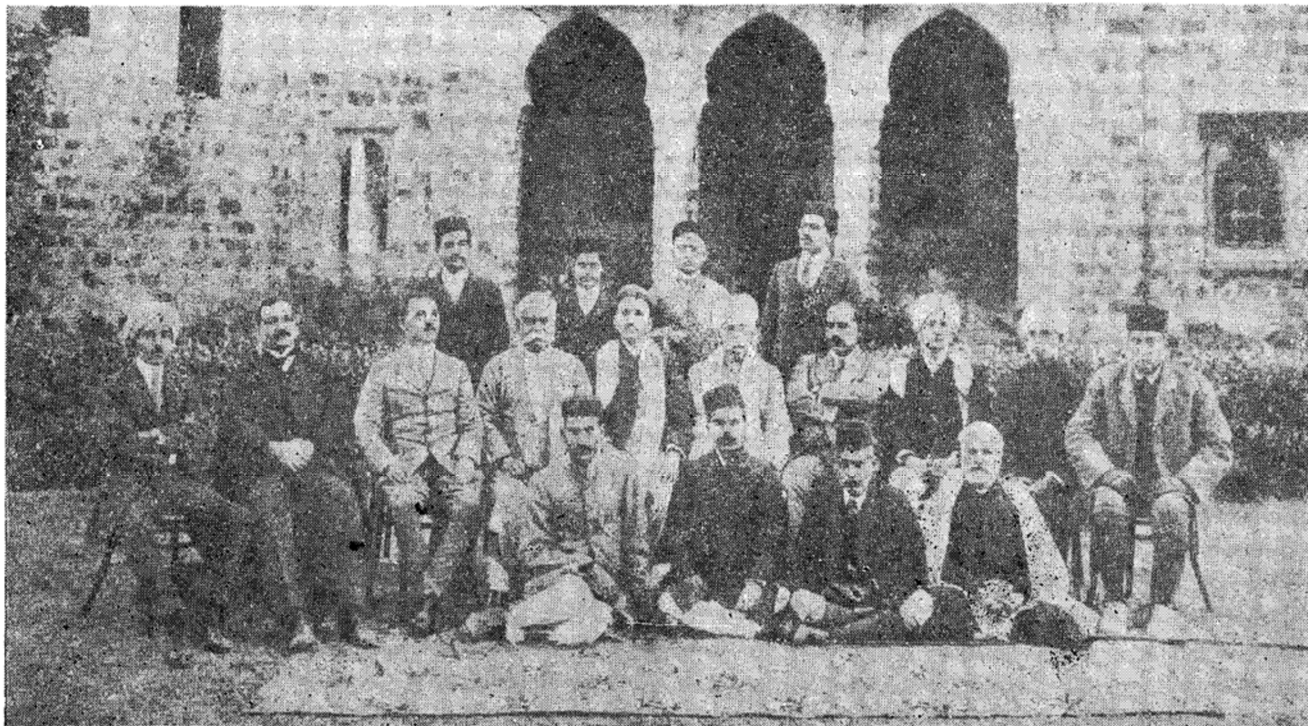
—आचार्य गो० ना० नातू,

(भैरवी, एकताल में निबद्ध)

'काल की वक्र दृष्टि से इनको बचाइये'



देहली में अखिल भारतीय संगीत परिषद् के द्वितीय अधिवेशन में आमन्त्रित देश के प्रमुख कलाकार [१९१८]



देहली में अखिल भारतीय संगीत परिषद् के द्वितीय अधिवेशन में कर्मठ साथियों के बीच पण्डित भातखण्डे [१९१८]

संशोधनात्मक प्रवृत्ति की नींव तथा राष्ट्रीय दृष्टिकोण

पद्मविभूषण हरि विनायक पाटस्कर,
भू० पू० राज्यपाल, म० प्र०

भारतीय इतिहास में बीसवीं शति स्वर्णाक्षरों से अंकित की जायेगी। राजकीय, सामाजिक व सांस्कृतिक जागृति तथा पुनर्जीवन के लिए अनेकानेक महामानव इस शताब्दी में भारत भूमि पर अवतीर्ण हुए। राजकीय स्वातंत्र्य के अतिरिक्त जीवन के नानाविध मौलिक सिद्धांतों के प्रति देशवासियों में राष्ट्रीय दृष्टिकोण प्रदान करने का महत्तम कार्य इन्हीं सौ वर्षों में हुआ।

संगीत मानवी संस्कृति का एक अत्यंत प्रभावी एवं निर्दोष अङ्ग है। मध्यकाल में कतिपय शतकों में यह शास्त्र लुप्तवत् अवस्था को पहुँच चुका था। परम्परागत रागरूप व उनमें रचे हुए गीत गुप्त रखने की सङ्गीतकारों की प्रवृत्ति के कारण समस्त परम्परा के ही सर्वनाश हो जाने की संभावना स्पष्ट प्रतीत हो रही थी। ऐसी सङ्कटग्रस्त परिस्थिति में हमारी इस सम्पदा को सुरक्षित करने के लिए ही मानो पं० भातखण्डे का अवतार हुआ। परिवर्तित देश काल परिस्थिति के अनुसार समूचे संगीत शास्त्र का पुनरुद्धार किया, उसमें राष्ट्रीय दृष्टिकोण का निर्माण किया। 'हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति' इस शब्द ने समय की माँग को पूर्ण किया, जनता की धरोहर जनता को पुनः मिल गई।

परंतु इसके लिए उन्हें आमरण अथक परिश्रम करने पड़े। पर्याप्त साधनों के अभाव में देशव्यापी पर्यटन करने पड़े। उच्च परम्परा के गायक-वादकों के गीतों के भंडार को उपलब्ध कराने के लिए उनसे अनुनय करना पड़ा, प्रसङ्ग विशेष में उनका शिष्यत्व भी स्वीकार करना पड़ा। ऐसे सहस्रों गीतों का स्वरांकन करना कितना कष्टप्रद था, परंतु फिर भी उसे किया। रागों के इतिहास, उनके शास्त्र-नियम स्थापित किये। इस विद्या को एक पूर्ण विकसित विषय में बदल दिया। सङ्गीत में संशोधनात्मक प्रवृत्ति की नींव इन्होंने ही डाली। देश के सांस्कृतिक उत्थान में सङ्गीत विद्या तथा सङ्गीतजीवि और सङ्गीतानुरागी समाज अपना-अपना योगदान देने में सक्षम बने इस दृष्टि से जो भी कुछ आवश्यक था वह सारा या तो उन्होंने स्वयं किया अथवा उसकी ओर जागृति निर्माण कर दी। इतने बड़े देश की एकात्मकता सिद्ध करने के लिए दक्षिणोत्तर सङ्गम की दिशा में सक्रिय पदार्पण किया। स्वाधीनता संग्राम के दिनों में ही सङ्गीतोद्धार की दिशा में देशव्यापी क्रांतिकारी सङ्गटण तैयार करने में पं० भातखण्डे जुटे हुए थे। अकेले एक व्यक्ति के हिमालय सदृश्य इन कार्यों को देखकर आज आश्चर्य होता है।

सङ्गीत के शिक्षण क्षेत्र में भी उन्होंने ऐसा ही अतुलनीय कार्य किया। अनेक विद्यालय स्थापित किए तथा उनके लिए साधन सामग्री उपलब्ध करा दी। बड़ी संख्या में विद्वान् गायक-शिष्य और विद्यालयों के प्रबंधक निर्माण किए। देश के कोने-कोने में सङ्गीत कला का दिव्य संदेश आज जो घर-घर में पहुँच रहा है उसका श्रेय पं० भातखण्डे को ही देना होगा। सङ्गीत के विश्वविद्यालय का स्वप्न सर्व प्रथम उन्होंने ही देखा था, आज उसके साकार हो जाने में उनकी प्रेरणा का बहुत बड़ा अंश है।

सङ्गीत की सामूहिक शिक्षा ! कम से कम ३-४ शताब्दियों से तो इस प्रकार का शब्द प्रयोग ही हम लोग भूल चुके थे। सङ्गीत के पुनरुत्थान में देशवासियों को अपने कर्त्तव्यों का स्मरण पं० भातखण्डे ने ही कराया। पारस्परिक अविश्वास, अशांति के आज के तङ्ग वातावरण को आंशिक रूप से हलका करने में पं० भातखण्डे द्वारा प्रेरित सामूहिक शिक्षा पद्धति कितनी उपकारी सिद्ध हो रही है। उनके कार्य का जितना भी गौरव किया जाय—कम ही है।

भविष्य में भारतीय संगीत की होने वाली उन्नति, प्रचार को योग्य दिशा दिखाते हुए स्फूर्ति, धैर्य प्रदान करने के पं० भातखण्डे जी के विपुल कार्य अथाह सागर में दीपस्तंभों की मालिका का काम करते रहेंगें, इसमें मुझे लेशमात्र शंका नहीं।

हमारी खुश किस्मती से ऐसा आलिम प्रोफेसर हमको मिल गया

स्व० श्रीमंत महाराज माधवराव सिन्धिया, ग्वालियर

जनाब महराजा साहब व हाजरीन जल्सा,

एक वक्त था कि गायन का इल्म हमारे मुल्क में कैसे कमाल पर पहुँचा हुआ था। यह बात सब ही जानते हैं कि पुराने जमाने में हिन्दुस्तान में यह इल्म कितने ऊँचे दर्जे पर था, और कैसे-कैसे अहले कमाल हमारे यहाँ मौजूद थे। लेकिन वक्त के फेर से इस इल्म का ज़वाल हुआ, उसकी सब से बड़ी वजह यह थी कि जो लोग इस फ़न में माहिर थे, उन्होंने अपने शागिर्दों को इस इल्म के भेद नहीं सिखाये और इसीलिए यह फ़न इस देश से जाता रहा। यही हालत दूसरे फ़नों की भी हुई। शागिर्द हरचन्द कोशिश करते हैं, लेकिन उस्ताद उनको ठीक रास्ते पर नहीं डालते। जिससे सीखनेवाला हमेशा मुहताज बना रहता है और सीखकर फ़न में तरक्की नहीं करने पाता।

मेरा जाती तजरुबा है कि हमारे यहाँ की बैटरी (Battery) का एक सारजन्ट जो सितार बजाने का आशिक था, उसने सात वर्ष तक इस बात की कोशिश की कि उसको कुछ आ जावे। उस्ताद की खुशामद में वह बराबर लगा रहा, और हर तरह से उसने मेहनत की, मगर सिर्फ इस वजह से कि उसको कायदे से रास्ते पर नहीं डाला गया, सात वर्ष की मेहनत का यह नतीजा हुआ कि उसे कुछ न आया। साहिबान, हमारे मुल्क में यह हालत है। उस्ताद लोग ऐसे कोताह अन्देश थे कि बावजूद इल्म से वाकिफ होने के उन्होंने उसको दूसरों को सिखाने में चोरी की, जिससे इल्म डूबता गया। तवायफों तक की यह हालत पाई गई कि माँ अपनी बेटी को गाना सिखाने में पहलूत ही करती है।

मेरे ख्याल में हम ग्वालियर के लोग खुश किस्मत हैं कि जमाने में हमको भातखण्डे जैसे काबिल प्रोफेसर की मदद मिल गई। यह वह जगह है कि जहाँ पर सारे हिन्दुस्तान के मशहूर व ऐतिहासिक तानसेन साहब का मजार शरीफ है। मुझे पाँच वर्ष से फिकर थी, कि इस जगह पर गायन विद्या के फिर प्रचार करने के लिए एक ठीक रास्ता डाला जावे। यह हमारी खुश किस्मती है कि ऐसा आलिम प्रोफेसर हमको मिल गया है कि जो इन बच्चों को ठीक तौर पर तालीम देकर हमारे यहाँ फिर इस विद्या का प्रचार करेगा।

चुनांचि ऐ साहिबजादो, नई गायन शाला खोलकर अब यह इन्तजाम किया गया है कि तुम एक सिलसिले से यह इल्म सीखो और जिसको फुरसत और शौक इजाजत दे, वह इस फ़न में कमाल हासिल करके इस विद्या का फिर एक दफा इस देश में प्रचार करे।

हम जब ईंग्लिस्तान और दूसरे गैर मुल्कों से मुकाबिला करते हैं तो हमको अपनी हालत देखकर अफसोस होता है। उन मकामात पर इस विद्या के अहले कमाल को (Knighthood) और बड़े-बड़े मान दिये जाते हैं। क्या वजह है कि अपने यहाँ भी इस बात की कोशिश न की जावे कि जिससे लोग इस विद्या में कमाल हासिल करके नाम और इज्जत पैदा करें। मेरा ख्याल है कि अगर गानेवाला सुर में गावे तो उसको भी मजा आता है और सुननेवाले को भी। गाने के लिए यह भी जरूरी है कि, वह समय का व Audience (श्रोता मण्डली) कैसी है उसका अनुभव कर ले, जिससे कि सुननेवाले आनन्द में मग्न हो जावें और गाने की तारीफ करें।

लश्कर म्यूजिक स्कूल में जो काम गुजिश्ता दो-ढाई महीने में हुआ है और जो तरक्की इन बच्चों ने की है जैसा कि आज आप सबको उनके सुनने से जाहिर हुआ है, हर तरह काबिले तारीफ है, और आयन्दा को उम्मेद दिलाने वाली है।

शुरू में कोशिश यही की गई है, जैसा कि होना चाहिये कि कायदे के साथ बच्चों को Rudimentary यानी आरम्भिक बातें सिखाई जावें।

आखिर में मैं हाजरीन का शुक्रिया अदा करता हूँ कि आपने यह तकरीर सुनकर मुझे इज्जत बख्शी। आज यहाँ पर मेरे खड़े होकर बोलने का मकसद यही था कि, आम लोगों को यह मालूम हो जावे कि ग्वालियर में म्यूज़िक इन्स्टिट्यूट कायम करने से मुराद क्या है, ताकि वह उसकी आयन्दा तरक्की में दिलचस्पी ले।

(चियर्स)

नोट—तारीख २४ मार्च सन् १९१८ ई० ब मौके जलसा जराअति व हिरफती नुमायश सन् १९१८ ई० शामयाना तफरीह वक्त ८ बजे रात। ग्वालियर म्यूज़िक इन्सिटट्यूट के बालकों ने आज अपना गाना नुमायश में सुनाया। श्रीमान् महाराजा साहब राजपिपला व अनेक सरदार व आफिसरान व दूसरे साहब मौजूद थे। जलसा आम था। बालकों का गाना खत्म होने पर श्रीमान् महाराजा साहब माधवराव सिंधिया ने यह स्पीच दी।

—'जयाजी प्रताप' से उद्धृत

उन्होंने मुझे सुसंस्कृत किया

स्व० संगीतरत्नालंकार
आचार्य राजाभैया पूछवाले, ग्वालियर

संगीत कलानिधि श्रीमान् गुरुवर्य विष्णु नारायण उर्फ अण्णासाहब भातखण्डे बी० ए० एल० एल० बी० एक आदर्श एवं प्रतिभाशाली पुरुष थे। जिन्होंने संगीत-विद्या की उन्नति के लिए तन-मन-धन से अविश्रांत परिश्रम किये। इन परिश्रमों का फल माधव संगीत विद्यालय, लश्कर-ग्वालियर व मैरिस कालेज आफ हिन्दुस्तानी म्युज़िक, लखनऊ इन दोनों संस्थाओं के अस्तित्व और अखिल भारतवर्ष में संगीत विद्या के शिक्षण के दैनंदिन प्रचार से जनता को प्रत्यक्ष प्रमाणित हो सकता है। ऐसे अद्वितीय पुरुष के सहवास का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अतः श्री गुरुवर्य के चरित्र की कुछ बातें जो स्मृति में रख सका हूँ जनता की सेवा में सादर अर्पण करता हूँ।

माधव संगीत महाविद्यालय लश्कर-ग्वालियर की स्थापना दिनांक १०-१-१८ को श्रीमान् गुरुवर्य अण्णासाहब भातखंडे के परामर्श के अनुसार ग्वालियर दरबार ने की थी। उसमें श्री भातखंडे की संगीत पद्धति का शिक्षणक्रम रखने की दृष्टि से महाविद्यालय की स्थापना करने से पहले ही मुझे और अन्य छः कलावन्तों को स्कालरशिप देकर, हमारे कै० श्रीमान् माधवराव महाराज साहब शिन्दे ने संगीत के शिक्षण की सुलभ पद्धति की जानकारी कराने के लिये श्रीमान् गुरुवर्य की सेवा में बंबई भेजा था। वहाँ हमारे शिक्षण का क्रम नियमित तीन मास तक जारी रहा। हमारे रहने के स्थान पर श्रीमान् गुरुवर्य प्रतिदिन सुबह-शाम निश्चत समय पर उपस्थित होकर हमको शिक्षण देने की कृपा करते थे, जब कि भरपूर वेतन पाकर भी शिक्षक ऐसे नियमित समय का पालन नहीं कर पाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि श्रीमान् गुरुवर्य को संगीत-विद्या का प्रसार करने की कितनी तीव्र इच्छा थी। हम ग्वालियर के लोग अपनी प्रणाली के अत्यन्त अभिमानी थे। इसलिये श्री गुरुवर्य संगीत-विश्व में कितनी योग्यता के अधिकारी पुरुष हैं, इसका ज्ञान उस समय हमको नहीं था। इस कारण से गायन की चीजों का नोटेशन करते समय गुरुवर्य से बहुत ही वादविवाद होता था। परन्तु हमारे हठवाद पर अपने सामर्थ्य का शीतल प्रभाव डालकर युक्तिवाद से वे हमारा समाधान करते हुए योग्य मार्ग पर हमको खींचकर ले आते थे। इससे श्री गुरुवर्य की विलक्षण बुद्धिमत्ता तथा सहनशीलता जाहिर होती है।

एक समय मिश्र राग की एक चीज का नोटेशन करते समय उस चीज की स्वर रचना में दोनों रागों के उचित अंगों का अभाव होने से उसमें थोड़ा बहुत फर्क करके

उन-उन अंगों की पूर्णता करना श्री गुरुवर्य ने उचित समझ कर अपना विचार प्रगट किया। परन्तु उस समय मैं स्वयं अपनी प्रणाली का अभिमानी व श्री गुरुवर्य की योग्यता के विषय में पूर्णतः अज्ञानी होने से पर्याप्त चर्चा हो जाने पर भी उनसे सहमत न हो सका। अन्त में श्री गुरुवर्य ने मुझे अपना एक शिशु समझ कर मेरा ही हठ पूर्ण किया। समुद्र की भाँति अपनी गम्भीर शांतता प्रगट करते हुए भविष्य में मेरा अज्ञान दूर हो जाने का विश्वास देकर मुझे आनन्दित किया। इससे हमारे गुरुवर्य कितने निरभिमानी थे, यह स्पष्ट होता है।

विद्वान् पुरुषों के अधिकार व गांभीर्य का ज्ञान उनके दीर्घ सहवास से ही हो सकता है। क्रमशः श्री गुरुवर्य के अगाध ज्ञान व अधिकार का प्रभाव मुझ पर भी पड़ने लगा तथा मेरा अज्ञान-पटल क्रमशः दूर होता गया। जब श्रीमती स्व० कमलाराजा व हमारे विद्यमान नरेश जार्ज जिवाजीराव महाराज को संगीत का शिक्षण देने का अवसर मुझे मिला था, उसी समय हमारे महाराज के साथ गर्मी की ऋतु में पाँच महीने तक मेरा रहना बंबई में होने से श्रीमान् गुरुवर्य की सेवा में प्रतिदिन मुझे उपस्थित होकर कुछ अप्रसिद्ध रागों का शिक्षण प्राप्त करने का सुयोग मिला। यद्यपि मेरे आयुष्य का बहुत-सा हिस्सा गायन का शिक्षण लेने में ही व्यतीत हुआ था व मैं अच्छा गाता भी था, तथापि प्रत्यक्ष तालीम लेते समय श्री गुरुवर्य के गले का व गायकी का अनुकरण मुझसे लेशमात्र भी न हो सका। केवल उनकी कृपा से ही मेरा कार्य भाग उस समय यशस्वी हो गया। श्री गुरुवर्य संगीत के केवल शास्त्रज्ञ ही नहीं थे, वे एक अद्वितीय गायक भी थे। ऐसा मैं अपने अनुभवों से स्पष्ट कह सकता हूँ। गायक का व्यवसाय न करने के कारण वे स्वयं गायक नहीं थे, केवल संगीत के शास्त्रज्ञ पंडित थे, ऐसी अभी भी जनता की भ्रामक कल्पना है। परन्तु उन्होंने संगीत के विषय पर जो पुस्तकें प्रकाशित की हैं, उनमें हर एक राग का पूर्ण विवेचन व स्पष्टीकरण जो उन्होंने किया है; वह पढ़ने से सिद्ध हो जाता है कि ग्रंथकर्ता स्वयं एक अत्यंत अनुभवी तथा अद्वितीय गायक भी थे।

श्री गुरुवर्य के सहवास से भविष्य में मेरा अज्ञान नष्ट होने का जो उनको विश्वास था, उसकी जाँच समय-सयय पर वे युक्तिवाद से करते रहते थे। उदाहरणार्थ हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति की क्रमिक पुस्तकों के पुनर्मुद्रण के अवसर पर इन पुस्तकों में जो ग्वालियर की चीजें समाविष्ट हैं, उनमें से जिन-जिन चीजों की स्वर-लिपि में मेरी प्रणाली के अनुसार सुधार होना आवश्यक समझा जाता हो वह करके उनके कागज (ड्राफ्ट्स) भेजने के लिये वे हर समय मुझे सूचित करते थे और मैं भी वह कार्य बड़ी उम्मीद से करके श्री गुरुवर्य की सेवा में समय-समय पर भेजता था। वे भी इन कागजों की संपूर्ण जाँच कर उन्हें योग्य समझने पर पुनर्मुद्रण में सुधार कर देते थे। मेरा यह उत्साह बढ़ाने के हेतु से उन चीजों के "विकटरूप" भी हर पुस्तक में रखना उन्होंने स्वीकार कर लिया था। इस तरह क्रम चलते हुए तीसरी क्रमिक पुस्तक का पुनर्मुद्रण होने के अवसर पर प्रणाली के सम्बन्ध की मेरी अंध श्रद्धा का पटल पूर्णता से निवारण करने के उद्देश्य से श्री गुरुवर्य ने फिर वैसी ही आज्ञा प्रदान की। दीर्घ काल श्री गुरुवर्य के सहवास से यद्यपि मेरे अज्ञान का बहुत-सा हिस्सा दूर हो गया था, तथापि थोड़ा-सा अज्ञान शेष रह जाने से इस समय भी अभिमान से वही कार्य करने का धैर्य लेकर श्री

गुरुवर्य की सेवा में कागजात (ड्राफ्ट्स) भेजने की फिर चेष्टा की। परन्तु उन्होंने इनका भी पूर्ण निरीक्षण करके पुनर्मुद्रण का कार्य कुछ समय के लिये रोक दिया। जब सुयोग से मेरा बंबई जाना हुआ, तब मैंने श्री गुरुवर्य की सेवा में उपस्थित होकर अपनी कृति का परिणाम-फल जानने की इच्छा प्रदर्शित की। थोड़ा-सा समय जाने पर प्रणाली में अपभ्रंश से व विचार के अभाव से जो कुछ त्रुटियाँ थीं, उनका वर्णन गुरुवर्य ने युक्तिवाद से विस्तारपूर्वक किया। मेरा समाधान हो रहा है अथवा नहीं, इस बावत अपनी कुशाग्र बुद्धि से जाँच-पड़ताल करते रहे। ग्वालियर की चीजों में स्वर, शब्द-रचना एवं भाव की दृष्टि से जो सुधार बहुत ही विचार पूर्वक करके उन्होंने मुद्रित कराया था, वे चीजें उसी अर्थभाव से स्वयं गाकर बतलाईं। उन्हें सुनकर मेरा शरीर रोमांचित हुआ। जब उन्होंने पूछा कि "भैया, अब इसमें सुधार होना तुम्हारी दृष्टि से आवश्यक है क्या ?" तब संगीत विद्या में श्री गुरुवर्य के अद्वितीय अधिकार का प्रभाव मुझ पर पूर्णता से पड़ने की वजह से मेरा मन अत्यन्त सन्तुष्ट होकर मुझे यही प्रार्थना करनी पड़ी कि "आपकी तरह इन चीजों का गायन यदि किया गया तो आपने उन्हें जैसा मुद्रित किया है वैसे ही वे अवश्य होनी चाहिये।" मेरे मुख से नम्रतापूर्वक उत्तर सुनकर मेरा अज्ञान-पटल दूर होने के बाबत श्री गुरुवर्य को अत्यन्त हर्ष हुआ। उन्होंने ममतापूर्वक अपना दक्षिण कर मेरी पीठ पर रखते हुए कहा कि "भैया, अब तुम्हारा मन पूर्ण सुसंस्कृत हो गया है और मेरी भी चिन्ता दूर हो गई है।" इस तरह मेरे हठवाद पर अपने अधिकार का प्रभाव बुद्धिवाद से, न कि दुराग्रह से, मुझ पर समय-समय पर डालकर मुझे सुसंस्कृत करने का श्रेय श्री गुरुवर्य ने प्राप्त किया। इसलिये उनके ऋण से मैं मुक्त नहीं हो सकता हूँ।

—आकाशवाणी, लखनऊ के सौजन्य से

बड़े से बड़ा वेतन भी उन्हें आदर्शों से च्युत न कर सका

स्व० आचार्य भास्करराव रामचन्द्र खांडेपारकर, उज्जयनी

स्व० श्री विष्णु नारायण भातखंडे साहब का नाम आज प्रायः सभी को सुपरिचित है। इस पवित्र आत्मा ने संसार में जन्म लेकर जो भी काम किया, वह सभी आबाल-वृद्ध को विदित है। पंडित भातखंडे साहब लगभग सभी शहरों में विभिन्न अवसरों पर जाते-आते रहते थे। बड़े गौरव का विषय है कि हमारे इस ग्वालियर नगर में भी ऐसे ही एक प्रसंग पर वे आये थे। ग्वालियर में उनका पदार्पण कैसे हुआ, इस विषय पर यहाँ कुछ विचार प्रस्तुत कर रहा हूँ।

सन् १९१६ में गोवा प्रान्त के भ्रमण के अवसर पर वहाँ ग्रन्थालय में हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति नामक ग्रन्थ का प्रथम भाग मेरे देखने में आया। लेखक का नाम था पंडित विष्णु शर्मा। ग्रंथ साद्यन्त पढ़ने पर प्रतीत हुआ कि यह ग्रन्थ लिखनेवाला व्यक्ति संगीत-शास्त्र में तथा गायनवादन में बहुत ही प्रवीण होना चाहिए। अधिक पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि ये सज्जन बम्बई में बालकेश्वर के रहनेवाले हैं। बी० ए० एल० एल० बी० हाईकोर्ट वकील भी हैं और उनका नाम श्री विष्णु नारायण भातखंडे है। तदुपरांत मैं उनसे भेंट करने गया और उन्होंने अत्यन्त आदरपूर्वक अपने यहाँ पाँच-छः दिन तक मुझे रख लिया। मेरी गुरुपरम्परा एवं ग्वालियर की अन्य जानकारी मुझसे प्राप्त कर ली। चार-पाँच दिन तक सुबह-शाम मैंने सीखे हुए सभी राग तंबुरे पर सुन लिये।

उन्हें मेरे गाने की तालीम बहुत पसंद आई और मेरी तालीम की चौपड़ी अपने पास रख ली। ग्वालियर में आना उनका अभी तक संभव नहीं हुआ था। अतः मैंने उन्हें वहाँ आने का निमन्त्रण दिया। मेरी गुरुपरम्परा के स्वजनों का एवं अन्य गुणिजनों का गायनवादन सुनकर ग्वालियर में अपनी पद्धति का एक संगीत विद्यालय स्थापित करने की उनकी इच्छा का मैंने अनुमोदन किया। अन्त में पुनः एक बार ग्वालियर में आने का निमन्त्रण देकर मैं वापस चला आया। यहीं से उनका और मेरा ऋणानुबन्ध स्थापित हो गया। मेरे वापस आ जाने के पश्चात् उन्होंने मेरी नोटबुक लौटा दी तथा दो माह के लिये मुझे आग्रहपूर्वक पुनः बुला लिया। उनके घर में मेरे इस दो माह के वास्तव्य में सीखे हुए सभी रागों में जितनी भी चीजें मुझे ज्ञात थीं, मैंने उन्हें अपनी तालीम के अनुसार गाकर नोटेशन सहित लिखवा दीं। इस बार भी ग्वालियर में पधारने की पुनः प्रार्थना की। उनकी सभी व्यवस्था भली प्रकार करूँगा, ऐसी उत्सु-

कता दर्शायी तथा ऐसा भी कहा कि मैं ग्वालियर की परम्परा का विद्यार्थी होने के कारण मेरी नोटेशन सहित दो हुई चीजों की पड़ताल वहाँ के गुरुजनों से करवा कर यदि अन्य पाठान्तर प्राप्त हो सके तो उसे भी संग्रहीत किया जाय। ग्वालियर में संगीत शाला की स्थापना के विषय में श्रीमन्त सरकार से भेंट करना इत्यादि बातों पर भी विचार किया जा सकेगा। मेरे वार्तालाप से एवं व्यवहार से वे संतुष्ट हुए तथा 'अवश्य आऊँगा' ऐसा मुझे आश्वासन दिया। बाद में मैं पुनः ग्वालियर चला आया।

तदुपरान्त मार्च १९१७ (सम्वत् १९७४) में प्रथम मुझे सूचना देकर वे मेरे घर पधारे। उनकी बैठक के लिये टाउनहाल के पास ही २५) माहवार का एक मकान किराये पर ले लिया और वहीं उनके निवास की व्यवस्था भी कर दी। इन्हीं दिनों में कै० श्रीमन्त दौलतराव महाराज की छत्री में एक उत्सव प्रारम्भ हो जाने से बहुत से लोगों के गायनवादन के श्रवण का संयोग अनायास ही प्राप्त हो गया। बाद में मैंने सभी प्रसिद्ध लोगों के गायन उन्हें सुनवाकर उनका परिचय भी करा दिया। यहाँ के प्रसिद्ध गायकों में उस समय बालासाहब गुरुजी थे। इनका भी घनिष्ट परिचय पंडित भातखण्डे साहब से करा दिया।

जिस समय इन दोनों की परस्पर भेंट हुई, संगीत के श्रुतिशास्त्र पर एवं प्रत्यक्ष गायनवादन पर दोनों का सम्भाषण और चर्चा बहुत देर तक होती रही। अन्त में उनकी विद्वत्ता पर आश्चर्य प्रगट करते हुए बालासाहब गुरुजी के मन में उनके प्रति आदर उत्पन्न हुआ तथा बाद में दो जलसों में अपना प्रत्यक्ष गायन भी उन्हें सुनाया। तदुपरांत स्व० शंकरराव पंडित तथा गणपतराव से पंडितजी की भेंट हुई। उस समय शंकरराव बहुत अस्वस्थ थे। "मुझे शास्त्र आदि कुछ नहीं आता। मेरे गले में जो कुछ है उसे आप सुन सकते हैं। परन्तु इस समय मैं बहुत बीमार होने के कारण अपना सभी काम आपको सुनाने में असमर्थ हूँ"—ऐसा पंडित भातखंडे साहब से कहते हुए बीमार अवस्था में भी कुछ अस्ताइयाँ, कुछ तानें, मुरकियाँ मुलायम आवाज से सुनाईं।

इन्हीं दिनों में ग्वालियर में कोई बड़ा अंग्रेज अधिकारी मेहमान आ जाने के कारण श्रीमन्त सरकार से मुलाकात का अवसर प्राप्त न हो सका। तथापि भातखंडे जी के पधारने का सभी वृत्तान्त कै० श्रीमन्त बलवन्तराव भैया साहब को मैंने विदित कराया। भातखंडे साहब के लिये तुरंत मोटर भेजी जाकर हम दोनों बलवन्तराव भैया साहब के यहाँ गये और संगीत विषय पर बहुत समय तक सम्भाषण होता रहा। सरदार साहब के मन में उनके प्रति आदरभाव जागृत हुआ और कहने लगे कि "आप के आने का वृत्तांत मैं श्रीमन्त महाराज साहब के कान तक अवश्य पहुँचाऊँगा"। इस प्रकार भातखंडे साहब का मुकाम ग्वालियर में एक माह तक रहा। बाद में वे बम्बई चले गए। जाते समय मुझे सहकुटुम्ब बम्बई में आकर रहने के लिये आग्रह किया। कुछ ही दिनों में मैं भी सपरिवार बम्बई पहुँचकर बालकेश्वर के उनके घर में रहने लगा। प्रति दिन सुबह-शाम मैं उनके पास बैठकर अभ्यास करता था। उनके विद्यालय में शिक्षक भी हो गया। सिखाने का कौशल्य मैंने उन्हीं की कृपा से प्राप्त किया।

इधर ग्वालियर में मेहमानों से निवृत्त होते ही बलवन्तराव भैया साहब ने भातखंडे साहब की सारी बातें श्रीमन्त सरकार को सुनाईं तथा ग्वालियर में एक संगीत शाला स्थापित करने का भातखंडे जी का उद्देश्य सरकार को सुनाया। श्रीमन्त सरकार ने भी ऐसे काम में अपनी सहानुभूति प्रगट की। पश्चात् सन् १९१७ के अगस्त माह में श्रीमन्त सरकार जब बम्बई पधारे, भातखंडे साहब की बातें ध्यान में रखकर उन्हें भेंट के लिये बुला लिया। साथ ही ग्वालियर में संगीत शाला स्थापन करने का अपना विचार भातखंडे साहब को बता कर बम्बई के उनके विद्यालय को भेंट देने की इच्छा प्रदर्शित की।

उसी दिन विद्यालय को श्रीमन्त सरकार ने भेंट दी तथा विद्यार्थियों का सभी कार्य देखकर अतिशय संतोष व्यक्त किया। जहाँ तक बन सके ग्वालियर में शाला स्थापन करने का काम शीघ्र ही प्रारम्भ करने की सूचना पंडित भातखंडे साहब को दी। साथ ही साथ यह भी कहा कि ग्वालियर में पधारने बाबत बाद में तार द्वारा सूचित करूँगा। पोलिटिकल मेम्बर श्री कैलाशनारायण भी श्रीमन्त महाराज के साथ उस समय उपस्थित थे। पंडित भातखंडे साहब के साथ मैं भी वहीं पर था। मेरे बारे में सब जानकारी श्रीमन्त महाराज ने भातखंडे साहब से पूछ ली। ग्वालियर में विद्यालय की स्थापना होने के समय मुझे वहाँ पर शिक्षक नियुक्त करने की श्रीमन्त महाराज की आज्ञा हो चुकी है, ऐसा पं० भातखंडे जी ने मुझे बाद में बताया। स्वयं श्रीमन्त महाराज की आज्ञानुसार मैं इस राज्य में नौकर हुआ यह मेरा परम सौभाग्य है।

थोड़े ही दिनों बाद गणेश चतुर्थी के दिन पं० भातखंडे जी के पास आया हुआ श्रीमन्त सरकार का तार उन्होंने मुझको दिखाया। उसके अनुसार हम दोनों ने शिवपुरी जाने का निश्चय किया व दूसरे ही दिन हम दोनों बम्बई से चल दिये। विचार तो किया था प्रथमतः ग्वालियर को जाने का। परन्तु झाँसी स्टेशन पर ग्वालियर सरकार की ओर से भेजे हुए दो सज्जन हमारी पूछताछ करते हुए गाड़ी तक आ गये। हमें यहीं पर उतार लिया गया। एक मोटर में बैठकर दूसरी में सब सामान रखते हुए झाँसी से हम लोग शिवपुरी महल के गेस्ट हाउस में पहुँच गये। भोजनोपरान्त रात्रि ८ बजे महाराज से भेंट करने के लिये महल में गये, जहाँ पर अखंड भजन सप्ताह चल रहा था। कुछ देर तक महाराज के भजन इत्यादि सुनते रहे। भजन शेष हो जाने पर श्रीमन्त सरकार से भेंट हुई। उस दिन कुशल प्रश्नोत्तर के बाद हम लोग अपने निवास पर पुनः आ गये। शिवपुरी में हम लोग १५ दिन तक थे, जहाँ पर गायन के जल्से सुने तथा स्व० केशवराव भोंसले के नाटक देखे। हमारे इस प्रवास में एक-दो दिन के उपरांत ग्वालियर में संगीत शाला स्थापित करने के विषय में चर्चा शुरू हुई। कुछ अधिकारियों को बुलाकर हमारे निवास पर ही इस कमेटी का कामकाज प्रारंभ हुआ। स्वयं श्रीमन्त सरकार कमेटी का कार्य सम्पूर्ण होने तक मौजूद थे। कमेटी में आर्मी मेम्बर श्री राजवाड़े, डा० बागड़े, डा० नाडकर्णी, मुकुन्दराव खाँडेकर, शिक्षा विभाग के डायरेक्टर श्री परचुरे, कैलाशनारायण हक्सर तथा पं० भातखण्डे साहब थे। इनके अतिरिक्त जो तीन-चार सज्जन और उपस्थित थे, उनके नाम अब मुझे याद नहीं हैं।

कमेटी का कार्य प्रारम्भ होने पर आर्मी मेम्बर साहब ने प्रथम प्रस्ताव में ही यह विद्यालय एज्युकेशन डिपार्टमेंट को देने का सुझाव रखा, जिसे श्रीमन्त सरकार ने भी मंजूर किया। दूसरा प्रस्ताव स्वयं श्रीमन्त सरकार ने रखते हुए कहा कि, विद्यालय के लिए शिक्षक वर्ग बम्बई से ही बुलाया जाय। परन्तु भातखंडे साहब ने श्रीमन्त सरकार को बार-बार यही समझाया कि, ग्वालियर संगीत की नगरी है। यहाँ के गायकों को जिस प्रकार परिपक्व शिक्षा मिली है, वैसी अन्य स्थान के गायकों में मिलना कठिन है। क्योंकि यहाँ के राजदरबार में हद्दु हस्सू खाँ जैसे बड़े-बड़े गायक हो चुके हैं। अतः ग्वालियर के ही शिक्षक रखना योग्य होगा। श्रीमन्त सरकार ने भी उनका कहना मान लिया। सम्भवतः यह भी एक अन्य कारण होगा कि बाहर के शिक्षक बुलाने पर स्थानीय लोगों का हमेशा विरोध होता रहेगा। विद्यालय सुचारु रूप से चलना स्थानीय समाज पर अवलम्बित होता है। इसके बाद कमेटी में जो चर्चा हुई, उसमें ग्वालियर के कितने और कौन-कौन से शिक्षक विद्यालय में रखना चाहिए, इस पर विचार होकर फिलहाल केवल छः शिक्षक पर्याप्त हैं; ऐसा निश्चित हुआ। उनमें से एक मैं भी था, जैसा कि बम्बई में पं० भातखंडे साहब एवं श्रीमन्त सरकार के बीच पूर्व में ही ठीक हो चुका था। और किन शिक्षकों के नाम सुझाये जायँ ऐसा पं० भातखंडे साहब ने मुझसे पूछा था। जिनके विषय में मुझे पूर्ण जानकारी एवं विश्वास था, उनके नाम मैंने प्रस्तावित किये; जो इस प्रकार थे—सर्व श्री कृष्णराव पंडित, कृष्णराव दाते, राजाभैया पूछवाले, बलवन्तराव भजनी तथा विष्णुबुआ। इनमें से बलवन्तराव भजनी और विष्णुबुआ प्रिवीपर्स में पहले से ही नौकर थे। अतः उनके नाम पंडित भातखंडे साहब ने प्रारम्भ में ही लिख लिये थे। उस समय प्रिंसिपल राजाभैया का नाम समाविष्ट नहीं किया था। कारण वे श्रीमन्त सरकार के भजनों में प्रतिवर्ष हारमोनियम बजाते थे। अतः एक संगतकार के रूप में ही समझे जाते थे। इस प्रकार कमेटी बनाकर श्री परचुरे साहब को शाला का सेक्रेटरी नियुक्त किया गया। पंडित भातखंडे साहब को ६००) प्रतिमाह वेतन तथा निवास के लिये बंगला देने के विषय में श्रीमन्त सरकार ने अपनी इच्छा प्रदर्शित की। परन्तु इनका उन्होंने इन्कार करते हुए श्रीमन्त सरकार से प्रार्थना की कि, "वृद्धावस्था में अब मुझसे नौकरी करना सम्भव न होगा। इसके अतिरिक्त मेरे पीछे कुटुम्बपालन का कुछ भी खर्च नहीं है। मेरे अकेले के लिये बैंक से प्रतिमाह १००) मिलता है जो मुझे पर्याप्त है। विद्यालय की परीक्षा हेतु वर्ष में दो बार सरकारी खर्चे से एक गेस्ट के रूप में आता रहूँगा।" श्रीमन्त सरकार ने उनकी इच्छा स्वीकार कर विद्यालय के लिए बजट कायम कर दिया। कमेटी का कार्य शेष होने पर श्रीमन्त सरकार ने पंडित भातखंडे साहब को एक पगड़ी और दुशाला भेंट स्वरूप प्रदान किया। तदुपरान्त हम दोनों बंबई के लिये रवाना हो गये।

कुछ समय बाद शिक्षकों को ट्रेनिंग प्राप्त करने हेतु भातखंडे साहब के पास बम्बई भेजा गया। विद्यालय स्थापन होने तक प्रत्येक को ३०) माहवार शिष्यवृत्ति दी जाती थी। श्री कृष्णराव पंडित ने विद्यालय में शिक्षक होना स्वीकार नहीं किया। अतः उनके स्थान पर किसी अन्य विश्वासपात्र व्यक्ति का नाम सुझाने बाबत भातखंडे

साहब ने मुझसे पूछा । मैंने पुनः श्री राजाभया के विषय में विश्वास प्रगट करते हुए कहा कि वे बहुत परिश्रमी होने के कारण उनके हाथ से कार्य अच्छा ही होगा। राजाभैया का व मेरा अनेक वर्षों का सहवास था । हम दोनों ख्याल व ध्रुवपद में एक ही खानदान के शागिर्द थे । भातखण्डे साहब को मेरी सलाह अच्छी प्रतीत हुई व उन्होंने राजाभैया को तुरन्त भेज देने बाबत श्रीमन्त सरकार को लिखा । उस समय राजाभैया विषमज्वर से पीड़ित थे । फिर भी कुछ दिन तक औषधि पथ्य लेकर स्वस्थ होते ही वे बम्बई में उपस्थित हो गए । ढाई-तीन माह तक शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के उपरांत पंडित भातखंडे साहब ने विद्यालय स्थापित करने के लिए उन्हें ग्वालियर वापस भेज दिया ।

इसी समय बड़ौदा सरकार से भी चार शिक्षक प्रशिक्षण के लिये भातखंडे साहब के पास आये हुए थे ।

जनवरी सन् १९१८ में माधव संगीत विद्यालय की स्थापना पंडित भातखंडे साहब के कर कमलों द्वारा कम्पूकोठी में की गई । कम्पूकोठी एकान्त स्थल में होने से विद्यार्थियों की कठिनाई दूर करने के लिए सेक्रेटरी साहब ने उसे गोरखी महाराजबाड़ा हाईस्कूल में स्थानांतरित किया । उस समय विद्यालय की पाठ्य-पुस्तकें छपकर तैयार नहीं थीं । अतः बहुत कठिनाई होती थी । मेरी प्रामाणिकता, शाला की उन्नति के लिए अविश्रान्त परिश्रम करने की तैयारी देखकर तथा मुझपर उनका अत्यन्त प्रेम होने के कारण कोई भी छोटी-बड़ी बात मुझसे छिपाते नहीं थे । स्वयं पं० भातखंडे साहब भी विद्यालय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अड़चन दूर करने के लिये तत्पर रहते थे । मुझे तो वे अपना सहकारी ही समझते थे । अतः मेरे लिये किसी प्रकार की वेतनवृद्धि, प्रमोशन तथा मानप्रतिष्ठा के विषय में उन्होंने कोई योजना नहीं की । मुझे भी इन बातों की कोई लालसा नहीं थी व आज भी नहीं है । अस्तु ।

विद्यालय में निश्चत् पाठ्यक्रम की कठिनाई पड़ती थी । अतः पाठ्यक्रम तैयार करने के लिये सरकारी खर्च से तीन शिक्षकों की मंजूरी पं० भातखंडे साहब ने प्राप्त कर हरिद्वार में अहिल्याबाई की धर्मशाला में महिना-सवा-महिना मुकाम किया । यहाँ पर क्रमिक चौथी पुस्तक के गीत मात्रा-विभाग में बाँधकर छाप दिये गये । इन तीन शिक्षकों में ख्याल गाने वाले सर्वश्री राजाभैया, स्वयं मैं तथा कृष्णराव दाते थे । क्रमिक पुस्तक का काम निपट जाने पर क्रमिक दूसरी व तीसरी पुस्तक में जो चीजें नोटेशन एवं मात्रा-विभाग के अभाव में छापने को अभी तक रह गई थीं, उन्हें तैयार करने के लिये वेकेशन के समय पर मैं व राजाभैया बंबई के लिये रवाना हो गये । पं० भातखंडे साहब के मालाड स्थित निवास पर हम तीनों एक माह के लिये एकत्रित हुये थे, जहाँ पर यह काम पूर्ण किया गया । हमारे साथ नारायण गुणे विद्यार्थी के रूप में वहाँ पर थे । इसी प्रसंग पर पं० भातखंडे साहब ने मुझे व राजाभैया को, जो एक ही घराने के ख्यालगायक थे विद्यालय में छात्रों को सुनियोजित गायकी की तालीम देने के लिये तान-आलाप तैयार करने के विषय में आज्ञा दी । राजाभैया व मैं दोनों ने कुछ दिन तक नियमित रूप से बैठ कर लगभग ४०-४२ रागों की तीन कापियाँ बनाईं, जिसमें से एक मेरे पास, दूसरी

राजाभैया के पास व तीसरी भातखंडे साहब के पास रखी गई। यही दूसरी व तीसरी पुस्तक की गायकी राजाभैया ने कुछ ही दिनों पूर्व स्वयं प्रकाशित की।

वर्ष में दो बार छमाही तथा वार्षिक परीक्षा के लिये पंडित भातखंडे साहब स्वयं पधारते थे व परीक्षा भी स्वयं ही लेते थे। श्री परचुरे साहब की मृत्यु हो जाने पर सेक्रेटरी के उनके पद पर रावसाहब अंबर्डेकर आये। विद्यालय का साप्ताहिक निरीक्षण करने के लिये प्रोफेसर बाजपेई तथा कविवर श्री भास्करराव ताँबे साहब की योजना आफिशियल विजीटर्स के रूप में पंडित भातखंडे साहब ने की थी। प्रोफेसर बाजपेई इधर ५-६ वर्षों से आनरेरी इन्सपेक्टर हुये हैं। सन् १६२६ में राजाभैया को प्रिंसिपल नियुक्त किया गया व विष्णुबुवा सुपरवाइजर हो गये। सन् १६३० में मुझे उज्जैन के संगीत विद्यालय के हेडमास्टर के स्थान पर भेजा गया। वहाँ पर भी बहुत दिन तक उनके पत्र मुझे प्राप्त होते रहे। एक पत्र में वे लिखते हैं कि, "आपकी और मेरी बारह वर्ष की तपश्चर्या से इस विद्यालय का कार्य यहाँ तक पहुँच गया है।" इसके बाद दूसरे पत्र में "लश्कर के विद्यालय का काम निम्नस्तरीय प्रतीत होने पर आपको वापस बुला लेना था। परन्तु उज्जैन के विद्यालय का नुकसान हो जावेगा, अतः आपको उज्जैन में ही रखने का मैंने निश्चित किया है" इत्यादि। इधर ३-४ वर्षों से उनका स्वास्थ्य बहुत ही खराब होने के कारण वे यहाँ पधार न सके। अतः उन्होंने अपना परीक्षा का कार्य श्रीकृष्ण रातांजनकर, प्रिंसिपल, लखनऊ संगीत कालेज को सौंप दिया था। संक्षेप में अपनी आयु का सर्वाधिक समय संगीत की सेवा में ही उन्होंने व्यतीत किया। इन्हीं के प्रत्यनों से संगीत विषय जनता को सुलभ हो गया, जिसके लिये देश की आबाल-वृद्ध जनता उन्हें अन्तःकरण से धन्यवाद दे रही है।

सन् १६३६ में गणेश चतुर्थी को उनका स्वर्गवास हुआ।

हे जगदीश, उनकी पवित्र दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान करें।

दिनांक २६-४-३८ —श्री० वा० भा० खाण्डेपारकर से प्राप्त

वे मेरे उस्ताद थे और परम मित्र भी

स्व० राजा नवाब अली खाँ, अकबरपुर

प्रचलित संगीत के लिये (जिसकी मौजूदा हालत जिस हद तक पहुँच गई है और जो पेश्तर बयान की जा चुकी है) भी एक ग्रन्थ की आवश्यकता थी, इस आवश्यकता को चतुर पण्डित ने पूरा किया। जो संगीत कला के अप्रतिम ज्ञाता हैं। उन्होंने जो ग्रन्थ लिखा है उसका नाम "लक्ष्य संगीत" है। हमारे समय में यही एक ऐसा ग्रन्थ है जो संगीत की वर्तमान आवश्यकताओं को पूर्ण करता है। "लक्ष्य संगीत" संस्कृत भाषा में है, जिसके समझने वाले हमारे मुल्क के हिस्से में बहुत कम हैं। इसलिये अपने उस्ताद और परम प्रिय मित्र पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे साहब बी० ए० एल० एल० बी०, वकील हाईकोर्ट बम्बई की आज्ञा से, मैंने इस पुस्तक को उर्दू में संगीत के सिद्धान्तों पर लिखा है। उपर्युक्त पंडित साहब की अनुपम खोज और अप्रतिम विद्वत्ता का ही नतीजा था जो यह किताब पूरी हुई। अगर कदम-कदम पर वह मदद न करते तो मुझसे इस काम का अन्जाम पाना नामुमकिन था।

—मारिफुन्नगमात, प्रथम भाग, पृष्ठ २७,
हाथरस प्रकाशन से उद्धृत

सारा देश इनकी कृतियों से व्याप्त है

स्व० पं० फिरोज फ्रामजी, पूना

He who governs the musical treatises well.
Who teaches his subjects, by the self same spell,
Friend of my bosom who is more than a brother,
To him I dedicate, for all knowledge I gather.

India can ever be too grateful to this, my learned friend for the limitless labour, love and imagination he has lavished on the development of Indian Music. He has done a great deal of useful work in stimulating interest in and promoting the study of Indian Music and in the systematization of Hindustani Ragas. He is the author of a number of musical treatises in Sanskrit and Marathi, amongst which Lakshya Sangeet has now been universally acknowledged as an authority on Music of the North. I have drawn very freely from his treatises and owe him a fur.her debt for allowing me to consult him freely for a better practical and theoretical knowledge of Indian Music.

It is a deeply inspiring spectacle for me to see whole India surrounded by his musical treatises, which worldly greatness can present, living from day to day so simple, vivid and musical a life. It is impossible for me to conceive a more fruitful example of my duty and affection towards him, and I dedicate this, my humble discourse to him for all his invaluable co-operation at every musical stages, without which it would not have seen the light of this world.

—इन्साइक्लोपीडिया आफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक, प्रथम भाग से उद्धृत

पंडित जी से मैंने प्रेरणा पाई

स्व० उस्ताद बुन्दू खां

पंडित भातखंडे के मुताल्लिक कहने-लिखने की मेरी क्या लियाक़त है ? उन्होंने एक ऐसा कमाल कर दिखाया है जो आज तक किसी ने नहीं किया। उनके सैकड़ों गाने मुझे आज भी याद हैं और वही मेरे रागों की शकलें हैं। हिन्दुस्तान के हर गाने बजाने वाले को मैंने देखा परखा है। कई लोगों से नई बातें हासिल कीं। इधर कुछ दिनों से अपना भी इल्म सभी के सामने रख देने की इच्छा हो रही है। कई भागों में "रागदर्पण" लिखे हैं। जो जल्दी छपाने का विचार है।

पंडित जी ने संगीत की बड़ी सेवा की। अगर पंडित जी कीं हस्ती न होती तो आज जो हिंदुस्तानी संगीत घर-घर में गाया बजाया जा रहा है वह न होता। यह उन्हीं की कृपा है कि हम जो शौकीनों के घर के बच्चों को "गुनि गावत काफी राग" का लक्षण सुन रहे हैं। नहीं तो गाना-बजाना पहले सिर्फ पुश्तैनी घरानेदार उस्ताद ही का काम था। जब पंडित जी को यह मालूम हुआ कि मैं गाने-बजाने को सीखने में उम्र गुजार रहा हूँ तो बहुत खुश हुए और फ़र्माया कि मैंने भी अपनी जिन्दगी इसी को सीखने और हासिल करने में गुज़ारी है। यह कालेज पंडित जी की कोशिशों का नतीजा है। मैं जब इस कालेज के प्रिंसिपल साहब (डा० श्री० ना० रातांजनेकर) को देखता हूँ तो मुझे पंडित जी याद आते हैं। ईश्वर इस संस्था को बढ़ाये और यहाँ के तालिब-इल्म यहाँ से निकलकर इसी संगीत को ऊँचा उठायें, जिस पर पंडित जी ने अपना सब कुर्बान कर दिया था।

भातखंडे कॉलेज ऑफ हिंदुस्तानी म्यूज़िक, लखनऊ
में सन् १९४० के भातखंडे स्मृति समारोह में दिये हुए
भाषण से उद्धृत—**सम्पादक**

विशिष्टानाम् विशिष्टेषु
संगमो गुणवान् भवेत्

स्व० श्री सदाशिव गोपाल परचुरे,सेक्रेटरी
म्यूजिक कमेटी, ग्वालियर

जयतु जयतु देवो माधवो माधवांशो।
जयतु गुणि जनानां भातखण्डेऽवतंसः ॥
जयतु च गुणिमान्यो गीत शास्त्रानुरागी।
कुल गुरु रधिदेवो गायतां तानसेनः ॥

MUSIC is not a mere diversion. It contributes to the health of the body, it invigorates and refreshes the mind, and it elevates and uplifts the soul. Orpheus, the Greek musician, had the power of moving inanimate bodies by the music of his lyre. The ancients believed in the "music of the spheres" the harmony produced by the accordant movements of the celestial orbs. Our Yoga Shastra speaks of the अनाहत ध्वनि or "unbeaten sound" heard by the Yogi in his contemplation. History thus proves that man is not unaware of the utility of music as a value to the restless soul and a panacea for all bodily and mental ailments.

The Hindu Mythology abounds in references to music. Our paradise is a place which promises eternal enjoyment of music. The great God Shiva is represented as an ideal lover of dancing. Vishnu, the deity of political wisdom, is, on one occasion, said to have assumed the form of a bewitching female and thrown his enemy into ecstatic raptures by his dancing and music. Narad and Tumbaru, the ideal devotees of God, are said to be singing their prayers eternally in concert with a string instrument. The Goddess of learning Saraswati, is painted as playing on the Veena. Music plays an important part in all religious and social functions of the Hindus. In India music is the daily food of every man whether he be a prince or a peasant.

Gwalior is a land of music. The great "Tansen", the father of Indian music, lived and died here. His tomb is still standing at the foot of the fortress near a tamarind tree, the leaves of which are supposed by music loving people to possess the property of making the voice musical. One fails to see why the Goddess of music should love Gwa-

lior more than any other part of India. But it is a stern reality and none can deny it. To our mind the plant of music does not derive its nourishment from the soil of Gwalior but from its Rulers. The great Patil Baba, the founder of Scindia's Gadi was a poet, a singer, and a saint. His successors, Daulat Rao, Jankoji and Jayaji were all great patrons of music. The present Ruler of Gwalior is a gifted singer. His love of music is too well-known to require any mention here. Thousands of his loyal subjects who attend the annual Ganpati festival can bear testimony to his wonderful musical powers. He loves and appreciates music and derives the fullest benefit from the useful means of diversion. Whenever he wants respite from his laborious work of administration, he seeks it in music. The Maharaja has not studied this art under any expert. Like his Gadi he has inherited it from his noble father (of happy memory) who was a great patron of music and himself a master of the art. Gwalior has thus been a home of music for over a century since the time of Daulat Rao. No wonder that the best musicians in the North of India owe their excellence in this art to a direct training under a Gwalior musician or one belonging to the Gwaliar school of music.

Among the many notable attempts of H. H. the Maharaja Scindia for the revival of ancient Indian arts and sciences "THE MADHAV MUSIC SCHOOL" is the most important. His Highness's versatility of talent, his refined taste, his simplicity of dress and manner, his proclivity to the study of human nature. and his social qualities naturally bring him into contact with all classes and grades of people, and especially with persons proficient in any arts or sciences. Unlike men in his exalted position, he is accessible to all owing to his sociableness.

It was a lucky chance for Gwalior that His Highness happened to meet Prof. Bhatkhande in Bombay and was struck by his noble personality, his labour and his love for the advancement of the cause of Indian music. This happy meeting of these two extraordinary personages led to the foundation of a Music School in Gwalior on January 1, 1918, for as Bhavabhuti most appropriately observes :—

विशिष्टानां विशिष्टेषु संगमो गुणवान् भवेत् ।।

(The meeting of two distinguished persons leads to a happy result.)

It will not be out of place here to say a word about Prof. Bhatkhande. The public know. him as the author of the great work on music--Hindustani Sangit Paddhati in 4 vols. But this is the least of his recommendations. The secret of his fame and success lies in his sin

cere devotion to music, his disinterested endeavours to haul up ancient Indian Music from the obscurity in which it lay for centuries under the Mohamedan Rule. The antiquity of Indian music can be traced to the date of "Samveda" which antiquarians fix at 6 thousand or any multiple of 6,000 years. What a pity it is that the notes and tunes recognised by the ancient writers on music should have been twisted and distorted by foreign singers, and that this foreign style should have been recognized on all hands as the standard Music of India. The Southern School of Music has still retained its scientific purity but it lacks the charm which the Mohomedan art has imparted to it. The notes in Southern music are pleasant to hear owing to their purity but they do not flow in a continuous dyer, like the music of the North. Prof. Bhatkhande after a study of 40 years in instrumental and vocal music conceived the idea of combining the two systems into a new system which can display both the purity of the South and the artistic beauty of the North With a view to develop and practically carry out the idea, he travelled through all the parts of India, consulted the singers of note in all important centres of music, collected a mass of literature on the subject and then published a system and notation of his own by which a trained teacher can impart to an intelligent pupil as much knowledge of music in three years as the old veteran singers did in 10 years by the empirical method. This is no empty compliment but a hard fact and the Gwalior Music School is the proof of it. The Madhav Music School has about 100 boys on the roll with an average attendance of 75. This is the third year of its existence. The third year class consists of about 20 boys who have finished 40 Ragas and 6 Tals. Out of these 40 Ragas, they can sing 6 with Behalaves and Tans, and can further in the course of singing convert the Tans into Sargams or a succession of notes so modulated as to make up a particular Raga or tune. This they can do spontaneously and extempore, thus proving that they are thoroughly conversant with the theory of each Raga. This knowledge of the theory of Ragas is the chief distinguishing feature of Prof. Bhatkhande's new system, so close is the boy's acquaintance with the fundamental notes both sharp and flat that he can at this early stage detect a wrong note in the performance of the best empirical singer. In about two more years this band of boy-singers will be a terror to the old bigotted musicians who hold that whatever tune they produce must be correct and that they are bound by no laws. If the Gwalior Music School under the supervision and guidance of Prof. Bhatkhande and the generous patronage of His Highness the Maharaja can produce only half a dozen young champions of music

every year, it will have done great service to the cause of music and to the country. This young plant of music is full of hope and promise. It will soon grow into a flourishing tree and bear rich fruit. It will spread out its branches to other parts of India and create a taste for scientific music which laymen at present condemn as dry, uninteresting, and even irksome. When the popular taste will be refined, music will command universal appreciation and find a place in the curriculum of every University in India. This is Prof. Bhatkhande's ideal and this, when realized, will be the triumph of his new system and the Maharaja's munificence.

—जयाजी प्रताप, सन् १६२० से उद्धृत

ग्वालियर के संगीत का उत्थान किया

स्व० रावसाहब गो० वि० अंबर्डेकर,
सेक्रेटरी, ग्वालियर

राज्य ग्वालियर, जिसकी कीर्ति अति प्राचीन काल से संगीत-भूमि के नाम से प्रसिद्ध है। जहाँ कई प्रसिद्ध संगीत-गायक आज तक हो गये, वहाँ अर्वाचीन पद्धति से उसी कला को कायम रखने के लिये विशिष्ट स्कूल खोलने की कल्पना, कैलाशवासी श्रीमन्त महाराज को प्रथमत: प्रोफेसर भातखंडे साहब ने सन् १९१७ ई० के गणपति-उत्सव के अवसर पर दी। यह कल्पना पसंद आयी और कैलाशवासी महाराज साहब ने यहाँ से सात गायकों को प्रोफेसर साहब की पद्धति समझ लेने की गरज से बम्बई में प्रोफेसर साहब के पास भेजा। उक्त गायकों ने वहाँ तीन महीने रहकर प्रोफेसर साहब की पद्धति सीख ली, और वापस आने पर सन् १९१८ ई० के जनवरी महीने में इस स्कूल की स्थापना हुई। अव्वल पाँच वर्ष तक स्कूल की दशा प्रारम्भिक थी, क्योंकि कोर्स की किताबें लिखने का काम जारी था। इसके बाद के सात साल में यहाँ का कोर्स पूर्ण करके ग्रेजुएटस तैयार होने लगे और आजकल तो इस संस्था की कीर्ति कुल हिन्दुस्तान भर में फैल रही है।

दस वर्ष के पहिले बहुत से सज्जनों को यह शंका थी कि हिन्दुस्तानी गायन पद्धति किताबों के द्वारा आधुनिक पद्धति से पाठशालाओं में सिखाई जा सकेगी या नहीं? ग्वालियर विद्यालय ने इस विषय में जो कार्य करके प्रत्यक्ष दिखलाया है उससे इस शंका का पूर्ण निरसन हो गया है और सिद्ध हो चुका है कि अच्छी तरह से लिखी हुई पुस्तकें व योग्य शिक्षा पाये हुए शिक्षक हों तो आधुनिक पद्धति से हिन्दुस्तानी गायन थोड़े अवकाश में और सरल रीति से पढ़ाया जा सकता है।

प्रोफेसर भातखंडे साहब ने ग्वालियर के ही गवैयों की मदद से स्कूल की कोर्स बुक्स लिखीं, व आज एक तप से इस संस्था का निरीक्षण व पोषण करने में जो स्वार्थ-त्याग दिखाया है उसके लिये आप धन्यवाद के तो पात्र हैं ही, किन्तु यदि मैं यह कहूँ कि आज इस विद्यालय को हिन्दुस्तान भर में जो सर्वमान्यता मिली है उसका अधिकतर श्रेय आपको ही है तो मिथ्या न होगा।

—श्री माधव संगीत विद्यालय, लश्कर के वार्षिक जलसे और
१९३० के उपाधिवितरणोत्सव की रिपोर्ट से उद्धृत

संगीत कला गरीब-अमीर, सबके लिये सुलभ हो गई

स्व० रावबहादुर ल० भा० मुले,
ग्वालियर

...ऐसी गिरती हुई दशा में कैलाश-भूषण श्रीमन् माधव महाराज ने स्वर्गीय पूज्य भातखंडे साहब के सहयोग से इस संस्था की स्थापना इस उद्देश्य से की कि गायन-विद्या का यथोचित प्रसार हो और शिष्ट समाज में उसके प्रति आस्था व आदर बढ़े। उनके पूर्व राजा-महाराजाओं ने, विशेषतः सिंधिया नरेशों ने, जो स्वयं भी बड़े गायन-प्रेमी व गुणग्राही थे, संगीत को आश्रय दिया था। परन्तु उनके प्रयत्न प्रायः गुणीजनों को व्यक्तिशः उदार आश्रय देने तक ही सीमित रहे। स्वर्गीय श्रीमन् माधव महाराज के प्रयत्नों का विशेष यह है कि उन्होंने इस कला को आदरणीय और उन्नत करने के लिये इस महाविद्यालय को स्थापन करके संगठित रूप से कार्य किया। साथ ही साथ इस कला को प्राप्त करने में जो महान् कष्ट उस समय उठाना पड़ता था तथा समय बरबाद करना पड़ता था, उनको दूर करने के लिये इस महाविद्यालय द्वारा इस कला को प्राप्त करना गरीब-अमीर, स्त्री-पुरुष सबके लिये सुलभ कर दिया।

—माधव संगीत महाविद्यालय की रजत जयंती
महोत्सव में दिये हुए स्वागत-भाषण से उद्धृत

उत्तर प्रदेश का परम सौभाग्य

राय उमानाथ बली, लखनऊ

स्वर्गीय पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे के विषय में ठाकुर नवाब अली खान तथा अपने अन्य कई मित्रों से लगभग १९१२ से ही मैं बराबर सुनता आ रहा था। परन्तु उनसे प्रत्यक्ष भेंट का सौभाग्य १९१९ में प्राप्त हुआ। उनका प्रथम पत्र सन् १९१६ की प्रथम अखिल भारतीय संगीत परिषद् के प्रतिनिधित्व का शुल्क स्वीकृत होने के विषय में मैंने प्राप्त किया। और यहीं से कायिक, वाचिक, मानसिक रूप से मेरे जीवन ने एक नया मोड़ लिया। सन् १९१६ की उस परिषद् की चेतना का केन्द्र वे स्वयं ही थे। उनका वह पत्र बहुत ही रोचक था। 'मित्रवर आदरणीय रायसाहब' इस प्रकार से प्रारम्भ करते हुए 'आदरभावों सहित आपका विनम्र' इन शब्दों से पत्र की समाप्ति की थी। सम्भवतः मुझे बहुत वयस्क एवं महान् व्यक्ति वे समझ बैठे थे। संगीत का महत्व, दैनंदिन तथा आध्यात्मिक जीवन में उसकी उपयोगिता, शिक्षा एवं धर्म में उसका मूल्य इत्यादि विषयों पर पत्र में उन्होंने लिखा था। यह मेरा परम दुर्भाग्य है कि इस पत्र के साथ-साथ सन् १९२० से '२७ तक उनसे प्राप्त किये हुए समस्त पत्रादि मेरे रेकार्ड-रूम में आग लग जाने के कारण नष्ट हो गये। अन्य स्थान पर रखे हुए दो-चार पत्र ही अब मेरी संस्मरणों की निधि शेष रह गई है। अपनी यह परमोच्च धरोहर जीवन के अंतिम क्षणों तक पास में ही रखना चाहता हूँ।

दिल्ली में आयोजित द्वितीय अखिल भारतीय संगीत परिषद् में सम्मिलित होने के विषय में सन् १९१८ में उन्होंने मुझे पुनः आग्रह किया। लखनऊ में संगीत विद्यालय की स्थापना की अपनी योजना सहित इस परिषद् में मैंने भाग लिया, परन्तु दुर्भाग्यवश पंडित जी तथा राजा नवाब अली दोनों ने मुझे कुछ भी बोलने न दिया। उस समय स्वयं दिल्ली में ही एक बहुत बड़ा संगीत विद्यालय स्थापित करने की अत्यन्त महत्वाकांक्षी योजना उनके समक्ष थी। फिर भी उक्त परिषद् के अध्यक्ष रामपुर के स्वर्गीय नवाब साहब ने लखनऊ में विद्यालय स्थापित होने पर आर्थिक सहायता देने का मुझे आश्वासन दिया। यह वे दिन थे जब समाज में संगीत का बहिष्कार था तथा संगीतकला के प्रति ब्रिटिश सरकार कुछ भी प्रोत्साहन नहीं देती थी। ऐसी परिस्थिति में पंडित भातखण्डे जी एवं राजा नवाब अली जैसे संगीत के दोनों महान् दिग्गजों की सहानुभूति एवं सहायता के बिना मुझ जैसे अकेले एक व्यक्ति को विद्यालय स्थापित करना नितान्त असंभव था।

सन् १९१९ में बनारस की अखिल भारतीय परिषद् में मेरी उक्त योजना का वही



लखनऊ में अखिल भारतीय संगीत परिषद् के चतुर्थ अधिवेशन में मैरिस म्यूज़िक कालेज के संस्थापकों के बीच पं० भातखण्डे [१९२४]

ये जो गाते हैं वही 'लक्ष्य-संगीत' है



लखनऊ में अखिल भारतीय संगीत परिषद् के चतुर्थ अधिवेशन में आमन्त्रित ज्येष्ठ एवं उदीयमान नादोपासक

हुआ, जो इसके पूर्व दिल्ली में हो चुका था। दोनों महारथियों ने मेरी योजना की ऐसी कड़ी आलोचना की कि मैं पूर्णतया निराश हो गया। अत्यन्त उत्तेजित होकर सभा में मैंने घोषणा कर डाली कि आप लोगों का ऐसा विरोध होते हुए, अपनी अल्पनिधि एवं शक्ति को जानते हुए भी संगीत विद्यालय की स्थापना करके ही मैं चैन की साँस लूँगा। उस समय मेरे परिवार के आश्रय में दो ऐसे उस्ताद थे, जो बहुत उच्च कोटि के न होते हुए भी जिनका ज्ञान कक्षाएँ प्रारंभ कर देने के लिए पर्याप्त था।

सन् १९२२ में पंडित मदनमोहन मालवीय के निमंत्रण पर हिन्दू विश्वविद्यालय में संगीत शिक्षा का सुगठित प्रबंध कराने में पंडित मालवीय जी को सहायता प्रदान करने के लिये पंडित भातखण्डे बनारस गये हुए थे। वापसी में दरियाबाद में वे मुझसे मिलने आये। लगभग एक मास तक वे मेरे पास रहे। तब उन्होंने मुझे संगीत की न केवल विधिवत् शिक्षा दी, अपितु शास्त्र पर भी प्रतिदिन दो घन्टे तक व्याख्यान दिये। बम्बई तथा देहली में बहुत बड़ा संगीत विद्यालय स्थापित करने की अपनी महत्वाकांक्षा कैसी विफल हो गयी है, यह स्वीकार करते हुए मेरी योजनाओं पर पुनर्विचार करने के प्रमुख उद्देश्य से ही वे दरियाबाद आये हुए थे। यहाँ पर मेरी योजनाओं की पुनः छानबीन हुई तथा संगीत के अखिल भारतीय महाविद्यालय की दृष्टि से उसमें यथायोग्य परिवर्तन किये गए। योजना अधिक विस्तृत की गई। शासकीय अधिकार-प्राप्त कतिपय राजाओं से तथा प्रमुख उस्तादों से सम्पर्क स्थापित करने की मुझे सूचनाएँ दीं। इधर तीन वर्षों से संगीत परिषद् का अधिवेशन भी नहीं हुआ था। अतः चतुर्थ सम्मेलन लखनऊ में बुलाने की मेरी कल्पना का उन्होंने स्वागत किया।

सन् १९२३ में बनारस से लौटते समय मेरी योजनाओं का अंतिम प्रारूप तैयार करने के लिए वे पुनः मेरे पास आये। इसी यात्रा में अखिल भारतीय संगीत परिषद् का चतुर्थ अधिवेशन लखनऊ में आमंत्रित करने की विधिवत् स्वीकृति उन्होंने प्रदान की तथा अनेक राजा-महाराजाओं, रईस-उस्तादों से भेंट-परामर्श करने के लिए अंतिम सूची बना कर दी। इस प्रकार पंडित भातखण्डे जी से सक्रिय प्रेरणा पाने के उपरान्त सन् १९२४ में सर्वप्रथम रामपुर के स्व० नवाब साहब के पास पहुँचा। नवाब साहब ने मनःपूर्वक मेरा अभिनन्दन किया, योजनाओं की सराहना की और अन्य राजाओं के लिए बहुत से परिचय-पत्र दिये। तत्पश्चात् देहली में चेम्बर ऑफ प्रिन्सेस की सभाओं के समय पर मैंने अनेक राजाओं से भेंट की, द्रव्य सहाय्य प्राप्त किया और उनके आश्रित गुणीजनों को राज्य सरकारों के खर्च पर लखनऊ अधिवेशन में प्रेषित करने की स्वीकृति प्राप्त की। ग्वालियर-पटियाला-जयपुर-धौलपुर जहाँ कहीं मैं गया, पं० भातखण्डे के सहकार्य की बात सुनकर सभी प्रकार की सहायता के आश्वासन पाता गया।

उसी समय पर सर विलियम मैरिस उत्तर प्रदेश के गर्वनर नियुक्त हुए। सर विलियम मैरिस भारतीय ललित कलाओं में अभिरुचि रखते थे। भारतीय संगीत में भी उन्हें रुचि थी। पत्र के उत्तर में अभिनन्दन करते हुए उन्होंने लिखा, 'तुम्हारे संगीत विद्यालय की स्थापना के लिये अब यह बहुत ही उपयुक्त अवसर होगा।' उन्होंने सभी प्रकार का प्रोत्साहन और सहयोग देने का आश्वासन दिया। भाग्यवश इसी समय पर मेरे आत्मीय राय

राजेश्वर बली शिक्षा-मंत्री बन गये। राय राजेश्वर बली का असाधारण व्यक्तित्व, प्रभाव, शासकीय प्रतिष्ठा मेरे लिए बहुत बड़ा धैर्य व बल का स्रोत था।

इसी स्थान पर अन्य एक घटना का स्मरण हुआ। अखिल भारतीय संगीत परिषद् के चतुर्थ अधिवेशन का आमंत्रण प्रकाशित हो चुका था और पुनः एक बार मेरा उत्साह शिथिल हो जाने का प्रसंग अचानक उपस्थित हुआ।

राजा नवाब अली ने मुझे सूचित किया कि परिषद् का अधिवेशन लखनऊ में न बुलाया जाय; क्योंकि शिया एवं सुन्नी पंथ के बहुत से धार्मिक लोग गाने-बजाने के विरोधी होने के कारण परिषद् सफल न हो सकेगी। सर विलियम मैरिस तथा पं० भातखण्डे से परामर्श करने के उपरान्त राजा साहब को मैंने लिख दिया, चूँकि अब सारी तैयारी हो चुकी है, अपील भी प्रकाशित हो गयी है, शिया पंथियों को छोड़कर हिंन्दू तथा सुन्नी गायक-वादकों के सहकार्य पर ही परिषद् होगी। उसका स्थगित कर देना अब सम्भव न हो सकेगा।

परिषद् की अध्यक्षता स्व० नवाब साहब रामपुर करनेवाले थे, परन्तु वैयक्तिक अड़चनों के कारण वे उपस्थित न हो सके। अतः सर विलियम मैरिस ने अध्यक्ष-स्थान ग्रहण किया। राजा नवाब अली जिनका योग प्रारम्भ में मुझे न मिल सका था, बाद में मेरे कार्य में पर्याप्त रुचि लेने लगे। स्वागत-समिति के अध्यक्ष भी वे ही चुने गये थे। परिषद् का यही वह अधिवेशन है जहाँ पर लखनऊ में संगीत महाविद्यालय की स्थापना का प्रस्ताव एकमत से स्वीकृत हुआ। परिषद् का यह चतुर्थ अधिवेशन बहुत ही सफल रहा। देश के प्रायः सभी नामवर कलाकार यहाँ पर आये थे और उन्होंने अपनी कला का प्रदर्शन भी किया। संगीत के शास्त्री, पंडित एवं उस्तादों की एक पृथक् कमेटी बनाई जाकर शैक्षणिक प्रश्नों पर विचार-विमर्श हुआ। विभिन्न उपाधियाँ एवं प्रमाण-पत्रों की परीक्षाओं के पाठ्यक्रम निश्चित किये गये। कुछ प्रश्नों पर सदस्यों में मतभेद भी हुआ। अतः आगामी वर्ष पुनः अधिवेशन बुलाया जाकर मतभेदों का निराकरण किया गया और अनेक शास्त्रीय विषयों पर अन्तिम निर्णय लिये गए। इस प्रकार लखनऊ में संगीत महाविद्यालय की स्थापना सन् १९२६ में होकर सर विलियम मैरिस का नाम उसके साथ जोड़ दिया गया। इधर पंडित भातखण्डे जी ने क्रमिक पुस्तक मालिका के छः भाग प्रकाशित कर महाविद्यालयों के लिए पाठ्य-पुस्तकों की समस्याएँ दूर कर दीं।

पंडित भातखण्डे जी के परलोक-गमन के बाद सन् १९३९ में उनकी स्मृति में संगीत महाविद्यालय की परीक्षाएँ संचालित करने के उद्देश्य से संगीत के विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। यही विश्वविद्यालय "भातखण्डे संगीत विद्यापीठ" नाम से आज तक परीक्षाएँ संचालित करता है।

यह पंडित भातखण्डे जी के ही प्रयत्नों का फल है कि संगीत में क्रमवार एवं सुसंघटित शिक्षण दिया जाने लगा। इसके लिये आवश्यक सभी साहित्य उन्होंने स्वयं निर्माण कर दिया। उत्तरी भारत के सभी राजदरबारों, बड़े-बड़े उस्तादों पर उनका इतना गहरा प्रभाव था, कि संगीत क्षेत्र में उनके दिये हुए निर्णय अंतिम निर्णय माने जाते थे।

उनके साथ बिताये हुए क्षणों का मुझ पर इतना अमिट परिणाम हुआ है कि सारी घटनाएँ चित्रवत् सामने आती रहती हैं।

भारतीय विद्या-संस्कृति का अखूट भण्डार

हिज हाईनेस महाराणा विजयदेव जी, धरमपुर

यह विद्वान् मेरे लिए निरन्तर मार्गदर्शक और सक्रिय एवं व्यावहारिक उत्तेजना का अखूट भाण्डार था। यही नहीं, किन्तु इस विद्वान् की ओर से मुझे सजीव प्रेरणा प्राप्त होती थी। इनके पास कोई भी जिज्ञासु शुद्ध भाव से जाता तो उसे अपना उत्तमोत्तम सर्व देने में हिचकते नहीं थे। इनको जितनी भी श्रद्धांजलि अर्पित की जाय वह अल्प ही है। ऐसे संगीतप्रिय विद्वान् के स्मरणार्थ, इनकी ओर मेरे सम्मान के चिह्न रूप में 'संगीत भाव' की यह पुस्तक इस आत्मा को समर्पित तो की है, किन्तु भारतीय संगीत की जो सेवा इनसे बनी है, इसका मूल्य तो भविष्य में ही अंकित होगा।

अपनी विशाल और दीर्घदृष्टि, रचनात्मक विद्वत्ता और प्रामाणिकता के परिणाम में जिन्होंने हिन्दुस्तानी संगीत के अन्तर्वर्ती द्रव्य को प्रकाश में लाकर आधुनिक समाज के विशाल समूह को उपलब्ध कराया है, और इसकी अपरिमित कलात्मक शक्ति के अधिक विकास के लिए भावी समाज को संगठित किया है, उन पं० विष्णु नारायण भातखण्डे बी० ए०, एल० एल० बी० के स्मरणार्थ...।

—'संगीतभाव' से उद्धृत

सूचना—निम्न भाषण पं० भातखण्डे के देहावसान पर दि० ११ अक्तूबर १९३६ को ब्लावाट्स्की लॉज बम्बई में आयोजित सार्वजनिक शोक-सभा के अध्यक्ष पद से हिज हाईनेस महाराणा साहब द्वारा दिया गया था।

Friends, Workers And Fellow Musicians

It is my duty to be present here. No words of mine can I realise, do anything approaching justice to the memory and achievements of one who had been the pride of Indian Scholarship and culture. Circumstances have, however, made it incumbent on me to speak on this sad occasion. It is a painful duty. It is with a heavy heart that I venture to perform it. When some months ago I consented to undertake the responsibility of assisting the Bharatiya Sangeet Samiti, I did so with confidence which was, I confess, not entirely my own. Behind that confidence lay the moral support and inspiration of the

great personality Vishnu Narayan Bhatkhande, whose loss we have to mourn to-day and whose great work for Hindusthani music we have met here to commemorate. When I undertook to assist the Bharatiya Sangeet Samiti and its preliminary music conference I had not dreamt that I would be called upon to mourn the loss of a co-worker and friend for whom I had the highest esteem. I hah dreamt of other things, I had contemplated and planned activities which I hoped to see executed with his assistance. The news of his death came as a rude shock to me. Will my hopes, your hopes, will the hopes of all eager to advance Hindusthani music, remain hopes ?

The Pioneer's Environment

Let us visualise the times, life and work with which Pandit Vishnu Narayan Bhatkhande's name remains immortally associated for the answer. Thirty and more years ago when Pandit Bhatkhande began and subsequently resolved to translate his love for Hindusthani music into a continued unwearied, day-to-day programme of service, he had to confront social, intellectual and finally professional prejudices. These were not merely academic or abstract prejudices. These prejudices took shape as positive obstacles; definite active resistance, Vishnu Bhatkhande had to confront it early in life as a devoted student seeking no more than information and enlightenment and he had to confront it later as a critic and exponent of Hindusthani music. The social atmosphere built up by the generation of his young days left no doubt the position of one who at the time took up music as his calling or the main objective of his life. It was just not done. Music was not the correct thing for 'respectable' man. For women, music was to be not even thought of. Such was the pious horror which music seemed to arouse at the time over sixty years ago when Pandit Bhatkhande formed his early intellectual inclinations.

Inlellectual Atmosphere

The intellectual community, composed mostly of lawyers, doctors and administrators, found itself under a lop-sided system of education which served only to segregate music from life and accentuate the intellectual prejudices against it. Puritanism which had exhausted its stern anathemas in the West found strange roots and strength in this country. In no other country in the world, not even in the country from which we have borrowed our system of education, had placed music so low, so contemptuously neglected, as in this country. No where in the West were the young natural instincts for rhythm, for music, so completely repressed, censored and banned

as they happened to be in the country Vishnu Bhatkhande was called upon to serve. Music had literally become the direct Harijan child in the "reformed" community of those whose learning was, obviously, lop-sided and whose puritanism ended with the repression of one of the noblest of gifts of art to mankind.

Social Censorship And Repression

Social censorship and the consequent repressive customs and conventions combined with intellectual puritanism brought the practising artists, the custodians of the great traditions of Hindusthani music, inevitably into a kind of blind alley which, equally inevitably, developed amongst them certain strong prejudices. Vishnu Bhatkhande had thus the initial handicap when he began to check his personal experiences and impressions and the knowledge he derived from the ancient books on Hindusthani music with the practice then current of Hindusthani musicians, vocalists and instrumentalists.

Professional Prejudices

Although he was skilled as instrumentalist and practised on the "Sitar." Vishnu Bhatkhande found it very difficult to win over the prejudices of those who could not see the relation between singing and books and instruments, between theory and practice of music. But he did, finally, win them over. Such was the persuasive tenacity of the man whom in annoyance they began to tease and, subsequently not a few of them in admiration honoured as "Panditji".

Realities of The Situation

The realities of the situation led him logically to the determined weeding out of the obstacles that prevented in the first place, the diffusion of interest in music and, secondly, the systematic study, practice and appreciation of Hindusthani music. He determined to collect information, theoretical and practical, about music, vocal and instrumental, from every conceivable quarter. He classified the information, and finally, he arrived at the method or system by which he could rebuild the vital essentials of Hindusthani music. For diffusion of interest he championed the system of simple notations. For systematic study and practice he evolved the graded books and text books which are now known to every student of Hindusthani music.

His Early Training And Experience

Vishnu Bhatkhande's early enthusiasm for music received its first definite impetus at the hands of Vallabhdas Damodardas, pupil of

Jivanlal Maharaj and Bajpai of Benares, who taught him "Sitar". He was also helped by Gopalgir Jairamgir pupil of Ali Hussein Binkar. In 1884, he joined the "Gayan Uttejak Mandali". This institution was, in many ways, a landmark in the career of Vishnu Bhatkhande. Here he learnt for many years music from Raoji Buva Belbaugkar, a well-known "Dhrupad" singer. Here he obtained the guidance of Ali Hussein Khan and his maternal uncle Vilayat Hussein Khan. It was here at the "Gayan Uttejak Mandali" that he had the opportunity of starting the collection of first-hand information about Ragas from well-known practitioners who visited from time to time the institute.

Fifteen Year's Concentrated Research

From 1890 and onwards for a period of over fifteen years he concentrated his attention on the study of ancient books on music in Sanskrit as well as in Hindi, Telegu, English, Bengali and Gujerati.

His Tours

He supplemented the knowledge from books with tours for the personal contact with famous musicians in the different provinces of the country and increased the storehouse of his information on music immensely by this method of first-hand investigation. His tours undertaken at different periods, included Madras, Tanjore, Ettypuram, Madura, Ramnad, Rameshwar, Trivendrum, Trichinopoly, Mysore, Bangalore. He visited Gujrat and toured Surat, Broach, Baroda, Navsari, Ahmedabad, Rajkot, Wankaner, Jamnagar, Junagarh, Bhavnagar. Subsequently he visited Hyderabad, Shikarpur and other places in Sind and Cutch and Multan. Some years later he visited Nagpur, Calcutta, Jagannath, Vizianagaram, Deccan Hyderabad. This tour was followed by visits to Allahabad, Benares, Gaya, Muttra, Lucknow, Agra, Delhi, Jaypore, Jodhpur, Bikaner, Udeypur, Rampur.

Music Conferences

In 1915-16 the first All India Music Conference was organised at Baroda largely through his efforts and the subsequent four All India Music Conferences, at Delhi in 1918 at Benares in 1919, at Lucknow in 1925 and 1927 which he attended personally and endeavoured to focus the attention of the practising artists as well as the students and exponents of music towards the problems of music and towards the fruitful consolidation of the available knowledge and current practice of Hindusthani music.

His Books, Publications, Written Records

All the information he thus gathered, all the discussion and the consequent clarification which occurred, all the impressions and the experiences which he found during these tours and the sessions of the conferences were, fortunately, definitely serviceable. For Vishnu Bhatkhande had determined to use all this for a permanent objective, not only for his own individual benefit. These are enshrined in the books which are more than an index to his monumental scholarship. I mention only some of them. The report of the .conferences, the translation of various books he got translated, both these commonly available and the rare manuscripts and books in private and state collections and libraries and the lectures he delivered would alone have entitled him to the front rank of those who have hitherto worked for the advancement of Hindusthani music. But his books are an irreplaceable treasure-house of information which would otherwise have remained, for most of us, almost inaccessible. They are, moreover, rare in the measure of the vast area of scholarly investigations they cover. The "Lakshan Gitas", the "Lakshya Sangeetam", the "Hindusthani Sangeet Paddhati",– in four parts—the "Swara Malika", the Ashtottarashta-Tala Lakshanam the "Sangeet Parijata Praveshika", the "Raga Vibhodha Praveshika", the Sadraga Chandrodaya. "Rag-Lakshanam", the "Kramika Pustaka Malika", dealing without of the way Raga's in six parts of which four have been published, the fifth is nearly printed and the sixth though written and will be in due course published will infortunately not contain some of the rare songs in the Tansen traditions he wished to publish with the help of his Guru, co-worker and colleague, H. H. the late Nawab Saheb of Rampur and Thakur Nawab Ali Khan of Lucknow. But fate decided otherwise and death having deprived us of these celebrated exponents of music have deprived us also of the invaluable musical .heritage. His books are not merely a collection of available information of Hindusthani music; they are classified information and in the discussions on Hindusthani music they have thrown light on many corners that remained hitherto darkly confused.

His Diaries And English books

His works in English include, "The Short Historic Survey of Music of Western India", "Comparative Study of the Musical Systems of the 16th, 17th and 18th Centuries" and "The Philosophy of Music."

His diaries record the impressions of the great personalities in Indian music with which he came into direct contact. They have been enlivened by humour and critical discrimination which those who knew Pandit Bhatkhande knew as the salient traits of the great exponent. His original compositions reveal a further milestone in the achievements of the exponent who was thus marked out as a creative artist as well.

Phonograph Records of "Ragas"

Not satisfied with the written records of his investigation, he took advantage of the then known phonograph and recorded the music on the wax cylinders which unfortunately time destroyed. The songs of Mahomed Ali Khan of Jaypore and of his sons Askah Ali Khan and Ahmed Ali Khan, the leading interpreters of the famous "Manranga" School of Hindusthani music. There were nearly 300 songs thus recorded and Panditji got from them invaluable information of some of the obsolete Ragas as well.

Founded Training Institutions And Colleges

This was, however, not enough for Panditji and he proceeded further towards the practical system of instruction in music. The assistance he offered to the Benares Hindu University, the University for Women at Poona, the State Schools at Baroda, the Bombay Municipality and the Bengal Government and finally the Madhay Sangeet vidyalaya at Gwalior and the Marris College of Music at Lucknow founded by him are all an eloquent testimony to the extent to which he was able to carry out his determined objectives.

The Friend of All Art Lovers

I should like to mention the names of scholars, practising artists, exponents of Indian art and culture, Indian and European, who considered his friendship a rare privilege. If I may recall, I concluded the last Music Conference in this city with the observation that the foundation of the mighty mansion of music could be built by the rich and poor, Hindus and Muslims. Pandit Bhatkhande's life, work and achievements have proved this irrefutably. He was the friend of the poor and the rich, Hindus and Muslims, Indians and non-Indians, peasants and princes.

Will our hopes, the hopes all eager to advance Hindusthani Music I asked, if I may recall the question, at the beginning of this speech. Here is the answer provided by his work and achievements.

The Melody of Life; Hard Work And Sacrifice.

His life was one continuous melody whose main notes were honest hard work consecrated by unfaltering purposive sacrifice. I will not trouble you with its details. He was not rich. He earned his way to education and later earned as a lawyer only that he could spend for music, until the lawyer was forgotten by the musician. He had vowed not to accept a pie for his personal benefit and until death remained the great student with an open, unbiased, mind. He was a student that he could be the great teacher, always increasing his store of knowledge, always eager to add to his information, always seeking to clarify, always giving and dreaming and planning and working to give more, help more and more to the increasing number of students and lovers of music; always seeking and offering light and more light.

The Trust

He has executed a trust for safeguarding his music publications which provides that the investment of the sale proceeds of his books should be utilised for their re-publication. So that, the publication may never go out of the reach of the student of Hindusthani music. That is the answer his life, work and achievements offer. That should be our encouragement, impetus and inspiration for the reconstructive work in music which remains to be done and which he has left us, as a sacred national trust to do.

Museum For Manuscripts

It is for those more competent than myself to direct the exact scope and character of that noble work. But if your kindness would so permit me, I would suggest that the manuscripts—all not excluding his scraps of notes—of Pandit Bhatkhande should be preserved in a museum arranged to consecrate his memory. I would have liked it to be located in some room in the Bombay University. But I hesitate to make the proposal because it is sad to think the Bombay University has yet shown no overt signs of its interest in Indian Music. If the Bombay University, even belated wakes up to the importance, nay, necessity of recognising music as one of its subjects of study, it would however imperfectly, be a tribute to the memory of one who was decidedly one of the outstanding citizens of this great city. But if the museum cannot be located in the Bombay University, it could easily find its legitimate altar at the Marris College at Lucknow.

The Servant of India

I am grateful to you for the kind patience with which you have listened to me. I conclude, with the prayer that the memory of the great servant of India may inspire all of us to work, for music with hope and courage, fortified with honest work critical discrimination and the insatiable eagerness to give the best and the noblest that is in us not to the few, but to all.

Two Lessons of His Life

That is perhaps the greatest lesson his life and work has taught us. That is why he insisted on the uniform system of notations for the widest diffusion of interest and appreciation of music There is another lesson, equally great, that his life and work has left us. He expected us not to rest content with what we have inherited but to continue adding to our artistic heritage. If we can understand and appreciate these two guiding lines, or shall I say, the main melodic notes of his life and work we would be not only paying the highest tribute to his sacred memory but initiating the most inspiring attempt to turn creative artists to serve the needs of the times, as he served the needs of his time.

ऐसा धमार मैंने नहीं सुना

प्रो० नारायण लक्ष्मण गुणे, इलाहाबाद

माधव संगीत विद्यालय, ग्वालियर की स्थापना और उसमें मेरा प्रवेश एक साथ हुआ। विद्यालय का मैं प्रथम स्नातक हूँ। प्रवेश हेतु हमारी कण्ठ परीक्षा में पं० भातखण्डे ने जिस प्रकार एक सीटी का उपयोग किया था, उसका स्मरण आज भी करने पर उनकी असामान्य बुद्धिमत्ता की सारी बातें ध्यान में आने लगती हैं। पण्डित जी ने हमें प्रथम त्रिताल सिखाया। अपने पाठ की शुरुआत उन्होंने इस प्रकार की थी—'विद्यार्थियों, देखो, तुम्हारे घर यदि सोलह मेहमान आ गये और घर में कमरे केवल चार ही हैं तो उनके ठहरने का प्रबंध कैसे करोगे ?' हम लोगों ने तुरन्त जवाब दिया कि हर कमरे में चार-चार मेहमान ठहरा दिए जावेंगे। मेरी तथा मेरे सहपाठियों की आयु उस समय नौ-दस वर्ष की होगी, अतः संगीत शिक्षा में हमारी रुचि बढ़े; इस दृष्टि से विभिन्न प्रकार के नये-नये उदाहरण देकर मूल विषय को हमें समझाते थे।

प्रति वर्ष दो-तीन बार पंडित जी बम्बई से ग्वालियर आते थे। और नौताला गेस्ट हाउस में ग्वालियर महाराजा के उच्च श्रेणी के अतिथि के रूप में पन्द्रह-पन्द्रह दिन ठहरते थे। प्रत्येक यात्रा के समय कौन-सी तिथि को, किस गाड़ी से, किस समय पहुँच रहा हूँ इसकी सूचना प्रायः पन्द्रह दिन पूर्व ही गु० स्व० राजाभैया जी के पास आ जाती थी। उनकी ऐसी सूचना आते ही उत्साह की लहर दौड़ जाती। एक-एक दिन गिनना शुरू हो जाता। हमारे सभी बन्धुवर्गों में ऐसी उत्कंठा लगी रहती मानो कोई निजी आप्त ही आ रहा है। प्रत्येक बन्धु चढ़ा-चोटी से अपना-अपना रियाज़ करने में डूबा रहता। पंडित जी को अपना चढ़ा हुआ राग सुनाता था। इधर हमारे गुरुजन स्व० दाते गुरुजी, राजाभैयाजी, खूब सक्ति से, रुचि से, प्रेम से हमारा अभ्यास करवाते थे। पंडित जी के शुभागमन के समय पर हम सब विद्यार्थियों की स्टेशन पर एक भारी भीड़ लग जाती थी। पंडित जी भी डिब्बे में खिड़की पर खड़े रहकर गाड़ी स्टेशन पर कब रुकती है और कब मैं सब से मिलता हूँ इसकी प्रतीक्षा आतुरता से करते रहते। वे इतने आनंदविभोर हो जाते कि उनको अपने सामान की भी खबर न रहती। एक बार तो उनका बहुत-सा सामान ही डिब्बे में रह गया। बात-बात में गाड़ी छूट गई, परन्तु उन्होंने कुछ भी चिन्ता न दिखाई। तार देकर बाद में वह सामान आगरे में उतार लिया गया। वे ग्वालियर में जब भी आते, पंद्रह दिन स्वर्ग-सा आनन्द आता। पंडित जी की वह गंभीर, हँसमुख मुद्रा, मधुर भाषण का स्मरण होते ही हृदय गद्-गद् हो जाता है। हम लोग तो उन्हें अभिमान-पूर्वक अण्णा साहब कहते थे। जिनको उनके दर्शन मात्र

का ही सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे भी सचमुच भाग्यशाली हैं। लेकिन हमारे भाग्य का तो कहना ही क्या, पंद्रह-पंद्रह दिन उनके सम्पर्क में रह कर उनसे तालीम पाते थे।

विद्यालय में उनके पधारने का दृश्य भी आज ज्यों का त्यों ध्यान में आता है। आँखें स्वप्निल हो जाती हैं। एक ओर गु० राजाभैया जी तो दूसरी ओर दातेगुरुजी, विष्णु बुआ और बीच में छड़ी घुमाते हुए, कन्धे का दुपट्टा अस्तव्यस्त होकर कभी-कभी तो ज़मीन पर खिसरता हुआ, साथियों के सान्निध्य पर खुशी-खुशी से परन्तु धीरे-धीरे पंडित जी का आगमन होता था। विद्यालय पर उनका इतना प्रेम था कि ऐसा लगता मानो कोई बालक अपनी माता से भेंट करने जा रहा है। उनकी वह मुद्रा आज ध्यान में आते ही ऐसा लगता है, जैसे सारी घटनाएँ पुनः-पुनः हो रही हैं। कोई भी बात मराठी में समझाने पर अंत में 'खरें ना ?' यह वाक्य बहुत ही अच्छी प्रकार से दुहराते जाते। उनकी बात सुननेवाले के हृदय तक तत्काल पहुँच जाती। विद्यालय में आते ही सब दर्जों में राउन्ड कर लेते। फिर हम सब लोग एक कमरे में एकत्रित हो जाते और जोड़ी-जोड़ी से गाना सुनाते थे। उस समय के हमारे बंधु वर्गों में, गंगाप्रसाद पाठक, स्व० सदाशिवराव अग्निहोत्री, रामजीभैया अग्निहोत्री, वामनराव राजूरकर, विष्णु शामराव अत्रे, बालाभाऊ उमड़ेकर, विश्वनाथ सांवले (तात्याबोवा), उमाकान्त राजूरकर (भौव्वा), नारायण पाठक इत्यादि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। हम सब पहिली बैच के थे। मैं और गंगाप्रसाद जी जोड़ी से गाते थे। जब हम गाते तब बीच-बीच में पंडित जी हमें समझाते रहते और स्वयं गा कर बताते थे कि इसमें इस प्रकार आलाप, बढत प्रत्येक स्वर की करो। हम पर खुश होते हुए आखिर में कहते थे कि अब तुम अपने ग्वालियर की तानों के बंडल छोड़ो। कई चीजें, ध्रुवपद, धमार हमें सिखाते थे, ध्रुवपद धमार में तो उनकी आश्चर्यजनक प्रवीणता थी। एक बार हमें बिहाग का धमार 'लंगरवा कूदे परौ' सिखाया था, उस वक्त की याद आती है। अपनी छड़ी ठोक-ठोंक कर धमार की लय बता रहे थे और धमार के बोल किस प्रकार कहना चाहिए, वे स्वयं गाकर दिखाते थे। लय सम्हालते हुए कौन-सा अक्षर कितने समय में कितने छोटे-बड़े उच्चार से कहना है, यह कमाल की फुर्ती के साथ समझा रहे थे। 'पाये ॰ अकेली घर नार' यह अक्षर इतने सुन्दर गाए थे कि उनके समान यह धमार फिर कभी सुनी ही नहीं। उनका गाना सुनने का जिसको सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, वह सचमुच दुर्भागी ही है। उनके सिखाने की पद्धति याद आती है। कोई भी चीज जब वह सिखाते थे, तब प्रारंभिक टुकड़ों से नहीं सिखाते थे, उस चीज के बीच-बीच के वाक्य सिखाते थे, उसमें उनकी बहुत ही गहराई थी जो हर व्यक्ति की समझ में आना कठिन है। किसी भी चीज में जिस वाक्य पर रागों के मुख्य स्वरसमुदाय रहते थे, वह वाक्य पंडित जी सर्व प्रथम सिखाते थे; जिससे राग का प्रमुख अंग पहले ही तैयार हो जाय व राग समझ में आ जाय—यह उनका उद्देश्य रहता था। बाद में एक-एक वाक्य सिखाकर प्रत्येक वाक्य पृथक्-पृथक् रूप से याद करवाते थे। नया वाक्य सिखाते समय पीछे का वाक्य दोहराते जाते। इस प्रकार सीखने से सारी चीज हमें उसी समय कंठस्थ हो कर याद भी हो जाती थी। इन चीजों को पंडित जी जब सुनते तो उनको इतनी खुशी होती थी कि वे स्वयं अपने को भूल जाते थे। और हमारे गुरुजनों को कहते थे कि, 'देखो ! यह आनन्द मुझे केवल ग्वालियर में ही मिलता है।' खमाज राग

की 'न मानूंगी न मानूंगी' यह चीज एक बार हमको उन्होंने सिखाना शुरू किया, तो मुझे स्मरण है कि पहले 'मैं तो उन्हीं के मनाए बिना' यही वाक्य सिखाया था, जिसमें कि खमाज राग का पूर्ण दिग्दर्शन है। उसके बाद 'न मानूंगी न मानूंगी' यह वाक्य सिखाया था। कभी-कभी ब्लेकबोर्ड पर बहुत ही जल्दी एक चीज लिखते थे और पढ़वाते थे। मुझ पर उनका विशेष प्रेम था। मुझे नारायण ही कहा करते थे। कभी-कभी जब वे कोई चीज सिखाते थे तब कहते थे कि यह चीज हमारे वाड़ीलाल (वाड्या), रातांजनकर (बाबू) बहुत अच्छी गाते हैं। ये ही दोनों उनके प्रिय शिष्य थे। वाड़ीलाल जी का अब देहान्त हो गया, परन्तु मुझे उनका भी गाना सुनने का सौभाग्य मिला है। उनका गला तो साधारण ही था। परन्तु पंडित जी की हू-ब-हू कापी थी। श्री रातांजनकर जी के गाने में तो पंडित जी की प्रतिमा जगह-जगह दिखाई देती है इसमें बिलकुल सन्देह नहीं है। पंडित जी हमारी परीक्षा टाउनहाल थियेटर के ऊपरी कक्ष में लिया करते थे। हमारी परीक्षा के समय बड़े-बड़े आफिसर्स—जैसे कि, श्री रावबहादुर भिड़े साहब, स० गो० परचुरे, श्री प्राणनाथ, श्री देव साहब इत्यादि उपस्थित रहते। पंडित जी का एक प्रश्न निश्चित ही रहता था, जो कि वे सब को पूछते थे। वह यह कि स्वर पहिचान और बारह स्वरों का लगाना। यदि कोई विद्यार्थी एकाध सवाल चूक रहा हो तो बड़ी ही खूबी से उसको सही करवा लेते थे। उस समय सब श्रोतृवर्ग बहुत ही प्रसन्न होता था। सुबह परीक्षा होती थी, शाम को जगह-जगह गाने के जल्से होते थे। कुछ-कुछ जल्सों की तो जगह निश्चित भी थी। जैसे पोस्टमास्टर स्व० मुकुन्दराव लुखे, सरदार पागनीस साहब, स्व० नानाबोवा अग्निहोत्री इत्यादि। वहाँ पर हम लोग गाते थे। पंडित जी लोड़ से टिक कर बैठते और खूब खुश होते थे।

सन् १६२४ या '२५ में क्रमिक तीसरी पुस्तक का नोटेशन करने के लिए स्व० गुरुजी राजाभैया, भास्करराव खांडेपारकर और स्वयं मैं जून महिने में बम्बई गये। सुबह १० बजे से शाम ५ बजे तक पुस्तक का कार्य मलाड में सुकथनकर जी के बंगले में हुआ करता था और हम लोग विलेपार्ले में ठहरे थे। श्री रातांजनकर जी बोरिवली से आते थे। पंडितजी, राजाभैयाजी, भास्कररावजी, रातांजनकर जी और मैं इतने सज्जन नियमित रूप से रोजाना उपस्थित रहते थे। कभी-कभी वाड़ीलाल जी तथा रातांजनकरजी के पिताजी भी रहते थे। चार बजे तक पुस्तक का कार्य चलता था, बाद में एक घण्टा हम सब लोग गाया करते थे। उस समय पंडित जी कभी-कभी कहते थे, 'बाबू, तुम उस्ताद फैयाज खाँ की एक तान लो' और फिर मुझे कहते थे, 'अब तुम ऐसी लो'। फिर कहते थे 'तुम ग्वालियर की तान लो' और फिर रातांजनकर जी को कहते, 'बाबू, तुम ऐसी लो' इस प्रकार बड़ा ही रोचक कार्य-क्रम रहता था। पंडित जी ने एकनाथ पंडित से ग्वालियर के कुछ ख्याल सीखे थे। राजाभैयाजी स्व० शंकरराव पंडित से सीखे हुए थे। तो भास्कररावजी स्व० गणपतराव पंडित से सीखे हुए थे। जब भी कोई ख्याल नोटेशन के लिए चुना जाता था, तब तीनों सज्जन अपना-अपना सीखा हुआ जैसा था वैसा ही गाते थे, और फिर सब का एकीकरण होकर अंत में निश्चित रूप से लिखा जाता था। पहले स्लेट पर लिखा जाता था और बाद में उसकी कापियाँ बनाई जातीं। लगभग चार-पाँच ख्याल रोज तैयार होते थे। अधिकतर

राजाभैया जैसे गाते थे, उसी को पंडित जी स्वीकार करते थे। कई बार कुछ टुकड़े रागों के नियम के विरुद्ध ख्याल में रहते थे, उसको सुधारकर पंडित जी बहुत अच्छी प्रकार से गाते थे और उसे ही राजाभैया कायम कर देने के लिए कहते थे। परन्तु पंडित जी पर कुछ लोगों के ऐसे आक्षेप थे, कि उन्होंने ग्वालियर के ख्याल बिगाड़ दिए। इसलिए जैसे राजाभैया गाते प्रायः उसी के समान पंडितजी उनको लिख लेते थे। पंडित जी राजाभैया को 'भैया' कहा करते थे। जब ख्याल तैयार हो जाता था तो उसकी सुवाच्य कापी भास्कररावजी लिखते थे। उनके अक्षर बहुत ही सुन्दर थे। उनको पंडित जी 'फडनीस' कहते थे। मुझे स्मरण है कि, केदार राग का बड़ा ख्याल 'बन ठन काहा जु चले' को नोटेशन में पहले

प सांध सांनि रें सांनि सांध प

'कन्हाई' का क न्हाऽ ऽऽ ऽ ऽऽ ऽऽ ई इस प्रकार पंडित जी ने रखा था। परन्तु इस पर फिर बहस हुई। तब पंडित जी ने राजाभैया को यही कहा 'भैया, जैसा तुम गाते हो वैसा ही रखो। नहीं तो फिर ग्वालियर के लोग आरोप करेंगे।'

प ध निध प (प) म

अन्त में क न्हा ऽऽ ऽ ऽ ई ऐसा ही लिखा गया, जैसा कि राजाभैया गाते थे। ऐसी कई चीजें हैं जिन्हें राजाभैया जैसी गाते थे वैसी ही हू-ब-हू लिखी गई। हाँ, पंडित जी इनकी अशुद्धियाँ जरूर बता देते थे, परन्तु उनमें जहाँ तक हो सके बदल नहीं करते थे। 'बोरे जिन अल्ला' सारंग राग के इस ख्याल को तो दो दिन लगे थे।

पंडित जी का स्वभाव तो देवता समान ही था। उनको गुस्सा करते हुए मैंने कभी देखा ही नहीं। प्रत्येक कलाकार की गहराई वे बहुत ही चतुरता से नापते थे; क्योंकि वे स्वयं ही वकील थे। जैसा उनका नाम 'चतुर' है वैसे ही वे थे भी। मुझे उनकी एक-दो बातें राजाभैया ने बताई थीं, जो कि पंडित जी ने उन्हें कही थीं। एक समय की बात है, बम्बई में एक गायक ने खुली चुनौती दी थी कि, संगीत शास्त्र में जिसको कोई शंका हो वह यहाँ आकर पूछ सकता है। पंडित जी जब वहाँ गये तो नीचे उस गायक के गुरुजी बैठे हुए थे। उन्होंने पूछा, 'कहो भातखण्डे, आज कैसे पधारे ?' पंडित जी ने कहा, 'आपके शिष्य का विज्ञापन पढ़कर मुझे बहुत ही खुशी हुई। मुझे श्रुति के विषय में कुछ शंकाएँ हैं, उन्हें पूछ लूँ।' तब उन्होंने कहा, 'भातखंडे, वह तुम्हें क्या बताएगा ? वह विज्ञापन अन्य लोगों के लिये है।' पंडित जी ने कहा, 'पूछ तो लूँ। पंडित जी ऊपर पहुँचे। इन्हें देखते ही उस गायक ने कहा, 'कहिये पंडित जी, कैसे कष्ट किया ?' पंडित जी ने उत्तर दिया, 'कुछ शंकाएँ श्रुति के विषय में पूछनी हैं।' गायक महोदय ने कहा, 'मैं आपको क्या बता सकता हूँ।' अंत में पंडित जी जब नीचे लौट कर आये तब गायक के गुरु ने पूछा, 'कहो भातखण्डे, कुछ बताया ?' पंडित जी ने कहा, 'क्या कहने आपके शिष्य की बात ? एक मिनट में उन्होंने मेरी शंका का पूर्ण रूप से समाधान कर दिया।' पंडित जी किसी का भी अपमान करना नहीं जानते थे। यही उनके स्वभाव की विशेषता थी।

स्व० राजाभैया की बताई हुई दूसरी बात इस प्रकार थी। एक बार पंडित जी की परीक्षा लेने हेतु एक-दो गायक बंबई में उनके निवास-स्थान पर गए। पंडित जी बैठे हुए अपने कार्य में व्यस्त थे। गायकों को देखकर उन्होंने पूछा, 'आज कैसे आना हुआ ?' गायकों ने कहा, पंडित जी, हमारे खानदान में एक-दो ख्याल ऐसे गाये जाते हैं, जिनके रागों का कुछ पता नहीं चल रहा है'। पंडित जी ने नम्रता से कहा, 'मैं क्या बता सकता हूँ ? अच्छा आप सुनाइये, कोशिश करूँगा।' उन्होंने वह सुनाये। पंडित जी ने उन्हें सुनकर वैसे ही दूसरे दो ख्याल उनको सुनाए और पूछा, 'यह ख्याल आपको किस राग के मालूम पड़ते हैं ?' गायकों ने कहा, 'हमें तो वें मलुहाकेदार के मालूम पड़ते हैं।' तब पंडित जी ने कहा, 'आपके ख्यालों से यह मिलते हैं या नहीं ?' तब गायकों ने कबूल किया और हाथ जोड़कर चुपचाप चले गए।

सन् १९२४ की लखनऊ कान्फ्रेन्स में राजाभैया के साथ मुझे भी उपस्थित रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गायकों में अलाबन्दे खाँ और फैयाज़ खाँ पर पंडितजी का विशेष अनुराग था। इन दोनों की दो विशेष घटनाएँ अभी भी मेरे स्मरण में हैं। अलाबन्दे खाँ साहब के साथ उनके सुपुत्र नसीरुद्दीन खाँ साहब भी आये हुए थे। अलाबन्दे खाँ साहब पर्याप्त वृद्ध हो चुके थे तो नसीरुद्दीन खाँ साहब अपनी पूरी जवानी में थे। दोनों ने एक साथ गाया। परन्तु निर्णायक कमेटी ने, जिसमें भातखण्डेजी और ठाकुर नवाबअली प्रमुख रूप से थे, अलाबन्दे खाँ साहब के लिए स्वर्णपदक घोषित किया। सुनकर नसीरुद्दीन खाँ साहब बहुत नाराज हुए और अपने लिए स्वर्णपदक क्यों नहीं दिया गया, ऐसा तर्क पंडित जी से करने लगे। बहुत समझाने पर भी जब वे नहीं माने तो ऐसा निश्चित हुआ कि दूसरे दिन दोनों का गायन पुनः रखा जाय। अलाबन्दे खाँ साहब गाने के लिये बैठे और उनके साथ उनके पीछे नसीरुद्दीन खाँ साहब भी बैठे। दोनों ने मिलकर पूरिया राग में आलाप भरने शुरू किये। गाते-गाते अलाबन्दे खाँ साहब ने अपने लड़के नसीरुद्दीन खाँ को रोक दिया और कहा—'देखो बेटा, अब अपने को गान्धार की सीमा तक ही आलाप करने हैं, और हर बार नये-नये टुकड़े पेश करने हैं। एक बार गाया हुआ टुकड़ा पुनः दोहराना नहीं है। हाँ, बस, अब शुरू हो जाओ।' मुश्किल से चार-पाँच मिनट बीते होंगे और नसीरुद्दीन खाँ साहब के गले से वही-वही टुकड़े आने लगे, तो अलाबन्दे खाँ साहब हर बार नया टुकड़ा रचाते जाते। अन्त में नसीरुद्दीन खाँ हार मान कर अलाबन्दे खाँ साहब से कहने लगे कि, 'आपने मुझे इतनी तालीम दी, इतना तैयार किया, पर ये बात अपने ही पास अभी तक कैसे छपाकर रखो ?' अलाबन्दे खाँ साहब हँस दिये और बोले'—'बेटा, मुझे मालूम था कि आज की तरह का एक दिन आनेवाला है। और उस दिन अपनी लज्जा की रक्षा के लिये यह तालीम तुम्हें नहीं दी थी।' बाद में काफी देर तक गाना हुआ। दोनों के गायन पर सभी श्रोतागण खुश हुए। पंडित भातखण्डे जी ने नसीरुद्दीन खाँ से कहा, 'क्यों खाँ साहब ! अब तो समझ गये, हमने अलाबन्दे खाँ साहब का स्वर्णपदक के लिये क्यों चुना ?'

इसी कान्फ्रेन्स का प्रारम्भ फैयाज़ खाँ साहब के गायन से होना निर्धारित हुआ था। पता नहीं क्यों, परन्तु उस रोज फैयाज़ खाँ साहब ने अपना गायन 'वन्दे नन्द कुमारम्' से प्रारम्भ किया। कान्फ्रेन्स में एक से एक अच्छे गानेवाले और सुननेवाले थे। नतीजा

यह हुआ कि उस दिन फैयाज़ खाँ साहब का गाना एकदम गिर गया। नवाबअली साहब पंडित जी से कहने लगे, 'जिस फैयाज़ की आप इतनी जी भर कर तारीफ़ कर रहे थे, वे क्या ऐसे ही हैं ?' जो कुछ हुआ उस पर पंडित जी बहुत दुखी थे। पंडित जी ने कान्फ्रेन्स के प्रबन्धकों से आग्रह करते हुए कहा कि फैयाज खाँ का गायन एक बार पुनः रखा जाय। परन्तु ऐसा स्वीकार करने के लिए कोई भी तैयार नहीं हो रहा था। अन्त में यही निश्चित हुआ कि पंडित जी की इच्छानुसार फैयाज़खाँ को पुनः एक मौका दिया जाय, परन्तु २० मिनट से अधिक नहीं। दूसरे दिन सुबह फैयाज़ खाँ साहब गाने के लिए बैठे और रामकली में 'आज राधे तोरे बदन पर शाम मिले की चोरी' यह ख्याल शुरू किया। उनके पीछे श्री रातांजनकर और श्री दिलीपचन्द्र दोनों बैठे हुए थे। पंचम के साथ तीव्र मध्यम कुछ ऐसी तासीर से लग रहा था कि सारी सभा रोमांचित हो उठी। ऐसी रामकली मैंने तो आज तक नहीं सुनी। सारे लोग मन्त्रमुग्ध हो गये थे। २० मिनट कैसे बीत गये, किसी को भी मालूम नहीं हुआ। इधर समय समाप्त होते ही पंडित जी ने बेल का बटन दबाना शुरू किया। फैयाज़ खाँ साहब भी गायन का उपसंहार सजाने में लग गये। नवाब-अली साहब हाथ जोड़कर पंडित जी से कह रहे थे कि 'फैयाज़ को गाने दीजिए। आपकी पसंद में सचमुच पक्षपात नहीं है। केवल आपकी वजह से ऐसा अनुपम संगीत हमें सुनने को मिल रहा है।' उधर पंडित जी कहते रहे कि 'फैयाज़ खाँ को बीस मिनट का दुबारा समय देकर आपने मुझे बहुत उपकृत किया है। उनका अच्छे से अच्छा गाना आप लोग सुनें, ऐसी मेरी इच्छा थी; वह पूरी हुई। अब उन्हें आज्ञा दीजिए।' नवाब अली साहब ने पुनः अनुरोध किया और फैयाज़ खाँ का गाना आगे जारी हो गया। फैयाज़ खाँ साहब पर उनका क्यों और कितना अगाध प्रेम था, यह बात उस दिन सभी ने देखी।

मैं भी कितना भाग्यशाली हूँ

प्रो० बालाजी श्रीधर पाठक, इलाहाबाद

संगीतकला के क्षेत्र में स्व० पं० भातखंडे जी की कीर्ति अजरामर है। यह ऐसी महान् विभूति हो गई है जिनके विषय में जितना प्रकाश डाला जाय उतना अल्प ही होगा। संगीत के दोनों विभागों पर (शास्त्र तथा प्रयोगात्मक) उन्होंने इतना संशोधन, प्रकाशन तथा रचनात्मक कार्य किया है कि उसका संक्षिप्त में वर्णन करना असंभव है। जिस काल में उन्होंने इस कला के उत्थान के लिये प्रयत्न करने का निश्चय किया, उस समय यह कला निकृष्ट अवस्था में थी। अशिक्षित, व्यसनी कलाकारों के हाथ से उठाकर उसको सम्मान का स्थान प्राप्त कराने की दिशा में जो महान् कार्य पंडित जी ने किया वह अवर्णनीय है। यदि ऐसा कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी कि संगीत कला तथा शास्त्र के पुनरुत्थान के लिये ही स्वयं भगवान् का अवतार भारत भूमि पर हुआ था। अनेक विद्वान् लेखकों ने तथा उनके अनुयायियों ने समय-समय पर उनके महत्कार्य तथा व्यक्तित्व पर बहुत कुछ प्रकाश डाला है। मुझे उनके प्रति अपनी भावनाओं को, अनुभवों को स्पष्ट रूप में प्रकट करना असंभव-सा लग रहा है। पंडितजी की सेवा में तथा सान्निध्य में इस तुच्छ जीवन के भी कुछ क्षण व्यतीत हुए हैं। उस अल्प समय में मेरे हृदय पर उनके व्यक्तित्व की महानता का जो परिणाम हुआ तथा समय-समय पर जो अनुभव प्राप्त हुए, उन्हें मैंने अपनी टूटी-फूटी भाषा में अंकित करने का निश्चय किया है। मैं नहीं जानता कि इसमें कहाँ तक सफल हो सकूँगा।

सन् १९२० में अपनी ग्यारह-बारह वर्ष की अवस्था में अपने जन्मस्थान सागर (म० प्र०) से ग्वालियर को संगीत शिक्षा ग्रहण करने मैं गया था। माधव संगीत महाविद्यालय की प्रथम कक्षा में शिक्षा प्राप्त करना आरंभ किया। मेरे प्रथम शिक्षक स्व० गु० भास्करराव खांडेपारकर थे। खांडेपारकर जी का पंडित भातखंडे जी से घनिष्ठ परिचय था। मैंने ऐसा श्रवण किया था कि उनकी ही मध्यस्थता से महाराजा माधवराव सिंधिया से भातखंडे जी का परिचय हुआ तथा ग्वालियर में संगीत विद्यालय स्थापना करने में खांडेपारकर जी का विशेष सहयोग रहा था। पंडित जी की उनके प्रति विशेष आदर की दृष्टि थी। १९२१ के अप्रैल मास में एक दिन मैंने कक्षा में श्रवण किया कि परीक्षा लेने के लिये बंबई से पंडित जी का आगमन कल हो रहा है तथा परसों से प्रातःकाल में परीक्षाएँ आरंभ होंगी। अल्प आयु के कारण मेरा हृदय भय से काँपने लगा। मैं सोचने लगा, किस प्रकार परीक्षा होगी ? मैं कैसे उनके सम्मुख अपने अल्प गायन की परीक्षा दूँगा ?

दूसरे दिन प्रातःकाल हम परीक्षा-स्थान पर उपस्थित हुए। कुछ ही समय पश्चात् एक शासकीय घोड़ागाड़ी से एक दिव्य पुरुष ने नीचे पदार्पण किया। सर्वप्रथम मुझे ही उनका दर्शन प्राप्त हुआ। इनके व्यक्तित्व का मेरे मन पर जो प्रभाव पड़ा, उसे मैं अभी तक

आवाज लगानी चाहिये आदि की शिक्षा स्वयं गाकर तथा अनेक बार विद्यार्थियों से भी गवाते जाते थे। कौन से राग में किन स्वरों को और किस प्रकार से प्रधानता देना है आदि प्रमुख कलापूर्ण बातों को स्वयं गाकर उसकी नकल करने के लिये कहते थे। गीत की स्थायी और अन्तरा ही वे ऐसी कुशलता से गाते कि सारी सभा मुग्ध हो जाती थी। वातावरण नादमय हो जाता था। किसी दिन उच्चवर्गीय विद्यार्थियों की जोड़ियों का गायन उनके सम्मुख होता था। उस समय ऐसी प्रथा थी कि कक्षा के सभी विद्यार्थियों की जोड़ियाँ कंठ सादृश्य तथा योग्यतानुसार निश्चित की जाती थीं। उन्हें प्रत्येक बार साथ साथ ही गायन करना पड़ता था। परीक्षाएँ भी दोनों की साथ-साथ होती थीं।

कभी-कभी रियासत के दरबारी तथा अन्य श्रेष्ठ कलाकारों का गायन-वादन पंडितजी के सम्मुख होता था। इन कलाकारों के नाम साधारणतः इस प्रकार हैं—उमराव खाँ (प्रसिद्ध तानरस खाँ के पुत्र), हफीज अली खाँ, लाल खाँ, पर्वतसिंह पखवाजी आदि कलाकारों का गायन-वादन विद्यालय के प्रांगण में होता था। एक बार गु० भातखंडे जी वयोवृद्ध प्रसिद्ध गायक तथा हद्दु-हस्सुखाँ की परंपरा के अनुयायी स्व० शंकर पंडित के निवास-स्थान पर उनसे मिलने तथा गायन श्रवण करने के लिये स्वयं गये थे। उस समय श्री शंकर पंडित अत्यंत बीमार थे। किन्तु कुछ समय तक गायन सुनाकर उन्होंने उसी अवस्था में पंडितजी का स्वागत किया। इसी प्रकार स्व० श्री बाला गुरुजी तथा स्व० श्री पन्ना गुरुजी, जो ग्वालियर दरबार के सरदार होते हुए भी अत्यंत सुयोग्य वृद्ध गायक थे, उनके निवास-स्थान पर भी मिलने गये थे। बाला गुरुजी भी अनेक बार विद्यालय में पंडितजी से मिलने आते रहते थे। पंडितजी के कार्य की वे बहुत सराहना करते थे।

माधव संगीत विद्यालय के शिक्षकों में गु० राजाभैया पूछवाले पर पं० भातखंडे का विशेष प्रेम था। मैं जब उच्च वर्ग में राजाभैया के पास शिक्षा ग्रहण कर रहा था तब मैं तथा मेरे सहाध्यायी मित्र श्री गोविंद नारायण नातू (वर्तमान अध्यक्ष मैरिस म्यूज़िक कालेज, लखनऊ) अनेक बार प्रातःकाल में पंडितजी के दर्शनार्थ राज्य के अतिथि-भवन में जाते थे। तब पंडितजी अनेक बार कहते थे, 'इस विद्यालय में श्री राजाभैया एक अत्यंत सुयोग्य गायक तथा शिक्षक हैं। उनसे अधिक-से-अधिक शिक्षा ग्रहण करने का प्रयत्न करो। ऐसे निस्वार्थ तथा प्रेम से विद्यादान करनेवाले शिक्षक संगीत के कलाकारों में बिरले ही होते हैं। तुम्हारा परम सौभाग्य है कि ऐसे गुरु तुम्हें प्राप्त हुए हैं। ऐसा सुअवसर हाथ से मत खोना।'

सन् १६२३ में परीक्षा के समय पर संगीत-प्रेमी तथा लेखिका अतिया बेगम साहिबा पंडितजी से मिलने तथा विद्यालय का निरीक्षण करने के लिये ग्वालियर पधारी थीं। उनके सम्मुख मेरा तथा श्री गो० ना० नातू का युगल-गायन तथा अन्य विद्यार्थियों का भी गायन हुआ था। गायन-समाप्ति के पश्चात् पंडितजी ने बेगम साहिबा से कहा—'खानदानी कलाकारों के बालकों के समान गायन करनेवाले बालकों का निर्माण इस विद्यालय में नवीन शिक्षा प्रणाली द्वारा करने का श्रेय यहाँ के शिक्षकों को ही है। इसे अवलोकन कर मुझे अब विश्वास हो गया है कि नवीन सामूहिक शिक्षा पद्धति तथा नोटेशन पद्धति संगीत शिक्षा में अत्यंत लाभदायक सिद्ध होगी।'

माधव संगीत विद्यालय ग्वालियर की नवीन शिक्षा प्रणाली का निरीक्षण तथा अध्ययन करने के लिए देश-विदेश से अनेक विद्वान् संगीतज्ञ समय-समय पर आकर वहाँ की शिक्षा प्रणाली व उसके परिणामों को देख कर आश्चर्य चकित, प्रभावित तथा संतुष्ट होते थे।

भातखण्डे जी ने शंकरराव पंडित के भाई एकनाथ पंडित से जब वे बम्बई में आये थे तब ग्वालियर शैली के प्रसिद्ध ख्यालों को प्राप्त कर लिपिबद्ध किया था। उनकी शुद्धता की पुष्टि कराना तथा उनको पुस्तक रूप में स्वरलिपि सहित प्रकाशित करने के पूर्व अन्तिम रूप प्रदान करना आवश्यक था। राजाभैयाजी ग्वालियर ख्याल-परंपरा के अनुयायी तथा शंकर पंडित के शिष्य थे। उनसे ऐसे ख्यालों को सुनकर शुद्ध करने का पं० भातखण्डे का कार्य ग्वालियर में प्रायः चलता ही रहता था।

सन् १९२३ के ग्रीष्म काल में पंडितजी ने राजाभैया तथा विद्यालय के अन्य सुयोग्य शिक्षकों के साथ हरिद्वार में गंगाजी के पवित्र तट पर एक-डेढ़ मास निवास कर ग्वालियर घराने के प्रसिद्ध ख्याल, ध्रुवपद, तरानों को स्वरलिपिबद्ध करने का तथा उनको शुद्ध स्वरूप देने का कार्य संपन्न किया था।

पंडित जी ऐसे समय पर उन गीतों की भाषा में अथवा राग स्वरूपों में अशुद्धियाँ पाते ही उन्हें शुद्धरूप देने की चेष्टा करते, किन्तु राजाभैया अपनी परंपरा के स्वाभिमानी होने के कारण उनमें परिवर्तन करने के लिये स्वीकृति नहीं देते थे। ऐसे समय पर पंडित जी हास्यमुख से कहते, "भैया! आज आप इस शुद्धि के लिये तैयार नहीं हैं। किन्तु एक दिन ऐसा आयेगा कि जब स्वयं आप ही रागों के स्वरूप तथा भाषा की शुद्धि के लिये मुझे बाध्य करेंगे। आज मैं आपके आग्रह से ऐसी ही चीजें प्रसिद्ध करता हूँ जैसी आपकी परंपरा में हैं।' पश्चात् कुछ वर्ष बाद स्वयं राजाभैया ने स्वानुभव से पंडित जी को चीजों के रागस्वरूप तथा भाषा शुद्धि के लिये प्रार्थना की थी। यह बात मुझे राजाभैया जी से ही विदित हुई।

सन् १९२४ में विद्यालय के प्रथम पदवीदान समारोह का आयोजन किया गया। अध्यक्ष स्थान महाराजा माधवराव सिंधिया ने ग्रहण किया था। उसमें महाराजा की ओर से निःस्वार्थ सेवा तथा समय-समय पर निरीक्षण कर योग्य सूचनाएँ समर्पित करने के उपलक्ष में पं० भातखण्डे जी का अभिनन्दन किया गया। मूल्यवान् वस्त्र तथा थैली अर्पण की गई थी और महाराजा ने मुक्तकंठ से उनके कार्यों की प्रशंसा की थी।

सन् १९२४-२५ के दिसम्बर के अंतिम सप्ताह में लखनऊ में अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन का आयोजन पं० भातखण्डे जी के नेतृत्व में किया गया था। उसमें प्रमुख प्रबंधक रामपुर रियासत के तत्कालीन हिज हाईनेस नवाब साहब, राजा नवाबअली खाँ, राय राजेश्वर बली तथा राय उमानाथ बली साहब (वर्तमान उपाध्यक्ष भातखण्डे संगीत विद्यापीठ, लखनऊ) थे। अखिल भारतीय सम्मेलनों के पं० भातखण्डे जी मुख्यमंत्री (जनरल सेक्रेटरी) थे। माधव संगीत महाविद्यालय ग्वालियर से कुछ उच्च श्रेणी के विद्यार्थी राजाभैया जी के संरक्षण में रियासत की ओर से भेजे गए थे। उस सम्मेलन में भातखण्डे जी के कार्य तथा व्यक्तित्व की महानता का पूर्ण परिचय लेखक को प्राप्त हुआ। सम्मेलन में

उत्तर-भारत के समस्त तथा दक्षिण भारत के कुछ कलाकर उपस्थित थे। उत्तर भारतीय रियासतों के अनेक गायक-वादक अपनी-अपनी रियासत की ओर से उपस्थित थे। बड़ौदा, ग्वालियर, इन्दौर, धौलपुर, जयपुर, रामपुर, मैहर, अलवर, पटियाला, गिद्धौर आदि रियासतों के तथा बनारस, लखनऊ, इलाहाबाद, कलकत्ता, गौरीपुर, दिल्ली, मथुरा आदि अनेक संगीत प्रसिद्ध नगरों के कलावन्त उपस्थित थे। वर्तमान समय में जो संगीत सम्मेलन हो रहे हैं उनसे लखनऊ के विगत सम्मेलन का कोई साम्य नहीं है। आज के सम्मेलनों का ध्येय तथा जो विकृत स्वरूप विद्यमान है, वह उस समय के सम्मेलनों में कदापि नहीं था।

१९२४-२५ के लखनऊ के सम्मेलनों में किन-किन महान् कलाकरों ने भाग लिया था, उसका स्मरण मुझे इस समय पूर्ण रूप से नहीं है। किन्तु जो कुछ याद है उसके आधार पर जानकारी दे रहा हूँ। खाँ साहब अलाबन्दे खाँ, जाकिरुद्दीन खाँ, नासिरुद्दीन खाँ, महमदअली-खाँ जयपुर; आशिकअली खाँ जयपुर; फैयाज खाँ बड़ौदा; कृष्णराव पंडित ग्वालियर, चन्दन चौबे मथुरा; वज़ीर खाँ मुहम्मदअली खाँ, मुश्ताकहुसेन रामपुर, मुराद खाँ इन्दौर; अलाउद्दीन खाँ मैहर, इमदाद खाँ, मास्टर श्रीकृष्ण (डा० श्रीकृष्ण रातांजनकर), दिलीप-चन्द्र बेदी, गोपेश्वर बनर्जी, भगवानदास (पखवाज), लाला झल्ली (टीकमगढ़ पखवाज), पं० बीरू मिस्सर बनारस, मनमोहन (सितार), धौलपुर आदि अनेक धुरन्धर कलावन्त उपस्थित थे।

पं० भातखण्डे जी के साथ श्री भालचन्द्र सीताराम सुकथनकर, शंकरराव कार्नाड़, वाडीलाल शिवराम, द० के० जोशी आदि उनके मित्र तथा शिष्य उपस्थित थे।

प्रतिदिन सम्मेलन के उपरान्त या प्रथम अनेक कलावन्त पंडित जी के निवास-स्थान पर संगीत शास्त्र तथा रागों के स्वरूप निर्णय सम्बन्धी चर्चा करने के लिए उपस्थित होते थे। कभी-कभी गायक-वादकों का गायनवादन भी होता था। मैंने खाँ साहब अलाउद्दीन खाँ का सरोद वादन तथा करामत खाँ साहब जयपुर का गायन प्रथमतः पंडित जी के निवास स्थान पर ही सुना था। करामत खाँ पंडित जी के गुरु भी थे। उनकी आयु उस समय ९० वर्ष के लगभग थी। किन्तु उन्होंने मुलतानी के आलाप इस मधुरता से तथा कौशलपूर्ण किए कि वैसे आलाप मैंने अपने जीवन में पुनः कभी नहीं सुने।

सम्पूर्ण सम्मेलन में पं० भातखण्डे जी के व्यक्तित्व का प्रभाव था। सभी कलावन्त तथा सुशिक्षित समाज आपकी ओर आदर तथा श्रद्धा से देखता था। सन् १९२४-२५ के संगीत सम्मेलन सचमुच अपूर्व हो गए हैं। ऐसे सम्मेलन वर्तमान समय तक फिर कभी नहीं हुए, ऐसा जानकारों का मत है।

सन् १९२६ में माधव संगीत विद्यालय की पंचम वर्ष की अन्तिम परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने के पश्चात् मैंने पंडित जी को अपने निवास स्थान (सागर) से पत्र लिखकर पंडित जी की सेवाएँ कर उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा प्रगट की। उसके उत्तर में उन्होंने मुझे आदेश दिया 'मैं गवैय्या नहीं हूँ'। तुम्हें किसी ऐसे गायक के पास जाकर उच्च शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए जो तुम्हें उत्तम प्रकार से गायकी की तालीम दे सके तथा गला तैयार करवाकर कलात्मक वस्तुओं की शिक्षा प्रदान कर सके। लखनऊ में एक नवीन संस्था

स्थापित हुई है। वहाँ मेरे शिष्य श्रीकृष्ण नारायण रातांजनकर गये हैं। उनके सान्निध्य में यदि तुम रहोगे तो तुम्हारी इच्छा सफल होगी।' इस उद्देश्य पूर्ति के लिए भातखंडे जी ने लखनऊ मैरिस म्यूज़िक कालेज में शिक्षक के पद पर मेरी नियुक्त की। इसी वर्ष अर्थात् १९२६ के अक्टूबर में मैं लखनऊ कालेज में उपस्थित हुआ। उस समय श्री द० के० जोशी संपादक संगीत क्रमिक पुस्तकमालिका के कनिष्ठ भ्राता श्री माधवराव जोशी कॉलेज के प्रिंसिपल थे। श्री द० के० जोशी भी लखनऊ में अपने भाई के साथ रहकर प्राथमिक कक्षाएँ लेते थे। शिक्षकों में डॉ० रातांजनकर, श्री नातू, लेखक, सखाराम जी, उस्ताद सखावत हुसैन खाँ, उस्ताद आबिद हुसैन खाँ, उस्ताद हमीद हुसैन खाँ के अतिरिक्त कुछ अन्य सज्जन भी थे।

गु० भातखण्डे जी वर्ष में दो बार लखनऊ में वास्तव्य करते थे। अक्टूबर से दिसम्बर तक तथा मार्च से अप्रैल तक। प्रारम्भ में कुछ वर्षों तक पंडित जी, डा० रातांजनकर तथा मैं कालेज के छात्रावास में ही रहते थे। जब तक भातखण्डे जी लखनऊ में रहते थे, उनकी सभी आवश्यकताओं की ओर ध्यान रखने का तथा उनकी पूर्ति करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। हम तीनों का भोजन, जलपान साथ ही होता था। सुबह ८ से १० बजे तक पंडित जी से मिलने के लिए अनेक संगीत प्रेमी सज्जन तथा कॉलेज के छात्र आते थे। उनसे संगीत विषयक चर्चा होती थी। सायंकाल में कालेज की कक्षाओं का निरीक्षण, कभी-कभी स्वयं शिक्षा प्रदान करना, शिक्षकों को शिक्षाविधि के सम्बन्ध में सूचनाएँ देना आदि चलता था। कालेज में प्रत्येक शनिवार को शिक्षकों, छात्रों तथा आमन्त्रित अतिथियों का गायन-वादन पंडित जी की उपस्थिति में होता था।

मैरिस म्यूज़िक कालेज के तत्कालीन अध्यक्ष, ठाकुर राजा नवाबअली खाँ साहब तालुकेदार अकबरपुर से पंडित जी की घनिष्ट मित्रता थी। लखनऊ महाविद्यालय स्थापित होने के पूर्व से ही संगीत विषयक पत्र व्यवहार इन दोनों में चलता था। कभी-कभी ठाकुर नवाब अली खाँ साहब कालेज में पधारकर पंडित जी से वार्तालाप करते और गायन-वादन के कार्यक्रमों में सम्मिलित होते थे। विद्यालय की स्थापना के दो-तीन वर्ष पश्चात् ठाकुर साहब की मृत्यु हो जाने से एक अत्यन्त हितैषी, संस्थापक, सहायक से विद्यालय को वंचित होना पड़ा। उनके पश्चात् विद्यालय का अध्यक्ष पद श्री राय राजेश्वर बली, तालुकेदार दरियाबाद, शिक्षा मंत्री संयुक्त प्रान्त ने सुशोभित किया। राय उमानाथ बली साहब विद्यालय के सचिव थे।

लखनऊ के उनके प्रवास में कालेज समाप्ति के पश्चात् प्रतिदिन भोजनोत्तर रात्रि के नौ बजे से दस-साढ़े दस बजे तक डॉ० रातांजनकर तथा मैं पंडित जी के कमरे में बैठकर वार्तालाप, संगीतशास्त्र तथा गायन सम्बन्धी चर्चा उनके मुख से श्रवण करते थे। पश्चात् पंडित जी लेखन कार्य करने के लिए प्रस्तुत होते। उन दिनों में वे संगीत शास्त्र का चौथा भाग लिख रहे थे।

पंडित जी ने अपने जीवन काल में अनेक प्रसिद्ध एवं उच्च श्रेणी के कलावन्तों का गायन-वादन श्रवण किया था। अनेक संगीत विद्वानों से शास्त्र पर चर्चाएँ की थीं। अपने अनुभवों का वर्णन प्रसंगवशात् रात्रि के वार्तालाप में हमारे सम्मुख करते थे। गायनवादन

का विश्लेषण, गायन शैली की खूबियाँ तथा अपने स्वानुभवों की कहानियाँ सुनाते थे। कलावन्तों की आपसी स्पर्धा, ईर्ष्या आदि का वर्णन उनके मुख से सुनते समय हम लोग तल्लीनता से श्रवण करते रहते। पंडित जी की वर्णन करने की शैली अप्रतिम थी। हम लोगों को समय का भी विस्मरण हो जाता था।

भातखण्डे जी का स्वभाव अत्यंत सरल, विनोदी तथा कुछ संकोची था। सेवकों को आप बड़ी सभ्यता से आज्ञा देते तथा कोई भी बात शांत चित्त से कहते। मैंने उन्हें कभी भी क्रोधित होते हुए नहीं पाया। वाद-विवाद में भी ये अत्यंत सौम्य शब्दों का प्रयोग करते हुए स्मित मुख से अपने सिद्धान्तों को समझाने का यत्न करते थे। कभी-कभी कोई रूढ़िवादी, परम्परावादी कलावन्त नोटेशन द्वारा घरानों की चीजों के प्रकाशन के लिए उनसे कटु शब्दों का व्यवहार भी करते, तथापि पंडित जी स्मित, सौम्य और शान्त मुद्रा से प्रतिवाद करते थे। ऐसे अवसर मेरी उपस्थित में एक-दो बार आये थे। उस समय पंडित जी के स्वभाव की महानता का ही परिचय मिला।

पं० भातखण्डे जी हृदय से अत्यन्त कोमल, भावुक तथा ईश्वर पर अटल विश्वास रखने वाले थे। उनके उपास्य देव वाराणसी के काशी विश्वनाथ थे। किन्तु यह रहस्योद्-घाटन उन्होंने कभी होने नहीं दिया। एकान्त में स्फटिक मोतियों की माला लिए ईश्वर का नामस्मरण करते दिखाई देते थे। पंडितजी का भोजन भी सात्विक तथा अत्यन्त संतुलित था।

कुछ दिनों से इधर पंडित जी को कानों से थोड़ा कम सुनाई देता था। किन्तु गायन वादन के श्रवण में इससे कोई बाधा नहीं होती थी। एक दिन एक शिक्षक की गायन शिक्षा का निरीक्षण करते समय शिक्षक ने, इस धारणा से कि पंडित जी को कम सुनाई देता है, विद्यार्थियों से शुद्धविकृत स्वर कहलवाना आरम्भ किया। किन्तु धीरे-धीरे स्वयं भी उनके साथ गुन-गुनाने लगे। पंडित जी के ध्यान में सब कुछ आ गया। पर कक्षा में उन्होंने किंचित् भी इस बात का परिचय नहीं होने दिया। रात्रि में भोजन के समय पर इसी बात को पंडित जी ने हँसते-हँसते हम लोगों को बतलाया कि 'खाँ साहब मुझे बहिरा समझ रहे थे।'

पंडित जी ने जिन श्रेष्ठ कलाकारों का गायन-वादन भूत-काल में श्रवण किया था, उसका स्मरण आते ही वह उनके कानों में गूँजना आरम्भ हो जाता था। अनेक बार हम लोगों को बताते कि, किस कलाकार के गायनवादन की ध्वनि वे अपने कान से स्पष्टतः सुन रहे हैं। इससे अनेक बार उनके चालू कार्य में रुकावट भी पड़ती थी। ऐसा उन्हीं कलाकारों की कला के विषय में होता, जिनकी कला उन्हें अत्यन्त प्रिय थी।

पंडित जी को भ्रमण में अत्यन्त रुचि थी। महीने-दो महीने तक एक स्थान पर रहने के पश्चात् उन्हें स्थानान्तरण की इच्छा होती थी। अनेक बार अचानक पिकनिक का आयोजन करते हुए एक'दो दिन के लिये स्थानांतर करते थे। ऐसे कुछ प्रसंगों पर भातखण्डे जी तथा रातांजनकर जी के साथ मुझे भी इस कार्यक्रम में सम्मिलित होने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

गु० भातखण्डे जी का उनके प्रिय शिष्य रातांजनकर जी पर विशेष अनुराग था।

उनकी शास्त्रीय तथा क्रियात्मक निपुणता पर उन्हें संतोष और विश्वास था। इन्हीं पाँच-छः वर्ष की अवधि में उन गुरु-शिष्यों का परस्पर प्रेम, श्रद्धा, आदर का बेजोड़ उदाहरण मैंने निकट से देखा है। मैरिस म्यूज़िक कालेज की स्थापना का उनका आंतरिक उद्देश्य अपने सुयोग्य शिष्य की सहायता से नूतन शिक्षा प्रणाली तथा अपनी पद्धति का प्रचार कराना ही था। पंडित भातखण्डे जी ने अपने लक्ष्य-संगीत ग्रंथ में लिखा है :

नूतनशिष्यापेक्षयादौ स्युरिष्टा योग्यशिक्षकाः।
अध्यापयिष्यंति तेऽमुं विषयं सम्यगेव हि॥
ग्रन्थस्योद्देश आदौ स्यादस्य शिक्षकनिर्मितिः।
शिष्यानध्यापयिष्यंति तादृशाः शिक्षकास्ततः॥

अर्थ—नूतन शिष्यों की अपेक्षा योग्य शिक्षकों की आवश्यकता अधिक है जो इस विषय को उत्तम (पद्धतिनुरूप) रीति से सिखा सकें। इस ग्रन्थ का उद्देश्य मुख्यतः ऐसे शिक्षकों को ही तैयार करना है। ऐसे सुयोग्य शिक्षक निर्माण हो जाने पर भविष्य में सुयोग्य विद्यार्थी भी बनते रहेंगे।

उनके द्वारा स्थापित विद्यालयों में लखनऊ का संगीत विद्यालय ही एक ऐसी संस्था थी जो पंडित जी के दीर्घ परिश्रमों के परिणाम में स्थापित हुई थी। यहीं पर उनकी पद्धति का समाज में पूर्णतया प्रचार तथा उनकी इच्छा की पूर्ति हो सकती थी। इसके पूर्व बड़ौदा, ग्वालियर में दो संस्थाओं की स्थापना हो चुकी थी। किन्तु उनका प्रबन्ध रियासतों के आधीन होने से सभी बातें पंडित जी की इच्छानुसार होने में अनेक बाधाएँ भविष्य में उपस्थित हो सकती थीं। लखनऊ संगीत महाविद्यालय उनकी सुयोग्य पद्धति से आदर्श शिक्षा प्रदान करने की इच्छा का साकार केन्द्र था। कारण उसकी संपूर्ण वागडोर उन्होंने अपने विद्वान् सुयोग्य शिष्य के हाथों में सौंप दी थी। विद्यालय पर आपका आंतरिक प्रेम था तथा उससे उन्हें अनेकानेक आशाएँ थीं। सन् १९३३ में जब अंतिम बार पंडित जी लखनऊ पधारे थे, एक दिन वार्तालाप के मध्य अचानक उन्होंने डा० रातांजनकर, श्री नातू तथा मेरी ओर दृष्टिपात करते हुए कहा, 'यह विद्यालय मेरा लगाया हुआ वृक्ष है। इसे तुम लोगों के हाथों में सौंप रहा हूँ। इसका निःस्वार्थ बुद्धि से रक्षण करना।' श्री नातू तथा मेरी ओर देखकर कहना जारी रखा 'मुझे विश्वास है तुम लोग बाबू (डा० रातांजनकर) को पूर्ण सहयोग देते रहोगे तथा विद्यालय की उन्नति कर उसे मॉडेल संस्था बनाओगे।' मैरिस कालेज के सचिव राय उमानाथ बली साहब भी पंडित जी के परामर्श से ही कालेज की व्यवस्था तथा नवीन योजनाओं को कार्यान्वित करते थे। उनकी पंडित जी पर अटल श्रद्धा थी।

गु० पं० भातखण्डे जी के सान्निध्य में मैंने जो समय व्यतीत किया, उसके आधार पर उनके स्वभाव, व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है।' अब उनके विचार तथा संशोधन कार्य आदि पर अपनी बुद्धिके अनुसार कुछ लिखने का प्रयास कर रहा हूँ।

पंडित जी की गुरुमालिका उन्होंने अपनी क्रमिक पुस्तक भाग चार में प्रकाशित की है। वार्तालाप में जिन लोगों का उल्लेख अपने मुख से वे करते थे, उससे स्पष्ट हो जाता

है कि उनकी रुचि ध्रुवपद गायन शैली पर अधिक थी । आरम्भ में उन्होंने स्व०रावजी बुआ-बेलबागकर से शिक्षा प्राप्त की थी । रावजी बुवा एक उत्तम ध्रुवपद गायक थे । बाद में जयपुर, रामपुर में बहुत दिन तक निवास कर उन्होंने ध्रुवपद गायन शैली को तथा अनेक ध्रुवपदों को हस्तगत किया । विशेष रूप से जयपुर के खाँ साहब मुहम्मद अली खाँ कोठीवाल, नवाब साहब रामपुर, साहबजादा सादतअली खाँ, गिधोर वाले मुहम्मद अली खाँ, वजीर खाँ—ये सभी तानसेन के वंशज तथा ध्रुवपद शैली के परंपरानुयायी थे । पं० भातखण्डे जी के गले से ध्रुवपद शैली के आलाप श्रवण करने का मुझे अनेक बार अवसर प्राप्त हुआ है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि पंडित जी ने ख्यालशैली की शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। मैंने उनके मुख से अनेक ख्यालों को भी सुना है । ख्याल को किस ढङ्ग से गाना चाहिए, उसके शब्दों को कहाँ तोड़ना चाहिए, कहाँ पर विश्राम लेना, कहाँ आवाज कड़ा करना, कहाँ मृदु करना, गीत के कौन से शब्द शीघ्र कहना, कौन से दीर्घ गाना आदि का प्रदर्शन वे स्वयं गाकर करते थे । केवल ख्याल का संपूर्ण अस्ताई-अन्तरा ही वे इस कौशल्यपूर्ण रीति से गाते कि श्रोतागण तल्लीन हो जाते थे । ख्यालगायन में शांति से गम्भीरतापूर्ण विलम्बित लय में गाया हुआ ख्याल तथा आलाप उन्हें अधिक रुचिकर थे। ग्वालियर शैली के विलम्बित ख्याल तथा उसकी भरत उन्हें विशेष प्रिय थी । तानबाजी से उन्हें अत्यन्त घृणा थी । इस विषय में उनका अपना मत हिं० सं० प० भाग ३, पृ० ३४३ पर इस प्रकार दिया है—"इस समय तानबाजी के शैतान ने हमारे संगीत में प्रविष्ट होकर बहुत कुछ नाश किया है । यद्यपि मैं स्वीकार करता हूँ कि हमारे देशी संगीत का लक्षण 'कामाचार प्रवृतित्वम्' भी है । किन्तु इसका अर्थ हमें ऐसा कदापि नहीं करना चाहिए कि प्राचीन ग्रन्थों में बताये हुए नियम समाज की रुचि के अनुसार कुशल गायकों द्वारा परिवर्तित करते हुए जिस संगीत में नये-नये नियम सम्मिलित हुए हों वह संगीत ही देशीसंगीत है ।' तानबाजी को वे 'तानाच्या भेंडोल्या' (तानकी भड़ीमार) कहते थे ।

भातखण्डे जी की स्मरण-शक्ति अत्यन्त तीव्र थी । प्रसंगवशात् किसी ग्रन्थकार या कलावन्त के विषय में वर्णन करते समय वर्ष-तिथि सहित जो वार्तालाप हुआ होगा उसका वर्णन वे इस प्रकार से करते, जैसे वह घटना आजकल की ही हो । लखनऊ विद्यालय के पुस्तकालय की व्यवस्था मेरे पास थी । पंडित जी उस समय शास्त्रीय भाग चार लिख रहे थे । कई बार उनको किसी पुस्तक की आवश्यकता पड़ती तो मुझे आदेश देते कि पुस्तकालय से अमुक पुस्तक ला दो ।

पुस्तक हाथ में आतें ही वे इस प्रकार से प्रकरण, श्लोक ढूँढ़ लेते जैसे पुस्तक आज-कल में ही उन्होंने पढ़ी हो । एक प्रसंग पर उन्होंने किसी मासिक पत्रिका का वर्ष, मास, अंक नम्बर तथा विषय सहित उल्लेख कर उसे ढूँढ़ लाने के लिए कहा । मैंने पूछा, 'आपने उसे कब और कहाँ देखा है ? आपको नम्बर आदि कैसे ध्यान में रहा ? इधर कई दिनों से मैं यहाँ पर तो उसे नहीं लाया था ।' पंडित जी ने उत्तर दिया—'दो-तीन वर्ष पूर्व प्रवास में एक सह-यात्री के पास मैंने वह अंक देखा था । किन्तु संकोचवश उस समय मैं उनसे माँग न सका ।'

समय-समय पर बहुत से कलाकार किसी अप्रसिद्ध रागस्वरूप को सुनाकर राग का नाम तथा परिचय उनसे जानना चाहते । पंडित जी उसी रागस्वरूप के अनेक गीत स्वयं

सुनाकर उसी कलाकार से प्रश्न करते कि इन सब गीतों की आपके गीत या रागस्वरूप से साम्यता है या नहीं। उनकी इस क्रिया से कलाकार अत्यन्त प्रभावित हो जाते और उनकी योग्यता तथा श्रेष्ठता का लोहा मानते।

पंडित जी की कल्पकता, प्रतिभा तथा रागस्वरूप के अप्रतिम ज्ञान का परिचय उनकी स्वयं रचित सरगमें, लक्षणगीत, ख्याल, व ध्रुवपद आदि से भली-भाँति हो जाता है। अनेक प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध रागों में उनके स्वरचित लक्षणगीत तथा चीजों का ही आज रसिकों में विशेष प्रचार है।

वर्तमान समय में संगीत के कुछ ग्रन्थकार ऐसे दृष्टिगोचर हो रहे हैं जो अन्य ग्रंथकारों से कुछ अपनी बातें उसमें सम्मिलित कर किसी न किसी प्रकार से बनते हुए प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए अत्यन्त लालायित रहते हैं। पंडित जी का उदाहरण इससे कितना भिन्न है। उन्होंने चतुर पंडित, विष्णु शर्मा आदि उपनामों से ग्रंथ प्रसिद्ध किये। सभी क्रमिक पुस्तकें अपने मित्र श्री द० के० जोशी के नाम से प्रकाशित कराईं। क्या वे यह नहीं जानते थे कि उनका नाम बहुत दिन तक अज्ञात नहीं रह सकेगा। किन्तु उनका उद्देश्य महान् था। उनकी इच्छा थी कि लक्ष्य संगीत तथा हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति पुस्तक रूप में प्रसिद्ध हो जाने पर इन ग्रंथों के विषय में लोकमत क्या है? समाज में उनकी कहाँ तक इज्जत हो रही है? शास्त्र की नींव पर समझाया हुआ वर्तमान संगीत सुशिक्षितों में कितनी प्रेरणा निर्माण कर रहा है? अपने प्रयास विद्वानों को यदि त्रुटिपूर्ण प्रतीत हुए तो निर्भीकता से वे उनका खंडन कर सकें। ऐसे खंडन-मंडन से ही सारे विवाद, भ्रम, रूढ़िवाद सदा के लिए मिट जाने पर संगीत के लिए उचित वातावरण बनेगा ऐसा उनका मत था। किन्तु उनके विचार इतने निर्दोष एवं शास्त्र शुद्ध थे कि उनके जीवित रहने तक तो कोई भी उनके सामने टिक नहीं सका। सोने को पीतल कह देने की धृष्टता आज भी यदि कोई करेगा तो जौहरी उसकी परीक्षा अवश्य कर लेंगे। ऐसे जौहरियों का निर्माण करना ही उनका एकमात्र ध्येय था।

उन्होंने संगीत कला का पुनरुत्थान समाज के कल्याण के लिए किया। निरपेक्ष सेवाभाव से ही जीवन भर भारत की प्राचीन कला, जो लुप्त हो रही थी, उसे पुनः प्रकाश में लाकर समाज की वस्तु समाज को अर्पण कर दी। ग्रंथ प्रकाशित करने में जितना धन व्यय होता था, उसके अनुसार ही लागत मूल्य ही पुस्तक का निर्धारित करते थे। अपने स्वयं के लिये ग्रंथों द्वारा अल्प-सा लाभ भी कभी स्वीकार नहीं किया। मृत्यु के पूर्व उन्होंने अपनी कुल निजी संपत्ति अपने स्वबांधवों को अर्पण की थी। संगीत विषय के स्वलिखित समस्त ग्रंथों के प्रकाशन तथा उनके पुनर्मुद्रण की व्यवस्था के लिए एक ट्रस्ट की योजना बनाई थी। उसी को ग्रंथों के प्रकाशन तथा उनके आय-व्यय की व्यवस्था सौंप दी थी। पंडित जी ने अपनी अन्तिम इच्छा में यह स्पष्ट किया था कि यह जनता की निधि है। इससे जो लाभ होगा उसे संगीत के उत्थापन में व्यय किया जाये। उस समिति में भालचन्द्र सीताराम सुकथनकर, रातांजनकर, वाड़ीलाल शिवराम तथा अन्य सज्जन थे। किन्तु दुःख से लिखना पड़ता है, उन प्रकाशनों के अधिकार के विषय में इतना विवाद खड़ा हो गया कि जनता की निधि जनता के हाथों में न रह सकी। इतने बड़े महान् कार्य की परिणति इस प्रकार हो जाना इस देश का, हमारा, आपका, इस संगीत का ही दुर्भाग्य है।

पंडितजी की अदालत में ध्रुवपद का मुकदमा

आचार्य गोविंद नारायण नातू, लखनऊ

हमारे जीवन में अनेक प्रकार की घटनाएँ होती रहती हैं, जिनका प्रभाव हमारे मन पर भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। उनमें अधिकतर तो ऐसी होती हैं, जिन्हें हम कालांतर में भूल जाते हैं। किन्तु कोई-कोई घटना हमारे मन पर अपना इतना प्रभाव छोड़ जाती है कि वह कभी भी धुँधला नहीं होता वरन् सदा-सर्वदा ताजा ही बना रहता है, मानो घटना कल ही घटित हुई हो। मेरी स्मृति में ऐसी ही कुछ घटनाएँ हैं, जिनके शाब्दिक चित्र मैं पाठकों के सम्मुख रख रहा हूँ।

सन् १९१९ की बात है। माधव संगीत महाविद्यालय स्थापित हुए लगभग डेढ़ वर्ष व्यतीत हुआ था। इसी वर्ष मैंने विद्यालय में प्रवेश किया। छमाही निरीक्षण के लिए पूजनीय श्री विष्णु नारायण भातखंडे जी आने वाले थे। तब तक मुझे पंडित जी के दर्शन नहीं हुए थे। मेरी उत्सुकता स्वाभाविक थी। साथ ही साथ संगीत-परीक्षा का पहला अवसर होने के कारण कुछ भय और घबराहट भी थी। एक दिन सूचना मिली कि भातखंडे जी कल आवेंगे और परसों से परीक्षा होगी। पंडित जी के दर्शन के लिए नियत समय से एक घंटा पूर्व ही उस दिन पाठशाला में पहुँच गया। डेढ़ घंटे राह देखने के पश्चात् लगभग ५॥ बजे पंडितजी पधारे। शिक्षक तथा विद्यार्थी स्वागत के लिए एकत्रित हुए थे। मैंने प्रथम बार पंडित जी का दर्शन किया। ६-६। फुट की ऊँचाई, गौर वर्ण, उन्नत तथा चौड़ा माथा, कीर नासिका, स्मित बदन, तेजस्वी नेत्र, पारसी लंबा डगला, पगड़ी व दुपट्टा, श्वेत पतलून, बूट, हाथ में घड़ी—इस प्रकार की वेष भूषा से सुसज्जित एक मूर्ति गंभीर चाल से आकर खड़ी थी। देखते ही मन आनन्दित होकर श्रद्धा से भर गया। मेरे निजी अनुभव से यह थी पंडित जी के प्रभावशाली व्यक्तित्व के प्रथम दर्शन की अमिट छाप।

सन् १९२० ! आज वार्षिक परीक्षा है। विद्यार्थीगण अपनी-अपनी पुस्तकें लेकर पाठों को उलट-फेर कर दुहरा रहे हैं। पंडित जी आ गए हैं। अब कुछ ही समय में परीक्षा आरंभ होगी। प्रथम वर्ष से आरम्भ किया जाएगा। मैं भी तो प्रथम कक्षा का विद्यार्थी हूँ। सूची में मेरा दूसरा नाम है। समझ नहीं पाता कि किस प्रकार के प्रश्न पूछे जाएँगे। पहले विद्यार्थी की परीक्षा आरम्भ हुई। उससे क्या-क्या प्रश्न किये जा रहे हैं, यह जानने के लिए परीक्षा-कक्ष के दरवाजे पर जाना चाहता था। आगे बढ़ा, किन्तु दरवाजे के पास हमारे शिक्षक डटे थे। एक हल्की डाँट खाकर उलटे पैर लौटना पड़ा। थोड़ी देर पश्चात्

मेरा नाम पुकारा गया। धड़कते हुए हृदय से परीक्षा-कक्ष में गया। संमुख पंडितजी, प्रधानाचार्य तथा एक और सज्जन विराजमान थे। पडित जी ने प्रश्न पूछने आरंभ किये। स्वरज्ञान के विषय में उल्टे-पुल्टे कठिन प्रश्न थे। परीक्षा-प्रणाली ठीक ऐसी ही थी मानो किसी बैंक का खजांची सिक्के को उलट पलट कर और ठोंक बजाकर परखता हो। परीक्षा समाप्त हुई और मैं डबडबाई हुई आँखों से कमरे के बाहर आया। अब बात समझ में आती है कि पंडित जी कितने मार्मिक और कुशल परीक्षक थे।

सन् १९२२! मैंने विद्यालय की तृतीय कक्षा में प्रवेश किया है। प्रत्येक वर्ष की भाँति पंडित जी निरीक्षण के लिए आये हुए हैं। आज सायंकाल विद्यालय में संगीत कार्यक्रम आयोजित किया गया है। मुझे भी कार्यक्रम में भाग लेना है। सभा में पंडित जी के सम्मुख गाने का मेरा पहिला अवसर है। मन में घबराहट तो थी, किन्तु उतनी नहीं जितनी कि प्रथम परीक्षा के समय हुई थी। पिछले दो वर्षों में मैं पंडितजी के स्वभाव से बहुत कुछ परिचित हो गया था। इसी कारण भय कम था। फिर भी मन में शंका तो थी ही कि पता नहीं कैसे गा सकूँगा। मेरे गाने के पूर्व अन्य विद्यार्थियों की दो-तीन जोड़ियों का गायन हो चुका था। अब मेरी बारी आई। मेरे साथ मेरा एक सहपाठी भी था। हम दोनों ने केदार राग तथा खमाज की 'श्याम सुन्दर बनमाली' ठुमरी गाई। संयोग से कार्यक्रम सफल रहा। समाप्त होने पर देखा कि पंडित जी तथा शिक्षक वर्ग के मुखों पर हर्ष और समाधान की झलक है। पंडित जी ने मुझे पास बुलाया और मेरी पीठ थपथपाते हुए अत्यन्त प्रेमभरे शब्दों में कहा 'बाल! तूं चाँगला गायला। मन लावून असाच अभ्यास करीत रहा।' उनके इन्हीं शब्दों के आशीर्वाद और प्रोत्साहन स्वरूप मैंने अपनी शिक्षा पूर्ण की ओर प्रर्याप्त ध्यान देकर विद्यार्थी-दशा में उस समय के छात्रवृत्ति पानेवालों में सबसे अधिक छात्रवृत्ति पाई। पंडित जी के उन प्रेमभरे शब्दों की गूँज आज भी समय-समय पर मेरे कानों को सुनाई देती है।

सन् १९२४! हम लोग विद्यालय की अन्तिम कक्षा में हैं। पिछले वर्ष पंडित जी ने हम लोगों को ध्रुवपद-गायन की अधिक शिक्षा देने के लिए उस समय के प्रधानाचार्य तथा मेरे वर्गशिक्षक स्व० गुरुवर्य राजाभैयाजी से विशेष आग्रह पूर्वक कहा था। परिणामस्वरूप सप्ताह में दो दिन हमें ध्रुवपद की विशेष शिक्षा देने का प्रबंध किया गया। हमारे ध्रुवपद शिक्षक ने हमें दो-तीन गीतों में भिन्न-भिन्न लय-प्रकार सिखलाए। हम लोगों ने भी आरम्भ में सब बातें पूर्णतया समझकर कंठस्थ कीं। शिक्षक को भी संतोष था। वैसे तो हमें पाठ्यक्रम के अनुसार सीखे हुए प्रत्येक राग का ध्रुवपद उसकी साधारण लयकारी दुगुन-चौगुन इत्यादि सहित याद था। किन्तु ध्रुवपद-शिक्षक हमसे अपने सिखलाए हुए २५-३० लय-प्रकार प्रत्येक ध्रुवपद में कराना चाहते थे। दूसरी ओर हम विद्यार्थियों की रुझान ख्याल तथा ठुमरी की ओर ही विशेष रूप से हो गयी थी। इसी कारण हम लोगों को लयकारी के हिसाब-किताब का पचड़ा २।, ३।।, ४।।। मात्राओं में याद रखना एक झंझट प्रतीत हुआ तो कोई आश्चर्य नहीं। अर्थात् शिक्षक का आग्रह मानने के लिए हम में से कोई एक भी विद्यार्थी राजी न था। हाँ,

यह बात अवश्य थी कि हमलोग ध्रुवपद गायन-प्रणाली के लयकारी के तत्वों को भली-भाँति समझ गए थे। इस बात से तो हमारे शिक्षक भी सहमत थे। क्योंकि उदाहरण रूप में हम लोगों ने एक गीत में शिक्षक की आज्ञानुसार कुछ प्रकार गणित दृष्टि से करके दिखा दिये थे। परन्तु शिक्षक वस्तुस्थिति से परिचित होते हुए भी अपनी बात पर ही अड़े रहे। हमारा भी बचपन होने के नाते हम लोग भी ज़िद पकड़ गए। बात प्रधानाचार्य तक पहुँची। वर्गशिक्षक के नाते उन्होंने भी शिक्षक का पक्ष लेकर हमें बहुत समझाया, डाँट-डपट की, किन्तु हम टस से मस न हुए। अंत में यह मुकदमा पंडित जी की अदालत में पेश होना निश्चित हुआ। पेशी का दिन भी आ गया। प्रधानाचार्य जी ने पंडित जी को हम लोगों की ध्रुवपद शिक्षा का कच्चा चिट्ठा सुनाया, किन्तु पंडित जी उस समय मौन रहे। दूसरे दिन मैं और मेरा एक सहपाठी पंडितजी के निवासस्थान पर पहुँच गये। दूसरा कोई उस समय वहाँ न था। मैंने अवसर देखकर ध्रुवपद के मुकदमे का विद्यार्थी-पक्ष उनके सम्मुख रखा। उस समय भी पंडित जी सुन लेने के पश्चात् मौन रहे। हम लोगों से और दूसरी बातें करने लगे। थोड़ी देर बाद हम चले आए। दूसरे दिन हमारी कक्षा में आकर हम लोगों को सीखे हुए ध्रुवपदों में से एक ध्रुवपद सुनाने के लिए आज्ञा दी। हमारे गाना सुना देने के पश्चात् हम लोगों को घर जाने के लिए कहा। कक्षा के बाहर आकर हम लोग दरवाजे की आड़ में खड़े थे। हमारा अनुमान कि अब पंडित जी अपना निर्णय देंगे, बिलकुल ठीक था। वे प्रधानाचार्य जी से कह रहे थे, 'भैया! (राजाभैयाजी) मुलांचें म्हणणें सयुक्तिक आहे. त्यांना रीत समजली आहे. त्यांचें बाहेर पड़ायचे थोड़ेच दिवस उरले आहेत। अश्यां स्थितीत मला वाटतें, आपण अधिक आग्रह धरूं न थे।' कितने सतुलित, निष्पक्ष तथा न्याय्य विचार थे उनके। मेरे मन में पंडित जी के प्रति आदर और श्रद्धा की मात्रा द्विगुणित हो गई।

सन् १९२६! पिताजी का देहांत हो जाने के कारण मेरे सिर पर घर का आर्थिक बोझ सम्हालने की विकट समस्या है। कहीं काम-काज की तलाश में था। मेरी संगीत की विद्यालयीन शिक्षा समाप्त हो चुकी थी। गु० राजाभैयाजी के घर पर अधिक शिक्षा और अभ्यास के लिए जाता था। मेरी नाजुक परिस्थिति उन्हें ज्ञात थी। उन्होंने मेरी यह परिस्थिति पंडितजी को अवगत कराई। पत्र व्यवहार से राजाभैयाजी और पंडितजी में विचार-विनिमय हुआ और मुझे पंडित जी लखनऊ ले आए। लखनऊ में १९२४ और '२५ में दो अखिल भारतीय संगीत परिषदें हो चुकी थीं। नगर में एक संगीत विद्यालय स्थापित करने का निश्चय हो चुका था। १९२६ के सितम्बर मास में विद्यालय स्थापित हुआ और मैं विद्यार्थीदशा से निकलकर संगीत शिक्षक बन गया। इसी उद्देश्य से पंडित जी मुझे कुछ समय पूर्व ही लखनऊ लाए थे। संस्था के आरम्भिक काल में कुछ वर्ष पंडित जी स्वयं लखनऊ रहकर कार्य का निरीक्षण करते रहे। लखनऊ आकर ही मुझे पंडित जी के निकट सहवास का लाभ मिला। सस्था की प्रारम्भिक दशा और विद्यार्थी गिने चुने ही थे। उस दृष्टि से काम बहुत ही थोड़ा था। बाकी समय पंडित जी के ज्ञानभंडार की बातों का लाभ और आनंद मिलता था। संस्था के प्रथम प्रधानाचार्य श्री रातांजनकर जी, मैं, दो-तीन अन्य सज्जन और पंडित जी एक ही स्थान में रहते थे। वार्तालाप में मुख्य विषय

संगीत ही होता, किन्तु पंडित जी की वार्तालाप अथवा प्रतिपादन शैली इतनी रोचक और मनोरंजक थी कि हम लोग मंत्रमुग्ध से सुनते न अघाते। वार्तालाप के बीच-बीच में वे ऐसे-ऐसे चुटकले सुनाते कि हम लोग हँसते ही रहते और समय किधर व्यतीत हो गया, यह पता ही न चलता। वह समय मेरे जीवन में अत्यन्त मूल्यवान् और अत्यधिक आनंद का था।

शिक्षा कार्य की दृष्टि से मुझे कुछ भी अनुभव न था। शिक्षकों में मैं ही सबसे छोटी उम्र का था। मुझे वर्ग में सिखलाने के लिए जाते हुए कुछ भय और संकोच लगता, क्योंकि मेरे सामने वाले सब विद्यार्थी मुझसे कहीं अधिक बड़े होने के कारण मेरे चाचा, मामा अथवा ताऊ के समान जँचने वाले थे। पंडित जी किसी दिन रातांजनकर जी के वर्ग में तो किसी दिन मेरे वर्ग में बैठ कर हम लोगों का कार्य देखते। वर्ग समाप्त होने पर मेरी त्रुटियों को बड़े प्रेम से समझाते। इतना ही नहीं, किसी-किसी दिन मुझे चुप बैठने के लिए कहकर स्वयं वर्ग सिखलाते। उनका यह कार्य मेरे लिए मूल्यवान् पाठ था। उनकी सिखलाने की रीति अत्यन्त सुगम और मनोरंजक थी। विद्यार्थी अल्पसमय में बातें समझकर अपेक्षित परिणाम भी तुरन्त दिखलाते। अनुभव के पश्चात मेरी समझ में आया कि पंडित जी असाधारण और मंजे हुए शिक्षक भी थे।

मुझे थोड़े प्रमाण में ही सही, किन्तु उनके भिन्न-भिन्न रूप के दर्शन हुए। मैंने उनका वक्तृत्व सुना, चर्चा सुनी, कुछ कलाकारों के गंभीर विषय पर वाद-विवाद भी दो-चार बार सुने, शिक्षा देने की पद्धति देखी, सोदाहरण वार्ताएँ भी सुनी थीं। प्रत्येक भूमिका से उनकी कुशाग्रबुद्धि और कुशलता का परिचय मिलता था। लेखक, रचयिता और शास्त्रकार के नाते संगीत जगत् में उनका परिचय किसे नहीं है ? कुछ लोग यह कहते हुए भी पाए जाते हैं कि पंडित जी तो केवल शास्त्रकार ही थे, परन्तु क्रियात्मक दृष्टि से गायक नहीं थे। ऐसे व्यक्तियों से व्यर्थ का क्या वाद किया जाय ? हाँ, उनकी यह बात सुनकर कुछ हँसी अवश्य आती है। किन्तु उन्हें दोष भी क्या दें, जबकि वे पंडित जी के कुछ भी संपर्क में न आए हों। उन्हें कोई बात समझाना अपना समय नष्ट करने के सिवाय कुछ भी नहीं है। ऐसे समय चुप रहना ही मेरी अल्प बुद्धि में ठीक है।

पंडित जी के संबंध में मेरे अनुभवों की यह स्मृति रेखाएं आज भी उतनी ही स्पष्ट हैं, जितनी पहले पहल चित्रित हुई थीं। ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, वे धँधली पड़ना तो दूर; अपितु अधिक गहरी होती जाती हैं।

स्नेह के अथाह सागर पं० भातखण्डे

प्रो० विष्णु शामराव अत्रे, ग्वालियर

सन् १९२५ में जून की बात है। उस समय पंडितजी एस० एन० डी० टी० युनिवर्सिटी, बम्बई की ओर से संगीत परीक्षक की हैसियत से अहमदाबाद कालेज की परीक्षा के लिए प्रतिवर्ष आते थे। पं० श्रीकृष्ण रातांजनकर जो इस कालेज में संगीत अध्यापक का कार्य करते थे, कारणवशात् यह कालेज छोड़कर बड़ौदा चले गये। परिणामतः इस कालेज में संगीत अध्यापक की जगह खाली हुई।

अहमदाबाद कालेज के प्रिन्सिपल, जो पंडित जी के परम मित्र थे, उन्होंने पंडित जी से विनती की कि कालेज के लिए कोई योग्य संगीत अध्यापक की व्यवस्था कर दें। इस सिलसिले में पंडित जी ने श्री राजाभैया पूछवाले को पत्र लिखकर पुछवाया कि, ग्वालियर के अंतिम परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियों में से अहमदाबाद जाने के लिए कोई तैयार हो तो उसका नाम और पता उनको जल्द भेज दो। राजाभैया ने मुझे बुलाकर भातखण्डे जी के पत्र का ज़िक्र किया और पूछा कि 'तू अहमदाबाद जाने को तैयार हो तो तेरा नाम और पता मैं पंडित जी को भेज दूँ।'

एक-दो दिन विचार करके अहमदाबाद जाने का अपना निश्चय राजाभैया को मैंने बता दिया। दस-बारह दिन के बाद ही अहमदाबाद कालेज के प्रिन्सिपल का नियुक्ति-पत्र मुझे मिला। पत्र के अनुसार मैं अहमदाबाद रवाना हुआ और दिनांक १०-८-१९२५ से कालेज में वर्ग सिखाना आरम्भ कर दिया। हमारे प्रिन्सिपल अच्छे विद्वान् और सज्जन गृहस्थ थे। उनको भातखण्डे जी ने पत्र लिखा कि—'विष्णु शामराव अत्रे ग्वालियर से अहमदाबाद आपके कालेज में आया है। उसकी उम्र अभी छोटी है। आप उसकी देखभाल अपने कुटुम्बी-जन की तरह करें।' उस पत्र का ज़िक्र करके प्रिन्सिपल साहब ने मुझे सान्त्वना देते हुए कहा 'किसी बात की फ़िक्र मत करना।' सचमुच वे अच्छी देखभाल रखते थे। ऐसी कि मुझे वहाँ पराये देश में कभी अकेलेपन का अनुभव नहीं हुआ। इसी कालेज में सफलता पूर्वक पैंतीस साल तक मैंने सर्विस की और जुलाई १९६१ में वहाँ से निवृत्त होकर ग्वालियर वापिस आया। सम्प्रति मैं ग्वालियर में ही सुखी निवृत्त जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। यह सब भातखण्डे जी के ही आशीर्वाद का फल है।

सन् १९२६-२७ की बात है। मेरे अहमदाबाद जाने के बाद भातखण्डे जी परीक्षक के नाते वहाँ दो वर्ष आये। विद्यार्थियों को सुनकर संतोष व्यक्त करते हुए मुझे प्रोत्साहित करते थे। साथ-साथ यह भी सूचना देते थे कि 'अत्रे, तुम अभी जवान हो,

खूब रियाज़ करो।. ग्वालियर के पासशुदा तुम विद्यार्थी लोग अभी गवैये नहीं हो, अगर सोच समझ कर और उच्चकोटि के गायकों को सुनकर अच्छा रियाज़ करोगे तो भविष्य में गवैये भी अवश्य बनोगे। ऐसा हो जाने पर एक बात ध्यान में रखो कि, तुम निरे गवैये ही नहीं हो, परन्तु संगीत के सुशिक्षित शिक्षक भी हो। तुमने सिर्फ गाना ही नहीं सीखा है बल्कि गाने के साथ संगीत का शास्त्र भी सीखा है।'

सन् १९१८ में जून की बात है। माधव संगीत विद्यालय की स्थापना की योजना निश्चित हुई। भरती के लिए एलान कर दिया गया कि आवाज की परीक्षा स्वयं पं० भातखण्डे जी करेंगे। बारह साल से लेकर पचीस-तीस साल की उम्र के लगभग दो-ढाई सौ लड़के इकट्ठे हुए। आवाज की परीक्षा के लिए पंडित जी ने अपने पास मुँह से बजाने की पाँच छः स्वरों की एक पाइप (छोटी सीटी) रखी थी। स्वयं अपने ही मुँह से सीटी में से अलग-अलग तीन-चार स्वर बजाकर विद्यार्थियों को उन स्वरों में आवाज मिलाने को कहा जाता था। यह परीक्षा लगभग तीन-चार घंटे तक चली और लगभग डेढ़-दो सौ लड़के आवाज की परीक्षा में पास होकर भरती किए गए। विद्यार्थियों को चार-पाँच कक्षाओं में बाँटा गया और सन् १९१८ में कपूकोठी ग्वालियर के एक भवन में हमारा विद्यालय चालू हुआ।

हमारी वार्षिक परीक्षा प्रथम वर्ष से लेकर अंतिम पंचम वर्ष तक स्वयं पंडित जी ने ही ली थी। प्रथम-वर्ष की परीक्षा में पास-शुदा समस्त विद्यार्थियों को आपने अपनी ओर से दो-दो रुपये पुरस्कार स्वरूप बाँटे थे।

सन् १९२१ की बात है। हम लोग चतुर्थ वर्ष में थे। पंडित जी निरीक्षण के लिए स्कूल में पधारे और सब विद्यार्थियों को इकट्ठा बुलवाया और कहा कि 'बच्चो, आज मैं तुमको श्रुति-स्वर का विषय समझाता हूँ।' श्रुतिस्वर के बारे में कुछ प्रश्न भी पूछे। श्रुति की व्याख्या, श्रुति कितनी हैं, श्रुति का विभाजन किस तरह हुआ है इत्यादि सभी प्रश्नों के जवाब हमने सही-सही दिये। हमारे जवाब सुनकर पंडितजी खुश होते हुए बोले कि 'अब मैं एक सप्तक में बाईस श्रुतियाँ गले से निकालकर सुनाता हूँ।' पंडित जी ने अपना एक स्वर षड्ज कायम किया और धीरे-धीरे रिषभ, गांधार, मध्यम की श्रुतियाँ गले से लगाते हुए प, ध, नि, की श्रुतियाँ बनाकर आखिरी स्वर तार-षड्ज लगा दिया। इस तरह बाईस स्वर सुनकर हम लोग तो आश्चर्यचकित हो गये। उस समय हम लोग तो विद्यार्थी ही थे। हमारे लिए इस तरह से बाईस स्वरों का निकालना तो एक असम्भव क्रिया थी।

पंडितजी को कान से कुछ कम सुनाई देता था। इसलिए गाना सुनने या किसी से बातचीत के वक्त कान में एक पाइप लगाते थे। पंडित जी की आवाज अच्छी लम्बी, पल्लेदार, पूरे तीन सप्तक की थी। मंद्र-सप्तक का षड्ज साफ-साफ लगाने के साथ अतितार षड्ज भी आसानी से लगाते थे। विद्यालय में हम विद्यार्थियों को बिलंबित ख्याल के अस्ताई, अंतरे, रागों की गायकी, ध्रुवपद-धमार की गायकी प्रायः सुनाते थे। अपने हाथ से ही ताल देकर धमार की गायकी दुगुन-तिगुन-आड़ आदि लय के विभिन्न प्रकार सुनाने में विशेष दिलचस्पी रखते थे।

हमारी पंचम वर्ष (फाइनल) की बारह विद्यार्थियों की बैच सन् १९२३ में उत्तीर्ण हुई। प्रमाण-पत्र-वितरण का सभारंभ ग्वालियर के टाऊन हाल में स्व० महाराजा माधवराव सिंधिया के हाथों से हुआ। इस अवसर पर महाराजा साहब ने विद्यार्थियों का ख्याल-ध्रुवपद का गायन सुनकर संतोष व्यक्त किया और पं० भातखण्डे जी को उनके कार्य के लिए धन्यवाद दिया, उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

मैं स्वयं फाइनल की प्रथम बैच का विद्यार्थी हूँ। हम पासशुदा विद्यार्थियों को विशेष रूप से उत्साहित करने के लिये तथा भविष्य में संगीत-शास्त्र व इतिहास का हम लोग विशेष अध्ययन करते रहें, इस उद्देश्य से पंडितजी ने स्वयं अपनी तरफ से प्रत्येक विद्यार्थी को हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के प्रथम तीनों भाग, लक्ष्यसंगीत, अभिनवरागमंजरी, तालमंजरी, सगीत-रत्नाकर, संगीत पारिजात, स्वरमेलकला निधि जैसे महत्वपूर्ण आठ-दस ग्रंथ, जिनकी कीमत उस ज़माने में पचीस-तीस रुपये थी; पारितोषिक रूप में दिये। पंडितजी के विशाल अंतःकरण का और हम विद्यार्थियों के प्रति प्रेमभावना का इससे अच्छा उदाहरण और क्या हो सकता है ?

स्व० पंडित भातखण्डे जी संगीत क्षेत्र में एक महान् तपस्वी थे, उच्चकोटि के विद्वान् और विशाल तथा उदार अंतःकरण के व्यक्ति थे।

नाद ब्रह्म में विलीन ऐसे स्व० पंडितजी की चिर-शांत आत्मा को, इस स्मृति-ग्रंथ द्वारा मैं यह शब्दरूप श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

खानदानी परम्परा के वास्तविक संरक्षक

प्रो० बा० ना० मुण्डी, ग्वालियर

ग्वालियर के माधव संगीत विद्यालय का मैं सन् १९२७ से १९३२-३३ तक विद्यार्थी रहा हूँ। उस समय पण्डित भातखण्डे जी ही सारी कक्षाओं की परीक्षा लिया करते थे। परीक्षाएँ दिवाली के समय में स्थानीय टाऊन हाल के ऊपरी कक्ष में हुआ करती थीं। हम लोग आयु में काफी छोटे होने से (मैं केवल पंद्रह वर्ष का था) केवल परीक्षा समय में ही पंडितजी के सम्पर्क में आते थे। किन्तु फिर भी उनके स्मरणमात्र से उनका व्यक्तित्व, उनका पांडित्य, उनके द्वारा संगीत के विकास के लिए किए हुए अथक् एवं अनवरत परिश्रम, उनकी अपने स्वीकृत कार्य के प्रति दृढ़ आस्था एवं लगन, उनका सरल सीधा-साधा मिलनसार स्वभाव, भाषण की आकर्षकता तथा प्रभावोत्पादकता, रहन-सहन, वेषभूषा, खान-पान की सादगी आदि जो बातें सुनने में आतीं अथवा दिखाई देतीं; वे आज भी साकार होकर सामने आ जाती हैं। उन अनेक में से कम से कम दो बातें तो ऐसी हैं कि आज भी उनका महत्व कम नहीं है। अतः उन्हें संस्मरण के रूप में समझा जाए अथवा कि उनके विचारों की उपदेशों की इच्छा-आकांक्षाओं की पुनराभिव्यक्ति कहा जाए। कुल परंपरागत संगीत

विषय में रुचि, संस्कृत की थोड़ी बहुत जानकारी के कारण संगीत शास्त्र के अध्ययन में रुचि एवं गति और कुछ प्रत्यक्ष अध्ययन इत्यादि कारणों से पं० भातखण्डे जी द्वारा उस समय कही हुई बातें अभी भी मन में पैठी हैं।

परीक्षा संभवतः दूसरी कक्षा की चल रही थी। विद्यार्थी यमन राग का विलंबित ख्याल, 'पलकन से झारूँ' गा रहा था कि उसने प्रारम्भ किया ही था, और पहला आवर्तन वह पुनः दोहरा रहा था। सम पर आते-आते उसने गीत के जो टुकड़े किए तथा शब्दों को तोड़ कर प्रत्येक अक्षर पर जिस ढंग से जोर दिया और सम ली, उस समय पं० भातखण्डे जी के मुख पर की भावभंगिमा उनकी आंतरिक पीड़ा का भेद व्यक्त कर देने के लिए पर्याप्त थी। सम पर आते ही विद्यार्थी 'भाँ' अक्षर पर जैसे धम्म से गिरा हो, वहाँ रुका, जैसा कि ख्याल में है। उसका दिया हुआ स्वराघात निश्चित ही खटकने वाला था। उस समय तो भातखण्डे जी कुछ बोले नहीं, उनका मौन ही उनकी प्रवृत्ति का, आंतरिक विचारों का परिचायक था। किन्तु इसी प्रकार की पुनरावृत्ति जब चौथी कक्षा के विद्यार्थी ने पूरिया का विलंबित ख्याल 'ए जियरा न रहे' तथा द्रुत ख्याल 'सपने में आए' गाते समय की, तब उनसे न रहा गया। परीक्षा के मध्य में ही भातखण्डे जी ने स्वर, भाव, शब्द, अर्थ, काव्य, रस आदि की विशेषताएँ; उनके पारस्परिक संबंध, रागमाधुर्य, राग प्रकृति, गायन के हेतु रस निष्पत्ति आदि का संक्षेप में स्पष्टीकरण किया। यह करते समय वे किंचित्मात्र भी भावावेशित नहीं थे, न ही किसी प्रकार नाराज़ थे। अत्यन्त प्रेम से समझाते हुए उन्होंने अपने विचार प्रकट किये। वह जितना महत्त्वपूर्ण उतना ही स्मरणीय था। शब्दों द्वारा अभिव्यक्त अंतरतम भावनाओं के यथार्थ को स्वरों में पकड़कर व्यक्त करते समय उनको विकृत होने से बचाना, उनके द्वारा मूल भावनाओं को और अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त कराना, यथोचित रस निष्पत्ति कराना, यही सच्चे गायक का वास्तविक कार्य है। कोमल भावनाओं के साथ तो वैसा ही व्यवहार किया जाना चाहिए, जैसा कि किसी कोमलतम पुष्प के साथ। अपनी आँखों की पलकों से अपने प्रियतम के आने के मार्ग को झाड़ने-बुहारने की कोमलता तथा हृदय को सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रेमभावों से उद्वेलित-आंदोलित करनेवाली शब्दावली को उतनी ही कोमल स्वरावलि से व्यक्त करना इष्ट एवं आवश्यक है। कठोर, रसहानिकारक स्वराघातों के द्वारा नहीं। सपने में अपने प्रियकर के आगमन से जिस प्रेयसी के 'सुख चैन की कल बिधर गई थी' वह अपने अंतस्तल की चाह को, पीड़ा को जब व्यक्त करती है तो कहती है :—

"हूँ जो चाहूँ, सदारंग, गहबे को,
पकर न सकी, कल उघर गई।।"

कैसी तीव्र पीड़ा है हृदय की। जैसे अमृत-कलश ओठों तक पहुँचा ही हो, कि कोई उसे उँड़ेल दे। ऐसी भावना को व्यक्त करने की शब्दावली, उसी के अनुकूल राग, राग की प्रकृति तथा गायन का संध्या समय जो विरह, शान्ति तथा मन की उदासी को व्यक्त करने की उचित वेला है—इन सब के समन्वय से यदि अभीप्सित रसनिष्पत्ति न हो सकी तो गायन का क्या स्वारस्य ? गायक यदि यह निर्माण नकर सका 'तो गायन का मूल उद्देश्य ही

विफल हो जाता है। उक्त परीक्षार्थी के कारण भातखण्डे जी के वे स्वर एवं शब्द, संगीत और काव्य के सम्बन्ध के मौलिक तथा पुरोगामी विचार सुनने को मिले। तात्पर्य, पंडित भातखण्डे जी ने भारतवर्ष में दूर-दूर घूमकर, परंपरागत उस्तादों के घरानों की बँधी चीजों को बड़े ही परिश्रम से तथा बड़ी कठिनाइयों के बाद प्राप्त किया। उन चीजों की मूल भावनाएँ एवं प्रकृति को किंचित् भी न बिगाड़ते हुए साथ ही देश-काल-परिस्थिति के अनुसार उनको उन्होंने स्वर-लिपि बद्ध किया। यही उनका महान् कार्य है। यह करते समय उन्होंने स्वर अथवा शब्द के प्रति अन्याय अथवा पक्षपात नहीं होने दिया। गीत गाते समय शब्द, अर्थ, भाव को पीछे ढकेलते हुए रस-हानि करना वे कभी पसंद नहीं करते थे। और न ही शब्दों के काव्य गुणों के कारण स्वर को भी पीछे रखना चाहते थे। दोनों का उचित समन्वय ही आवश्यक रसनिर्मिति कर सकता है—यही उनकी मान्यता थी। परीक्षा के समय भी उन्होंने इस प्रवृत्ति को प्रत्यक्ष कर दिखाया। ये ही दो चीजें गाकर उन्होंने अपने विचार, अपनी बात प्रत्यक्ष में साकार सिद्ध कर दिखाई। वर्तमान में भी इस स्वर-काव्य-भाव का, संगीत, काव्य तथा चित्र का समन्वय कितना आवश्यक है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। भातखण्डे जी की यह इच्छा कहाँ तक पूरी हो सकी है—यह विचारणीय है।

दूसरी स्मरणीय बात थी संगीत के स्तरीकरण संबंधी (स्टैण्डर्डाइजेशन आफ इण्डियन म्यूजिक)। भारतीय संगीत का स्तरीकरण कर, उसके लिए कुछ मानदण्ड स्थिर करना वे उचित एवं आवश्यक मानते थे। भारतीय संगीत की परंपरा में कई घराने और कई उस्ताद हुए हैं। शैली की विभिन्नता एवं विचित्रता परिलक्षित होती है। किन्तु परंपरा की अति-आत्मीय भावनाओं के कारण जो विकृतियाँ घर किए हुए हैं, उसके कारण भारतीय संगीत को स्थिर पद एवं उचित तथा निश्चित मानदण्ड प्राप्त नहीं हो सका है। अपनी-अपनी विशेषताएँ कायम रखते हुए भी उचित समन्वय से किसी स्तर को निर्धारित करना परमावश्यक प्रतीत होता है। भारतीय संगीत के वर्तमान अनिश्चित तथा गिरते हुए स्तर को लक्ष्य करने से तो पंडित भातखण्डे जी की इस संबंध की विचार-धारा का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। भविष्य में आनेवाली स्थिति को ध्यान में रखकर पहले से ही उसको आवश्यक एवं उचित मोड़ देने के लिए वे कैसे सजग तथा प्रयत्नशील थे; इस बात का परिचय परीक्षा के उस साधारण से प्रसंग में भी मिलता है।

श्रद्धेय स्वर्गीय पंडित राजाभैया पूछवाले जी की विशेष अनुकम्पा एवं कृपा से पं० भातखण्डेजी के साथ जो क्षणिक सहवास परीक्षा तथा उसके अतिरिक्त हुआ, वह जैसे कल ही हुआ हो, इतना ताज़ा, चित्रवत् अभी भी मन में है। ऐसे कितने ही संस्मरण हैं। किन्तु उन परमश्रद्धेय दिवंगत संगीत की महान् आत्मा की इस १००वीं वर्षग्रंथि के अवसर पर अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए प्रस्तुत संक्षिप्त संस्मरण समाप्त करना ही उचित है।

गुरु-शिष्य का अलौकिक प्रेम

श्री एम० के० सामन्त, वाराणसी

आज से लगभग ३५ वर्ष पूर्व मुझे श्री भातखण्डे जी से न केवल मिलने तथा सहवास का, अपितु उन्हें अत्यन्त निकट से समझने का जो परम सौभाग्य प्राप्त हुआ, उसे मैं एक दैवी संयोग ही कहूँगा।

लखनऊ के मैरिस कालेज की वार्षिक परीक्षाएँ समाप्त होने के पश्चात्, जो उस समय दीपावली के आसपास ही हो जाती थीं, भातखण्डे जी ने इकबाल नारायण गुर्टू, एम० एल० ए० को पत्र लिखकर वाराणसी में पन्द्रह दिन व्यतीत करने की इच्छा प्रगट की। श्री गुर्टू जी ने हमारे एक संगीत प्रेमी मित्र एम० जी० कानिटकर को तथा मुझको यह समाचार दिया और अनुरोध किया कि हम दोनों ही भातखण्डे जी तथा उनके परम प्रिय शिष्य रातांजनकर के रहने की व्यवस्था अपने यहाँ ही करें। मैं उस समय वाराणसी स्थित 'बेसेन्ट थियोसौफिकल नेशनल स्कूल फार बॉयज' के छात्रावास का प्रबंधक था। अतः मैंने वहीं पर उन दोनों के रहने के लिये व्यवस्था कर दी। निर्धारित समय व दिन पर वे दोनों पहुँचे। आने के बाद स्वास्थ्य संबंधी प्रश्न तथा कुछ जलपान आदि करने के उपरान्त उन्होंने संगीत विषयक चर्चा प्रारम्भ कर दी। विद्यालयों में संगीत की शिक्षा का स्तर क्या होना चाहिये, विद्यार्थियों को उचित तालीम किस प्रकार से दी जानी चाहिये, रागों का वर्गीकरण कक्षाओं में विद्यार्थियों के सामान्य गायन स्तर के अनुसार कैसा होना चाहिये इत्यादि विषयों पर गहन चर्चा होने लगी। उन्हें देखकर व उनकी बातों को सुनकर ऐसा ही प्रतीत होता कि संगीत ही मानो उनका जीवन है, और जो यथार्थ भी था। संगीत जैसी पावन कला के हेतु उन्होंने अपना जीवन बिता दिया। इतने प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए तथा संगीत में हमसे कहीं अधिक जानकारी रखते हुए भी, हम लोगों से बातें करते समय वे हमारे मत को या हमारे दृष्टिकोण को इस प्रकार सुनते थे जैसे वह उनके लिये सर्वथा नवीन हो। ऐसी ही थी उनकी सरलता व स्वभाव की मधुरता।

सौभाग्यवश चूँकि इतने महान् कलाकार-द्वय हमारे यहाँ आये थे, तो उन्हें सुनने की उत्कट इच्छा हमारे मन में होना स्वाभाविक ही थी। परन्तु हम लोगों ने यही निश्चय कर लिया था कि हम स्वयं उनसे गाने के लिये नहीं कहेंगे। जब भी उनकी तबियत लगेगी वे स्वेच्छा से गायेंगे। दूसरी ओर रातांजनकर जी यह सोच कर मौन थे कि जब हम लोग कहेंगे तभी वे गायेंगे। फलस्वरूप दोनों ओर से शान्ति थी। तीन-चार दिन इसी प्रकार बीत गये। फिर एक दिन भातखण्डे जी से न रहा गया और उन्होंने रातांजनकर जी से कहा—'बाबू, कई दिनों से तुम्हारा गाना नहीं सुना। क्या बात है? तुम शायद ये सोचकर चुप हो

कि सामन्त साहब जब कहेंगे तब गायेंगे और सामन्त साहब यह सोचते होंगे कि जब तुम्हारी तबियत लगेगी तब सुनेंगे। अब तुम लोग ही आपस में निश्चय कर लो।' इसका फल यह हुआ कि रातांजनकर जी ने तुरन्त तानपुरा निकाला और गायन प्रारम्भ किया। वे स्वर तो आज तक हृदय में हैं, उस अनुपम संगीत से प्राप्त वह आनन्द अवर्णनीय था। रातांजनकर जी के उस संगीत को सुनकर उसी समय हमारे इस भ्रम का निवारण हुआ कि भातखण्डे जी न केवल पण्डित थे वरन् महान् गायक भी थे, अन्यथा ऐसा शिष्य तैयार करना असंभव था। इस घटना के कुछ ही दिवस बाद स्वयं भातखण्डे जी ने हमें दरबारी के आलाप सुनाये, जिसमें उन्होंने तीनों सप्तकों का प्रयोग इतनी कलात्मकता व सुन्दरता से किया कि वर्णन करना कठिन है।

भातखण्डे जी की विशाल सहृदयता, उनकी सरलता का उदाहरण एक छोटी सी घटना से देता हूँ। हमारे एक दाक्षिणात्य मित्र हैं जो उस समय लगभग प्रतिदिन मेरे यहाँ आया करते थे। यद्यपि उनका शास्त्रीय ज्ञान अधिक नहीं था, तथापि कण्ठ बड़ा मधुर था, और वे अक्सर मेरे कमरे में कुछ न कुछ गाया-गुनगुनाया करते थे। भातखण्डे जी जब इन्हें सुनते थे तो बरबस उनके मुख से निकल पड़ता था—'अरे बाबू, देखो, ये कितना मीठा गा रहे हैं, कितने अच्छे सुर लग रहे हैं इनके' इत्यादि।

एक दिन तो भातखण्डे जी से न रहा गया और उन्होंने रातांजनकर जी से कहा, 'बाबू, इनको भैरवी की अमुक चीज सिखा दो, खमाज का अमुक टप्पा सिखा दो। इनके गले से बहुत अच्छा लगेगा।' रातांजनकर जी ने भी बड़े प्रेम से वे चीजें मेरे चित्रकार मित्र को सिखा दीं। भातखण्डे जी ने कितने बड़े-बड़े गायकों को, महारथियों को सुना और सुनाया था। फिर भी वही शिशु-सुलभ सरलता। वस्तुतः किसी अच्छी चीज को हृदय से सराहने का गुण उनमें वर्तमान था। मेरे मित्र के इस थोड़े से मधुर गाने पर वे इतना रीझ गये थे और इसी अवसर पर हमें उन गुरु-शिष्यों का प्रेम तथा मधुरता का सम्बन्ध जो देखने को मिला, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

एक दिन हम लोग यों ही बैठे-बैठे गाने पर चर्चा कर रहे थे। बातों ही बातों में मेरे मित्र कानिटकर जी ने ज़िक्र किया—आजकल अच्छे शिक्षकों के न मिलने से बच्चों को अच्छी तालीम देना मुश्किल हो गया है। चीजों की बन्दिश बच्चों के गले में ठीक से बैठाई नहीं जाती, इत्यादि। यह सुनते ही भातखण्डे जी ने रातांजनकर जी के मुख से क्रमिक पुस्तक माला के प्रथम भाग की सरगमों सहित यमन से तोड़ी तक की समस्त चीजें हम लोगों को अच्छी तरह सुनवाईं। गानों के साथ-साथ उन-उन रागों के बारे में, उनके चलन के बारे में, वादी-सम्वादी स्वरों के प्रयोग के बारे में भी समझाते गये। इन दस रागों के अतिरिक्त और भी कई राग उन्होंने हमें सुनवाये, जिनके स्वर अभी भी कानों में गूँज रहे हैं। उन्हें मैं भूल न सका हूँ।

श्री भातखण्डे जी के सहवास से, उन्हें निकट से देखने से मैं यही समझ पाया हूँ कि वे वस्तुतः एक महान् पुरुष एवं कलाकार थे। संगीत संसार के लिये तो मानों एक युगपुरुष थे। जीवन उनका संगीतमय था और पवित्र एवं उच्चतम कला की साधना में उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पित कर दिया।

'पास हुए हो, परन्तु प्रमोशन नहीं'

आचार्य बाला साहब पूछवाले, ग्वालियर

पं० भातखण्डे का स्मरण होते ही साथ-साथ इसका भी सदैव स्मरण हो आता है, कि मेरा वास्तविक नाम पाण्डुरंग है और 'पाण्डु' इस नाम से मुझे पुकार कर मेरा लाड़-दुलार करने वाले केवल वे ही एकमात्र व्यक्ति थे। उनका प्रथम दर्शन मुझे कब हुआ, ठीक-ठीक ध्यान में नहीं आता। परन्तु आयु के आठवें वर्ष से कुछ-कुछ घटनाएँ याद आती हैं। संगीत विद्यालय में मेरी नियमित शिक्षा प्रारम्भ हो चुकी थी। सम्भवतः नवम्बर १९२० का समय था। परीक्षा संचालन हेतु पंडित जी ग्वालियर पधारे थे। हाँ, ठीक तो है! २९ अक्तूबर शनिवार का वह शुभ दिवस था। विद्यालय की ओर सीढ़ियाँ चढ़ते हुए मैं उन्हें देख रहा था। और उन्होंने भी अपनी हृदयस्पर्शी दृष्टि से मेरी ओर देखा। इसी क्षण से उनके व्यक्तित्व का मुझ पर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि उसके बाद की घटनाएँ सारी की सारी मुझे आज तक याद हैं।

परीक्षाएँ प्रारम्भ करने के पूर्व कुछ दिन तक सभी कक्षाओं में जाकर प्रत्येक विद्यार्थी का गायन वे सुन लेते थे। विद्यार्थियों से बातें करते हुए उनके मन से परीक्षा और परीक्षा संबंधी सारा भय दूर करा देते। आवश्यकता पड़ने पर बीच-बीच में समझाते जाते और स्वयं भी गाकर सुनाते रहते। वास्तव में ऐसे ही निरीक्षणों में प्रत्येक विद्यार्थी की तैयारी का वे अंदाज लगा लेते और यहीं पर परीक्षा का निर्णय भी लगभग हो जाता था। बाद में परीक्षा केवल एक रस्म मात्र रह जाती थी। प्रातः यह काम होता और सायं नौताला गेस्ट हाउस में शिक्षक-मित्रों से वार्तालाप, संगीत संबंधी चर्चा होती। पिता जी के आते ही गीतों की स्वरलिपि बनाने का काम शुरू हो जाता। स्व० पिता जी के साथ हठ करके मैं भी कभी-कभी वहाँ जाता था। बड़े लोगों की बातें सुनने-समझने की अपेक्षा एक दूसरा ही उद्देश्य वहाँ जाने में मेरा रहता था। राजाभैया के साथ मुझे देखते ही राव साहब कहते—"अरे पाण्डू, उस आलमारी में तुम्हारे लिए मिठाई रखी है। उसे ले लेना और खेलते रहना। हम लोग अब अपना काम करेंगे।" सुबह अथवा दोपहर में चाय के साथ जो नाश्ता उनके लिए महल से आता था, उसे मेरे लिए स्मरण पूर्वक वे सम्हाल कर रख देते और पिताजी को अक्सर कहते, "पाण्डू को साथ में ले आइए।"

विद्यालय में मेरी शिक्षा प्रारम्भ होने पर मुझे देखते ही "पाण्डू, वह चीज सुनाओ! यह चीज कैसी अच्छी है न?" इत्यादि, प्रायः कहते रहते।

एक बार मध्यमा परीक्षा में मैं सम्मिलित हुआ। कक्षा में अभ्यास के समय भी मैं अधिकतर खेल-कूद में व्यस्त रहता। इधर घर में मुझे सिखाने के लिए पिताजी को भी

समय नहीं मिलता। चीजें तो मुझे याद थीं, परन्तु ढंग से गायकी पेश करने लायक एक ही राग तैयार हुआ था। सौभाग्य से पंडितजी ने भी वही राग मुझे पूछ लिया। जन्म से ही गवैया का लड़का होने से वह राग मैंने ठीक-ठीक गा दिया और पंडित जी ने मुझे पास भी कर दिया, परन्तु मेरी कमजोरी को भी उन्होंने भाँप लिया था। राजाभैया से कह दिया, 'पाण्डु तो पास हुआ है।' राजाभैया बड़े आश्चर्य में पड़ गये और कहने लगे, "राव साहब, यह आप क्या कह रहे हैं? उसकी तो पास होने लायक तैयारी नहीं है। उसे कुछ भी तो नहीं आता। आपने उसे पास कैसे किया?" रावसाहब ने उत्तर दिया, "भैया, पांडू ने तो अच्छा ही गाया।" राजाभैया ने अपना कहना जारी रखते हुए कहा, "ठीक है, अच्छा गा दिया हो, तो क्या हुआ? उसे सिर्फ एक ही राग हमेशा गाते हुए मैंने घर में सुना था। आपने उसे वही पूछ लिया, जो उसे अच्छा आता था। मेरे मत से तो उसे पास नहीं करना चाहिए!" राजाभैया के उत्तर से रावसाहब बहुत खुश हुए और मुझे उसी कक्षा में पुनः अभ्यास करते रहने का निर्णय लिख दिया और दूसरे दिन बड़े प्रेम से मुझसे कहा, "पाण्डू, इस वर्ष तुम इसी कक्षा में सीखो। खूब मेहनत करना। गवैये के बेटे हो, गवैय्या ही बनो!" इसके कुछ ही दिनों बाद रावसाहब का स्वास्थ्य खराब हुआ और फिर वे ग्वालियर न आ सके।

जून १९३४ में पिताजी के साथ मैं बम्बई गया। रावसाहब का दर्शन करने हम दोनों गये। तब वे बिस्तरे पर लेटे हुए थे। हम दोनों के उनके चरण-स्पर्श करते ही उन्होंने पूछा, "कौन है?" पिताजी ने उत्तर दिया, "मैं हूँ भैया! साथ में पाण्डू भी आया है।" 'भैया' और 'पाण्डू' इतना सुनते ही वे बड़े आनन्दित हुए। मुझे अपने पास बिस्तरे पर बैठा दिया और बोले, "पाण्डू, झटपट गाना सुनाओ!" गायन शेष हो जाने पर मेरे पीठ पर हाथ रखा और बोले, "भैया, आप में जिस बात की कमी है, वह ईश्वर ने पाण्डू को दी है। मुझे पूर्ण विश्वास है, वह आपका नाम उज्जवल करेगा!" यह सुन कर मैं कृतार्थ हुआ! उनका वह आशीर्वाद और वह मिठाई ये दो ही बातें मेरे अपने जीवन की सबसे बड़ी यादगार है। और मुझे 'पाण्डू' कहकर पुकारने का वह अधिकार तो केवल उनका ही था। यदि किसी ने इस नाम से पुकार भी लिया तो वह प्रेम, आत्मीयता उसमें कैसे आ सकती है?

कुशल एवं परिपक्व गायक

आचार्य रामचन्द्र माधव
अग्निहोत्री, ग्वालियर

सन् १९१८, पौष मास का सुहावना मौसम था। ग्वालियर के पुराने राजमहल कम्पू कोठी के द्वार पर सांयकाल के ४ बजे के लगभग दो अश्वों वाली एक सरकारी विक्टोरिया आकर रुकी। दूसरे ही क्षण में एक भव्य लम्बे कदवाला व्यक्ति विक्टोरिया से उतरा। उस व्यक्ति का शरीर अत्यन्त सुगठित एवं सुडौल और भाल-प्रदेश भव्य दिखाई दे रहा था। वर्ण गौर था एवं आँखें अत्यन्त तेजस्वी थीं ऐसा प्रतीत होता था मानों जिसके तरफ

देखें, उसके अन्तरंग का भेद ले रही हों। बदन में लम्बा पर्शियन कोट, गले में शुभ्र मफ़लर लपेटा हुआ, कंधे पर सफेद दुपट्टा एवं सिर पर महाराष्ट्र की सुपरिचित पूनाशाही पगड़ी पहिने हुए थे। कोट की जेब से पाकिट-घड़ी की चाँदी की चेन लटक रही थी तथा हाथ में एक सुन्दर बेंत था। ये ही थे पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे, जिनका उस अविस्मरणीय दिन मैंने प्रथम बार दर्शन किया था।

प्रसंग माधव संगीत स्कूल की स्थापना का था। प्रवेशार्थियों की जाँच करके उन्हें स्कूल में प्रवेश देकर स्कूल का कार्य शुरू करना था। इसी कार्य से पंडित जी उस दिन वहाँ पधारे थे। प्रवेश पाने के इच्छुक छात्रों में स्वयं मैं भी था। पंडित भातखण्डे जी ने छात्रों की जाँच इस प्रकार से की। उनके पास एक सप्तस्वरी सीटी थी। उसे बजाकर उसकी आवाज में आवाज मिलाने के लिये वे कहते थे। जो छात्र उससे आवाज मिला लेते थे, उनकी अन्य बौद्धिक जाँच करने के उपरान्त उन्हें प्रवेश दिया गया। इस प्रकार पहला समूह लेकर स्कूल का कार्य स्वयं उन्होंने प्रारम्भ किया।

गुरुवर्य भातखण्डे जी की शिक्षा-प्रणाली अत्यंत प्रभावी थी। उन्हें अपनी कार्य-पद्धति एवं उसकी सफलता का पूर्ण विश्वास था। लगभग तीन माह तक नये छात्रों को स्वरज्ञान कराकर इस अल्प अवधि के बाद ही उन्होंने ग्वालियर के मेले में श्रीमन्त सरकार माधवराव महाराज सिंधिया के सम्मुख स्वरलिपि की उपयुक्तता का प्रदर्शन करके दिखाया। खमाज राग का लक्षणगीत 'गुनि गावत राग खमाज सदा, हरिकांमुजि थाट बनाय सदा' तथा यमन राग में 'हे मन गाय प्रभु को भाई' और 'भज मन करुणा-निधान' आदि कुछ गीत नोटेशन सहित बोर्ड पर लिखे थे। उन्हें समस्त छात्रों ने देखकर एक साथ गाया।

किन्तु इस पर महाराज द्वारा अविश्वास प्रगट किया गया कि उपर्युक्त गीत छात्रों को शायद पहले ही सिखलाये गये होंगे। अन्यथा क्या केवल नोटेशन देखकर इतने छात्र एक साथ एक ही ढंग से गा सकते हैं ? महाराज की इस शंका का निवारण भातखण्डे जी ने बड़े ही सरल ढंग से किया। नोटेशन सहित लिखी हुई अपनी किताबें उन्होंने महाराज के सामने रख कर प्रार्थना की कि इनमें से महाराज जो भी गीत सुनना चाहें, उसकी आज्ञा प्रदान करें। मेरे छात्र उसे तत्काल सुना सकेंगे।

श्रीमन्त महाराज ने एक गीत चुन कर उसे गाने को कहा। उस गीत को पंडित जी ने स्वयं अपने हाथ से बोर्ड पर सुवाच्य अक्षरों में लिखा। छात्रों ने उस गीत को भी उसी तरह गाकर सुनाया। इस सफल प्रदर्शन को देखकर महाराज बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने भातखण्डे जी की इस बात को मान लिया कि संगीत संस्थाओं के लिये नोटेशन पद्धति की नितान्त आवश्यकता है। इस प्रकार भातखण्डे जी ने नोटेशन का महत्व प्रस्थापित किया।

पंडित भातखण्डे वर्ष में दो बार माधव संगीत विद्यालय ग्वालियर में परीक्षा लेने के लिये पधारते थे। परीक्षा लेने की उनकी एक विशिष्ट प्रणाली थी। प्रत्यक्ष परीक्षा प्रारम्भ होने के पूर्व वे समस्त कक्षाओं में घूमकर छात्रों के कामकाज का निरीक्षण करते थे तथा प्रत्येक छात्र की पूर्ण जानकारी शिक्षकों से प्राप्त कर लेते थे। पश्चात् व्यावहारिक परीक्षा टाउन हाल में, नगर के कुछ सम्माननीय आमंत्रित लोगों की उपस्थिति में ली जाती थी। तात्पर्य यह है कि छात्रों की परोक्ष एवं अपरोक्ष दोनों ही पद्धति से जाँचकर वे अपना

निर्णय देते थे। परीक्षा समाप्त होने पर तत्सम्बन्धी एक विस्तृत रिपोर्ट लिख कर उसमें शिक्षकों के अच्छे कार्य की प्रशंसा और त्रुटियों का उल्लेख तथा होनहार छात्रों के लिये मार्गदर्शन भी रहता था।

परीक्षा कार्य के अतिरिक्त इन्हीं दिनों में संगीत सम्बन्धी शास्त्रीय चर्चा, नई-नई चीजों को गाकर सुनाना, उन्हें सिखाना, शिक्षण-कार्य सम्बन्धी शिक्षकों को मार्गदर्शन प्रदान करना, आगामी वर्ष का शिक्षण-कार्य छात्रों एवं शिक्षकों को सौंपना, ग्वालियर के प्रसिद्ध गायक-वादकों से मिलना, उनका गायन-वादन सुनना और उनसे कुछ गीत प्राप्त कर संग्रह करना तथा उन्हें माधव संगीत स्कूल में लाना आदि कार्य भी उनके द्वारा बराबर चलते रहते थे।

एक बार ग्वालियर के प्रसिद्ध गायनाचार्य श्रीबालागुरुजी के घर भातखण्डे जी गये और उनसे संगीत विषय पर कुछ चर्चा की। तत्पश्चात् उन्हें माधव संगीत स्कूल में आग्रह-पूर्वक लाकर स्कूल के कुछ छात्रों का जोड़ी से गायन सुनवाया। उसे सुनकर बालागुरुजी प्रसन्न होकर बोले—'भातखण्डे, मैं नहीं जानता था कि तेरा कार्य इस प्रकार से निर्दोष होगा। अरे, जब एक वर्ष में ही ये बालक इतना उत्तम गा रहे हैं, तब तो इस स्कूल से अवश्य ही गायक निर्माण होंगे।'

पंडित भातखण्डे जी के आगमन पर ग्वालियर में जो गायन-वादन के जलसे होते थे, उनका एक मात्र उद्देश्य छात्रों को प्रोत्साहित करना, उन्हें सभाढीठ बनाना—यही था। इन्हीं जलसों में से एक जलसा मेरे घर पर भी प्रतिवर्ष होता था। जिसमें स्कूल के अच्छे विद्यार्थी जोड़ियों से गाते थे। इस अवसर पर नगर के सम्माननीय श्रोतागण उपस्थित होकर हम बालकों को प्रोत्साहित करते और संगीत-श्रवण का लाभ उठाते थे।

पंडित भातखण्डे जी केवल संगीत के प्रचारक ही नहीं, अपितु एक उत्तम शिक्षक एवं गायक भी थे। एक समय की बात है कि प्रवेश कक्षा में अलंकारों को छात्र सामूहिक रूप से गा रहे थे। उनमें से जो छात्र बेसुरे थे, पंडित जी ने उन्हें तत्काल भाँप लिया और अच्छे छात्रों को बन्द करके केवल ऐसे ही छात्रों को गवाया जो सचमुच ही बेसुरे थे। कुछ ही क्षणों के परिचय के बाद केवल बेसुरों को ही भाँप लेना पंडित जी की असामान्य बुद्धिमत्ता एवं सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचायक है।

एक बार माधव संगीत स्कूल में शास्त्र-सम्बन्धी चर्चा करते हुए उन्होंने खंडमेरु की तानें नष्टोद्दिष्ट प्रकार से निकालने की पद्धति को तथा तालमेरु जैसे कठिन विषयों को इतनी आसानी से सिखलाया कि वह प्रसङ्ग मैं भूल नहीं सकता। शास्त्रकार होने के साथ-साथ वे कुशल गायक भी थे। इसी भवन में उन्होंने यमन राग का 'ए गणराज महाराज', मेघ मल्हार राग का ध्रुवपद 'आयो अब बरखा ऋत' तथा सादरा 'प्रबल दल साज' और भीमपलासी राग का 'गरवा हरवा डारूँगी मा' आदि गीत अपने भारदस्त, परिपक्व कंठ से सुनाये और सिखाये। उनके गाने का सुननेवाले पर अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ता था। सिखाते समय वे राग की समस्त शास्त्रीय जानकारी गीत के पूर्व में ही बतलाकर समप्रकृतिक रागों की छटाएँ तथा उनकी बारीकियाँ इतनी अच्छी प्रकार बताते कि छात्र रागरूपों से

भलीभाँति परिचित हो जाते थे। एक बार केवल 'सा-म' इस स्वर संगति को लेकर ही वह स्वर-संगति जिन-जिन रागों में आती है, उन रागों को उपर्युक्त स्वर-संगति के गुप्त-बंधन से होने वाली बारीकियों का जैसे कि स्वर उच्चारण, कणों का प्रयोग आदि का स्पष्ट प्रदर्शन कर भिन्न-भिन्न रागों में एक ही स्वर संगति कैसी बताई जाती हैं; यह असंख्य उदाहरणों द्वारा उन्होंने बताया था। इस प्रकार गायन-वादन में प्रयुक्त होने वाली अनेक सूक्ष्म बातों को समय-समय पर वे बताते थे।

एक सप्तक में क्रमशः बाईस ध्वनियों को पृथक्-पृथक् रूप से स्वयं गाकर उनमें से किस राग में स्वर का कौन-सा रूप लगता है, यह भेद भी बताते थे। जैसे दरबारी, बहार, मियाँ मल्हार, अड़ाणा आदि रागों में कोमल गांधार स्वर किस प्रकार भिन्न-भिन्न रूप से लगता है, यह स्पष्ट रूप से सुनाते थे।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि भातखण्डे जी ने सङ्गीत के उद्धार के लिये प्रचारक एवं प्रवर्तक के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इससे सिद्ध होता है कि वे सङ्गीत के लिये ही उत्पन्न हुए, सङ्गीत के लिये ही जीवित रहे और अन्त में सङ्गीत के लिये ही उन्होंने अपने प्राण विसर्जित किये। वे एक युगपुरुष थे। उनका नाम सङ्गीत जगत् में ध्रुवतारे की भाँति सदैव अटल एवं चमकता रहेगा।

बम्बई के भातखण्डे और उनके बण्डे का मैं बण्डा

आचार्य बालाभाऊ उमड़ेकर, ग्वालियर

महापुरुषों के साथ छल, कपट, उपहास कहाँ और किस युग में नहीं हुआ ? शुरू-शुरू में गुरुवर पं० भातखण्डे ग्वालियर में पधारे। संगीत विषयक उनकी चर्चाएँ श्रीमंत बड़े सरकार के साथ चलती रहतीं। उनकी उदात्त योजनाओं का परिणाम बड़े सरकार पर हो चुका था तथा रियासत की संगीत परम्परा के पुनरुद्धार का कार्य उन्होंने पं० भातखण्डे को सौंप दिया था। भातखण्डे साहब की हर सूचना का बड़े सरकार बहुत समादर करते। लेकिन ऐसा हो जाना पेशेवर गायक-वादकों को अच्छा नहीं लगा। जनमत कलुषित करने के इरादे से उन्होंने कई प्रकार की अफवाएँ फैलाना शुरू किया। यहाँ तक कि विद्यालय में जाने-वाले मुझ जैसे अबोध बालकों को परावृत्त, निरुत्साही किया गया। सड़कों पर नारे लगाये जाने लगे। उपहास की कुछ बातें मेरे भी कान तक पहुँच गईं। 'बम्बई से आये भातखण्डे, उन्होंने दिये सात अंडे, एक पूछवाले और बाकी सब बण्डे।' 'खण्डे-अण्डे, वाले, बण्डे' की तुकबन्दी ने प्रथम तो मेरी भी बाल्यसुलभ प्रवृत्ति को प्रभावित किया। यार-दोस्तों में जहाँ भी गपशप होती, उपरोक्त पंक्तियाँ बड़े उत्साह से हम लोग कहते रहते। परन्तु चंद महिनों में ही उनके व्यक्तित्व का एक ऐसा परिणामकारी असर हुआ कि भातखण्डे के बण्डों का

प्रभाव दिखाकर विरोधियों के दाँत खट्टे कराने की इच्छा जागृत हुई। हम सब लोग अपने अभ्यास में डूब गये।

वर्ष-डेढ़-वर्ष की तालीम के बाद भातखण्डे साहब के प्रयोगों ने रूप धारण किया। सन् १९२० में एक दिन भातखण्डे साहब ने नगर के कतिपय गणमान्य गायक-वादक अधिकारियों को विद्यालय का कामकाज दिखाने के लिये आमंत्रित किया। श्री बालासाहब गुरुजी, पन्ना गुरुजी, राव साहब मसूरकर, भिड़े साहब, एक नाथपंत देव तथा मंगेशराव पागनीस विशेषतः उपस्थित हुए थे। अपनी तालीम का प्रात्यक्षित दिखाने के लिये मुझे तथा श्री सदाशिवराज अग्निहोत्री को आज्ञा हुई। "हे मन गाय प्रभु को भाई' तथा 'एतनों जीवन पर मान न करिये' क्रमशः यमन और भूपाली की चीजें हम दोनों ने ऐसी गाईं कि स्वयं बाला गुरुजी कहने लगे : 'भातखण्डे, मुझे कल्पना नहीं थी कि ये लड़के इतना अच्छा गाते होंगे। जो बात हम लोग दस वर्षों में नहीं कर पाते, वही बात तुमने दो वर्षों में करके दिखायी। अब मैं सदैव के लिये तुम्हारा यशचिंतक हो गया हूँ। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करें' इत्यादि।

एक बार रियासत के एक संगीतकार ने शिवपुरी में श्रीमंत बड़े सरकार से अनुरोध किया कि 'मेरी कुछ व्यवस्था करा दीजिए।' बड़े सरकार ने उत्तर दिया, 'भातखण्डे साहब का प्रशस्तिपत्र ले आइये।' सौभाग्यवश मैं भी वहीं पर उपस्थित था। बाद में उन संगीतकार को स्वयं राजाभैया अपने साथ नौताला गेस्ट हाऊस पर ले गये और भातखण्डे साहब से उनके विषय में निवेदन किया। भातखण्डे साहब ने जवाब देते हुए कहा, 'आप स्वयं इतने ख्यातिप्राप्त हैं कि मेरे प्रशस्तिपत्र की क्या आवश्यकता ? तथापि उससे ही आपका यदि कुछ लाभ होता हो तो मेरी केवल एक शर्त है कि मेरे इन बच्चों को निष्कपट भाव से पनश्री विद्या सिखाने का मुझे आश्वासन दीजिए।'

बात सन् १९२५-२६ की है। श्रीमंत बड़े सरकार कैलासवासी हो चुके थे। नौताला गेस्ट हाऊस में बड़ी महारानी श्रीमती चिवक्कू राजा साहब से पंडित भातखण्डे जी वार्तालाप कर रहे थे। बड़े महाराज के स्वर्गवासी हो जाने पर विद्यालय का क्या होगा, ऐसी भातखण्डे साहब को चिंता थी। मैं भी वहाँ एक तरफ मौजूद था। श्रीमती बड़ी रानी साहिबा ने भातखण्डे साहब को धैर्य देते हुए कहा—'महाराज के चले जाने से संगीत विद्यालय लावारिस हो गया है, ऐसा आप कदापि न समझें। आपको जिस चीज़ की आवश्यकता हो, पूर्ववत् मुझसे कहते जाइये। किसी बात की कमी न होगी। यह विद्यालय यथार्थ में आपका ही है। उसकी ओर मेरा सदैव ध्यान रहेगा। विद्यालय का लालन पालन आपको ही करना है।'

गणेशचतुर्थी १९३६ में गुरुवर भातखण्डे साहब का देहावसान हुआ। गणेश उत्सव के उपलक्ष में महल में इस समय अखंड भजन सप्ताह चल रहा था। निधन समाचार महल में पहुँचते ही उदासी छा गयी। हम में से किसी का भी मन ठिकाने पर नहीं था। पहरा शेष हो जाने पर छोटी महारानी श्रीमती गजरा राजा साहिबा ने श्री विष्णु बुवा को बुलाया। साथ में मैं भी था। मेरे समक्ष श्रीमती गजरा राजा साहिबा ने कहा—'विष्णु बुवा,

भातखण्डे साहब नहीं रहे। संगीत विद्यालय में उनका अच्छा-सा चित्र अथवा प्रतिमा स्थापित कीजिये। यह विद्यालय उन्हीं का है। उसकी देखभाल खूब अच्छी तरह से कीजिये।'

मामा साहब के बाजार में श्री बेमड़ के अखाड़े के हनुमान जयंति के पर्वपर गायन-वादन का सप्ताह था। हम सारे विद्यार्थी तथा नगर के अन्य कलाकार वहाँ प्रतिवर्ष उपस्थित रहते थे। मेरा गायन हो चुका था। पंडित भातखण्डे साहब अत्यंत प्रसन्न हुए। बाद में ग्वालियार के अन्य सुविख्यात गायक-वादकों का प्रदर्शन हुआ। बात ही बात में एक सज्जन से उनकी बहुत बहस होने लगी। ईर्ष्यालु सज्जन ने पण्डित जी को बहुत-सा बुरा-भला कहा। अंततः संयम का बाँध टूट जाने पर भातखण्डे साहब ने शांति चित्त से केवल इतना ही कहा, 'महाशय, यही मेरे बच्चे एक दिन आपके आसनों पर अधिष्ठित हो जावेंगे।' प्रखर तपस्या का प्रभाव समझिये अथवा शारदा सरस्वती की निरपेक्ष सेवा का परिणाम कहिये, पण्डित जी के वे बोल अक्षरशः फलद्रुप हुए। सन् १९३४ में ग्वालियर दरबार में गायक के पदपर मेरी नियुक्ति हुई। आनंदविभोर होकर श्री राजाभैया ने पण्डित जी को तार द्वारा सूचित किया। उत्तर में पंडित जी ने पुनः तार द्वारा मेरा हार्दिक अभिनन्दन किया। हम सबों पर उन्हें अत्यंत अभिमान था।

वैसे तो असंख्य बातें आज भी ज्यों की त्यों याद आती हैं। परन्तु बाल्यकाल से ही राजपरिवार में आने-जाने का मुझे सौभाग्य प्राप्त रहा है। अतः वहाँ उनका कितना सम्मान होता था, इसी विषय पर कुछ संस्मरण सेवा में सादर प्रस्तुत किये हैं।

सुगीशस्त्वं रमारा च गोपगा मधुमा तथा।
प्राणाऽपि ध्येयसाध्यं च विष्णु नारायणं भजे॥

—'सुनर'

हम गायकों का भाग्य खुल गया

श्रीमती अंजनीबाई मालपेकर, बम्बई

देहली में आयोजित एक शाही जल्से में संगीत नाटक अकादमी द्वारा प्रदत्त फेलोशिप राष्ट्रपति के कर-कमलों से प्राप्त करने के लिए मंच की ओर मैं जा रही थी। चारों ओर गंभीर्य पावित्र्य छाया हुआ था। एक-एक कदम आगे बढ़ाते हुए मैं मन में सोचने लगी, गायक-वादकों का इतना बड़ा सम्मान किसके परिश्रमों का फल है? मुझे वे दिन याद आये जब तपे-तपाये गायक-वादक आर्थिक कठिनाइयों के कारण बम्बई की सड़कों पर भूख से तड़प रहे थे। विचारों की यह उथल-पुथल राव साहब भातखण्डे के पुण्य स्मरण पर जा कर स्थिर हो गई।

इस अवसर पर मुझे आशीर्वाद देने के लिये रावसाहब भले ही जीवित न हों, परन्तु संगीत के इस नव जागरण का श्रेय केवल उन्हीं को दिया जाना चाहिए। उनसे उत्साह पाकर बड़ी-बड़ी महफिलों में मैंने यश प्राप्त किया। मैं सोच रही थी, यह मेरा व्यक्तिगत सम्मान नहीं है। जिन्होंने मुझे संगीत में दृष्टि प्रदान की, उन रावसाहब का ही मेरे माध्यम से सम्मान हो रहा है। खाँ साहब नज़ीर खाँ की मैं लाड़ली शिष्या हूँ। नज़ीर खाँ ने मुझे गायन की शिक्षा दी तो रावसाहब ने समझ-बूझकर गाने की कला मुझे सिखाई।

आज मेरी आयु ८४ वर्ष की है और ८ वर्ष के बाल्यकाल से सारी घटनाएँ याद हैं। नजीर खाँ साहब मुरादाबाद के निवासी थे। रामपुर दरबार की प्रसिद्धि सुनकर अपना भाग्य आजमाने के लिए वे वहाँ पर गये। परन्तु नवाब साहब को गंडा बाँधे बिना दरबार में प्रवेश पाना असम्भव जान कर ठीक चौथे दिन ही वहाँ से भागकर बम्बई आ गये। उस समय बम्बई में एक-एक राग पर ५०० रुपये का इनाम रखा जाता और वह सारे इनामात नजीरखाँ ने प्राप्त किये। इन्हीं जल्सों में भातखण्डे साहब से उनका परिचय हुआ जो क्रमशः मित्रता-बन्धुत्व-शिष्यत्व में परिणत हुआ। गायनोत्तेजक मंडली में वे प्रतिदिन तालीम देते थे व घर पर सात आठ घण्टे दिन-रात मुझे तालीम देते थे। हिन्दुस्तानी राग रचना के सौन्दर्य का आभास नजीरखाँ को भातखण्डे साहब ने दिया, जिसे प्रत्यक्ष तालीम के समय वे मुझको सिखाते थे। केवल श्री राग के ऋषभ की असंख्य छटाएँ छः मास तक मुझे सिखाई थीं। भातखण्डे साहब से पाया हुआ राग रचना का अलौकिक संदेश—अनुभव नजीरखाँ साहब मुझ तक पहुँचा देते। नजीरखाँ मेरे गुरु अवश्य हैं, परन्तु भातखण्डे साहब को मैं उतने ही सम्मान से देखती हूँ। वे भी मेरे गुरु हैं।

नजीरखाँ भातखण्डे साहब को आदर से 'रावसाहब' कहते तो भातखण्डे साहब नजीर खाँ को 'दादा' कहते थे। और मुझे ये दोनों महापुरुष 'चेवड़ा' अथवा 'चिड़िया' पुकारते थे। रावसाहब द्वारा नजीर खाँ को दी हुई शास्त्रीय सिद्धान्तों की तालीम मैंने वर्षों तक सुनी है। परन्तु कभी-कभी नजीरखाँ द्वारा रावसाहब को तालीम देते हुए भी देखा है। दोनों का आपस में इतना स्नेह-आदर था कि किसको-किसका शागिर्द ठहराना मुश्किल था। परन्तु इतना अवश्य कहूँगी कि रावसाहब की उपस्थिति में नजीरखाँ साहब किसी से भी गंडा बँधवाने को प्रायः टालते ही रहते। ऐसे सभी अवसरों पर नजीरखाँ साहब रावसाहब की अनुमति या तो प्रथम प्राप्त कर लेते अथवा पहला गंडा बाँधने का सम्मान ही रावसाहब को दिया जाता। नजीर खाँ के लिए उस समय के सभी गायकों के सिरताज हो जाना भातखण्डे साहब की कृपा दृष्टि का फल है। बहुत अंश तक स्वयं अपने ही अज्ञान-घमण्ड के कारण गायक-वादकों की उस समय बड़ी दुर्दशा थी। नजीरखाँ भातखण्डे साहब को अक्सर कहा करते, "रावसाहब, संगीत को ज़िन्दा रखिये। कलाकार फुटपाथों पर मर रहे हैं। उन्हें मरने से बचाइये।' और इसीलिये तो नजीर खाँ तथा रावसाहब ने एकत्रित होकर गायक-वादकों को आश्रय दिया, उनके मुजरे करवाये, समझा-बुझाकर उनका सामाजिक स्तर ऊँचा करने का प्रयास किया। शास्त्र का महत्व नजीरखाँ द्वारा उन्हें समझाया। गायक-वादकों से भेंट परामर्श, जलसे आदि सभी अवसरों पर भातखण्डे साहब नजीर खाँ को अपने साथ ले जाते। और जहाँ नजीरखाँ जाते उनकी 'चिड़िया' साया का भाँति पास में रहती। बाल्य-

काल से ही ऐसे सभी अवसरों पर मैं उपस्थित रही थी। कई प्रसंगों पर भातखण्डे साहब ने शास्त्र की बातें मेरे द्वारा नजीरखाँ साहब को पहुँचायीं। मालवी त्रिवेणी, गौरी, जेतश्री, श्री, आदि सैकड़ों रागों के संस्कृत श्लोक स्वयं मैंने याद किये और नज़ीरखाँ साहब से याद करवाये। निरंकुश गायकों के आचार-व्यवहार नियंत्रित कराने का काम भातखण्डे साहब ने नजीरखाँ द्वारा करवाया। शास्त्र सिखाकर नजीरखाँ को उन्होंने सुसंस्कृत गवैया बनाया था। संगीत मुसलमानों ने जिंदा रखा और उन्हें वास्तविक दृष्टि भातखण्डे साहब ने प्रदान की। बम्बई में आज जो संगीत जीवित है वह भातखण्डे, नजीर खाँ के सत्प्रयत्नों का ही फल है।

जीवनलाल महाराज, बालकृष्ण लाल जी बड़े मंदिर वाले तथा मैसूर के शेषण्णा भातखण्डे साहब को प्रेरणा प्रदान करने वालों में थे। जीवन लाल जी का ग्रंथ-संग्रह विशाल था। भातखंडे साहब इनके यहाँ जाकर प्रायः वाचन, मनन, चिंतन करते थे। अच्छी आवाज के बालक मिल जाने पर उनमें संगीत के प्रति अनुराग निर्माण कराते। कितने ही बालकों को मिठाई के लिये जेब से गिन्नियाँ देते हुए मैंने उन्हें देखा था। परन्तु 'गायन सीखूंगा' ऐसा आश्वासन उन्हें प्रथम देना पड़ता था। वकालत तो उन्होंने बहुत ही थोड़े दिन तक की। दिन भर हाथ की उँगलियों द्वारा ताल देना, गुन-गुनाना, संगीत में ही खोये रहना उनका स्वभाव बन गया था।

गायन-वादन के जलसों में मैं उनके साथ रहती थी। घण्टों तक मेरा गायन सुनते रहते। अपनी पुत्री के समान मुझ में उत्साह फूंक देते। उनका पिता तुल्य चेहरा देखते ही मुझे गाना सूझने लगता। गोवर्धन दास तेजपाल के यहाँ मेरा सबसे बड़ा जल्सा हुआ। विजयी गायक को पुरस्कृत किया जाना था। जल्सा प्रारम्भ करने के पूर्व भातखण्डे साहब ने मुझे पास बुलाया और कहा—'चेड़वा, शामकल्याण गाओ।' भातखण्डे साहब का आशीर्वाद पा जाने पर मुझे और क्या चाहिये था। मैंने भी गायन का ऐसा नक्शा श्रोताओं के सामने रखा कि विजय श्री ने अंततः मुझे ही स्वीकार कर लिया। जल्सा रात भर हुआ। दूसरे दिन प्रातः ७ बजे से ६॥ बजे तक मैंने गुणकली गाई। प्राप्त पारितोषिक गोवर्धन दास जी के मंदिर को भेंट स्वरूप दे दिया। यही मेरा बम्बई में सबसे बड़ा जल्सा था।

युवावस्था में मैं बहुत सुन्दर थी। कई बार विपरीत परिस्थितियों का मुझे सामना करना पड़ा। कलाकार भी चरित्रवान् होते हैं—यही मुझे अपने आचरण से सिद्ध करना था। मेरे दीर्घ एवं सफल जीवन का श्रेय पंडित भातखण्डे जी को ही है।

मुझ जैसे बुद्धि विरहित बैल पर जितना भी लादा जा सकता था, उन्होंने लाद दिया। मेरे गायनों में वे सदैव उपस्थित रहते। दूसरों से मेरी प्रशंसा सुनकर माँ-बाप से भी अधिक आनन्द उन्हें होता। किसी ने एकाध फूल देने पर वह पुरस्कार मुझे प्रदान करते। ऐसे समय पर उनकी 'चिड़िया' भी उनके चरणों पर शीश झुकाती हुई ईश्वर के निकट सान्निध्य का अनुभव कर लेने में न चूकती।

मेरा समस्त जीवन गायकों के बीच में बीता है। सही अर्थ में पंडितों का सान्निध्य मैंने पाया। भातखण्डे जी ने हमारा सचमुच उद्धार किया। ऐसे अनन्यभूत व्यक्ति पर

कीचड़ उछालते हुए इधर कुछ वर्षों से मैं देख रही हूँ। वृद्धावस्था के कारण हर सवाल का जवाब देना अब मुझसे नहीं बनता। पर हाँ, इतना अवश्य कहूँगी, मेरा जीवन क्रिया सिद्ध है। मेरी शैशवावस्था की संगीत की परिस्थितियाँ मैंने देखी हैं और भातखंडे जी ने जिस प्रकार उससे चेतना निर्माण की वह भी देखा, अनुभव किया है। संगीत विषयक भ्रमों का आमूलाग्र निरसन करते हुए उसको सुसंस्कृत, सुगठित, सहजसाध्य बनाने वाले मेरे, आपके तथा उन स्वार्थी निंदकों के बुजुर्गों को उनके प्रेरणा स्थान का मांगल्य घटाने का किसी को कोई अधिकार नहीं। ऐसी बेबुनियाद बातें पढ़-सुनकर मन विषण्ण हो जाता है। इससे संगीत की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचता है। रावसाहब जैसे निष्कलंकित सूर्य पर थूकने का दुःसाहस करने वाले संगीत के ये दुश्मन स्वयं अपने आप पर ही थूक रहे हैं। समंजस पाठक इन स्वार्थी जंतुओं से सावधान रहें, इतना ही इस वृद्धावस्था में मैं उनसे कहना चाहती हूँ।

इधर-उधर परिवर्तन कर देने से बनाये हुए नये-नये रागों का भी वही हाल है। भातखंडे जी परम्परा के पक्के अभिमानी थे। पुराने दो-ढाई सौ रागों पर ही उन्होंने लिखा। नये राग संभव ही नहीं--ऐसा कोई नहीं कहता। परन्तु आप जिसे गायेंगे-बजायेंगे, वे वास्तविक अर्थ में 'राग' कहने लायक भी तो होने चाहिए। अन्यथा ऐसी खिलवाड़ करने का किसी को क्या अधिकार है ?

रावसाहब भातखंडे के कार्यों को लोग भली-प्रकार समझें और अपनी-अपनी पात्रता के अनुसार संगीत समाज का उद्धार करने में अपनी शक्ति प्रदान करें, यही मंगल कामना जनता जनार्दन से करती हूँ।

वे क्षण सर्वोत्तम थे

पद्मभूषण उस्ताद अलाउद्दीन खाँ, मैहर

रामपुर में गुरुवर्य श्री वज़ीर खाँ साहब के पास मेरी तालीम चल रही थी। उसी समय बीच-बीच में पंडित भातखण्डे जी भी अपनी अध्ययन तथा शोध यात्राओं पर नगर में पधारते रहते थे। वज़ीर खाँ साहब के यहाँ उनकी मेरी प्रथम भेंट हुई। परिचय हो जाने पर घनिष्टता हो गई। हम लोग संगीत के अर्थ में एक ही परिवार के हो गये थे। एकदम भाई-भाई की तरह एक साथ बैठते-उठते थे, शिक्षा पाते थे और कई महत्वपूर्ण विषयों पर तर्क भी किया करते थे। हँसी-मज़ाक के अवसर भी बारम्बार आते रहते थे।

बाद में भातखण्डे जी जब कान्फ्रेन्सों के काम में जुट गये, वहाँ पर भी उन्होंने मुझे सभी अवसरों पर बुलाया। अपने साथ ले जाकर मेरा बड़ा सम्मान करते। उन्हीं के प्रयत्नों से लखनऊ में जब मैरिस कालेज की स्थापना हुई, मुझे परीक्षा संचालन के लिये बुलाया गया। कई वर्षों तक मैं वहाँ बराबर जाता रहा। सचमुच उन्हीं की बदौलत मैं परीक्षक बना था।

मेरी अवस्था अब इतनी अधिक हो चुकी है कि उनके साथ व्यतीत किये हुए उन अमौलिक क्षणों का चित्रण प्रस्तुत करना मेरे लिये असम्भव है। लिखते समय विचारों की श्रृंखला बन नहीं पाती व भावनाएँ मन ही मन में दबी रह जाती हैं। अस्तु, उनके साथ बिताये हुए मेरे वे क्षण सर्वोत्तम क्षण थे।

अन्ततः मुझे भी वही रास्ता अपनाना पड़ा

गायनाचार्य स्व० रामकृष्ण बुवा वझे, पूना

स्व० भातखण्डे ने हमारे हिन्दुस्तानी संगीत को कुल दस थाटों में ग्रथित कर दिया है। उनका यह कार्य बड़ा ही अच्छा हुआ है। इससे गायक वर्ग का बहुत ही लाभ हुआ है। इसके अतिरिक्त स्व० भातखण्डे ने लगभग दो हजार चीजें पुस्तक रूप में प्रकाशित की हैं। इन चीजों को यदि वे प्रकाशित न करते तो गायन विद्या की क्या अवस्था हो जाती, कह नहीं सकते। कसदार गानेवाले तो अब उँगली पर गिनने लायक बचे हुए हैं।

हमारी हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति चीजों पर ही आधारित है। इन्हीं चीजों में हमारा शास्त्र भी मौजूद है। स्व० भातखण्डे यदि चीजों का अभ्यास न करते तो उन्हें भी इस विद्या पर पुस्तकें लिखना सम्भव न होता।

परंपरागत गायन जीवित रखने के लिये गायकों को सदैव पुरानी चीजें ही लोगों को सुनानी चाहिये। जिन जिन साधनों से कला का संरक्षण किया जा सकता है, उन सभी का उपयोग करते हुये कला का रक्षण करना चाहिये—ऐसी वर्तमान गायक वर्ग से मेरी नम्र प्रार्थना है।

इन्हीं चीजों को पुराने जमाने में गायक लोग किसी धन संचय की तरह समझते थे। मैं भी ऐसा समझता हूँ। संगीत की शास्त्रीय जानकारी और स्वरलिपि द्वारा चीजों को पुस्तक रूप से लिख रखने का उपक्रम भातखण्डेजी ने किया ही है। नोटेशन द्वारा चीजें सीखने-सिखाने की परिपाटी आजकल रूढ़ हो चुकी है। वैसे तो व्यक्तिगत रूप से मैं स्वर लिपि के विरुद्ध हूँ, परन्तु इस ढलती हुई उम्र में प्रत्येक जिज्ञासु को मुँहजबानी प्रत्यक्ष तालीम देना अब सम्भव नहीं है। ऐसा करना जब तक सम्भव था, बहुतों को मैंने सिखाया भी। परन्तु हरएक व्यक्ति को सिखाना सम्भव न होने के कारण मैंने भी नोटेशन का मार्ग अपनाया है।

नोटेशन के माध्यम से गीतों की पुस्तक यदि मैं न लिखता तो मेरे पास जो अप्रसिद्ध राग और गीत हैं, उनसे सर्वसाधारण जिज्ञासु को लाभ भी न हो पाता।

आजकल चीजें नोटेशन द्वारा कहने की, उन्हें मुद्रित करने की प्रथा चल पड़ी है। गीतों की जितनी शैलियाँ हैं, उतनी ही नोटेशन की शैलियाँ बन गयी हैं। प्रत्येक पुस्तक में

नोटेशन के पृथक-पृथक चिन्ह हैं। कोई स्वर के मस्तक पर कुर्सी का चिन्ह रखता है तो कोई स्टूल का। फलतः चीजों का अभ्यास करने के पूर्व चिन्हों का स्पष्टीकरण जानने में ही बहुत समय लग जाता है। नोटेशन संगीत की एक लिपि है। संगीत विद्या समस्त लोगों को आती नहीं और उसे वे समझते भी नहीं। इस पर भी प्रत्येक के लिखने में ऐसा फर्क हो तो सीखने वालों की हालत क्या पूछना? स्वरों के चिन्ह सभी ग्रंथकर्त्ताओं के एक से ही होने चाहिए। केवल अपना-अपना वैशिष्ट्य स्थापित करने की झंझट में न पड़ते हुए एकाध परिषद् बुलाकर इन चिन्हों पर विचार करना चाहिये।

मैंने अपना पुस्तकों के लिये तो कोमल, तीव्र स्वरों के चिन्ह स्व० भातखण्डे की पद्धति के ही स्वीकार किये हैं।

—संगीत-कला-प्रकाश, भाग १ से संकलित

संगीत के आधुनिक भीष्माचार्य

प्रो० ग० ह० रानडे, पूना

हमारी आज की पीढ़ी को संगीत के विषय में आस्था उत्पन्न कराने में जो अनेक कारण हुए, उनमें से एक अति महत्व का कारण पं० भातखण्डे जी द्वारा हमारे संगीत विषय पर अलौकिक ग्रन्थ-भाण्डार द्वारा की हुई क्रान्ति है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन ग्रंथों ने भारतीय संगीत के बारे में तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न करके, मेरे समान दूसरे अनेक व्यक्तियों को हमारे संगीत का अभ्यास योग्य मार्ग पर करने की स्फूर्ति दी है। मेरा संगीत व्यासंग जब जारी था, तब पं० भातखण्डे जी के किये हुए कार्य का स्वर्णयुग प्रारंभिक अवस्था में था। परन्तु मुझे स्वयं संगीत में गति मिलकर उसकी सप्रयोग शास्त्रीय चर्चा करने योग्य ज्ञान प्राप्त करने में स्वाभाविक रूप से कई वर्ष लगे। संगीत विषय में विशेष रूप से मेरे पदार्पण करते समय, अर्धांगवायु से पीड़ित होने के कारण स्वयं पंडितजी ने इस विषय से निवृत्त होने का विचार किया था और उसी के अनुसार उन्होंने आगे चलकर अपने कार्य का भार श्री सुकथनकर आदि को सौंप कर विश्रांति ली थी। तथापि कुछ कारणवश मैं स्वयं पंडित जी से एक-दो बार पत्र-व्यवहार कर चुका था तथा उन पत्रों के उत्तर भी उन्होंने अत्यंत सहानुभूति पूर्वक भेजे थे। उन्हीं के हस्ताक्षर में लिखे हुए उन पत्रों में से एक पत्र की प्रतिलिपि इतरत्र प्रसिद्ध हुई ही है।

ऐसे महान् पुरुष के प्रत्यक्ष दर्शन का लाभ होना चाहिए, ऐसी मन में प्रेरणा होती रहती थी। परन्तु उस समय मैं साँगली में था तथा पंडित जी बम्बई में रहते थे। जिसके कारण यह सुयोग सहजसाध्य होना कठिन था। फ़िर भी, सन् १९३४ के श्रावण मास में सुयोग आया। परन्तु दुर्दैव से उसके पूर्व ही कुछ महिनों से पंडित जी काफी अस्वस्थ हो गये थे। जिसके कारण उन्हें रुग्णशैय्या पर ही रहना पड़ा। उन्हें कष्ट न हो, इसलिए

उनके अत्यन्त निकटवर्ती सम्बन्धियों के अतिरिक्त अन्य किसी को उनसे मिलने की मनाई की गई थी। ऐसी परिस्थिति में उनसे भेंट होना असम्भव-सी ही बात थी। किन्तु श्री सुकथनकर जी के सौजन्य से यह शक्य हुआ।

सन् १९३४ में बैरिस्टर श्री जयकर की अध्यक्षता में हुई संगीत परिषद् में भाग लेने के लिये मैं बम्बई गया हुआ था। परिषद् की कार्यकारिणी मंडल के अध्यक्ष श्री सुकथनकर जी ही थे। मेरे संगीत के गुरुजी गायनाचार्य गरणपतिबुवा भिलवड़ीकर के सुपुत्र श्री रामभाऊ भिलवड़ीकर अपने पिता के समय से ही पंडित भातखण्डे तथा श्री सुकथनकर इन दोनों के अत्यन्त निकटवर्ती कुटुम्बियों के समान होने के कारण तथा चूँकि मैं उस समय श्री भिलवड़ीकर के यहाँ ठहरा था, इसलिये भिलवड़ीकरजी के माध्यम से मैंने श्री सुकथनकर से पंडित जी से भेंट करा देने के बारे में प्रार्थना की। मेरी प्रार्थना को उन्होंने इस शर्त पर स्वीकार किया कि केवल कुशल प्रश्नों के अतिरिक्त भेंट के समय अन्य विषयों की चर्चा न की जावे तथा दस मिनट से अधिक समय न लिया जावे।

अतः नारली पूर्णिमा (रक्षाबन्धन) के दिन मैं तथा श्री भिलवड़ीकर लगभग प्रातः १० बजे मलबार हिल स्थित शांताराम हाऊस उनके निवास स्थान पर जा पहुँचे। उस समय पंडित जी की अस्वस्थता के कारण उन्हें श्री सुकथनकर के दीवानखाने के साथ के एक कमरे में रखा गया था व प्रत्येक आठ घंटों के अंतर से तीन भिन्न-भिन्न परिचारिकाएँ उनकी सेवासुश्रूषा करने के लिये नियुक्त की गई थीं।

हम लोगों के वहाँ आने की सूचना मिलने पर थोड़े ही समय में हमें पंडित जी के कमरे में ले जाया गया। संगीत के इन आधुनिक भीष्माचार्य के दर्शनों का यह सौभाग्य प्राप्त होने के कारण मुझे अपूर्व आनन्द हुआ। यद्यपि भीष्माचार्य तो वे थे ही फिर भी वे शरपंजर पर लेटे हुए थे, इसलिए निर्दयी कालमहिमा पर मुझे क्रोध भी आया। प्रथम हम लोगों ने पंडित जी को अत्यन्त नम्रता तथा अंतःकरणपूर्वक अभिवादन किया। पण्डित जी की श्रवणशक्ति उस समय कम हो जाने के कारण उन्होंने कर्णयंत्र की सहायता ली। पश्चात् हम लोगों ने उनके स्वास्थ्य के विषय में पूछताछ की तथा उन्होंने भी कुशल प्रश्न पूछते हुए हम लोगों का स्वागत किया। बम्बई में संगीत परिषद् में भाग लेने मैं आया हूँ तथा उसमें कुछ निबन्धवाचन भी करने वाला हूँ, ऐसा जब उनसे निवेदन किया; तब उन्होंने मुझे निबन्ध की थोड़ी-सी रूप-रेखा बताने का कहा। 'बिलावल'—यही हमारी पद्धति का शुद्ध सप्तक होगा। इस तर्क को पुष्टि मिलने योग्य एक और स्वतंत्र तथा नया प्रमाण मेरे निबन्ध द्वारा उपलब्ध हुआ है, इतना ही मैंने उनसे कहा। इतने में दस मिनट का समय समाप्त हो चुका था, अतः समय पूरा होने पर पंडित जी से हम लोगों ने चलने की आज्ञा देने की प्रार्थना की। तदनुसार हम लोग उठने वाले ही थे, कि इतने में पंडित जी ने परिचारिका से कहा—"इन लोगों की भेंट से मुझे बिलकुल कष्ट नहीं हो रहा है। इनके साथ संभाषण करने से मुझे किंचित् आराम ही मिला है। अतएव इन्हें यहाँ बैठने दिया जाकर इनके साथ बातचीत करने दी जाय"। बार्धक्य से जर्जर ऐसे इस महामुनि की तीव्र तथा तीक्ष्ण व्यासंग की पूर्ण कल्पना उनके इस व्यवहार से हम लोगों को हुई।

पंडित जी को कष्ट न हो, इसलिए मुख्य-मुख्य विषयों की त्रुटित मौखिक जानकारी

देने के बजाय मैंने अपना लिखा हुआ संपूर्ण निबन्ध ही अथ से इति तक पढ़कर सुनाने का परस्पर सहमति से निश्चित किया और मैंने वह निबन्ध लगभग १०-१५ मिनटों में उन्हें पढ़कर सुनाया।

अपने अक्षर-मात्रा-गणवृत्त में तथा तर्जों-धुनों में आये हुए स्वरों का विचार तथा उन से स्पष्ट होने वाले लोक गीतों के सप्तक अथवा थाट—यही उस निबन्ध का विषय था। ऐसे थाटों में मुख्यतः जिसे बिलावल सप्तक कहा जाता है वह तथा क्वचित् कोमल ग व नि लेने-वाला ऐसा यह दूसरा सप्तक—यही उस निबन्ध का निष्कर्ष था।

निबन्ध-वाचन करते समय जैसे-जैसे मैं आगे बढ़ता जाता वैसे-वैसे पंडित जी के मुख पर अधिकाधिक उत्साह तथा जिज्ञासा स्पष्ट रूप से प्रतीत होने लगी तथा निबन्ध-वाचन समाप्त होने पर उन्होंने कुछ विषयों के सम्बन्ध में मुझसे पुनः स्पष्टीकरण करने को कहा। अन्त में संतोष व्यक्त करते हुए, 'यह आपने बहुत ही सुन्दर, स्वतंत्र तथा अपने शुद्ध सप्तक को पुष्टि देने वाला प्रमाण खोज निकाला है। यह व्यासंग आप जारी रखिये तथा मेरा स्वास्थ्य सुधरते ही पुनः आप बम्बई आइये, तब इस विषय पर हम लोग अधिक विस्तृत चर्चा कर सकेंगे'—ऐसा कहकर उन्होंने मेरी सराहना की। हम लोगों के वहाँ से बिदा होने के पूर्व "मुझे इन लोगों से मिलकर बहुत समाधान हुआ। कष्ट बिलकुल नहीं हुआ।" ऐसा पंडित जी ने परिचारिका से विशेष रूप से कहा। हम लोग इस महान् महर्षि को प्रणाम करते हुए उनकी आज्ञा लेकर वहाँ से चले आये। आगे चल कर दुर्दैव से पंडित जी का स्वास्थ्य अधिकाधिक बिगड़ता ही गया। सन् १९३६ में गणेश चतुर्थी के दिन उन्हें देवाज्ञा हुई। इसी कारण उनसे पुनः मिलने का सुयोग न आ सका। परन्तु पंडित जी के दिये हुए प्रोत्साहन से मेरा उत्साह बढ़ता गया और आगे चल कर दो भिन्न-भिन्न मार्गों से तीव्रता के साथ शुद्ध-स्वर-सप्तक सम्बन्धी विचार करना मैंने जारी रखा। पहला अर्थात् लोक गीतों में आने वाले सप्तकों का वैदिककाल से लेकर आज तक जो तर्जें-धुनें प्रचलित हुईं उनके पृथक्करण से विचार करना तथा दूसरा सर्व गायन वादन का आधार जो तंबूरा है, उसके घोष-स्वर का ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से पृथक्करण करके उस पर से हमारी पद्धति के मूल संवाद-युक्त स्वरसप्तक को निश्चित करना है। यह दोनों विचार मैंने 'हिन्दुस्तानी म्यूज़िक' नामक अंग्रेजी ग्रंथ में सविस्तर दिये हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि केवल पंडित जी के दिये हुए उत्तेजन तथा प्रोत्साहन के कारण ही मैं इस कार्य को दृढ़तापूर्वक कर सका।

संसार भर के इतिहास में अनन्यतम

ठाकुर जयदेव सिंह, वाराणसी

संगीत के लिये पंडित जी ने जो मुख्य काम किये, उनको आँकने का प्रयत्न करता हूँ। क्रियात्मक संगीत और शास्त्र दोनों को पंडित जी से बहुत कुछ मिला है। क्रियात्मक

देने के बजाय मैंने अपना लिखा हुआ संपूर्ण निबन्ध ही अथ से इति तक पढ़कर सुनाने का परस्पर सहमति से निश्चित किया और मैंने वह निबन्ध लगभग १०-१५ मिनटों में उन्हें पढ़कर सुनाया।

अपने अक्षर-मात्रा-गणवृत्त में तथा तर्जों-धुनों में आये हुए स्वरों का विचार तथा उन से स्पष्ट होने वाले लोक गीतों के सप्तक अथवा थाट—यही उस निबन्ध का विषय था। ऐसे थाटों में मुख्यतः जिसे बिलावल सप्तक कहा जाता है वह तथा क्वचित् कोमल ग व नि लेने-वाला ऐसा यह दूसरा सप्तक—यही उस निबन्ध का निष्कर्ष था।

निबन्ध-वाचन करते समय जैसे-जैसे मैं आगे बढ़ता जाता वैसे-वैसे पंडित जी के मुख पर अधिकाधिक उत्साह तथा जिज्ञासा स्पष्ट रूप से प्रतीत होने लगी तथा निबन्ध-वाचन समाप्त होने पर उन्होंने कुछ विषयों के सम्बन्ध में मुझसे पुनः स्पष्टीकरण करने को कहा। अन्त में संतोष व्यक्त करते हुए, 'यह आपने बहुत ही सुन्दर, स्वतंत्र तथा अपने शुद्ध सप्तक को पुष्टि देने वाला प्रमाण खोज निकाला है। यह व्यासंग आप जारी रखिये तथा मेरा स्वास्थ्य सुधरते ही पुनः आप बम्बई आइये, तब इस विषय पर हम लोग अधिक विस्तृत चर्चा कर सकेंगे'—ऐसा कहकर उन्होंने मेरी सराहना की। हम लोगों के वहाँ से बिदा होने के पूर्व "मुझे इन लोगों से मिलकर बहुत समाधान हुआ। कष्ट बिलकुल नहीं हुआ।" ऐसा पंडित जी ने परिचारिका से विशेष रूप से कहा। हम लोग इस महान् महर्षि को प्रणाम करते हुए उनकी आज्ञा लेकर वहाँ से चले आये। आगे चल कर दुर्दैव से पंडित जी का स्वास्थ्य अधिकाधिक बिगड़ता ही गया। सन् १९३६ में गणेश चतुर्थी के दिन उन्हें देवाज्ञा हुई। इसी कारण उनसे पुनः मिलने का सुयोग न आ सका। परन्तु पंडित जी के दिये हुए प्रोत्साहन से मेरा उत्साह बढ़ता गया और आगे चल कर दो भिन्न-भिन्न मार्गों से तीव्रता के साथ शुद्ध-स्वर-सप्तक सम्बन्धी विचार करना मैंने जारी रखा। पहला अर्थात् लोक गीतों में आने वाले सप्तकों का वैदिककाल से लेकर आज तक जो तर्जें-धुनें प्रचलित हुईं उनके पृथक्करण से विचार करना तथा दूसरा सर्व गायन वादन का आधार जो तंबूरा है, उसके घोष-स्वर का ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से पृथक्करण करके उस पर से हमारी पद्धति के मूल संवाद-युक्त स्वरसप्तक को निश्चित करना है। यह दोनों विचार मैंने 'हिन्दुस्तानी म्यूज़िक' नामक अंग्रेजी ग्रंथ में सविस्तर दिये हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि केवल पंडित जी के दिये हुए उत्तेजन तथा प्रोत्साहन के कारण ही मैं इस कार्य को दृढ़तापूर्वक कर सका।

संसार भर के इतिहास में अनन्यतम

ठाकुर जयदेव सिंह, वाराणसी

संगीत के लिये पंडित जी ने जो मुख्य काम किये, उनको आँकने का प्रयत्न करता हूँ। क्रियात्मक संगीत और शास्त्र दोनों को पंडित जी से बहुत कुछ मिला है। क्रियात्मक

संगीत के लिये उनका सबसे बड़ा कार्य यह है कि जिन चीजों को अच्छे-अच्छे उस्ताद किसी को भी नहीं सिखलाते थे, उन सब का संग्रह करके बहुत ही सरल स्वरलिपि में उन्हें लिख कर छः भागों में पंडित जी छोड़ गये हैं। जो सबसे बड़ा परिदान इस दिशा में उनका है, वह है लक्षणगीतों की रचना। पंडित जी के पहले हमारे संगीत में लक्षण-गीत नहीं के बराबर थे। पंडित जी ने लगभग तीन-चार सौ लक्षणगीतों की रचना की। इनमें राग के लक्षण गीतों में लिखे गये हैं। जिनमें विद्यार्थी को गीतों में ही रागों के लक्षण याद हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त पंडित जी ने कुछ ख्याल, ध्रुवपद, धमार, तराने इत्यादि की भी रचना की। पंडित जी एक बहुत निपुण वाग्गेयकार या कम्पोज़र थे।

दूसरा परिदान उनका संगीतशास्त्र का है। श्रीमल्लक्ष्यसंगीत और हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के चार भाग उसके प्रमाण हैं। रागों के नियमों में जो उच्छृंखलता आ गई थी, उसको पंडित जी ने सुधारा और हमारे राग व्यवस्थित हो गये। हमारे रागों के प्रमाणीकरण (स्टेन्डर्डाईजेशन) का बहुत कुछ श्रेय पंडित जी को है। वे ग्रन्थ बहुमूल्य थाती के समान पंडित जी हमारे लिये छोड़ गये हैं।

पंडित जी का तीसरा परिदान रागों के वर्गीकरण का है। पुराना राग-रागिनी पुत्र का वर्गीकरण आधुनिक संगीत के लिये निरर्थक हो गया था। एक राग का दूसरे राग से क्या संबंध था, इसका पता चलाना असम्भव हो गया था। पंडित जी ने दस थाटों में हिन्दुस्तानी रागों का वर्गीकरण सुगमता से कर दिया।

पंडित जी का चौथा परिदान है रागों के समय की नियम स्थापना। प्राचीन समय से हिन्दुस्तानी रागों के गाने-बजाने के समय बँधे हुए हैं। भैरवी प्रातः गाई जाती है तो पूर्वी सायंकाल। सारंग मध्याह्न में गाया जाता है तो बागेश्री मध्यरात्रि को। किसी भी शास्त्र में समय के बन्धन का कोई कारण नहीं बतलाया है। यह एक निराधार कल्पना जान पड़ती थी। पर पंडित जी ने रागों का तुलनात्मक अध्ययन करके देखा कि विशेष स्वरों के राग विशेष समय पर गाये जाते हैं और वही प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने रागों के समय के नियम की युक्ति-युक्ति स्थापना की है।

पाँचवाँ परिदान पंडित जी का यह है कि उन्होंने हिन्दुस्तानी संगीत के क्रमिक विकास का विशद् स्पष्टीकरण किया है। इसका थोड़ा-सा दिग्दर्शन उनके "कंपेरेटिव स्टडी ऑफ द म्यूज़िक सिस्टिम्स इन फिफ्टीन्थ, सिक्सटीन्थ, सेवनटीन्थ एन्ड एट्टीन्थ सेनच्युरीज" और 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति' के पढ़ने से मिलता है।

चाहे शास्त्र की दृष्टि से देखें अथवा क्रिया की खोज की दृष्टि से या प्रचार की; संगीत की शिक्षा की दृष्टि से भी पंडित जी ने जो संगीत की सेवा की है, वह अद्वितीय है। केवल "हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति" के चार भाग लगभग २,५०० पृष्ठों में समाप्त हुए हैं। क्रमिक संगीत के छः भाग २,६५४ पृष्ठों में समाप्त हुए हैं। श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम् तथा और छोटे-छोटे ग्रन्थों को मिलाकर उन्होंने लगभग ६,५०० पृष्ठों के मुद्रित और प्रकाशित ग्रंथ हमारे संगीत को दिये हैं। अभी उनकी दैनंदिनी और कुछ छोटे-छोटे लेख अप्रकाशित ही पड़े हैं। एक व्यक्ति के लिये इतना कार्य असम्भव जान पड़ता है। पर पंडित जी ने असम्भव को सम्भव करके दिखलाया।

पंडित जी को आर्थिक सहायता किसी से न मिली। पुस्तकों के मूल्य उन्होंने नाममात्र के रखे थे। और इसके विक्रय से जो रुपया आता था, वह उनके पुनः प्रकाशन में व्यय होता था। गीतों और ग्रन्थों की खोज में उन्हें दर-दर की खाक छाननी पड़ी, अपमान सहना पड़ा, विरोध का सामना करना पड़ा। पर पंडित जी का कितना अदम्य उत्साह था, कितनी अडिग लगन थी, कैसी दृढ़ साधना थी। सब कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करके उन्होंने अपने महान् व्रत को पूर्ण किया। भारत के ही संगीत के इतिहास में नहीं, किन्तु संसार भर के संगीत के इतिहास में मुझे दूसरा उदाहरण नहीं मालूम है, जहाँ अकेले एक व्यक्ति ने अपने जीवनकाल में संगीत के लिये इतना कार्य किया हो, जितना पंडित जी ने किया है।

हर कोई शिक्षक नहीं हो सकता

आचार्य गोविंदराव राजूरकर, अजमेर

ग्यारह वर्ष की अल्प-सी आयु में पं० भातखण्डे के समक्ष परीक्षा देने के लिये उपस्थित होने का मुझे अवसर मिला। संगीत की महानता, अगाधता समझने के लिए कितने परिश्रम, कितनी साधना की आवश्यकता होती है, इसका मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं था। परीक्षा कक्ष में प्रवेश करते ही मेरी ओर ऐसे वात्सल्यभाव से वे देखने लगे कि सारा डर और झिझक दूर हो गयी। कभी करांगुलियों से स्वर पूछते, तो कभी बात ही बात में टेढ़े से टेढ़े स्वर मुझ से इस प्रकार गवा लेते कि गायन का अभ्यास एक मनोरंजक विषय है, वह कोई नीरस हमाली नहीं; ऐसा मुझे पहली बार प्रतीत हुआ। पं० भातखण्डे परीक्षा के प्रश्न ऐसे हँसते-खेलते हुए पूछते जा रहे थे कि विचार और संकेतों की उनकी शृंखला का स्मरण होते ही एक महान् कलाकार का व्यक्तित्व सामने आ जाता है। उनकी सावधानता, एकाग्र-चित्तता, कण्ठ-स्वाधीनता पर आज भी उतना ही आश्चर्य हो रहा है, जितना कि उस प्रसंग पर हुआ था। उस कलापूर्ण दृश्य का वर्णन करने के लिये शब्द-सृष्टि असमर्थ है। मेरी परीक्षा नहीं हो रही थी मानो अपने नाना के पास बैठ कर विनोद-आनन्द में हँस-खेल रहा था।

गुरुवर्य राजाभैयाजी एक पैर से लँगड़े थे। चलते समय किसी दूसरे का सहारा लेते। कई अवसरों पर पंडित जी से मिलने के लिए उनके साथ ग्वालियर के नौताला गेस्ट हाऊस में मैं भी जाता रहा। किन्तु सन् १९३० में मेरी अन्तिम परीक्षा का वह प्रसंग आज भी मुझे याद आता है। परीक्षा के पूर्व एक बार राजाभैयाजी के साथ मैं भी उनसे मिलने के लिये गया था। पंडित जी ने मुझसे पूछा, "कैसी तैयारी है? आजकल क्या सीख रहे हो?" मैंने कहा, "दरबारी में—मधुवा भर ला दे—सीख रहा हूँ।" सुनाने की मुझे तुरन्त आज्ञा हुई। गीत का अर्थ तो मैं पूर्णतः दुर्लक्षित कर चुका था। हाँ,

राग की ओर सावधान अवश्य था। 'भर ला दे' इन शब्दों का उच्चारण करते ही 'ला' अक्षर के साथ दरबारी के गान्धार का उच्चार किस भाव से करना चाहिए, मुझे तत्काल समझाया। संगीत भले ही मुख्यतः स्वर प्रधान होता हो, परन्तु गीत में शब्दोच्चारण भी सांगीतिक उच्च शिक्षा का विषय होता है और इसी के द्वारा गायक अपनी सुसंस्कृतता का परिचय देता रहता है—यही तथ्य भिन्न-भिन्न उदाहरणों सहित वे मुझे समझाते गये। पुष्टीकरणार्थ कई गीतों को उन्होंने गाकर दिखाया। ताल के आवर्तनों को दोहराते समय उसमें आने वाले वाक्यांशों को, शब्दांशों को कहाँ पर किस प्रकार से तोड़ना चाहिए, स्वयं गाकर समझाया। "राधिका रमण गिरिधरन गोपीनाथ" अहीर-भैरव में झपताल के दो आवर्तनों में यह वाक्यांश रखा गया है। अतः ऐसे गीतों में केवल प्रथम पंक्ति को बार-बार गाते रहना दोषपूर्ण है। इससे अर्थहानि होती है। इन सारी बातों को इतनी आत्मीयता और विस्तार से वे समझाते गये कि पन्द्रह वर्ष की मेरी आयु होते हुए भी उसका स्मरण आज ज्यों-का-त्यों हो रहा है।

स्वयं मैं भी गाता हूँ और कई यशस्वी गायकों को अति निकट से गाते हुए देख चुका हूँ, उनसे प्रभावित भी हुआ हूँ। परन्तु एक सफल शिक्षक होना कितना कठिन है—इसकी कल्पना पं० भातखण्डे जी के सान्निध्य में व्यतीत किये हुए वे अमौलिक क्षण सदैव कराते रहते हैं।

मेरे कंठ के सुधार का श्रेय पं० भातखण्डे को ही है

आचार्य एम० ए० गोलवलकर, इन्दौर

प्रातःस्मरणीय स्व० भातखण्डे जी का स्मरण जब कभी मैं अपना गायन प्रारम्भ करता हूँ, स्वतः ही हो आता है। मस्तक अनायास ही श्रद्धायुक्त भक्तिभाव में नत हो जाता है। इसका कारण एक ऐसी घटना है जो निम्न प्रकार है :—

माधव संगीत महाविद्यालय, ग्वालियर के प्रारम्भिक समूह का विद्यार्थी होने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। पूर्णतः शासकीय अनुदान से स्थापित करने का पं० भातखण्डे जी का यह एक नूतन प्रयास था। अतः वे स्वयं वर्ष में कई बार ग्वालियर पधारते थे तथा विद्यालय का निरीक्षण और मार्गदर्शन करते थे। स्वभावतः प्रथम बैच के विद्यार्थियों की ओर उनका बहुत ध्यान रहता था। वे स्वयं हम सब को अपनी अमोघ वाणी से शास्त्र तथा कठिन-कठिन गीतों और रागों से परिचित कराते। उन विद्यार्थियों में कुछ ऐसे भी थे जो उस समय स्कूलों में भी अध्ययन करते थे। मैं भी ऐसा ही विद्यार्थी था। अँग्रेजी के साथ संस्कृत भी मेरे विषयों में होने के कारण भातखण्डे जी की मुझ पर विशेष कृपा रहती थी।

शैशवावस्था की मेरी आवाज नैसर्गिक कारणों से आयु के पन्द्रहवें वर्ष में एकदम परिवर्तित होने लगी। इतनी खराब हो गई कि मैं यह समझ बैठा कि मेरा कंठ अब संगीत

के लिये एकदम अनुपयुक्त हो गया है और फलस्वरूप सङ्गीत महाविद्यालय में जाना मैंने बन्द कर दिया। कुछ दिन पश्चात् पंडित जी बंबई से ग्वालियर पधारे। विद्यार्थियों में मेरी अनुपस्थिति उन्हें असहनीय लगी। तत्काल राजाभैयाजी को मुझे बुलाने भेजा। मैं जब उपस्थित हुआ तो मेरी अड़चन सुन कर मुझे बड़े प्रेम से समझाया और निसर्ग का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर होता है, इसलिए चिंता न करने को कहा। मेरे गुरुदेव स्व० दातेजी को कुछ सूचनाएँ दीं और मुझे आदेश दिया कि प्रतिदिन तीन घंटे दाते गुरुजी के समक्ष ही अभ्यास करते रहो, घर पर नहीं। इसके साथ ही स्वयं गाकर कहा कि अब तेरी आवाज इस प्रकार हो जावेगी।

आज्ञा का पालन मैंने किया। लगभग चार महिने भातखण्डे जी ने जो क्रियाएँ (एक्सरसाइज) बताई थीं, उनके अनुसार गुरुदेव दाते जी मेरा अभ्यास अपने सामने कराते रहे। और जब दुबारा भातखण्डे जी पधारे तो महाविद्यालय में एक समारोह आयोजित कर उसमें मुझे गाने को कहा गया। मेरी आवाज सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और आशीर्वाद दिया कि 'बेटा, अब तुम्हारी आवाज ढंग पर आ गई है, चिंता मत करो।'

आज भी जब कभी गायन का अवसर प्राप्त होता है तो पंडितजी की इस कृपा का स्मरण हो आता है। हृदय प्रेम और श्रद्धा से भर जाता है। धन्य हैं ऐसे गुरु! कहावत है कि "गुरवः विरला सन्ति शिष्य-चित्तापहारकाः।" कुछ लोगों का ख्याल है कि मेरे कंठ में कुछ गुण हैं। यदि यह उनका ख्याल सत्य है तो इस अच्छाई का समस्त श्रेय स्व० भातखण्डे जी को है।

एक पथभ्रष्ट को कर्तव्य की अनुभूति

आचार्य वा० भा० खाण्डेपारकर, उज्जयनी

उन दिनों स्वयं पं० भातखण्डे जी भारतीय संगीत को पुनः शास्त्र-बद्ध कर उसमें सामूहिक शिक्षा (मास एज्युकेशन) की व्यवस्था कर उसे जन-जीवन के निकट लाने के लिये प्रयत्नशील थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये अनेक राजा-महाराजाओं का सहयोग उन्हें प्राप्त था। उन्होंने ग्वालियर व बड़ौदा में सङ्गीत महाविद्यालयों की स्थापना की। इस सिलसिले में ग्वालियर आने पर वे प्रायः हमारे घर भी आया करते थे। श्रद्धेय पिताजी स्व० भास्कर राव खाण्डेपारकर उनके सहयोगियों में थे। मैं तब बहुत छोटा था। पिताजी की तीखी आँखों से भयभीत होकर रोजाना गाने का अभ्यास करने को अवश्य बैठता था, परन्तु कुछ आसपास के वातावरण और कुछ बाल्यकाल से खेलकूद में रुचि होने के कारण मेरा मन अभ्यास में न लगता। भातखण्डे जी के आने पर कुल-परम्परानुसार दण्डवत-प्रणाम कर उनका अभिवादन करना पड़ता। उनकी सेवासुश्रूषा का भार भी मुझ को सौंपा जाता। उनको विराट व्यक्तित्व, पिताजी से बात करते समय उनकी अजस्र प्रवाहिता वाणी, उनकी

अपूर्व मेधा मेरे किशोर मन को अभिभूत कर देती। परन्तु खेल-कूद और व्यायाम का नित्य अभ्यास व कसरती मित्रों के संसर्ग में उन सब बातों को दूसरे ही क्षण भुला देता।

आयु की वृद्धि के साथ पिताजी का कड़ा अनुशासन क्रमशः शिथिल होने लगा और मेरे व्यायाम का शौक अपने आप विकसित हो गया। अब मैं अपने नगर का एकमात्र श्रेष्ठ खिलाड़ी ही नहीं वरन् अपनी टोली के साथ दूर-दूर के नगरों में जाकर खेल-कूद की प्रतियोगिताओं में भाग लेता व व्यायाम के कौशल का प्रदर्शन करता। इसी तरह एक बार सन् १९२९-३० में मैं बम्बई पहुँचा। वहाँ सन्ध्या के समय मित्रों के साथ जब चौपाटी पर घूमने निकला तो एक बेन्च पर चिन्तन की मुद्रा में बैठे पं० भातखण्डे जी दिखाई दिये। मेरे अन्दर के संस्कारों ने मुझे प्रेरित किया और मैंने आगे बढ़ते हुए झुककर उन्हें प्रणाम किया। मुझे इस प्रकार अचानक सामने देखकर पंडित जी ने मराठी में पूछा—"यहाँ कैसे आये ? क्या गाने के लिये आये हो ?" एक गायक के पुत्र से सङ्गीत का एक पुनरुद्धारक यही तो अपेक्षा कर सकता था। उनकी बात सुनते ही मेरे हृदय को धक्का-सा लगा। उनके इस प्रश्न ने एक बारगी ही मेरे अस्तित्व को अन्दर ही अन्दर झकझोर दिया। मेरे व्यायाम का समग्र अभ्यास और उससे प्राप्त सारी कीर्ति की दीवारें नींव से ही काँप उठीं। उस एक क्षण में ही ऐसा लगा कि यह सब मैं क्या कर रहा हूँ। मैंने साहस बटोर कर उनसे अपने आने का उद्देश्य निवेदन किया। सुनकर उन्होंने गहरी साँस ली और बहुत डूबे हुए स्वरों में कहा—"भास्करराव खाण्डेपारकर का लड़का और व्यायाम के प्रदर्शन करता फिरे! अच्छा, ठीक है, देखें आगे क्या-क्या होता है ?" उनकी उस गगन-गंभीर वाणी का एक-एक शब्द मेरे अन्तस की गहराईयों में प्रवेश करता गया। कुछ देर इधर-उधर की बातें कर जब मैं वहाँ से चला तो मैं स्वयं के प्रति, अपने क्रिया-कलापों के प्रति शङ्काकुल हो उठा था। मेरे मन में बार-बार प्रश्न उठते थे कि क्या मैं जो कुछ कर रहा हूँ, ठीक है ? क्या मैं पथभ्रष्ट हूँ, गलत मार्ग पर अग्रसर हो रहा हूँ ? मैं अपना कर्तव्य निभा रहा हूँ!

अपनी वह यात्रा समाप्त कर इन्हीं विचारों में डूबा हुआ मैं उज्जैन आ पहुँचा। उन दिनों पिताजी यहीं आ गये थे। वहाँ मेरे एक मित्र सङ्गीत की फाइनल की परीक्षा में बैठने की तैयारी कर रहे थे। उनके तथा अन्य साथियों के अनुरोध पर व्यायाम के अभ्यास से बचे हुए समय में मैं उनके पास बैठ कर हारमोनियम से सङ्गत करता रहा। वे धीमी और लचीली आवाज में गाते थे। मेरे कानों पर तो ग्वालियर की ओजपूर्ण गायकी का गहरा प्रभाव था। अतः परीक्षा में उनकी सफलता के विषय में मैं प्रायः शंकित रहता था। पर जब वे प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए तो मुझे लगा, यह मैं भी कर सकता हूँ। भातखण्डे जी की आकृति मेरे मानस में कुछ स्पष्टता से उभरने लगी।

उन दिनों राष्ट्रपिता गाँधीजी के नमक सत्याग्रह से प्रेरित होकर जगह-जगह धरना देने के आन्दोलन हो रहे थे। व्यायाम से पुष्ट देह व राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत हृदय वाले युवकों का उस दिशा में प्रवृत्त हो जाना सहज ही था। मैं भी उन गतिविधियों में रुचि लेने लगा। इसी सम्बन्ध में एक बार बेलापुर जाना पड़ा। वहाँ के एक सम्पन्न व्यक्ति हमारे दल के आश्रयदाता थे। रात को उनके यहाँ गाने की महफिल हुई। मुझ से भी

अनुरोध किया गया। मेरा गाना सुनकर वे बोले—"तुम्हें गाना चाहिये। यही तुम्हारे योग्य काम है। और सब फालतू बातें तुम छोड़ दो।" उनकी बातों से भातखण्डे साहब की चौपाटी वाली उस विषण्ण मुद्रा का पुनः स्मरण हुआ। मैं किसी दिवाने की स्थिति में लौटा और सीधे पिताजी के पास जाकर गाना सीखने की इच्छा व्यक्त की। सुनकर पिताजी बोले —"यह बहुत कठिन काम है और तुम्हें तो बहुत अधिक मेहनत करनी पड़ेगी।"

मैंने मन ही मन अंतिम साँस तक प्रयत्न करते रहने का निश्चय किया! गायन का अभ्यास प्रारम्भ हुआ। सुबह चार बजे से दोपहर १२-०० बजे तक और सांयकाल सङ्गीत महाविद्यालय में भातखण्डे साहब की क्रमिक पुस्तक की एक-एक रचना की शत-शत आवृत्ति की। पूरे दो वर्ष पश्चात् 'संगीत अध्यापक' परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ। आज मैं सचमुच सङ्गीत अध्यापक हूँ। गत बीस वर्षों से उसी पावन मन्दाकिनी का पुजारी हूँ। जो भगीरथ भातखण्डे की साधना से सतत् प्रवाहित है। जब पिछले जीवन की ओर मुड़ कर देखता हूँ तो आश्चर्य ही नहीं, असम्भव-सा लगता है। और तभी भातखण्डे जी का उदार ओजपूर्ण व्यक्तित्व सहसा स्पष्ट होने लगता है। यह परिवर्तन उनके महान् दर्शन की ही तो प्रेरणा है। आज भी जब नगर में कोई खेलकूद की प्रतियोगिता होती है तो पैर अनजाने ही उस ओर बढ़ जाते हैं। रेडियो पर प्रसारित क्रिकेट की कामेन्टरी अनजाने ही कान सुनने लगते हैं। पर जब सङ्गीत विद्यालय में साधारणतः छात्र-छात्राओं के स्वर कानों में पड़ते हैं, एक अनूठे आत्मसंतोष से जी भर उठता है। अनोखे आत्म-गौरव से ग्रीवा तन जाती है और झुक जाता है मेरा सिर उस महान् पुरुष की स्मृति में, जिसके दर्शन मात्र ने बदल दीं मेरी राहें और जिन्दगी !

रावसाहब के शब्दों में उनकी अपनी कहानी

श्री दाराबशा एम. कात्रक, बम्बई

दिनांक ९ अगस्त १९३२! इसी दिन मित्रवर पंडित भातखण्डे ने अपना आत्मवृत्त संक्षेप में मुझको बताया था। मेरे बार-बार अनुरोध करने पर उन्होंने मुझसे वायदा किया था कि सायंकाल में जब घूमने चलेंगे तब अपना आत्मवृत्त सुनाऊँगा।

सायं ५ बजे एक भव्य व्यक्ति शांताराम हाउस, मलबार हिल से निकल कर चौपाटी को ओर जा रहा था। जैसी विशाल एवं विलोमनीय काया वैसी ही आकर्षक एवं वैशिष्ट्यपूर्ण वेशभूषा। प्रतिदिन इसी समय पर जब वे टहलने निकलते, मार्ग पर चलने वाले सभी व्यक्तियों का ध्यान अनायास ही उनकी ओर खिंच जाता। मलबार हिल का अंतिम ढलान वे उतर रहे थे कि मार्ग में ही आतुरता से मैं उनके साथ हो गया। अपने आश्वासन का स्मरण दिलाते ही संकोच, नम्रता तथा दायित्व की मिलीजुली छटा उनके मुख पर छलकने लगी। ढलान पार कर हम दोनों दरिया किनारे मैदान पर आ गये और एक बेंच पर

बैठ गये । सम्पूर्ण वार्ता अंग्रेजी में हुई, जिसे उसी समय कागज पर मैं लिखता गया । उनके वे शब्द आज भी कानों में गूँज रहे हैं । ऐसा लगता है मानों अभी-अभी उनसे बात करके आया हूँ । उस दिन के वे कागज, जो मेरे पास एक धरोहर के रूप में आज भी सुरक्षित हैं, अपने परम मित्र की स्मृति को ताज़गी दिलाने की अभिलाषा से प्रस्तुत करता हूँ ।

"जन्म से ही बालकेश्वर के अपने पुश्तैनी मकान में मैं रहता आया । गायनोचित मधुर कंठ मैंने अपनी माताजी से पाया । शैशवावस्था में पाठशाला के स्नेह सम्मेलनों में कविता गायन के लिये प्रायः मुझे ही उपस्थित किया जाता था । हमारे घर के पास ही एक सज्जन, रहते थे जिनकी आयु ५० वर्ष की थी । पन्द्रह वर्ष की मेरी अवस्था के समय उन्होंने सितार पर शास्त्रीय संगीत की मुझे प्रारंभिक शिक्षा दी । संगीत से मेरा लगाव जन्म से ही था । शिक्षा का अवसर पाते ही अपने इन आद्य गुरुजी की समग्र विद्या मैं आत्मसात् कर अन्य एक वैश्य जातीय सितारिये से आगे की शिक्षा लेता रहा । जूनियर बी० ए० की कक्षा तक यह क्रम चलता रहा । संगीत में अत्यधिक रुचि रखने के कारण कालेज की इस परीक्षा में एक बार मैं असफल भी हो गया । बालकेश्वर तालाब के पास टहलते हुये मि० हार्ट नामक एक स्माल-काज कोर्ट के वरिष्ठ न्यायाधीश से मेरी भेंट हुई । उस दिन छुट्टी थी, अतः वार्तालाप विस्तार से हुआ । हमारे कुटुम्ब की आर्थिक परिस्थिति संतोषप्रद न होने के कारण श्री हार्ट महोदय को मैंने अपनी अड़चनें बतायीं । परिणामस्वरूप उनके ही कोर्ट में रजिस्टर क्लर्क के स्थान पर सात रुपये मासिक वेतन पर उन्होंने मुझे रख लिया । कुछ ही समय बाद श्री हार्ट हाईकोर्ट में चले गये और मेरी अपनी समस्याएँ मुझे पुनः सताने लगीं । पिताजी के एक मित्र श्री शांताराम जी वकील थे, उन्होंने एक कारखाने में पचीस रुपया माहवार पर मुझे एक दूसरी नौकरी दिलायी । बी० ए० की परीक्षा मेरी अभी तक शेष थी । दफ्तर से तीन माह की छुट्टी लेकर सन् १८८१ में यह परीक्षा मैंने उत्तीर्ण की । इसी वर्ष पिताजी स्वर्गवासी हुए और अपनी विधवा माता, छोटे भाई के भरण-पोषण का सार संपूर्णतः मुझ पर आया । सन् १९०० में धर्मपत्नी के परलोक सिधारने के बाद केवल तीन वर्ष में अपनी एकमात्र पुत्री को भी मैंने खोया । इसके उपरान्त सन् १९१७ में माताजी के स्वर्गवासी हो जाने पर तो सभी पारिवारिक दायित्वों से मैं पूर्णतः निवृत्त हो गया । धर्मपत्नी के निधन के समय कुछ दिन के लिये एल्फिन्स्टन हाईस्कूल में शिक्षा भी देता रहा । इसी विद्यालय के श्री शपूर स्पेन्सर नामक सज्जन से मेरी घनिष्ठ मित्रता थी । इन्हीं के कारण गायनोत्तेजक मंडली से मेरा संपर्क हुआ । पिताजी कुछ कर्ज छोड़ कर गये थे । अपनी पचीस रुपया माहवार की आमदनी कुटुम्ब के भरण-पोषण के लिये ही पर्याप्त नहीं थी, पिताजी का कर्ज मैं कहाँ से चुकाता ? श्री शांताराम जी से उत्साह पाकर एल० एल० बी० करने का मैंने निश्चय किया । कालेज के शुल्कादि की व्यवस्था श्री शांताराम जी ने ही कर दी । बस, फिर क्या था । यह परीक्षा भी उत्तीर्ण कर डाली । उस समय शांताराम जी कराची में शिक्षण कार्य करते थे । अतः उनके पीछे कराची हाईकोर्ट की सनद लेकर वहाँ पहुँच गया । वहाँ पर मेरा काम काज ठीक ही चल रहा था । कुछ धन भी अर्जित कर लिया था, इतने में माताजी अस्वस्थ हो गईं और मुझे बम्बई लौटना पड़ा । शांताराम जी ने बम्बई में ही स्थायी रूप से रहने

की तब मुझे सलाह दी, जो मुझे स्वीकार करनी पड़ी। परन्तु हाय! थोड़े से ही समय बाद मुझे एकाकी छोड़कर वे स्वयं ही परलोक सिधार गये।

मेरे मित्र श्री शपूर स्पेन्सर इस समय तक वकील हो चुके थे। वे पुलिस कोर्ट के मामले चलाते थे। उनके दफ्तर में ही मैं काम करने लगा और स्माल काज कोर्ट के मामले मेरे पास आने लगे। इस प्रकार बम्बई में भी वकालत का मेरा कामकाज पुनः एक बार सुव्यवस्थित हो गया। शीघ्र ही मैं अपना स्वयं का कार्यालय पृथक् रूप से खोल सकने में सफल हुआ।

परम मित्र शांताराम के जामाता श्री सीताराम इन्हीं दिनों में अचानक स्वर्गवासी हो गये। वे अपने पीछे छः तथा चार वर्ष के दो बालक छोड़ गये थे। इस कुटुम्ब की देख-भाल का सारा दायित्व मुझे ही स्वीकार करना पड़ा। श्री शांताराम के महद् उपकार मैं भूल न सका। उन्हीं से उत्साह, सहाय्य पाकर मैं अपना जीवन सुव्यवस्थित कर सका था। इन बच्चों का संरक्षक अब मुझे ही बनना पड़ा। तब से इसी कुटुम्ब के साथ मैं रहता हूँ। वर्ष में छः माह मालाड के बँगले में और छः माह बम्बई में। बान्द्रा तथा थाना की अदालतों में मेरी वकालत अच्छी चल रही थी। गायनोत्तेजक मंडली का भी अवैतनिक सदस्य हो गया था। मंडली की कार्यकारिणी में भी चुन लिया गया था। सुन्दर एवं निकट-वर्ती अनेक गायक-वादक हमारी इस मंडली में प्रायः आते रहते थे। उनसे मेरा सम्पर्क हो जाता तथा सद्यः संगीत की विपुल सामग्री एकत्रित करने का मुझे सुयोग प्राप्त हुआ। इसी बीच एक शास्त्री महाराज से मेरा परिचय हुआ। संस्कृत भाषा में लेखन तथा छंदो-बद्ध रचना करने का उनसे मैंने विधिवत् शिक्षण लिया। बिना शास्त्राधार के संगीत कला की उन्नति होना असंभव जानकर 'लक्ष्यसंगीत' की रचना करने को मैंने सोचा। लक्ष्यसंगीत का लेखन पूर्ण हो जाते ही इस पुस्तक पर विस्तृत रूप से टीका लिखने की बात सोची। हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति नामक इस ग्रंथमाला के तीन भाग अब तक लिख चुका हूँ।

सन् १९०३ में अपनी पुत्री का देहावसान हो जाने पर संसार से मुझे विरक्ति होने लगी। देशभर के भ्रमण की इच्छाएँ जागृत हुईं। संगीत से संबंधित जो-जो बातें देश में मौजूद थीं, उन्हें वहाँ स्वयं जाकर देखने, जाँचने-पड़तालने और सीखने की इच्छा होने लगी। स्थान-स्थान से प्राप्त की हुई संगीत की जानकारी बहुत विशाल मात्रा में मेरे पास इकट्ठी हो गई थी। ज्यों-ज्यों विद्या अर्जित करता गया, संगीत के अध्ययन, गवेषण, अनुसंधान में ही अपना उर्वरित आयुष्य लगा देने को सोच लिया। क्रमिक पुस्तक मालिका के सभी भाग मेरे अभी तक के अखण्ड संकलन का परिणाम हैं।

बम्बई में दो-तीन विद्यालयों द्वारा संगीत का शिक्षण और प्रसार मैंने अब तक किया है। बहुत परिश्रम के बाद सन् १९२५ में लखनऊ में मैरिस कालेज आफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक की स्थापना कर सका। बड़ौदा, ग्वालियर, रामपुर, नवानगर आदि देशी रियासतों में संगीत के विद्यालय स्थापित कर सकने में सफल हुआ हूँ। जहाँ पर भी अवसर मिला, संगीत की अच्छाइयों की ओर सभी का ध्यान आकर्षित करता आया हूँ। उपरोक्त सभी विद्यालयों में मैंने स्वयं शिक्षा प्रदान की है। संगीत द्वारा किसी भी प्रकार का आर्थिक लाभ

न स्वीकारना मेरा नियम है। द्रव्य के रूप में कोई भी पारिश्रमिक स्वीकार न करने की शपथ मैंने स्वयंस्फूर्ति से ग्रहण की है।

आज १९३२ का अगस्त मास चल रहा है। ७३ वर्ष की मेरी अवस्था हो चुकी है। मन की उड़ान के साथ शरीर काम नहीं करता। कुछ बहरा भी हो गया हूँ। रक्तचाप के कारण शरीर जीर्ण हो गया है। निद्रादोष का भी शिकार हूँ। शांतिपूर्वक सो जाने का प्रयत्न करता हूँ तो मस्तिष्क में भिन्न-भिन्न प्रकार की सुरीली, बेसुरीली ध्वनियाँ उठने लगती हैं। बस ! यही है मेरी इस क्षरण तक की अपनी कहानी है।

चलिये, पर्याप्त समय बीत गया। आज की चर्चा के लिये आपने भी क्या बेतुका विषय चुन लिया। अपनी स्वयं की बातें कहीं कहने-सुनने का विषय होता है ?"

संत और कैसे होते हैं ?

श्री गजानन नारायण रातांजनकर, बम्बई

पंडित जी का दर्शन-परिचय, संभाषण तथा सहवास सन् १९२३ से लेकर उनके निर्वाण समय तक अति निकट रूप से मुझे प्राप्त हुआ। इसके पूर्व अर्थात् सन् १९११-१२ में उनसे संबंधित केवल दो घटनाएँ मुझे याद हैं। उस समय हम लोग बम्बई में दो हाथी के समीप मंगलदास बाड़ी (जिसे आजकल त्रिभुवन रोड कहते हैं) के पास रहते थे। पिता जी कुछ दिनों के लिये छुट्टी पर थे। एक दिन मैंने देखा कि पिता जी किसी एक मोटी-सी पुस्तक, जो मराठी में लिखी हुई थी, पढ़ने में व्यस्त हैं। उस दिन सारी रात जाग कर किसी उपन्यास की भाँति पुस्तक को उन्होंने पढ़ डाला। उस पुस्तक में इतना क्या आकर्षण था, मैं समझ न सका। इसी पुस्तक के साथ-साथ देवनागरी लिपि में लिखी हुई दूसरी एक पुस्तक भी वे बीच-बीच में देखते रहते थे। दो-एक बार पुस्तक में झाँक कर मैंने देखा, जहाँ तहाँ "मेले, मेले" लिखा हुआ था। यह दूसरी पुस्तक मराठी भाषा में तो थी नहीं। आसावरी मेले, पूर्वी मेले, तोड़ी मेले और न जाने कितने ही "मेले" पुस्तक के उन पृष्ठों में मैंने पाये। आगे चल कर जब मैं समझने लायक हुआ, तब ज्ञात हुआ कि पिता जी को मोहित करने वाली वह दोनों पुस्तकें पंडित भातखण्डे द्वारा लिखित 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति' का प्रथम भाग तथा 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्' थीं। बाद में पिताजी ने ही हमें बताया कि पंडित जी की वे दोनों पुस्तकें समग्र पढ़ने के बाद मेरा यह दृढ़ विश्वास हुआ है कि "वर्तमान समय में पंडित भातखण्डे ही एक मात्र व्यक्ति हैं जो हिन्दुस्तानी संगीत में वास्तविक अधिकार रखते हैं।" पिता जी को संगीत से शौक तो था ही, परन्तु संस्कृत भाषा का भी उन्होंने गहन अध्ययन किया था। संगीत पर लिखा हुआ बहुत-सा परिचित साहित्य उन्हें अवगत था, और इसीलिये पंडित जी की इन दोनों पुस्तकों का एकाग्र चित्त से उन्होंने आमूलाग्र सूक्ष्म अध्ययन किया। उनकी इस ग्रंथमाला में अनेक विषयों की सहज एवं सुव्यवस्थित रचना, विचार प्रणाली, विषय प्रतिपादन करने की शैला, पुरानी निराधार कल्पनाओं व

मान्यताओं को अंधश्रद्धा से न दोहरा कर समंजस एवं तर्क शुद्ध विवेचन करते हुए आदान-प्रदान करने की प्रवृत्ति, प्रतिपाद्य विषय सुलभ, आकर्षक तथा विनोद-प्रचुर भाषा में समझाने के उनके प्रयासों के कारण स्वयं मराठी भाषा पर्याप्त समृद्ध हो चुकी है। संगीत विषय को कुछ समय के लिये दूर रखने पर भी 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति' की इन चारों पुस्तकों ने मराठी वाङ्मय की गौरवशाली वृद्धि की है। परन्तु बड़े खेद का विषय है कि इस ग्रंथ माला का गौरव तो क्या उसका साधारण उल्लेख अथवा परामर्श भी हमारे मराठी के वाङ्मय पंडितों ने अभी तक यथायोग्य नहीं किया। इनमें से अधिकांश पंडितों ने तो स्वयं संगीत विद्या को ही पर्याप्त महत्व नहीं दिया है, अतः इन पुस्तकों के प्रति उनकी उदासीनता अथवा अज्ञानता कोई आश्चर्य का विषय नहीं है। कालायतस्मैनमः।

इसी समय की दूसरी एक घटना आज भी मेरे स्मरण में है। उपरोक्त दोनों पुस्तकों का अध्ययन कर चुकने के बाद पिता जी मेरे ज्येष्ठ भ्राता को पंडित जी के पास बार-बार ले जाने लगे। स्वयं पंडित जी उन्हें शिक्षा देने लगे। घर लौटने पर पिता जी के समक्ष बड़े भाई साहब को उन गीतों पर खूब अभ्यास करना पड़ता। वे सब गीत आज भी हमारे कुटुम्बियों को कंठस्थ हैं। उनमें से कुछ गीतों का स्मरण होते ही पंडित जी, पिता जी तथा ज्येष्ठ भ्राता इन तीनों में संगीत की जो मनोरंजक चर्चाएँ होती थीं, वह सारी घटनाएँ चित्रवत् सामने आती हैं।

इसके बाद पिताजी का बम्बई से स्थानान्तरण हुआ। समय-समय पर उनकी चिट्ठियाँ आती रहती थीं। पंडित जी के हस्ताक्षर से हम लोग भली-भाँति परिचित थे। उनका हस्ताक्षर सुंदर, घुमावदार तथा विशिष्ट ढंग का था। अर्थात् वाक्य पूर्ण होने तक मूलाक्षर तथा शब्द कहीं भी पृथक न लिखने के कारण वह शृंखला के समान एक में एक जुड़ा हुआ प्रतीत होता था। अंग्रेजी भाषा पर उनका कैसा प्रभुत्व था, यह समझ पाने की मेरी आयु उस समय नहीं थी। १९२०-२२ की कालावधि में पंडित जी द्वारा लिखित 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति' के तीनों भाग पढ़ चुकने के कारण मैंने उनसे अप्रत्यक्ष परिचय प्राप्त कर लिया था। उनके छायाचित्र भी देखे थे। बाद में १९२३ में बंबई वापस लौटने पर उनके दक्षिण-पूर्व तथा उत्तर भारत के प्रवास का वृत्तांत मेरे देखने में आया। उसे पढ़ने तथा प्रतिलिपि बनाने के कारण मेरा उससे अधिक परिचय हुआ। साक्षात् दर्शन होने के पूर्व इतनी भूमिका तैयार हो जाने पर मेरे मन में पंडित जी के विषय में पूज्य-भाव, अभिमान तथा कुतूहल जागृत होना स्वाभाविक ही था।

सन् १९२३-२५ के दरम्यान पंडित जी के प्रत्यक्ष दर्शन का, चौपाटी पर उनका वार्तालाप सुनने का, प्रसंगवशात् संभाषण का, उनके व्याख्यानादि सुनने का, शारदा संगीत विद्यालय में साप्ताहिक पाठ सुनने तथा ग्रीष्मावकाश में मालाड के बँगले में एक विशाल आम्रवृक्ष के नीचे मेरे ज्येष्ठ भ्राता डा० श्रीकृष्ण रातांजनकर तथा पंडित वाड़ीलाल को तालीम देते समय श्रवण करने का सुयोग मुझे प्राप्त हुआ। पंडित जी का प्रथम दर्शन सालिसिटर सुकथनकर जी के निवास स्थान पर पंडित जी के अध्ययन कक्ष में हुआ था। देखते ही उनके विलोमनीय व्यक्तित्व का मेरे मन पर अमिट प्रभाव हुआ। मैं अनुभव कर रहा

था कि किसी व्यक्ति को छायाचित्र में देखना और उससे प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने में कितना अधिक अंतर रहता है।

क़द की ६--६। फीट की ऊँचाई, गौरवर्ण, लंबे हाथ पैर—मानों आजानुबाहु—विस्तीर्ण कान, सरल, दीर्घ और नोंकदार नासिका, विशाल भालप्रदेश, बड़ी-बड़ी आँखें, सतेज सौम्य परन्तु क्षण में ही समस्त आकलन करने वाली तीक्ष्ण दृष्टि, हृदयस्पर्शी, धारा प्रवाही तथा मधुर वाणी, चलना शीघ्र और लम्बी डगें डालते हुए, बूट, पैंट, शर्ट, जाकिट और उसी में लटकती हुई पाकेट वाच, ऊपर पारसी बंद-कालर का लम्बा कोट, पूनाशाही पगड़ी तथा कंधे पर दुपट्टा आदि वेषभूषा जो कि उस समय के प्रचलन के अनुसार थी। ऐसे भव्य व्यक्ति से केवल बातचीत करना भी सर्वसाधारण के लिये कितना कठिन है, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। इसकी अनुभूति मुझे चौपाटी पर हुई। अक्सर आगंतुकों में से कई लोग उनके साथ चर्चा करते समय घबराहट अनुभव करते थे। वे स्वयं वकील होने के कारण अपनी बात सरल, सावकाश एवं क्रमबद्ध रीति से कहते थे। फिर भी सामने वाला व्यक्ति बीच-बीच में अटकते हुए, शब्दों की पुनरुक्ति करता अँ,...अँ....अँ आदि जैसे निरर्थक शब्द प्रयोगों का बीच-बीच में उच्चार करते हुए समय व्यतीत करता रहता। ऐसे प्रसंग मेरे लिये बहुत मनोरंजक होते थे। प्रतिदिन सायं ५।। से ७।। बजे तक चौपाटी पर विल्सन कालेज के सामने वाले किसी बेंच पर वे अक्सर बैठा करते थे। वालकेश्वर से डेढ़ मील की ढलान उतर कर आना व पुनः चढ़कर जाना—यह उनका परिपाठ व्यायाम के लिये ही था, ऐसा मुझे लगता है। चौपाटी पर प्रतिदिन भेंट करने वाले व्यक्तियों में मुख्यतः पंडित बाड़ीलाल, शंकरराव कार्नाड, द० के० जोशी, मेरे भ्राता एवं पिताजी आदि थे। इसके अतिरिक्त नगर महापालिका का संगीत शिक्षक वर्ग, कुछ संगीतप्रेमी पारसी सज्जन, संगीत के अन्य रसिक, कोई खाँ साहब आदि भी कभी-कभी उनसे भेंट करने आ जाते थे। नियमित रूप से तो नहीं परन्तु कभी-कभी पिता जी के साथ में भी जाता रहता। वहाँ पर होने वाली चर्चा केवल संगीत पर ही होती थी। अन्य विषयों में पंडित जी कदापि रुचि न दिखाते थे। एकत्रित सज्जन प्रायः श्रोताओं की भूमिका ही करते रहते। भाषण पंडित जी का ही चलता रहता था। वे इतना आकर्षक बोलते कि सुनते मन नहीं अघाता। कितना समय बीत गया कितना शेष रहा—किसी को इसकी सुध न रहती। उनके साथ बोलते समय उनके व्यक्तित्व के प्रभाव में आकर अनेक सज्जन व्यर्थ ही घबराए हुये प्रायः देखे जाते। किसी बात की मामूली-सी सूचना देने के लिये आया हुआ व्यक्ति वाद्य संगीत के जल्से को गायक की बैठक कह देता, तो जल्से की तारीख बताने में भूल कर देता। उस पर फिर हँसी-मज़ाक चलता। अनेक प्रश्न पूछे जाते, तब कहीं बेचारा अपने मनोगत भाव सुस्पष्ट कर पाता।

गायक-वादकों के साथ वे किस प्रकार चर्चा करते, इसका विस्तृत वर्णन उनके लेखों में जहाँ-तहाँ पाया जाता है। ऐसे ही एक खाँ साहब के छद्मी परन्तु उद्दाम बातचीत का अपनी विलोमनीय संभाषण पद्धति से उन्होंने दृष्टान्त दिया था। उन खाँ साहब की (जिनका नाम उन्होंने नहीं बताया) खास तालीम अपने पुत्र को दिलवाने के लिये एक सज्जन उनके पास गये और कहा—"खाँ साहब, वैसे तो इस लड़के को बहुत अच्छी तालीम मिल

चुकी है। वह तैयार भी काफ़ी हुआ है। फिर भी आप उसमें कुछ मिर्च-मसाला डाल दें तो बड़ी कृपा होगी।" खाँ साहब ने उत्तर दिया—"वाह, वाह! बहुत अच्छा। ज़रा सुन तो लूँ लड़के को।" सज्जन ने झट तानपुरा उठाया और गाने के लिये लड़के को आदेश दिया। लड़के ने अपने चढ़े हुए राग में एक ही गीत बड़ी तैयारी से गाकर दिखाया। गाना जब तक चल रहा था, खाँ साहब निस्तब्ध होकर सुन रहे थे। आध-पौन घंटे में समाप्ति के बाद उक्त सज्जन ने बड़ी आशाभरी दृष्टि से खाँ साहब की ओर देखा! खाँ साहब ने उत्तर दिया "अरे साहब, कब से मैं ताक रहा था कि कुछ नज़र आवें तो झट से मिर्च-मसाला छोड़ दूँ। किन्तु हाँडी में तो कुछ भी नहीं है। मसाला डालूँ तो किसमें डालूँ।"

शैशवावस्था से ही बुरे संस्कार लगे बालकों को शिक्षा देना कितना कठिन हो जाता है—इस संबंध में बोलते हुए एक छोटा-सा संवाद उन्होंने सुनाया था। मांसाहार की आदत लगे हुए पाँच-वर्ष के बालक को पंडित जी ने कहा, "सुना बेटे! वह मुर्गी अपने चूजों को दाना चुगने के लिए कैसे सिखा रही है? अपने बच्चों से उसे कितना प्यार है। उनमें से एक भी यदि दृष्टि से ओझल हो जाय तो वह कितनी व्याकुल होती होगी? एक भी चूज़ा यदि हम मारके खा जायँ तो वह कितना क्रूर कार्य होगा? बिचारी उस माँ की क्या दशा हो जायगी, इसका तुम्हीं विचार करो।" लड़के ने तुरन्त उत्तर दिया—"ठीक है, तो अपन उस माँ को ही खा डालें।"

मेरे बंधु की शरीर यष्टि बाल्यकाल से ही दुर्बल तथा नाजुक थी। जिसे देखकर पंडित जी को बहुत चिंता लगी रहती। स्वास्थ्य की ओर ध्यान देने के लिए वे सदैव कहते रहते। भाई साहब की मामूली-सी बीमारी पर वे चिंतित हो जाते। पिता जी की पंडित जी पर असीम श्रद्धा थी, अतः पंडित जी भी भाई साहब पर पुत्रवत् स्नेह करते। सन् १९२२ की दीपावली के अवसर पर केवल चार दिन के लिए हम सभी भाई-बहिन अपने ननिहाल गये हुए थे। भाई साहब को अचानक विषयमज्वर हुआ और मामा के यहाँ चार दिनों का हमारा वास्तव्य लगभग एक मास तक बढ़ाना पड़ा। मामा का पंडित जी से थोड़ा-बहुत परिचय था। शाम को दफ्तर से लौटते समय चौपाटी पर कभी-कभी पंडित जी से भेंट हो जाती थी। भाई साहब की बीमारी में ऐसे एक दिन उनकी भेंट हुई। पंडित जी ने अत्यंत गंभीर आवाज में कहा, "मामा साहब, आप पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ी है। औषधोपचार-पथ्य आदि के विषय में उदासीन न रहिये। भानजे की बीमारी में किंचित् भी लापरवाही न कीजिये।" मामा साहब इस विषय में तत्पर तो थे ही, परन्तु पंडित जी की सूचना का मर्म समझकर उन्होंने उपचारादि की पराकाष्ठा कर दी और अपनी जिम्मेदारी यशस्वी रीति से निभाई। इसी वर्ष मार्च में हम लोग बड़ौदे में थे। भाई साहब को माता का प्रकोप हुआ। आत्मीयता से भरे हुए पत्र बार-बार भेज कर वे चिंता व्यक्त करते और समाचार भी पूछते रहते। सन् १९३२ में गर्मी की छुट्टियों में भाई साहब बम्बई आये हुए थे। एक दिन पंडित जी को कुछ पढ़कर सुनाने का प्रसंग आया। पढ़ने में उन्हें कष्ट हो रहा है—ऐसा जान कर पंडित जी ने कहा, "क्यों रे! तुझे पढ़ने में तकलीफ हो रही है क्या? चलो, अभी मेरे साथ चलो, आँखों की जाँच करा लो। आवश्यकता पड़ने पर चश्मे का उपयोग भी करो। मनुष्य की इन्द्रियों में आँखें बहुत महत्वपूर्ण और नाज़ुक होती हैं।

उन पर ध्यान न देना एकदम ठीक नहीं।" उसी समय से भाई साहब चश्मे का उपयोग करने लगे।

आधुनिक वैद्यक शास्त्र में नए-नए शोध, नई-नई बीमारियाँ, उनकी चिकित्सा और निदान करने के विभिन्न साधनों के विषय में उनके पारिभाषिक शब्द पुराने लोगों को कैसे दुर्बोध हो जाते हैं और सुशिक्षित आदमी भी कैसे भौचक्के हो जाते हैं, इसका एक विनोदपूर्ण उदाहरण, जो स्वयं उनके विषय में ही था, उन्होंने बात-बात में ही कहा था। "एक बार अचानक सिर के दर्द के साथ मुझे हल्का-सा चक्कर आया। मैं तुरन्त डाक्टर के के पास पहुँच गया। पूरी जाँच कर लेने के बाद उन्होंने मुझे कहा, "कोई चिंता का विषय नहीं है। आपका ब्लड प्रेशर कुछ अधिक हो गया है।" इधर मुझे बहुत आनन्द हुआ। कुछ ताजगी भी महसूस करने लगा। ब्लड प्रेशर की बीमारी और उसका यह शब्द-प्रयोग, सारा ही मेरे लिये नयी बातें थीं। डाक्टर कह चुके थे, डरने का कोई कारण नहीं केवल ब्लड प्रेशर बढ़ा है। मैं समझ बैठा मेरे शरीर में रक्ताभिसरण बहुत अच्छा हो रहा है। अतः संतोष की साँस ली कि एक बहुत बड़ी चिंता से मुक्ति मिल गई।" उसी उत्साह में मेरे भाई साहब को नूतन गीत रचना करने की सूचना दी और उनसे कुछ गीत भी तैयार करा लिये। गीत उन्हें बहुत पसन्द आये। यही क्रम जारी रखने के लिये भाई साहब को प्रोत्साहन भी दिया।

कक्षा में अध्यापन करने की उनकी रीति सन् १९२३-२४ में मैंने देखी। तब शारदा संगीत मंडल में वे सिखाते थे। फोर्ट, बम्बई में नानाभाई लेन में एक मकान के आखिरी मंजिल पर यह मंडल था। किसी भी विषय को वे इतनी सहज और मनोरंजक पद्धति से समझाते थे कि सुननेवाला अनुभव करता, यह बात कितनी सहजसुलभ और साधारण-सी थी। सिखाने की उनकी इसी पद्धति ने कितने पारसी, गुजराती, बनिये, भाटिये व्यापारियों को गायन की शिक्षा प्रारंभ से ही करने के लिये उद्यत किया। अर्थात् बाद में लगन से अभ्यास करते रहने वालों की संख्या एक-दो तक सीमित रह जाती। परन्तु उनके व्याख्यान सुन कर संगीत की सर्वसाधारण कल्पना, वह कैसा सुनना चाहिये, उसमें महत्व की बातें क्या होती हैं और आडंबर की बातें कौनसी—इसकी इन सभी को यथार्थ कल्पना हो जाती। धनिक एवं वयस्क लोगों में संगीत के प्रति अनुराग वे इसी पद्धति से निर्माण कराते थे।

'खास' तालीम देने की उनकी रीति भी अपूर्व थी। जो श्री सुकथनकर जी के बँगले में एक तरफ बैठ कर मैंने कई बार सुनी थी। वैसे तो कई गुरु-शिष्यों की यह (खास तालीम) किसी संकेत स्थल पर चुपके-चुपके से दी हुई मैंने सुनी है। परन्तु उनमें से किसी भी तालीम में पंडित जी की तालीम जैसा निखार नहीं था। जो पाठ हो चुके हैं, उन्हीं को रटवाते रहना, स्थायी अन्तरे में इधर-उधर दुरुस्तियाँ करना, बोलाक्षरों का वजन ठीक करा देना, अपने साथ गाने के लिये कहकर जवाबदारियों से मुक्त हो जाना अथवा अपनी रियाज के समय पर शिष्य को बैठे रहने की अनुमति दे देना—इत्यादि बातों में ही सर्व साधारण शिक्षकों की यह खास तालीम जहाँ अटकी हुई रहती है, वहाँ पंडित जी द्वारा अपने शिष्यद्वय श्री बाड़ीलाल-रातांजनकर को दी हुई तालीम कितनी भिन्न थी। छोटे से छोटी बात का वे सांगोपांग विवेचन करते, ठेठ मूल में जाकर उसके इतिहास का अपने

अनुभवों पर विस्तार-पूर्वक विश्लेषण करते । गाते समय वे क्या-क्या कृत्य करते जा रहे हैं, इसका स्पष्टी-करण करते । गीत सिखाते समय बंदिश के अनुसार राग-विस्तार कैसा किया जाना चाहिए, उसी राग में विभिन्न बंदिशों की सहायता से बढ़त करते रहने पर राग-स्वरूप बिगड़ने का भय नहीं रहता है । उनके ऐसे प्रयोगों के प्रात्याक्षिक स्वयं उनके कंठ से ही मैंने अनेक बार सुने हैं । गीत सम्पूर्ण गाने के विषय में उनका विशेष आग्रह था । स्वरों के उच्चारण पर वे बहुत ध्यान देते । गायकी का क्रम, तानों का मर्यादित प्रमाण, उनका सुरीलापन, दानेदारपन की ओर बहुत ध्यानरखते । तानों की तोड़-मरोड़ न करते हुए लय के अनुसार किसी सुन्दर डिजाइन सहित सरलता से सम पर आना, विस्तार के समय ताल-विभाग के अनुसार पदच्छेद करना, विश्रांति-स्थानों का महत्व, विवादी-स्वर की मर्यादा तिरोभाव का उपयोग, गायन की ठसक सुरक्षित रखते हुए उसमें कढ़ी-भात की गन्ध न आने देना, गीत का अर्थ समझकर छोटी-बड़ी आवाज के साथ उसका शृंगार करना, तिहाईयों की बौछार न करते हुए बोल-तानें कहाँ और कैसी लेना, उन्हें कैसे शेष करना, सम पर कैसे आना, सम की राह में अटके न पड़े रहना, गानेवाला ताल के आधीन नहीं, किंतु ताल उसके आधीन है—इस आत्मविश्वास से बढ़त करना, सरगम का अतिरेक न करते हुए लय और ताल से क्रीड़ा करना, आसपास के रागों का जानबूझ कर आभास दिखाते हुए पुन:-पुन मूल राग पर वापस आना इत्यादि बातें तालीम के समय वे स्वयं गाकर समझाते थे । तब मैं अवाक रह जाता था । मुझे शंका है कि ऐसी तालीम कहीं पर कोई देता होगा । उनकी ऐसी भी मान्यता थी कि तालीम के अतिरिक्त कलाकार में अपनी स्वयं की प्रतिभा होनी चाहिए और वही उसे समाज में आदर का स्थान दिलाती है । ऐसे सुसंप्रदायी एवं प्रतिभावान कलाकार कला में जब वैचित्र्यय दाखिल करते हैं तब कला को अपना लक्षण भी बदलना पड़ता है । संगीत में परिवर्तन जन्मसिद्ध कलाकार ही ला सकते हैं । सामान्य गायक यदि उपरोक्त बातों की ओर ध्यान देता रहे तो अपना गायन मधुर और चित्तवेधक बना सकता है ।

उनका वह गायन सुनकर मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि "पंडित जी गाते नहीं थे, केवल शास्त्रकार थे" ऐसी आलोचना करने वाले बहुत बड़ी भूल करते हैं । वे यदि उनके गायन को न सुन सके, अथवा उनके गाने की ध्वनि-मुद्रिकाएँ आज प्राप्त नहीं हैं, तो क्या वे गा ही नहीं पाते थे, ऐसा कहना क्या तर्कशुद्ध है ? रात्रि में यदि सूर्य-दर्शन न होता हो तो क्या सूर्य का अस्तित्व ही नहीं माना जाता ? जिसने संगीत-शास्त्र का सम्पूर्ण अभ्यास किया, पुराने ग्रंथों को ढूँढ़कर निकाला, उनका अभ्यास किया, समूचे देश में भ्रमण कर समस्त विद्वानों से चर्चा की, अनेक किस्म के गायक-वादकों को सुना, योग्यता-प्राप्त कलाकारों से संगीत का प्रात्याक्षिक अभ्यास किया, उनके गीतों की ध्वनि-मुद्रिकाएँ उस ज़माने में लीं, अपने समय में कला का स्वरूप जैसा था उसी प्रकार उसका शास्त्र बनाया, हजारों गीत प्रकाशित किये, उनके लिए सरल एवं सुबोध स्वर-लेखन-पद्धति तैयार की । विभिन्न स्थानों की गायन-पद्धति में एकवाक्यता लाने के लिये सम्मेलन बुलवाए, इस विद्या के लिए इतना विस्तृत कार्य किया कि जो अन्य किसी व्यक्ति को अनेक जन्मों में संभव न हो पाता । उनके सम्बन्ध में उनके साहित्य-सृजन और परिश्रम पर विचार न करते हुए कुछ भी कह देना कि उन्हें गाना नहीं आता था, अपने आपको अंधा सांबित करना है । मानता हूँ कि उन्होंने

जल्से गरजाये नहीं, रात-रात भर की महफिलों में तहलका नहीं मचाया, ग्रामोफोन की चूड़ियाँ नहीं भरीं और न ही कहीं कथा और कीर्तन किये। उन्हें इन बातों की क्या आवश्यकता थी ? क्या द्रव्य संचय करना था ? किसी की खुशामद करनी थी, कीर्ति अथवा प्रसिद्धि अर्जन करनी थी ? संगीत की निरपेक्ष सेवा ही उनका एकमेव ध्येय था। पुराने संगीत के अनुसार प्रचलित प्रणाली को, कला को ग्रन्थबद्ध करने की अपनी उद्देश्यपूर्ति के लिए इन सब भड़कीली बातों को तिलांजलि दी। संगीत का पेशा अथवा व्यापार करना उन्होंने कदापि स्वीकार नहीं किया।

प्रसिद्धि, प्रचार, विज्ञापन, परचे-बाजी इन सब आडम्बरों से उनका तीव्र विरोध था। भाईसाहब को वे सदैव जताते, "बाबू ! अखबारबाजी के लालच से तुम सदैव अलिप्त रहो, एक बार उसमें फँस जाने पर प्रगति तो छोड़ोगे ही, स्वत्व भी खो बैठोगे। प्रसिद्धि के साथ-साथ उसके अन्य दूत भी पीछे लग जाते हैं। ऐसे लोगों की दृष्टि बाजारू होने से वे स्वयं अपना ही लाभ देखते रहते हैं। प्रसिद्धि पाते ही अहंकार का प्रादुर्भाव होता है। और स्वयं के अतिरिक्त सर्व-जगत् तुच्छ लगने लगता है। स्वयं अपने को छोड़कर किसी बात पर विचार नहीं कर सकता। अर्थात् यहीं पर आत्मोन्नति शेष हो जाती है। प्रसिद्धि पाते ही उसको टिकाने की आवश्यकता पड़ने लगती है। और फिर अपने भक्त-गण जो कि उसका प्रचार करते रहते हैं, उन्हें सन्तुष्ट रखना आवश्यक हो जाता है। सामान्य-श्रोताओं की चाह के अनुसार गाना पड़ता है। अर्थात् अपनी तालीम, अपनी कला को एक ओर रखकर लोग जैसा माँगेंगे, वैसी महफिलें रँगानी पड़ती हैं। प्रसिद्धि के नये-नये तन्त्र सम्हालते रहने में कहाँ का स्वातन्त्र्य और कहाँ का स्वत्व ? ऐसे दाम्भिक, मतलबी भक्तों के ताल पर स्वयं भगवान् को भी नाचना पड़ता है। यह सब टालना हो तो "स्तुति" जो कि प्रायः खुशामद ही होती है, के वशीभूत न होना चाहिए। वस्तुतः स्तुति सुनकर आनन्द तो होगा ही, परन्तु अपने यश का श्रेय स्वयं की ओर न लेते हुए भगवान् अथवा गुरु की कृपा समझकर उनका ऋणी होना चाहिए। स्तुति के भुलावे में न आना है तो अत्यन्त कठिन; परन्तु यह साध्य हुआ तो जीवन तथा कष्ट-साध्य-विद्या सार्थक होती है। नहीं तो प्रवाह में बहने वाले अपन भी एक ! मैंने किया, मैंने गाया, मैंने लिखा, इस प्रकार के सभी मैं...मैं...मैं...को भूल जाना चाहिये। उसके प्रति ममत्व स्वयं उस 'मैं' का ही सर्वनाश करता है।" इस प्रकार के उनके बोध-प्रद विचार लखनऊ में कुछ दिनों के लिए मैं भाईसाहब के पास था, उस समय रात्रि में भोजन के पश्चात्, मैंने प्रायः सुने हैं।

गीतबेलि मुरझाई जात रही, भरतखण्ड,
श्रम को जिन नीर दियो, चतरा की रति अखण्ड ॥ स्थायी ॥
पनप रही प्रतिदिन, फूलेगी एक बार,
विकसेंगे पुष्प बहु, दृढ़ आशा है गोविंद ॥अंतरा १॥
चरन कमल बिनती, कर जोर करें निसदिन ही,
किरपा की वृष्टि करो, हम हैं सब बालवृन्द ॥अंतरा २॥

(काफी, एक ताल में निबद्ध) —आचार्य गो० ना० नातू

प्रसिद्धि के साथ-साथ धन-दौलत, बड़प्पन, कीर्ति इनके विषय में भी वे घृणा करते। "कीर्ति, यश अपने आप चरण छूने लगते हैं। उसके लिए खटाटोप क्यों? और न भी आई तो कहाँ क्या बिगड़ा? अपनी बुद्धि के अनुसार जो अच्छा लगता हो, उसे निष्कपट-वृत्ति से कर देना चाहिए। ग्राह्य हुआ तो लोग उसे स्वीकारेंगे ही, अन्यथा छोड़ देंगे। अच्छा न लगने पर भी लोगों को उसे स्वीकार करना चाहिए, ऐसा दुराग्रह क्यों? उन्होंने उसे टाल भी दिया तो भी विषाद क्यों?

अंगीकृत-कार्य पूर्ण होते ही कृष्णार्पण कर देना चाहिये। स्वीकार हुआ अथवा अस्वीकार हुआ, स्तुति हुई अथवा निंदा हुई, आलोचना हुई; अथवा समालोचना हुई; इसकी चिन्ता क्यों करना? कर्तव्य कर देने पर उसका फल भी 'मैं ही चखूँगा' ऐसा हठ क्यों? कर्म-फल पर आसक्ति नहीं होनी चाहिये। अपनी कृति का फल अच्छा हुआ अथवा बुरा, तुरन्त हुआ अथवा विलम्ब से—यह सारी पंचायत क्यों करनी चाहिए?" उनके ये सारे विचार सुनकर गीता के वचनों का पुनः-पुनः स्मरण होता रहता। जो कुछ उन्होंने क्रिया-सिद्ध किया वह केवल उन्हीं को संभव था। श्रीमल्लक्ष्यसङ्गीत लिखा तो वह चतुर-पंडित के नाम से, हिन्दुस्तानी-सङ्गीत-पद्धति लिखी तो विष्णुशर्मा नाम से, क्रमिक-पुस्तकें लिखीं तो वह पं० दत्तात्रेय केशव जोशी के नाम से। उनके इन विचारों के पीछे छिपी हुई निस्वार्थता, अहंकार शून्यता आदि गुणों का विपर्यास करते हुए कुछ मत्सरी, अहंमन्य एवं कुत्सित पंडितों का उनपर ढोंगबाजी का, छल-कपट का आरोप उनके पश्चात् इतने दिनों बाद करना स्वयं अपने को ही सनेत्र होते हुए भी अंधा साबित करता है। ये आरोप सूर्य पर थूकने जैसे गलिच्छ, दुष्ट और उद्दाम हैं। वे स्वयं बुद्धिमान्, विद्वान् वकील थे। क्या उन्हें यह मालूम नहीं था कि इतने परिश्रम के बाद एकदम नूतन, अपूर्व और तर्कशुद्ध लिखे हुए उनके ये अमौलिक-ग्रंथ सच्चे विद्वानों को मान्य होंगे ही? उसके लिये डरते हुए परदे के भीतर से सब कुछ देखते रहने की उन्हें क्या आवश्यकता थी? मुख-पृष्ठों पर अपना नाम अंकित न करने के पीछे कीर्ति-त्याग के अतिरिक्त और भी दो-एक कारण थे। एक कारण था—परंपरा। पंडितजी इष्ट-संप्रदाय के पक्षपाती थे। अपने यहाँ प्राचीन समय से विभिन्न-शास्त्रों पर एक विशिष्ट पद्धति से ग्रंथ लिखे जाते हैं। ग्रन्थ-कर्ता का नाम, ठिकाना, समय, इत्यादि व्यक्तिगत बातें अनुमान द्वारा अथवा भीतरी प्रमाणों द्वारा निश्चित करनी पड़ती हैं। इनका उल्लेख कहीं पाया भी गया तो स्पष्ट शब्दों में न करते हुए कूट-श्लोकों द्वारा किया जाता था। चाबी मिलने पर ही ताला खोलना सम्भव होता है। कृष्णार्पण, धार्मिक मनोवृत्ति, इत्यादि बातें ही इन सब का प्रमुख कारण थीं। जो असली स्वर्ण है वह चमके बिना कैसे रहेगा! वाचक उस पर टूट पड़ेंगे ही। नक़ली हुआ तो कालप्रवाह में लुप्त हो जावेगा। और यही परम्परा पंडित जी ने उठाई।

संगीत-विषयक सभी संस्कृत साहित्य उन्होंने देखा था। अन्य भाषाओं में अंग्रेजी, उर्दू, तेलुगु, तामिल, गुजराती की हस्तलिखित पुस्तकें प्राप्त कर उनके सस्ते संस्करण प्रकाशित किये थे। प्रचलित व ग्रन्थगत संगीत में पर्याप्त अन्तर पाया था। फिर भी विभिन्न स्थानों में आज गाये जानेवाले उत्तर-हिन्दुस्तानी-संगीत में कई स्थानों पर उन्हें समानता भी प्रतीत हुई। गत कई शताब्दियों में संगीत पर कोई अच्छा ग्रंथ लिखा नहीं गया था। अतः

प्रारम्भ में उन्होंने खूब अध्ययन करके अपनी एक निश्चित धारणा बना ली और तब प्रचलित-संगीत की बिस्तृत जानकारी देनेवाला ग्रन्थ लिखना प्रारम्भ किया। उन्होंने अनुभव किया कि किसी भी विशिष्ट कला अथवा शास्त्र पर लिखी पुस्तकों के विषय में अनेक समय तज्ञ-पाठक भी ग्रन्थकर्ता का नाम सुनते ही कुछ धारणाएँ बना लेते हैं। इस प्रकार का पूर्वाग्रह वाचकों में हो जाने पर तटस्थ-वृत्ति से उसका परिशीलन करना असम्भव हो जाता है। अधिक चिकित्सा न करते हुए या तो वे अवहेलना करते हैं अथवा प्रतिपादित विषय बिना सोचे-समझे मान लेते हैं। फलतः विद्या का हित पूर्ण रूप से नहीं हो पाता। ग्रंथ में प्रतिपादित-विद्या, उसके मूल तत्त्व, शास्त्र और उसका मर्म—यही बातें प्रमुख होती हैं। ग्रंथकर्ता एक गौण विषय हुआ। इसकी पूछताछ जो भी करते हैं वे केवल ऐतिहासिक-दृष्टि से करते रहते हैं। अतः चतुर पंडित, विष्णु शर्मा आदि उपनाम धारण करते हुए ग्रंथ लिखने में उन्होंने कौन-सा महापाप किया ? सज्जनों के साथ छल-कपट-निंदा त्रिकालाबाधित प्रथा है। फिर पंडित जी ही उसके लिए अपवाद कैसे हो जाते ? दुःख में सुख इतना ही है कि उनके जीवित रहते हुए तो किसी ने ऐसे गलिच्छ आरोप करने का दुस्साहस नहीं किया। निरुपयोगी तथा अनिश्चित विषयों की वे कभी चर्चा नहीं करते थे। 'श्रुति', उनके आन्दोलन, अपूर्णांक, कंपन-संख्या सर्वसाधारण कानों को आकलन न होनेवाले श्रुति-स्वर-स्थान, राग और रस, स्वर और रस, रागों के देवता, रंग, काव्य और संगीत, पशु-पक्षियों की आवाज के साथ स्वरों का रिश्ता, शरीरस्थ-नाड़ी-चक्र और उनके स्वरोत्पत्ति से सम्बन्धित विषयों पर अपना समय उन्होंने बर्बाद नहीं होने दिया। मनोरंजन के लिए दंत-कथाओं पर मार्मिक-चर्चा यदा-कदा की है, परन्तु उनका रहस्य जानने की स्वयं न कभी चेष्टा की और न ही अपने शिष्यों को इसकी सलाह दी।

पंडित जी की दिनचर्या निश्चित थी। केवल प्रवास में ही उसमें यत्र-तत्र परिवर्तन हो जाता था। सूर्योदय के पूर्व वे उठ जाते थे। शौच, मुख-मार्जन हो जाने पर केवल चाय लेते थे। उनका एक प्यारा-सा कुत्ता था, जिसे वे 'काली' नाम से पुकारते थे। चाय की केतली आते ही 'काली' कमरे में झाँकने लगता 'काली चलो आओ' इतना कहते ही जिस कुर्सी पर पंडित जी बैठे रहते उस पर अपने दोनों पैर जमा कर पीछे के दो पैरों पर खड़ा रहता। जब तक पंडित जी उसके कान न उमेठते तब तक 'काली, का समाधान न होता। कान उमेठना, फिर काली का चिल्लाना इत्यादि कसरत हो जाने पर इनामस्वरूप एक तश्तरी चाय उसे मिलती और तभी वह कमरा छोड़कर बाहर जाने के लिए राजी होता। अंतिम तीन वर्षों में जब पंडित जी अर्धांग-वायु से पीड़ित थे, उनका वह कुत्ता पलंग के नीचे सदैव बैठा रहता। पंडित जी का निधन हो जाने पर अन्न-जल ग्रहण न करते हुए मात्र तीन दिनों पश्चात् 'काली' ने भी शरीर त्याग दिया। चाय के उपरान्त स्नान और भोजन के बीचवाला समय छोड़कर अपराह्न चार बजे तक लेखन और वाचन चलता रहता। इसी बीच डाक में आये पत्रों का तुरन्त उत्तर भी लिखने बैठ जाते। यदि कोई भेंट करने आया तो उसे तुरन्त बुला लेते। संध्या समय पुनः चाय लेकर अपनी वह सुपरिचित पोशाक पहिनकर टहलने चले जाते। आठ, सवा-आठ बजे तक चौपाटी पर बैठे रहना, भेंट-चर्चाएँ करना उनका नित्य का क्रम हो गया था। रात्रि भोजनोपरांत काशी-विश्वेश्वर का नाम-

स्मरण करते हुए लगभग दस बजे सो जाते थे। अपने स्वास्थ्य की ओर वे बहुत अधिक ध्यान रखते थे और इसीलिये उनका आहार सादा, सात्विक और मर्यादित था। आवश्यकता से थोड़ा भी अधिक सेवन करने से वे बहुत डरते और सोचने लगते कि यदि अपचन हो गया तो स्वयं अपने को, दूसरों को कष्ट हो जावेगा। वार्धक्यावस्था में तो अपने खाने-पीने पर बहुत नियंत्रण रखते थे। मृत्यु के प्रति उन्हें सदैव भय रहता। क्योंकि वे ऐसा सोचते—यदि बीच में ही मर जाऊँ तो स्वीकृत-कार्य अपूर्ण रह जायगा। कभी-कभी विनोद करते समय भाईसाहब से कहते "बाबू ! मरण सचमुच बहुत बुरा है। बड़े-बड़े कार्यों की योजनाएँ बना रखना, फिर उस पर अमल करने की शुरूआत कर देना और अचानक यमराज का बुलावा आते ही सारे अध्याय की इतिश्री हो जाना, खेल आधा छोड़कर ऐसे भाग जाना कि फिर लौटने का नाम नहीं।" स्वीकृत-कार्य पूर्ण करने की उन्हें कितनी तीव्र लालसा थी ! एक क्षण भी वे न गँवाते। संसार अथवा अन्य कोई मायापाश उन्हें नहीं था। उनके लिए जो कुछ था वह केवल 'सङ्गीत'। अपने अपूर्ण कार्यों की उन्होंने एक लम्बी-सी सूची ही बना डाली थी, जो हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति के चतुर्थ भाग में प्रकाशित भी करवाई है।

मुझे एक भी प्रसङ्ग ऐसा याद नहीं कि जब पंडित जी नाराज हुए हों। प्रसन्न मुद्रा, हँस-मुख चेहरा, आनंदीवृत्ति रहते हुए जहाँ भी जाते, सुखद-वातावरण बना डालते। उद्वेगजनक अथवा निराशपूर्ण कोई बात हो जाने पर निर्विकार-मुद्रा से प्राप्त परिस्थिति को स्वीकार कर लेते। "खैर, ऐसा हो गया, अं ! हरि इच्छा ?" इतने शब्द कहकर दूसरे काम में लग जाते। कीमती वस्तु खो जाने पर अथवा चोरी चली जाने पर उस वार्ता को भी स्वीकार केवल इन्हीं शब्दों से करते "क्या खो गई ? जाने दो, मैंने भी किसी का कुछ हड़प लिया होगा, ऋणानुबंध था तब तक अपने पास रही, छोड़ो उसकी बात।" अपने भृत्य-वर्ग पर भी उन्होंने कभी दोषारोपण नहीं किया और न ही अपशब्दोच्चारण। एक बार बम्बई से बड़ौदा जाते समय चलती गाड़ी में वे बाहर झाँककर देख रहे थे। अचानक उनकी पगडी फिसल कर गिर गई। फिर क्या था ? पंडित जी हँसकर कहने लगे, "अरे देखा ! बुढ़ापे में भी बच्चों जैसा कार्य करने की मुझे सजा मिल गई।" तुरन्त ट्रंक खोलकर टोपी पहिन ली। और बड़ौदे में पहुँचते ही सबसे प्रथम, पगड़ीवाले की दुकान पर गये। पुनः दूसरी पगड़ी खरीदी गई और तब कहीं गेस्ट-हाउस में पहुँचे। समय निर्धारित कर लेने पर भी यदि कोई उपस्थित नहीं होता, और उसके फलस्वरूप जो परेशानी उन्हें उठानी पड़ती, उसका उल्लेख भी कभी न करते और न ही अपना सन्तुलन खोते। यह धीर-गंभीर-शांत व उल्लसित-वृत्ति अपनी अन्तिम बीमारी में भी उन्होंने कायम रखी थी। समाचार के लिए आये हुए मित्रों को स्वयं वे ही सान्त्वना देने लगते। "शरीर-भोग भुगतने ही चाहिये। काशी विश्वेश्वर की ही ऐसी इच्छा प्रतीत होती है। सारे कार्य मैं ही पूर्ण करूँगा—ऐसा दुराग्रह, अहंकार क्यों रहना चाहिये ?" कितनी प्रगलभ एवं उच्च-मनोवृत्ति ! जिन्हें 'संत' शब्द से विभूषित करते हैं वे और कैसे होते हैं ? उनका एक और स्वभाव-वैशिष्ट्य ऐसा था कि प्रवास में वे किसी के यहाँ ठहरते नहीं थे। प्रायः गेस्ट-हाऊस, डाक-बँगला अथवा किसी होटल का प्रश्रय लेते। उद्देश्य यही रहता था कि अपने लिये दूसरों को कष्ट न हो अथवा प्रसंग-विशेष पर अपना निष्पक्ष निर्णय प्रगट करने में कुछ बाधा उत्पन्न

न हो। किसी से एक प्याली चाय लेकर भी वे किसी का अहसान स्वीकार नहीं करते थे। यात्रा-प्रवास में जितने भी मित्र उनके साथ रहते, उनका सारा व्यय वे स्वयं उठाते।

स्वभाव से जितने आनंदित उतने ही वे दृढ़ निश्चयी और निग्रही थे। एकबार कोई निश्चय कर लेने पर वह मानो 'भीष्म-प्रतिज्ञा' ही हो गई। वालकेश्वर के अपने मकान में अपनी माता और कनिष्ट-भ्राता हरिभाऊ के साथ रहते। एकबार उनकी माता ने उनपर कुछ आरोप लगाया। निग्रही पंडित जी ने तत्काल जो गृह-त्याग किया वह सदैव के लिये। अद्वितीय-विभूतियों की यह भी एक विशेषता होती है।

वकालत करते समय एक बार किसी गरीब विधवा की जायदाद के विषय में प्रतिपक्षी की पैरवी उन्हें करनी थी। न्यायशास्त्र के कलमों का, उनमें निहित छिद्रों का गैर-फायदा उठाकर पंडित जी ने वह केस अपने पक्ष में साबित करा लिया। विधवा महिला की वास्तविक बातें वे जानते थे। केस हार जाने पर वह महिला पंडित जी के पास आई, और कहने लगी—"मुझे भिखारी बनाकर अच्छी वकालत की तुमने! हो गया न तुम्हारा समाधान?" इस सम्भाषण का उन पर ऐसा विचित्र प्रभाव हुआ कि वकालत सदैव के लिए उन्होंने त्याग दी। यह संस्मरण लखनऊ में मैंने उनके ही मुँह से सुना था।

प्रसंगानुसार हम लोगों को भी कहते रहते, "बच्चों! पौधों को सदैव पानी सींचते रहना चाहिये। कभी न कभी वे पल्लवित होंगे ही। और देखो! विचारपूर्वक किसी विषय का चुनाव करना चाहिये। किसी के कहने में अपना ध्येय निश्चित करते हुए उसके साथ ईमानदारी बरतनी चाहिये। किसी के कहने में आकर आज क्रिकेट, तो कल फोटोग्राफी और परसों अन्य कोई दूसरा ही विषय, ऐसी मधुकरी-वृत्ति नहीं रखनी चाहिये।" उनके सम्भाषण में जो शब्द बार-बार प्रयुक्त होते रहते थे उनकी सूची यथावत् देता हूँ—"मौज, डौल, नवल, कौतुक, फुरसुत, माकड़ मारलें पाला हगलें, सिर सलामत पगड़ी पचास, गाजरा ची पुंगी, वाजली तर वाजली, नाहीं तर मोडून खाल्ली" इत्यादि।

पंडित जी से जिन अनेक व्यक्तियों का समागम हुआ उनके मन में उनके प्रति जो प्रतिक्रिया होती थी, उसका वर्णन गीता के निम्नलिखित वचनानुसार था।

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः श्रृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कांचित्।

बड़ों की बड़ी बातें

आचार्य विष्णु अण्णाजी
कशालकर, इलाहाबाद

सन् १९३१-३२ में अपनी शारीरिक दुर्बलता के कारण लखनऊ के मैरिस म्यूज़िक कालेज की परीक्षा संचालन की कोई अन्य व्यवस्था करा देने के समय पर पं० भातखण्डे जी ने मेरे विषय में भी सुझाव दिया था, ऐसी बात श्री चिंचोरे जी के मुख से सुन कर मुझे आनन्दमिश्रित आश्चर्य हुआ। सोचते-सोचते मेरे विचार सन् १९०७ की उस

अविस्मरणीय घटना पर जाकर केन्द्रित हुए, जबकि बम्बई में मैंने उनका प्रथम दर्शन किया था। परम पूज्य गुरुवर्य पं० विष्णु दिगम्बर से मेरा सहवास लगभग १।। वर्ष का हो चुका था। पं० पलुस्कर जी के जल्से बम्बई में आयोजित होने वाले थे। जिसके लिए थिएटर निश्चित करना, टिकिट बिक्री आदि प्रारम्भिक व्यवस्था का भार सौंप कर गुरुजी ने मुझे लाहौर से बम्बई भेज दिया। बम्बई आने पर ज्ञात हुआ कि पं० भातखण्डे जी ने कुछ संगीतानुरागियों की सहायता से ग्रांट रोड पर एक क्लब स्थापित किया था, जिसका नाम सम्भवतः रायल क्लब ऐसा कुछ था। जहाँ वे संध्या समय जाते थे। उन दिनों हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति का प्रथम भाग वे लिख रहे थे, और लक्षण-गीतों की रचना भी कर रहे थे। एक दिन शाम को जब मैं क्लब में पहुँचा तो भातखण्डे जी के पास मुरादाबाद वाले उस्ताद नज़ीर खाँ साहब बैठे हुए थे। वे कुछ गीत सुनाते जाते और उन पर भातखण्डे जी लक्षण-गीतों की जुगल-बन्दियाँ बाँधते जाते। अभिवादन-नमस्कार हो जाने पर मैंने अपने आने का उद्देश्य उन्हें सुनाया। मेरे कार्य में यथासम्भव सभी साहाय्य देते हुए क्लब के अन्य सदस्यों को भी टिकिट लेने के लिए आग्रह करूँगा—ऐसा मुझे आश्वासन दिया। मैं उठने ही वाला था कि इतने में भातखण्डे जी ने मेरी व्यक्तिगत जानकारी पूछते हुए कहा—"क्यों जी, जल्से का इतना बड़ा भार जब पलुस्कर जी ने तुम पर छोड़ा है तो निश्चय ही तुम्हें उनका कोई विशेष प्रिय छात्र होना चाहिये। कुछ गाते-बजाते भी हो?" मेरे हाँ कहने पर कुछ सुनाने के लिये आग्रह किया। मैंने भी तुरन्त साज मिलाकर संध्या समयोचित पूर्वी राग में 'कगवा बोले मोरी अटरिया पर' यह चीज गाकर सुनाई। भातखण्डे जी के मुख पर प्रसन्नता स्पष्टतः प्रकट हुई। मुझसे पूछा—"कितने वर्षों से आप अध्ययन कर रहे हैं?" "यही कोई १।। वर्ष" ऐसा मेरा उत्तर सुनते ही उन्होंने कहा—"सचमुच यदि १।। वर्ष में तुमको इतनी तालीम मिली हो तो वास्तव में सराहनीय है। पंडित पलुस्कर जी के विद्यालय में इतने अल्प समय में ऐसा शिक्षण यदि सभी को दिया जाता हो तो उनकी शिक्षा पद्धति बहुत ही अच्छी है। इन्हीं बातों की आज के युग में आवश्यकता है" इत्यादि, इत्यादि। उस दिन की वार्ता यहीं पर शेष हो गई और मैं चला आया।

जल्से की तारीख निश्चित हो चुकी थी और उधर लाहौर से गुरुजी भी बम्बई पहुंच चुके थे। परन्तु जल्से के दिन अचानक विषम-ज्वर ने पछाड़ लिया, फलतः वे जल्से में उपस्थित न हो सके। निश्चित समय पर सभी श्रोतागण थियेटर में उपस्थित हो गये। अन्त में बैरिस्टर भालचन्द्रराव भाटवड़ेकर ने सभी श्रोतागणों को सूचित किया कि "पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी का स्वास्थ्य अचानक खराब हो जाने के कारण वे उपस्थित न हो सकेंगे। अतः जो भी सज्जन अपने टिकिट के पैसे वापस लेना चाहते हों तो वे उन्हें ले सकते हैं।" कुछ लोगों ने तो पैसे ले भी लिये। मैं जब भातखण्डे जी के पास पुनः पहुँचा तो, पैसे लेने से उन्होंने एकदम इन्कार कर दिया। मुझे कहा कि—"तुम्हारे गुरुजी जब भी आवेंगे मैं उनका गाना अवश्य सुनूंगा और यह टिकिट भी उस वक्त मेरे काम आवेगा। हमारे क्लब के अन्य सदस्य भी ऐसा ही करेंगे।"

बाद में गुरुजी के आठ-नौ जल्से हुए और सभी जल्सों में भातखण्डे जी अपने सभी मित्रों सहित बराबर उपस्थित रहे।

इस घटना के बाद गुरुजी के प्रभाव में आकर मैंने अपने जीवन का एक निश्चित लक्ष्य बना डाला और फिर ऐसा कोई विशेष प्रसंग नहीं आया जबकि भातखण्डे जी से मेरा अधिक सम्पर्क हुआ हो। उनके कार्यों की सारी बातें मुझे अवश्य ज्ञात होती रहती थीं। सन् १९३१ में भी उन्हें मेरा स्मरण रहा होगा और मेरी शिक्षा को वे इतने सम्मान से देखते होंगे—ऐसा मैंने कभी भी नहीं सोचा था। प्रारम्भ में उल्लिखित श्री चिंचोरे जी की बातें सुनकर ऐसा लगता है कि बड़े आदमी कितने विशाल हृदय के होते हैं। आज के हमारे होनहार, सुशिक्षित, सङ्गीत-प्रेमी छात्र यदि इन छोटी-छोटी बातों पर विचार करते हुए उनसे कुछ लाभ उठा लें तो सङ्गीत के लिये कितना उपकारी होगा। सचमुच सङ्गीत से कूपमण्डूकता सदैव के लिए मिट जानी ही चाहिये।

स्वरलिपि एक सुविधा है, अपने वैशिष्ट्य का प्रदर्शन नहीं

आचार्य हिरजी भाई आर०
डाक्टर, बड़ौदा

The first great and well organised attempt at unifying the Indian system of notation was made by the late Pandit V. N. Bhatkhande to whom Indian music owes so much. His attempt was devoid of personal pride; there was no motive like that of a successful teacher wanting to impose his own invention upon the pupils of others. There was no feeling of triumph over fellow Ustads.

What moved Pt. Bhatkhande was a sincere wish to serve the cause of Indian music. He patiently studied the different Ragas in their different aspects and found a way of rendering their essence, that was easily understandable even by children. Thus he created a basis on which others could build. It is a mistake to reject the system, because it cannot render all the niceties and subtleties to a perfection. A notation system ever remains a help. Nobody can learn music from books only. It presents a medium for understanding the fundamentals and consequently it is eminently suited for teaching purposes. Those who go on will gradually come to know the finer points and learn them. The system of Pt. Bhatkhande uses the names of the notes in such a way that Melody and Taal are visible at the first glance. Nothing more is required for Schools and College use in India.

वर्तमान संगीत को अमृत दान दिया

श्री प्रभुलाल गर्ग, हाथरस

अल्प जीवनकाल में स्वर्गीय भातखण्डे जी ने संगीत पर जो कलश भर कर भावी संगीत पीढ़ी के लिए रख दिये, उससे एकमेव यही निष्कर्ष निकलता है कि वर्तमान संगीत को अमृत दान देने के लक्ष्य से ही उनका जन्म हुआ।

भातखण्डे के जीवन काल में संगीत संजीवनी बूटी की भाँति था। अर्थात् उसे प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी वर्ग को द्रव्य के साथ जीवन का मूल्य भी चुकाना पड़ता और तब कहीं वह एक साधारण गायक कहलाने योग्य बनता था। असाधारण इसलिए नहीं बनाया जाता था कि घरानेदार बरखुर्दारों के पिछड़ने का भय बना रहता। अतः कला अपनों के लिये थी, परायों के लिए नहीं। क्रियात्मक संगीत का यह हाल था और शास्त्रीय पक्ष अचार्यों की बपौती थी, अतः हमारे संगीत का सत्य विभिन्न वाचनालयों में सील बन्द होकर कराह रहा था। शाश्वत सिद्धान्त यवन संस्कृति के वज्र प्रहारों से दबोच कर विकृत कर दिये गये, जिनका न कोई नाम लेवा था, न पानी देवा। राजा-महाराजाओं की छत्र-छाया में कुछ श्रद्धेय संगीत पर लेखनी उठा भी पाये तो वह केवल स्वर्णाक्षरों से युक्त मजबूत जिल्दों में बाँध कर यश के निमित्त। ऐसे स्वार्थी और सामंती युग में भातखण्डे जन्मे! उनकी आत्मा कराह उठी और उसे सशक्त सम्बल मिला—नारदीय शिक्षा, भरत नाट्यशास्त्र, संगीत रत्नाकर, रागबिबोध, संगीत पारिजात आदि ग्रन्थों के अवलोकन से।

आर्य संगीत की अवहेलना अशिक्षित संगीतकारों (उस्तादों) द्वारा बड़े रौबदाब से की जाती थी, क्योंकि उनमें परम्परागत अकड़ और दरबारी ऐंठ थी। भ्रान्त-कल्पनाएँ संगीत वर्ग में उदित होकर उसे गर्त्त की ओर ले जा रही थीं। उधर मतमतान्तरों का झगड़ा '५७ के गदर की भाँति बढ़ गया था। इन सब बातों से भातखण्डे जी उद्विग्न हो उठे और उन्होंने अपनी संगीत यात्रा का शुभ संकल्प सँजो लिया। बीकानेर, जोधपुर, इलाहाबाद, बनारस, जूनागढ़, सूरत, बड़ौदा, अहमदाबाद, सिन्ध, कच्छ, भावनगर, लाहौर, मथुरा, लखनऊ, आगरा, दिल्ली, मद्रास, तंजौर, मैसूर, मदुराई, त्रिवेन्द्रम, त्रिचनापल्ली, बँगलौर, कलकत्ता आदि विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया और अपनी डायरी संगीत की आख्यायिकाओं से भर ली। प्राचीन परम्परा के जो गायक-वादक उस समय आपको मिले, उनसे संगीत शास्त्र पर विस्तार से चर्चा की और घर आकर अपनी डायरी में लिपिबद्ध किया। इसी प्रकार सहस्रों प्राचीन गायनों को स्वरबद्ध करने के उद्देश्य से रिकार्ड भरे तथा व्यवस्थित रूप से परिमार्जित कर खुली पुस्तक के प्रांगण में उनको ला खड़ा किया, फलस्वरूप 'क्रमिक पुस्तक मालिका' के ६ भाग प्रकाशित हुए।

गायन उत्तेजक मंडली, बम्बई के सदस्य बन कर भातखण्डे जी को संगीत का शास्त्रीय अखाड़ा मिल गया और उसमें आपने संगीत नेता के रूप में अपने रोचक वृत्तांतों तथा शास्त्र चर्चा को रक्खा। फलस्वरूप प्रस्तुत ग्रन्थ "हिन्दुस्तानी संगति पद्धति" के चार भागों का जन्म हुआ।

अपने संगीत को वैज्ञानिक कसौटी पर रखकर सुव्यवस्थित रूप देने वाले भातखण्डे प्रथम मनीषी थे। इस प्रकार अनेक दुर्लभ संगीत ग्रन्थों का प्रकाशन तथा उनका निचोड़ एकत्रित करके एक सुगम ढाँचा भावी पीढ़ी के लिये वे खड़ा कर गये, जिसका अध्ययन और मनन आज के प्रत्येक संगीतजीवी मानव का कर्तव्य है। ज्ञानसिन्धु में गोता लगा कर चन्द मोती खोज कर लाने वाला कभी यह दावा नहीं करता कि सारे मोती उसने पा लिये हैं। इसलिए भातखण्डे जी ने भी कभी यह गर्व नहीं किया कि उन्होंने संपूर्ण संगीत सार्वजनिक हितार्थ व्यवस्थित करके रख दिया है, अपितु इतने परिश्रम के बावजूद भी उन्होंने कई स्थलों पर स्पष्ट कहा है कि 'साम गायन' तथा 'वैज्ञानिक गायन' आदि कई विषय अभी खोज के हैं।

यथार्थ में जो कुछ भी भातखण्डे जी द्वारा संगीत के लिये हो सकता था, उन्होंने जीवन अर्पण करके अर्पित कर दिया और उसी के सहारे चलकर हम कुछ पाने की आशा भी कर सकते हैं। उनको निन्दा की दृष्टि से देखने वाले महापापी हैं, अतः उनका अनुसरण छोड़कर हमें नवीन अनुसन्धानात्मक कार्यों में दत्त-चित्त हो जाना चाहिये। आज जो भी भातखण्डे का निन्दक संगीत पर कुछ लिखता है, तो उसके ज्ञान का स्रोत इन्हीं पुनीत प्रकाशनों द्वारा फूटता है, यह भी कैसा आश्चर्य है ?

निश्चय ही स्व० भातखण्डे संगीत की क्लिष्टतम पद्धति तथा विभिन्न मतावलम्बियों के पक्ष में नहीं थे। इसी कारण संगीत को उलझन की दृष्टि से देखने वाले सभ्य समाज में प्रचलित करने के उद्देश्य से उन्होंने मंथन करके और अपनी एक सरलतम पद्धति का निर्माण करके, इस प्रगतिमय संगीत वाङ्मय का सृजन किया। गोस्वामी तुलसीदास की रामायण भी वाल्मीकि रामायण से सरल होने के कारण ही इतनी लोकप्रिय हो पायी। ज्ञान का अन्त नहीं, अतः शाश्वत सत्य की खोज करनी है तो इन्हीं ग्रन्थों का अवलोकन करना होगा और वह भी इस युग में होना दुष्कर है, क्योंकि अभी तो केवल संगीत के प्रति थोड़ी-थोड़ी दिलचस्पी जन समाज में प्रारम्भ हुई है। दिलचस्पी जब अध्ययन का मुख्य अंग बन जायगी, तभी शाश्वत सत्य की खोज को जिज्ञासु दौड़ेंगे और दूसरे युग में जाकर उसका प्रतिष्ठापन संभव हो सकेगा।

—हि० सं० प०, भाग ४, पृष्ठ ३-४ से उद्धृत

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की वाणी में——

"विश्वविद्यालये संगीत शिक्षा विभाग गड़े तोलबार काजे के सबचेये जोग्य व्यक्ति? आमार मने सन्देह नेइ जे, भातखण्डे सेइ लोक। भारतीय संगीत-विद्या सम्बन्धे ताँर जे दूरदर्शिता ता आर कारो नेइ। ता छाड़ा ताँर उद्भावित शिक्षा-दान प्रणालीर असाधारण नैपुण्य सकलकेइ स्वीकार करते हबे। तिनि गायक नन, तिनि गान-शास्त्रेर महामहोपाध्याय। अन्यत्र तिनि हिन्दुस्तानी गान-शिक्षार जे भित्ति रचना करेछेन, बाँगला देशेओ जदि ताँके सेइ भित्ति रचनार सुजोग देओया जाय तबे विश्वविद्यालय जथार्थ सफलता लाभ करबे। एकाज तिनि छाड़ा आर कारो द्वारा सुसम्पूर्ण हते पारबेना।"

——रवीन्द्रनाथ ठाकुर

'प्रवासी', अग्रहायण (बँगला वर्ष) १३३५ में पृष्ठ १८६-१८९ पर प्रकाशित 'विश्वविद्यालये संगीत शिक्षा' लेख का कुछ अंश मूलतः बँगला से नागरी लिपि में उद्धृत।

मालवीय और भातखण्डे के उत्साही कार्य का परिणाम

डॉ० सी० पी० रामस्वामी अय्यर

To Pandit Bhatkhande must be ascribed the credit of a great renaissance and renovation. Recognising that the Muslim influence diverted or modified the theory and practice of Northern Indian Music and that, far many centuries, the progress of Musical Science had been arrested, Pandit Bhatkhande attempted to reconcile the old scientific rules with current practice. He devoted his entire life to bring about a harmony and he attempted to systematise Hindustani Music and published and made available many compositions which were unearthed by him and had been forgotten. He was fiercely opposed by Ustads but his extensive study and countrywide tours and his visits to various Musical Libraries yielded fruit and the publication of his great work on Lakshya Sangeet was a musical event of prime importance. He expounded the doctrine of ten basic Thats and endeavoured to demonstrate that every Raga can be classified under these Thats. His several publications have made history and he was the originator of the present-day Music Conferences and to his inspiration we owe many Music Colleges and Institutions. The introduction of Music in the Banaras Hindu University was due to his enthusiastic collaboration with the great Pandit Madan Mohan Malaviya. The All-India Music Conference owes not a little to his stimulus and inspiration although the credit for its inauguration must be shared with the Maharaja of Cossimbazar and Sri Kumar Dinendra Mallick.

—'फण्डामेन्टल्स आफ हिन्दू फेथ
एन्ड कल्चर' से उद्धृत

भातखण्डे जी के सिद्धान्त उर्दू में समझाये

श्री विश्वम्भरनाथ भट्ट, आगरा

सन् '११ के लगभग नवाब अली साहब स्वर्गीय आचार्य भातखण्डे जी के सम्पर्क में आये। भातखण्डे जी का अद्भुत शास्त्र-ज्ञान तथा उनके रचे हुए लक्षण गीतों की ख्याति राजा-साहब के कानों तक पहले ही पहुँच चुकी थी। लखनऊ में उन दिनों उनके पास नज़ीर खाँ (उपनाम काला नज़ीर) विद्यमान थे, अतः उन्होंने इस प्रसिद्ध गायक को आचार्य भातखण्डे जी के पास शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त करने और उनके रचे लक्षण गीतों को सीखने के लिये भेजा। राजा साहब ने इस प्रकार जो कुछ आचार्य भातखण्डे जी से प्राप्त किया, उसे इस पुस्तक में लिखा है। इस पुस्तक में जो सामग्री प्रकाशित हुई है, उसका बहुत कुछ भाग वही है, जो आचार्य भातखण्डे जी की हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तकमालिका के विभिन्न छः भागों में प्रकाशित हो चुका है। इस पुस्तक में कुछ सामग्री स्वतन्त्र भी है। जो कुछ भी हो, परन्तु मारिफुन्नगमात के रूप में आचार्य भातखण्डे जी के बहुत से लक्षण गीत तथा उनके स्थापित सिद्धान्तों को उर्दू जानने वाली जनता ने भी भली-भाँति समझा और उनसे लाभ उठाया। इसकी भूमिका को देखने से पता चलता है कि राजा साहब की उर्दू पर अरबी भाषा का गहरा प्रभाव पड़ा है। राजा साहब कठिन से कठिन और सरल से सरल उर्दू लिखने में कुशल थे। आपने अपनी पुस्तक में आचार्य जी की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। यही नहीं, प्रत्युत उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन्होंने अपनी पुस्तक भातखण्डे जी को ही समर्पित भी की है।

—मारिफुन्नगमात भाग १, पृ० १-२ से उद्धृत

यही भवन भावी संस्कारों आधार का [redacted]

श्री सुदामाप्रसाद दुबे, खातेगाँव

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अब हमारे पास न प्राचीन स्वर ही हैं और न रागरूप ही हैं। हमारे रागों के नाम यदि प्राचीन नामों से मिल भी जाते हों, तो पुरातन के नाम पर सिवा नाम सादृश्य के हमारे पास कुछ नहीं है। श्रुति स्थानों के अनिश्चिय एवं स्वर स्थानों

के विकृत रूप से हमारे प्रचलित राग रूप सभी आधुनिक हैं। इस प्रकार से हम एक नवीन प्रणाली के संगीत पर विचार करते समय उन प्राचीन उल्लेखों को इन प्रचलित रूपों के लिये कदापि ठीक नहीं मान सकते हैं। जबकि हमारे स्वर ही नहीं हैं, (श्रुति स्थान के अन्तर के कारण) तब इन स्वरों के उपयोग से जो स्वरूप उत्पन्न होगा, वह किसी भी दृष्टि से हमारे प्राचीन स्वरूप का प्रतिबिंब नहीं कहा जा सकता।

यह रूपान्तर पिछले पाँच सौ वर्षों से होते हुए आज इस दशा में प्राप्त होता है। निरक्षर गायकों के आश्रित भारतीय संगीत, पद्धति और शृंखला-विहीन हो गया था। आश्चर्य यह था कि ये गायक प्राचीन नामों में अपना नवीन रूप सुनाते रहते थे। जिससे एक अध्येता को बड़ी कठिनाई होती थी। इन उस्तादों की उस्तादी का प्रदर्शन स्वनिर्मित स्वरूपों में भी हुआ है। इस प्रकार प्राचीन संगीत का भ्रष्ट उच्छिष्ट इन खाँ साहबों की कृपा-कोर से प्राप्त हुआ और उसी को स्वर्गीय पं० भातखण्डे ने तरती बवार धो-पोंछ और सजा-कर एक थाल में जमा दिया है। यह भग्नावशेष भी हमारे आँसू पोंछने के लिये काफी हैं।

कुछ घरानेदार गायकों और संगीत विवेचकों ने प्रस्तुत पद्धति के लिये अपने इस प्रकार के विचार भी प्रकट किये हैं कि—"इस पद्धति में कम थाटों में अधिकाधिक रागों को रख देने के प्रयत्न में कुछ रागों के साथ अन्याय हुआ है। इसी प्रकार रागों के स्वरूप, वादी-विवादी एवं गायन समय आदि में भी ज्यादती हुई है। स्वरलिपि की अपूर्णता एवं एक-दो बार सुन कर ही स्वरलिपि बना देने के प्रयत्न में घरानेदार बन्दिशों का रूप विकृत हो गया है। पाश्चात्य स्वरों के अनुकरण पर स्वर स्थान निश्चित करने से श्रुत्यंतर के कारण रागों में भी अन्तर आ गया है", इत्यादि। परन्तु ये सब तर्क इस रत्नराशि को नगण्य सिद्ध नहीं कर सकते। यदि ये कमियाँ रह भी गयी हों, तो भी उनका संस्कार इसी भवन के आधार पर किया जाना युक्तिसंगत होगा। लेखक तो अपनी रचना को वर्तमान का एक चित्र मात्र कहता है और भविष्य में आगे बढ़ने वालों के लिए एक सुसंगत मार्ग मात्र ही मानता है।

—हि० सं० प० भाग १, पृ० ४-५-६

दो विष्णु की चार भुजाओं ने संगीत को बचाया

प्रो० बी० आर० देवधर बी० ए०,
वनस्थली.

जून १९१८ में बम्बई के गान्धर्व महाविद्यालय में मैंने विधिवत् प्रवेश पाया। तदनंतर सन् १९१९-२०-२१ और २२ में गुरुवर्य पण्डित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर की प्रेरणा से जो चार संगीत परिषदें आयोजित हुईं, उनमें मैं बराबर उपस्थित रहा। बहुत से विद्वान् लोग इन परिषदों में भाग लेते थे और वहाँ पर संगीत विषयक चर्चाएँ भी

पर्याप्त होती थीं। बम्बई में आते ही पण्डित भातखण्डे का नाम मैंने सर्वप्रथम सुना और वह भी विशेषकर गायक वर्ग के मुख से। ये लोग प्रायः उनका उल्लेख व्यंगात्मक भाव से ही करते थे—"वे कोई गवैय्ये तो हैं नहीं। वकील हुए तो क्या हुआ, उन्हें संगीत में क्या समझना है? ऐसी किताबें लिखकर क्या किसी को गाना-बजाना आ सकता है?" उपरोक्त परिषदों की चर्चाओं में जिन व्यक्तियों ने भाग लिया, वे भी अपने भाषणों में ऐसे ही उद्गार प्रकट करते थे। लोगों के ये विचार बार-बार सुनकर पं० भातखण्डे के विषय में मेरा मन भी प्रारम्भ में कलुषित होने लगा था। परंतु साथ ही साथ ऐसे बहुचर्चित व्यक्ति को जानने-समझने की जिज्ञासा भी बढ़ती गई। अंततः अपने ज्येष्ठ गुरुबंधु स्व० श्री नारायण लक्ष्मण खरे से एक दिन मैंने पूछ ही लिया कि—"जिनके विषय में इतना वितंडावाद इन लोगों ने मचा रखा है, वे भातखण्डे आखिर हैं कौन? उनकी लिखी हुई कुछ पुस्तकें हैं क्या?" इस पर श्री खरेजी ने उत्तर दिया—"पण्डित भातखण्डे का कार्य अत्यंत महत्व का है। उनका लिखा हुआ साहित्य अच्छी प्रकार से पढ़े-समझे बिना तुम्हें अपना कुछ भी मत नहीं बनाना चाहिए। उनके कार्य को समझना इन लोगों की बुद्धि के बाहर की बात है। वे सचमुच एक असामान्य व्यक्ति हैं।"

सन् १९२२ के अंतिम दिनों में गांधर्व महाविद्यालय छोड़ कर स्वतन्त्र रूप से मैं बम्बई में रहने लगा। एक दिन किसी मित्र के यहाँ पण्डित भातखण्डे की लिखी हुई 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति' का प्रथम भाग अचानक ही मेरे देखने में आया। सहज भाव से उसके पृष्ठ मैं इधर-उधर उलट रहा था, लेकिन पुस्तक मुझे इतनी अच्छी लगी कि अपने मित्र से तत्काल मैंने उसे माँग लिया। एक-दो दिन में ही मैंने उसे पढ़ डाला। पुस्तक में लिखी हुई राग विषयक चर्चा, शास्त्रीय परिभाषाएँ, मनोरंजक एवं उद्बोधक सम्भाषण, संशोधनात्मक उदार दृष्टि, विभिन्न घरानों का सखोल अभ्यास—इन सारी बातों का मेरे मन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि पण्डित भातखण्डे के अविलम्ब दर्शन करने की मुझ में तीव्र इच्छा जागृत हुई। पूछ-ताछ करने पर मालूम हुआ कि पंडित भातखण्डे प्रतिदिन सन्ध्या समय चौपाटी पर टहलने के लिये जाते हैं और वहाँ पर बैठने का उनका एक बेन्च भी प्रायः निश्चित-सा ही रहता है। एक दिन अपने एक मित्र के साथ मैं वहाँ पहुँच गया और एकदम निकट से इस व्यक्ति के दर्शन कर लिये। उनके निवास स्थान की जानकारी प्राप्त कर ली और दूसरे दिन प्रातः बालकेश्वर के उनके बँगले पर उपस्थित हो गया। मुझे देखते ही प्रारम्भ में तो मेरे विषय में कुशल-प्रश्न उन्होंने बड़ी आस्थापूर्वक पूछे। परंतु वार्तालाप करते-करते जब उन्हें ज्ञात हुआ कि मैं विष्णु दिगम्बर जी का शिष्य हूँ, वे अचानक रुक गये और मुझ से कहने लगे—"मैं तो कोई गवैय्या नहीं हूँ। गायन की तालीम देना मेरा कोई व्यवसाय भी नहीं है। परंतु अपनी पुस्तकों में मैंने जो कुछ लिख रखा है, उसे आप अवश्य पढ़िये और उसमें से जो कुछ उपयुक्त प्रतीत हो, ग्रहण कीजिये और शेष सारा छोड़ दीजिये।"

पण्डित भातखण्डे से मेरी प्रथम भेंट की परिणति इस प्रकार हुई।

उनकी पुस्तकों का मुझ पर अमिट परिणाम हुआ था, अर्थात् मैं तो उनके पीछे लगा ही रहा। सीधे ढंग से अपना काम न होता हुआ देख कर एक दिन उनके पास

गया और उनसे कहा—'पण्डित जी, कल शाम को मैंने एक गायक से पूरियाधनाश्री सुनी। परन्तु उनका वह राग आप के रागवर्णन से एकदम भिन्न था। वे रागवर्णन आपने किस आधार पर किये हैं?' मेरा यह प्रश्न सुनते ही तत्काल इच्छित परिणाम हुआ और अपने सिद्धान्तों की पुष्टि में उन्होंने लगभग दो घण्टे तक मुझे सब कुछ समझाया। एक-एक राग का उदाहरण लेकर वे उसका विश्लेषण करते गये, उनका साधर्म्य, भेद किन स्वर संगतियों से, किन उच्चारणों से किया जाना चाहिये आदि बातें बताते गये। पूरियाधनाश्री के संकेत मात्र से उस दिन उन्होंने मुझे पूर्वी थाट के समस्त रागों की ऐसी जानकारी दी कि मुझे तो भारतीय राग रचना को समझने की एक अभूतपूर्व विचार प्रणाली का ही ज्ञान हो गया। बाद में कई अवसरों पर इसी प्रकार से प्रथमतः उन्हें उत्तेजित करते हुए अपनी ज्ञान पिपासा मैंने तृप्त कर ली। जाते समय पंडित जी ने मुझसे कहा—"देखो तुम लोग पढ़े-लिखे हो। राग रचना के सौन्दर्य तत्वों की ओर तुम्हारा ध्यान जाना ही चाहिये।" मैंने हँसते हुए उसने क्षमा प्रार्थना की और कहा—"केवल इसी उद्देश्य पूर्ति के लिये मैं आपसे बारबार भेंट करता रहता हूँ। प्रथम भेंट में तो आपने मुझे कुछ भी कहने से इन्कार कर दिया था, अतः अब इस पद्धति का उपयोग कर रह हूँ।' उत्तर में पंडित भातखण्डे ने कहा—"तुम तो बड़े ही होशियार निकले। ठीक है, ठीक है। इतना तो मैं समझ गया हूँ कि तुम्हें ज्ञानार्जन की तीव्र लालसा है। समय-समय पर आते रहना। मुझे इसमें आनन्द ही होता है।"

प्रचलित रागों की चीजें सीखने का मुझे शौक लगा। ऐसे रागों की बहुत सी चीजें उनके पास हैं, ऐसा मुझे मालूम था। अपनी इच्छा मैंने पंडित जी से व्यक्त की। उन्होंने मुझसे कहा, "देखो यहाँ आकर उन्हें तुम सीख सकते हो। उनके उच्चारणों को न जानते हुए केवल लिख कर याद कर लेने के पक्ष में मैं नहीं हूँ।" समयाभाव से ऐसा करना मेरे लिये कठिन था। अतः इस बार मैंने दूसरा तरीका अपनाया। कालेज के मेरे एक सहपाठी की बुआ पंडित भातखण्डे के प्रिय शिष्य श्री शंकरराव कारनाड की सहधर्मचारिणी थीं। इस मित्र के माध्यम से कारनाड़ जी से मैंने परिचय प्राप्त कर लिया और उपरोक्त चीजें वहाँ से मैंने प्राप्त कर लीं। इधर इन चीजों को लेकर समय-समय पर पंडित जी से चर्चा भी करता रहा। वे प्रायः कहते, "चीजों को भली प्रकार याद करना कुशल गायक की बुनियाद है। अच्छे गायक की यह एक पहिचान होती है कि चीज गा देने के बाद उस चीज के अनुरूप उन्हीं नियम-धर्मों का पालन करते हुए गवैय्या गा रहा है अथवा नहीं—इस पर सदैव ध्यान देना चाहिये।"

अच्छे गायकों को सुन कर अपनी साधना में कुशलता, वैचारिक उन्नति का विकास करने के लिये पंडित जी ने मुझे कुछ गायक-वादकों के नामों की सूची दी थी। उसमें अला बन्दे खाँ, फैयाज खाँ, उमराव खाँ आदि के नाम प्रमुख थे। इनका गायन ध्यान पूर्वक और बार-बार सुनते रहने के लिये वे मुझसे कहते रहते। चंद्र के स्थान पर चौंद, मंद के लिए मौंद-इस प्रकार के शब्दरूप जो प्रायः किये जाते हैं, उनका समर्थन करते हुए वे सदैव कहते—"यह कोई उच्चारण की विकृति नहीं हैं, अपितु रागों के स्वरूप को प्रकट करने

वाले स्वरोच्चारणों के लिये ऐसा ही किया जाना चाहिये।'' 'एस्थटिक्स ऑफ म्यूजिक' पर वे प्रायः ध्यान आकर्षित कराते। कणों का महत्व, उनके उच्चारण की सूक्ष्मतम विधियाँ वे बड़ी कुशलता पूर्वक और श्रद्धा से समझाते जाते। इस प्रकार कई बार उनसे मैं मिला और प्रत्येक बार कुछ न कुछ नवीन विचार प्रेरणा लेकर ही मैं घर लौटा।

उत्तर भारत में सर्वत्र गायी जाने वाली "ओ३म् जय जगदीश हरे" आरती का उदाहरण देकर कहा—'कुकुभ जैसे रागों का आधार इन गीतों में मिलता है।' 'रामा, तूं माझा यजमान' महाराष्ट्र में प्रचलित इस गीत द्वारा धनाश्री को समझाया। संगीत चाहे गायकों का हो अथवा जनसाधारण का—उसमें भारतीयत्व का ही उन्हें आभास होता और अपनी कुशाग्र विश्लेषण शक्ति से सहज ही में उसे बतला देते।

एक बार प्रातःकाल वे अपने घर पर बैठे हुए थे। कुछ प्रसन्न नजर आ रहे थे। हाथ में एक बंगाली महाशय का आया हुआ पत्र पढ़ रहे थे। मेरे आते ही मुझे वह पत्र पढ़ने को दिया। उसमें उनके कार्य की सराहना करते हुए लेखक ने लिखा था : "भरत, शार्ङ्गदेव और भातखण्डे—यही क्रम हमारे संगीत के इतिहास का रहेगा।" अपने कार्यों के प्रति अन्य लोगों में जो आदर आस्था निर्माण हुई है उस पर वे कहने लगे—"देखा तुमने ! मेरे परिश्रमों का बाहर कैसा मूल्यांकन हो रहा है। परन्तु बड़े खेद का विषय है कि महाराष्ट्र में इसके प्रति कोई जिज्ञासा नहीं।" पंडित भातखण्डे जी का विरोध करने वालों की कमी तो थी ही नहीं। सन् १९२८ में श्री क्लेमेन्ट्स महोदय के नेतृत्व में अहमदाबाद में एक कान्फ्रेन्स बुलाई गयी। इस कान्फ्रेन्स में यूरोपीय स्टाफ नोटेशन भारतीय संगीत के लिये अनुकूल है—ऐसा प्रस्ताव पास होनेवाला था। भारतीय संगीत के आधार को आघात पहुँचाने वाले ऐसे बेतुके प्रस्ताव का प्रतिवाद करना पं० भातखण्डे के लिये आवश्यक हो गया। पं० विष्णु दिगम्बर का तब उन्हें स्मरण आया और गुरुवर्य ने श्री क्लेमेन्ट्स की वह इच्छा पूर्ण न होने देने में पंडित भातखण्डे जी को भरपूर सहयोग दिया। पं० विष्णु दिगम्बर से कुछ बातों में उनका मतभेद अवश्य था, परंतु दोनों विभूतियों को एक-दूसरे के कार्यों में अत्यन्त आस्था थी। गु० विष्णु दिगम्बर जी के विषय में वे मुझ से प्रायः कहते रहते—"देखो तुम्हारे गुरुजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। रागदारी गीतों को छोड़ कर भजन, कीर्तन, पूजापाठ करते रहना मुझे अच्छा नहीं लगता। जप-जाप्य करना, पानी में घंटों तक खड़े होकर ध्यान धारणा करने में उन्हें अपना समय व्यतीत नहीं करना चाहिये था। अस्तु, जैसा भी हो तुम सब जो उनके शिष्य हो, उनकी अच्छी देखभाल करना। संगीत को उन जैसे विद्वानों की आज अत्यन्त आवश्यकता है। उनकी शिक्षा-दीक्षा-क्षमता का संगीत को लाभ मिलना ही चाहिये।" पंडित भातखण्डे के ऐसे उद्गारों के प्रति मेरी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई।

सम्भवतः सन् १९२७ की ही बात है। गांधर्व महाविद्यालय का वार्षिकोत्सव था। जल्से के लिये मैंने स्वयं जाकर उन्हें आमंत्रित किया। विलसन कालेज के हाल में यह वार्षिकोत्सव होना निश्चित हुआ था। पं० भातखण्डे चुपचाप प्रेक्षकों में आकर बैठ गये। उस दिन हम लोगों ने तो उनके लिये मंच पर ही एक स्थान सुरक्षित कर रखा था। मंच पर चलने के लिए उनसे बहुत आग्रह किया गया, परन्तु वे प्रेक्षकों में ही बैठे रहना

चाहते थे । सभी लोग उनके आस-पास एकत्रित हुए । बैरिस्टर जयकर आदि सभी ने बहुत अनुरोध किया और तब उसे टालना उनके लिये कठिन हो गया ।

बड़े सम्मानपूर्वक उन्हें मन्त्र पर लाया गया और गुरुवर्य पं० विष्णु दिगम्बर जी के ही पास एक कुर्सी पर बैठाया गया । यह विलोमनीय दृश्य देखकर उपस्थित संगीतानुरागियों ने अत्यन्त उत्साह से करतल ध्वनि की और मैं अपनी तपस्या की सार्थकता से आनन्द-विभोर हो गया । दोनों विष्णुओं को श्रद्धापूर्वक पुष्पमालाएँ अर्पित की गईं । स्वयं बैरिस्टर जयकर ने दोनों का सत्कार किया । लगभग घण्टे-डेढ़ घण्टे तक संगीत के संरक्षक ये दोनों 'विष्णु' एक साथ बैठे और आपस में वार्तालाप भी करते रहे । उनकी यह बातें किस विषय पर हुईं, यह तो किसी को मालूम न हो सका, परन्तु दोनों ही प्रसन्नचित्त दिखाई पड़ रहे थे । इस वार्षिकोत्सव के कुछ ही माह बाद गुरुवर्य परलोक सिधार गये और पं० भातखण्डे का स्वास्थ्य भी गिरता चला गया ।

सचमुच हमारे भारतीय संगीत को ऐसे ही 'चतुर्भुजधारी विष्णु' के लालन, पालन और संरक्षण की आवश्यकता थी । इति अलम्

सूचना :—उपरोक्त संस्मरण 'स्मृतियों के संचित पराग' की अनुक्रमणिका में समाविष्ट न हो सकने के लिए पाठक क्षमा प्रदान करें ।—सम्पादक

मैंने उन्हें महफिल में गाते हुए सुना है

श्री नरेन्द्रराय शुक्ल, नई दिल्ली

स्वर्गीय भातखण्डे जी के प्रति मेरी स्मृतियाँ बहुत पुरानी हैं। मुझे याद है, उस समय मैं पाँच या छः साल का था तब मैंने उन्हें अपने पिताजी के पास आते हुए देखा था। सब लोग भातखण्डे जी को उस समय रावसाहब कहा करते थे। मेरे पिता जी और राव साहब के बीच परिवार जैसे सम्बन्ध थे। वे दोनों बम्बई के कालेज में एक साथ पढ़े। फिर लॉ-कालेज में भी साथ रहे। यह समय सन् १८८५ के करीब का था। वैसे मेरा परिवार जूनागढ़ से संबंधित था, और उस स्थान ने न केवल मुझे ही, रावसाहब को भी बहुत प्रेरणा दी। पहले से ही जूनागढ़ में अच्छे संगीतज्ञों और संगीत रसिकों का आना-जाना रहा है। उस वक्त मशहूर शादी खाँ, मुराद खाँ के लड़के बहादुर खाँ जूनागढ़ में राजगायक थे। वहाँ एक अमीर सेन ध्रुवपदिये हुआ करते थे। वे बाद में बल्भीपुर (बड़ा) चले गये। बस्ताराम और त्रिभुवनदास ध्रुवपदियों के संबंध में, जैसा कि मुझे बताया गया, मेरे पिताजी ने कुछ दिन सीखा था। पिताजी का संगीत के प्रति झुकाव मेरे लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। मुझे मालूम है, बम्बई में उनका सम्पर्क वल्लभदास और दामूलजी (दामोदर मूलजी) से भी हुआ जो कि गोस्वामी जीवनलाल जी महाराज, १००८, के शिष्य थे। इन्हीं दामूल जी से कदाचित् रावसाहब ने सितार की शिक्षा ली थी। वल्लभदास और दामूलजी दोनों उस समय गायन उत्तेजक समाज के सदस्य थे। रावसाहब भी इस समाज में जाया करते थे। दामूल जी की विशेषता यह थी कि वे वाजपेयी जी के खानदान की सितार बजाते थे। इस समाज में छज्जू खाँ-नज्जू खाँ (नज़ीर खाँ) भिंडी बाजार वाले दोनों ही सारंगी पर नौकर थे। रावसाहब ने इन दोनों को बाद में अपनी सिफारिश से इनायत हुसेन खाँ सहसवानिए का शिष्य बनाया था।

रावसाहब और मेरे पिताजी की मित्रता के कारण मुझे कई बातों की जानकारी समय-समय पर मिलती रही। बम्बई में एक प्रसिद्ध व्यक्ति थे बाबाभई अचलजी ढोलकिया, प्रिन्सेस स्ट्रीट वाले। ये नामी वैद्य थे। इनके यहाँ प्रायः अच्छे-अच्छे गायक और संगीतज्ञ एकत्रित होते थे। यहाँ की दो स्मरणीय बैठकें बहुत उल्लेखनीय हैं। सन् १९१४-१५ की बात है। इनके यहाँ देवल और क्लेमण्ड के साथ भातखंडे जी की 'श्रुति कायम हो सकती है या नहीं'—इस विषय पर चर्चा हुई। दोनों पक्ष के मध्य निर्णायक डागर भाइयों के बड़े दादा जाकिर उद्दीन खाँ थे। अंतिम चर्चा तो मात्र एक दिन में ही खत्म हो गई, पर उसके बाद

करीब महीने भर तक बाबाभई अचल जी के यहाँ जलसा होता रहा। एक जलसे में लार्ड विलिंगडन जो उस समय बम्बई के गवर्नर थे, भी आये। बम्बई में उस दिन ब्लैक आउट था, क्योंकि मद्रास के समुद्री किनारे पर उस दिन एमडन नामक लड़ाकू जर्मन जहाज ने बम्बार्डमेण्ट किया था। बम्बई में भी सावधानी के लिए अँधेरा रखा गया था। हाँ, तो लार्ड विलिंगडन के आने पर जाकिरउद्दीन खाँ साहब गाने बैठे। उन्होंने भातखंडे जी से पूछा कि 'क्या गाऊं ?' रावसाहब बोले—'ऐसा राग सुनाइये जो सबकी समझ में आ जाये।' खाँ साहब के साथ चार तम्बूरे थे। मगर तीन तानपूरे बजाये जा रहे थे और चौथा जो कि 'मध्यम' में मिला हुआ था, जमीन पर रखा हुआ था। जाकिरउद्दीन खाँ साहब ने केदार का आलाप लिया और बिना मध्यम लगाये दस मिनिट तक गाते रहे। तब रावसाहब बोले—'अब खुला कर दीजिए, खाँ साहब।' तभी खाँ साहब ने ऐसा मध्यम लिया कि जमीन पर रखा हुआ तानपूरा गूंज उठा और जलसे में एक करंट जैसा अनुभव हुआ और सबको पता लग गया कि वह केदारा है। इस जलसे में दस मिनिट के लिए आए हुए लार्ड विलिंगडन तीन घंटे तक रहे।

१९१० की बात है। भातखंडे जी सूरत आये थे। वास्तवमें रावसाहब सर मनुभाई मेहता–जो कि बाद में बड़ौदा रियासत में दीवान रहे,—के किसी संबंधी के यहाँ जनेऊ उत्सब में भाग लेने के लिए आये थे। सूरत से हम सब लोग डूमस गये। यह स्थान सूरत से नौ मील दूर समुद्रतट पर है। लोगों ने इस स्थान पर रावसाहब से गाने के लिए बहुत आग्रह किया। उन्हें सुनने के लिए बहादुर खाँ के लड़के दिलदार बख्श और इदन बाई भी वहाँ पहुँच गये। ये इदनबाई वही थीं, जिनके पास अब्दुल अजीज खाँ पटियाला वाले सारंगिये रहते थे।

मुझे याद है, वैष्णव हवेली वाले रामकिसन महाराज और उच्चकोटि के जागीरदार जनार्दन वीरभद्र पाठक भी वहाँ उपस्थित थे। रावसाहब ने यहाँ चार बजे तक दिल से गाया। मेरे बाल्यकाल की यह स्मृति मेरे लिए आज भी महत्वपूर्ण है। रावसाहब ने इतना अच्छा गाया था कि दिलदार बख्श और रामकिसन महाराज दोनों ने कहा कि ऐसा गायन तो हमारे लिए तालीम के बराबर है। मैंने अपने पिताजी और जनार्दन पाठक से बाद में सुना था कि रावसाहब स्वयं अपने उस गायन से सन्तुष्ट हुए थे और उन्होंने कहा था कि अब मैं बाहर नहीं गाऊँगा, क्योंकि यह मेरा रोज का काम नहीं है। कभी अच्छा नहीं गाया जाता, तो मन को कष्ट होता है। वास्तव में फिर उन्होंने बाहर कभी नहीं गाया।

१९२३ में मैंने संगीत के संबंध में एक लेख लिखा और उसे भातखंडे जी के पास भेज दिया। छः महीने तक मुझे जबाब नहीं मिला तो मैं बम्बई गया, और उन्होंने मुझे उस लेख को फिर से लिखने के लिए कहा। हर बार मैं लेख लिखता और हर छः महीने के बाद मुझे फिर से लिखने के लिए वे कहते रहे। इस तरह चार साल तक चलता रहा। उनका आशय यही था कि इस तरह मैं लिखूँ तो सही, पर उसे छपाने की शीघ्रता न दिखाऊँ। इससे बार-बार विचार भी सुलझ जाते हैं और प्रौढ़ता भी आती है।

इससे बहुत पहले की एक बात और है, जिसे शायद बहुत कम लोग जानते हैं। बम्बई में एक नामी वकील थे शांताराम पाटकर। भातखंडे जी ने जब लॉ कर लिया तो वे करांची

चले गये। वहाँ उनकी पत्नी की तबीयत खराब रहने लगी। एक लड़की हुई थी, वह मर गयी। पत्नी का भी देहान्त हो गया। इससे कराँची छोड़कर भातखंडे जी बम्बई आ गये और शांताराम वकील के साथ सहयोगी के तौर पर काम करने लगे। भातखंडे जी कहा करते थे कि अगर मेरे पास पचास हजार रुपये एकत्र हो जाएँ, तो मैं वकालत छोड़कर जीवन भर संगीत की सेवा करूँगा। संयोग की बात है शांताराम के साथ कार्य करने से १२ वर्ष के भीतर उनके पास पचास हजार रुपए के लगभग रकम एकत्र हो गयी और अपने निश्चय के अनुसार भातखंडे जी ने वकालत छोड़ दी। शांताराम पाटकर बहुत समझदार व्यक्ति थे। उन्होंने राव साहब की उस रकम का एक ट्रस्ट बना दिया ताकि उसका ठीक उपयोग होता रहे। इसी रकम से रावसाहब ने संगीत संबंधी अपने बहुमूल्य ग्रन्थ प्रकाशित किये और आजीवन अच्छी तरह रहे।

१९१० के लगभग भातखंडे जी ने राग मालिका और गीतमालिका सीरीज छपवानी आरम्भ की। हर पुस्तक में १६ रचनाएँ संकलित की गई थीं। मगर संकलित चीजें जो कि उन्हें कई प्रसिद्ध उस्तादों से प्राप्त हुई थीं, एकत्र करते समय एक घटना हो गयी। एक उस्ताद ने कहा कि अपनी चीजें तो मैं हजार-हजार रुपया लेकर दूँगा। रावसाहब को उस वक्त चीजें लेनी थीं और उन्होंने पैसा भी दिया। मगर उन्होंने निश्चय कर लिया कि यही चीजें मैं सब के लिए सुलभ कर। लोगों तक पहुँचाऊँगा। खैर, उन्होंने चीजें एकत्र कीं और उस संकलन को गायन उत्तेजक समाज के दो सदस्यों ने पूर्ण सद्भावनाओं के साथ अपनी ओर से छापकर बिना मूल्य रावसाहब को दे दिया। इनमें से एक व्यक्ति भाटिया थे तथा दूसरे पारसी। वास्तव में रावसाहब को निस्वार्थ सेवा करते देख बहुत से लोगों की सद्भावनाएँ उनके साथ थीं। शायद इसी सद्भावना को लेकर लोकमान्य तिलक के सुप्रसिद्ध 'केसरी' के सम्पादक स्वर्गीय नरसिंह चिन्तामन केलकर ने रावसाहब को एक बार कहा, 'आप और हम तो एक ही जाति के हैं, आप अपनी पुस्तकें केसरी प्रेस में क्यों नहीं छपवाते ?' रावसाहब ने इस पर कहा कि—'अगर आप मेरी किताब बिना मूल्य छाप सकें तो मुझे कोई ऐतराज न होगा।' केलकर केवल जाति की दृष्टि से विचार करते थे, अतएव दोनों के बीच बात नहीं बनी। क्योंकि भातखंडे जी जातीयता को कतई महत्व नहीं देते थे। अन्ततः किताबें केसरी प्रेस से नहीं छप सकीं। शायद यही कारण रहा होगा कि भातखंडे जी का महाराष्ट्र में उस समय प्रायः विरोध किया गया। आज जो स्थिति है उसे सब जानते हैं।

सूचना—उपरोक्त संस्मरण 'स्मृतियों के संचित पराग' की अनुक्रमणिका में न तो समाविष्ट हो सका है और न उसकी पृष्ठ संख्या ही क्रमवार है। आशा है पाठक इस त्रुटि के लिये क्षमा प्रदान करेंगे।—**सम्पादक**

संगीत नगरी में बिखरे हुए पराग

'जयाजी-प्रताप' से उद्धृत

रियासत के समय "जयाजी-प्रताप" सिंधिया शासन का साप्ताहिक राजपात्र था। सन् १९१६ से लेकर १९३६ तक समय-समय पर संगीत विषयक जो भी जानकारी इस शासकीय पत्रिका में प्रकाशित होती रही, उनमें से कुछ उद्धरण जिज्ञासु पाठकों के लिये उपलब्ध किये जा रहे हैं। इसमें उल्लिखित घटनाओं की चर्चा इसी पुस्तक में अनेक स्थानों पर हो चुकी है। कतिपय बातें मौलिक स्वरूप की भी हैं। जो भी हो, ग्वालियर से प्रकाशित "जयाजी-प्रताप" के ये अविकल उद्धरण उनके विषयक कई घटनाओं को पुष्ट करते हैं।

—सम्पादक

भारतीय संगीत परिषद्

हर्ष है कि भारत के कलाकौशलों की भारत के सपूत सुध ले रहे हैं और उनको नियमबद्ध करने का पूर्णतया प्रयत्न हो रहा है। जहाँ भारत की अन्य विद्याएँ हीन दशा को प्राप्त हैं, वहाँ संगीत की भी यही दशा है। कोई समय था कि यहाँ के गायनाचार्य अपने स्वरालाप से जलचर, नभचर तथा थलचरों को चकित कर यश के भागी होते थे, किन्तु आज उनकी संतान बिल्कुल संगीत विद्या-हीन पायी जाती है। उन सज्जनों को धन्यवाद है जो इसे पुनः जीवित करने में कार्यबद्ध हैं। विद्या प्रचार के लिये महाराजा बड़ौदा प्रशंसनीय हैं। श्रीमान् की प्रेरणा से तथा उनके प्रधानत्व में २० मार्च तथा आगामी दिवसों में बड़ौदे में एक भारतीय संगीत परिषद् होने वाली है। जिसमें देश भर के बड़े-बड़े विद्वान् गायक सम्मिलित होंगे। इस परिषद् का मुख्य उद्देश्य यह है कि अर्वाचीन वैज्ञानिक रीति से पश्चिमी देशों के अनुसार संगीत विद्या का प्रचार किया जाय। डा० सर रविन्द्रनाथ टागोर तथा धारवार के डिस्ट्रिक्ट-जज मि० क्लीमेन्ट्स, बम्बई के मि० व्ही० एन० भातखण्डे आदि सज्जनों ने परिषद् को रोचक बनाने में सहायता देने के वचन दिये हैं। समय के हेरफेर से यह विद्या कुछ ऐसी कोटि के लोगों में चली गयी थी, जिसने इसको उच्चकोटि के लोगों में निन्दित कर दिया था। अब आवश्यकता है कि इस विद्या का नियमानुसार प्रचार किया जायेगा। इंगलैंड, अमेरिका, जर्मनी आदि देशों में इस इस विद्या के शिक्षणार्थ बड़े-बड़े कालेज तथा स्कूल हैं। यदि इस परिषद् द्वारा देश में कुछ विद्यालय स्थापित हो जायँ,

तो शीघ्र ही इस विद्या का उद्धार हो सकता है। ग्वालियर भी इस विद्या का केन्द्र प्राचीन काल में रह चुका है और यहीं गायनाचार्य तानसेन का जन्म हुआ है। अतः आगामी परिषद् यदि ग्वालियर में की जाय तो अत्युत्तम हो।

—'जयाजी प्रताप' : २३ फरवरी १६१६

ALL INDIA MUSIC CONFERENCE

The special session of the Second All India Music Conference was held at Rampur on the 7th September under the presidentship of H. H. the Nawab, and following resolutions were adopted :—

(1) That the dates of the Delhi Conference be fixed as 7th to 1oth December.

(2) That the Raga System advocated by Prof. V. N. Bhatkhande of Bombay is suitable for mass-education in Music.

(3) That a central music college should be established at Delhi.

(4) That rupees ten lakhs be collected for establishing this college and special deputations should wait on various ruling chiefs for funds.

(5) That adetailed scheme be drafted by a body of experts like Prof. V. N. Bhatkhande, Thakur M. Nawab Ali, Taluqdar of Akbarpur, Mr. S. N. Karnad, Prof. S. L. Joshi of Baroda, Prof. P. B. Joshi of Ajmer,etc. within one month.

(6) That the foundation-stone should be laid at the time of the conference if promises for rupees five lakhs are secured within the next three months.

—'जयाजी पताप' : १८ दिसम्बर १६१८

भारतीय गायन समाज

भारतीय गायन समाज का दूसरा अधिवेशन आगामी अप्रैल मास में ईस्टर की छुट्टियों में होना निश्चित हुआ है। पहिला अधिवेशन सन् १९१६ ई० में श्रीमान् बड़ौदा नरेश के सभापतित्व में बड़ौदे में हुआ था। इस समाज का उद्देश्य है गायन शिक्षा का प्रबन्ध करना, राग, स्वर और तालों को निश्चित स्वरूप देना, भारतीय गायन कला का विश्वसनीय इतिहास लिखे जाने का प्रबन्ध करना, स्कूल और कालेजों में साहित्य की दृष्टि से गायन का प्रचार करना, एक केन्द्रीय गायनशाला स्थापित करना, जिसमें वर्तमान समय तक के परिपूर्ण गायन विद्या की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय। अधिवेशन के लिये जो स्वागतकारिणी समिति बनायी गयी है, उसमें रायबहादुर सुलतानसिंह, नवाब अहमद सईद खाँ, रायबहादुर दामोदरदास, ठाकुर नवाब अली, मि० भातखण्डे, प्रो० जोशी, मि० बी० के० कौल, डा० ए० सी० सेन इत्यादि लोग चुने गये हैं। यह भी निश्चित किया गया है कि देशी रियासतों में जाकर यह प्रयत्न किया जाय कि वहाँ से राज्य के गायन विद्या में निपुण लोग आकर इसमें सम्मिलित हों।

—'जयाजी प्रताप' : २ जनवरी, १९१८

गान-विद्या संबंधी सभा

गान-विद्या सम्बन्धी सभा होने की जो सूचना कई दिन हुए हमने 'जयाजी प्रताप' में प्रकाशित की थी, वह गत सप्ताह १४, १५ तथा १६ दिसम्बर को श्रीमान् नवाब साहब रामपुर के सभापतित्व में हो गयी। इस महासभा में संयुक्त प्रांत, दक्षिण प्रांत, पंजाब, गुजरात आदि के नामी-नामी गानेवाले आकर इकट्ठे हुए थे। उन लोगों ने गा-बजाकर और व्याख्यान देकर गान-विद्या की बारीकियाँ प्रकट कीं। गान-विद्या की उन्नति के लिये अनेक प्रस्ताव पेश होकर पास हुए। इस सभा की उन्नति के लिये और गान विद्या का वैज्ञानिक ढंग पर प्रचार करने के लिये नवाब साहब रामपुर ने ५० हजार रुपये प्रदान किये। श्रीमान् नवाब साहब ने अपने भाषण में कई महत्व की बातें बतलायीं। आपने बतलाया कि गान-विद्या का आविर्भाव वेदों से हुआ है और प्राचीन समय में इस विद्या ने बड़ी उन्नति की। मुसलमान बादशाहों के समय में भी इस विद्या का अच्छा प्रचार रहा। इसके अतिरिक्त ग्वालियर का संगीत के सम्बन्ध में विशेष तौर पर उल्लेख किया। 'आइने अकबरी' में लिखा है कि ग्वालियर के राजा मानसिंह ने 'ध्रुपद' का प्रचार किया और 'मानकुतूहल' पुस्तक रची। अकबर के दरबार में ग्वालियर के गायनाचार्य तानसेन बड़े प्रसिद्ध गायक थे। आपके परिवार के लोग अब तक रामपुर में हैं। आजकल भी ग्वालियर गायन विद्या के लिये प्रसिद्ध है और केन्द्र गिना जाता है। आपने यह भी कहा कि "सोचवानी" गाने का रिवाज आजकल उठता जा रहा

है। यदि इसका प्रचार किया जाय तो बड़ा लाभ हो सकता है। कान्फ्रेन्स में यह निश्चित हुआ कि देहली में एक जातीय गायन महाविद्यालय खोला जाय, जिसके लिए एक कमेटी बनायी गयी।

—'जयाजी प्रताप' : २५ दिसम्बर, १९१८

म्यूज़िक कालेज

भारतीय संगीतानुरागियों को यह जान कर सन्तोष होगा कि संयुक्त प्रांत में एक म्यूजिक कालेज स्थापित करने के लिये उद्योग हो रहा है। इस सम्बन्ध में आल इण्डिया म्यूज़िक कान्फ्रेन्स की ओर से जो डेप्यूटेशन श्रीमान् गवर्नर महोदय की सेवा में भेजा गया है, उसको सरकारी सहायता देने के लिये वचन देते हुए श्रीमान् ने पाँच सौ रुपये अपने पास से चंदे में दिये हैं। कालेज की स्थापना के लिये तीन लाख रुपये का अनुमान किया गया है और कहा गया है कि १ लाख के लगभग धन देने के लिये संयुक्त प्रांत के ताल्लुकेदार और अन्य सज्जनों ने वचन दे दिये हैं। इस कालेज की स्थापना के लिये बम्बई के प्रोफेसर भातखण्डे साहब बहुत प्रयत्न कर रहे हैं, जिनका सम्बन्ध ग्वालियर के माधव संगीत विद्यालय से भी है और हम उन्हें बधाई देते हैं कि उनका प्रयत्न फलदायी हो रहा है। इस संस्था के स्थापित हो जाने से वास्तव में एक बड़ी कमी पूरी हो जावेगी। संयुक्त प्रान्तीय सज्जनों का यह प्रयत्न सराहनीय है और इसमें जो सफलता अब तक प्राप्त हुई है, उसके लिये चौधरी नवाबअली और राय उमानाथ बली को धन्यवाद देना चाहिये। जो म्यूज़िक कान्फ्रेन्स की स्वागतकारिणी कमेटी के सभापति और मन्त्री थे।

—'जयाजी प्रताप' : २२ फरवरी, १९२४

माधव संगीत विद्यालय

महकमे की रिपोर्ट में इस बात का भले ही उल्लेख न किया गया हो, परन्तु सच्ची बात यह है कि श्री माधव संगीत विद्यालय ने जो उन्नति की है, उसका बहुत-सा श्रेय स्व० परचुरे साहब को है, जो इस संस्था के अवैतनिक सेक्रेटरी थे। परचुरे साहब को गायन कला से विशेष प्रेम था और विद्यालय के कार्य के गुण-दोष को समझते हुये वे एक केवल पेमास्टर की हैसियत से काम नहीं करते थे। सरकार ने यह संस्था जिस उद्देश्य से स्थापित की है, प्रोफेसर भातखण्डे की गायन सिखाने की पद्धति नवीन है और पुराने गवैयों की उसके प्रति कितनी श्रद्धा है, इन सब बातों को दृष्टि में रखते हुए इस बात की जरूरत

मालूम होती है कि इस संस्था का सेक्रेटरी गायन विद्या का रसिक हो । सरकार ने भी गत वार्षिक उत्सव में गाने-बजाने के बाबत अपने विचार प्रकट किये हैं और गायन का प्रेमी और बारीक नजर रखने वाला व्यक्ति ही प्रोफेसर भातखण्डे की इच्छानुसार काम चला कर सरकार की आशा पूरी करा सकता है ।

—'जयाजी प्रताप' : १ मई १९२४

प्रो० भातखंडे का स्वागत

विगत नवम्बर मास में प्रो० भातखण्डे माधव गायन पाठशाला के सारे विद्यार्थियों की वार्षिक परीक्षा लेने के लिए लश्कर पधारे थे। पं० मुकुन्द वासुदेव लुखे, पोस्टमास्टर लश्कर के दो लड़के तीसरे वर्ष की परीक्षा में पास होकर चौथे में पहुँचे हैं । इसके उपलक्ष में पोस्टमास्टर साहब ने प्रो० भातखण्डे साहब, गायन शाला के सब शिक्षक और उत्तीर्ण व कुछ पाँचवें दर्जे के विद्यार्थियों को अपने घर बुलाया था । रात्रि ७।। बजे से प्रभाकर व केशव लुखे ने अपने मधुर-स्वर से ताल-सुर के साथ दो चीजें गाकर सुनायीं । तब पं० ललितापति शास्त्री जी ने उसी वक्त बनाया हुआ यह श्लोक सुनाया :—

अस्मिन्भारतखण्डे प्रभात्यपूर्वोहि भातखण्डेऽयम्,
स्वररसज्ञानविमूर्छन माधुर्योजः प्रसाद सन्दाता ।

शास्त्री जी ने अपने हृदयग्राही भाषण में ग्वालियर के प्राचीन गायन शिरोमणियों का उल्लेख करते हुए प्रो० भातखण्डे की प्रशंसा में यह कहा कि हमारे गुणग्राही अन्नदाता जी के आश्रय में और प्रो० भातखण्डे के निरीक्षण तथा संचालन में यह गायनशाला बहुत अच्छी उन्नति कर रही है । शिक्षकों को धन्यवाद है और बालक गवैयों को बधाई । श्लोक का अर्थ बतलाते हुए शास्त्रीजी ने कहा कि गाने के लिये केवल ताल सुर में गा लेना ही काफी नहीं है । गाने के सर्वांगों का ज्ञान हो जाने पर ही उनको बर्तांकर गाने में माधुर्य, ओज और प्रसाद गुण अवश्य होना चाहिये ।

पाँचवें दर्जे के दो विद्यार्थी बालाजी और नातू ने तब २-३ चीजें गाईं । इन दोनों का गाना उच्च कोटि का हुआ और उपस्थित सब बहुत ही प्रसन्न हुए । नातू का गला बहुत ही अच्छा फिरता है ।

पश्चात् सब महाशयों ने चाय पी, मिठाई खाई और सबको इत्र-पान दिये गये व हार-माला पहनाई गई । पोस्टमास्टर साहब की तरफ से प्रो० बाजपेयी ने भातखण्डे साहब, ललितापति शास्त्री जी, विष्णुबुवा हेडमास्टर व उनके स्टाफ को और सब उपस्थित महाशयों को धन्यवाद दिये, उत्तीर्ण विद्यार्थियों के गायन की उन्नति के लिए आपने एक योजना पेश की और श्रीमंत सिंधे सरकार को सपरिवार आशीर्वाद देते हुये भातखंडे साहब ने सानुरोध यह कहा कि संगीत शास्त्र तथा कला का सर्वांग पूर्ण करने के लिये गायन शाला में तन्तकारी का क्लास अवश्य ही खुलना चाहिये ।

—'जयाजी प्रताप' : ११ दिसम्बर १९२४

भारतीय संगीतकला को उत्तेजन

लखनऊ में जो अखिल भारतीय संगीत कान्फ्रेंन्स हुई थी, यह १४ जनवरी को समाप्त हो गई। संयुक्त प्रांत के गवर्नर महोदय ने अच्छे-अच्छे गाने-बजाने वालों को सोने और चाँदी के तमगे प्रदान किये।

कान्फ्रेन्स में पास हुये एक प्रस्ताव के अनुसार स्वागतकारिणी समिति के चेयरमैन ठाकुर नवाबअली के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि दल गवर्नर महोदय से मिला और संयुक्त प्रांत में संगीत का एक कालेज स्थापित करने की योजना को सहायता देने की प्रार्थना की।

गवर्नर महोदय ने उत्तर देते हुये कहा कि इस देश में वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर संगीत की शिक्षा देने के लिये जो प्रबन्ध सोचा गया है, बहुत अच्छा है और इस ओर श्री भातखण्डे जो प्रयत्न कर रहे हैं, उसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं। प्रतिनिधि दल ने जो एस्टिमेट पेश किया है उसके अनुसार कालेज की स्थापना के लिये ३ लाख रुपये की आवश्यकता होगी। आपने आशा प्रकट की कि जनता इस योजना के प्रति शीघ्र ही अपनी सहानुभूति प्रकट करेगी और सहायता देगी। यदि इस कला को पुनर्जीवित और सब लोगों के लिये सहल करना है तो इसका प्रबन्ध शिक्षित जनता को अपने हाथ में लेना चाहिये। आपने यह भी कहा कि अभी यह कहना बहुत शीघ्रता होगी कि सरकार इसके लिये क्या आर्थिक सहायता दे सकेगी, परन्तु आपने विश्वास दिलाया कि सरकार इस ओर अवश्य ध्यान देगी और आशा प्रकट की कि भारतीय संगीत के प्रेमियों के प्रयत्न सफल होंगे।

कान्फ्रेन्स समाप्त होने के पहिले कमेटी के सेक्रेटरी राय उमानाथ बली ने एक लाख रुपये लगभग के उन दानों की घोषणा की, जिनका वायदा उक्त कालेज की स्थापना के लिये लोग पहिले ही कर चुके थे।

बाद के समाचारों से विदित होता है कि गवर्नर महोदय सर विलियम मैरिस ने भी ५००) सहायतार्थ भेजे हैं।

—'जयाजी प्रताप' : २२ जनवरी १९२५

भारत संगीतोद्धारक स्व० प्रो० वि० ना० भातखण्डे

संक्षिप्त जीवन वृत्तांत

आपका जन्म श्रावण बदी ८ जन्माष्टमी, संवत् १९१६ (सन् १८५९) को हुआ और स्वर्गवास गणेश चतुर्थी, संवत् १९९३ (सन् १९३६) को।

आप बम्बई हाईकोर्ट के एक प्रसिद्ध वकील थे। आप शान्ताराम नारायण वकील की सहायता से वकालत में प्रवीण हुए थे। प्रो० भातखण्डे की माता एक योग्य वैद्य भी थीं। आप ही ने अपने पुत्र का पालन-पोषण किया था।

प्रो० वि० ना० भातखण्डे ने वकालत के समय में बम्बई में संगीत क्लब स्थापित किया। इन्होंने रावजी बुआ बेलबागकर पूना के प्रसिद्ध ध्रुपदिया से १०-१२ वर्ष तक शिक्षण लिया।

एक बार आप फर्माते थे कि मैंने भी संगीत के लिए अनेक गुरु किये, कई कष्ट सहे और बहुत-सा रुपया खर्च किया और तरकीबें भी बहुत चलायीं। जिनका एक उदाहरण आपने यह सुनाया—मुहम्मद अली खाँ से जब पूरा दिल न भरा तो मैं बम्बई लौट आया। मेरे सौभाग्यवश उनके बेटे आशिकअली खाँ बम्बई पधारे और जैसे-तैसे मुझे गाना सिखलाने के लिए रजामन्द हो गये। जो कुछ वे गाते थे उसे मैं ग्रामोफोन में भर लेता और नोटेशन में लिख लेता। जब कई दिन बाद बाप-बेटे दोनों एकत्र हुए, तब मैंने उन्हें उन्हीं का गाना पर्दे के अन्दर से सुनाया। आप बहुत हैरान हुए और आशिकअली से बुरा-भला कह कर मुझ से बोले—मियाँ, जो कुछ किया अच्छा किया, खैर तुम्हारे जरिये कम से कम यह हमारा गाना तो हिन्दुस्तान में कायम रहेगा। लेकिन हमारी चीज़ों को आगे के गवैया तासीर के साथ शायद ही गा सकें। इस वास्ते तुम हमारी धरती पर नई चीज़ें बनाओ और उन्हीं को चलाओ। प्रो० भातखण्डे साहब ने वैसा ही किया।

जयपुर में मुहम्मअली खाँ—जिनकी छाप हररंग है और जो मनरंग के घराने के थे, उनसे प्रो० साहब ने ख्याल सीखा।

इन्होंने ४० वर्ष की अवस्था से भ्रमण करना शुरू किया। इसी काल में इन्होंने संगीत ग्रंथ सम्पादनादि कई प्रशंसनीय कार्य किये। इनकी पुस्तकें निम्न प्रकार हैं :—

संस्कृत—१. अभिनव-राग-मंजरी, २. श्रीमल्लक्ष्यसंगीत।

मराठी—गीतमालिका २० भाग; संगीत पद्धति ४ भाग, क्रमिक पुस्तक भाग ४, स्वरमालिका २ भाग, संगीत दर्पण भाषान्तर, पारिजात प्रवेशिका, स्वर मेल कलानिधि, संगीत रत्नाकर, राग विबोध इत्यादि।

रामपुर नवाब कलवेली खाँ से भी आपने ध्रुवपद धमार सीखा।

पं० एकनाथ पंडित ग्वालियर से करीब २००-३०० चीजों का नोटेशन आपने किया।

भातखण्डे साहब स्वयं अच्छे गवैया होते हुए आलापों में बहुत ही प्रवीण थे। तंतकारी में भी आप बीन व सितार जोड़ अंग अच्छा बजाते थे।

आपके ही प्रयत्न से एक भारतीय संगीत परिषद् कायम हुई और उसी के अन्तर्गत प्रथम भारतीय संगीत सम्मेलन बड़ौदा में, दूसरा दिल्ली में संवत् १९७५ में, तीसरा बनारस में संवत् १९७६ में, चौथा और पाँचवाँ लखनऊ में संवत् १९८१-८२ में हुए। लखनऊ का मैरिस कालेज आप ही के परिश्रम का परिणाम स्वरूप है। सन् १९१७ में प्रो० भातखण्डे लश्कर पधारे और संगीतकलानिधि स्वर्गीय सरदार श्रीमंत बलवंतराय भैया साहब से मुलाकात करके बम्बई वापिस चले गये। उसी के फलस्वरूप स्वर्गीय श्रीमन्त माधव महाराज सर कैलासनारायण हक्सर साहब के साथ जब कुछ ही दिन बाद बम्बई पहुँचे, तब वहाँ प्रो० साहब के चलाये हुए पारसी लड़कियों के संगीत मदरसे में पहुँचे। प्रो० महोदय अपनी पक्की लगन से अपनी नोटेशन पद्धति के अनुसार श्यामपट पर गायन सिखला रहे थे। सारी बालिकाएँ ध्यानमग्न सीख रही थीं। जब कुल ५०-६० बालिकाओं ने एक स्वर में उस

लिखित चीज को गाकर सुनाया तब श्री स्व० सरकार बहुत प्रसन्न हुए। इतने में ही भातखण्डे जी को सरकार सवारी की उपस्थिति का परिज्ञान हो गया और आपने योग्य रीति से उन दोनों का स्वागत व सत्कार किया। उसी साल सितम्बर मास में भातखण्डे जी को शिवपुरी बुलाया गया और अक्टूबर के आरम्भ में ही यहाँ के संगीत उस्तादों के शिष्य नामी संगीत विद्वान् १. पं० विष्णु बुवा, २. राजा भैया पूछवाले, ३. पंडित बलवंतराव जी भजनी, ४. स्वर्गीय कृष्णराव दाते, ५. स्व० गोखले, ६. कत्थक चुन्नीलाल, सरकार की तरफ से बम्बई इस वास्ते भेजे गये कि उनकी नोटेशन पद्धति द्वारा संगीत शिक्षण की पद्धति में निष्णात् हो जावें। इसे संगीत का ट्रेनिंग कालेज कहना चाहिये। इन छः के साथ लश्कर के लिये खांडेपारकर, भास्करराव को वहीं सम्मिलत कर लिया गया।

इसी अवसर पर बड़ौदा सरकार ने भी, जो इनके गुणों पर मुग्ध थे, अपने यहाँ के उस्तादों को संगीत ट्रेनिंग के लिये बम्बई इनके पास भेज दिया। सितम्बर के अन्त में ये सब ट्रेनिंग पाकर अपने-अपने स्थानों का वापिस पहुँचे।

यहाँ लश्कर में तारीख १० जनवरी सन् १९१८ को कम्पूकोठी में माधव म्यूज़िक स्कूल कायम किया गया और कुछ दिन बाद ही वह गोरखी में पहुँचा दिया गया, जहाँ अविच्छिन्न प्रकार से वह माधव संगीत विद्यालय के नाम से चल रहा है।

प्रो० भातखण्डे आज से तीन साल पूर्व तक पहिले दो-तीन वर्ष तिमाही परीक्षा तक के लिए यहाँ पधारते थे और अध्यापकों को संगीत शास्त्र और प्रत्यक्ष गाना सिखलाते थे। बाद में हर छमाही परीक्षा के लिये आने लगे। और फिर केवल वार्षिक परीक्षा पर ही आने लगे थे।

विद्यालय की स्थापना में ५ साल बाद उत्तीर्ण विद्यार्थियों के पहिले उत्सव के अवसर पर दरबार की तरफ से आपको एक पोशाक अर्पण किया गया और १९३०-३१ के सालाना जल्से में जब कि प्रथम ग्वालियर संगीत सम्मेलन भी हुआ था, आपको कौंसिल आलिया की तरफ से नकद १०००) और ज़री का दुशाला प्रदान किया गया था।

बड़ौदा सरकार से भी कई साल से आपको २००) मासिक मिलते थे ?*

लश्कर के १९२६ के शिक्षण सप्ताह में आपने संगीत पर एक ओजस्वी भाषण दिया था।

आपकी पद्धति के अनुसार निम्न स्थानों पर संगीत शिक्षण दिया जा रहा है :— बड़ौदा, बरेली, अहमदाबाद, खुर्जा, लखनऊ, बनारस, अनूपशहर, पूना, धार, आगरा, बम्बई, उज्जैन, अवागढ़, ग्वालियर, नागपुर, जयपुर आदि।

—'जयाजी प्रताप' : ८ अक्टूबर, १९३६

*** विश्वस्त सूत्र से ऐसा ज्ञात हुआ है कि यह मासिक वृत्ति पं० भातखण्डे ने कभी स्वीकार नहीं की थी। केवल प्रकाशन के लिये समय-समय पर उन्हें आर्थिक सहायता मिलती रही, जिसका उन्होंने दो-एक स्थानों पर उल्लेख भी किया है। उपरोक्त लेख पं० भातखण्डे का देहावसान हो जाने के बाद प्रकाशित हुआ था। अर्थात् बड़ौदे की यह बातें अनुमान पर ही आधारित होगीं।—सम्पादक**

विविधा

अनुक्रम

(अ) पत्र संग्रह

१. कनिष्ठ भ्राता श्री हरिभाऊ नारायण भातखण्डे को संबोधित पत्र दि० २७- ६-१९१७

लखनऊ का अध्याय

२. राय उमानाथ बली को संबोधित पत्र दि० १ सितम्बर
३. ,, ,, दि० २९- ७-१९२१
४. ,, ,, दि० २६- ५-१९२२
५. ,, ,, दि० २८- ७-१९२८
६. ,, ,, दि० १०-१०-१९३०
७. ,, ,, दि० ३- ९-१९३२
८. डा० श्री० ना० रातांजनकर को सम्बोधित पत्र दि० १५- ९-१९३०
९. ,, ,, दि० १- ८-१९३१
१०. ,, ,, दि० २९- ९-१९३२
११. ,, ,, दि० २१- १-१९३३
१२. ,, ,, दि० १६- २-१९३३

उज्जयनी का अध्याय

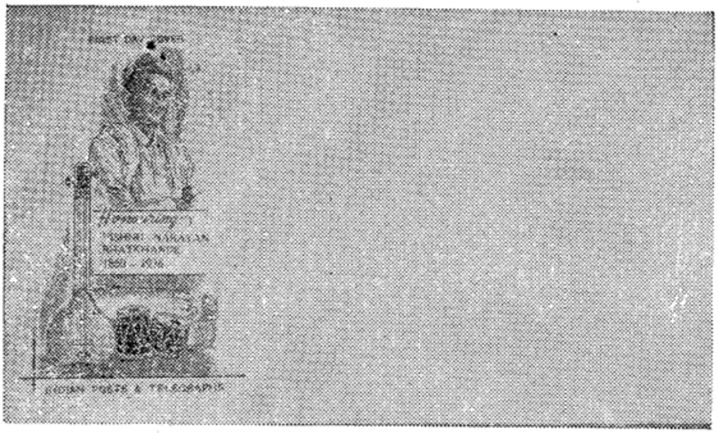
१३. आचार्य भास्करराव खाण्डेपारकर को सम्बोधित पत्र दि० २- ३-१९३०
१४. ,, ,, दि० १४-१०-१९३०
१५. ,, ,, दि० ४-१२-१९३०
१६. ,, ,, दि० ४- २-१९३१
१७. ,, ,, दि० १२- ३-१९३१
१८. ,, ,, दि० १- २-१९३२

(आ) स्फुट लेख भाषण आदि

१. Some Distinguishing Features of Hindustani Music.
२. भारतीय सङ्गीत
३. Aims and Objects of the All India Music Conference.

४. An Appeal.
५. National Academy of Music.
६. Shri Madhav Sangeet Vidyalaya.
७. आधुनिक हिंदुस्तानी राग पद्धति एवं उसके अध्ययन की सरलतम विधि
८. रागगायन में श्रुति का महत्त्व
९. ख्याल-गायन के कुछ स्थूल नियम
१०. How Bilaval came to be Shuddha Scale.
११. An Advice to a Serious Student of Music.

(इ) पण्डित भातखण्डे का इच्छापत्र
(ई) जन्म-लग्न-कुण्डली और फलादेश
(उ) जीवन का घटना-क्रम
(ऊ) चित्र-परिचय
(ऋ) लेखक-परिचय



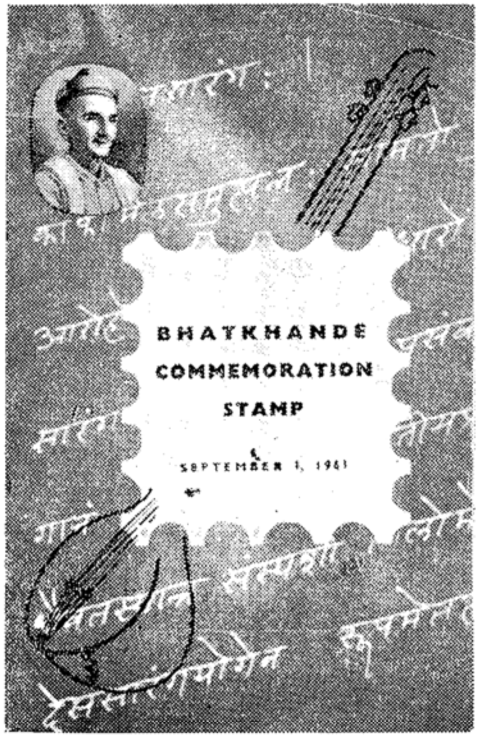
१ सितम्बर १९६१ को डाक-तार विभाग द्वारा प्रसारित
प्रथम दिवस का लिफाफा

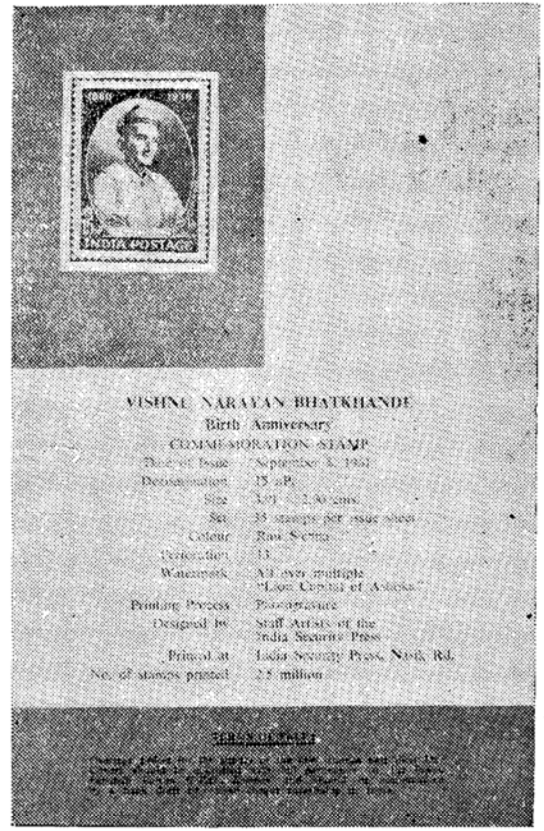


डाक-तार विभाग के विशेष टिकट



नामांकित राजकीय मुहर लगाया हुआ लिफाफा





भातखण्डे जन्म-शताब्दी के पुनीत पर्व पर भारतीय गणराज्य कृतज्ञता व्यक्त करता है।

THE PALACE
BANGALORE
27-6- 17.

प्रिय हरिभाऊ,

सौ० मालूबाईच्या पत्रीं आपल्या कुटुंबावर आलेल्या अनपेक्षित व भयंकर संकटाची वार्ता ऐकून जें दुःख मला झालें, तें कागदावर लिहिता येत नाहीं. दुखण्याची खबर एकदम मला कां दिली नाहींस कळत नाहीं. कदाचित् दुखण्याचें खरें स्वरूप तुला हा प्रथम कळलें नसेल, व पुढें मला कवळून भेवडविण्यांत उपयोग नाहीं असें वाटलें असेल, असं दिसतें. भला कळतें तर मी तत्काल निघालों असतों, यांत अगदीं संशय नाहीं इतकीं वर्षें देवानें सुखासमाधानांत संभाळून अशा वेळीं संकट आणावें हें आपणा सर्वांचें दुर्दैवच म्हटलें पाहिजे. या खबरेंनें माझे हातपाय मोडल्या सारखे झाले आहेत, व येथे क्षणभर ही राहण्याची इच्छा नाहींशी झाली आहे, मी परवां रात्रीच्या गाडीनें येथून निघेन. तत्काळ निघणार होतों, परन्तु माझ्यानें तुमचें तें दुःख पाहवणार नाहीं, हें जाणून व माझ्या येण्यानें संकट परिहार आंतां होण्याजोगा नाहीं, हें मनांत आणून आजच निघत नाहीं. माझें दुःख तुमच्या पेक्षां कभी मात्र नाहीं. हें मोकळया मनानें तुला सांगतों, तूं शहाणा आहेस व माझ्याही पेक्षां तुझ्या अंगीं धैर्य अधिक आहे, हें मला ठाऊक आहे. अशा प्रसंगी आपण धैर्य धरून आपल्या पदरच्या माणसांना धाबरूं न देणें हें आपलें कर्तव्य आहें, ही मृत्युलोकची वस्ती नेहमीं अशाश्वतच आहे. जनन व मरण यांचीं सूत्रें ईश्वरानें आपल्या हातीं ठेवलीं आहेत. तो राहूं देईल तितकें व तसें राहणें हें मात्र आपल्या कडे आहे. तुझी वडील माणसें आम्हीं तुझ्या संसाराकड़े डोळें लावून बसलेंलीं आहों. तुझया सुख-दुःखाचीं वाटेंकरी आहों, हें सांगण्याची जरूर आहें. असें नाहीं. तुझें संकट म्हणजे आम्हां सर्वांचेंच संकट आहे, यापेक्षां अधिक काय लिहूं.

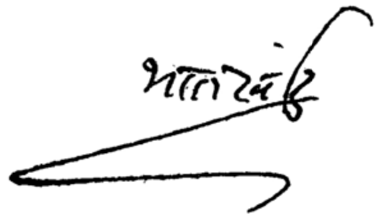
आतां, हिंमत धरून व सर्वांना हिंमत देऊन तुला वागलें पाहिजे आहे. हे प्रसङ्ग नेहमी सर्वांवर येतच आहेत हें आपण रोज पाहतों. परवां गाइकवाड महाराजांचे बंधूंच्या अकस्मात् दुखण्याची उटीला तार आली. तसें ते धांवत बडोद्याला जाण्यास मोटरनें येथें आले. आल्यावर नऊ वाजतां निघणार तों सांत वाजतां दुसरी तार ते गैल्याची हातांत पडली. ती मिळाल्याबरोबर दुःखानें आपल्या खोलींत जाऊन बसले व येथेंच दोन दिवस राहून बिचारे पर उटोंला जाऊन बसलें. बंधूना जाऊन पाहण्याची त्यांची फार इच्छा होती, परन्तु योगायोग नव्हता.

आपली आई म्हातारी आहें; आपल्या हिंमतीवर तिची हिंमत असणार आहे. सौ० राधाबाईला धीर देणारा तूंच आहेस. हें सर्व ध्यानांत आणून तुला वागलें पाहिजे.

तूं कोणत्याही गोष्टीची काळजी करूं नको. तुम्हां सर्वांची काळजी माझ्या जीवांत जीव आहे तों मला राहील, हें पक्के समजून अस. आपण खरे भाऊ आहों.

पैशाअडक्याची जरूर असल्यास कारकून शंकररावांस सांग म्हणजे जितके लागतील तितके ते देतील भालचन्द्र इकडून त्यांस लिहीत आहे,

तुझा बंधु



लखनऊ का अध्याय

सङ्गीत का पुनरुत्थान अविरत रूप से चलता रहे, इस दृष्टि से देशव्यापी किसी एक विशाल सङ्घटना का निर्माण कर देना भातखण्डे जी का प्रमुख लक्ष्य था। बड़ौदा-देहली की परिषदों में इस विषय पर उन्होंने चर्चा की तथा कुछ आश्वासन भी प्राप्त किये। इस कार्य में अपने दस-बारह अधिकार-प्राप्त मित्रों को भी उद्युक्त कर दिया। बड़ौदा-ग्वालियर के विद्यालयों में अल्पावधि में उन्हें जो सफलता मिली थी, उस पर वे सन्तुष्ट तो अवश्य थे, परन्तु देशी रियासतों की मर्यादाओं का भी उन्हें पूर्ण अनुमान था। देशव्यापी संघटना का गुरुतर भार किसी एक या दो-चार रियासतों पर छोड़ देना उन्हें उचित प्रतीत न हुआ। राजधानी दिल्ली में ही ऐसी संस्था रहे। ऐसा उनका आग्रह था। लगभग आठ-दस वर्ष इस दिशा में वे प्रयत्नशील रहे और उत्तर प्रदेश के कुछ उत्साही कार्यकर्ताओं को दिल्ली में इस संस्था की प्राणप्रतिष्ठा की प्रतीक्षा करने के लिये समझाते रहे। ऐसी संस्था लखनऊ में स्थापित हो, ऐसा राय उमानाथ बली का आग्रह था। अंत में अपने सभी प्रयास असफल हो जाने पर दिल्ली में नहीं तो लखनऊ में ही सही—इस खिलाड़ी वृत्ति से राय उमानाथ बली से उन्होंने सम्पर्क स्थापित किया। उत्तर प्रदेश में किये हुए उनके इन प्रयासों पर सारा देश मोहित हो गया। रायसाहब को लिखे हुए उनके ये पत्र भातखण्डे जी की योजनाबद्ध कार्यप्रणाली की एक झलक प्रस्तुत करते हैं। पत्रों को पढ़ कर तो ऐसा लगता है कि भातखण्डे जी की अतृप्त आत्मा आज भी लखनऊ के कैसरबाग में म्यूज़िक कालेज के इर्द-गिर्द सैकड़ों बच्चों का गायन-वादन सुनती होगी, जिनके लिये उन्होंने संगीत की सभी साधन-सामग्री एकत्रित कर उपलब्ध करा दी थी। बिस्तरे पर लेटे-लेटे प्राण छोड़ देने की अपेक्षा उस कालेज में देह त्यागने की आंतरिक इच्छा उन्होंने प्रगट की थी। उत्तर प्रदेश का यह कालेज अखिल भारतीय स्तर का बने—यही उनकी इच्छा थी।

—सम्पादक

THE NATIONAL ACADEMY OE MUSIC ASSOCIATION, DELHI.

RAMPUR

1st. September

My dear Rai Saheb,

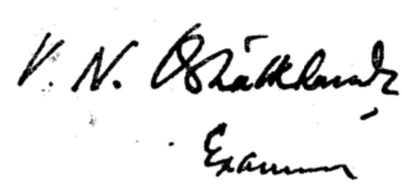
Your kind letter to hand. I shall positively come to Daryabad after finishing my work here. I shall let you know when I would be able to leave this. So as to give you sufficient notice.

I thank you for your frank opinion on the Benares question. I quite agree with you that the question of transferance is a very important one and no hasty decision should be taken in such a matter where the question of life and death of the great institution is involved. Nobody is over fond of this amalgamation or rather the affiliation but the difficulty is how to collect funds and continue. Kaul says we have about Rs. 500/- in the bank and nobody comes forward to help. The office of the Academy will have to be closed sooner or later if this state of things continues. I read out your letter to Nawab Ali Thakur and he said your conditions were quite fair. If the Benares society would consent to those conditions the Academy may not suffer. All that we want is that the individuality of the Academy should not be lost in the greater body, it's funds should remain quite separate; its government should remain in the hands of only those who are real lovers of music—such as are known to be really interested in the art-- who besides must be members of this Academy Association etc. etc. If the Academy could have been transferred to Benaras without affiliation. I would have been more happy, but if the other alternative is natural

death, I would not mind accepting the affiliation. I am glad you are taking the opinion of all the members of the Academy Association on the question. Why not wait until the next conference which meets at Indore in March. But perhaps that is too long. Kaul has already stopped all necessary expenditure. Indore has formally invited the Conference and we have accepted the invitation with thanks. Nawab Ali will be going away in a day or two. I am staying here for some days just to try to help Home Saheb (Chhaman Sahib) in completing his first book. So many obstacles, quite unexpected crop up and we do not get sufficient leisure to sit together and work. However, now the birthday ceremonies will be over and we hope to get more time. Chhaman Sahib also favours the removal of the Academy to Benares subject to the conditions you have mentioned.

The best way would be for Mr. Kaul to issue a circular letter to the members of the Association stating the Benares proposal and requesting their opinion. He may then send the letter signed by the members to the authorities of the Benares Parisad.

Yours Sincerely,



zine. You can write to all your old friends again. Karnad, Sukthankar and Joshi. I shall also speak to them. You may approach Chhaman Saheb through Bhai Nawab Ali Saheb and obtain his permission to publish some of his Urdu books say मानकुतूहल; नगमाते-आसफी and others. I know he has got them. I shall give you नादोदधि, संगीतसार, संगीत-समय-सार, संगीत-मकरन्द in small monthly installments if you care to publish them. Songs and old Granthas will make the magazine popular as well as useful. You have given me no offence and any silence was never due to any such thing. I had nothing to write about, so kept quiet. Wishing you all success.

Believe me Yours Sincerely,

KHOTE HOUSE
Forjett Street, Cumballa Hill
Bombay, 26 May 1922

My dear Umanath Saheb,

Your letter of the 21st was delivered here this day. I was so glad to hear from you after such a long time. With friends time does not matter much. I had not the least idea that you were passing through such anxious times. Thank God your anxiety is over now and you are enjoying your normal peace of mind. I am busy writing the 4th book of music. A part of it is in the press already. The third was out some two months ago. If you want a copy, you can have it from Sukthankar. He is the publisher as you know. His address now is B. S. Sukthankar, Solicitor, (Messers Suk-

thankar & Co., Solicitors, 33 Meadows Street, Fort, Bombay). On or about the 1st. of June I go to Haridwar in the company of three or four music teachers of the Gwalior Music School. We shall stay at Haridwar the whole of June and hope to do a lot of music work there. The teachers have been officially sent with me to Haridwar or rather departmentaly I should say. I shall give them some lectures and note some of their Khayals and Dhrupads. I leave this on the 1st. and pick up the teachers at Gwalior the next day. We shall very likely go via Mathura and Delhi, which they say is a shorter and a quicker route. While at Haridwar I shall be writing to you telling you what progress we make.

REGARDING CONFERENCE

We have given-up all hopes about Indore now. It is said the state wants to save as mueh money as possible and wont now spend on Music Conference. Poor Music ! I really do not know what sins Music has committed. No proctetor comes forward to champion its cause. Nobody appreciates its great utility. People will have certainly to report some day. The next decade will kill most of the leading artists and scholars and by the time the people wake-up there will be only fifth class musicians left to please them. My friend Mr. Kaul is trying to induce the Calcutta gentry to invite a Conference and let us hope his efforts succeed. The Bengalis are very fond of music it is said and Kaul's appeal may not fall on deaf ears. Kaul's address is 20, Bakul Bagan Bhowanipur, Calcutta. You may write to him and inquire about his progress. What about your idea of starting a Music class or School in Lucknow ? Your friends Shivagad Prince and others were keen on it. A Conference at Lucknow is a good idea too. I shall try to help you as for as I can. I believe Baroda, Gwalior and Indore would certainly send their artists. I can't say they will come at State expense. But did we not pay travelling expenses at

Delhi and feed them too at the expense of the Conference ? Even then our bill did not exceed over some eight thousand rupees. Lucknow can with its great Rajas and Talukdars easilly put together Rs. 10,000 if she has a mind to do it. The guests will come at their own expenses. I will certainly. Do consult Thakur Nawab Ali about it. I am told Lucknow is a Shia strong-hold and Shias don't encourage the art. They say it is Haram ! I hope it is not true. We may leave alone the Shias and stick to Hindus and the Sunnis only. A band of zealous workers would be absolutely necessary. Though music has nothing to-do with politics and we may expect help from all quarters. I shall write again from Haridwar. All well here and wish you the same.

Yours Sincerely,

Anna

MALBAR HILL
BOMBAY. 28th July 1928

My dear Rai Saheb,

I have duly received your letter dated the 25th. which reached me today. I can very well understand your anxiety about the financial condition of our Music College. I quite agree with you that we must do our ut most to improve that condition without further delay. Yes, the idea of having another Conference in the way you suggest appeals to me and if great men like the Maharaja of Mahamoodabad also suggest it the thing may be worth trying. I agree with you

that there is no good in inviting a lot of worthless malingerers to the Conference and place before the public a useless Tamasha involving us in heavy expense and worry. I approve the suggestions you have made in the letter, particularly the last one, namely having a competition of professional female artists. That suggestion always came before the Managing Committee of the previous Conferences, but had to be tabooed for fear that the Conference would thereby loose the confidence of the general public and lead to misunderstandings among its most supporters and sympathisers. We are fairly advanced now and people will not misjudge our motives. In an advanced province like Oudh (U. P,) at least, we hope people will not dislike the idea. In the circular letter we may plainly say that there are three Arts—गीत, वाद्य, नृत्य—comprised in the Indian term Music—संगीत। In the previous Conferences we successfully brought to the notice of the public the first two Arts and at the next Conference we propose to add the last, that is the art of Dancing (अभिनय) with a view to see how far the art of Dancing-particularly अभिनय—which requires help for it's uplift. That will bring in female Artist with their vocal music and Dancing to the Conference. It is no secret that people like female singing much better then the howlings of the so-called male experts. Than again we know that there are very few real male artists left in the country and the art of vocal music is fast dying away. When I was in Lucknow last year I actually mentioned to some of my friends my idea of sooner :or later opening a branch of the Marris College in the city for the benefit of the young girls of the professional female singers, under the direction and guidance of the College authorities. The idea, it appears, reached to the ears of Achhan Bai and Bicheva the local first class artists and was told they liked it very much. The two choudharanis are willing to come to see me at the College to talk the matter over with me, but I thought their appearance at the College was against the policy and

rules of the College and did not consent to see them. The branch institution was to teach courses suited to the needs of girls attending it, of course Munnay Khan and Ahmad Khan also approved the idea. I mention this to you simply to show you that I am personally not against the idea of inviting female artists to take part in the Conference by exibiting their skill. I was only afraid we might thereby frighten away some of our extra-puritan sympathisers. But if in the interest of the College the step becomes necessary, I would be first to support it. However before proceeding, to take any final decision or step you must be sure of your friends perticularly Raja Nawab Ali and Maharaja of Mahamoodabad. If they are at your back to support you, do take up the matter. We should appoint a small Subcommittee of the local famous artists (female) and issue invitations in their names to such of their female arttist friends as in their opinion would be worth inviting. They know their people better and we may leave that to their judgement of course using our own discretion at the same time. So far as I know the best female artists will be found in U. P.. Punjab. Bengal, Gwalior, Indore, Baroda and jaipur. There is nothing worth looking for on this side. Gazal and Thumari singing is only to be found in Upper India. We should also have our own committee to manage the whole show. The demonstrations should be held in a big theatre, that will save a lot of bother and worry. The theatre may me found insufficient for our needs, but we should make the Conference long long enough so as to give every artist a chance. Side by side we should invite some of the most famous male artists to give the public and the female artists a chance of hearing first class select-music. Scholars intending to read papers on अभिनय and dancing or on any of the out of the way Ragas may be invited. The details can be worked out if the idea is taken up. Do consult your friends there and let us have the next Conference in January or March. I am glad the Maharaja of Mahamoodabad is so sympathetic. He is a

great man in Lucknow and I have no doubt his sympathies will make the proposed Conference a success.

In the coursc of the Conference one of the local first-class female artists should propose that a branch of the Marris College be opened in a convenient quarter in the city where the little children and young girls of professional female artists should be taught their art by welknown female artists and one or two old male experts. Achhen Bai and Bicheva, I am sure, would offer their services free because God has made them rich and sufficiently independent. I am sure, they can be persuaded to throw their hearts in this great work which will bring them the thanks and blessings of hundreds of singing girls. The pupils trained by them as well as trained at the College may give public demonstrations every three months to sellect audiences (who will have to pay for admission) and thus there will be contributions coming in for the college fund.

As to having competitions for the amateur ladies and gentl e. men I am not sure, if that idea will appeal to them. They will be afraid to sing before such big audiences and particularly before the professionals. In that case we shall have to provide for them separate place and audiences, ladies may not sing before males and so, a separate arrangement will be necessary. But these are all details, which can be satisfactorily managed,

My health

You need not worry about my health. My chief complaint is bad head noises which prevent sleep. The high blood pressure I have had for serveral years past. The pressure has now gone up to about 210, which is not good but that does not frieghten me. The noises in the head is the real trouble. They have increased my deafness considrably. I have totak one grain of Lummal every night for sleep. I go out every evening and read almost the whole day. The doctors advise me not to undertake any journey involving fatigue and worry so long as I can help it. But my dear Rai Saheb, if

our dearly loved College requires my presence. you can certainly count upon my running up to offer such service as I may be able to render. I shall never allow my health to come in between my duty to the College. I would rather die in the College than in a sick bed here. I eat well, take fair excercise and with own grain of Luminol get enough sleep. An old and deaf man has necessarity to go through these difficulties, and I have no reason to complain. It is my great desire to die in Kashi but that is for Him to decide. If the Conference business is taken up. I shall surely com up. If you want me to come in September, I shall try.

Yours Sincerely,
V. N. Bhatkhande

MALBAR HILL
BOMBAY
10-10- '30

My dear Rai Saheb,

I am delighted to receive your kind letter of the 8th. It seemed an unexpected but most agreeable surprise. I thought you had entirely forgotten an old and useless fossil. Thank God I was mistaken. Shrikrishna told me you were trying to enter the Council or Assembly and were extremly busy. As I had nothing that would interest you, the best thing I could do was to keep silent and not worry you in midst of your affairs. I really thank you for the kind invitation which I shall not fail to avail of when I go to Gwalior next month. I hope the affairs of the College are now fairly settled. Glad to note you will be free to come and stay in Lucknow for about a week after the 5th. Nov. I have not received a call from Gwalior yet but expect to get it before long. If they want me there after the 15th. of November, I shall came to Lucknow first and from there visit Gwalior.

Hoping yourself and Rajeswar Bali Saheb are in the best of health.

Yours Sincerely,

V. N. Bhatkhande

Malabar Hill,
Bombay.
3 Sep. 1932

My dear Rai Saheb.

I have duly received your letter dated the 30th inst. I am sorry to learn you went through terrible sufferings for more then two months. Shrikrishna told me you were ill but I had no idea of what you were suffering from Let us thank God, you have come out successful from all your trouble and are on the way of recovering your normal health. I can quite realize what you must have gone through during those three months. It is all due to your manyfold activities and over work. You cannot defy the laws of nature. You took upon yourself too many things with the result that your whole system became deranged. Even now you must take complete rest whenever possible. Life is more valuable than name or fame "एक तन्दुरुस्ती हज़ार नियामत" is the common saying. I am really happy to learn you are now in good health.

Shrikrishna must have told you what my condition was last year when I was in Lucknow. My old complaint is blood-pressure. In Lucknow my blood-perssure rose to above 225 and Dr. Hukku ordered me to run back home immediately. Ever since my return I have been keeping very indifferent health. I can-not stand either great heat or great cold. Only last week my pressure again rose to 220 and I had to consult Dr. Tirodkar M. D. I am under medical treatment still. The pressure today is 195 again. Dear Rai Saheb, all active life with me is now ended practically. I am unable to walk even a distance of four furlongs. Last years illness has told severly on my health also But I am now an old man and my health does not count any more. I have practically finished my work in the musical line. The 4th part of the Hindusthani Sangit Paddhati will be out in a week or two.

As to the annual examination I am afraid I shall not be able to come this year and have told Shri krishna to take the help of Raja Bhaiya and Raja Nawab Ali in finishing the examination. I am sorry to learn about the financial condition of the College. The College is fairly popular in U. P. and I do not see why

it should die. Why not approach Pandit Madan Mohan Malviya ? I would not object to go it under the protection of the Benares University if U. P. Govt. do not come to our help. Unless Govt come forward and recognize our Degrees the College will not inspire confidence in the public. All big movements require राजाश्रय । The College has now nearly 200 students and is earning in fees more than Rs. 4000/- a year. Whatever can we expect from a new institution teaching a subject which is a matter more or less of luxury, unless there are good careers before the students in music. The institution is bound to remain weak. We are all passing through financial difficulties. You have to wait until better times come. We must somehow make the two ends meet. If it comes to that we must reduce our expenses temporarily.

I for one would not advise to undertake a venture like a new All India Conference under the present days of financial stringency. There is retrenchment all round. Even in the native states the same difficulty is found. Lots of middle class people have been thrown out of work. Nation-building programmes are postponed. Even educational institution have come under the axe. Until the new constitution comes, you must expect fincial assistance from outside. I do not wish to discourage you, my dear Rai Saheb, but it is no use con cealing the fact from you. You accuse me of neglecting the interest of the College. What can a poor old Brahmin do ? Where the question of money has to be faced all the personal service that was posible for me to undertake, I have already rendered. Rajas and Maharajas remain so in name only. Approach them with an appeal for money and they will turn their faces away from you. Self-help and courage and patience should be our watch-words. Good times will surely come. We are all working selflessly and God is sure not to forget us.

I am now too old and infirm, not to mention the increase is deafness and the head noises. I can only pray to God sincerely for the welfare of the College. Please do not misunderstand me.

I have received one or two letters from the Libraian of the Rajya Bhavan Pustakalaya, Alwar, inquiring about Raga-Ragini patterns and also about the Sanskrit Literature on the subject of music, which shows that His Highness has some interest in Indian music I have already mentioned in one of my letters to the Librarian about our quarterly magazine "Sangeet". Do send the first and second issues to the Librarian. Later on you may communicate with His Highness himself. Work through Prem Vallabh if that is possible.

His Highness was going to have a music conference as you will remember but it had to be given up on account of the King's illness. Why not approach Alwar again ? Raja Saheb and yourself may go in a deputation to request him to visit your College. His Highness is a man who may do something.

I say cut down expenses and live within your income until better times come. They will surely come. Selfless work never passes unnoticed by God. That has been my experience through life. "Never say fail" as they say.

Shrikrishna wishes to spare the sixth year class next year and I have permitted him to do it. Be in the good grace of Govt. officials. Dr. Paranjpay is coming as Vice-Chancellor to Lucknow. Show him what we are doing at the College. I am sure he will be sympathetic.

Dear Rai Saheb, you will say my letter is only dry sympathy and words—but what else have I got to offer ? God has made you great and you should never lose courage and patience. Please accept my best Ashirvads to you and yours.

Yours sincerely,

V. N. Bhatkhande

Malabar Hill

Bombay.

15-9'30

My dear Baburao,

I hope my last letter reached you. I forgot to answer therein your question about Bulwa Joshi of Cawnpore. I do not see any objection to your recommending him for the Naini appointment. Before, however, you do so, ascertain his own wishes in the matter. You may invite him to see you in Lucknow and explain the condi-

tions of service, if you think that course necessary. He was in the Gwalior Music School for about a year some 8 years ago; and may be able to read our notations. He was with Pandit for about two or three years after leaving the Govt Music School. I know, he sings some Marathi theatrical songs and some Bhajans also. I have not heard him. However, there is nothing against him as far as the appointment at Naini goes.

I have seen your examination papers. They are fairly good. Your idea of the distribution of Scholarships is also good. That will, besides encouraging the students, make them efficient teachers.

I am glad to learn you have started your fifth year, and wish you success. Sakharam's finance is weak. See if you can induce Umanath to give him Rs. 50 That was our promise to him and we must keep it. If necessary speak to Raja Sahib also about him and get his consent to the proposal.

My dear Babu, I am really glad you carried out the arrangement about the salaries of the other teachers even at the task of sacrificing your own. That is the right spirit in which we should always work. God will sincerely do the right to you at the proper time. I am glad you have decided to come home for Dassera. We shall have a good chat when you come. I shall very likely go to Gwalior in the 1st. week of November. All well here and wish you the same.

Yours sincerely,

वि. ना. भातखंडे

Malabar Hill
Bombay,
1 Aug. '31

My dear Babu,

I have your letter of the 29th. Sept. Thanks. I am glad that through the efforts of dear Rai Sahib the grant of Rs. 6000/- has been sanctioned. Rai Saheb, I have found, has always been a lucky man, thanks to his all round amiability and thorough business sight. I am going to write to him congratulating him on his success, though I know I have incurred his displeasure by writing my last letter in connection with the text-books. He too has not written to me for a pretty long time probably on that account. I know he considers the College his own child and in his overzeal dose not even spare his old friends. I shall certainly never quarrel with him, I treat him as one of my younger brothers and do not mind any remark on his part. After all he is ours and we are his. I am glad the first text-book is already printed and Rai Saheb will be prepared to submit his set of books in Nov. next.

Re-examinations.

The idea of the Association appointing a board of examiners for the final and third year classes is really very good. It means the department will take more interest in our work henceforth. It is extremely good news that the Degrees and Certificates granted by the College authorities will receive recognition at the hands of Govt.

Why not appoint Kashalkar, Rajabhaiya and Tripathi (Benares University) examiners ? Take care to see that I am not included in the board of examiners. It will be in the fitness of things that the board should consist of outsiders, *of course outsiders not hostile or unsympathetic* to the institution.

I am sending back all the four songs. In mine I have made very slight changes.

In your देवगिरी song instead of जोबना (which has a sexual suggestion) I suggest ये दिना हमरे दौरे चले जाय "ये दिन" can in music become ये दिना as we know from several songs. The change will not bring the शृंगारिक idea so violentty before the mind of the readers. I know you have in the अँतरा "दिन रैन" but it won't affect the अस्ताई।.

In the देसी song you will see my remark under the song. I could not suggest an alternative version for fear that the whole sentence would have to be replaced by another. If however the idea of असुवन के हरवा is passable, then let it remain.

Thanking you for your letter and its cheerful news.

I am,
Yours sincerely,

Malabar Hill,
Bombay.
20-9'32.

My dear Babu,

Your letter of the 17th. has been received. I am glad to learn that the books were received by you in good condition and that the 4th. Kramik secured a good demand. The other day I sent you a card-board bound copy of the Hindusthani Sangit Padhati 4th. part and hope it has reached you. I wished to send you a cloth-bound copy but they had not arrived. Since I sent you the copy the Arya Bhushan

press have sent about 50 cloth-bound copies and I shall soon send you one of those. When you receive that you may present the card-board copy to the College Library. That will complete the set in the library. Yes, you may send the sale proceeds by M. O. It will be so much so better to look after the money. The 3rd. edition of the 3rd. book is already in the press. The Gwalior Taranas will be included in the new edition. They nave already finished Bhopali and Hamir Ragas. If you want to put in any popular songs of U. P. you may send them and I shall get them therein.

You did well to write to Raja Bhaiya and Rai Bahadur L. B. Muley, Education Minister, Gwalior State. Raja Bhaiya has some duty in the palace too and I think you will have to write the Private Secretary to His Highness the Maharaja Saheb Sindia also for the loan of Raja Bhaiya's services for a week. I am afraid Raja Bhaiya will not be able to draw papers for the final as there is no written examination in Gwalior. You will have to do it yourself. You may show your paper to Raja Bhaiya when he arrives there. Why not consult Raja Nawab Ali about it ?

Re-Building.

If there is any doubt as to retaining the building for the College, why not move somewhere near the town, say to the La Touche Road or the Hewett Road on a smaller rent. This is of course, if it comes absolutely necessary to move from your present position. If you move somewhere nearer the town there is a chance of getting a large number of students. But there would be some loss in prestige. It should not be thought of except as last resource. I hope there would be an extension of the lease.

I am not in favour of a fresh All India Music Conference. Most of the first-class artists are dead and gone. There is again the fear of losing what little saving of funds you may have. I do not think the Conference will be anything

like those we had in Lucknow. My dear Babu, let us hope, we shall be in a position to stand on our own legs.

I am also not in favour of a begging tour with its doubtful success. The present circumstances of the country are hardly favourable for such an idea. The College, as you say, has justified its existence and created a demand for systematic training in the Art. If you rely on Him and work honestly, I have little doubt He will not desert you.

Raja Bhaiya has also presented to me with a copy of his Gayaki. Dear Babuji, I am looking forward for a similar production from you. By the by, did you permit Bade Agha to teach his "Sweet songs" with beautiful *Tans* to the first year students ? If so, what is the result ?

I met Mr. Bhimrao (of Fellowship School) the other day and he told me one Mr. Hemendra trained at Lucknow is going to be appointed at Dr. Ravindranatha's Shanti Niketan. Who is this Hemendra ? Not one of our Roy brothers I believe.

If any more books are wanted you may write to me for them and I shall at once send them. I do not think the H. S. Padhati (in Marathi) will be followed in U. P. because they do not know the language. Our friend Majumdar appears to follow the language well enough. He said he was going to Lucknow next month.

Yes, do organize a grand annual gathering and invite beginers of all parties to the same.

Yours afflly.,

Anna.

Malabar Hill,
Bombay,
21-1'33.

My dear Babu,

I have very sad news for you this time. Our dearest friend Shankarrao Karnad breathed his last, day before yesterday at about 12·30 noon of heart failure. It would be imposible to express what grief that has brought to me. He was more than my own brother to me all these twenty five years past. As you know he was the only friend I had to whom I always turned for advice. I mourn his loss more perhaps than any of his relatives. It is as if my right hand is broken. That also means, my interest in life is considerably diminished. I saw him only a day or two before you went to him. I never for a minute thought he was so near his end. Such is life. God's will be done. Hope you are well.

Thanking you for the copies of Sangit.

Yours affly.,
Anna.

Malabar Hill,
Bombay,
I6 Feb. '33.

My dear Babu,

Thanks so much for your detailed letter of the 12th. inst. I only regret I am compelled to forego the pleasere of

witnessing your first and grand annual gathering that comes off in the last week of this month. I know I am missing a great treat but my people here would not consent to allow me to undertake the long journey involved and as they are practically my only caretakers I have to submit to their directions. Rai Saheb also has written to me a very very kind letter inviting me to Lucknow and also promising to take all possible care of my health. But my present state of healthdoes not permit me to leave Bombay. I do not even know if I shall be able to go to Gwalior next month. The blood-pressure which had gone beyond 202 has come down to its normal 200. But there is another new complaint which has made it up during the last month. I get a slight rise of temperature in the after noons with burning feet which keep me miserable the whole day. I am advised complete rest. That is why I left all proof-reading to you for some time. I wish you to take great care not to allow a single mistake to escape you, in the books being printed. If you find more than 5 mistakes direct them to send the proof back corrected. In the Lakshya Sangit, at the end of every *Thata* I have put in a टिप्पणी analysing the Ragas derived from that *Thata*. Some of these टिप्पणी (Such as those of काफी, आसावरी, भैरवी, तोड़ी) will be missing in the proof but they have to be supplied from the 4th Volume of H. S. Padhati (see pages: 1104-5) काफी रागः सदापूर्णः पीलु द्वादशसुस्वरा । आरोहे गनिहीनासौ सिंदुरा शास्त्रसंमता ॥

There again on p. 1112 the टिप्पणी will be आसावर्यां गनी न स्तः आरोहे ऋषभद्वया etc. On p. 1116 you have भैरवी स्यात् सदापूर्णा etc. at the bottom of the page तोडी लोके सदापूर्णा etc.

I could not put these टिप्पणी in because the manuscript left my hands before I concluded the पद्धति उपसंहार ।

In the Kramik 3rd book you will be at liberty to make original alterations wherever you find they will look more attractive.

This after noon temperature business frightens me, but I am keeping quite cheerful in spite of it. Dear Babu, my

span of life I believe, is nearing its end gradually and I take these new developments as a matter of course. Thank God, He has left me a brilliant pupil in you and I have little doubt you will justify all the hopes I have entertained about you. I am not confined to bed, remember, but it is always good to be pre-warned.

The account sent are all-right and I have handed them to Bhal. I have also asked him to send you a fresh supply of books as early as possible. Shankarrao's disapperance at this time has no doubt left me quite desolate, but the will of God must always prevail. I am glad to note that you attended music conferences at Cawnpore and Shahajanpur. I should very much like to hear what people have said about you. Do send me some cuttings if you can.

Do put in our article on "How Bilawal Thata came to be accepted as Shuddha in northern India." If you are too busy ask our friend Mr. Majumdar to write it. As you will be concluding the *northern Granthas* in the next part of the Sangit Magazine the new article will appear in its right place.

Our friend Mr. M. S. Ram Swami Aiyer B. A., LL. B. has published a critical edition (in English) of the *Swarmela-Kalanidhi* and is producing a similar edition of the Raga-Vibodha of Somnath. He has already sent in a complimentary copy of the first and has promised to send the Raga-Vibodha next month. These will be good additions to your library. Do send for them. The address is :

M. S. Ram Swami Aiyer, Esq.,
Bai Bhavan, 7/17 Alangatha Pillai Street,
Triplicane, Madras.

The Agent for Sale of Govt. Sanskrit Publications. Trivandram, Trawancore, writes to say that the संगीत-समयसार by पार्श्वदेव and Dattilam by दत्तिलमुनि are ready. Prices are 8 ans and 4 ans. respectively. Also purchase them for your College Library.

I wish you all health and happiness.

Yours affly.,
Anna.

उज्जयनी का अध्याय

उज्जयनी का माधव संगीत विद्यालय पं० भातखंडे जी की प्रेरणा का फल है। संगीत-नगरी ग्वालियर में सामूहिक शिक्षण के प्रयोग सफल हो जाने पर ग्वालियर राज्य के तथा देश के विभिन्न स्थानों में विद्यालयों की स्थापना करने में वे जुट गये। अपने इन विचारों का संकेत सन् १९२५ की परीक्षा रिपोर्ट के अंतर्गत विशेष सूचना क्रमांक चार में वे करते हैं—"शक्य होने पर अपनी रियासत के महत्वपूर्ण ऐसे दो-तीन जिलों में माधव संगीत विद्यालय की शाखाएँ स्थापित की जायँ। अंतिम ध्येय यही है कि ग्वालियर एक संगीत की युनिवर्सिटी बन जाय। ऐसा होने में यदि कुछ समय लग जाय तो भी यह अपना एक ध्येय होना चाहिये। संगीत एक अत्यन्त महत्व का विषय है और वह अपनी संस्कृति का अटूट अंग है। उज्जैन जैसे जिले के वे बड़ी जन संख्या वाले शहर में ऐसी शाखा स्थापित की जाय, ऐसा मेरा मत है। एक प्रधान शिक्षक व अपने विद्यालय की शिक्षा प्राप्त एवं तैयार ऐसे दो तरुण युवक वहाँ भेजने पर उज्जैन में विद्यालय अच्छा चलेगा—ऐसा मेरा विश्वास है।" लखनऊ में मैरिस कालेज आफ हिन्दुस्तानी म्यूज़िक का अध्याय सन् १९२५-२६ से प्रारंभ हुआ। बड़ौदा, ग्वालियर, लखनऊ इस त्रिस्थली पर पं० भातखंडे जी के अनुभवों की, ज्ञान की और सामर्थ्य की वर्षा होने लगी। संगीत सेवारत समाज जहाँ से भी उन्हें पुकारता, वे तत्काल उपस्थित हो जाते। उनके उपस्थित हो जाने पर स्वर-ताल का अच्छे से अच्छा चित्र प्रस्तुत करने के विषय में शिक्षकों एवं छात्रों में होड़-सी लग जाती। उज्जैन के अध्याय ने भी इसी समय से उनका ध्यान आकृष्ट किया था।

विद्यालय की उन्नति शिक्षकों के निरपेक्ष परिश्रमों पर अवलंबित होती है। विस्तार के साथ-साथ शिक्षा का मूल-केन्द्र ग्वालियर के विद्यालय की व्यवस्था में जरा-सी भी न्यूनता न आने देने पर वे सदैव ध्यान रखते। सेन्ट्रल स्कूल को 'मॉडेल स्कूल' में परिवर्तित करते हुए उसकी शाखाओं का विकास करना उनका मुख्य उद्देश्य था। उज्जयनी के विद्यालय की व्यवस्था स्थायी रूप से करा देने के सुझाव सन् १९२७ में उन्होंने ही दिये थे। स्वर्गीय श्री भास्करराव खाँडेपारकर का सम्बन्ध इस विद्यालय के साथ प्रारम्भ से ही जुड़ गया था। श्री भास्करराव उनके अत्यन्त निकट एवं विश्वासपात्र मित्र, शिष्य और सहयोगी थे। "पं० भातखंडे के नाना फडणवीस" के स्वरूप में उनका उल्लेख साथियों में प्राय: किया जाता था। जुलाई १९२७ से उज्जयनी के साथ भास्करराव का सम्पर्क हुआ। ग्वालियर के छात्रों की शिक्षा में थोड़ी भी न्यूनता प्रतीत होने पर अपने इस अच्छे अनुभवी एवं दक्ष शिक्षक का उन्हें तत्काल स्मरण होता।

दिनांक २ मार्च १९३० से लेकर शारीरिक व्याधियों के कारण प्रवास आदि बंद हो जाने तक दोनों में लगातार पत्र व्यवहार चलता रहा। जहाँ पर भी संगीत के लिये कुछ अच्छे प्रयत्न होते रहते, उनकी छाया सदैव छायी रहती। उज्जयनी के विद्यालय के सम्बन्ध में पत्रों द्वारा दिया हुआ उनका मार्गदर्शन पाठकों के लिये पर्याप्त रुचिकर एवं बोधप्रद होगा—ऐसा विश्वास है। पत्र अपने मूल स्वरूप में प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

—सम्पादक

मलबार हिल,
मुंबई
ता० २ मार्च '३०

प्रिय भास्करराव,

आपलें पोस्ट कार्ड ता० २८ चें पावलें. आपण उज्जनीस जाऊन तेथल्या शालेचे हेडमास्तर या नात्यानें चार्ज घेतला, हें मला राजाभैयां कडून कळलें, दूर दृष्टीनें पाहतां हें चांगलें झालें. तेथली शाळा आपल्या शिवाय कोणाच्यानें संभाळतां आली नसती हें जाणून मीं आपणांस तेथें पाठविण्याचें सुचविलें होतें. ग्वाल्हेरची शाळा जशीं राजाभैयाशिवाय चालणें कठीण, तसेंच उज्जनीची आपल्याशिवाय चालणें कठीण असें मला वाटलें. ईश-कृपेनें आतां सारे ठीक जमेल. मला तर आशा आहे कीं कांहीं दिवसानीं तुमच्या शाळेंत इंदुराकडून हि गाणें शिकण्यास मुलें येऊं लागतील. तसें झालें म्हणजें तुमच्या शाळेची देखील भरभराटी होईल. कांहीं वर्षांनीं, "माधव संगीत कॉलेज, उज्जैन" असेंही म्हण-ण्याचा सुदिन उगवेल. हें सारे आपल्या प्रामाणिक प्रयत्नांचें फळ आहे. श्री विष्णुबुआ इन्सपेक्टर झालें व राजाभैया प्रिन्सिपाल झालें व पंडितांच्या बहुतेक बरोबरी चे झालें हें पाहून मला अतिआनंद झाला, तुमच्या व आमच्या दोघांच्या एक तप तपश्चर्येनें या स्थिति-पर्यंत गोष्ठी आल्या आहेत. पुढची काळजी प्रभूला आहेच. तो सारें उत्तमच करील. तुमच्या तेथें जाण्यानें मी निर्घोर झालों. उज्जनी व्यापाराचें ठिकाण आहे. तेथें ग्वाल्हेर सारखेंच फल उत्पन्न होईल.

श्री मागल्या आठवड्यांत वडोद्याहून परत आलों. तेथें दीड महिना होतों. तेथल्या शाळेंत आपलेच कोर्स गेल्या सालापासून सुरू आहेत. रावसाहेबांनी जलशा साठीं मला होळी-च्या सणांत बोलाविलें आहे व मी जाणार आहें. बहुधा ११ किंवां १२ ला येथन निघेन व तेरा तारखेला पोहोचेन. मध्यंतरीं जर पुनः बडोद्याला जावें लागलें तर तेथून उज्जनी-भोपाळ-या मार्गानें ग्वाल्हेरीस जाईन. पण तें अजून नक्की नाहीं. हल्ली मुंबईस देवीची साथ आहें. म्हणून भी टोंचून घेतले आहें. दोन चार दिवसांत हात बरा होईल. होळींत आपल्याला बनलें तर ग्वाल्हेरीस यावें. आपलें तेथें दुसऱ्या वर्षाचा वर्ग निघाला ऐकून समाधान झाले. त्याचप्रमाणें केळकराच्या वर्गाची व्यवस्थाहि लागली हें चांगलें झालें. हें तुमच्या शिवाय झालें नसतें. थीरांचें काम पोरांना होत नसतें. तेथें अनुभवी व मुरलेल्या मास्तरांचीच जरूर असते. आपण जाण्यास तया झालां तेव्हां फारच समाधान वाटलें. मुलांना पहिल्यापासून गाण्याचा उत्तम ढंग स्वतः आपल्या नजरेखालीं साधून घ्यावा, गळयांत तान साफ व सुरीली निघेल असी काळजी घेतच असाल. गांवच्या लोंकाना दिसलें पाहिजें कीं ग्वाल्हे-

रची पद्धति कांहीं निराळीच व सुंदर आहे. आपण मुलांना घरीं बोलावून विशेष मेहनत करीत आहां, तें पाहून संतोष झाला. आपल्या कामाबद्दल माझी खात्री आहे व म्हणूनच मीं तेथें तुमची नेमणूक केली. उत्तम मास्तर असा लौकिक आपला नेहमींचा आहे, अस्तु, जेव्हां बोलावाल तेव्हां मी अवश्य येईन. बडोद्याहून ग्वाल्हेरला जाण्याचा प्रसंग आल्यास निदान कांहीं तास उज्जनीस उतरणें आतां सोईचें होईल. मागें एकदां तसा प्रसंग आला होता तेव्हां देवसाहेब फौजदार यांच्या येथें ४।५ तास होतों. प्रकृति माझी संध्या बरी आहे. आतां म्हातारपणामुळं लांबचे प्रवास करणें दिवसें निवस कठीण होणारच, तथापि हातपाय चालतील तों संगीतसेवा करणें भागच आहे. सर्वांस आशीर्वाद.

आपका

वि. ना. भातखंडे
— परीक्षक

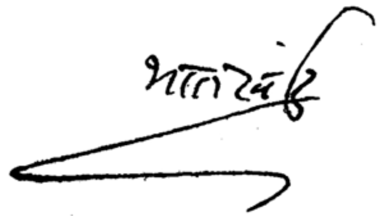
मलबार हिल, मुंबई
ता० १४-१०'३०

प्रिय भास्करराव,

आपलें ता० ११ चें पत्र पोहोंचलें. मजकूर कळला. तेथल्या अडचणी हळु हळु दूर करून तुम्हीं आपली शाळा चांगली जमवीत आहां तें ऐकून समाधान वाटलें. शाळा पाहून जाण्याचें माझ्याहि मनांत आहे. पाहूं कसा काय योग येतो तो. ग्वाल्हेरीस जयंतीचा उत्सव २८ ते ता० ३ पर्यंत आहे, असे रावसाहेब अंबर्डेकर लिहितात. मुलांची तयारी आहे असें राजाभैयांनीहि लिहीलें आहे. म्हणून मीं येथून तारीख १ नव्हेंबरला निघण्याचें ठरवीत आहे २ रीला ग्वाल्हेरीस पोहोंचेन. तेथें आठवडातरी लागेल असें वाटतें. नंतर कदाचित् लखनौ कड़े जावें लागेल. परत येतांना उज्जनीकडून येईन. पण तसें करण्यास रावसाहेबांची परवानगी लागेल. ती मी त्यांजपाशीं मागेन. दोन मुलें फायनल झालेलीं आणण्याची सूचना आपण केली आहें ती लक्षांत ठेवीन. आपण अनुभवी शिक्षक आहां म्हणून आपल्या कार्यांत यश येईल असा मला भरंवसा आहे. प्रथमतः नवीन कामाला अडचणी येणारच परंतु न डगमगतां एकनिष्ठेनें काम करणाऱ्याला यश आपोआपच येतें हा नियम आहे. मला तर वाटतें उज्जनींतहि ग्वाल्हेरसारखी जोरदार शाळा एक दोन वर्षांत तयार होईल. मी तेथें येईन तेव्हां उतरण्यास जेथें अपणांस आवडेल तेथें सोय करावी. तेथें हवापाणी

चांगले आहे हें ऐकून समाधान वाटले. मला हवें तेथें राहण्यास काहींच अडचण नाहीं. देव-साहेबांचें बंधु तेथें आहेत तें मला ठाऊक आहे. मागें मी त्यांच्याच येथे एक दिवस होतों. ते फारच सभ्य व भले गृहस्थ आहेत. त्यांनी मला शहर फिरून सारें दाखविलें होतें. मुलींच्या शाळेंत हळुहळु संगीत शिक्षण दिलें जात आहे तें चांगलें होत आहे. येथें मुंबई म्युनिसिपालिटीच्या २०० मुलींच्या शाळांत मी कोर्स दिला आहे. त्यानां आठवडयांत एक किंवा आर्धा तास शिक्षण देतात. त्यांच्या साठीं निराळा कोर्स म्युनिसिपालीटी ने छापला आहे. माझी प्रकृति ठीक आहे.

आपका



मॅरिस कॉलेज म्यूझिक,
लखनौ
४-१२-३०

प्रिय भास्करराव,

तुमचें पत्र पोहोंचलें, या खेपैरा उज्जनीस येण्याचा बेत माझा होता हें खरें आहें त्याप्रमाणें रावसाहेबांस मी सांगितलेंहि होतें. रावहेब त्या सुमारास (म्हणजे १ तारखेस) तेथें येणार होते. ता. २७ ला आम्हीं येथून अयोध्येलां गेलों होतों. तैथून परत आल्यावर मला सरदी चा उपद्रव झाला. तो अजूनहि थोडा बहुत आहे. तेव्हां अशा स्थितीत १ ल्या तारखेला येणें अशक्य झालें म्हणून रावसाहेबांस लिहिलें नाहीं. डिसेंबरच्या २ ऱ्या आठ-वडयांत बाहेरवा प्रवास करूं तये असे माझ्या ज्योतिष्यानें सांगितलें आहे. म्हणून १५ तारखेच्या आंत निघतां येत नाहीं. हल्लीं ग्वाल्हेरच्या प्रसिद्ध रामेश्वर शास्त्र्यांनी दिलेलें औषध मी घेत आहे. त्या पासून फायदा आहे. त्यांच्या पुडया अजून ८।१० दिवस पुरतील, ते औषध थंड ऋतूंतच घ्यावयाचें असल्यामुळें येथेंच संपविणें भाग आहे, अशा अडचणी-मुळें मला येतां आलें नाहीं. पुनः मार्चमध्ये मला यावें लागेल त्यावेळीं मी उज्जनीस जरूर जरूर येईन. ४ महिन्यांनीं आलों तरी चालेल असें मला वाटतें. त्या वेळीं थंडी पण नसते हवा चांगली असते. प्रथम उज्जनीस येऊन मग ग्वाल्हेरीस जाईन म्हणजे झालें. तुमचे काम चांगलें असेल यांत मला शंका नाही. मी मागेंच येणार होतों परन्तु त्यावेळीं दाख-

विण्यासारखें कांहीं नाहीं असें तुम्हीं म्हणांलां म्हणून आलों नाहीं. रावसाहेबांना माझे साठीं तेथें यावें लागलें त्याबद्दल मला वाईट वाटत आहे. त्यानां माझी अडचण सांगावी व क्षमा करण्यास सांगावें. पुढल्या मार्च महिन्यांत होळीच्या अंमळ अगोदर येईन म्हणजे २ दिवस राहून नीट सर्व तपासून जाईन. आतां धाईने निघाल्यास मला तेथून नीट घरीं जावें लागेल व औषध घेण्याचें थांबवावें लागेल. हें औषध हाय ब्लड प्रेशर वर रामेश्वर शास्त्र्यानीं दिलें आहे व तें मुंबईस घेतां येणार नाहीं. मी येथून १९ तारखेस मि. रातांजनकरांसोबत मुंबईस जाण्यास निघेन. व ता० २० ला मुंबईस पोहोंचेन. तें येथल्या थंडीच्या मानावर आहे. निदान १५ तारखेपर्यंत तर येथें राहवेंच लागेल. तुम्हाला निरुत्साह करणें, मला जडच वाटत आहे परन्तु माझा इलाज नाहीं. बरेलीलाहि जाण्याचे मी रहित करीत आहे. तेथें विनायकरावांचा फार आग्रह होता. आतां वृद्धापकाळ आहे, म्हणून प्रकृतीला प्रथम जपणें आहे. आपण निराश होऊं नयें. मी मार्च मध्ये जरूर येईन.

कुशल, आतां प्रकृती सुधरत आहें.

आपका,

वि. ना. भातखंडे

Examined

मलबार हिल,
ता० ४-२-३१

प्रिय भास्करराव

आपलें ता० ३०-१-३१ चें पत्र पोहोंचलें. सर्व मजकूर समजला. गेल्या डिसेंबरांत मीं कां येऊं शकलों नाहीं त्या बद्दल मी लिहिलेंच होतें. रावसाहेबांना मात्र तकलीफ पडली या बद्दल दिलगिरी वाटते. तथापि ते मला क्षमा जरूर करतील हें मी जाणतों. आता प्रकृतीच्या धोरणानें चालणें भाग आहे. हल्लीं माझी प्रकृति वयाच्या मानानें ठीक आहे. आपली शाळा रावसाहेब स्वतः पाहून गेले व त्यांनीं ३ऱ्या वर्षाच्या कोर्साचा हुकुम देण्याजोगें काम पाहिलें हें चांगलें झालें. थोडे बहुत काम अपुरें राहिलें आहे तें पुरें करून घेतच आहां हें उत्तम आहे. तुमच्या शाळेला लवकरच यश येईल. असें मला खात्रीनें वाटतें. मागल्या खेपेस मी ग्वाल्हेरीस असतांना असा एक विचार आला होता कीं पुनः आपणांस ग्वाल्हेरीस परत

आपल्या जागेवर न्यावें व दुसऱ्या कोणाला उज्जनीस पाठवावें कीं कसें ? कारण ग्वाल्हेरीस काम अंमळ कमीप्रतीचें दिसलें. परन्तु पुनः उज्जनीच्या शाळेला हरकत होईल म्हणून तसें न करण्याचेंच मीं निश्चित केलें. आता तर रावसाहेबांनी स्वतः च उज्जनीचे वर्ग पाहिले आहेत. तेव्हां उज्जनीस तुम्हींच राहणें बरें असें मी ठरवीत आहें. बारंबार फिरवा फिरवीनें दोन्हीं शाळांचें नुकसान होण्याचा संभव आहे. मला तर उमेद आहे कीं इंदूरास देखील आपल्या उज्जनीच्या शाळेच्या धर्तीवर एखादी संस्था पुढें मागें निघेल व ते आपल्या येथूनच शिक्षक मागवितील. परंतु त्याला अजून अवकाश आहे. तानांवर उत्तम मेहनत करवीत जावें मुलांना घरीं बोलावून समक्ष तांना घोटवून घ्याव्या. नाहींतर मुलांचे गळे फिरणार नाहीत तो अनुभव प्रथम ग्वाल्हेरीस आपल्याला आलाच आहे. ध्रुपदांची कामेंहि सांगत आहां तें चांगलें होत आहे. ग्वाल्हेर च्या शिक्षणाची बरोबरी कोणी करूं शकूं नये अशी आपली नेहमीं तयारी हवी, परमेश्वर यश देणार आहे,

हाताखालच्या मास्तरांच्या कामावर बारंबार नजर असावीं मैफलीच्या रंगानें चीजा म्हणण्यास खालपासूनच लक्ष देणें आवश्यक आहे. आपण हेडमास्तर आहां म्हणून सारी जिम्मेदारी आपल्या शिरावर राहील. दर १५ दिवसांनी शाळेंत एक डिमास्ट्रेशनं (मजलस) मुलांच्या गायनाची करवीत जावें व त्यावेळीं शहरच्या संगीत शौकीन लोकांस येण्यास परवानगी ठेवावीं तेणे करून मुलांना सभाधीटपणा येईल व लोकांना तुमचें काम दिसत जाईल. एक आठवड़ा मुलांचा ठेवावा व एक मास्तरांचा ठेवावा म्हणजे मास्तरांनाहि प्राक्टिस करून तयारी ठेवता येईल. लखनौला असेंच केलें व कालेज तेथें लोकप्रिय झालें.

आतां मी निश्चय असा करीत आहें कीं दर वेळेंस ग्वाल्हेरीस जातांना बड़ौदा-उज्जनी-भोपाळ लाइनीनें जात जाईन म्हणजे आपण म्हणतां त्या प्रमाणें आपल्या शाळेवर माझी देखरेख राहात जाईल. आतां माझें वय झालेंच आहे, परन्तु जगलों वांचलों तर असा क्रम ठेवण्याचें माझे मनांत आहे. महाकाळेश्वरांचें दर्शन हि बारंबार होत जाईल, हा हि एक हेतु आहे, तेथें देवसाहेबांच्या येथें उतरण्यास मुळींच हरकत नाहीं, ते माझे स्नेहीच आहेत. यंदां ४० मुलं भरती झालीं ऐकून समाधान झालें. तीं सोडून जाणार नाहींत अशी पहिल्यापासून खबरदारी घ्यावी. नव्या मुलांकड़े आठ दिवसांत तुम्हीं स्वत: पहात जावे. उज्जनी व्यापारी ठिकाण आहे व फार प्राचीन आहे, तेथें संगीताचें बीं रुजलं तर पुढें मागें ती ग्वाल्हेरची बरोबरी सहज करील. अस्तु, पुस्तकां विषयीं लिहिलें तें कळसें, क्रमिक १ ली ५०, २ री २५ व ३ री १० पाठविण्यास कारकुनास सांगतो. रेल्वे गुड्स् करून पाठवीन व बिलटी पाठवून देईन रेलवेनूर देऊन ग्वाल्हेर प्रमाणें तुम्हांस स्टेशनवरून न्यावीं लागेल, पुस्तकांचा हिशेब मागून तुम्हीं द्यालच. देवसाहेबांस माझा नमस्कार कळविणें, मी बहुधा मार्गच्या अखेरच्या आठवड्यांत निघेन. ग्वाल्हेरच्या महाराणी साहेबांनीं (थोरल्या) मला होळीला हाजर राहण्यास सांगितले आहे, त्यांचें बोलावणें अगोदर आल्यास कांहीं दिवस अगोदर निघेन. पण यंदा उज्जनीला अवश्य येईन. इकडे क्षेम आहे. मुलांबाळांस आशीर्वाद.

आपका,

वि० ना० भातखण्डे

मलबार हिल,
ता० १२-३-३१

प्रिय भास्करराव,

रावसाहेबांनीं मला उज्जनीच्या शाळेचें काम पाहण्यास आमंत्रण केलें आहे. मी दिलगीर आहें कीं प्रकृतिच्या अस्वस्थतेमुळें या उन्हाळयाचे दिवसांत लांबचा प्रवास पतकरण्यास डाक्टर परवानगी देत नाहींत. मी आजच रावसाहेबांस तत्सम्बन्धीं पत्र लिहीत आहें, त्यांच्या पत्रांत उज्जनीचा पत्ता नव्हता म्हणून मीं तें पत्र प्रिंसिपल आपटे यांच्या नांवावर 'केअर आफ' असें लिहून पाठवीत आहें. तें त्यांस मिळेल अशी व्यवस्था करावीं. यंदां मी ग्वाल्हेर व लखनौलाहि या महिन्यांत जात नाहीं. व तसें रावसाहेबांस लिहिलें आहे. पुढल्या नवंबरच्या पहिल्या आठवड्यांत मी त्या बाजूला जरूर येईन तेंव्हां प्रथम आपल्या येथें येईन व मग तेथून ग्वाल्हेरला जाईन. प्रकृतीला भिण्याचें कारण नाहीं; परंतु उन्हाला टाळतां आला तर टाळावा असें डाक्टर म्हणतात. बाकी कमजास्त नाहीं. हिन्दुस्थानी सं० पद्धतीचा ४ भाग (शास्त्राचा) हल्लीं छापत आहे. व तसेंच क्रमिक ४ श्या पुस्तकाची नवी आवृत्ति छापत आहे, ५ वें क्रमिक लिहीत आहें. अधिकोत्तर नाहीं.

आपका,

वि.ना. भातखंडे

मलबार हिल, मुंबई
ता० १-२'३२

प्रिय भास्करराव,

वि० वि० आपलें पोस्टकार्ड भालचंद्राने मला दाखविलें. आपण पाठविलेली मनीआर्डर भालचंद्ररावांस पोहोंचली असें ते म्हणाले. अलिकडे माझी तबियत बरेच दिवस बिघडली आहे. माझे ब्लड प्रेशर २२० झाल्यामुळें डाक्टरांनीं सारीं काम बंद ठेवून स्वस्थ बसण्यास सांगितलें आहे. हिन्दुस्थानी पद्धतीचा ४ भाग देखील मोठया कष्टानें व प्रकृती कडे न पाहतां संपविला कारण तें काम अपुरें राहिलें होतें. आतां तूर्त अगदीं कंप्लीट विसांवा घेण्यास सांगितल्यामुळें प्रवास वगैर करण्याचें सोडून दिलें आहे. माझें आतां ७३ वें वर्ष चालत आहे, तेंव्हां प्रवास करणें झेपत नाहीं. म्हणनच मी लखनौ, ग्वाल्हेर, बड़ोदा

वगैरे कोठेंच यंदा गेलों नाहीं. मला थंडी व गरमी दोन्ही ऋतु आतां सोसत नाहींत. पुस्तकांच्या आर्डरी वगैरे पुष्कळ येतात त्या साञ्य भालचंद्रराव आपल्या आफिसच्या कारकुनाकडून पार पाडतात. आपलीं पत्रें मागचीं आलीं होती तीहि मी त्यांज कडेच दिलीं होतीं. त्यांनीं पुस्तकें पाठविलीं असें समजतें. मध्यें राजाभैया येथें आले होते तेव्हां त्यांची गांठ पडली होती. तुमच्यावर मी मुळींच रागावलों नाहीं व पुढेंहि कधीं रागवणार नाहीं अशी खात्री असूं द्यावी. तुम्हीं सारे मास्तर माझे प्रिय मित्र आहां असें मी नेहमीं समजतों. तुमचें काम उत्तम चाललें आहे व तुमच्या कामावर लोकांचा विश्वास चांगला बसत आहे असें ऐकून मला फारच समाधान वाटलें. उज्जनीस येऊन एकदा पाहण्याची इच्छा होती, परंतु प्रकृति पुढें कोणाचा इलाज आहे ? ईश्वर तुम्हांस चांगलें यश देओ असेंच मी सदां इच्छितों. आतां अप्रसिद्ध रागांचें ५ वें क्रमिक पुस्तक राहिलें. ईश्वराच्या मनांत असलें तर तेंहि तो सिद्धीस नेईल. श्री रातांजनकर यांना मी साञ्य रागांच्या चीजा सांगून ठेवल्याच आहेत. तुसेंच राजाभैयांना ३० नव्या रागांच्या सांगितल्या आहेत. ग्वाल्हेरीस तुमचें जाणें झालें तर त्या तुम्हीं ऐकालच प्रामाणिकपणानें आपल्या शाळेचें काम नित्याप्रमाणें चालवीत जा म्हणजे ईश्वर तुम्हांस यश अवश्य देईल. जर माझी प्रकृति बरी असली तर पुढें मार्गे उज्जनीस येऊन जाईन. अनेक आशीर्वाद. नारायण आतां मदत करूं लागला हें एकून आनन्द वाटलां.

स्फुट लेख और भाषण

आगामी पृष्ठों में पं० भातखण्डे के कुछ स्फुट लेख, परिपत्र आदि पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किये जा रहे हैं। इनमें अधिकांश लेख विभिन्न प्रसंगों पर उनके द्वारा दिये गये भाषण ही हैं। सभी अवसरों पर उन्होंने अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया था। अपने इन लेखों द्वारा सुशिक्षित समाज का ध्यान संगीत की ओर वे आकृष्ट करते हैं और अखिल भारतीय संगीत परिषदों के माध्यम से चलाये हुए संगीतोद्धार के कार्यक्रमों की जानकारी देते हैं। साथ ही प्रसंग-विशेष में संगीत की विभिन्न बातों पर शास्त्रीय चर्चा भी करते हैं। वस्तुतः इस प्रकार के उनके ये स्फुट लेख अधिक संख्या में होने चाहिये। इनमें से कुछ ग्वालियर राज्य के स्टेट गजट 'जयाजी प्रताप' में भी यदा-कदा प्रकाशित हुए थे। सन् १९१६ से १९२४ तक की संगीत परिषदों का मुद्रित साहित्य एवं 'जयाजी प्रताप' की पुरानी फाइलों में पं० भातखण्डे के उद्गारों के रूप में जो कुछ भी प्राप्त हो सका, इस अवसर पर सादर प्रस्तुत किया जा रहा है। इन लेखों के संकलन में मध्यप्रदेश के सूचना एवं प्रकाशन विभाग का सहयोग उल्लेखनीय है।

—सम्पादक

SOME DISTINGUISHING FEATURES OF HINDUSTANI MUSIC

BY

Mr. V. N. Bhatkhande, B. A. LL. B.

One of the most distinguishing features of our Hindustani Music system is the Time-theory, or practice of assigning stated times of the day or night for singing the Ragas. This practice has existed in the country from time immemorial. Our Sanskrit authors, whatever their other shortcomings, have uniformly stuck to this practice. Our music passed through numerous transformations during the last several centuries, but the practice referred to above has been scrupulously maintained. Our current music has outgrown the old Shastras, but still you find there a clear tendency to stick to the Time-theory. Some of the Western scholars laugh at this view of ours, and argue that the effect of a Rag must always depend upon the particular combinations of the notes used in it and that the same combination of notes would hardly produce on the minds of the listener different effects at different hours. I confess I am not prepared to defend this Time-theory from the point of view of phycfcal and mental sciences; but I do not laugh at it as a barbarous relic of the past. On the other hand this Time-theory appears to me to be a part of a most ingenious though mysterious design or plan. Let me explain the broad outlines of the system at some length to prove my theory.

The whole of our Hindustani Music, comprising about 200 Ragas in all would appear to fall under 3 leading melody-types, namely (1) Bilaval or Shudda Swara Mela

(2) Bhairav Mela and (3) Kafi Mela; in other words the Ragas fall under three broad groups (1) Ragas which carry both Ri and Dha, Tivra, with Ni Tivra or Komal, (2) Ragas carrying Ri Komal and Dha Komal or Tivra, (3) Ragas carrying both Ga and Ni Komal, whatever the Ri and Dha may be.

The introduction of the Tivra Madhyam into each of the three groups will lead to further sub-divisions. Thus the modifications of the Bilaval mode are (1) Kalyan and (2) Khamach; those of the Bhairav Mode are Purvi and Marva, and those of the Kafi are Bhairavi and Asawari. These with the Todi Mode which is a mixed one and is for that reason treated separately, make up in all ten melody types of melas. Now you will observe that the Ragas about 40 in number, falling under the modes Bhairav, Purvi and Marva are assigned to the periods of sunrise and sunset. At those periods there is a "Sandhi" (or junction) between night and day, and these Ragas are generally called "Sandhi-prakash" Ragas. Ragas taking both Ri and Dha Tivra (and Ga Tivra) are sung immediately after those belonging to the "Sandhi-prakash" groups, and are followed by those taking both Ga and Ni Komal.

Take the Ragas falling under the Bhairav Mela; namely, Bhairava, Kalingra, Meghranjani, Sorashtra, Jogiya, Ramkali, Prabhat, Bibhas, Gowri, Ahiri-Bhairav, Pancham, Lalit, Saveri, Bangal-bhairav, Shivmot-bhairav, Anand-bhairav, Gunakri, Hijaj.

(Vide-Lakshya-Sangit, Chapter II, Shlokas 46-48.)

Now all these Ragas with the exception of "Gowri" are assigned to the time of sunrise called Sandhi-prakash.

The Ragas following under the modes Purvi and Marva are Purvi, Gowri, Reva, Bibhas, Dipak, Triveni, Malavi, Tanki, Jetashri, Vasant, Paraj, Puriya-Dhanashri, Shri, Purvya, Marva, Puriya, Lalit, Sohni, Varati, Jait, Bhankar, Bibhas, Bhatiyar, Saazgiri, Maligowra.

(Vide-Lakshya Sangit, Chapter II, 53-57.)

Some of these Ragas are sung at sunset and others at sunrise. Thus all the forty Ragas have one common distinguishing feature, and that is Ri Komal, Ga Tivra, Dha either Komal or Tivra. More briefly stated, the common feature is "नि़ सा री ग." The "Sandhi-prakash" period is commonly understood by our musician as that between 4 to 7 p.m. and 4 to 7 a.m.

Then the Ragas coming under the modes of Kalyan, Bilaval, and Khamach or having both Ri and Dha Tivra, and Ga Tivra as well, namely Yaman, Shuddha-kalyan, Bhupali, Hamir, etc.

(Vide-Lakshya Sangit, Chapter II)

It is likely, this arrangement came with the change to the Bilaval scale as the foundation scale of Hindusthani music.

The next distinguishing feature of our music is the significance of the "Vadi" note. Now the Vadi note is the प्रधान स्वर or "जान" or जीव of the Raga. Our Hindustani musicians generally connect the Vadi note time assigned to a Raga. The Ragas which are sung, between noon and midnight, called in common parlance Purva-Ragas, have invariably a note in the Purvanga as their Vadi, and those sung between midnight and noon, that is Uttara-Ragas have as the Vadi, a note in the Uttaranga, the Purvanga is supposed to extend upto Pancham i.e. सा रीं ग म प, while the Uttaranga down to Madhyam i.e. सां नि ध प म. The notes Sa, Ma and Pa are common to both and hence the Ragas having Sa, Ma or Pa as the Vadi note fall under both the Purvanga and Uttranga Ragas. The Vadi notes of the following Ragas in order of time will illustrate my theory. Purva Ragas are invariably sung after "Sandhi-prakash" ragas. They cover the period from early morning to the middle of the day, and from sunset till the middle of the night. These are followed by Ragas taking both Ga and Ni Komal which fall under the modes Kafi, Asavari, Bhairavi and Todi, out of these the Ragas assigned to the day begin at 10 a.m. and go right up to 4 p.m. when the evening "Sandhi-prakash" ragas begin;

and those assigned to the night begin after the Ragas falling under Khamach mode and take us right up to 4 p.m. when the morning Sandhi-prakash Ragas begin. Thus the whole cycle of twenty four hours divides itself into two series, morning and evening, each in the following order, viz. first Sandhi-prakash Ragas, then Ragas with both Ri and Dha and Ga Tivra, later Ragas with both Ga and Ni Komal. There may, however, be some exceptions but on the whole the main arrangement, according to the accepted time-theory is as I have described above. Now, I put it to you; "Does not this arrangement disclose some design or plan ?" It is difficult to say when, by whom, or why it was made; but it appears to me to be the design of some great master minds.

Name of the Rag	Vadi Note.	Name of the Rag	Vadi Note
1. Sarang	Ri	15. Kedar	Ma
2. Gaur Sarang	Ga	16. Hamir	Ga
3. Bhimpalasi	Ma	17. Chhayanut	Pa
4. Dhanashri	Pa	18. Kamod	Pa
5. Multani	Pa	19. Bihag	Ga
6. Purvi	Ga	20. Shankara	Ga
7. Shri	Ri	21. Khamach	Ga
8. Gowri	Ri or Pa	22. Jhinjhoti	Ga
9. Puriya-Dhanashri	Pa	23. Sorat	Ri
10. Puriya	Ga	24. Desh	Ri
11. Marva	Ga	25. Tilak-Kamod	Ri or Sa
12. Yaman	Ga	26. Jaijaivanti	Ri
13. Shudhkalyan	Ga	27. Gara	Ga
14. Bhupali	Ga	28. Darbari	Ri

Thus you go upto midnight when Ragas taking both Ga and Ni Komal come in. These are several varieties of Kanara, some of which have Ri as the Vadi, and others either Sa, Ma or Pa. As you approach the quarter of the night, the Uttaranga Ragas come in. In this connection reference may be made to Lakshya-Sangita, Chapter II.

The next point is the character of the Tivra Madhyam in Hindustani Music. Ragas which normally take this note are sung at night; and the note Madhyam may therefore be said to be indicative of the time assigned to a Raga. You find the note Tivra Ma in the evening "Sandhi-prakash" Ragas and then in the Ragas right up to the morning Sandhiprakash Ragas. As a general rule, it does not appear in Ragas having both Ga and Ni Komal. If it appears at all, it is present along with Shudha Madhyam or both Nikhads. The exceptions i.e., Ragas taking Tivra Ma and sung during the day are Hindol, Todi, Gaur-sarang and Multani. But here again you may find differences of opinion as to the exact times assigned to these Ragas.

Now, the Tivra Madhyam is sometimes introduced by our professional musicians in a skilful manner in Ragas like Bihag, Shankara, Jhinjhoti and Khammach without offending against the musical susceptibilities of the listener. The reason is that the note is indicative of the time i.e. night; and when used sparingly and skilfully it is admissible as a passing note in those four Ragas assigned to the night. The note Madhyam is therefore rightly described as a अध्वदर्शक note. You find that the Purvi mode is transformed into the Bhairav mode by the substitution in it of Shudha-Madhyam in place of the Tivra Ma; and similarly the Kalyan mode can be converted to Bilawal type by the mere substitution of Komal or Shudha Ma for Tivra Ma.

So, the Ragas according the system of Hindustani Music, appear to me, generally speaking, to have been arranged into two sets, one on either side of an imaginary line drawn from sunset to sunrise, dividing the whole day of 24 hours into the well-known two parts night and day. Each of these contains three groups of Ragas with their clearly distinguishable lower tetrachords, viz., नि़ सा रि ग, नि़ सा रि॒ ग, नि॒ सा री ग॒. These three groups on either side of the dividing line may be roughly described as the counterparts or reflexes of one another, separated by an interval of 12 hours. The note Ma-

dhyam and the अंग which contains the Vadi note will be the two unmistakable signs which will determine the question whether a particular Raga would fall under the "Purvang" group or the "Uttarang" group. Thus the twelve different varieties of Bilaval are practically the counterparts of the Ragas assigned to the night, being mixtures of the allied Ragas with the settled Avaroha of Bilaval; Yamani-Bilaval is a mixture of Yaman and Bilaval, Shukla-Bilaval is a mixture of Kedar or Nat and Bilaval; Sarparda is a mixture of Jhinjhoti and Bilaval; Kukubh of Jaijaiwanti and Bilaval; Chhaya-Bilaval contains Chhayanat and Bilaval; Bihangini-Bilaval combines Bihangini with Bilaval; Alayya-Bilaval is a mixture of Hamir and Bilaval. Devagiri combines Shudhakalyan with Bilaval; similarly Jait-Bilaval, Madhva-Bilaval, and Bengal-Bilaval.

The Bilavals, are differentiated from their evening counterparts, by the absence of Tivra Madhyam and by the prominence given to the "Uttaranga".

Another noteworthy feature of the system is the presence of certain Ragas in each mode or mela, called "परमेल-प्रवेशक-राग" indicative of the time at which you pass from Ragas of one Mela to those of the following one. Thus "Multani" takes the singer gradually into the Ragas of Purvi Mela; and Jaijaivanti introduced him into the "Kanara" group.

(Vide-Lakshya Sangit, Chapter II.)

Then you have the special features of each of the ten Melody-types referred to above. Take for instance, the Kalyan group. The Ragas comprised in this group may be classed under three heads :—

(1) Ragas containing no Madhyam or taking it only in the Avaroha, namely Bhupali, Shudhakalyan, Jait, and Chandrakant.

(2) Ragas taking only Tivra Madhyam, i. e. Yaman, Hindol and Malashri.

(3) Ragas containing both Tivra and Komal Madh-

yams e.g. Hamir, Kedar, Chhayanat, Kamod, Gaur-Sarang and Shyam-Kalyan.

All these Ragas being assigned to the fore part of the night have their Vadi notes in the Purvanga. Thus you will observe that though our current Hindustani music has undergone vast changes, it has, even in its present condition, abundant materials for being reduced to a scientific system. Our present music has outgrown the old Shastras and has imported a lot of foreign matter. During the times of the Mohomedan rule, the Sanskrit writers found a sufficient amount of fresh materials and embodied them in their works. Some of these writers were requested to do so by theii patrons, who were themselves great lovers of music. Thus Pandit Kallinath wrote his commentary at the special request of his patron Devaraja of Vizianagar. Pandit Pundarika wrote his work, "Sadraga-Chandrodaya" at the request of his patron Burhan-khan, the son of Tajkhan a ruling prince of the Faruqee dynasty of Khandesh. Another work named "Raga-Manjari" was written by the same Pandit at the instance of Madhav Sinha in whose employ he was at the time. During this period, it appears there were in practice several Mohomedan tunes and these are referred to by him in his work.

Pandit Somnath too refers to the Mohomedan Ragas of his period in his "Raga-Vibodh", written in 1610 A. D., namely Huseni, Zillaf, Musali, Navaroz, Bakharej, Hijaz, Sarparda, Iraq etc.

These were, however, pure Persian Melodies; and it may be that the writers did not get sufficient particulars from the professors who introduced the Ragas, or their disciples. whatever the reason may be, the fact is that the Sanskrit writers merely ennumerate the newly-introduced varieties, and express their own opinions as to the compo- nents they are made up of Pandit Bhava Bhatta, in his excellent work, "Anup-Sangit-Ratnakar" gives the following varieties of "Kanra" namely Sudda-Karnat, Nayaki, Bageshwari, Adana, Shahana, Mudrik, Gara, Huseni, Kafi Kanra, Sorati-kaura, khambavati-kanra and others, in all fourteen in number. The

present varieties, according to some Bengali writers are—(1) Durbari, (2) Nayki, (3) Mudrik, (4) Kowsi, (5) Huseni, (6) Suha, (7) Sughrai, (8) Adana, (9) Shahana, (10) Bageshri, (11) Gara, (12) Nagadhwani, (13) Kafi, (14) Kolahala, (15) Mangal, (16) Shyam, (17) Miyaka, (18) Takka; some add Vasanti-kanra too. The same author also gives the different varieties of Todi, Malhar and Sarang.

Bhavabhatta also mentions eight Gouris, sixteen Bilavals, ten Gours, twelve Varatis, thirteen Kalyans, and seven Puriyas in his famous work.

The Sanskrit writers never looked down upon the new additions, but made room for them in their works. On the whole, the Ragas which came to be introduced into the Hindustani Music have come to stay. But there is one test to which we ought to put them before they command our acceptance. They must be supported by good and easily intelligible rules and command the respect of those who are competent to judge.

The present music of Hindustan can therefore be reduced to a beautiful and clearly intelligible system. The old Sanskrit Granthas will certainly furnish all the necessary technique and beautiful models; and if we could secure the willing co-operation of our living first class artists, we should be able to revive hundreds of old Ragas, which though fully described in the Shastras, have remained till now a dead letter, owing to the illiteracy of our experts and the apathy of our educated classes. If we wait another decade, the probability is that the best available artists will disappear, and we shall be thrown on the mercy of people who are considerably their inferiors.

—'जयाजी प्रताप' से उद्धृत

भारतीय सङ्गीत

[बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की नींव डालने के समय पर भारत की भिन्न-भिन्न विद्याओं के सम्बन्ध में, जिन विद्यार्थियों और विद्वानों के व्याख्यान हुए थे, उनमें मि० वी० एन० भातखण्डे का भी व्याख्यान हुआ था। उसी व्याख्यान को हम यहाँ पर प्रकाशित करते हैं। —सम्पादक]

भारतीय संगीत का विषय इतना विस्तृत, और उसका इतिहास ऐसा फैला हुआ है कि उसका यथा योग्य वर्णन मैं कर सकूँगा अथवा नहीं, इसमें मुझे पूर्ण सन्देह है। तथापि मैं अपने विद्वान् और दयालु स्वदेश बन्धुओं के समक्ष खड़ा हुआ हूँ। संगीत के प्रति मैं स्वदेश प्रेम तथा कर्त्तव्य की दृष्टि से आकर्षित हुआ हूँ। ऐसे जातीय आनन्द के अवसर पर संगीत के समान विस्तृत विषय पर दो शब्द कहने की आज्ञा चाहता हूँ। संगीत एक उपयोगी वस्तु है। और यदि आप उसकी उपयोगिता को स्वीकार कर उसे भावी शिक्षा-प्रणाली में स्थान प्रदान करेंगे तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूँगा। मुझे आशा है कि आप लोग मेरे निवेदन को धैर्य और कृपादृष्टि से सुनेंगे। मैं स्वयं कवि नहीं हूँ। वैसे ही इस विषय में मेरी प्राकृतिक बुद्धि नहीं है, किन्तु इस ईश्वरीय कला की ओर बाल्यावस्था से प्रेम होने के कारण मैं उसका एक क्षुद्र उपासक मात्र हूँ।

मनुष्य ने संगीत विद्या को अपनी ही उन्नति के लिए उत्पन्न किया है, बढ़ाया है और उसका सुधार किया है। भारत की प्राचीन प्रजा संगीत को अपने शारीरिक, राजनैतिक और धार्मिक जीवन में परमोच्च स्थान देती थी। संगीत कुदरती बनावट का एक भाग है और उसके स्वरों की प्राप्ति के नैसर्गिक तत्व पक्षियों की आवाज में, गिरते हुए जल की ध्वनि में, समुद्र तरंगों की गर्जना में और तूफान से हिलने वाले जंगली वृक्षों में प्रकाशित होते हैं। हम सुनते हैं नभो मंडल के सात नादों में से संगीत उत्पन्न हुआ। मनुष्य की नस-नस में संगीत भरा हुआ है। वह उसकी आत्मा की आवाज है और उससे हमारे खेद-हर्ष, मान-अपमान, दया-क्रूरता आदि भाव प्रकट होते हैं। मनुष्य के लिये अपने हास्य, करुणा और अन्य विचार प्रकट करने का यह एक प्रधान साधन है। किन्तु इसके सिवाय संगीत में अधिक उपयोगी और अन्य आवश्यक गुण भी हैं। वह हमारी बुद्धि को सुसंस्कृत बनाता है, सुधार और चेतना देकर उसे उत्तम श्रेणी का बना देता है। उसकी निर्मल ध्वनि हमारे दुःखों का निवारण करती है। देशभक्ति के लिये अथवा देशसेवा के लिए वह एक शूरवीर को उत्तेजित करता है। बूढ़े और अनुभवी सरदारों के गम्भीर शब्दों की अपेक्षा 'रूल ब्रिटानिया' अथवा 'लामारसेलेझ' के गायनों ने युद्ध में विजय श्री को समीप ला दिया है। आध्यात्मिक जीवन और संसारी जीवन का साथ जोड़ता है। वह एक जादू का हथियार है, जिसके द्वारा मनुष्य का मन उसकी इन्द्रियों के समीप महान् सुन्दरता के भेद को खोलता है। जिस प्रकार नेत्र इस सुन्दरता को देखते हैं उसी प्रकार कर्ण उसे सुनते हैं और अपना सम्पूर्ण शरीर संगीत के असर से ईश्वरीय श्वास को पहचान सकता है। यही सुन्दरता का भाव ईश्वरीय चिन्ह है। जिसे परमात्मा ने मनुष्य की आत्मा में स्थान दिया है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने उत्पन्न करनेवाले के सुखद संयोग में प्रवेश करता है। संगीत में सुन्दरता का भास स्वरों से प्रकट होता है, जो ईश्वरीय भावों को हमारी आत्मा में संचित करते हैं।

present varieties, according to some Bengali writers are—(1) Durbari, (2) Nayki, (3) Mudrik, (4) Kowsi, (5) Huseni, (6) Suha, (7) Sughrai, (8) Adana, (9) Shahana, (10) Bageshri, (11) Gara, (12) Nagadhwani, (13) Kafi, (14) Kolahala, (15) Mangal, (16) Shyam, (17) Miyaka, (18) Takka; some add Vasanti-kanra too. The same author also gives the different varieties of Todi, Malhar and Sarang.

Bhavabhatta also mentions eight Gouris, sixteen Bilavals, ten Gours, twelve Varatis, thirteen Kalyans, and seven Puriyas in his famous work.

The Sanskrit writers never looked down upon the new additions, but made room for them in their works. On the whole, the Ragas which came to be introduced into the Hindustani Music have come to stay. But there is one test to which we ought to put them before they command our acceptance. They must be supported by good and easily intelligible rules and command the respect of those who are competent to judge.

The present music of Hindustan can therefore be reduced to a beautiful and clearly intelligible system. The old Sanskrit Granthas will certainly furnish all the necessary technique and beautiful models; and if we could secure the willing co-operation of our living first class artists, we should be able to revive hundreds of old Ragas, which though fully described in the Shastras, have remained till now a dead letter, owing to the illiteracy of our experts and the apathy of our educated classes. If we wait another decade, the probability is that the best available artists will disappear, and we shall be thrown on the mercy of people who are considerably their inferiors.

—'जयाजी प्रताप' से उद्धृत

क्योंकि वह अधिक सूक्ष्म विषय है। हम लोग इस समय भरत के संगीत का उपयोग नहीं करते, अतः हमें इस समय इस संबंध में यहाँ विचार करने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी मैं इतना तो अवश्य कहूँगा कि ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर भरत का ग्रन्थ संगीत-साहित्य में एक आवश्यक शृंखला होने से विद्वानों को इसके निर्णय करने के लिये उसे 'सामवेद' के समय तक ले जाना चाहिए। सामवेद का संगीत और भरत का जाति संबंधी प्रश्न विश्वविद्यालय से सम्बन्ध रखता है। यह विषय सामान्य लोगों की अपेक्षा शोध करने वाले विद्वानों से अधिक सम्बन्ध रखता है। भरत के समय के पश्चात् एक हजार वर्ष का दूसरा कालखंड हमारे संगीत के साहित्य में आने के पश्चात् हम १३वीं शताब्दी के पूर्व में आधे हिस्से पर आते हैं। तब इस विषय पर संगतवार लिखा हुआ एक ग्रन्थ हमारी दृष्टि में आता है। परन्तु बीच की इतनी लम्बी कालावधि के लिये हमारे पास कुछ भी प्रमाण नहीं है। संगीत के सम्बन्ध में यह समय बहुत ही उन्नत मालूम होता है और इसके लिये हमें बहुत कुछ अन्वेषण करना होगा। मैं शारंगदेव के संगीत रत्नाकर के सम्बन्ध में कह रहा हूँ। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यह बड़ा ग्रन्थ एक महान् विद्वान् के हाथ से लिखा गया है। किन्तु यहाँ पर हमें कठिनाई यही है कि उनके राग प्राचीन ग्राम, मूर्छना, जाति और ग्राम राग पर लिखे गये हैं, जिसका स्पष्ट निर्णय नहीं हो सकता। कई लोगों का विचार है कि भरत के संगीत का स्पष्टीकरण हो जाने पर रत्नाकर के रागों की जानकारी यथोचित रीति से होने में हमें सहायता मिलेगी। मुझे यहाँ पर कहना चाहिये कि हमारे यहाँ के कुछ विद्वान् रत्नाकर के रागों का स्पष्टीकरण करने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं, किन्तु वह सम्भव होगा या नहीं—इसमें मुझे सन्देह है। फिर भी उसकी योग्य कुंजी हमें न मिलने से इस समय तक वह ग्रंथ अंधकार में पड़ा हुआ है। रत्नाकर के बाद का समय हमारे अर्वाचीन ग्रन्थ संगीत का समय कहा जायगा। मेरा विचार है कि वह इस समय के ग्रंथ-संगीत के अभ्यास के लिये अधिक उपयोगी है। यह समय १५,१६, १७ और १८वीं शताब्दी तक का है। इस समय के कई संस्कृत ग्रंथ हमारे पास मौजूद हैं। ये ग्रन्थ अर्वाचीन पद्धति से लिखे गये हैं। अतः हम उन्हें समझ सकते हैं। इस समय ग्राम, मूर्छना, जाति प्रभृति पर लिखे हुए रागों की प्राचीन पद्धति अदृश्य हो गई थी और उन्होंने अपना संगीत षड्ज को पहला स्वर मान कर लिखा था। यही प्रथा अभी तक चल रही है। दूसरा भाग, जिसमें लक्ष्य संगीत आता है। उस पर विचार करने के पूर्व मुझे आपको स्मरण कराना चाहिये कि पूर्व में वर्णन किये इस समय के बहुत से संस्कृत लेखक दक्षिण के विद्वान् ही थे। उत्तर की ओर के दो या तीन ही विद्वान् मालूम होते हैं। यद्यपि यह बात आश्चर्यजनक मालूम होती है, फिर भी है यह एक सत्य। उत्तर की ओर के लेखकों में पंडित लोचन—राग तरंगिणी का कर्ता; २. पंडित अहोबल—सङ्गीत पारिजात का कर्ता और ३. पंडित भावभट्ट, अनुपविलास और अन्य एक-दो ग्रन्थों के रचयिता हैं। इस समय हमारे पास भिन्न-भिन्न विषयों पर लिखे हुए प्रायः पचास ग्रंथ हैं। उन सबको हम अर्वाचीन समय के ग्रंथों में स्थान देंगे। इन सब ग्रंथों को संग्रह कर छपवाना चाहिए। यह मैं आपको सिद्ध कर दूँगा कि उत्तर और दक्षिण के ये सभी ग्रंथ उत्तम हैं। एक बात जो अत्यंत आवश्यक है, वह यह कि हमारे यहाँ पिछले कई वर्षों से प्रतिकूलता के कारण संगीत की

अवनति हो रही है। वेद के समय से लेकर संगीत रत्नाकर के हिन्दू समय तक हम विचार शुरू करते हैं। तथापि उस समय का संगीत साहित्य जो भी मिलता है, वह अपूर्ण है। हमारे यहाँ के बड़े-बड़े वीर-चरित्र और नाटक जैसे कि विक्रमोर्वशीय, मृच्छकटिक, मालविकाग्निमित्र में हम स्पष्ट देखते हैं कि उस प्राचीन समय में हमारे समाज में संगीत उच्च स्थान पर पहुँचा था। हमें यह भी पता लगता है कि उस समय के समस्त कुलवान् व्यक्ति संगीत का अभ्यास करते थे। किन्तु यथार्थ में वे किस सङ्गीत का अभ्यास करते थे, अथवा किन ग्रंथों का अभ्यास करते थे, यह हम नहीं जानते।

कैप्टन डे नामक सङ्गीत के एक सुप्रसिद्ध लेखक व शोधक विद्वान् लिखते हैं कि प्राचीन हिन्दू राजाओं के समय में भारतीय सङ्गीत की बहुत कुछ उन्नति हुई थी। हमारे देश में मुसलमानों के आने के पश्चात् बहुत भारी परिवर्तन शुरू हुए। यह समय ११वीं शताब्दी का था। प्रारम्भ के आक्रमणकारी मुसलमान भारतीय सङ्गीत पर ध्यान देने वाले नहीं थे और उन्होंने वह दिया भी नहीं। अनुमानतः १२वीं शताब्दी में सुल्तान अलाउद्दीन दिल्ली में अपने साथ अमीर खुसरो नामक महान् ईरानी कवि को लाया, जिसने हमारे सङ्गीत में भारी परिवर्तन लाये। फिर महान् शाहंशाह अकबर के समय में इस कला को विकसित करने के लिये अच्छा उत्तेजन मिला। आईने-अकबरी नामक ग्रंथ में लिखा है कि अकबर बादशाह के दरबार में तीस से अधिक कुशल गायक थे, क्योंकि वह स्वयं संगीत का बहुत शौकीन था। सुनते हैं कि अकबर बादशाह वेष बदल कर अपने गवैये तानसेन के साथ उनका नौकर बन कर गुरु हरिदास स्वामी के समीप गया था। इसी से अकबर का नाम इस समय भी हमारे यहाँ आदर से लिया जाता है। फिर भी आश्चर्य इस बात का है कि अकबर बादशाह के दरबार में सुप्रसिद्ध हिन्दू गवैये बहुत कम थे। ऐसा भी कहा जाता है कि विदेशी आक्रमण के समय उत्तर के कई प्रसिद्ध गायक और विद्वान् दक्षिण की ओर चले गये होंगे। जो भी हो, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि दक्षिण के समस्त हिन्दू ग्रंथकार उत्तर से जाकर वहाँ बसे थे। कई विद्वानों की सम्मति है कि दक्षिण का संगीत अधिक प्राचीन था। अकबर बादशाह के पश्चात् आने वाले बादशाहों में से सबसे अधिक हानि सुलतान औरंगजेब ने पहुँचाई थी। इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसने हिन्दी संगीत की जड़ अपने दरबार से निकाल दी थी। औरंगजेब के बाद केवल सुलतान मुहम्मद शाह ने ही संगीत को सहायता दी थी। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि कला को व्यावहारिक रूप से विकसित होने का इस समय अवसर प्राप्त हुआ था। किन्तु संगीत का शास्त्र जो उसका आधारस्तम्भ है, उसकी उपेक्षा की गई थी। क्योंकि बहुत से गवैये पढ़ना-लिखना नहीं जानते थे। कई इतिहास-लेखक कहते हैं कि वह समय ऐसा था कि जब संगीत के सहस्रों ग्रंथ जलाये गये और उसके ग्रन्थ रखने वाले तंग किये जाते थे।

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, ब्रिटिश समय शुरू होने पर, अपने देश में नया युग शुरू हुआ। सुलह, एकता और सुख के अन्तिम सौ वर्षों में कला और विद्याओं का पुनरुद्धार हुआ। किन्तु मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि अपने संगीत की फिर भी वही दशा रही। हमारे यहाँ के राजा और श्रीमन्त लोग उसकी ओर उपेक्षा की दृष्टि से देखते रहे। यही कारण है कि वह और भी क्षुद्रवृत्ति वाले मनुष्यों के हाथों में जा गिरा। दस-

बीस वर्षों से ब्रिटिश सरकार ने कुछ ज़िलों में संगीत के स्कूल खोले हुए हैं। किन्तु उनसे कुछ विशेष लाभ नहीं हुआ। संगीत अत्यन्त नाजुक वृक्ष होने से उसे बहुत आत्मीयता और सावधानी से बढ़ाना चाहिए। हम यदि इस संगीत की वास्तविक उन्नति चाहते हैं तो हमें उसे अपने विद्यालयों में स्थान देना चाहिये। इस संगीत की उन्नति के साथ प्रजा की उन्नति का सम्बन्ध है। इसलिए इसे हिन्दू विश्वविद्यालय के समान हमारी राष्ट्रीय संस्थाओं में प्रधान रूप से स्थान मिलना चाहिये।

यहाँ पर आप कहेंगे कि विश्वविद्यालय में संगीत को स्थान देने के लिये आग्रह तो किया जाता है, किन्तु उसके लिये आवश्यक साहित्य और उसको सिखाने वाले कहाँ हैं। इसके उत्तर में मैं तो यही कहूँगा कि आप के पास साहित्य और शिक्षक दोनों मौजूद हैं। प्रारम्भ में उसकी अभिवृद्धि मन्दगति से होगी, इसके लिए हमें चिन्ता नहीं करनी चाहिए। अन्य विषयों में पूर्णता प्राप्त करने में यदि आपको ५० वर्ष लगेंगे तो इस विषय में आप १०-१२ वर्ष में पूर्णता प्राप्त कर सकेंगे। इस समय के अभ्यास करने वालों के लिये दो बड़ी कठिनाइयाँ हैं। एक तो सीखने वाले को उचित सहायता नहीं मिलती और दूसरी कठिनाई यह है कि निंद्य आचरण वालों से इसकी शिक्षा लेनी पड़ती है। यह प्रसिद्ध बात है कि अपने कई राजा-महाराजाओं के पुस्तकालयों में संगीत के हस्तलिखित ग्रन्थ विद्यमान हैं। जिनके दर्शन भी शोध करने वाले विद्वानों को नहीं हो सकते। मेरा अनुमान है कि संगीत को उच्च स्थान मिलते ही उसका सन्तोषजनक परिणाम स्वयं मालूम हो जायगा।

अर्वाचीन समय के संगीत के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उत्तर और दक्षिण के गायकों में मतभेद पाया जाता है, फिर भी कई बातों में वे समान ही हैं। (इस बात को आपने अनेक उदाहरण देकर समझाया। तत्पश्चात् वर्तमान साहित्य, भारतीय संगीत की उन्नति के लिये हमें करना चाहिये इस सम्बन्ध में आपने कहा कि) वर्तमान समय के अच्छे गायकों की सहायता से हम भारतीय संगीत की पुनः उन्नति कर सकते हैं। मैं इस बात को निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि इसका परिणाम बहुत ही उत्तम होगा। संगीत संसार की भाषा है इसको फिर नये रूप में सक्षम करने से हमारे हाथ में एक बड़ी सम्पत्ति आवेगी और किसी भी प्रकार मतभेदों के बिना समस्त हिन्दुस्तानी उसे आदर की दृष्टि से देखेंगे। उत्तर के गायन की खूबियाँ और दक्षिण के सङ्गीत की नियमबद्धता का संयोग होगा। अतएव हमें बिना विलम्ब किये ही इस कार्य को हाथ में लेना चाहिए। हमारे लिये यह भी एक महत्व का कार्य है। सौभाग्य से इस कार्य को पूर्ण करने का विचार हमारे अन्तः करण में उत्पन्न हुआ है। अब रात्रि का समय चला गया है। प्रभात होने की तैयारी है। इसलिए आलस्य को छोड़ कर आइये, हम लोग भारतीय संगीत की उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो जायँ। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि परमदयालु परमात्मा ने कृपा कर यह उत्तम अवसर दिया है। हमारे महान् देशभक्त माननीय पंडित मदनमोहन मालवीय जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन देशसेवा के लिये अर्पण किया है। स्वयं उनके तथा उनके अन्य साथियों के महान् प्रयत्नों से हमारे हाथ में अपना विश्वविद्यालय आया है। इस विश्वविद्यालय से जिस प्रकार हमारे दूसरे अनेक अभाव दूर होंगे, उसी प्रकार यह अभाव भी दूर होगा। हम लोग जानते हैं कि यूरोप में ऐसा एक भी विश्वविद्यालय नहीं है, जिसमें संगीत

के अभ्यास को स्थान न मिला हो। अब हमें भी अपना एक विश्वविद्यालय मिल गया है, इसलिये उसमें भारतीय संगीत को हम स्थान प्रदान करें। भारत का हर एक घर चाहे वह गरीब का हो या श्रीमान् का हो; उसमें से संगीत की आवाज आनी चाहिये। क्योंकि हम लोग स्वभावतः एक संगीत-प्रिय समाज के सदस्य हैं और वह हमें परम्परा से प्राप्त है। अन्त में आप लोगों से यही प्रार्थना करता हूँ कि हमें अब जागृत होकर भारतीय संगीत की उन्नति की ओर ध्यान देना चाहिये।

—१२ अप्रैल १९१६ के 'जयाजी प्रताप' से उद्धृत

[उपरोक्त भाषण सम्भवत. अंग्रेजी में था, जिसे किसी संवाददाता ने बाद में हिन्दी में उल्था किया होगा। भाषण स्थान-स्थान पर दोषपूर्ण प्रतीत होता है, जो मूल प्रति के अभाव में अधिक संशोधित न किया जा सका।—संपादक]

अतः संगीत हर एक मनुष्य के जीवन में आवश्यक कार्य कर उसे बल देकर नीतिमान बनाने में सहायता करता है। जो मनुष्य प्रतिदिन उत्तम पदों के वाक्यों का उच्चार करता रहता है और जो मनुष्य सदैव के कार्यों में ही फँसकर अनेक विपत्तियों से ग्रस्त रहता है वह भी जब ऐसी ईश्वरीय ध्वनि श्रवण करता है, तब अपने मन को साफ और स्वच्छ रखने में सफल होता है। उनमें नई आशा, नई जिन्दगी निर्माण होती है। मनुष्य के मन को शिक्षित करने के लिये और उसे उच्च स्थान पर आरूढ़ करने के लिये संगीत जो कुछ कार्य करता है, उससे हमारे पूर्वज पूर्णतया परिचित थे। अपने यहाँ के संस्कृत कवियों के ग्रंथों से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में एक श्रेष्ठ कला के रूप से संगीत का अभ्यास किया जाता था।

महिलाओं और सज्जनों! इससे उच्च स्थान संगीत को हम क्या दे सकते हैं? सर सौरीन्द्र मोहन ठाकुर जो संगीत के महान् विद्वान् थे, कहते हैं कि एक बुद्धिमान् मनुष्य निर्माण किये हुए रास्ते पर चलते हुए अपने शरीर का उपयोग कर सुख और मुक्ति को प्राप्त कर सकता है। सगुण ब्रह्म की भक्ति से हमें इस लोक और परलोक का सुख मिल सकता है। और निगुण ब्रह्म की भक्ति से अन्तिम सुख मिल सकता है। निर्गुण ब्रह्म की भक्ति हमारे मन को स्थिर रख सकती है, जो सामान्य मनुष्य से नहीं हो सकता। अनाहत नाद की भक्ति को स्वीकार कर बुद्धिमान् मनुष्य मोक्ष को सम्पादन करते हैं। यह उपासना सामान्य मनुष्य से नहीं हो सकती। उसे वे ही प्राप्त कर सकते हैं जो अनाहत नादोपासना के लियेप्रयत्नशील रहते हैं। नादोपासना में मनुष्य को प्रसन्न रखने का गुण है। भक्ति-कार्य में संगीत का उपयोग करने से मनुष्य को मोक्ष मिलता है।

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में सर विलियम जोन्स और अन्य कई यूरोपीय सुप्रसिद्ध विद्वानों ने भारतीय संगीत की प्रशंसा की है। इस समय कई यूरोपियन विद्वान् स्वीकार करते हैं कि, हिन्द के संगीत की मधुरता इतनी बढ़ी हुई है कि उसे दूसरे किसी भी देश से कुछ सीखने की आवश्यकता नहीं है।

कई यूरोपियन विद्वान् इस बात को निर्विवाद रूप से स्वीकार करते हैं कि वह हिन्दुस्तान से बाहर गया है। इस बात में शोध कार्य कर यदि कोई सिद्ध करे कि संगीत के मूलतत्व यूरोप में भारत से गये थे, तो मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं होगा। जब यह स्थिति है तो फिर क्या हमें उसको अपने ही देश में योग्य स्थान नहीं देना चाहिये? हमारा संगीत पीछे रह गया है। इसका प्रधान कारण यही है कि हमारे यहाँ के शिक्षा-विभाग में उसे योग्य स्थान नहीं दिया है। यदि भूतकाल में ऐसा हुआ हो तो भी अब हमें उसे ऐसी स्थिति में नहीं रख छोड़ना चाहिये। भूल सुधारने का यदि अवसर मिले तो हमें उसे सुधार देना चाहिये।

जब हमने अपना विश्वविद्यालय स्थापित किया है तो अन्य विद्याओं के साथ इस संगीत विद्या को भी स्थान देना चाहिये। पावनी पुण्य क्षेत्र श्री काशी जी को छोड़ कर संगीत की उन्नति के लिये दूसरा उत्तम स्थान कौन-सा मिलेगा? इसी गंगाजी के तट पर हमारे प्राचीन महर्षि हजारों वर्ष भजन गाते थे। परमात्मा विश्वनाथ संगीत के महान् रक्षक हैं। हम कहते हैं कि उनके पाँच मुखों से पाँच राग उत्पन्न हुए और देवी पार्वती जी ने

छठवाँ राग उत्पन्न किया। इस पर से आपको जानना चाहिये कि ऐसी सुस्ती हटा कर अब हमारे शिक्षा-विभाग में संगीत को यथोचित स्थान देकर हमें जागृत होना चाहिये। हमारा संगीत बहुत प्राचीन है। हमारे पास उस समय में भी पूर्ण सप्तक और पूर्ण रूप से सुधरी हुई संगीत की प्रणाली थी, जिस समय अन्य जातियाँ यह जानती भी नहीं थीं कि सप्तक क्या है ? अपनी उत्तम विद्या को हमें इस प्रकार नष्ट न होने देना चाहिये। हमारे सामान्य जीवन के साथ संगीत का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस विषय को यद्यपि कोई अस्वीकार नहीं करते, फिर भी आश्चर्य की बात है कि हमारे शिक्षित-वर्ग में यह लुप्त-सा हो गया है। कई बुद्धिमान् सज्जन संगीत को समयानुकूल नहीं पाते हैं। उदार वृत्ति के कुछ व्यक्ति उसे सामान्य-विषय समझकर उसकी परवाह भी नहीं करते, और थोड़ा-सा गाना-बजाना आते ही अपने को उसमें निष्णात् मान लेते हैं। कई लोग उसे पुरुषों के लिए अनुपयोगी समझते हैं। कई लोग यहाँ तक भी कह देते हैं कि संगीत कुछ काम की वस्तु ही नहीं है। वह तो केवल श्रवणेन्द्रिय को तृप्त करने के लिए स्वरों का एक प्रकार का मिश्रण है। ऐसे पुरुषों के विचार पर ध्यान न देकर हमें उसे सचमुच शिक्षा के रूप से स्वीकार कर अपने विश्व-विद्यालय के अभ्यासक्रम में स्थान देना चाहिये।

भारतीय संगीत का इतिहास

यहाँ पर एक प्रश्न उपस्थित होता है कि संगीत के अभ्यास से क्या आशय है ? उसके अभ्यास के लिये हमारे पास कौन से ग्रन्थ हैं ? संगीत की वर्तमान स्थिति क्या है ? उसकी उन्नति के लिये अभी तक क्या किया गया है ? और अब क्या कर्तव्य है ? इन विषयों पर अधिक विचार करने के लिये यहाँ पर्याप्त समय नहीं है। फिर भी कुछ विचार आपके समक्ष उपस्थित करता हूँ। संगीत विषय पर बोलने के समय कई बातें जान लेनी चाहिये। संगीत के विषय को हम तीन भागों में विभक्त करते हैं—(१) ग्रन्थ-संगीत, (२) लक्ष्य संगीत और (३) भावी संगीत। भावी सङ्गीत हमारा भविष्य का सङ्गीत है, अर्थात् संगीत जो आगे चल कर होना चाहिये वह।

लक्ष्य संगीत वह है जो हमारे देश में इस समय प्रचलित है और जिसे हम लोग अभी गाते हैं। ग्रन्थ-संगीत के दो उपभाग हो सकेंगे—अर्थात् प्राचीन और मध्यकालीन। प्राचीन संगीत के प्रथम उपविभाग में सामवेद और भरत के नाट्य शास्त्र के बीच जो समय गया था उस समय के संगीत का हमें वर्णन करना चाहिये। यह वास्तव में बहुत लम्बा समय है। किन्तु उस समय के संगीत के लिये हमारे पास कुछ भी दृढ़ प्रमाण नहीं हैं। उस समय संगीत ही नहीं था, ऐसा नहीं। किन्तु सहायता के अभाव के कारण उसमें शोध नहीं हो सकी। तीसरी अथवा चौथी शताब्दी के समय के विषय में हमें क्या मालूम होता है ? हमारे कई विद्वानों के विचारानुसार उस समय राग के समान कोई प्रिय वस्तु ही नहीं थी। वे विद्वान् कहते हैं कि उस समय रागों का उपयोग ही नहीं होता था। यह ठीक है कि भरत अपने ग्रन्थ में किसी भी राग का वर्णन नहीं करता। वह केवल जातियों का वर्णन करता है। कई लोग ऐसा भी कहते हैं कि भरत ने केवल नाट्य-शास्त्र अर्थात् नाटकों का ही वर्णन किया है, इससे रागों के विषय में उसने कुछ भी नहीं लिखा। ऐसे विवादों में अभी हमें उतरने की आवश्यकता नहीं है,

THE AIMS AND OBJECTS OF THE ALL INDIA MUSIC CONFERENCE, AS SETTLED AT BARODA IN 1916 ARE AS FOLLOWS :

(1) To take steps to protect and uplift our Indian Music on National lines.

(2) To reduce the same to a regular system such as would be easily taught to and learnt by our educated countrymen and women.

(3) To provide a fairly workable uniform system of Ragas and Talas, (with special reference to the Northern system of Music.)

(4) To effect if possible such a happy fusion of the Northern and Southern systems of music as would enrich both.

(5) To provide a uniform system of notation for the whole country.

(6) To arrange new Raga productions on scientific and systematic lines.

(7) To consider and take further steps towards the improvement of our musical instruments under the light of our knowledge of modern science, all the while taking care to preserve our nationality.

(8) To take steps to correct and preserve permanently the great masterpieces of this sublime art now in the possession of our first class artists and others.

(9) To collect in a great central library all available literature (ancient and modern) on the subject of Indian Music and if necessary to publish them and render them available to our students of music.

(10) To examine and fix the microtones of shruties of Indian Music with the help of our scientific instruments and the first class recognised artists of the day and to make an attempt if possible to distribute them among the Ragas.

(11) To start an 'Indian Men of Music' series.

(12) To conduct a monthly journal of Music on up-to-date lines.

(13) To raise a permanent fund for carrying on the above mentioned objects.

(14) To establish a National Academy of Music in a central place where first class instruction in Music could be given on most up-to-date lines by eminent Scholars and Artists in Music.

V. N. BHATKHANDE, B. A., LL. B.

General Secretary. Standing Committee.

—'जयाजी प्रताप' से उद्धृत

THE SECOND ALL INDIA MUSIC CONFERENCE

AN APPEAL.

The following appeal has been issued under the signature of a number of persons, among them being Prof. V. N. Bhatkhande, Rai Bahadur Lala Sultan Singh, Rai Bahadur Damodar Das and Nawab Ahmad Said Khan of Loharu:—

In ancient times the sublime and soul-lifting art of music had reached the highest pitch of perfection in the hands of the venerable scholars, the great spiritual men of India who were ever after the greater harmony. Their works are our noble inheritance. With such wonderful collection at our command we should have moved onwards. Instead of progress degeneration set in, and today we find that the gift of the gods has been neglected far too much and consequently lost much of its original purity. There are various causes which led to this state of affairs and the most prominent of them is the state of apathy in our educated classes to learn it scientifically; undoubtedly want of able teachers is a great drawback. The all round awakening in India, claiming for it its due place among the progressive nations of the world, encouraged some distinguished lovers of music who stood up to champion the cause of revival of this most delightful of the fine arts, as it is one of the foremost needs of the time, and through their enterprise a new movement in the shape of an All India Music Conference took place in Baroda under the kind patronage of His Highness the Maharaja Gaekwar of Baroda whose great sympathy and magnanimity made it possible for the small band of workers to call a Conference in his state. Many well-known theorists and practical experts took part in the proceedings,

and interesting as well as important results were secured. We, the members of the reception Committee and the permanent secretaries of the standing committee of the All India Music Conference, have therefore, great pleasure in informing you that it is proposed to hold the second session of the All India Music Conference in Delhi in the Easter holidays in April next. We appeal to you for support as without the sympathy and co-operation of the educated classes the movement can never attain any great success. Every self respecting nation considers music as one of the most necessary social accomplishment and therefore it is absolutely necessary that such conferences should take place year after year, as they will bring home to the educated classes with great force the urgent necessity of the development of high class music on sound, scientific lines, and they will go a long way in concentrating public attention on its cultivation.

The proposed Delhi Conference will bring together all the workers of India in this field. It will be possible to take stock of the work done and remaining to be done.

Exchange of views on knotty points will be another great advantage secured, and it will lead to our introducing a uniform system of notation for the whole country for the adequate expression of the soul of music. Our immediate needs are :—

(1) A good workable uniform Raga system such as would enable us to learn and teach music without difficulty.

(2) A good simple uniform notation system for the whole country.

(3) A perfectly reliable history of Indian music and musicians.

(4) The determination of Shrutis and their uses in the Ragas.

(5) Impressing on people the educational value of music and the necessity of introducing graded courses in schools and colleges.

(6) A central academy of music where first class music could be taught according to the most up-to-date methods.

With these objects in view we beg to approach your kind and noble self with the request that you will come forward and help us, so that the Conference may be a great success. Any donations and promise of service will be looked upon with a deep sense of gratitude by us and the permanent body of the All India Music Conference Committee.

—'जयाजी प्रताप' से उद्धृत

REPORT OF THE SECOND ALL INDIA MUSIC CONFERENCE

HELD AT DELHI, DECEMBER 14TH. TO 17TH., 1918

Mr. V. N. Bhatkhande of Bombay, in moving the resolution on the National Academy of Music, said :—"Your Highness, Brother delegates, Ladies and Gentlemen.

This is an age of unusual activity. In every sphere around us,—social, political, industrial, educational and aesthetic—we find now a great awakening. At a time like this, we should not let slip the opportunity of taking all necessary steps towards restoring our sublime art of music to its original high position in society. For, what is the condition of our Hindustani music at the present day ? There was a time when we had hundreds of excellent works on the subject, and perhaps countless masters and composers. There was a time when music in India had a place, and an important place too, in the social, religious and household life of the people. It is common knowledge that the music of Northern India passed through considerable changes during the time of the Mahomedan rule in India. I am particularly referring to the times when those eminent artists—Amir Khusro, Baba Haridas, Gopal Nayak, Mian Tan Sen, Nayak Baksu, Baijoo, Ramdas, Soordas, Bilaskhan and many others brought into our Hindu Music their wonderful creations and enriched the same marvellously. Some of these luminaries are supposed to have lighted lamps and brought rain from the clouds, by their music alone ! It is rightly claimed that our Indian music reached its high watermarks in those happy times. The art of those times went far ahead of the Shastras. It is even contended that the fundamental change from the old Shudha scale of the Granthas to that of Bilawal, took place in this remarkable period. The claim may or may not be justifiable, but it cannot be denied that the new element impaired into our music in the Mogul period seriously impaired the binding force of the orthodox Shastras. The resourceful artists did not, however, ruthlessly treat the old Shastras. Many of them were only converted Mohomedans and respect for the Shastras and their writers, was more or less ingrained in them. They acted with great tact and skill. They retained all the old Raga names, but changed the

rules of singing the melodies. At times they introduced entirely foreign tunes but took care to make them easy to assimilate. They, however, failed to keep a scrupulous record of all they did in matters musical. It may be that their records were lost in the later unsettled times of the Mohomedan rule, but the fact remains that we are not today in a position to judge the correctness or otherwise of the present version of the Ragas of Mohomedan origin in the absence of reliable authorities. The Sanskrit writers of that period have duly taken note of the new creations and have even made some attempts to explain them.

At the end of the Mohomedan period, Grantha-writing became more and more scarce, possibly owing to the educated classes ceasing to take .interest in the subject, and the art fell into the hands of illiterate professionals. So long as these custodians were competent men, the art did not suffer very much, but it's present condition leads one to conjecture that the art has had to pass through inferior and incompetent hands. Why, our experience at the present day is that the number of really first-class experts is exceedingly small, and the services of even these men are not normally available to all interested in the subject. The question therefore now is—what should be done to remedy the unsatisfactory condi ion of our music at the present day ? It is true that some of our learned scholars are directing their attention to this state of things; there have been some praiseworthy attempts made to improve the unsatisfactory condition. But in a matter of such national importance, stray and isolated attempts on the part of a few scholars could never be expected to yield permanent beneficia' results. *The whole nation must take up the cause, and make a grand and organisede ffort.* I am glad to say that such an effort came forward for the first time in the year 1916, when under the kind patronage of that enlightened and liberal minded Prince, The Maharaja Gaekwar of Baroda, the first All India music Conference met in his Capital. It opened the eyes of the whole country to the real needs of the situation and inspired them with confidence, that the problem of reviving, uplifting and protecting Hindusthani music was after all not so dificult to solve, given the necessary sympathy andc ooperation of the educated classes. The full achievement of all the ideals set up by the Conference may require half a dozen sessions or more, but we now know precisely what we want and also the way how to obtain it. The best way to begin the work of regeneration is to recognise the present Hindusthani practice of music, and to establish the same on a scien-

tific and sound basis, that is to support it by a good, well-reasoned and easily intelligible theory. Theory is rightly described as the backbone of practice, and when that perishes, the practice gradually begins to degenerate. This means that the time has now arrived when the eduacted classes should take up the subject in hand earnestly and proceed to give it its due position and importance. They can do this by supplying the following essentials :—

(1) A good workable Raga-system embodying all the Ragas now sung in Northern India.

(2) A plentiful supply of valuable up-to-date literature on music.

(3) A fair supply of well equipped professors.

(4) A faithful record of all the available masterpieces of our first class experts for future guidance.

(5) And a public institution where music could be taught on the most scientific and up-to-date lines.

In this connection let me mention that Rampur has in its possession the largest stock of Horis and Dhrupads of the famous Tansen School. I have already requested His Highness the Nawab Saheb, our worthy President, to permit phonographic records of those, ancient masterpieces to be taken for the benefit of country and I am glad to say that he has been graciously pleased to grant my request.

I shall not trouble you with the details of the scheme relating to the establishment of the National Academy. The scheme printed and circulated amongst you is only a draft, giving you the broad outlines and the general principles underlying it. The details will be settled in due course by the provisional committee who will have to be appointed for the purpose. I ask for nothing more than your generous support, sympathy and loyal co-operation of you all lovers of music, in the interests of what I consider to be a National cause.

With these remark, he then moved thef ollowing resolution :—

"That whereas it has been considered expedient to organise in Delhi an institution for the systematic study of Indian music by providing special facilities for the collection and preservation of the best of classical compositions in a museum for the founding of a library of literature on music and for imparting instruction in elementary and advanced music.

That a National Academy of Music shall be established in the Imperial City of Delhi on the lines generally indicated in the draft scheme that has been printed and circulated among the members.

That a provisional committee consisting of Sahabzadah Saadat Ali Khan, Home Secretary to Rampur State, U. P.; Thakur Nawab Ali Khan, Taluqdar of Lucknow; Mr. Bhatkhande of Bombay; Mr. Jagannath Rais, Hon. Magistrate of Delhi; Prof. S. L. Joshi, M. A. of Baroda; Sahib Chaudhuri Raghubir Narain Singh Taluqdar of Assora; Mr. Karnad of Bombay and others, with power to add to their number, be appointed for the purpose of raising funds for the erection of buildings and for endowments and for taking such steps as may be necessary, to carry out objects of the scheme.

—'जयाजी प्रताप से उद्धृत

SHRI MADHAV SANGIT VIDYALAYA, LASHKAR, GWALIOR

BY

Prof. V. N. Bhatkhande, B. A., LL. B.

The above School was started in January, 1918, and placed under the Education Department.

Gwalior was marked out by tradition as a fit place for the inauguration of a new experiment in the teaching of Music. According to Captain Willard, Raja Man who flourished four or five centuries ago and whose palace known as the "Man-Mandir" on the Fort at Gwalior is one of the most interesting and impressive sights of Gwalior at this date, was the father of the Dhrupad style of singing. He was also the author of a great work on music Mankutuhal of which a Persian translation is extant in the Palace Library at Rampur. So also Tansen whose name stands for the climax of musical attainments and who was the brightest jewel of Akbar's Court was born in Gwalior and he also died in Gwalior. This association of Tansen's name with Gwalior has made it a place of pilgrimage for professional singers all over India. In more recent times successive-

Maharajas of Gwalior have been lovers and patrons of music and some of them had attained no small degree of proficiency in it. In this connection, prominent mention must be made of the late Maharaja Jayaji Rao Scindia. Besides being himself a singer of a high order, he had in his court such masters of music as Bade Mohammad Khan, Natthu Khan, Hassu Khan, Haddu Khan, Amir Khan, Bande Ali Khan, Narayan Shastri, Waman Buwa and others. In fact during his regime Gwalior had become the home of music in Upper India and the rallying point for all votaries of music.

The present maharaja Sir MADHAV RAO SCINDIA is an ardent lover of music and sings bhajans in those rapturous strains which are the envy of even professional singers, as is known to every one who has witnessed the Bhajan-Saptaha during the Ganpati festival in Gwalior. His brother Sardar Balwant Rao Bhaiya Sahib is an expert in both vocal and instrumental music.

His Highness joins to his fondness for and insight into music an unbounded zeal for reform. And his reforms are not confined to one Department but extend to all the Departments of the state and all the affairs of life. One direction which his reforming activity has taken is the revival of ancient Indian lores and arts and their adaptation to modern conditions. Indian Music as practised in the past was certainly highly scientific; but the mode of imparting it is not at all suited to the present days when the struggle for existence is extremely keen and entails upon every one the necessity of learning a number of things within the shortest possible time. One great drawback of the old system was that there was no notation and no graded text-books; and knowledge could only be imparted from mouth to the ear. The introduction of notation or, for the matter of that, any deviation from the beaten track is, however, repugnant tot he notions of the orthodox School and were it not for His Highness, there would be no hope for the future of Music in Gwalior. His Highness is never a blind follower of old, inelastic methods in anything. He may be called a conservative liberal and a liberal conservative and has the gift of picking out the best both in the old and the new, and combining it into a harmonious whole.

So the ground was already prepared for a hospitable reception of the new system devised by the present writer, when he paid his first visit to Gwalior in 1917 solely with the object of hearing the few good singers that still survive there. Many great things in the world have but a small beginning and that beginning is often some casual occurrence. The writer during his stay called upon Sardar Balwant Rao Bhaiya Sahib with a view to make his esteemed acquaintance. In the course of conversation, he casually broached to him his new system. The Sardar Sahib approved of it and promised to speak to His Highness. He kept his promise with the result that in June 1917 His Highness during his visit to Bombay sent for the writer and after a satisfactory interview, desired him to visit Shivpuri during the following Ganpati festival. At Shivpuri he was asked to unfold his scheme before an influential committee consising of :—

(1) Col. K. N. Haksar, B. A., C. I. E.,
(2) Dr. Col. D. Wagle,
(3) Dr. Nadkarni,
(4) Rao-Raja General Rajwade,
(5) Rao-Bahadur Mukund Rao Khandekar.

The Committee not only sympathised with the scheme but made valuable suggestions for its improvement. The scheme so evolved received the sanction of His Highness who also approved of the selection of the following singers to learn the new system at Bombay :—

(1) Vishnu Buwa.
(2) Raja Bhaiya.
(3) Bala Buwa.
(4) Bhaskar Rao.
(5) Krishna Rao Date,
(6) Bapu Rao Gokhale.
(7) Chunni Lal.

They picked up the system in the short space of three months and on their return to Gwalior entered upon their duties in January 1918, as stated at the outset. The School was placed under the supervision of Rao Sahib S. G. Parchure, B. A., than whom a more

talented sympathetic and efficient officer could not have been found for the purpose.

The goal before the School is to turn out in five years amateur singers with a thorough knowledge, theoretical and practical, of Swaras and Ragas. Those among them who may want to pursue music as a profession will be sufficiently equipped to cultivate the art further by their own efforts, by practice and by hearing as many veterans in the art as possible.

The School at the time of writing, is in its fourth year and has already become extremely popular. No fees are charged; on the contrary, stipends are given to all deserving students The results of three year's working have exceeded the most sanguine expectations and there is every hope that in a few years, the School will be known all over India.

When the first batch pass out of the School after completing the five year's course it is to be hoped that they will he utilized to start similar schools at Ujjain, Shivpuri, Bhind and other centres in the State; also that, in course of time, Music will form an integral part of the School curriculum for boys and girls both; so that a time may come when the divine blessing of Music will reach every home in Gwalior and make the lives of the people harmonious in more senses than one.

It may also be hoped that the example of Gwalior will be followed elsewhere and that the Gwalior School will be the forerunner of a net-work of similar institutions spread over the whole country. Already the Indian University for Women at Poona has introduced Music as a regular subject of study and has adopted the graded series of text-books composed by the present writer.

In a word, to Gwalior and its illustrious Maharaja will always belong the credit, the honour and the distinction which is the due of the pioneers of every new movement.

—'जयाजी प्रताप' से उद्धृत

आधुनिक हिन्दुस्तानी राग-पद्धति एवं उसके अध्ययनकरने की सरलतम विधि

पं० वि० ना० भातखण्डे

देवियों एवं सज्जनों,

आज के मेरे भाषण का विषय "आधुनिक हिन्दुस्तानी राग-पद्धति एवं उसके अध्ययन करने की सरलतम विधि" है। फिर भी, इस विषय की ओर बढ़ने के पहिले मैं कुछ शब्द संगीत विषय के प्रति अपने समाज की धारणा के बारे में कहना चाहता हूँ। और प्रार्थना करता हूँ कि इस विषयान्तर के लिये मुझे क्षमा करेंगे।

जब कि, आज की सांगीतिक-अवस्था में ऐसे कई तत्व मिलते हैं, जिनसे संगीत-प्रेमियों को सङ्गीत की पूर्व-प्रतिष्ठा प्रस्थापित होने की आशा बँधती दिखायी देती है और जबकि हम आजकल पर्याप्त क्रियाशीलता के साथ कहीं-कहीं होनहार प्रतिभा भी देखते हैं—यह खेद के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि जनसाधारण तो क्या, सुशिक्षित समाज द्वारा भी सांस्कृतिक दृष्टिकोण से संगीत की वास्तविक अवस्था को समझने एवं प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं किया गया। अनेक पर्याप्त सुलझे विचारों के व्यक्ति संगीत को अभी भी एक सहायक शोभा का विषय समझते हैं। जिसे वे खुशी से शिक्षा के पाठ्यक्रम से निकाल सकते हैं, यदि उन्हें यह आशंका हो जाय कि उनका उपहास पुरानी विचार धारा के अप्रगतिशील व्यक्तियों की तरह किया जायगा। यही नहीं, ऐसे भी व्यक्तियों के मिलने में कठिनाई न होगी जो पुरुषार्थ के लिए संगीत को अनुपयुक्त व्यवसाय समझते हैं। मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि संगीत की तरह ऐसी अन्य कोई भी ललित कला नहीं है जिसे समाज द्वारा अनुचित घृणा प्राप्त हुई हो। सबको सहज सुलभ एवं प्राप्त हो जाने पर अत्यन्त आकर्षक और उपयोगी होते हुए भी आजकल इसका सच्चा मनोवैज्ञानिक और सौन्दर्य-पक्ष या तो उपेक्षित रहता है या उसे बिलकुल समझा ही नहीं जाता।

कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं जो यह कहते हैं कि सङ्गीत कुछ भी नहीं व्यक्त करता। वे कहते हैं कि सङ्गीत अधिक से अधिक अनुकूल ध्वनियों का समूह है जो कर्णप्रिय होने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। न तो यह भावनाओं को उन्नत करता है और न ही शक्ति प्रदान करता है। साथ ही मनुष्य के नैतिक स्वभाव को भी अछूता छोड़ देता है। इसमें न तो नैतिक और न बौद्धिक प्रभाव ही है। सङ्गीत पर एक यह भी आरोप लगाया जाता है कि यह अच्छाई और बुराई दोनों का ही माध्यम हो सकता है। परन्तु इस अंतिम

आरोप में कुछ विशेष बल नहीं है। कारण, यह संसार की किसी भी बात के विरुद्ध कहा जा सकता है। यदि सङ्गीत का उपयोग तुच्छ कार्यों में होता है तो यह सङ्गीत का दोष न होकर उसे तुच्छ कार्यों में उपयोग करने वाले व्यक्ति का है। जहाँ तक अन्य लाँछनों की बात है कि सङ्गीत में विकसित एवं उन्नत करने इत्यादि की शक्ति नहीं है, ऐसे राष्ट्रों का इतिहास और उनकी विशेषताओं का अध्ययन करना चाहिये जहाँ आजकल की शिक्षा के अन्तर्गत संगीत को उच्च स्थान प्राप्त है और उनके समाज की धारणाओं द्वारा उन परिणामों के सम्बन्ध में सहमत हुआ जा सकता है। इस विषय पर प्रसिद्ध लेखकों ने अपने विचार मुक्त कंठ से व्यक्त किये हैं और उनमें से कुछ मैं यहाँ उद्धृत करता हूँ। वे कहते हैं :—

"सङ्गीत को उचित रीति से साधने पर इसका सुन्दर परिणाम मन और शरीर दोनों पर ही होता है। यह स्वास्थ्यवर्द्धक है, मनोरंजन का साधन है, चिन्ता एवं परिश्रम और मानसिक थकान से मृतप्राय स्नायुओं को पुनर्जीवित करता है। सङ्गीत थके हुए मस्तिष्क पर मनोरंजन एवं चेतना प्रदान करने वाला लाभकारी परिणाम उत्पन्न करता है, जो परिणामकारक होते हुए भी किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाता।

"सङ्गीत की उच्च शिक्षात्मक उपयोगिता भी है। यह मस्तिष्क को उन्नत करता है और सौन्दर्य, ज्ञान एवं कलात्मक रुचि को जाग्रत एवं पोषित करता है जो सब में छिपी हुई होते हुए भी कुछ में ही दिखायी देती है। यह व्यवहार को परिष्कृत और भावुक स्वभाव को गहराई एवं कुलीनता प्रदान करके सुशोभित करता है।" एक और लेखक कहते हैं—"स्वर और लय आत्मा को रहस्यपूर्ण गहराई तक पहुँचाते हैं और देवत्व को छोड़कर ऐसा कोई विज्ञान नहीं है जो मनुष्यों को नम्र, सज्जन, व्यवहार कुशल और तर्क-पूर्ण बनावे। सङ्गीत बालकों के बनाने के लिये एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है। यह हठवादिता एवं मनुष्य के विचार, व्यवहार की रुक्षता और अनौचित्य को दूर करता है। यह चरित्र में दृढ़ता, संयम और अनुरूपता की वृद्धि कर आनन्द की ओर अग्रसर करता है।" यह कुछ योरोपीय लेखकों के मत हैं। परन्तु यह सङ्गीत के विषय में हैं और इसलिये मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सङ्गीत पर लागू होते हैं। अनेक प्राचीन लेखकों ने भी सङ्गीत के प्रभाव की पूर्ण रूप से प्रशंसा की है। एक अति प्राचीन पुस्तक में इस प्रकार प्राप्त होता है :—

गीतेन प्रीयते देवः सर्वज्ञः पार्वतीपतिः।
गोपीपतिरनन्तोऽपि वंशध्वनिवशं गतः॥
सामगीति-रतो ब्रह्मा वीणा-सक्ता सरस्वती।
किमन्ये यक्ष-गंधर्व-देव-दानव-मानवाः॥

एक शिशु, मृग या सर्प किस प्रकार सङ्गीत के परिणाम का अनुभव करता है, यह बतलाते हुए लेखक कहता है :—

तस्य गीतस्य माहात्म्यं के प्रशंसितुमीयते ।
धर्मार्थकाममोक्षाणामिदमेकैव साधनम् ।।

विद्वान् लेखकों के इन मतों से शंकित व्यक्तियों का समाधान और सङ्गीत की इस अमूल्य कला के विरुद्ध लगाये गये निराधार आरोपों का खंडन भी हो जाना चाहिये। जबकि हमारे पास स्थापत्य, मूर्ति, चित्रकला एवं काव्य पर अनेक तकनीकी एवं सौन्दर्य-शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ हैं जो जनता को उपलब्ध हैं, सङ्गीत को अभी भी अपना स्थान प्राप्त करने के लिये संघर्ष करना है। "वास्तव में सङ्गीत कोई संकुचित कला नहीं है। यह कलाओं के बड़े विभाग की एक आवश्यक कड़ी है। अन्य कलाओं की भाँति इसकी उत्पत्ति के स्थान के विषय में देखना पड़ेगा। इसके आदर्श कार्य भी समान ही हैं।" ऐसे भी कुछ व्यक्ति हैं जो सङ्गीत को अन्य कलाओं से ऊँचा स्थान देते हैं। प्रोफेसर ब्लेसरना कहते हैं—"ललित कलाओं में संगीत सबसे कम भौतिक है। अन्य कलाओं की भाँति इसमें प्रकृति के अनुकरण करने का प्रश्न नहीं उठता। यद्यपि सङ्गीत की ध्वनियों में प्रकृति है, परन्तु इनमें सांगीतिक अन्तरालों या सरल अनुपातों का सिद्धांत—जिनके बिना संगीत सम्भव नहीं है—समझा नहीं जा सकता। देवियों और सज्जनों! इन विद्वान् लेखकों के मतों को आपके सामने रखने का मेरा उद्देश्य आपको इतना ही दिखाना है कि अब वह समय आ गया है जबकि संगीत कला के महान् कारण के विषय में तटस्थ या उदासीन नहीं रहना चाहिये। हमने इसकी बहुत समय तक उपेक्षा की ही है। संगीत राष्ट्र की संस्कृति का एक अंग है। और इस कारण इसे ऊँचा उठा कर सामाजिक क्षेत्र में उचित स्थान प्रदान करने के लिए हमें आवश्यक कदम उठाने के लिये अग्रसर होना चाहिये।

इन प्रारम्भिक संकेतों के साथ मैं आज के भाषण के सही विषय 'आधुनिक हिन्दुस्तानी राग-पद्धति और उसके अध्ययन करने की सरलतम विधि' की ओर लौटता हूँ। मैं आधुनिक हिन्दुस्तानी पद्धति यह वाक्य जानबूझ कर प्रयोग कर रहा हूँ। कारण, जैसा कि पूर्णतः विदित है, आज की प्रचलित पद्धति उन पद्धतियों के अनुसार नहीं है, जिन्हें अपने पूर्वजों ने समय-समय पर अपने समय के सङ्गीत के अनुकूल निर्मित किया और जिनका सविस्तार निरूपण उन्होंने विद्यमान ग्रंथों में किया है। प्रत्येक कला प्रगतिशील होती है और ऐसा ही सङ्गीत भी है। विभिन्न युगों की रुचि, उनके मनोविज्ञान और स्वभाव एवं राष्ट्र के चरित्र पर समय की गति के साथ अमिट छाप छोड़ने वाले विभिन्न प्रभावों के अनुसार अपने सङ्गीत में समय-समय पर परिवर्तन हुए हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि पं० शारंगदेव के सङ्गीत-रत्नाकर में निरूपित राग-पद्धति अधिक विशद्, अधिक वैज्ञानिक एवं महानतम राष्ट्रीय संस्कृति को अभिव्यक्त करने वाली होने के कारण भरत-नाट्य-शास्त्र से पर्याप्त आगे बढ़ी है। ऐसा कहा जाता है कि भरत ने अपना ग्रन्थ चौथी या पाँचवीं शताब्दी ईसवी में लिखा। हम जानते हैं कि सङ्गीत रत्नाकर १३वीं शताब्दी के मध्य के लगभग लिखा गया। १६वीं, १७वीं और १८वीं शताब्दी के प्रसिद्ध लेखक लोचन, पुण्डरीक, हृदयनारायण अहोबल और श्रीनिवास के ग्रन्थों पर दृष्टिपात करने से ही हमें दिखाई पड़ेगा कि इन ग्रन्थों में प्रतिपादित सङ्गीत पद्धतियाँ और भी विकसित हुई हैं।

और वे नाट्य शास्त्र और रत्नाकर की पद्धतियों से पर्याप्त भिन्न हैं। हम स्वयं २०वीं शताब्दी में हैं और आजकल की प्रचलित सङ्गीत पद्धतियों ने अन्य पद्धतियों को बहुत पीछे छोड़ दिया है।

फिर भी यहाँ एक बहुत आवश्यक परिस्थिति ध्यान में रखनी चाहिये कि यद्यपि प्रचलित सङ्गीत पद्धति ऊपर बताये शास्त्रीय ग्रन्थों की अपेक्षा पर्याप्त विकसित हुई है। परन्तु इसके मूलभूत सिद्धान्त वही हैं जो प्राचीन पद्धतियों के थे। वास्तव में यह सिद्धांत भारतीय पद्धतियों को भारतीय चरित्र प्रदान करता है। अब अन्य शब्दों में यही सिद्धान्त या विशेषताएँ भारतीय को अन्य पद्धतियों से पृथक करती हैं। मूलभूत सिद्धान्तों को रखने से प्राचीन और अर्वाचीन में एक प्रकार की अविच्छिन्नता भी बनी रहती है। जब कभी सङ्गीत में परिस्थितियाँ बदल जाने के कारण परिवर्तन हुए, विद्वान् शास्त्रकारों ने नये तत्वों की उपेक्षा या विरोध करने के स्थान पर उनका ध्यान रखा और सङ्गीत में उन्हें सम्मिलित किया तथा नये नियम एवं परिभाषाएँ बना कर नये रागों या अभिव्यक्ति के नये ढंगों को विषय के ग्रन्थों में उचित स्थान दिया। मुस्लिम काल के प्रसिद्ध सङ्गीतज्ञों ने प्राचीन शास्त्रकारों की सङ्गीत-पद्धति में अनेक परिवर्तन किये। चूंकि उन्होंने यह देखा कि वह परिवर्तन स्थायी हो चुके थे एवं उनको छोड़ना या उनका तिरस्कार करना उचित नहीं था। ऐसा करने में उन्होंने अपने योग्य पूर्वजों द्वारा निर्धारित समय से मान्य सिद्धांतों का ही अनुसरण किया। रत्नाकर के दूसरे अध्याय में पंडित शारंगदेव कहते हैं :—

'यद्वा लक्ष्य-प्रधानानि शास्त्राण्येतानि मन्वते।
तस्माल्लक्ष्य-विरुद्धं यच्छास्त्रं नेयं तदन्यथा ॥'
—वाद्याध्यायः

अर्थ—इस प्रकार के विज्ञानों में प्रचलित ढंगों का सदैव आदर किया जाना चाहिये। अतः यदि दोनों में भेद उत्पन्न हो तो उचित मार्ग यह है कि शास्त्र को इस प्रकार प्रतिपादित किया जाय कि वह प्रचलन से सन्धि कर सके।

निस्सन्देह यह एक अत्यन्त उचित नियम था। इस प्रकार के विधान के अभाव में कला किसी प्रकार उन्नति नहीं कर सकती। कल्लिनाथ ने—जिन्होंने ने दो शताब्दी उपरान्त इस महान् ग्रन्थ की टीका लिखी—ऊपर के श्लोक में प्रतिपादित सिद्धान्त इस प्रकार समझाया है :—

एतानि शास्त्राणि देशीविषयाणीत्यर्थः। लक्ष्यप्रधानानि लक्ष्यमेव प्रधानं येषां तानि। मन्वते आचार्याः। तस्माल्लक्ष्यविरुद्धं यच्छास्त्रं (बंगालरागादेर्मध्यमग्रहत्वाद्यभिधायकं) तच्छास्त्रं नेयमन्यथा। यथा लक्ष्यविरोधि न भवति तथा व्याख्येयमिति।

'येषां श्रुति-स्वर-जात्यादि नियमो न हि।
नाना-देश-गतिच्छाया देशी रागास्तु ते स्मृताः ॥'

वे इसके बाद, राग बंगाल के परंपरागत 'ग्रह-स्वर मध्यम' को आधुनिक सङ्गीतज्ञों के देशी बंगाल के 'पंचम' में परिवर्तित करने का आकर्षक उदाहरण देते हैं। हमें इस

स्थान पर उनके लम्बे तर्क को समझने की आवश्यकता नहीं है। सब चर्चा का सार यह है कि शास्त्र को प्रचार के साथ हाथ में हाथ मिलाकर रहने के लिये तैयार रहना चाहिये, और यदि यह लगता है कि प्रचार ने समाज पर दृढ़ अधिकार जमा लिया है और उसे किसी प्रकार परिवर्तित नहीं किया जा सकता तो ऐसी परिस्थिति में सबसे उत्तम उपाय प्राचीन शास्त्रकारों के मन्तव्यों का यथासंभव अनुसरण करते हुए नई शास्त्र रचना करना है। यह सिद्धान्त कल्लिनाथ के अनुयायी लेखकों ने अपनाया था। यह बात उनकी पुस्तकों को देखने से मालूम हो जायगी। सद्रागचंद्रोदय, नर्तन-निर्णय, रागमाला और राग-मंजरी के लेखक महान् सम्राट् अकबर के समकालीन पं० पुण्डरीक विट्ठल भी इसी सिद्धान्त पर चले हैं। वे कहते हैं :—

लक्ष्यप्रधानं खलु शास्त्रमेतत् निःशंकदेवोऽपि तदेव वष्टि।
यल्लक्ष्म लक्ष्यप्रतिबंधकं स्यात्, तदन्यथा नेयमिति ब्रवाणः॥

—सद्रागचंद्रोदय

इस लेखक के समय, अनेक प्रवर्तन हुए थे और इसे अपने आश्रयदाताओं द्वारा उन्हें संगीतशास्त्र में सम्मिलित करने का आदेश हुआ था। लेखक कहते हैं :—

संत्यस्मिन् बहुधा विरोधगतयो लक्ष्ये न लक्ष्मोदिते,
जानंतीह सुलक्ष्म-पक्षविगतिं केचित् परे लौकिकीम्।
तत्कुर्वन्तु सुलक्ष्म-लक्ष्य-सहितं रागप्रकाशं बुधाः,
इत्युक्ते बुरहानखान-नृपतौ विद्वत्सभामंडले।

जब उन्होंने चन्द्रोदय लिखा तब वह बुरहानखाँ की नौकरी में थे, ऐसा ऊपर के उदाहरण से प्रतीत होता है। जब उन्होंने नर्तन-निर्णय और रागमाला लिखी, वे अकबर के दो जागीरदार मानसिंह और माधवसिंह की नौकरी में थे। उनका कार्य अवश्य ही बहुत कठिन रहा होगा। उस समय के प्रचार के अनुरूप उनको लगभग नया शास्त्र ही लिखना पड़ा। अनेक पूर्णतः नये राग प्रचलित हो गये थे और उन्हें अपने लिखे जा रहे ग्रन्थ में स्थान देना था। अपनी रागमंजरी में वे कहते हैं :—

अन्येऽपि पारसीकेया रागाः परद-नामकाः।
संपूर्णाः सर्वगमकाः काकल्यंतरिताः सदा॥
रहायी देवगांधारे, कानरे च निशावरः।
सारंगे माहुरो नाम, जंगूलाऽथ बंगालके॥
देश्यामहंगको नाम, बारा मल्लार-नामके।
केदारेऽपि भवेत् सूहा, धनास्यां च इरायिका॥
जिजावंत्यां च हौसेनी, मालवे मुसलीककः॥
कल्याणे इमनो गायेत् सर्पर्दाऽथ बिलावले॥
देशिकारे बाखरेजः आसावर्यां हिजेजकः॥
देवगिर्यां मूशकाख्य एवमन्येऽपि योजयेत्॥

यह ध्यान देने योग्य बात है कि इस महान् लेखक ने न केवल पर्शियन रागों के नाम ही गिनाये हैं वरन् उनकी तुलना भारतीय अनुरूपों से भी की है, जिससे कि उनके पाठकों को उनके गाने के सम्बन्ध में भी कुछ कल्पना हो सके। ऐसी धारणा है कि इन पर्शियन रागों को भारतवर्ष में लानेवाले अलाउद्दीन बादशाह के समय के महाकवि सरदार हज़रत अमीर खुसरू थे। अन्य रागों में अपने विभिन्न प्रकार के कान्हड़े, सारंग, टोड़ी, मल्हार और बिलावल मुस्लिम प्रभाव के प्राचीन राग प्रकारों के ही रूपान्तर हैं। इस प्रकार के रूपान्तर जो पुण्डरीक के समय तक प्रचलित हो चुके थे, उनके ग्रन्थों में सम्मिलित कर लिये गये थे। राग-विबोध के लेखक पं० सोमनाथ ने भी विदेशी रागों के बारे में इस प्रकार लिखा है :—

"इयं तुरुष्कतोडी इराखपर्यायतया कर्णाटगौडस्य समच्छायत्वेन परदा इति लोके। तथा च कैश्चित्तत्तद्राग-समच्छायाः परदाख्या द्वादश रागा उच्यंते। तोड्याः समृद्धया हुसेनी। भैरवस्य, जुलुफः रामक्रियायाः मूंसली। आसावर्या उज्जवलः विहंगडस्य नवरोजः। देशकारस्य बाखरेजः। सैंधव्या हिजेजः। कल्याणयमनस्य पञ्चग्रहः। देवक्रयाः पुष्कः। वेलावल्याः सरपर्दः। कर्णाटस्य इराखः। अन्योपरागाणां सुगा दुगा इति।"

पं० भावभट्ट अपने अनूप-संगीत-रत्नाकर, अनूपांकुश और अनूप-विलास में अन्य रागों के बारे में भी लिखते हैं जो उपराग कहलाते हैं। वे विभिन्न कान्हड़ा प्रकारों के बारे में इस प्रकार लिखते हैं :—

"जो दरबारी सो सुद्ध कहावे, मलार मिलाय के नायकि जानौ।
बागेसरी धनासिरि के मिले मेघ मिले अडानोहि जानौ।।
होत सहानो मिले फरोदस्त के, पूरिया जैतसिरी सुर जानौ।
मंगल अष्टक सोहि कहावत भाव कहे षटभेदहि जानौ।।
मुद्रिक गारा हुसेनि ओ काफि मिले बिधि भेद बखानत हैजू।
सोरटि और खंबावति सो मिले द्वादश भेद यों मानत हैजू।।
गौर कर्णाटि भेद द्वै या मुनि भेद न पावत हैजू।
मूरछना ग्रह अंस ओ न्यासनि मेल मिलोपिनि जानत हैजू।।

भैरव भेदाः

औडवः षाडवश्चैव संपूर्णश्च त्रिधा मतः।
बसंताद्यभैरवः स्यादानंदभैरवस्ततः।।
नंदभैरव-संज्ञस्तु गांधारभैरवस्ततः। स्वर्णाकर्षण-पूर्वस्तु तथा
पंचमभैरवः।। नवधा भैरवः प्रोक्तः श्रीजनार्दनसूनुना।।"

इसके बाद यह पंडित नौ प्रकारों की गुर्जरी, सात प्रकारों के गौड़ इत्यादि के बारे में लिखते हैं। भावभट्ट शाहजहाँ के प्रसिद्ध दरबारी गायक जनार्दन भट्ट के लड़के थे। भावभट्ट राजा अनूपसिंह (१६७४-१७०९) के यहाँ नौकर थे। हम सब जानते हैं कि हमारे सङ्गीतज्ञ १८ प्रकार के कान्हड़े, १२ प्रकार के मल्हार, १२ प्रकार के तोड़ी, ८ प्रकार के सारंग और १२ प्रकार के बिलावल के बारे में कहते हैं। यह सब उपरागों के वर्ग में आते हैं।

यहाँ मेरी इच्छा यह बताने की है कि यद्यपि मुगलकाल के सङ्गीतज्ञों ने अनेक प्रकार के रागों का समावेश किया, हमको यह नहीं सोचना चाहिये कि इससे संगीत का आकर्षण क्षीण हुआ। मैं उन व्यक्तियों में से हूँ जो यह मानते हैं कि हमारे संगीत को इस संपर्क से पर्याप्त लाभ हुआ। गाने का मिश्रित ढंग सचमुच बहुत रोचक था। आप सबने बैजू, गोपाल, बाबा हरिदास, रामदास, लालखाँ, तानसेन एवं अन्यों के नाम सुने ही होंगे। किस व्यक्ति में ऐसा साहस है जो यह सुझाव दे कि इन संगीतज्ञों ने वृद्धि नहीं की ?

इस प्रकार अपना आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत ही अपना प्राचीन संगीत है। चूँकि यह विदेशियों से शताब्दियों के संपर्क से एवं विदेशी राग प्रकारों के ग्रहण किये हुए अभिव्यक्ति के विदेशी ढंगों से रूपान्तरित हुआ है। अपने संगीत के प्रबन्ध में एक और विशेष परिवर्तन है। आप में से जिन्होंने संगीत रत्नाकर का अध्ययन किया है वे यह जानते हैं कि शारंगदेव के समय राग, एक अत्यन्त उलझी ग्राम-मूर्छना और जाति पद्धति से निकाले जाते थे। बाद में यह पद्धति संगीत में हुये परिवर्तनों के लिये एकदम अनुपयुक्त लगी, अतः इस सरलतम ढंग को स्थान देना पड़ा। तब, पुत्र और भार्या पद्धति से वर्गीकरण हुआ, जिसे कालान्तर में थाट या आधुनिक मेल में रागों के चतुर एवं वैज्ञानिक वर्गीकरण ने हटाया। थाट शब्द का अनुवाद जनक-मेल या राग वर्ग की तरह-किया जा सकता है। रागों का उत्पादक होने के कारण थाटों को जनक सप्तक कहा जा सकता है। इस ढंग से विभिन्न रागों का वर्गीकरण एक निश्चित संख्या के रागवर्गों या थाटों में किया जाता है और थाटों की संख्या तथा उनका स्वरूप भिन्न लेखकों के अनुसार भिन्न हो सकता है। वर्गीकरण की पद्धति अभी भी प्रचार में है और इसलिए हिन्दुस्तानी संगीत के अध्ययन में प्रचलित सभी रागों का ज्ञान और उनका विभिन्न रागवर्गों में विभाजन निश्चित होता है। इसमें तालों का ज्ञान भी सम्मिलित है। यहाँ पर संगीत की पुस्तकों में वर्णित राग और थाट का अर्थ थोड़े में बता देना अनुपयुक्त न होगा। राग शब्द की परिभाषा अनेक प्रकारों से हुई है। कुछ इसका अनुवाद 'ट्यून', दूसरे एक 'एयर' और अन्य 'मेलोडी' की तरह करते हैं। इन सभी परिभाषाओं से भारतीय शब्द 'राग' की सही कल्पना नहीं होगी। राग की परिभाषा संस्कृत लेखक इस प्रकार करते हैं :—

"योऽयं ध्वनि-विशेषः स्यात्स्वर-वर्ण-विभूषितः।
रंजको जन-चित्तानाम् स रागः कथ्यते बुधैः।"

अर्थ—"राग ध्वनियों के (जिन्हें स्वर कहा जाता है) विशेष (निश्चित) समुदाय को कहते हैं और जिसमें वर्ण एवं श्रोताओं के मन को प्रसन्न करने की क्षमता होती है।" सङ्गीत के भारतीय विद्यार्थी को इस परिभाषा से कोई कठिनाई उत्पन्न नहीं होती। भारतीय संगीतज्ञ १५० रागों से अधिक कभी नहीं गाते। बहुत प्रचलित राग लगभग ५० ही हैं। शेष १०० में से बहुत से उपराग या उपांग राग (प्रकार) के वर्ग में आते हैं। इस प्रकार उदाहरणार्थ कान्हड़ा राग के १८ प्रकार, मल्हार के १३, तोड़ी के १३,

सारंग के ८, बिलावल के १२ इत्यादि हैं। संस्कृत ग्रन्थों में १०० से अधिक तालों के नाम हैं । हिन्दुस्तानी-संगीत-पद्धति के अध्ययन करने का सबसे अच्छा ढंग पहले अति प्रचलित ५० रागों का अध्ययन करना है । ऊपर बताये हुए प्रकार बाद में आवेंगे ।

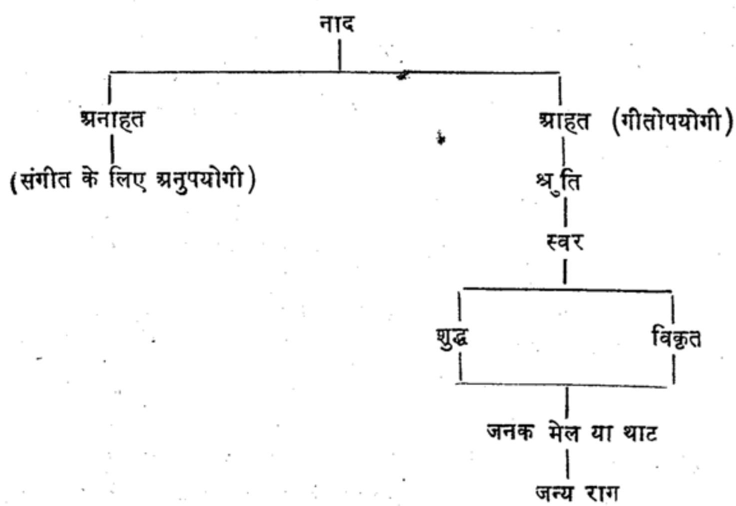
भारतीय संगीत के शास्त्र के अनुसार राग सदैव थाट (राग प्रकार) से उत्पन्न होता है । थाट प्रारम्भिक स्वर 'सा' से प्रारम्भ कर क्रमवार सात स्वरों की पंक्ति से अधिक कुछ भी नहीं है । स्वरों की स्थापना २२ संगीत ध्वनियों की पंक्ति पर—जिन्हें श्रुतियाँ कहा जाता है-—होती है । 'सा' 'म' 'प' स्वरों की प्रत्येक की ४ श्रुतियाँ, 'रे' 'ध' 'ध' की प्रत्येक की ३ और 'ग' 'व' 'नी' की प्रत्येक की २ श्रुतियाँ होती हैं ।

"चतुश्चतुश्चतुश्चैव षडज-मध्यम-पंचमाः ।
द्वे द्वे निषाद-गांधारौ त्रिस्त्री ऋषभ-धैवतौ ।"

श्रुति शब्द 'श्रु' धातु (सुनना) से उत्पन्न होता है । जिसका अर्थ है—"कान से स्पष्ट सुनी जा सकने वाली कोई ध्वनि ।" फिर भी भारतीय संगीतज्ञ इस शब्द का इतना व्यापक अर्थ नहीं लगाते । वे इस शब्द का अर्थ सीमित कर कहते हैं :—

नित्यं गीतोपयोगित्वमभिज्ञेयत्वमप्युत ।
लक्ष्ये प्रोक्तं सुपर्याप्तं संगीत-श्रुति-लक्षणम् ।।

हम यह सहज ही समझ सकते हैं कि श्रुति शब्द के अर्थ सीमित करने का ध्येय है—(१) उस ध्वनि से जो संगीत के लिए उपयोगी हो और (२) वह ध्वनि जो कान से स्पष्ट रूप से पहचानी जा सके । यह साधारणतः मान्य है कि उत्तरोत्तर उच्च २२ ध्वनियों की पंक्ति को गाना कठिन होता है । सम्पूर्ण व्यवस्था इस प्रकार प्रतीत होगी :—



व्यवहार के लिये, थाटों की उत्पत्ति करने वाले रागों की रचना के लिए १२ स्वर ही माने गये हैं। स्वर दो प्रकार के होते हैं—शुद्ध या प्राकृत और विकृत। शुद्ध स्वर सात होते हैं और वे इस प्रकार गाये जा सकते हैं (उदाहरण)। विकृत स्वर ५ होते हैं (उदाहरण)। प्राचीन ग्रन्थकारों ने थाट की परिभाषा इस प्रकार की है :—

"मेलः स्वरसमूहः स्याद्रागव्यंजन-शक्तिमान्।"

अनुवाद—थाट स्वरों का वह समूह है जो रागों की उत्पत्ति कर सके। थाट और राग की संस्कृत परिभाषाओं को बता देने के बाद मैं उनके आवश्यक लक्षणों के बारे में बताऊँगा। चूँकि राग की उत्पत्ति थाट से होती है, अतः पहले थाट के लिये आवश्यक लक्षणों को बताना आवश्यक है।

(१) थाट में सप्तक के सात स्वर अवश्य होने चाहिये।
(२) यह स्वर क्रमानुसार होने चाहिये।
(३) थाट में एक ही स्वर के दो प्रकार एक के बाद दूसरा, आ सकते हैं।
(४) थाट श्रोताओं को रंजकता प्रदान करनेवाला होना आवश्यक नहीं है।

मैंने यह बताया ही है कि सात शुद्ध और पाँच विकृत ऐसे १२ स्वर होते हैं, इनसे थाट निकाले जाते हैं। भारतीय संगीतज्ञों के अनुसार सम्भव ७२ थाट होते हैं, जिनमें ऊपर लिखे चारों लक्षण मिलते हैं। अपनी चतुर्दण्डि-प्रकाशिका में पंडित व्यंकट-मुखी कहते हैं :—

यदि कश्चिन्नदुर्नीतो मेलेभ्यस्तद्विसप्ततेः।
न्यूनं वाप्यधिक वापि प्रसिद्धं द्वादशस्वरैः॥
कल्पयेन्मेलनं तर्हि ममायासो वृथा भवेत्।
नहि तत्कल्पने भाललोचनोऽपि प्रगल्भते॥
तत्स्याद्यथैकपंचाशद्वर्णाः स्युमातृकाभिधाः।
न हीयंते न वर्धंते तथा मेला द्विसप्ततिः॥

यह आपत्ति की जा सकती है कि ये पंडित उत्तर के न होकर दक्षिणी-पद्धति के शास्त्रकार थे। परन्तु इस आपत्ति का उत्तर सहज ही दिया जा सकता है। यह सच है कि देश में दो भिन्न संगीत प्रणालियाँ—दक्षिणी (कर्नाटकी) और उत्तरी (हिन्दुस्तानी) हैं। यह भी सच है कि दोनों पद्धतियों के राग नाम और गायन शैली एक दूसरे से भिन्न हैं। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि मूल-सिद्धान्त, जैसे राग और थाट निर्माण करने की विधि दोनों पद्धतियों की समान नहीं है। अतः गणित पर आधारित व्यंकटमुखी की प्रस्तावना दोनों पद्धतियों पर समान रूप से लागू होगी। यद्यपि सप्तक के १२ स्वरों से ७२ थाट या मेल प्राप्त किये जा सकते हैं, पर इससे यह नहीं समझना चाहिये कि साधारण व्यवहार में वह सचमुच प्रयोग में आते हैं। हिन्दुस्तानी रागों को सरलता से वर्गीकृत करने के लिये थाटों की संख्या १० है। कम से कम मैंने अपने हिन्दुस्तानी राग पद्धति के ग्रन्थों में १० थाटों का ही उपयोग किया है। यह दस थाट इस प्रकार हैं :—

आदिमः सर्व-मेलानां वेलावली सुमेलकः ।
मेलः कल्याण-रागस्य, खंमाजस्य ततः परम् ।।
ततो भैरव-मेलः स्यात् पौरवी-मेलकस्ततः ।
मारवाख्यो भवेन्मेलः काफी-मेलस्ततः परम् ।।
आसावरी सुमेलः स्यादष्टमो लक्ष्यविन्मते ।
नवमो भैरवी ख्यातो दशमस्तोडिकाह्वयः ।।

(१) राग किसी थाट या जनक मेल से सम्बन्धित होना चाहिये ।

(२) इसमें कम से कम पाँच स्वर उस सप्तक के होने चाहिये जिससे यह उत्पन्न हुआ है ।

(३) इसमें निश्चित आरोह और अवरोह होना चाहिये ।

(४) यह श्रोताओं को आनन्द-दायक होना चाहिये ।

(५) इसमें एक ही स्वर के दो रूप जैसे कोमल 'रे' और शुद्ध 'रे' और कोमल 'ग' और शुद्ध 'ग' एक के बाद दूसरा, साधारण नियम के अनुसार नहीं आना चाहिये ।

(६) इसका एक निश्चित वादी स्वर होना चाहिये ।

(७) इसमें 'म' और 'प' स्वर एक साथ नहीं छोड़ने चाहिये ।

यह सभी लक्षण आवश्यक समझने चाहिये और इनका कड़ाई से पालन होना चाहिये । राग अपनी रचना में प्रयुक्त स्वरों के अनुसार औडव, षाडव और सम्पूर्ण होते हैं । इस प्रकार औडव राग में पाँच स्वर होते हैं, जैसे भूपाली, मारवा, हिन्डोल, मालकौंस । षाडव राग में ६ स्वर ही होते हैं, जैसे ललित, पूरिया । सम्पूर्ण राग में सात स्वर होते हैं, जैसे यमन, काफी, झिंझौटी । पाँच स्वरों से कम का कोई राग नहीं होता ।

यह सरलता से देखा जायगा कि रागों की यह तीन जातियाँ राग उत्पन्न करने वाले थाटों में वर्जित स्वरों के छोड़ने से प्राप्त की जा सकती हैं । यह ठीक ही कहा गया है कि :—

सप्तस्वर-समूहात्मा मेलः संपूर्ण ईरितः ।
षाडवौडुवभिद्द्वारा सोऽपिरागत्वमर्हयेत् ।।
शुद्ध-विकृत-स्वरैः स्युलोके मेला द्विसप्ततिः ।
प्रसिद्धाः पुनरेतेषु मेलाः कतिचिदेवहि ।।
मेलः सप्त-स्वरः पूर्ण षट्स्वरः षाडवो मतः ।
पंचस्वरैरोडुवः स्यादेवं मेलःस्त्रिधा मतः ।।
मेलानुसारतो लक्ष्ये रागे त्रैविध्यमीरितम् ।

जहाँ तक ऊपर बताए तीसरे लक्षण का सम्बन्ध है राग में आवश्यक रूप से आरोह

और अवरोह होता है। इनमें से प्रत्येक में औड व, षाडव या सम्पूर्ण जाति हो सकती है। इस प्रकार रागों की ९ जातियाँ मान्य की गई हैं—(१) सम्पूर्ण-सम्पूर्ण, (२) सम्पूर्ण-षाडव, (३) सम्पूर्ण-औडव, (४) षाडव-सम्पूर्ण, (५) षाडव-षाडव, (६) षाडव-औडव, (७) औडव-सम्पूर्ण, (८) औडव-षाडव, (९) औडव-औडव। अब यह देखना रुचिकर होगा कि एक ही जन्यमेल के कितने राग इन प्रत्येक विभागों में रखे जा सकते हैं। निम्नलिखित दो या तीन श्लोकों में संख्या निश्चित करने की विधि बताई गई है :—

सम्पूर्णस्वर-मेलोत्थो राग एक उदाहृतः।
तत्रैकैक-स्वरत्यागात् षड्विधः षाडवो भवेत्॥
पंचाधिक-दशत्वं हि स्वरद्वय-वियोगतः।
आरोहे चावरोहेऽपि स्वरत्यागः सुसम्मतः॥

इन श्लोकों में समझाई गणना को यदि हम देखें तो हम प्राप्त करेंगे कि ७२ जनक सप्तकों मेलों या थाटों में से प्रत्येक ऊपर निर्दिष्ट ४८४ राग उत्पन्न कर सकता है और सभी, ७२ मेलों से ३४-८४८ राग प्राप्त होंगे। जैसा आप देखेंगे यह राग आरोह और अवरोह पर ही आधारित हैं। हिन्दुस्तानी संगीतज्ञों के जनक-मेलों में से राग उत्पन्न करने के कुछ अन्य तरीके भी हैं, जैसे :—

हिन्दुस्थानीय-पद्धत्यां मार्गाः स्युरपरास्तथा।
लक्ष्यविद्भिः समाद्रिष्टा रागोत्पादन-हेतवः।
आरोहणे चालिता ये स्वरा न स्युर्विलोमके॥
अथ वैतद्विपर्यासो जनयेद्राग-भेदकम्।
रागोचित-स्वरेष्वेव विशिष्टा वक्रता भवेत्।
समान-स्वरपंक्तौ वा वादि-भेदाद्भवेद्भिदा॥

इन श्लोको में वर्णित नियमों पर आधारित विभिन्न राग आसावरी, गांधारी, पीलू, खट, हमीर, बिलावल, सारंग, केदार, मल्हार, देशकार, भूपाली, भैरव, कालिंगड़ा इत्यादि गाकर संभवतः मैं यह और भी स्पष्ट कर सकूँगा।

राग के दूसरे आवश्यक लक्षणों की चर्चा करते समय मैंने तीसरे अर्थात् रागों के निश्चित आरोह और अवरोह के लक्षण के बारे में कहा ही है। दोनों के मिलने से राग बनता है। केवल आरोह या केवल अवरोह से राग नहीं बनेगा। जन्य-मेल से केवल आरोह-अवरोह के आधार पर ४८४ राग उत्पन्न हो सकने का मेरा अनार्ह कथन निःसन्देह शंका-पूर्ण मालूम होगा। इस कथन के बाद आपको मुझसे यह जानकर आश्चर्य होगा कि हमारे आधुनिक श्रेष्ठतम विशेषज्ञ भी दो सौ रागों से अधिक नहीं गा पायेंगे। उनमें बहुतांश १०० से अधिक भी कठिनाई से गायेंगे। प्रश्न उठेगा कि ऐसा क्यों ? इसका कारण यह है कि इनमें से बहुत से राग असांगीतिक होने के कारण छोड़ने पड़ेंगे। अपनी चौथी शर्त यह

है कि राग श्रोताओं को प्रसन्न करने वाले होने चाहिये। यह कहा गया है कि—'रंजयतीति रागः'। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि इस शर्त में विभिन्न श्रोताओं की रुचियों का ध्यान रखना पड़ेगा। परन्तु, फिर भी इस शर्त में बहुत से राग जो राग की परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं, हटाने पड़ेंगे। इसलिये यह कहा गया है :—

एकैकमेलतो रागा बहवः संभववंत्युत।
तेषामगाधरूपत्वात् संख्यां कर्तुं न शक्यते॥
तथापि रंजका नैव सर्व-लोके समंततः।
प्रसिद्धाः पुनरेतेषु रागाः कतिचिदेव हि॥
रंजनाद्रागता सिद्धा प्रसिद्धो नियमो भवेत्।
ततः संख्या सुरागाणां भवेन्मर्यादिता स्वयम्॥

अब हम राग द्वारा पूर्ण की जाने वाली बाकी शर्तों पर विचार करेंगे। क्रमांक ५ की शर्त इस प्रकार है। राग में एक स्वर के दो स्वरूप एक के बाद तुरन्त दूसरा नहीं आना चाहिये। इस शर्त में किसी बड़े लम्बे उत्तर की आवश्यकता नहीं है। मैंने यह कहा ही है कि, सप्तक के १ स्वरों की पंक्ति में से ५ स्वरों के विकृत स्वरूप भी होते हैं। यह स्वर रे, ग, म, ध, नी हैं। इनमें से रे, ग, ध, नी, कभी-कभी कोमल और 'म' तीव्र होता है। जिस शर्त की हम अभी चर्चा कर रहे हैं, उसमें यह कहा गया है कि एक स्वर के दोनों रूप एक के बाद दूसरा तुरन्त नहीं आना चाहिये। इस प्रकार दोनों 'र' तीव्र और कोमल, दोनों 'ग' कोमल और तीव्र इत्यादि एक के बाद दूसरा नहीं आ सकता। यह केवल शास्त्रीय नियम ही नहीं है।

बताई हुई रीति से इन वर्ज्य स्वरों को गाना एक कठिन कार्य होगा। यदि यह समुदाय सफलता पूर्वक गाया भी गया तो यह बहुत असांगीतिक मालूम होगा। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि इस नियम के कुछ अपवाद हैं (केदार, पूर्वी, ललित इत्यादि गाना), परन्तु अपवाद नियम को सिद्ध ही करता है।

अगली शर्त जो राग को पूरी करनी चाहिये वह यह है—राग में एक निश्चित वादी स्वर अवश्य होना चाहिये। यह सचमुच ही एक अत्यन्तावश्यक शर्त है। मैं यह कह सकता हूँ कि यह शर्त हिन्दुस्तानी-सङ्गीत पद्धति की एक अनोखी विशेषता है। किसी राग में वादी स्वर के दो कार्य होते हैं :—

स्वराश्चतुर्विधा ज्ञेया रागोत्पादन-गोचराः।
वादी संवाद्यनुवादी विवादी च चतुर्विधाः॥
वादी स्वरस्तु राजा स्यान्मंत्री संवादिसंज्ञितः।
स्वरो विवादी वैरी स्यादनुवादो न मृत्यवत्॥

अनुवाद—राग का निर्धारण करनेवाले चार प्रकार के स्वर होते हैं। वादी, सम्वादी, अनुवादी और विवादी। वादी स्वर राग का राजा या प्रमुख स्वर होता है।

सम्वादी राजा का मंत्री या वादी स्वर के बाद दूसरा महत्व का स्वर होता है। विवादी स्वर राग का शत्रु होता है। इससे विरोध उत्पन्न होता है। यहाँ पर प्रश्न उठेगा कि क्या वादी स्वर राग में प्रयुक्त भी होता है? यदि ऐसा है तो क्यों और कैसे? इस प्रश्न का उत्तर संस्कृत ग्रन्थकार यों देते हैं :—

प्रयोगो बहुधा यस्य स सस्याद्वादी नृपोपमः।
ययोर्मवेयुः श्रुतयो द्वादशाष्टाथवान्तरे॥
मिथः संवादिनौ तौस्तो राज्ञः सचिव-संनिभौ।
विवादी रक्ति-विच्छेदी शत्रु-तुल्यः स कीर्तितः॥
अनुवादी तटस्थोयः किंकरप्रतिमः स्वरः।
यो यद्रागे प्रधानः स्यात् स्वरोऽशः कीर्त्यते जने॥

मेरे पूछे हुए प्रश्न का उत्तर अब आता है :—

विवादी विपरीतत्वाद्वीरैरुक्तो रिपूपमः।
स्वरूप-मर्दनं तेन प्रयोगे स्याद्विवादिना॥
स्वरूप-मर्दनाभावे गीते रक्तिर्न लभ्यते।
शत्रूपमर्दने हि स्याद्राज्ञां लोके प्रकाशनम्।
सुप्रमाणयुतो रागे विवादी रक्ति-वर्धकः।
यथेषत्कृष्ण-वर्णेन शत्रुस्यातिविचित्रता॥
प्रतिरागं भगेद्वादी सर्व-रक्ति-प्रदायकः।
निर्णायिको राग-नाम्नः समयस्यापि सूचकः॥

वादी स्वर के दो कार्य होते हैं। जैसा कि ऊपर बताया गया है, यह राग के नाम और उसके गाने के समय को भी निश्चित करता है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है वादी स्वर का यह दुहरा कर्तव्य दक्षिणी या सचमुच देश की किसी अन्य संगीत पद्धति में पूर्णतः मान्य नहीं होता। इस स्वर के दुहरे कर्तव्य को और भलीभाँति समझाने के लिये मैं सोच रहा हूँ कि ऊपर चर्चा किये हुए समय-सिद्धान्त को संक्षेप में आपको समझाना होगा। पिछली कई शताब्दियों में संगीत में अनेकों परिवर्तन हुए हैं, परन्तु बताये हुए रागों के गाने का समय निश्चित करने का सिद्धान्त सदैव मान्य रहा है। मैं यह मानता हूँ कि रागों के निश्चित किये हुये प्राचीन समय अब नहीं अपनाये जाते, परन्तु किसी राग को निश्चित समय देने का सिद्धान्त अभी भी चल रहा है। गायक को, गाये जाने वाले रागों के समय जानना चाहिये। अपने प्राचीन ग्रन्थकार कहते हैं—यथा काले समारब्धं गीतं भवति रंजकम्। परन्तु वे एक छूट देते हैं—"दश दंडात्परं रात्रौ कालदोषो न विद्यते॥"

हिन्दुस्तानी संगीतज्ञों ने जिस तर्क पर अपने समय-सिद्धान्त को आधारित किया है, वह निम्न श्लोकों में थोड़े में इस प्रकार व्यक्त किया गया है :—

पूर्व-रागास्तथोत्तर-रागा जाताः संमततः।
सर्वेभ्य एव मेलेभ्य इति लक्ष्य-विदां मतम्॥

रागा उत्तर-पूर्वास्ते भवेयुः प्रति-मूर्तयः ।
स्व-स्व-पूर्वाद्य-रागाणामिति मर्म-विदो विदुः ।
रात्रि-गेयास्तथा दिन-गेया रागा व्यवस्थिताः ।
मध्यमेनानुरूपेण यतोऽसावध्वदर्शकः ।।
स्वर विकृत्यधीनाः स्युस्तयो वर्गा व्यवस्थिताः ।
रागाणामिह मर्मज्ञैरानि सौकर्म हेतवे ।।
रिगधतीव्रका रागा वर्गेऽग्रिमे व्यवस्थिताः ।
संधिप्रकाश-नामानः क्षिप्ता वर्गे द्वितीयके ।।
तृतीये निहिताः सर्वा गनिकोमलमंडिताः ।
व्यवस्थेयं समीचीना गान-काल-विनिर्णये ।।
प्रातगेयास्तथा सायंगेया रागाः समंततः ।
संधि-प्रकाश-वर्गःस्युरिति सर्वे संमतम् ।।
ततः परं समादिष्टं गानं लक्ष्यानुसारतः ।
रिगधतीव्रकाणां वै रागाणां भूरिरक्तिदम् ।।
गनि-कोमल-संपन्ना रागा गीता विशेषतः ।
मध्याह्ने च तथा मध्य-रात्रे संगीतविन्मते ।।

इन श्लोकों के तर्कों की पुष्टि के लिए संगीत-कल्पद्रुम का निम्नलिखित अंश उपयोगी होगा :—

प्रात समै में गाइए भैरव प्रथम सुराग ।
ललित भैरवी रामकली खटगुन करि अनुराग ।।
देशकार विभास पुनि भटियारी भंखार ।
बसंत बहार पंचम हिंदोली हिलार ।।
बेलावली अल्हायिका सरपरदा कुकूभ ।
देवगिरी शुक्ला शुभा प्रहर चढ़े दिन धूप ।।
लच्छाशाखभूशाख पुनि रामशाख देशाख ।
सुहा सुघरई सुही शुभा देव गंधारी भाख ।।
डेढ़ प्रहर दिन चढ़त ही टोड़ी गुर्जरी गान ।
देशी आसावरी जौनपुरी टोड़ि बरारी जान ।।
सारंग सुध बिंदाबनी बडहंसी सामंत ।
लंकदहन लुम लूहरी दो पहेर मेवन्त ।।
मेघ मलारी गौड पुनि गौडगिरी जलधार ।
नट मल्लारी सूर पुनि रामदासि मल्लार ।।
मुलतानी अरु धनासिरी भीमपलासी जान ।
बरवा धानी अहीरिका तृतिय पहर कर गान ।।

जंगला मंगल पीलु पुनि सिंधु तिलंगप्रदीप।
दीपक दीपकि काफि पुनि चौथे पहर भरतीप॥
जेतश्री श्री मालसिरी मालश्री गौराह।
गौडसारंग अरु मारवा पूर्वी अरु पूर्वाह॥
त्रिवेणी श्री गौरी बहुरी चेती टंकी मान।
चौथे प्रहर दिन अन्त में श्रीटंकीकर गान॥
प्रथम जाम रजनी समे कल्याणी सुध गान।
हेम खेम ऐमन पुनि श्याम हमीर हि जान॥
जेत भूपाली पूरिया कामोदी कर गान।
प्रहर रजनि जाते गुनी छायानाट बखान॥
डेढ़ प्रहर निसके समय नायकि बख्त प्रमान।
अष्टादश है कानरा कौशिक कानर जान॥
अडाना शहाना शोभना सोहन सोहनी मान।
केदारा मलुहा पुनि नाट केदार बखान॥
बिहंग बिहारी बिहागरा बिहांग पुनि विनोद।
भरन अरन संकीर्ण अरु शंकरा आमोद॥
सोरट देस सौराष्ट्रिका सिंदूरा सावेरी।
परज खंबावती सुखावती कालिंगरा आभेरी॥
भालकौंश और कौशिकी कुसुमकास कर्णाटि।
ललित कलिंग लिलावती अरुणोदय में बांटि॥
सोले-सहस्त्र और आठ सौ राग रागिनी जान।
वृन्दावन हरि रास में गोपिन किए हैं गान॥
देश देश के भेद में भिन्न भिन्न है नाम।
मारग ब्रह्मादिक कहे देशी दशहूं धाम॥

कल्पद्रुम लगभग तीन पीढ़ी पहले छपा था। इस बड़े अन्तराल में संगीत में अनेकों परिवर्तन हुए होंगे। परन्तु यहाँ आप पूछेंगे कि वादी स्वर के महत्व के बारे में क्या हुआ? आपका प्रश्न बिलकुल उचित है। इन लम्बे उद्धरणों से वादी स्वर के महत्व के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं होता। अब मैं आपको यह बताऊँगा कि किस प्रकार इन उद्धरणों की विषय सामग्री से वादी-स्वर का सम्बन्ध है। मेरे विचार से मैंने यह कहा ही है कि प्रथम श्रेणी के संगीत-विशेषज्ञ २०० रागों से अधिक नहीं गाते। बहुमत इस संख्या से कम को ही गाता है। इन रागों के मुख्य दो वर्ग किये गये हैं—(१) वह, जो पूर्व राग कहलाते हैं या जिनके गाने का समय दोपहर से मध्यरात्रि के बीच ठीक है और (२) उत्तर-राग या वह राग जिनके गाने का समय मध्यरात्रि से दोपहर के बीच ठीक है।

अब यह देखा जायगा कि प्रथम भाग (पूर्व-राग) में पड़नेवाले रागों में वादी स्वर निश्चय ही सा, रे, ग, म, इन स्वरों में से कोई एक होगा और दूसरा भाग (उत्तर-राग) में आनेवाले रागों में वादी स्वर म, प, ध, नी, सां इन स्वरों में से कोई एक होगा। इस उद्देश्य के लिए सम्पूर्ण सप्तक दो "अंग" यानी पूर्वांग और उत्तरांग से बना हुआ समझा जाता है। पूर्वांग का क्षेत्र 'सा' से 'प' तक है और उत्तरांग का 'म' से 'सां' तक। अन्य शब्दों में पूर्व रागों में वादी स्वर पूर्वांग में आयेगा और उत्तर रागों में वादी स्वर सदैव उत्तरांग में आवेगा। इससे आप देखेंगे कि वादी स्वर के सही स्थित करने से आप यह निश्चित कर सकेंगे कि कोई अमुक राग दोपहर और मध्यरात्रि के बीच में गाया जावेगा या मध्यरात्रि व दोपहर के बीच में। परन्तु यहाँ आप कहेंगे कि यह सूचना पर्याप्त नहीं है। यह पूछा जायगा कि पूर्वरागों के समय आपस में किस प्रकार निश्चित किये जा सकते हैं? इस प्रश्न के उत्तर के लिये मैं आपको संस्कृत उद्धरणों को पुनः देखने के लिये कहूँगा :—

रिगधतीव्रका रागा वर्गेऽग्रिमे व्यवस्थितः।
संधि-प्रकाशनामानः क्षिप्ता वर्गे द्वितीयके ॥
तृतीये निहिताः सर्वे गनिकोमल-मंडिताः।

सभी राग स्थूल रूप से (चाहे पूर्व हो या उत्तर राग) तीन मुख्य वर्गों में विभाजित किये गये हैं :—

(१) जिनमें 'रे' 'ग' और 'ध' तीव्र लगता है।
(२) जिनमें 'रे' कोमल और 'ग' और 'नी' तीव्र लिये जाते हैं।
(३) जिनमें 'ग' और 'नी' कोमल लिये जाते हैं।

दूसरे वर्ग में आनेवाले राग सायं ४ बजे से ७ बजे तक और प्रातः ४ बजे से ७ बजे तक गाये जाते हैं। पूर्व राग शाम को और उत्तर राग सुबह गाये जावेंगे। यह राग संधि-प्रकाश राग कहलाते हैं। पहले वर्ग में आने वाले राग अर्थात् वह राग जिनमें रे ग और ध तीव्र लिया जाता है, संध्या ७ बजे से मध्यरात्रि तक एवं सुबह ७ बजे से दोपहर तक गाये जाते हैं। तीसरे वर्ग में आनेवाले राग जिनमें ग ध नी कोमल लगता है, पहले और दूसरे वर्ग के रागों के बीच में आते हैं।

इस प्रकार आप देखेंगे कि वादी स्वर यह निश्चित करेगा कि कोई राग-पूर्व है या उत्तर-राग और मेरे द्वारा अभी हाल बताये हुये तीन वर्गों की सहायता से स्वरों का परीक्षण कर यह निश्चित होगा कि कोई राग दिन या रात्रि के किस प्रहर में गाने के लिये ठीक है। यहाँ एक और विषय भी है जो रागों के निर्धारण में सहायक होगा। बहुत से राग जिनके निर्माण में तीव्र म लिखा जाता है, सूर्यास्त और सूर्योदय के बीच के समय के लिये निश्चित किये जाते हैं। इसलिये मध्यम स्वर को 'अध्वदर्शक स्वर' या मार्गदर्शक स्वर की तरह देखा जाता है।

व्यंकटमुखी के निम्न श्लोकों में राग के चरित्र को परिवर्तित करने में मध्यम स्वर के महत्व के विषय में कहा गया है :—

कटाह-संभृतं क्षीरं केवलं दधि-बिंदुना ।
यथा संयोज्यमानं तु दधिभावं प्रपद्यते ।।
तथैव पूर्व-मेलास्ते मध्यमेनाभिसंज्ञिताः ।
केवलेनापि संयुक्ता भजंत्युत्तर-मेलताम् ।।

पूर्वी और भैरव एवं कल्याण और बिलावल इस विषय पर अच्छे उदाहरण हो सकते हैं ?

यहाँ पर मैं यह कह दूँ कि जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, अपनी हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति में ऊपर निर्दिष्ट शर्तों को पूर्ण करने वाले और जन्य-मेलों की तरह समझे जा सकने वाले स्वर-सप्तकों की परिभाषा की जाती है, विभिन्न थाटों या मेलों में अब गाये जानेवाले प्रचलित विभिन्न रागों का वर्गीकरण और बँटवारा किया जाता है, और इस प्रकार के वर्गीकरण के लिये संतोषप्रद सिद्धान्त बनाये जाते हैं, एक ही थाट में आनेवाले विभिन्न रागों की भिन्न करनेवाली विशेषताओं का सही निर्धारण होता है, दिन के समय का निर्धारण एवं निश्चय, प्रत्येक राग की पकड़ एवं अन्य विशेषताएँ जिससे कि विद्यार्थी को एक झलक ही नहीं अपितु संगीत क्षेत्र का एक पूरा नक्शा प्राप्त हो सके, निश्चय किया जाता है। मैंने स्वर, श्रुति, राग, थाट और वादी स्वर के गाने में प्रयोग के अनुसार रागों के दिन या रात्रि के समय निर्धारण के महत्वपूर्ण प्रश्न पर भी चर्चा की है। अतः मैं अब रागों के विभिन्न मेल या थाटों के वर्गीकरण के प्रश्न पर और एक ही अन्यमेल में आने-वाले विभिन्न रागों की भिन्न करनेवाली विशेषताओं पर भी आऊँगा।

सब राग जिन्हें हम आजकल गाते हैं, निम्न १० थाटों में बाँटे जा सकते हैं— यमन, बिलावल, खमाज, भैरव, पूर्वी, मारवा, काफी, आसावरी, भैरवी और तोड़ी। वर्गीकरण का सिद्धान्त ग्रहण करने में राग और उसके मेल की समानता का विचार होगा। इस प्रकार उदाहरणार्थ—हमीर, केदार, कामोद, श्याम इत्यादि राग और मिलते हुए राग जिनमें यमन थाट से निश्चित सम्बन्ध दिखाई पड़ता है, उस थाट में रखे जावेंगे। इसी प्रकार श्री, जैतश्री, टंकी, पूरियाधनाश्री, मालश्री, गौरी इत्यादि पूर्वी थाट में रखे जावेंगे; जबकि कालिंगड़ा, गुणश्री, जोगी, रामकली इत्यादि भैरव थाट में रखे जावेंगे। कल्पद्रुमांकुर के निम्नलिखित श्लोकों में सम्पूर्ण वर्गीकरण कुशलता एवं संक्षिप्त रूप से वर्णित हुआ है। एक ही मेल में आने वाले विभिन्न रागों का भेद प्रत्येक राग की सुस्पष्ट परिभाषा में उसकी आवश्यक बातें निश्चित कर स्पष्ट किया गया है। जैसे कि (१) राग औडव, षाडव, या सम्पूर्ण है, (२) उसके गाने का उपयुक्त समय क्या है, (३) उसमें कौन-से स्वर नहीं लगते और उस अवस्था में वह आरोह में या अवरोह में छोड़े गये हैं, (४) राग का वादी या प्रमुख स्वर और उसका सम्वादी क्या है, (५) राग के विस्तार में अनुवादी स्वरों का उपयोग किस प्रकार होना है, (६) राग की सुन्दरता पूर्वांग में है या उत्तरांग में अर्थात् ऊपरी अर्धसप्तक के मन्द्र में और फिर आरोह में या अवरोह में, (७) रागों के गाने में कौन-सी त्रुटियाँ नहीं करनी चाहिये,

(८) समप्रकृतिक रागों का सूक्ष्म भेद जैसे, श्री और गौरी, जैतश्री और पूरियाधनाश्री, आसावरी और जौनपुरी, देसी और देवगन्धार, त्रिवेणी और टंकी, मारवा और पूरिया, भटियार और भंखार, भैरव और रामकली, भीमपलासी और धनाश्री, काफी और सिंदूरा, बिहाग और शंकरा, देस और सोरठ इत्यादि। इसके अतिरिक्त रागों के प्रस्तार के सम्बन्ध में ग्रह, अंश, न्यास और विश्रान्ति स्थान या रुकने की जगह और पकड़ अर्थात् स्वरों का वह विशिष्ट समूह जिसके गाने से ही राग चित्रित हो जाय जैसे नी सारे ग, मग, पूर्वी व्यक्त करने के लिये या पूरिया की सूचना देने के लिये सा, नी ध नी, इत्यादि के सम्बन्ध में सामान्य निर्देशन देना चाहिये। आधारभूत सिद्धान्त शुद्धता होने के कारण आजकल गाये जानेवाले रागों को लिखना एवं उनकी सही-सही, निश्चित और पूर्ण परिभाषा करना चाहिये। अभी तक वह सिद्धान्त जिनसे कि वर्गीकरण किया जायगा बताने के बाद मैं अपनी बातें दो या तीन थाट और उनमें उत्पन्न रागों को लेकर दृष्टांत सहित स्पष्ट करूँगा। प्रारम्भ करने के लिये हमें कल्याण थाट लेना चाहिये।

इस थाट से उत्पन्न होने वाले राग इस प्रकार वर्गीकृत होंगे :—

भूपाली शुद्धकल्याणश्चंद्रकांतो जयंतकः।
अस्मिन् वर्गे निधीयंते लक्ष्य लक्षण कोविदैः॥

यह राग या तो मध्यम पूरी तरह छोड़ते हैं या इसे आरोह में छोड़ते हैं :—

मालश्रीरिमनाख्यातो हिंडोलो लोक-विश्रुतः।
एक-मध्यम-संपन्ना भवेयुर्धीमतां मते॥

यह राग केवल एक तीव्र मध्यम लेते हैं :—

छायानाट-हमीराह्व-श्यामकामोद-नामकाः।
केदारो गौडसारंगो द्विमध्यम-विभूषिताः॥

दो मध्यम लगने वाले रागों का और भी साधारणीकरण निम्न नियम से हुआ है :–

द्विमध्यमेषु रागेषु नियमो गुणि-संमतः।
आरोहे स्यान्निवक्रत्वं गवक्रं चावरोहणे।
सनिधपा मपधपा गमौ रिसावरोहणम्।
अनुलोमे प्रधानांगं रागरूपं प्रदर्शयेत्॥

दोनों मध्यम लगनेवाले रागों के प्रधान अंग यह हैं—ग म ध, सा म, म प, प; रे ग म प, ग म, रे सा; म रे, नि सा; रे प, ग म प, ग म रे सा; सा रे सा, ग रे, म ग। इन सभी रागों में वक्र ग से अवरोह किया जाता है। अमध्यम और एक मध्यम वालों को अलग रखनेवाली विशेषताएँ यह हैं (गाकर) :—

भूपाल्यां तु मनी नस्तः शुद्धाख्ये रोहणे न तौ।
भूपाली-तुल्यको जैत्रः पंचमांशो मिदांभजेत्॥

आरोहणे मरिक्तः स्याच्चंद्रकांताभियोजते ।
शुद्धकल्याण-सादृश्यं दधन् रक्ति-प्रदो निशि ।।
इमनः स्यात् सदा पूर्णो, मालश्रीररिधा ततः ।
हिंदोले रिपहीनत्वं प्राबल्यमुत्तरांगके ।।
द्विमध्यमेषु रागेषु नियमो गुणिसंमतः ।
आरोहे स्यान्निवक्रत्वं गवक्रं चावरोहणे ।।
सनी धपौ मपधपा गमौ रिसावरोहणम् ।
अनुलोमे मध्यमांगं रागरूपं प्रदर्शयेत् ।।

यदि रे, ग, म, प, ध, नी, सां का सप्तक दो भागों में बाँटा जाय तो सा, रे, ग, म, स्वर पूर्वांग में होंगे और प, ध, नी, सां स्वर उत्तरांग में । व्यवहार में पूर्वांग का क्षेत्र सा, रे, ग, म, प, तक और उत्तरांग में म, प, ध, नी, सां है । निम्नलिखित लक्षणगीत में पूर्वांगवादी राग और उत्तरांग-वादी रागों का वर्गीकरण और भी स्पष्ट हुआ है ।

प्रथम कल्याणि ठाठ । जनक साच मानिए । मध्यमते बरगित कर । सबहु जन्य जानिए ।
भूपजेत सुध कल्याण । चन्द्रकांत मालसिरी । इमन प्रेख अम एकम । अहनिस पहचानिये ।
छायानाट हमीर स्याम । कौमुदी केदार जान । गौडकसारंग गुनियत । मध्यम जुग मानिये ।
बादि होत पूर्व अंग । पूर्व राग उत्तरांग । उत्तराख्य राग नियम । चतुर याको जानिये ।

इनमें से प्रत्येक रागों की पकड़ जिसमें स्वरों की एक योजना है, अनुष्टुभ दोहे में स्पष्ट रूप से दी गई है :—

गरी निरी सगौ रिगौ पमौ गरी परी च सः ।
इतीमनो भवेदगांशो रात्र्यां प्रथम-यामके ।।
गरी सधौ सरी गश्च पगौ धपौ गरी च सः ।
भूपाली कथ्यते लोके मनिहीना च गांशिका ।।

अब मैं कुछ लक्षण-गीत गाऊँगा और यह दिखाऊँगा कि किस प्रकार एक-एक राग के नियम अत्यंत सरलता एवं सुगमता से स्मरण किये जा सकते हैं ।

अब हम एक और थाट खमाज और उसके जनक राग लेंगे । मैंने ऐसा थाट लिया है जिससे उत्पन्न होने वाले राग आप सरलता से समझ सकेंगे । इस थाट के अन्तर्गत निम्न राग आवेंगे :—

खंमाजश्चापि झिझूटी सोरटी देस नामकः ।
खंबावती तथा दुर्गा रागेश्वरी तिलंगिका ।।

जयावंती तथा गारा कामोदस्तिलकाद्यकः ।
एकादश मता एते खंमाजाभिध-मेलने ।।

यह ११ राग इनके वादी स्वरों के अनुसार दो भागों में बाँटे जा सकते हैं। वादी भेदे राग भेदः यह हिन्दुस्तानी संगीतज्ञों का सर्व विदित सिद्धान्त है। केवल वादी स्वर के भेद से स्वरों की एक ही पंक्ति से विभिन्न स्वर उत्पन्न होंगे। उदाहरण के लिये, हम निम्न-लिखित क्रमानुसार स्वर सा, रे, ग, प, ध, सां, लेकर इसके वादी स्वर को बदल देंगे। (इस रीति द्वारा गाना और विभिन्न राग दिखाना) लेकिन हमें खमाज थाट के रागों की ओर लौटना है। ग्यारह रागों के इस प्रकार के समुदाय बनेंगे—(१) खमाज, तिलंग, खंबा-वती, दुर्गा, रागेश्वरी, झिंझोटी और गारा; (२) देश, सोरठ, तिलककामोद और जैजै-वन्ती। इनमें अन्तिम पर-मेल-प्रवेशक राग है अर्थात् वह राग जो गायक को खमाज थाट के रागों से काफी थाट में ले जाता है। पहिले समूह के रागों का वादी स्वर गान्धार और दूसरे समूह के रागों का वादी स्वर रिषभ है। इस प्रकारः—

खंमाजी-मेलजा रागा विभज्यंते द्विधा बुधैः
अंशस्वरानुरोधेन रहस्यं बहुविश्रुतम् ।।
खंमाजो झिंझुटी दुर्गा खंबावती तिलंगिका ।
रागेश्वरी तथा गारा गांधार-वादिनः ।।
सोरटी देशकाख्यातो जयावन्ती गुणिप्रिया ।
तिलकादिक-कामोद एते रागा रिवादिनः ।।
—अभिनवरागमंजर्य्याम्

इनको दो वर्गों में बाँटने के बाद इन्हें अलग करने के लिये आगे बढ़ते हैं :—

अनुलोमे विलोमे च संपूर्णा झिंझुटी मता ।
आरोहे रिस्वरत्यक्ता खंमाजो लोक-विश्रुतः ।।
रिपत्यक्ताऽपरा दुर्गा तैलंगी स्याद्विधोज्झिता ।
रागेश्वरी स्वयं दुर्गाऽवरोह ऋषभान्विता ।।
खंमाज-नियमभ्रष्टा खंबावती समीरिता ।
मंद्र-मध्यस्थगा गारा झिंझूट्यंगपरिष्कृता ।।
सोरटी त्वधगारोहा, देसः संपूर्ण ईरितः ।
जयावन्ती द्विगांधारा परिसंगमनोहरा ।।
बिहंगदेस-संचारी कामोदस्तिलकादिकः ।
अथैतेषां क्रमाल्लक्ष्म ब्रुवे लक्ष्यज्ञ-संमतम् ।।
—मंजर्याम्

झिंझौटी एक संपूर्ण राग है : पकड़—ध़ सा रे म ग ।
खमाज के आरोह में रे छोड़ते हैं : पकड़—नी ध, ग म ग ।

तिलंग में रे व ध छोड़ते हैं : पकड़—नी प, ग म ग ।
दुर्गा में रे व प छोड़ते हैं : पकड़—सा नि ध नी सा म ग म ध नी ध, म ग।
रागेश्वरी में आरोह में रे व प छोड़ते हैं
और अवरोह में रे लेते हैं : पकड़—सानि धनी सा म ग म ग रे सा ।

खंबावती में आरोह में रे लगता है : पकड़—सा रे म प ध सां नी ध म ग रे सा गारा सम्पूर्ण है, पर दोनों ग लगते है : पकड़—रे ग रे सा नी प ध नी सा। (सभा में प्रदर्शन, लक्षण गीत)

अब हम एक और थाट यानी पूर्वी लेंगे। इस थाट से १० प्रसिद्ध राग निकलते हैं:— पूर्वी, पूरियाधनाश्री, श्री, गौरी, मालश्री, त्रिवेणी, जैतश्री, टंकी, वसंत और परज ।

इन रागों को एक दूसरे से अलग निम्न प्रकार से पहिचाना जा सकता है:—

संपूर्णा थ द्विमा पूर्वी, मध्यमाल्पा तु टंकिका ।
श्रीरागो ह्यधगो रोहे, त्रिवेणी मस्वरोज्झिता ।।
कलिंगांगा भवेद्गौरी, जेताश्रीररिधा मता ।
माली त्वनिरारोहेऽवरोहेऽपि धदुर्बला ।।
धनाश्रीः पूरियाद्यासौ पूर्व्यंगा चैक-मध्यमा ।
द्विमध्यमा तथा तारषड्जचित्रा बसंतिका ।।
अपारोह-मगावृत्ता भवेद्रक्तिप्रदा निशि ।
परजाव्हा भवेत् पूर्णा द्विमोत्तरांग-शोभना ।।

(लक्षणगीतों द्वारा स्पष्टीकरण एवं प्रदर्शन ।)

पूर्वी में दोनों मध्यम लगते हैं और इस प्रकार पूरियाधनाश्री से अलग होती है। उत्तरी गायक पूर्वी में दोनों धैवत लेते हैं—आरोह में तीव्र और अवरोह में कोमल । इससे श्रोताओं के मन में कोई शंका नहीं रहेगी । इन दोनों रागों की पकड़ें जिनसे हम इन्हें अलग पहिचान सकते हैं, यह है :—

नि, सा रे ग, म ग, (पूर्वी) और नि रे ग मं प, मं रे ग, नि रे सा (पूरियाधनाश्री) । श्री राग में आरोह में ग और ध छोड़ते हैं। सा रे रे सा यह एक विचित्र स्वर समुदाय है, जो ध्यान आकर्षित करता है । त्रिवेणी में कोई मध्यम नहीं लगता और इस कारण पृथक हो जाता है ।

श्रीटंकी त्रिवेणी की तरह है परन्तु इसमें अवरोह में मं लगता है । जैतश्री में आरोह में रे और धं छोड़ते हैं । मालवी में आरोह में नी छोड़ते हैं । गौरी कालिंगडा की तरह गाई जाती है और इसलिए इसे दोनों मध्यम लगने वाला दोपहर का कालिंगड़ा कहते हैं । यह सब सायंकाल के राग हैं । अन्तिम दो परज और बसंत, प्रातःकाल के राग हैं । ये दोनों ही उत्तरांग प्रधान राग हैं । वसंत में मुक्त मध्यम है और मं ग दुहराया जाता और आरोह में प छोड़ा जाता है । रे नी ध प की सावकाश मींड ही भेद स्पष्ट करने के लिये पर्याप्त है । परज में ऊपर बताई हुई सभी बातें नहीं होतीं ।

अब हम मारवा थाट के रागों का विचार करेंगे। यह संख्या में १२ हैं और दो समूहों में बाँटे जाते हैं।

(१) पूरिया, मारवा, जैत, गौरा, साजगिरी, वराड़ी।
(२) ललित, पंचम, भटियार, भंखार, सोहनी, विभास।

प्रथम समूह में आनेवाले सभी राग संध्याकाल के हैं और उस कारण पूर्वांग प्रधान हैं। दूसरे समूह में आनेवाले, प्रातःकालीन राग हैं और उत्तरांग प्रधान हैं। यह कहा गया है :—

भारवा मेलनोत्थास्ते रागा द्वादश विश्रुताः ॥
सायंगेया भवेयुः षट् प्रातर्गयास्तथैव च ॥
पूरिया मारवा जेता गौरा साजगिरी तथा।
बराटी-सहिता एते सायं-गेया मता बुधैः ॥
ललितः पंचमश्चैव भट्टियारो विभासकः।
भखारः सोहनी ख्याताः प्रातर्गेया विदां मते ॥

उन रागों को पृथक करने वाली सभी विशेषताएँ स्पष्ट रूप से निम्नलिखित में कही गई हैं :—

अथैतेषां क्रमाल्लक्ष्म ब्रूमो लक्ष्यानुसारतः।
पूरिया मारवा रागावपौ संगीतविन्मते ॥
सायं-गेया सदा पूर्या पूर्वांग प्रबला मता।
सत्युत्तरांग-प्राबल्ये सोहन्यंगं प्रदर्शयेत् ॥
हिंदोलांगयुता मार्वा रिध-संवाद-मंडिता
गनि-संवाद-पूर्याया अवश्यं भेदमादिशेत् ॥
साजगिरी मता लक्ष्ये द्विधा द्विमा मनीषिभिः।
प्रतिमूर्ति विभासस्य सायंगेया बराटिका ॥
द्विधैवतस्तथा द्विऋषभो जंगे भवेत् पृथक्।
कल्याणी-मेलजो लक्ष्ये जयत्कल्याणको मतः ॥

प्रातःकालीन राग

ललितः पंचमश्चैव परिक्तौ संमतौ जने।
द्विमध्यमयुतौ तौस्तो निशीथे भूरिरिक्तिदौ ॥
ललितांगं स्वतंत्रं तदवश्यं भेद-दर्शकम्।
हिंदोलांगसमापन्नः पंचमो द्वंद्वमध्यमः ॥
सोहन्यां पचमाभावो धगसंगत्यभीष्टदा।
सपाः पंचम-भख्वार-भट्टियार-विभासकाः ॥

पंचमो ललितांगः स्याद् भख्वारस्तद्भावतः।
भट्टियारस्तु संपूर्णो मध्यमांशो मते विदाम् ॥
विभासाख्यः सुसंपूर्णो गपसंगति-शोभनः।
मनिदौर्बल्यतोऽवश्यं प्रातः स्यादतिरक्तिदः ॥
—अभिनवराग-मंजर्याम्

स्पष्टीकरण

पंचम के अभाव द्वारा पूरिया, मारवा, सोहनी और एक प्रकार का पंचम पृथक किया जाता है। प्रथम दो सायंकाल के राग हैं और अन्तिम दो प्रातःकाल के। पूरिया में गान्धार वादी है और मारवा में रे वादी है। इन रागों की पकड़ इस प्रकार है—सा, ऩी ध़ ऩी, म़॑ ग़, म़॑ ध़ रे॒ सा, ध म॑ ग रे॒, ग म॑ ग रे॒ सा। सोहनी पूरिया का प्रतिरूप है। यह मध्य और तार स्थानों में गाई जाती है। पंचम में दोनों मध्यम लगते हैं और हिन्दोल अंग दिखाई देता है।

देवियों और सज्जनों! मैं अब आपको अन्य रागों की पृथक करनेवाली विशेषताओं के वर्णन देकर परेशान नहीं करना चाहता। इस विषय की विभिन्न पुस्तकों में यह पर्याप्त रूप से दिये गये हैं और मैंने इन पुस्तकों से उद्धरण दिये हैं एवं आपको सन्तुष्ट करने के लिये कि इस विषय पर पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है, मौखिक प्रदर्शन भी किये हैं। एक शुद्ध-मति का विद्यार्थी यदि इनका लाभ उठाना चाहे तो हिन्दुस्तानी सङ्गीत के १०० या १५० रागों का स्पष्ट, परिभाषित, निश्चित और विशद वर्णन प्राप्त हो सकता है और वह विश्वास के साथ गा सकता है। यदि वह विभिन्न रागों के लिये निश्चित किये गये विभिन्न नियमों का ध्यानपूर्वक पालन करे तो राग-भंग भी नहीं होगा। जैसा कि मैंने ऊपर कहा ही है, सारी पद्धति का उद्देश्य शुद्धता ही है और जिस पद्धति का चित्रण मैंने अभी या इस भाषण में किया है वह एक विश्लेषणात्मक आधार पर और आधुनिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में पर्याप्त अनुसंधान के बाद बनाई गई है।

जब हिन्दुस्तानी संगीत का विधिवत् अध्ययन करने को कहा जाता है तो हम लोगों को प्रश्न करते देखते हैं कि पाठ्यपुस्तकें कहाँ हैं? पद्धति कहाँ है? किस प्रकार और कैसे अध्ययन किया जावे? मैंने आपको विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया है कि एक सच्चे विद्यार्थी के लिये जो संगीत कला प्राप्त करना चाहता है, उपलब्ध सामग्री का कोई अभाव नहीं है। पिछले १५ या २० वर्षों में लोगों में गुरुपरंपरा प्रणाली को छोड़ने की इच्छा जाग्रत हुई जिसमें कि, विद्यार्थी को इधर-उधर के कुछ राग उठा सकने और अपने को एक खाँ साहब का शागिर्द घोषित कर सकने में, भाग्यशाली समझने के पहले, वर्षों परिश्रम करना और उस्ताद की इच्छा पर निर्भर रहना पड़ता था। शागिर्द के गायन का बहुत कुछ अंश उसकी स्वयं की कल्पना और अपने तथाकथित गुरु या दूसरों से घटनावश उठाया हुआ गायन रहता है। गुरु, पिता होता है जो समय आने पर अपने चेले को मानने के लिये तैयार रहता है। इन तरीकों से लोग सन्तुष्ट नहीं हैं। इन पुराने तरीकों में सामूहिक शिक्षा भी सम्भव नहीं है और इसमें नष्ट हुआ मूल्यवान समय भी अक्षम्य है। अपने लेखक

अब सजग हो गये हैं और वे संगीत को इच्छुक व्यक्तियों की पहुँच में करना चाहते हैं। अतः जिस बात की आवश्यकता है, वह है इस विषय के महत्व के प्रति सामान्य जागरूकता जो तभी सम्भव होगी जब लोग संगीत को प्रत्येक स्कूल में अनिवार्य शिक्षा का विषय बनाने की माँग एक स्वर से उठावेंगे। यह ठीक है कि सम्पूर्ण देश में संगीत विद्यालय हैं। परन्तु अभी प्रयत्नों में एकीकरण नहीं है। कोई स्तरीय एक पद्धति नहीं मानी जाती और सम्भवतः विषय के यथासम्भव प्रचार से अधिक व्यक्तिगत लाभ ही ध्येय बना हुआ है। हम यह जानते हैं कि बीते-दिनों में अपने संगीत को राज्याश्रय प्राप्त था। सफलता की कुछ आशा से केवल शासकीय शक्ति ही संगीत को उचित और स्थाई आधार प्रदान कर सकती है और संगीत का उद्धार तभी पूर्ण होगा जब मंत्रियों, अपने कुलपतियों, उपकुलपतियों या अपने प्रधानाचार्यों और कौंसिल और असेम्बली के अपने प्रतिनिधियों का सम्पूर्ण हृदय से अनुमोदन प्राप्त हो और वे यह मानते हों कि संगीत का प्रश्न राज्यकर सम्बन्धी स्वराज्य या चुंगी की नीति से अधिक गम्भीर और अधिक परिणामकारी है। एवं लोगों को संगीत प्रदान करने में वे उन्हें जीवन प्रदान करेंगे जबकि स्वतंत्र-व्यापार या आश्रय देने में वे उन्हें केवल पोषित ही करेंगे। संगीत डाक्टरों के बिल को कम करेगा और स्नायुओं के विश्राम एवं मानसिक चिन्ता और थकान से मुक्त कर संसार में वह शान्ति और सन्तोष लावेगा जो विज्ञान भी प्रदान नहीं कर सकता। हमारा राष्ट्र स्वस्थ और सम्पुष्ट होगा।

मुझे आनन्द होगा यदि मैं यह मंच इस विश्वास के साथ छोड़ूँ कि मैंने अपनी सभा को दो धारणाओं से प्रभावित किया हैं—(१) संगीत की सामूहिक शिक्षा आवश्यक है और (२) विषय को पद्धतिबद्ध करने वाली पाठ्यपुस्तकों की सहायता से यह सम्भव है। यदि मैंने ऐसा कर दिया तो मुझे विश्वास है कि मेरी सहमत हुई सभा इस अमृत को प्राप्त करने के लिए मन और मस्तिष्क जुटाकर कार्य करेगी और निर्माण-कारक या संहारक राजनैतिक आन्दोलन के तीव्र प्रचार के समान तीव्र प्रचार कर हेतु को प्राप्त करेगी। यहाँ दृष्टिकोण परिवर्तित करना होगा। लोग यह विश्वास करने लगेंगे कि उन्होंने अपने जीवन में एक आवश्यक गुण खो दिया और वे यह अनुभव करेंगे कि वे अपने जीवन में इस गुण को भी प्राप्त करें। और वे इस गुण की ओर उसी लालच से भागेंगे जो बलवान को शक्ति संचय के लिये और जो कृपण को धन संचय के लिये बाध्य करती है।

मैं अब यहाँ बहुत थोड़े शब्दों में यह दिखाऊँगा कि अध्ययन सरलता पूर्वक कैसे किया जा सकता है। विद्यार्थी सङ्गीत के सारभूत, स्वरों से प्रारम्भ करता है और अपनी आधारशिला पठित गायन सीखने के लिये सच्चे स्वरज्ञान पर आश्रित करता है। वह श्यामपट पर लिखे किसी भी स्वर समुदाय को पढ़ सकता है। इसके बाद उसे दस थाट या मेल सिखाये जाते हैं और यह बताया जाता है कि किस प्रकार प्रचलित राग दस प्रमुखों में बाँटे जा सकते हैं। सभी विषय-सामग्री पाठ्यपुस्तकों में इतनी सावधानी और विवेचनात्मक ढंग से रखी गई है कि आजकल गाये जानेवाले रागों का थोड़े से समय में पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो सकता है। ऐसी अपेक्षा की जाती है कि पूरे समय के संगीत विद्यालय में सब पाठ्यक्रम सिखाने में चार वर्ष से अधिक नहीं लगने चाहिये और इस काल के अन्त में विद्यार्थी को

ठोस ज्ञान प्राप्त हो जायगा जिसे अभ्यास सच्चा बनावेगा। कुछ संस्थाओं में जो इस विषय की प्रतिनिधि हैं ऐसे पाठ्यक्रम बनाये गये हैं और बहुत सन्तोषप्रद परिणाम निकले हैं।

मूलतः अंग्रेजी से अनुवादित

अनुवादक—अमरेशचन्द्र चौबे, खैरागढ़

राग गायन में श्रुति का महत्व

पं० वि० न० भातखण्डे

कभी-कभी हम लोगों से यह प्रश्न पूछा जाता है कि प्रत्यक्ष गायन में आप यदि अति कोमल तरतीव्रादिक स्वर उपयोग में लाते हैं तो उन्हें न स्वीकारते हुये आप अपनी पद्धति बारह स्वरों पर ही क्यों स्थापन करते हैं? इस प्रश्न का उत्तर दो प्रकार से दिया जा सकता है,—१. प्रत्यक्ष गायन की दृष्टि से, २. शास्त्र की दृष्टि से। गायन की दृष्टि से यह कह सकते हैं कि ये स्वर सर्वदा एक ही स्थान पर नहीं रह सकते। वे हमेशा आरोह अवरोह की भिन्न-भिन्न रचनाओं में अपने-आप आगे-पीछे होते रहेंगे। फिर उनमें यह नियम भी न होगा कि वे सब के सब एक ही स्थान पर लगें, उन्हें उस प्रकार मानने से रागजनक थाट स्थापन करने में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न होंगी। अनेक समय तो वे व्यक्ति-विषयक ही होंगे। आगेवाला प्रकार देखिये :—

"ग, नि़री, सा, नि़रीग, रीग",
ग
"सारी, सा, गरेसा, मगरेसा,"
"नि़, सारे ग, रे ग, रे, सा,
प म
"मंग, धमंग, रेग, रे, सा"

यह विषय संगीत परिषद् के ठहराये बिना लोकमान्य न होगा। सब रागों के सब सुर भलीभाँति जाँचने पड़ेंगे और यदि यह साध्य हो जाय तो शास्त्र भी नई प्रणाली से लिखना होगा। इसके निर्णय करने वाले अधिकारी कौन और उनके साधन कौन से होंगे, यह बातें भी निश्चित करनी होंगी। किन्तु यह बात भी विचारणीय है कि ऐसे प्रयोग बहुत थोड़े रागों में ही होते हैं। ऐसे स्वर लेने में कोई दोष नहीं है। उन्हें चाहे तो अलंकारिक कहकर ले सकते हैं, किन्तु उनकी मदद से रागपद्धति और मेलरचना नहीं कर सकते। वे वैसे यदि न भी लिये जायँ तो रागहानि तो हो ही नहीं सकती। इतना ही होगा कि कहीं-कहीं

लेने में से राग रक्तिदायक होंगे। राग में वैसा अलंकार एकाध समय शोभा देगा, परन्तु उसी राग में वही अति कोमल ग दूसरे स्वरों की संगति में आगे-पीछे होगा।

परन्तु इन स्वर प्रयोगों का विचार शास्त्रदृष्टि से भी करना होगा। हमारे नये और पुराने सभी शास्त्रकार संगीत श्रुतियाँ २२ मानते चले आये हैं। वे बहुधा रागोपयोगी स्वर १२ ही मानते चले आये हैं। कुछ लोगों ने १४ स्वर भी माने, परन्तु वह मत आगे चलकर दब गया। आज सारे देश भर में रागोपयोगी मुख्य स्वर १२ ही माने जाते हैं, केवल उन स्वरों के नामों में भेद पाया जायगा। हमारे शास्त्रकारों का एक मुख्य नियम यह था कि राग में आने वाली ध्वनि 'स्वर' होना चाहिये। राग की व्याख्या इस प्रकार है :—

योऽयं ध्वनि-विशेषस्तु स्वरवर्ण-विभूषितः।
रंजको जनचित्तानां स रागः कथ्यते बुधैः॥

इसका अर्थ यह होता है कि श्रुतियों से एकदम राग उत्पन्न नहीं होते। किन्तु उन श्रुतियों को स्वरत्व देना होता है और फिर उन स्वरों में से मेल व राग उत्पन्न होते हैं। स्वरत्व किस प्रकार दिया जाता था, सो भी देखिये। प्रथम इन बाईस श्रुतियों पर 'शुद्ध' अथवा 'प्रकृत' स्वर रखने होंगे, और वे नीचे दिये हुये नियमानुसार :—

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षडजमध्यमपंचमाः।
द्वै द्वै निषाद-गांधारौ त्रिस्त्रीऋषम-धैवतौ॥

शुद्ध स्वर पहले निश्चित करने होंगे, क्योंकि शुद्ध स्वर जाने बिना विकृत होंगे ही नहीं। प्रकृत स्वरों को अपने स्थान से हटाकर विकृत स्वर उत्पन्न होते हैं, यह नियम सभी संगीत पद्धतियों में लागू होता है। यूरोपीय संगीत में जो प्राइमरी और सेकेण्डरी स्वर कहते हैं, उनमें भी यही तत्व है। विकृत स्वर कितने आवश्यक हैं यह बात उस पद्धति पर अवलंबित रहेगी। आज सारे देश में शुद्ध व विकृत मिलाकर बारह स्वर मानते हैं। दक्षिण पद्धति में भी इतने ही माने जाते रहे हैं। इतना ही नहीं, किन्तु आज हमारे देश में १२ स्वर एक ही हैं, यह भी कह सकते हैं। इन्हीं बारह स्वरों से मेल-रचना व राग-रचना की जाती है। यह बात भलीभाँति समझना आवश्यक है कि राग श्रुतियों में से एकदम उत्पन्न नहीं होते। शुद्ध स्वर जिस नियम से निश्चित करते हैं उसे देखने से पता चलता है कि उसमें सबसे छोटा स्वर दो श्रुतियों का है। अर्थात् उस शुद्ध पंक्ति में एक श्रुति का स्वर नहीं है—यह अच्छी तरह ध्यान में रखने योग्य है। अब ज़रा विकृत स्वरों की ओर देखना होगा। सा और प ये हमेशा अविकृत मानने होंगे। तो फिर विकृत होने वाले री, ग, म, ध, नि ही बचते हैं। दक्षिण पद्धति में विकृत स्वर शुद्ध स्वरों से ऊपर चढ़ते हैं। हमारी पद्धति में वे शुद्ध स्वरों से नीचे भी हटते हैं और ऊपर भी चढ़ते हैं। सूक्ष्म दृष्टि से विचार करके देखा जाय तो, जान पड़ेगा कि विकृत अवस्था में भी एक श्रुति का विकृत कहीं भी नहीं है। उसी प्रकार चार श्रुतियों से बड़ा विकृत स्वर नहीं। पारिजातकार के 'पूर्व रि' 'कोमल ग' 'तीव्रतम ग' 'तीव्र म' इन विकृत स्वरों को राग में अप्रयोजक मानने

का कारण भी यही है। उसी प्रकार 'तीव्र री' 'तीव्र ध' भी उसने छोड़ दिये। सारांश यह कि एक श्रुति का स्वर राग में न आने देने की ओर सभी ग्रंथकारों का कटाक्ष मालूम होता है। अर्थात् शुद्ध स्वर के आगे एक श्रुति के अंतरवाला स्वर, राग में 'स्वर' के नाते न लेने का सभी ग्रंथकारों का नियम दिखलाई देता है। प्रत्यक्ष प्रयोग में यदि ये स्वर अलंकारिक स्वर के नातें आवें तो कोई रागहानि न होगी। किन्तु वैसा होने से राग में कुछ अधिक प्रमाण में सुन्दरता ही आवेगी। किन्तु पद्धति की दृष्टि से वह कृत्य अशास्त्रीय मानना ही योग्य होगा। ऐसे अलंकारिक स्वरों से थाट रचना सुलभ न होगी। प्रत्येक शास्त्र में क्लासीफिकेशन अर्थात् वर्गीकरण के तत्व अवश्य होते हैं। यदि उस प्रकार वे न हों तो गाय के रंगों पर से अर्थात् गोरी, काली, अंधी इत्यादि और उसी प्रकार मनुष्यों की भी असंख्य जातियाँ उत्पन्न होंगी और जिससे अनवस्था प्रसंग उत्पन्न होगा। शास्त्र के इस नियमानुसार भैरव के अतिकोमल री ध, दरबारी में रिखब के पूर्वलग्न अतिकोमल ग, हमीर केदार छायानट राग का कोमल निषाद इत्यादि अशास्त्रीय होंगे। तोड़ी का अतिकोमल ग अशास्त्रीय न होते हुये भी वह स्वर लेकर थाटरचना सुलभ न होगी। इसीलिये श्रीनिवास कहता है :—

"श्रुतयो द्वादशैवात्र स्वरस्थानतयादिशेत्।
तथोक्त-वारिताः सर्वाः स्वरस्थानतया दिशेत्॥
न श्रुतिस्थ-स्वरोत्पन्न-प्रस्तार-प्राप्त-मेलजान्।
युक्तोग्द्राहयुजो रागान् कल्पयन्तु मनीषिणः॥"

यदि ऐसे विकृत स्वर माने जायँ तो वह आगे कहता है :—

"अन्यांश्च विकृतान् कुर्यात् श्रुतिक्षेत्र-विभागतः।
प्रत्यक्षमान-सिद्धार्थे शाब्दबोध-पटुर्मवेद्॥
एवं चोभयपक्षज्ञ-ज्ञातमेल-समुद्भवाः।
अनंता अपि रागाः स्युर्गमकोद्ग्राहभेदतः॥"

लक्ष्य संगीतकार कहता है :—

"सूक्ष्म-स्वर-प्रयोगाणां विधानं श्रूयते क्वचित्।
शास्त्रोक्त-नियमाभावात्तच्चर्चा वादमूलका॥
भिन्न-श्रुति-समायोगे परिणामो भवेत् पृथक्।
विज्ञानं तु तथाप्येतच्छ्रोतृगणेऽति-दुर्लभम्॥"

ये सूक्ष्म स्वर सर्वदा एक ही जगह निश्चित रहें, वे सबके सब समान लगना चाहिये, वे भली-भाँति नापने योग्य हों, वे सब मशहूर गाने-बजानेवालों को मान्य हों, बहुतेरे रागों को एक समान हों, उन्हें लोग स्पष्ट और सुलभता से पहिचान सकें, उनसे उत्तम मेल-रचना व राग साध्य हो सके इत्यादि कठिनाइयाँ उत्पन्न होंगी। हम लोग जो आजकल पद्धति में बारह स्वर मानते हैं वे ही गाते समय भिन्न-भिन्न चमत्कार मार्मिकों की दृष्टि में आ जाते हैं। तो फिर सूक्ष्म स्वरों की क्या कथा। तज्ञ लोगों का कथन है कि मेलाडिक स्टेप्स्

भली-भाँति पहिचानने योग्य हों। कोई यह भी कहे कि सारी कठिनाइयों में से पार निकलने के लिये आज अच्छे साधन भी उपलब्ध हैं। यदि ऐसी ही बात हो तो उसे हम लोग भावी संगीत कहेंगे। अभी तो हमारा प्रश्न प्राचीन व प्रचलित संगीत के विषय में है। उस प्रकार का नया शास्त्र अमल में आकर उसका व्याकरण बनने तक पद्धति में बारह स्वर मानना ही हमारे हित का होगा। यह हम लोग मानते हैं कि हमारे गायक ऐसे सूक्ष्म स्वर कुछ थोड़े रागों में लेते हैं, तथापि विश्वास नहीं किया जाता कि ऐसे विशिष्ट प्रयोगों से बुद्धिगम्य पद्धति (साइंटिफ़िक सिस्टम) का निर्माण किया जा सकेगा।

यहाँ पर कोई-कोई ऐसा भी कहेंगे कि तो फिर आपने बारह श्रुति छोड़कर दूसरी बची हुई दस श्रुतियाँ मानी ही क्यों और उनका क्या होगा। वे क्यों मानी गईं? इस विषय में शारंगदेव कहता है—"ननु श्रुतिश्चतुर्थ्यादिरस्त्वेवं स्वरकारणम्। त्र्यादीनां तत्र पूर्वासां श्रुतीनां हेतुता कथम्॥ ब्रूमः तुर्यातृतीयाऽदिः श्रुतिः पूर्वाभिकांक्षया। निर्धार्यतेऽतः श्रुतयः पूर्वा अप्यत्र हेतवः॥" उनका क्या होगा, इसका इतना ही उत्तर है कि वे कहीं-कहीं अलंकारिक स्वर के नाते उपयोग में आ सकते हैं।

—'संगीत' त्रैमासिक, लखनऊ से उद्धृत

ख्याल-गायन के कुछ स्थूल नियम

पं० वि० ना० भातखण्डे

गायक के दोनों तानपूरे सुर में मिले हुए देखने के पश्चात् तबलची को अपना तबला उस सुर में भली-भाँति मिला लेना चाहिये। यदि अच्छा सारंगीवाला साथ हो तो बहुत अच्छा होगा। जहाँ तक हो सके हारमोनियम का स्वर साथ न लिया जाय। गायक को थोड़ा आगे खिसककर जोरदार किन्तु शान्तता से अपना षड्ज स्वर गाना होगा, पश्चात् गाये जानेवाले राग का इशारा थोड़े आलाप रूप में दे दिया जाये और फिर यह देखा जाय कि संगत के वाद्य योग्य स्वरों में मिले हैं या नहीं। इसके पश्चात् धीमी लय में अपनी स्थायी शुरू करनी चाहिये। स्थायी का पहिला चरण दो अथवा तीन बार कहना होगा, किन्तु प्रत्येक 'सम' दिखाने के बाद प्रत्येक बार स्वरों में बदल करके चीज़ का मुखड़ा कहना होगा। एक चरण एक ही प्रकार से हर बार कहना अधिक शोभा नहीं देगा। गायक का कंठ स्वाधीन होना चाहिये और टेढ़ी-तिरछी गर्दन झुकाकर स्वर निकालने का उसे प्रयत्न नहीं करना चाहिये, अर्थात् जितनी सुलभता से कह सके उतना ही अच्छा। गीत के शब्द इस प्रकार कहे जायँ कि लोग सुलभता से उन्हें सुन सकें व समझ सकें। स्थायी गाते-गाते बीच ही में द्रुत गति की तानें न ली जायँ, ऐसा बड़े-बूढ़ों का नियम है। श्रोताओं को स्थायी की स्वर-रचना जानने की उत्कंठा हमेशा रहती है। जितने व जो

अलंकार स्थायी रचने वाले ने उसमें रक्खे हों वे सब उसमें लाना आवश्यक ही है। जिस ढंग से स्थायी शुरू की जाय, उसी ढंग से उसकी समाप्ति भी होनी चाहिये। एकाध दूसरा निराला अलंकार मुखड़ा मिलाते हुए गा सकते हैं, किन्तु वह टेढ़ा मुंह बनाकर व्यर्थ जल्दी करके गाना अच्छा न होगा। स्थायी कम से कम दो बार, किन्तु भिन्न-भिन्न अलंकारों सहित—लंबी-चौड़ी तानों से नहीं—अलंकृत करके कहने के पश्चात् अन्तरा कहना होगा। कुछ गायक अन्तरे की पहली सम दिखाने के बाद पहले चरण के शब्द दून में गाकर एक छोटी-सी तान के साथ फिर से पहली सम पर आते हैं, यह बात बड़ी अच्छी मालूम देती है। अन्तरे की पहली सम भिन्न-भिन्न प्रकार से दिखाने के पश्चात् फिर उसे पूरी तौर से गाना चाहिये। ऐसा करने से सुननेवालों को स्थायीव अन्तरे की रचना मालूम हो जायगी, उसके तीव्र-कोमल आदि स्वर व आरोह-अवरोह ध्यान में आ जावेंगे। अन्तरा दो बार गाने की कोई आवश्यकता नहीं, स्थायी दो-बारा गाते समय वह फिर से दुहराया ही जायगा। अन्तरा गाने के बाद स्थायी की पहली सम तक का हिस्सा गाना होगा। वह गाने के पहले एकाध छोटी-सी तान जोड़ी जाय तो अधिक अच्छा। कुछ ख्यालों में ऐसी तानें जानबूझ कर रखी जाती हैं, उन्हें ख्याल के अंगभूत ही मानते हैं। अंतरा के बाद स्थायी की पहली सम दिखाने के बाद तानों की ओर झुकना होता है। पहले चीज़ के हिस्से बदलकर छोटी-छोटी बोलतानें उसी के अंग से गाई जाती हैं। छोटी-छोटी तीन-तीन, चार-चार स्वरों से लेते हुए उसी में चीज़ के शब्द होते हैं। बोलों के पदच्छेद की ओर अधिक ध्यान देना होता है। कोई छोटा अक्षर, जैसे 'नज़र' इस शब्द में 'न' अथवा 'ज़' लेकर उस पर तानें लेना अच्छा न होगा; इसीलिये गाई जानेवाली चीज़ का अर्थ अथवा उसका मर्म गायक को मालूम होना आवश्यक है। मुझे अच्छी तरह याद है कि किसी महफिल में एक गायक बुरी प्रकार मुँह बनाकर भद्दी-भद्दी तानें ले रहा था। सुनकर सभा में बैठा एक बृद्ध गायक कहने लगा—"अपनी गायकी को तो देखो ! आप कर क्या रहे हैं ?" उनका यह कहना मुझे बहुत मार्मिक ज्ञात हुआ। ख्याल-गायक बहुधा चीज़ के बोल लेकर ही अपने राग का विस्तार करते हैं। प्रत्येक बार एक नियमित स्वर निश्चित करके अनेक छोटी-बड़ी तानें लाकर उस पर छोड़ते हैं। मन्द्र सप्तक में अनेक तानें बनाते हैं। दरबारी, पूरिया, यमन, छायानट वगैरह की तानों में हमेशा चीज़ के कुछ योग्य बोल होते हैं। वैसे बोल न लेना ख्यालिये का दूषण भी समझा जाता है। वादी स्वर पूर्वाङ्ग में होने पर उस पर भी दो-तीन स्वर लेते हुए मन्द्र सप्तक के आधार से अच्छे गायक कितनी ही तानें गाते हैं। धीरे-धीरे तान के स्वर बढ़ते जाते हैं, अर्थात् लय भी क्रम से बढ़ती है और उसी के अनुरोध से तबलची अपनी गति बढ़ाता है। यह सब क्रमशः अपने-आप होता है। इसे स्थायी भरना कहते हैं। पुराने गायक नये लोगों से हमेशा कहते है—"स्थाई तो अच्छी तरह से भरो।" छोटी तानों में से बाद को बड़ी-बड़ी तानें उत्पन्न की जाती हैं, उसमें चीज के थोड़े बोल रहते हैं। इन तानों को गाते हुए सम पर बार-बार आना ही होता है। तान लेकर स्थायी के सब अंग भरने के बाद 'फिरत' शुरू करते हैं। फिरत में तान शुरू होने की जगह और वह खत्म होने पर स्थायी से मिलने की जगह बहुधा निश्चित रहती है। फिरत में चीज़ के बोल लेना ही होगा, यह कोई साधारण

नियम नहीं। फिरत में एक ही तान को दूसरी जोड़कर बड़ी तान भी गा सकते हैं। फिरत में स्वर का एक नियमित क्रम रखा जाता है। सम छोड़कर चाहे जैसे घूमकर सम का संभालना यह सब से आखिरी सीढ़ी है। ख्यालियों की गायकी टप्पा गानेवालों से अलग रखनी होती है। आजकल बहुतेरे ख्याल-गायक बहुत समय अंतरा गाते ही नहीं और ख्याल आरम्भ होने की देरी नहीं कि, आड़ी-तिरछी तानें उड़ाने लगते हैं, यह बात दूषणीय अवश्य है। जैसे सम पर आकर गिरना, यह बात पुराने ख्यालियों की दृष्टि में स्तुत्य नहीं। कोई कहते हैं कि, श्रोताओं को राग न समझ पड़े, इस गरज से वे ऐसा करते हैं। हम कौन-सा राग गा रहे हैं, यह ज्ञान होने पर ही श्रोताओं को सच्चा आनन्द मिल सकता है, ऐसा मेरा मत है। वस्तुतः मन में यही विचार कर कि अमुक राग गा रहा हूँ और उसके स्वर-नियम ये हैं, यह कह देने से ही श्रोताओं को सच्चा आनंद होकर गायक का हित होगा। राग चाहे नया हो अथवा पुराना। उसके नियम दूसरे के नियमों से न मिलें, किन्तु गायक अपने नियमानुसार भी यदि गावे तो उसकी मैं तारीफ करूँगा। गायक बहुत बड़े हैं और बड़ी-बड़ी तानें मार रहे हैं, उसी प्रकार कोई अप्रसिद्ध राग होगा, ऐसा समझकर आनन्द मानने वालों में से मैं नहीं हूँ। हद्दु-हस्सू खाँ बड़े नामी हो गये, परन्तु उन्होंने नये राग उत्पन्न कर के कीर्ति नहीं मिलाई। उनकी सैकड़ों चीजें आजकल भी प्रसिद्ध हैं, किन्तु उनका गाना ही अलौकिक था ऐंड़-बैंड़ मिश्रण करके तानें मारना, इसमें तारीफ के लायक मैं कुछ भी नहीं समझता। तारीफ अच्छे गायन पर है, अश्रुत (अरूप) रागों पर नहीं, यह तत्व हमेशा ध्यान में रखना चाहिये। गायक स्थायी भली-भाँति भरकर फिर अंतरा आरम्भ करे तो सुननेवालों का जी नहीं ऊबता। अमुक गायक की गायकी बड़ी ही बिकट है, यह बात सुनकर मुझे कुछ भी सहानुभूति नहीं होती। चीजें पुरानी और घरानेदार तथा गायकी भी पुराने ढंग की, ठाहलय से द्रुतलय तक क्रम से नये-नये प्रकारों से भरी हुई हो तो मैं बहुत पसन्द करूंगा। "अजी साहब, उसके राग का नाम कोई भी न बतला सका और वह तो धड़ा-धड़ तानें मार रहा था"—यह सुनकर मैं तो यही कहूँगा कि, उसकी तालीम कच्ची होने से ही उसे ऐसा करना पड़ता है। यदि कोई फरमाइश ही करना हो तो पुराने राग क्या कुछ कम हैं? उदाहरणार्थ छायानट, शंकरा, देशकार, हिंडोल, जैजैवंती, जेत-कल्याण, श्याम-कल्याण, मालीगौरा, साजगिरी, बराड़ी, नायकी, कौंसी, । सूहा, शहाना इन रागों में यदि एक ठाहलय की और दूसरी द्रुतलय की चीज़ गाई जाय तो श्रोताओं को आनन्द होगा। और अधिक आगे कहूँगा। (अपूर्ण)

—'बी'

—'संगीत' त्रैमासिक, लखनऊ से उद्धृत

HOW BILAWAL CAME TO BE SHUDDHA SCALE?

Pt. V. N. Bhatkhande

It has often been asked how did Bilawal scale come to be recognised as the Shuddha scale of the modern Hindustani Music ? It must be admitted that no Sanskrit Grantha, so far made available, mentions the Bilawal scale as its Shuddha scale. The scale itself was an old scale and known to almost all writers of music, but it was never recognised as the Shuddha scale by any of the old Sanskrit writers. It must also be admitted that we cannot tell who first started it and when—in the absence of written authority.

The most ancient Granthas, so far known on music are the Natya Shastra of Bharata and the Ratnakara of Sharangadeva. The Shuddha scale of both these Granthas it can be easily proved, is not the Bilawal. The Natya Shastra was written in the fifth century and the Ratnakara was written in the thirteenth century. Then we have the Granthas of the 15th, 16th and 17th centuries like Raga Tarangini, Hridaya Koutuk, Hridaya Prakasha, Parijat, and Raga Tatwavibodha written by Lochan, Hridaya, Ahobala and Shriniwas respectively. The Shuddha scale of these was like that of our modern Raga Kaphi. Lochan lived in Mithila and believed to have written his Raga Tarangini about the middle of the 15th century. The date of Tarangini as given by Lochan himself is as follows :—

'भुजवसुदशमितशाके श्रीमद्बल्लालसेन-राज्यादौ ।'

Which works out as 1082 Shaka year. Lochan lived after Vidyapati because the latter has been freely quoted by the former in the Tarangini. This no doubt raises an important question about the actual date of the Tarangini but our question at present is of Lochan's scale and not his date. The Shuddha scale of Lochan and his follower Hridaya

Narayan Dev was undoubtedly one like that of our modern Kaphi. The proof of the statement will be found in Hridaya's Grantha Hridaya Prakash wherein the author fixes the actual places of the Suddha swaras by the lengths of the Vina wire. These places work out as follows :—सा = (240 vibrations assumed); री = 270; ग = 288; म = 320; प = 360; ध = 405; नि = 432; सां = 480. Ahobala and Shrinivas in their Granthas संगीत-पारिजात and रागतत्त्वविबोध agree entirely with Hridaya as to the Shuddha scale. As Lochana nowhere says that he was the first originator of the Kaphi-like Shuddha scale, we may take it that the सैन्धवी (modern Kaphi) as Shuddha scale must have long preceded Lochan and Hridaya.

The Southern Music Granthas had quite a different Shuddha scale. This will appear from the recognised authorities on music in that part of the country. Swaramelakalanidhi, Raga Vibodha, Chaturdandi Prakashika, Sangit Saramrit and Raga Laxanam are looked upon as Southern Sanskrit authorities on music. The Shuddha scale of these Granthas is neither Kaphi nor Bilawal. It is entirely a different scale. That scale remains Shuddha to this day. With us Northerners, however, the Kaphi scale (old सैन्धवी) has been replaced by the Bilawal scale.

Before proceeding further we had better add a word or two regarding the scale of the Natya Shastra and the Ratnakar. The Swara-Paribhasha of both these Granthas is entirely Southern. Many of the Raga of Ratnakar now occur in the Southern system of music and are unknown to the Northern musicians. The Sanskrit writers of the south claim Ratnakar as their own authority (Vide कलानिधि, चतुर्दण्डी, सोमनाथ, and तुलाजी) The Northern musicians know Ratnakar only by its name. The most important Sanskrit commentary on the Ratnakar was written by Pandit Kallinath of Vijayanagar. On matters of Shuddha scale and allied questions we have nothing to contradict the claim of the Southern writers. The burden of the proof that Bharat and Sharanga-

deva are Northern authorties would lie on those who hold that view.

The following facts are worth remembering also. Tansen the great singer and his Master Swami Haridas lived in the time of Emperor Akbar i.e. about the latter half of the 16th century. They have left numerous musical compositions all based on Bilawal as the Shuddha scale. We have some compositions of Baijoo Bawla, who lived in the time of Alauddin Khilji, a ruler of the 14th century.

They appear to have been based upon Bilawal as the Shuddha scale.

Here, then, an interesting question arises. Did not Lochan and his successors know anything, in the musical line, about what was already being done in Delhi and its surroundings ? Mithila was not so far from Delhi and we have some Mahomedan Raga-names in Lochan's Tarangini. Why did Lochana and others stick to their Saindhavi scale and ignore the Bilawal ? No doubt we have instances of other Sanskrit writers who ignored the Bilawal scale and stuck to their old scale. I am referring to Pundarik Vithal and Bhava Bhata and his father Janardan. These last mentioned Pandits not only lived among Mahomedan musicians but have actually described some of the Ragas which the Musulman Musicians have introduced into the Northern music system. These Pandits seem to have knowingly ignored the Bilawal scale used as Shuddha by the Musulmans and stuck to their own Southern मुखारी scale. Why did they do so? Could it be because the Bilawal scale was preferred by the Mahomedan musicians? Or could it be because the Bilawal scale contravened the old Sanskrit rule.

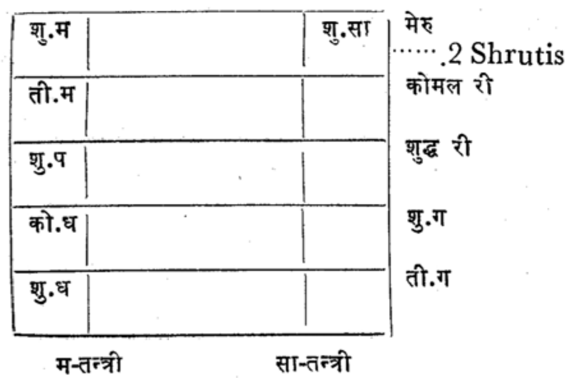
"वेदाचलाङ्क-श्रुतिषु त्रयोदश्यां श्रुतौ ततः ।
सप्तदश्यां च विंश्यां च द्वाविंश्यां च श्रुतौ क्रमात् ॥
षड्जादीनां स्थितिः प्रोक्ता प्रथमा भरतादिभिः ॥"

It is quite true that in the Bilawal scale the above-mentioned rule is transgressed because those who accepted

this scale put the Shadja on the first Shruti. In fact they introduced a new rule :

'बिलावले मतः षड्जः प्रथम श्रुतिमाश्रितः ।
ग्रंथेषु दृश्यते चासौ चतुर्थ्या स्थापितो बुधैः ।।'

Here then arises an interesting question, which of the two methods is more correct or more scientific ? To answer this question we must test all these scales with the help of a Vina. Fortunately the Vina was tuned and fretted alike all over the country. We shall take Ahobala's Shuddha scale first for examination.



Here is a portion of the Vina which carries the first six Swara frets. We find here that the Shuddha Ri and Shuddha Pa of Ahobala stand on the same fret ? But we know that the distance of प from the म on the मेरु is four Shrutis. Ahobala says his Shuddha Ri is of three Shrutis ? Ahobala also gives the exact length of the string which produced his Shuddha Ri. This length enables us to state his Shuddha Ri in terms of comparative vibrations. In fact his Shuddha Ri would be of 270 vibrations as compared with सा with 240 vibrations. This would give an interval of 9/8 between सा and री. The interval between म and प is known to be 9/8. Therefore the Shuddha Ri of Ahobala could not be 4 Shrutis above सा. Then again the Shuddha Ga as described by अहोबल gives 288 vibrations which is the sound of the 6th Shruti above सा and not the 5th as stated by Ahobala. According to the old Sanskrit rule Shuddha Ga must

be two Shrutis above Shuddha Ri. The Shuddha Ri and Shuddha Ga as described by Ahobala therefore are wrong and have to be put right by raising them one Shruti each. Ahobala goes on to say that his तीव्र ग should be one Shruti higher than this Shuddha Ga. According to the corrected series of Aho bala Shuddha Swaras they will be as under :—

4	सा··········1	4	मेरु—शुद्ध सा
	··············2	5	
	··············3	6	4 Shrutis
	··············4	7	
	री··········5	8	
			शुद्ध री 270 Vibrations 2 Shrutis
3	············6	9	शुद्ध ग···288 1 Shruti
	············7	10	
	ग············8	11	
			तीव्र ग
2	············9	12	
	म··········10	13	
			शुद्ध म······320
4	············11	14	
	············12	15	
	············13	16	
	प··········14	17	शुद्ध प······360
4	············15	18	
	············16	19	
	············17	20	
	ध··········18	21	शुद्ध ध······405
3	············19	22	
	············20	1	
	नि·········21	2	
2	············22	3	शुद्ध नि......432
	सा··········1	4	
			शुद्ध सां······480

But will this series satisfy the great Sanskrit rule :'चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपञ्चमा: & c.? Of course not. Because the series here would be 4, 2, 3, 4, 4, 3, 2, and would contravene the great basic rule. But examine the new series created by the connection as shown in the table. You have brought into existence the present Bilawal Shuddha scale following

the old Sanskrit rule चतुश्चतुश्चतुश्चैव &c. The only difference being that you have put the सा on'the first and not on the 4th Shruti as laid down by the ancient Sanskrit writers. The रि ग ध and नि of this Bilawal Shuddha scale are Shuddha according to the Shastra rule चतुश्चतुश्चतुश्चैव & c., but they are rightly तीव्र Swaras. Hence the two names in practice शुद्ध and तीव्र for these four Swaras. The new names तीव्र री, तीव्र ग, तीव्र ध and तीव्र नि also show clearly that the predecessor of the Bilawal scale must have been a scale like that of Ahobala. Thus we may take it that the Northern musicians got their Bilawal scale by connecting a scale like the one which was mentioned by Lochana, Hridaya, Ahobala and Shriniwas. We find all Mohomedan singers and players using the term तीव्र in connection with the notes रि ग ध नि of Bilawal. They never call them Shuddha. Hence it will not be wrong to conclude that they were the first to have prepared the Bilawal scale as against the old Indian scale represented by Lochana and Ahobala. They might have done it when they settled in the country permanently. Bilawal scale was not brought into India by the foreigners because it was a well known scale. They simply preferred it to the other as being more correct in practice. The ध of this scale is 4 Shrutis above प and not three as suggested by some of our modern Pandits. (Vide Clements and Dewal).

Let us now turn to the Shuddha scale of Southern music. I have already said that the Southerners tuned their Vina just the same way as the Northerners did. (Vide रागविबोध, स्वरमेल कलानिधि). The reformers of the Southern system must have found that पञ्चश्रुति रि which corresponded with प could not be right. They knew the distance between म and प was 4 Shrutis. They, therefore, corrected the mistake by putting the पञ्चश्रुति रि in its right place, namely on the 4th Shruti above सा. The distance between this Ri and the Shuddha Ri, according to the Shastras was to be two Shrutis, and so they had to lower the Shuddha Ri by one Shruti and make it a note of 2 Shrutis above सा. The साधारण गान्धार

was right on the 6th Shruti. The old scale was called मुखारी. The reformed one was called कनकांगी. In the कनकांगी scale the Shuddha Ri is of 2 Shrutis and the next note शुद्ध ग is चतुः श्रुति रि. The Sanskrit Grantha adopting this new innovation is रागलक्षणम्.

The arrangement will show that the Southern Shuddha scale had really nothing to do with the Northern. The rule चतुश्चतुः & c. did not govern the Southern system at all. In other words the Northern scale was a real Diatonic scale and the Southern was more or less a chromatic. We can therefore understand that a beginner in the Southern presidency begins with Bhairava or Maya Malava scale, while the Northern beginner always begins with the Bilawal scale.

—'संगीत' त्रैमासिक, लखनऊ से उद्धृत

AN ADVICE TO A SERIOUS STUDENT OF MUSIC

Pt. V. N. Bhatkhande

How should a music scholar begin his study of the Hindustani Sangit Paddhati ?

He will do well to first begin with the Sanskrit literature at present available. The Sanskrit literature will not help him much in mastering the present Hindustani Sangit system but it is useful to have a clear idea of his old music before he takes up the study of the music as he finds it at present. It may be considered as only of an academic interest but I would insist upon its study if the scholar wished to build a sound structure. It is something like the study of Archaeology. Government has engaged a large establishment for Archaeology simply to find out what the ancient history of India really was. The study is really interesting.

A reference to the report of Gayan Samaja will show that in olden times there have been hundereds of writers

on the subject of Hindu Sangit. The report itself gives about a hundred names of Granthas on Hindu Music.

The student need not be afraid of such a big list of Granthas since most of them are at present not available. I wish the student to master only about 16 or 17 of them and I believe they will be quite enough for his purpose. He should of course be on the lookout for fresh ones and if he can secure them should study them carefully so as to add to his knowledge.

The Granthas I would recommend to him just at the begining of his study would be the following :—

भरतनाट्य शास्त्र	सद्रागचन्द्रोदय
संगीत-रत्नाकर	रागमाला
संगीत-दर्पण	नर्तन-निर्णय
रागतरंगिणी	रागमंजरी
हृदय-कौतुक	संगीत-कौमुदी
हृदय-प्रकाश	चतुर्दण्डि-प्रकाशिका
संगीत-पारिजात	संगीत-सारामृत
राग-तत्त्व-विबोध	स्वर-मेल-कलानिधि
अनूप-संगीत-विलास	राग-विबोध
अनूप-संगीत-रत्नाकर	राग-लक्षण
अनूप-संगीत-अंकुश	बृहद्देशी

If he reads these Granthas carefully he may be said to have become ready for his study of the present Hindustani Sangit, that is the Sangit which he hears in practice today.

There are two great music systems in the country, viz, the Northern and the Southern. The Northern is now known as the Hindustani Sangit system and the Southern is known as the Karnatik or the Dravidian system. Let there be no dispute regarding these names. We must accept them as the correct and current names of the systems. Each system has its own Paribhasha and more or less its own grammar. We must accept these as we find them. The student must patiently plod through these uninteresting, sometimes unintelligible Granthas and must not throw out their study prema-

turely in search of the present Raga systems. There should be nothing like haste in his procedure. Real study is always slow.

The first question that will arise is from where, that is, with what Grantha should he begin ?

I say, he should not look at Bharat or Sharangadeva just at the start. He should go back to these after going through the other Granthas mentioned in the list given above. In my opinion he may take up the Sangit Darpana to start with. But here again, I shall warn him not to expect explanations (the modern equivalents of the terms used in the book) of the theories dealt with from the point of view of the modern music. He must remain satisfied with following the language of the Grantha only. I may tell him he may not meet a Pandit in the country, at present, who will throw any light on the music detailed in the Darpana. This I speak from experience. He will, therefore, simply read the book and follow the language carefully and make his own notes of the difficult portions on which clear light is necessary. Although Pandit Damodhar has written the Darpana, there is nothing original in it. He has borrowed from older Granthas and put the same as his own. The Raga Adhyaya again he has borrowed from some other Grantha and put it in his book so as to make the whole an incongruous amalgamation or mixture.

I do not wish to prejudice the mind of the student against the author of the Darpana but shall wait to hear from the student his own opinion later on.

After Darpana a hasty look may be given to the Ratanakar Swaradhyaya, and having done that the student should give his attention to the Shruti Swara portion of Bharat.

All these three Granthas, in my opinion, have become unintelligible and obsolete and will go out from his present study.

The real useful work will begin with the Tarangini of

Lochan Pandit, which is a very intelligently written small book. Then will follow the Koutuk and Prakash of Hridaya and so on.

The first warning I would give to the student is that he should not take seriously the mythological or yogic statements which he will find in almost all the Sanskrit Granthas. These writers were not Yogis and have only borrowed the material from some older Granthas to add a kind of spicing to their own. I should never mix up anatomy, physiology and such other things with music, unless I am convinced that their study is really essential for the prosecution of my study of music. These subjects are quite independent and need not be given special attention in the study of Music Granthas.

In reading the Sanskrit literature again we will confine our attention to the Swara and Raga Adhyayas only. Sangit comprises the three arts गीत, वाद्य and नृत्य. We shall confine our attention to the first i. e. "गीत" or Vocal music only. गीत and वाद्य form special subjects and to study them special qualifications in a teacher will be necessary. We will study these alone. To come to the संगीतदर्पण then, the book was written by Chatura दामोदर Pandit, son of लक्ष्मीधर. Its date is believed to be about 1625 A. D. Nobody can say regarding the place where the ग्रन्थ was written. It deals with the Northern Ragas although the Swaradhyaya is all borrowed from Sangit Ratnakara of Sharangadeva Pandit. We shall take up the Swaradhyaya. The language of the grantha is not difficult. The author has dropped the जाति प्रकरण and the कपाल-कंबल प्रकरण of Ratnakar but does not say why he has preferred to do so.

—'संगीत' त्रैमासिक, लखनऊ से उद्धृत

THE great architect of the renaissance of Hindustani music, Vishnu Narayan Bhatkhande (1860-1936) belongs to a period of Indian history which saw a new and great awakening in all spheres of life. It was a period that saw the end of mere imitation of the Western modes on the one hand and mere revivalism on the other—a period of re-affirmation of all that was best in the past of India and readjustment of the past to new realities.

Bhatkhande was born on the day of the Janmashtmi festival (August 10, 1860). His birth anniversary is traditionally celebrated on Janmashtmi Day which, this year, falls on September 1. Hence the choice of this date for the issue of a special 15 nP. postage stamp by the Posts and Telegraphs Department to pay homage to a man who put modern Hindustani music on a new path of constructive development. The special stamp marks the 101st anniversary of the birth of Bhatkhande.

Educated at Elphinstone College, Bombay, and Deccan College, Poona, Bhatkhande graduated in 1885 and joined the legal profession in 1887. After a spell of teaching at a high school, he practised law at the High Court where he earned a creditable name within a short time.

His interest in music began during his college days when he started learning the sitar from Shri Vallabhdas. Within a few years he mastered the instrument sufficiently well. He joined the Gayan Uttejak Mandali, a well-known music circle in Bombay, and learnt vocal music under Raojibua, a Dhrupad singer. He also studied music with Mohd. Hussain Khan (younger brother of Inayat Hussain Khan) who was on the staff of the Mandali. His interest in music was not confined to learning the practice of it. He began to study the ancient texts such as "Bharat Natya Shastra", "Sangeet Ratnakar", etc. Side by side, he took up the study of standard works on Western music.

A fact which came to his notice was that music, as it was then practised, had very much changed, in its form, from what was described in the ancient texts. In fact he found that the definition of Shrutis and scales as given in ancient texts such as "Bharat Natya Shastra", "Sangeet Ratnakar" or "Parijat" differed very much from the practice prevailing in the musical world of his time. He realised that there had been a great deal of transformation in the practical shape of music and a complete new systematisation and classification was necessary to put the existing musical system as prevalent in Hindustani music on a sound footing.

The work was extremely difficult. There were hardly any musicians left who had any knowledge of theory or of ancient texts. Practising musicians of those days were extremely reluctant even to demonstrate fully their own practical knowledge. They treated music rather as a "treasure". With the rapidly disappearing patronage of the various princes, music had dwindled down to a few small centres and the number of authoritative and good musicians was sadly depleted. The task had also become more difficult on account of the conservatism of the musicians and their refusal to consider anything beyond their ken as something knowledgeable or according to the *Shastras*.

After the death of his wife and daughter, Bhatkhande practically abandoned his legal practice and devoted the rest of his life to the aim of systematising the prevailing forms of Hindustani music and building on their basis a systematic and



"संगीतोद्धार के अभियान में अब अधिक विलम्ब करने पर सारे उत्तमोत्तम कलाकार हम खो बैठेंगे और फिर किस नमूने पर इसका शास्त्र ढाला जायेगा ?"

coordinated theory and practice of music. His main aim was to formulate a set of rules that would make knowledge of music accessible to all its lovers. He organised many music conferences, in order to bring about an agreement regarding the prevailing standards and forms of music.

For gaining a thorough knowledge of musical lore, he toured throughout India, visiting well-known libraries and private collections. He acquired from them ancient texts in Sanskrit, Hindi, Telugu, Tamil and other languages. He himself edited and published the more important among them. At the same time, he visited every musician of note in the Hindustani music world and tried to get from him knowledge of prevailing practices. He spent quite some time in Gwalior, Baroda and Rampur, which were important centres. In Rampur, he collected some very important Dhrupads of Tansen from the late Wazir Khan and the late prince Sadat Ali Khan.

His profound knowledge of music and keen ear enabled him to record the large number of standard compositions he had collected in correct notation in *swara* and *tala* for the first time. This missionary work was accomplished in the face of enormous difficulties. Skilful diplomacy on his part enabled him to get together this unique collection from professionals who were extremely reluctant to part with their "treasure"

Equipping himself thus with a thorough knowledge of the ancient Shastras and the present practice and forms of Hindustani music, he took up the task of systematising the whole. In doing this, he tried to coordinate the existing practical forms and based them on a rational theory which had its root in the ancient texts, but which, at the same time, did not try to read a meaning into them which did not exist. He frankly acknowledged where present practice differed from ancient ideas. His first publication was a small booklet called "Swar Malika" containing set compositions, describing all the ragas generally prevalent. The first of the series came out in 1907. In 1909, he published the Sanskrit text "Shri Mallakshya Sangeetam". This contained model compositions composed by him and describing known ragas. He also published at about this time his first book on "Hindustani Sangeet Paddhati" which was an authoritative and detailed commentary of the prevailing raga music. The four volumes of this work are still the only standard treatises on Hindustani music, detailing all the practical ragas and explaining the Shastric background.

Bhatkhande realised that in order to spread music it was essential to have proper music schools and colleges teaching music in a rational and correct way. He took up this task in his systematic and energetic manner. In 1916, the reorganisation of the Baroda State music school was completed under his guidance. With the active support of the Maharaja of Gwalior, he helped in the establishment of the Madhav Music College, at Gwalior. Later, in 1926, the Marris College of Music was established in Lucknow under his guidance with the help of the U.P. Government. He prepared detailed study courses for these institutions. Realising the necessity of reliable text-books for the guidance of teachers and students, he prepared a series of standard text-books well known as "Hindustani Sangeet Kramik Pustak Malika". These text-books contain practically all the important prevailing ragas, give their basic theory and illustrate them with standard traditional composition in notations. They are still the only standard and authoritative text-books of Hindustani music.

Having devoted all his life to the cause of music



" 'संगीत' संसार की भाषा है। उसे पुनः नये रूप से सक्षम बनाने पर हमारे हाथ में एक बड़ी सम्पत्ति आ जायेगी। संसार की बहुत-सी मलीनता संगीत द्वारा मिटाई जा सकती है। स्वर और लय आत्मा को रहस्यपूर्ण गहराई तक पहुँचाते हैं।"

he passed away on September 19, 1936. He was able to accomplish in his life-time the Herculean task of discovering and collating ancient texts, investigating thoroughly the prevailing forms and compositions and ultimately systematising the whole so that the future development of Hindustani music could take place in a coordinate and systematic way. The task required a combination of diverging qualities which is difficult to find united in one person. Single-handed, he achieved what many scholars and musicians would have been able to carry out with great difficulty. The re-establishment of the important place of music in society and its cultural life was a task which he successfully initiated.

His achievements in the field are epoch-making. He gave a cohesion and brought order out of chaos in the world of Hindustani music, gave it a direction and set a pattern. The renaissance of Hindustani music and its rapid growth during the last few decades is greatly due to his guidance and inspiration.

Works published by Pandit Bhatkhande

I. Books written by him:

His important works are:

(i) "Shri Mal-Lakshya Sangeetam"

A treatise on the theory of Music in Sanskrit in slokas and describing the important Ragas.

(ii) "Lakshan Geet Sangraha" in three parts

Compositions descriptive of the Ragas, giving their characteristics in song. This is a practical corollary to "Lakshya Sangeetam". These have been specially composed by Pandit Bhatkhande.

(iii) "Hindustani Sangeet Paddhati" in 4 parts

A commentary on the Lakshya Sangeetam in Marathi. It is a detailed study and discussion of the theory of music and explanation of 150 Ragas of Hindustani music. This important work has been translated into Hindi.

(iv) "Kramik Pustak Malika"

This important book was published in six parts. It is a detailed text-book of Hindustani music, describing all the important Ragas, their theory and illustrated with well-known compositions in notations. It contains about 1,200 such compositions.

Other books written by him are:

(i) "Swara Malika" (in Gujarati characters) Notation of Ragas in Swaras and Tala

(ii) A Comparative Study of the Music Systems of the 15th, 16th, 17th and 18th Centuries (in English)

(iii) Historical Survey of the Music of India

(iv) "Geeta Malika"—which were originally published in 23 monthly issues, each containing 25 to 30 classical compositions of Hindustani Sangeet in notation.

(v) "Abhinava Raga Manjari" (in Sanskrit)

A treatise on the Ragas of Hindustani music, each being described briefly in one simple sloka.

(vi) "Abhinava Tala Manjari"

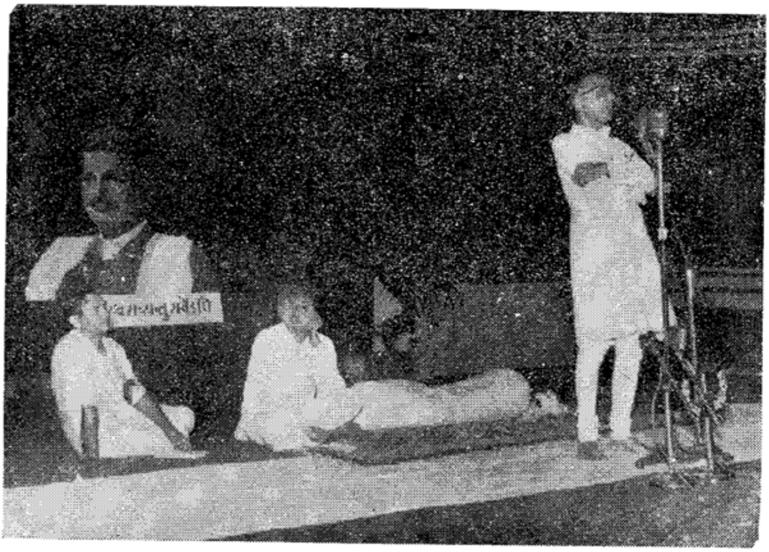
A text-book in Sanskrit on the Talas

II. Old manuscripts edited by him

(i) "Swara Mela Kalanidhi" by Ramamatya
(ii) "Chaturdandi Prakashika" by Venkatmakhi
(iii) "Raga Lakshanam"
(iv) "Raga Tarangini" by Lochan
(v) "Raga Tattva Vibodh" by Shriniwas
(vi) "Sadraga Chandrodaya" by Pundarik Vithal
(vii) "Raga Manjari" by Pundarik Vithal
(viii) "Raga Mala" by Pundarik Vithal
(ix) "Nartan Niranaya" by Pundarik Vithal
(x) "Sangeet Sudhakar" by Kashinath Shastri Appa Tulsi
(xi) "Sangeet Kalp Drumankur" by Kashinath Shastri Appa Tulsi.
(xii) "Raga Chandrika" by Kashinath Shastri Appa Tulsi
(xiii) "Raga Chandrika Sar" (Hindi)



" 'संगीत' बालकों के चरित्र-निर्माण में प्रभावशाली साधन है। हठवादिता, विचार एवं व्यवहार की रुक्षता, अनौचित्य को दूर कर चरित्र में दृढ़ता, संयम, अनुरूपता की वृद्धि कर आनन्द की ओर अग्रसर करता है।"



समारोह के सचिव श्री चिंचोरे एवं कार्याध्यक्ष श्री गौतम शर्मा, खाद्य मन्त्री, म० प्र० के साथ ग्वालियर में अध्यक्षीय भाषण देते हुए डॉ० बा० वि० केसकर



ग्वालियर सम्भागायुक्त श्री चटर्जी, नगरनिगम के अध्यक्ष श्री शेजवलकर एवं संयोजक श्री खिरवड़कर के साथ प्रदर्शनी का अवलोकन करते हुए डॉ० केसकर

he passed away on September 19, 1936. He was able to accomplish in his life-time the Herculean task of discovering and collating ancient texts, investigating thoroughly the prevailing forms and compositions and ultimately systematising the whole so that the future development of Hindustani music could take place in a coordinate and systematic way. The task required a combination of diverging qualities which is difficult to find united in one person. Single-handed, he achieved what many scholars and musicians would have been able to carry out with great difficulty. The re-establishment of the important place of music in society and its cultural life was a task which he successfully initiated.

His achievements in the field are epoch-making. He gave a cohesion and brought order out of chaos in the world of Hindustani music, gave it a direction and set a pattern. The renaissance of Hindustani music and its rapid growth during the last few decades is greatly due to his guidance and inspiration.

Works published by Pandit Bhatkhande

I. Books written by him:

His important works are:

(i) "Shri Mal-Lakshya Sangeetam"

A treatise on the theory of Music in Sanskrit in slokas and describing the important Ragas.

(ii) "Lakshan Geet Sangraha" in three parts

Compositions descriptive of the Ragas, giving their characteristics in song. This is a practical corollary to "Lakshya Sangeetam" These have been specially composed by Pandit Bhatkhande.

(iii) "Hindustani Sangeet Paddhati" in 4 parts

A commentary on the Lakshya Sangeetam in Marathi. It is a detailed study and discussion of the theory of music and explanation of 150 Ragas of Hindustani music This important work has been translated into Hindi

(iv) "Kramik Pustak Malika"

This important book was published in six parts. It is a detailed text-book of Hindustani music, describing all the important Ragas, their theory and illustrated with well-known compositions in notations. It contains about 1,200 such compositions.

Other books written by him are :

(i) "Swara Malika" (in Gujarati characters)

Notation of Ragas in Swaras and Tala

(ii) A Comparative Study of the Music Systems of the 15th, 16th, 17th and 18th Centuries (in English)

(iii) Historical Survey of the Music of India

(iv) "Geeta Malika"—which were originally published in 23 monthly issues, each containing 25 to 30 classical compositions of Hindustani Sangeet in notation.

(v) "Abhinava Raga Manjari" (in Sanskrit)

A treatise on the Ragas of Hindustani music, each being described briefly in one simple sloka.

(vi) "Abhinava Tala Manjari"

A text-book in Sanskrit on the Talas

II. Old manuscripts edited by him

(i) "Swara Mela Kalanidhi" by Ramamatya
(ii) "Chaturdandi Prakashika" by Venkatmakhi
(iii) "Raga Lakshanam"
(iv) "Raga Tarangini" by Lochan
(v) "Raga Tattva Vibodh" by Shriniwas
(vi) "Sadraga Chandrodaya" by Pundarik Vithal
(vii) "Raga Manjari" by Pundarik Vithal
(viii) "Raga Mala" by Pundarik Vithal
(ix) "Nartan Niranaya" by Pundarik Vithal
(x) "Sangeet Sudhakar" by Kashinath Shastri Appa Tulsi
(xi) "Sangeet Kalp Drumankur" by Kashinath Shastri Appa Tulsi.
(xii) "Raga Chandrika" by Kashinath Shastri Appa Tulsi
(xiii) "Raga Chandrika Sar" (Hindi)



" 'संगीत' बालकों के चरित्र-निर्माण में प्रभावशाली साधन है। हठवादिता, विचार एवं व्यवहार की रुक्षता, अनौचित्य को दूर कर चरित्र में दृढ़ता, संयम, अनुरूपता की वृद्धि कर आनन्द की ओर अग्रसर करता है।"



विचार-संगोष्ठी एवं संगीत सम्मेलन में भाग लेने वाले कलाकारों का सम्मान



अतिथि कलाकार एवं कार्यकर्त्ताओं का सम्मेलन

संगीत विश्वविद्यालय में पं० भातखण्डे की जन्म-शताब्दी



'तमसो मा ज्योतिर्गमय'
भातखण्डे अनुसन्धान विभाग का उद्घाटन करते हुए पद्मविभूषण श्री हरि विनायक पाटस्कर, भूतपूर्व राज्यपाल, म० प्र०



इसी प्रसंग पर 'भरत-भाष्य' का प्रकाशन घोषित करते हुए विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति श्री ह० वि० पाटस्कर संगीत में अनुसन्धानात्मक प्रवृत्तियों का महत्व समझा रहे हैं। साथ में प्रतिकुलपति श्रीमती रानी पद्मावति देवी, स्त्रायत्त मंत्राणी म० प्र० तथा उपकुलपति श्री प्र० ना० चिंचोरे

इच्छापत्र

स्वयं विधिशास्त्र के ज्ञाता होते हुए भी कोर्ट-स्टेम्प पर लिखा हुआ पंडित भातखण्डे का कोई इच्छापत्र प्राप्त न होना कुछ लोगों के मत से एक विधि की विडंबना है। परन्तु जिस प्रकार का जीवन उन्होंने व्यतीत किया, जिन ध्येयों की पूर्ति के लिये अपने सर्वस्व को न्योछावर किया, उस पर विचार करते हुए जो कुछ हुआ वह उनकी सभी बातों से मेल खाता हुआ प्रतीत होता है। संगीत सेवा से अर्जित किया हुआ ऐसा कुछ भी उन्होंने अपने लिये उपयोग में नहीं लिया, अर्थात् उत्तरदायित्व किसी को समर्पित करना उनके लिये आवश्यक ही नहीं था। प्रस्तुत इच्छापत्र वास्तव में एक संकलन है। अपने शिष्यों से, मित्रों से, देशवासियों से भविष्य में जो-जो कार्य भी वे पूर्ण करा लेना चाहते थे उन उक्तियों को यहाँ पर उद्धृत किया जा रहा है। हो सकता है, यह सारी उक्तियाँ पाठकों के लिए जानी-पहचानी हों। परन्तु पं० भातखण्डे के अनुभवों के निचोड़ के रूप में इन उक्तियों का बार-बार स्मरण करना संगीत-प्रेमियों के लिये, संगीत-साधकों के लिये और आने वाली पीढ़ी के लिये नितांत आवश्यक समझकर द्विरुक्ति का दोष स्वीकार करते हुए भी उन्हें फिर से एक बार सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है। "हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति" के उद्धरणों के लिये संगीत कार्यालय, हाथरस के प्रकाशनों की सहायता ली गई है।

—सम्पादक

संगीतकलानिधि पं०. विष्णु नारायण भातखण्डे का

इच्छापत्र

(१) लक्ष्यसंगीत की अन्तर्वस्तु

प्रिय मित्रो ! मेरा पहले से ऐसा निश्चय था कि प्राचीन एवं अर्वाचीन ग्रंथों का मनन करके उत्तरी सङ्गीत का इतिहास तुम्हारे समक्ष यथा सम्भव स्पष्ट करने तथा उसी प्रकार यथाशक्ति व यथामति तुम्हें जानकारी करा दूँ कि आज उत्तर में तथा महाराष्ट्र में प्रसिद्ध घरानेदार कलावन्त कौन से राग गाते हैं तथा कैसे गाते हैं। मेरे इस संकल्प से तुम परिचित ही हो। मैं समझता हूँ, ईश्वर की कृपा से मेरा संकल्प पर्याप्त मात्रा में सिद्ध हुआ है। तुमने प्राचीन ग्रन्थ सब समझ ही लिये हैं, संभवतः अब ऐसा शायद ही कोई राग हो, जिसे तुम न समझ सको। अपने यहाँ भरत तथा शारङ्गदेव के ग्रन्थों को सङ्गीत का विपुल भण्डार माना जाता है। प्रत्येक नवीन लेखक इन ग्रन्थों के सामने नतमस्तक होकर जो लिखना होता है वह लिखता है। ऐसी प्रवृत्ति आज सर्वत्र देखने में आती है। यद्यपि मैं इन ग्रन्थों के सङ्गीत पर विशेष प्रकाश नहीं डाल सका हूँ, तथापि मेरे कहने का भावार्थ केवल इतना ही है कि उपलब्ध ग्रन्थों में से अनेक ग्रन्थों में क्या कहा गया है, यह तथ्य तुम्हारी समझ में आ जाय। उसी प्रकार प्रचलित सङ्गीत में आज जो अनेक राग हैं, उनको गायक कैसे

गाते हैं तथा उन रागों के सम्बन्ध में उपलब्ध ग्रन्थों में क्या कहा गया है, इसकी भी जानकारी तुम्हें हो चुकी है। भरत-शारङ्गदेव के ग्रन्थों में श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, जाति तथा राग योजना रागरूप देकर बताई गई है। आगे के ग्रन्थकारों को इस योजना का रहस्य बताना चाहिये। कुछ ग्रन्थकारों ने समझ में न आने के कारण अथवा उक्त ग्रन्थों को निरर्थक समझ कर उनकी उपेक्षा करते हुए अपने-अपने ग्रन्थ लिखे हैं, ऐसा स्पष्ट दिखता है। प्रथम बाईस श्रुति परिश्रम से सिद्ध करके, उन पर नियत स्वरान्तरों से ग्राम की शृंखला तैयार करना, बाद में उस शृंखला से विभिन्न मूर्च्छना विभिन्न स्वरों से उत्पन्न करना, उन मूर्च्छनाओं के स्वरान्तरों से भिन्न-भिन्न ग्रहांश के द्वारा जाति पैदा करना तथा जाति से फिर राग उत्पन्न करना। यह सब कृत्य उन ग्रन्थकारों को द्राविड़ी प्राणायाम जान पड़ा हो तो भी कोई आश्चर्य नहीं। इसकी अपेक्षा षड़जग्राम नामक शुद्ध-स्वर-सप्तक लेकर उसमें आवश्यकतानुसार विकृत-स्वर सम्मिलित करके, उन स्वरों की सहायता से प्रथम मेल तथा उससे राग उत्पन्न करने का जो उपक्रम उन्होंने किया वह अधिक सुविधाजनक तथा तुरन्त समझ में आने योग्य था—ऐसा भी कोई कह सकता है।

भरत-शारङ्गदेव के ग्रन्थ हमारी समझ में आ गये, ऐसा प्रकट करके कुछ आधुनिक पंडितों ने उन ग्रन्थों का स्पष्टीकरण देकर कुछ छोटे-मोटे लेख भी प्रकाशित अवश्य किये हैं। परन्तु उन लेखों से अभी तक किसी पाठक का समाधान नहीं हुआ। समाधान न होने का एक कारण यह कहा जा सकता है कि उन प्राचीन ग्रन्थकारों की श्रुति एक नियत-प्रमाण की थी, दूसरे शब्दों में यह कहें कि उन ग्रन्थकारों की बाईस श्रुतियाँ एक नियत-प्रमाण में एक दूसरे से ऊँची चढ़ती जाती थीं। हमारे आधुनिक विद्वान् यह मानकर चलते हैं कि भरत-शारङ्गदेव के चतुःश्रुतिक, त्रिश्रुतिक तथा द्विश्रुतिक स्वर पाश्चात्य विद्वानों के मेजर, माइनर तथा सेमीटोन समझने चाहिये। भरत-शारङ्गदेव की विचारधारा मैंने तुम्हें समझा ही दी है। तब हमारे विद्वानों के सिद्धान्त पाश्चात्य पाठकों को नहीं जँचे तो कौन-सी आश्चर्य की बात है? अच्छा, इन पाश्चात्यों के स्वरान्तरों से रत्नाकर में वर्णित राग भली प्रकार अलग हो ही जाते हैं, ऐसा कहें तो यह भी नहीं हो सकता। फिर इन विद्वानों की गणित-सिद्ध श्रुतिमालिका लेकर हम क्या करें, यह सहज ही कहने में आता है। मेरी तो उनसे यही प्रार्थना है कि उनको भिन्न-भिन्न स्थानों में अपने आधुनिक वाद्य ले जाकर भरत-शारङ्गदेव के श्रुतिस्वर, ग्राममूर्च्छना का प्रदर्शन करके अज्ञ समाज को समझने की व्यर्थ चेष्टा नहीं करनी चाहिये, बल्कि सीधे रत्नाकर के रागाध्याय की ओर बढ़ना चाहिये तथा उन रागों को उन्हीं ग्रन्थों के वर्णन से व स्वतः शोध किये हुए श्रुति स्वरों से गाया जा सकता है, यह सिद्ध करके दिखाना चाहिये।

यह कार्य कैसे करना चाहिये, इसका मैं यहाँ संक्षेप में वर्णन करता हूँ। सुनिये :—
रत्नाकर का पहला "शुद्धसाधारित" नामक राग लें। उसकी व्याख्या शारङ्गदेव इस प्रकार करता है :—

षडजमध्यमया सृष्टस्तारषडजग्रहांशकः।
निगाल्पो मध्यमन्यासः पूर्णः षडजादिमूर्च्छनः।

अवरोहिप्रसन्नान्तालंकृतो रविदैवतः ।
वीररौद्ररसे गेयः प्रहरे वासरादिमे ।।
विनियुक्तो गर्भसंधौ शुद्धसाधारितो बुधैः ।।

यह राग, "षड्जमध्यमा" जाति से उत्पन्न होता है। इस जाति का वर्णन ग्रन्थ में ऐसा है :—

अंशाः सप्त स्वराः षड्जमध्यमायां मिथश्च ते ।
संगच्छन्ते निरल्पोऽशांगाहृते वादितां बिना ।।
निलोपे निगलोपे च षाडवौडुविते मते ।
षाडवौडुवयोः स्यातां द्विश्रुती तु विरोधिनौ ।।

इस जाति से यह राग अमुक ग्राम का निश्चित होता है। अब हाथ में वीणा लो और तीव्र 'रे, ध, ग' स्वरों में तार मिलाओ। अमुक मूर्च्छना बताई है, अतः चिकारी पर अमुक स्वर मिलाओ। आगे (आवश्यक होने से) अमुक "तानक्रिया" करो। ऐसा करने से जो स्वरपंक्ति उत्पन्न होगी, उसमें अमुक स्वर को ग्रह मानकर जाति उत्पन्न करने से इस राग का स्वरूप ऐसा होगा। आगे स्वरकरण ग्रन्थकार ने दिया ही है, वह इस प्रकार पढ़ना चाहिये। उसमें अवरोही "प्रसन्नांत" अलंकार अमुक है तथा अमुक तरह से गाया जाना चाहिये। सारांश यह कि ग्रन्थकार का "शुद्धसाधारित" राग का अमुक मेल उनका अमुक स्वरूप ऐसा स्पष्ट करके समझाया जाय तथा उनमें अंश स्वर कौन से तथा क्यों हैं, यह भी समझा दिया जाय तो बस पर्याप्त होगा। इस प्रकार से रत्नाकर के रागों का स्पष्टीकरण हो तो पाठकों को उस पर मनन करने में सुविधा होगी तथा टीकाकारों के मुँह स्वतः बन्द हो जायेंगे। रागों का स्पष्टीकरण करने से पूर्व रत्नाकर में वर्णित श्रुतिवीणा का भी स्पष्टीकरण किया जाना वांछनीय है। हमारे आधुनिक विद्वानों को दोषी ठहराने का हमें भी अधिकार नहीं। उन्होंने कुछ मनोरंजक तर्क भी किये हैं, यह हम स्वीकार करते हैं, परन्तु अब केवल तर्कों पर ही सन्तुष्ट न रहकर रत्नाकर के राग उन्हें हाथ में लेने चाहिये, ऐसी हमारी उनसे प्रार्थना है।

मैं अपने संभाषण में सोलह-सत्रह मध्यकालीन ग्रन्थों की विशेष चर्चा कर चुका हूँ। यह तुम्हारे ध्यान में होगा ही। वे ग्रन्थ ये हैं :—

१—राग-तरंगिणी
२—हृदय-कौतुक
३—हृदयप्रकाश
४—संगीत-पारिजात
५—संगीत-राग-तत्वविबोध
६—सद्रागचंद्रोदय
७—रागमंजरी
८—रागमाला
९—अनूपसंगीतविलास
१०—अनूपसंगीतरत्नाकर
११—अनूपांकुश
१२—रसकौमुदी
१३—स्वरमेलकलानिधि
१४—रागविबोध
१५—चतुर्दण्डिप्रकाशिका
१६—सङ्गीतसारामृत
१७—रागलक्षण

प्रचलित संगीत का वर्णन करते समय मैंने लक्ष्यसंगीत, अभिनव-राग-मंजरी, संगीत-सुधाकर, कल्पद्रुमांकुर, संगीतचन्द्रिका ग्रन्थों में जो कहा गया है, उसका भी उल्लेख किया है। देशी भाषा के ग्रन्थ संगीत-कल्पद्रुम, संगीतसार, गीतसूत्रसार, राधागोविन्द-संगीतसार, नगमाते आसफी आदि का भी मैंने अवलोकन किया था। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त संगीत-नारायण, सङ्गीतशिरोमणि, सङ्गीतचूड़ामणि, सङ्गीतसमयसार, नारदसंहिता, सङ्गीतविनोद, सङ्गीतचन्द्रिका, सङ्गीतलक्षणदीपिका आदि ग्रन्थ भी मैंने देखे हैं, परन्तु इन ग्रन्थों में रागरूपों का स्पष्टीकरण न होने से उनकी मैंने विशेष चर्चा नहीं की। मेरी समझ से हिन्दुस्तानी सङ्गीत के प्रत्येक विद्यार्थी को चाहिये कि वह मेरे द्वारा बताये गये इन सत्रह ग्रन्थों का भली प्रकार अध्ययन करें और उसके पश्चात् भरत-शारंगदेव के ग्रन्थों की ओर बढ़ें। उन १७ ग्रन्थों में वर्णित सङ्गीत आज हम गा रहे हैं, यह बात तो नहीं; किन्तु उनकी सहायता से हमारे आज के सङ्गीत पर, उसके इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ सकता है। इन ग्रन्थों में से प्रथम बारह ग्रन्थ उत्तर के लिये तथा शेष दक्षिण के लिये उपयोगी हैं, यह मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ। प्रथम पाँच का शुद्ध-मेल "काफी" है तथा शेष सबका शुद्धमेल "कनकांगी" जैसा है।

एक महत्वपूर्ण बात यह है कि ये सभी ग्रन्थकार "मेल व तज्जन्य राग" पद्धति से हमारे रागों का वर्णन करते हैं। अर्थात् वे अपनी-अपनी पद्धति प्रायः बारह स्वरों की सहायता से ही वर्णित करते हैं। उत्तर के ग्रन्थों में से प्रथम पाँच ग्रन्थकारों ने हमारे राग "काफी" सदृश्य शुद्धमेल के आधार पर दिये हैं, यह मैंने कहा ही है। इनमें से अहोबल, हृदय तथा श्रीनिवास इन तीनों ने तो अपने शुद्धमेल के स्वर तार की लम्बाई द्वारा स्पष्ट-रूप से बतलाए हैं, यह तुम जानते ही हो। उनके शुद्ध स्वरों के तुलनात्मक आन्दोलन यदि हम रखें तो वे इस प्रकार होंगे। सा = २४० (ग्रहीत), री = २७०, ग = २८८, म = ३२०, प = ३६०, ध = ४०५, नि = ४३२, सां = ४८०। इनमें से धैवत के अतिरिक्त शेष सभी स्वर हर जगह मान्य होने योग्य हैं। शेष पाँच स्वरों के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। पाश्चात्य पंडित धैवत के आन्दोलन ४०० मानते हैं। कई बार मुझसे यह प्रश्न पूछा जाता है कि तुम अपनी संगीत-पद्धति का बारह स्वरों के आधार पर वर्णन करते हो तो अपने उन बारह स्वरों के आन्दोलन के आधार क्यों नहीं बताते? इस पर एक उत्तर मैं यह देता हूँ कि हमारे गायक आन्दोलनों को लक्ष्य करके राग नहीं गाते। गाते समय एक ही राग में विभिन्न स्वरों की संगति होने से स्वरस्थान स्वतः कुछ आगे-पीछे हो जाते हैं जो मार्मिक व्यक्तियों को दिखाई देते हैं। इसका एक प्रमाण यह है कि उत्तम प्रकार से गाते समय गायक का साथ सच्चे शास्त्रसिद्ध स्वरों में तैयार की हुई हारमोनियम पेटी से नहीं हो सकता। गायक जो स्वर आरोह में लेता है, अवरोह में लेते समय उन्हीं के स्वरस्थान कहीं-कहीं आगे-पीछे हो जाते हैं, जो मार्मिक श्रोताओं को ही दिखाई देते हैं। यही क्यों? किसी भी थाट के स्वर पहले एक गायक से गाने को कहिये और वे ही गाने के लिये दूसरे से कहिये तो उन दोनों के स्वरस्थानों में कहीं-कहीं किंचित् अन्तर दिखाई देगा। गायक जब गाने लगता है, तब उसके मन में इष्ट-राग का चित्र अथवा स्वरूप स्वतः अंकित हो जाता है तथा उस चित्र के विभिन्न भाग अथवा रागवाचक स्वरसमुदाय उसके मन में नियमित रूप से

आते रहते हैं । उनकी सहायता से वह अपना राग कुशलतापूर्वक श्रोताओं के सम्मुख प्रस्तुत करता है । प्रत्येक गायक अपनी पसन्द के अच्छे नामी कलावन्तों के गीत संग्रह कर लेता है तथा उसके आधार पर कुछ स्वरसंगति वह अपने मन से भी तैयार कर लेता है । प्रत्येक राग सिखाते समय सुयोग्य गुरु उस राग का खास अंगभूत भाग अपने शिष्यों को सबसे पहले बताते हैं, उसमें भी तो यही मर्म है । फिर भी जबकि हम अपनी पद्धति बारह स्वरों पर कायम करते हैं तो वे बारह स्वर कौन से हैं ? ऐसा यदि किसी ने प्रश्न किया तो हमें उसको कुछ तो उत्तर देना ही चाहिये । बारह स्वरों में से काफी थाट के सात स्वर तो अहोबल के ग्रन्थ की सहायता से सबने स्वीकार कर ही लिये हैं । अब बात केवल पाँच स्वरों की ही रही, वे हैं—रि कोमल, ध कोमल, ग तीव्र, म तीव्र और नि तीव्र । तीव्र गान्धार स्थान के सम्बन्ध में अहोबल कहता है—"मेरूधैवतयोर्मध्ये तीव्रगांधारमाचरेत् ।" ४०५ आन्दोलनों का धैवत स्वीकार करके तीव्र गांधार के आन्दोलन हम निकालें तो वे ३०१ १७/४३ आते हैं । पाश्चात्यों की शोध के अनुसार वे ३०० हैं । ये सब आन्दोलन एक सैकण्ड में होने के कारण १ १७/४३ भाग छोड़ देने में हम आपत्ति नहीं समझते और वह हमने छोड़ दिया तो तीव्र ग तथा तीव्र नि के आन्दोलन क्रमशः ३०० व ४५० होंगे । अब प्रश्न केवल कोमल रे, कोमल ध तथा तीव्र म का ही रहा । इनके लिये किसी भी संस्कृत ग्रन्थ की सहायता हमको नहीं मिल सकती । कोमल ऋषभ के सम्बन्ध में अहोबल स्पष्ट रूप से कहता है—"भागत्रयान्विते मध्ये मेरो ऋषभसंज्ञितात् । भागद्वयोत्तरं मेरोः कुर्यात् कोमलरिस्वरम् ।" उसकी इस युक्ति के अनुसार यदि हम देखें तो कोमल ऋषभ के आन्दोलन २५९ ३/५ होंगे । पाश्चात्य पंडित इस स्वर के आन्दोलन २५६ मानते हैं । मेरी समझ से गांधार के आन्दोलन ३०० स्वीकार कर लेने पर, १६/१५ प्रमाण अर्धान्तर का अर्थात् सेमीटोन स्वीकार करने में कोई हानि नहीं दिखती । कोमल धैवत उस कोमल ऋषभ का संवादी है अर्थात् उस स्वर के आन्दोलन ३८४ होंगे अथवा पंचम की आन्दोलन-संख्या में १६/१५ से गुणा करने पर भी कोमल धैवत नहीं निकलेगा । तीव्र मध्यम स्वर शुद्ध मध्यम के आगे दो श्रुति पर होने के कारण उसके आन्दोलन ३२०+१६/१५=३४१ १/३ होंगे । गायक गाते समय आन्दोलनों का विचार करके कभी नहीं गाते, बल्कि राग के कुछ नियमित भाग मन में सोचकर उनमें नियमित स्वरसंगति लेकर अपना राग चित्रित करते हैं ।

उत्तम गायक का विभिन्न प्रकार के अलंकारों से अपने राग को सजाकर गाते समय कभी श्रुतिपेटी वादक साथ करने लगे तो उस गायक को अनेक चमत्कार दिखाई देंगे। एक ही राग के आरोह में तथा अवरोह में विभिन्न प्रकार की स्वरसंगतियों के कारण स्वरस्थान स्वतः आगे-पीछे होते हुए दिखाई देंगे। अर्थात् अमुक राग में अमुक स्वर अमुक श्रुति पर होना चाहिये, ऐसा निश्चित करना कठिन है, यह तथ्य उसको दिखाई देगा। शास्त्रीय प्रयोग करके देखने के लिये श्रुतिपेटी वाद्य का हम कभी विरोध नहीं करेंगे। परन्तु उस विषय में जाने की हमें अब आवश्यकता नहीं है। दक्षिण में भी अभी २२ श्रुतियाँ कायम करने का प्रयत्न जारी है तथा बीच-बीच में उन श्रुतियों को राग में विभाजित करने का प्रयोग भी होता आ रहा है। यह सारा परिश्रम प्राचीन ग्रन्थकारों द्वारा कहे गये "वादी तथा सम्वादी" इन दो शब्दों पर अवलम्बित है। इन पुराने शब्दों को लेकर हमारे

आधुनिक विद्वान् क्या-क्या नये सिद्धान्त उन प्राचीन ग्रन्थकारों के पल्ले बाँध रहे हैं, यह देखे तो उन ग्रन्थकारों पर आश्चर्य करने का प्रश्न सामने आता है।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० ७२०, ७२१, ७२२, ७२३, ७२४)

"लक्ष्यसंगीत" नामक सूत्ररूपी ग्रन्थ संस्कृत में तथा संक्षेप में होने के कारण इस ग्रन्थ पर एक विस्तृत टीका मराठी भाषा में लिखी जानी चाहिए। प्रस्तुत "हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति" ग्रन्थ उसी सुझाव का मूर्तरूप है।

प्रत्येक लेखक को अपनी गुरुपरम्परा के अनुसार रागस्वरूप का वर्णन करना चाहिये और फिर जो भी भिन्न-भिन्न मत उसके सुनने में आये हों, उनकी प्रामाणिकता का उल्लेख अपने ग्रन्थों में करना चाहिये। तत्पश्चात् उपलब्ध प्राचीन ग्रन्थों के मत सरल-सुबोध भाषा में अपने ग्रन्थों में उद्धृत करने चाहिये। ऐसा करने से प्रत्येक राग के प्राचीन एवं अर्वाचीन इतिहास की जानकारी पाठकों को हो जायगी।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० ६)

सङ्गीत पद्धति के ये तीन भाग (मराठी भाषा में) सन् १९१० से १९१४ ई० में प्रकाशित हुए। तत्पश्चात् यह अन्तिम चतुर्थ भाग शीघ्र ही प्रकाशित होने को था, परन्तु बीच में अन्य कुछ महत्वपूर्ण काम आ जाने से यह भाग मैं हाथ में न ले सका। वे काम यह थे :—

(१) प्रवास में जिन प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों को प्राप्त किया था, उनको प्रकाशित करना।

(२) 'अर्वाचीन कला' भी सङ्गीत का एक महत्वपूर्ण अंग होने से उस कला पर ग्रन्थ लिखकर प्रकाशित करना।

(३) अखिल भारतीय संगीत परिषद् को सफल बनाने के कार्य में भाग लेना।

(४) कुछ बड़े-बड़े शहरों में अपनी पद्धति के विद्यालय तथा महाविद्यालय स्थापित करना, आदि।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० ६)

(२) मैं प्रगति का विरोधी नहीं

नये सिद्धान्तों की पुष्टि के लिये ग्रन्थोक्तियों के साथ पाश्चात्य विद्वानों के विचारों का ताल-मेल बैठाते समय यह तथ्य सदैव ध्यान में रखना चाहिये कि, पाश्चात्य विद्वानों का अनुसरण मात्र हमारे प्राचीन संस्कृत ग्रन्थकारों को न तो मान्य था और न मान्य हो ही सकता है, यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिये। हम प्रगति के विरोधी नहीं हैं, ऐसा हम बारबार कहते ही आये हैं। पाश्चात्यों के मेजर, माइनर तथा सेमीटोन यद्यपि कुछ स्थानों पर हमारे ग्रन्थों में लागू किये गए हैं, तो भी उससे पाश्चात्यों के सब स्वर हमारे ग्रन्थकारों के गले नहीं मढ़े जा सकते। मध्यम तथा पंचम में अन्तर ९/८ के परिमाण में है, ऐसा सङ्गीतपारिजात से सिद्ध किया गया तो उसी पारिजात में शुद्ध रे तीन श्रुति की होकर उसका षड्ज से प्रमाण ९/८ पड़ता है। सोमनाथ के शुद्ध रे का प्रमाण तो दक्षिण में १६/१५ माना जाता है और उसी का शुद्ध रे तीन श्रुति का ही है, यह तथ्य कैसे भुलाया जा सकता है ?

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० ७४३)

उसी प्रकार प्राचीन ग्रन्थकारों के एक और शब्द के सम्बन्ध में कहना पड़ता है, वह शब्द है मूर्च्छना। भरत-शारंगदेव अपने ग्रन्थों में मूर्च्छना शब्द का प्रयोग करते हैं, यह बात सही है। फिर भी यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उनके रागों में मूर्च्छना कैसी थी, अर्थात् उनके योग से राग के स्पष्टीकरण में कैसी सहायता मिलती थी, यह आज तक हमारे किसी विद्वान् ने सिद्ध करके नहीं दिखाया। भरत-शारंगदेव अपनी वीणा पर पहले तार कैसे मिलाते थे, विवाद तो यहीं से है! उसके सम्बन्ध में हमारे विद्वान् उन ग्रन्थकारों के श्लोक पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करके, वे तार कैसे मिलाते थे, यह बताना पसन्द नहीं करते। और पाठकों को अपने विद्वानों के सिद्धान्तों के समर्थन में कोई प्रमाण वाद्याध्याय में नहीं मिलता, यह भी एक बड़ी कठिनाई है।

मध्यकालीन ग्रन्थकार लोचन, हृदय, श्रीनिवास, अहोबल अपने ग्रन्थों में मूर्च्छना का उपयोग किस प्रकार करते हैं, यह मैं तुमको बता ही चुका हूँ। राग-व्याख्या में जो मूर्च्छना उन्होंने कही होगी उसके आधार पर उनकी पहली उद्ग्राहतान स्पष्ट दिखती है। एक ही मेल में विभिन्न मूर्च्छनाओं से मेल में के वर्ज्यावर्ज्य स्वरों को सम्हालकर वे भिन्न-भिन्न प्रकार के राग मानते थे, ऐसा मानने के लिए अच्छा आधार भी है। उन्होंने प्रत्येक राग का स्वरकरण दिया है, अतः उस स्वरकरण में उन्होंने कैसी मूर्च्छना का प्रयोग किया, यह जाना जा सकता है। इन ग्रन्थकारों के बाद के लेखकों ने मूर्च्छना शब्द का प्रयोग न करके ग्रहांशन्यास शब्द का प्रयोग करके शुरुआत की तथा स्वरकरण देना उचित नहीं समझा। आगे तो ग्रहांशन्यास नियम भी परिवर्तित होता गया, आजकल वादी तथा संवादी स्वर प्रत्येक राग के सम्बन्ध में कहे जाते हैं, और वे भी अपनी-अपनी गुरु परम्परानुसार कायम करने में आते हैं। इससे हम कितने आगे बढ़ गये हैं, यह दिखाई देगा। हम किसी की विचारधारा का उपहास नहीं करना चाहते, हम तो हमेशा स्पष्ट व निर्विवाद लेखों का आदर करेंगे। दक्षिण में आज मूर्च्छना को राग का आरोह तथा अवरोह मानने वाले अनेक पंडित मिलेंगे।

सङ्गीत विद्या में प्रगति के विरुद्ध जाने पर किसी की चल नहीं सकती। पाश्चात्य सुधार का प्रभाव हमारे सुधार पर कितने ही प्रकार से हो रहा है, यह हम प्रायः देखते ही हैं। वाद्य-कला में पाश्चात्यों ने अनेक नये-नये शोध व आविष्कार किये हैं; वृन्दवादन के सम्बन्ध में उनकी कल्पना हमारी कल्पना की अपेक्षा बहुत आगे बढ़ गई है। नृत्य-कला के हेतु वहाँ की महिलाएँ हमारे देश में आती हैं तथा हमारी कला के मर्म का अध्ययन करके लौट जाती हैं। वहाँ जाकर वे इसका उपयोग नये ढंग से वहाँ के श्रोताओं को करके दिखाती हैं, यह सब कैसे भुलाया जा सकता है? इतना ही नहीं, वरन् हमारी आजकल की सङ्गीत कला को अब एक जंगली प्रकार न समझ कर एक विचारणीय कला के रूप में पाश्चात्य मर्मज्ञ पंडित मानने लगे हैं। सारांश यह कि ऐसे समय में हमारे सङ्गीत की राष्ट्रीयता पर उस पाश्चात्य सुधार का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ेगा, ऐसा नहीं कहा जा सकता। परन्तु उस भावी स्थिति पर आज ही विचार की आवश्यकता हो, ऐसा भी बात नहीं। सङ्गीत में हमारा लक्ष्य कैसा था तथा आज कैसा है, केवल इतना ही बताने का मेरा उद्देश्य था।

प्रचलित संगीत पर सम्भाषण करने का यह हमारा चौथा प्रसंग है। अपने सम्भाषण में हमने एक नियत क्रम निश्चित कर लिया था कि हमारे आज के प्रचार में जो लगभग सवा सौ-डेढ़ सौ राग गाये जाते हैं, वे सब उनके स्वरूप के अनुसार मुख्य दस थाटों में पहले बाँट दें और फिर एक-एक थाट को लेकर उस मेल के अन्तर्गत आने वाले प्रत्येक राग के स्वतन्त्र नियम देख लिये जायँ। मेल थाट संख्या दस ही क्यों ? ऐसा यदि किसी ने प्रश्न किया तो उसको हम यह विनम्र उत्तर देंगे कि हम प्रस्तुत विवेचन के लिए अपनी दृष्टि से दस मेल ही पर्याप्त समझते हैं। किसी ने मेल अधिक और किसी ने कम माने तो हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं। मेल कितने व क्यों लिये जायें—यह प्रत्येक ग्रन्थकार अपनी सुविधानुसार निश्चित करता आया है। प्रचलित रागस्वरूप समंजस्यरूप से वर्णित किये जायँ तो बहुत उत्तम है। देश में अनेक स्थानों पर स्वीकृत दस मेल की पद्धति पसन्द की हुई दिखाई देती है। इसलिये हमने वह स्वीकार की, यह अच्छा ही हुआ।

दस मेल के, उनके स्वरों पर से हमने प्रथम तीन समुदाय किये थे, यह तुमको याद ही होंगे। पहले समुदाय में री, ध तथा ग इन तीन शुद्ध-स्वरों को लिये जाने वाले मेल का समावेश किया था। वे मेल हैं कल्याण, विलावल तथा खमाज। दूसरे समुदाय में रे कोमल तथा ग, नि शुद्ध लिये जाने वाले मेल लिये और तीसरे समुदाय में ग तथा नि कोमल लिये जाने वाले मेल हमने माने। अर्थात् दूसरे समुदाय में भैरव, पूर्वी तथा मारवा और तीसरे समुदाय में काफी, आसावरी, भैरवी तथा तोड़ी मेल हमने माने। ऐसी रचना करते समय हमने एक यह तथ्य भी अपने ध्यान में रखा था कि इस वर्गीकरण से राग का समय भी स्थूल दृष्टि से एकदम ध्यान में आ जाता है। आशा है यह सब बातें तुम्हारे ध्यान में होंगी ही।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० ७२४-७२५)

(३) दक्षिणोत्तर संगम

दक्षिण के ग्रन्थों में बिलावल तथा खमाज थाट में और भी कई राग उनके आरोहावरोह देकर वर्णित किये गए हैं। उनमें से कुछ हमारी उत्तरपद्धति में सहज ही सम्मिलित होने योग्य हैं।

वर्ज्यावर्ज्य स्वरों से वादी कौन सा स्वर होगा, यह बुद्धिमान लोगों की समझ में सरलता से आ जाता है और यह तथ्य समझ लेने पर राग रात्रिगेय है अथवा दिनगेय है, यह निश्चित हो ही जाता है। वादी स्वर कायम होने पर कौन-सा स्वर दुर्बल, कौन-सा सम व कौन-सा प्रबल है, यह निश्चित करना गायक की कुशलता पर निर्भर है। फिर भी जो राग आज दक्षिण में लोकप्रिय हैं, वे प्रथम सुनकर तथा उनके जीवभूत भाग ज्यों के त्यों रखकर फिर उनको उत्तर के ढाँचे में ढाला जाय तो मेरी समझ से वे राग सर्वत्र आदर पायेंगे। ऐसे रागों को प्रत्यक्ष संस्कृत ग्रन्थों का आधार होने से उनकी योग्यता के सम्बन्ध में शंका उत्पन्न ही नहीं होती। उत्तर के अनेक राग दक्षिण के कलावन्तों के संग्रह में आज दिखाई देते हैं। दक्षिण के राग संग्रहीत करके उनको उत्तर के मनोहर स्वरूपों में

गाने में कोई आपत्ति नहीं। दक्षिण के आरभी, हंसध्वनि, नारायणी, नागस्वरावली, प्रताप वराली, आनन्दभैरवी, यदुकुलकांभोजी आदि राग हमारे नाटककारों ने उत्तर के संगीत में सम्मिलित कर ही लिये हैं। उत्तर-दक्षिण में आपसी आवागमन बढ़ने से ऐसा होना ही था और मेरे मत से ऐसा होना आवश्यक भी है। दक्षिण में आज भी एक ऐसी गलतफहमी है कि उत्तर के सङ्गीत में कोई पद्धति आदि नहीं हैं, यह भ्रम अब अखिल भारतीय संगीत परिषदों की सहायता से बहुत कम होता जा रहा है। हमारे सङ्गीत की पद्धति वहाँ के पण्डितों ने अभी तक भली प्रकार नहीं समझी है। हमारे रागों में उन्हीं के अनुसार मेल तथा आरोहावरोहादि सब कुछ है, यह तथ्य जैसे-जैसे उनको दिखाई देगा वैसे-वैसे उनका ध्यान उत्तर संगीत की ओर विशेषरूप से आकर्षित होगा।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० ७४१-७४२)

(४) संगीत जो करे उसकी विद्या है

मेरे गुरु रावजी बुवा बेलबागकर ने एक बार मुझ से कहा था कि उन्होंने अपनी ७५ वर्ष की आयु में वारिस खाँ जैसा तोड़ी गाने वाला नहीं सुना। उसने एक बार दो घंटों तक तोड़ी गाई और श्रोता बिलकुल नहीं ऊबे। बल्कि कुछ लोगों के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो चली थी। आँसू दुख के नहीं, आनन्द के। उसका गाना रुकने पर कितनी देर तक हमारे मस्तिष्क में उसके मधुर आलाप का प्रभाव रहा, यह बात भी उन्होंने कही।

अब इस प्रकार के गायक दिखाई पड़ना कठिन ही है। परन्तु यह विद्या तो जो करे उसकी है। किन्तु आगे-पीछे तुम में से ही कोई अथवा आगे की पीढ़ी में ऐसा कोई कलाकार नहीं निकलेगा, यह क्यों सोचते हो? विशेष उत्तम स्वरज्ञान एवं रागज्ञान होने पर और तत्पश्चात् नियमित अभ्यास करने से गले में उज्ज्वलता (रोशनी) पैदा होती है, ऐसा गायकों के मुख से हम सुनते हैं। परन्तु यह सब परिश्रम तथा दीर्घोद्योग पर निर्भर है।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृष्ठ ६८२)

(५) घरानों का इतिहास

जहाँ भी गायकों के घरानों की जानकारी मेरी समझ में आई, वह मैंने तुमको कह सुनाई। किन्तु केवल इतनी जानकारी से गायकों के घरानों का सम्पूर्ण इतिहास तुम्हारी समझ में आ गया, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार का इतिहास प्राप्त करने के कुछ साधन-मात्र मैं बीच-बीच में कह चुका हूँ। आगे-पीछे अवकाश मिलने पर गायकों के घरानों का विश्वसनीय इतिहास लिखने का महत्वपूर्ण कार्य तुम करोगे तो वह अत्यन्त उपयोगी होगा। इस कार्य में पाश्चात्य पंडितों का अनुकरण करना सर्वथा उचित होगा। वहाँ के गायक-नायकों के चरित्र अत्युत्तम प्रकार से लिखे हुए दृष्टिगोचर होंगे। वैसा ही अपने यहाँ होने की आवश्यकता है। इस कार्य में मुसलमानी शासनकाल के उर्दू तथा पर्शियन ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी होंगे। एक तो यह बात है कि मुझे उन दोनों भाषाओं का ज्ञान नहीं है, और थोड़ी बहुत वह आती भी है तो अन्य साधनों के अभाव के कारण यह कार्य मेरे द्वारा नहीं हो सका।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० ४०३)

(६) भावी संगीत; वाद्य और नृत्य में सुधार

प्रिय मित्रो ! विभिन्न ग्रन्थों के यह उद्धरण देकर मैंने तुमको उबा दिया है, ऐसा बीच-बीच में मुझे मालूम पड़ता है। परन्तु मेरा स्वयं का मत यह है कि जो विषय सीखना हो उसका पूर्व इतिहास हमें अवश्य मालूम होना चाहिये। मैं हिन्दुस्तान के बाहर कभी नहीं गया, इसलिये ईरान अथवा पूर्व के चीन व जापान देशों में संगीत कैसा है, वहाँ के और अपने स्वरों में कुछ समानता है अथवा नहीं, अथवा अपने रागों जैसी व्यवस्था वहाँ भी कुछ है क्या, इस विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता। परन्तु वहाँ जाने का संयोग यदि तुमको मिले तो इन बातों पर अवश्य ध्यान देना। अपने यहाँ समाज-गायन यानी एक साथ बहुत से मनुष्यों द्वारा मिल कर गाना, ऐसा प्रकार चालू नहीं है, अपने संगीत में यह अभाव कोई-कोई बतलाते हैं। अपने गायन में वीर-रस-प्रधान तथा सृष्टि सौन्दर्य का वर्णन करने वाले गीत नहीं हैं। शृंगार-रस-प्रधान गीत अधिक हैं, यह भी एक कमी बतलाते हैं। इन तमाम बातों का तुमको आगे-पीछे विचार करना पड़ेगा। मैंने तुमको इतना ही बताने का प्रयत्न किया है कि पहले क्या था और आज क्या है। भावी-संगीत की पूर्ण जिम्मेदारी मैं तुम पर छोड़ने वाला हूँ। जो तुम्हें अच्छा दिखाई दे तथा जो अपने लिये उपयोगी हो एवं जिससे अपनी राष्ट्रीयता कम न हो, उसे लेने में कोई आपत्ति नहीं। चाहे फिर वो किसी का भी हो। यह मैं बार-बार कहता आया ही हूँ। अब नई-नई गीत रचना होनी चाहिये, पीछे के गीतों में अधिक सुबोधता व रंजकता आनी आवश्यक है, ऐसा भी हम सुनते हैं। मुझसे जितना सम्भव था उतना मैंने किया है, अब आगे का काम तुम्हें ही करना होगा, ऐसी मेरी उत्कट इच्छा है। नये-नये उत्तम नियमों वाले राग प्रचार में लाकर उनमें उत्तमोत्तम गीत-रचना होना अब आवश्यक है। संगीत के वाद्य अंग में बहुत सुधार होने की आवश्यकता है, ऐसा हमारे विद्वान् कहते हैं। उसी प्रकार नृत्याध्याय का अभ्यास करके उसमें कितना लेने योग्य है व कितना छोड़ने योग्य, इसका भी विचार हमें करना ही है। पाश्चात्य संगीत के शास्त्र तथा कला का अभ्यास आप लोग आगे चल कर अवश्य कीजिए। इस विषय को अब राज्याश्रय भी प्राप्त है, अतः क्रमशः अपने इच्छित कार्य को सक्रिय रूप देना सम्भव दिखाई देता है।

(हिं० सं० प० भा० ४, पृ० ३५४-३५५)

(७) सुयोग्य परिवर्तनों का स्वागत

कुछ ही वर्षों में अपने ये रागरूप अवश्य ही परिवर्तित होंगे और इस परिवर्तन में ही आनन्द है। अब अपने विद्वान् पश्चिमी देशों की यात्राएँ कर रहे हैं, अतः वहाँ की नई-नई कल्पनाएँ अपने यहाँ अवश्य आवेंगी। वहाँ के सहस्रों ग्रामोफोन रिकार्ड अपने यहाँ आते हैं, जिनके कारण से अपने संगीत में कुछ-कुछ परिवर्तन होने लगा ही है, ऐसा जानकारों का मत है। यदि ऐसा हुआ तो खेद करने का हमारे लिये कोई कारण नहीं। यद्यपि मैं स्वयं प्राचीन नायकों का संगीत लिख कर रखता हूँ तो भी मैं नवीन-नवीन विद्वानों की शोध के बिलकुल विरुद्ध नहीं। दिन-प्रतिदिन यह कला बढ़ती ही जानी चाहिये और यह बढ़ेगी ही। हाल में ही दक्षिण के कुछ राग जैसे शंकराभरण, हंसध्वनि, आनन्द-

भैरवी, काम्भोजी, आभीरी आदि रंगभूमि से अपने समाज में नहीं आये हैं क्या ? इस विषय में कूप-मण्डूक मनोवृत्ति नहीं चलेगी। बंगाल प्रान्त के प्रचलित प्रकार हमारे यहाँ आये और अपने प्रकार वहाँ गये, इसका भी परिणाम अच्छा ही होगा। फिर भी यह परिवर्तन जितने योग्य अधिकारियों के हाथों से होगा उतना ही अच्छा, ऐसा मेरा विशेष मत है।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० ३४८)

(८) उर्दू और पर्शियन भाषा के ग्रंथ

मित्रो ! मियां की सारंग के सम्बन्ध में प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख नहीं मिलता तथा बाद के संस्कृत ग्रन्थों में कुछ नहीं कहा गया है, फिर भी उर्दू अथवा पर्शियन ग्रन्थों में इस राग का उल्लेख होना सम्भव है। परन्तु एक तो मुझे ऐसे ग्रन्थ मिले नहीं और फिर मुझे वह भाषा नहीं आती, इसलिये उन ग्रन्थों में इस राग के विषय में कुछ कहा गया है अथवा नहीं, यह मेरे लिये कहना संभव नहीं है। तुम इसकी खोज अवश्य करना। काश्मीर के फकीरुल्ला के 'रागदर्पण' में अथवा "मादनुलमौसीकी" जैसे ग्रन्थों में कदाचित् कुछ कहा गया हो। रामपुर की लायब्रेरी में कुछ उर्दू तथा पर्शियन रिसाले हैं, उनमें भी कुछ मुस्लिम राग सम्बन्धी जानकारी मिल सकती है।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० ३०३-३०४)

(९) काश्मीर में राग दर्पण

चार-पाँच वर्ष पूर्व बड़ौदा की श्री० सौ० महारानी साहिबा के साथ मैं भी काश्मीर गया था। वहाँ की लायब्रेरी (जम्मू के रघुनाथ मन्दिर में है) में राग दर्पण फारसी भाषा में देखा। वहाँ के ग्रन्थाध्यक्ष संस्कृतज्ञ थे। उन्हें फारसी नहीं आती थी, इसलिये ऐतिहासिक जानकारी के विषय में उन्होंने अनभिज्ञता प्रकट की। तुम लोग उधर कभी जाओ तो उस ग्रंथ को अवश्य देखना।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० २१९)

(१०) राग और रस

प्रचार में जो राग हम गाते-बजाते हैं, उनका सम्बन्ध रागों के रसों से सयुक्तिक व सुबोध रीति से स्थापित करने का कार्य कठिन है और सुशिक्षित संगीत विद्वान् ही यह कार्य कर सकते हैं, आज तक अनेक कारणों से यह कार्य नहीं हो सका।

साधारण जानकारी से यह कार्य पूर्ण नहीं हो सकेगा, कारण किस स्वर का किस व्यक्ति पर, किस स्थान में, किस विशेष प्रसंग पर क्या परिणाम होगा; यह सिद्ध करना बड़ा कठिन कार्य है।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० २५)

(११) कला के साथ विद्या एक शुभ चिह्न

परन्तु उस समय के हमारे विद्वानों ने इस विषय की ओर जितना ध्यान देना चाहिए था, उतना दिया नहीं, सारांश "कला थी तब विद्या नहीं थी और विद्या थी तब

कला नहीं" यही कहना पड़ता है। यह ढंग पिछले सौ-दो-सौ वर्षों में संभवतः ऐसा ही रहा होगा। अब विद्या है तथा उसका उपयोग संगीतोन्नति में करने की इच्छा भी है, तो वह कला नहीं। फिर भी ईश्वर की कृपा से जहाँ ये दोनों बातें थोड़ी बहुत अनुकूल हैं, वहाँ इनका सुयोग भी होता ही है, यह शुभ-चिन्ह है।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० ६६५)

(१२) कौन सा नोटेशन अच्छा या बुरा : विवाद मत करो

अमुक राग अमुक समय में किस प्रकार गाते थे, इसका ज्ञान आगे की पीढ़ी को प्राप्त कराने के लिये नोटेशन जैसा अन्य कोई साधन नहीं। अब ग्रामोफोन भी उसकी अपेक्षा अधिक उपयोगी साधन बन गया है। हम आजकल इस प्रकार की आलोचना सुनते हैं कि अमुक मनुष्य का नोटेशन अच्छा है, अमुक का नोटेशन बुरा, इस प्रकार के विवाद में तुम कभी मत पड़ो। सर्वथा सर्वांग-परिपूर्ण, जैसा मूल गायक गाता है वैसा हू-ब-हू लिखने वाला नोटेशन अभी तक कहीं भी नहीं बन सका है, ऐसा कहना ही पड़ेगा।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० ४१४)

(१३) विवाद्य मल्लार प्रकार मैंने रामपुर में पाये, तुम बंगाल में देखो

...परन्तु उनमें की अधिकांश चीजें उन्होंने मुझे सिखाई हैं, वे वैसी ही मैं तुमको बताऊँगा। मल्लार के एक-दो प्रकार छोड़ कर शेष चीजें मैंने सीखी थीं। मेरे गुरु राम-पुर के नवाब साहब ने भी मुझे वे सुनाई थीं। ये प्रकार अप्रसिद्ध होने के कारण अप्राप्य होते हैं, इस कारण उनकी प्रगति अथवा गायकी सुनने का अवसर अधिकतर नहीं आता। अप्रसिद्ध होने के कारण वह विवादग्रस्त भी होते हैं। बंगाल प्रान्त में मल्लार के अनेक प्रकार गाये जाते हैं, वहाँ कभी तुम्हें जाने का अवसर मिले तो वे तुम्हारे सुनने में अवश्य आयेंगे। पसंद आयें तो वहाँ के गायकों से तुम सीख लेना।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० ३८६)

(१४) विभिन्न रंग-ढंग के गीत रागों के अंगों की पूर्ति करते हैं

तुम्हारी क्रमिक पुस्तकों में गौड मल्लार में अनेक चीजें उत्तमोत्तम घरानों की आयेंगी ही। उनकी सहायता से यह राग तुमको अच्छी तरह गाते बनेगा। उत्तम प्रकार के गायकों को सुनकर, इस राग के भाग वे भिन्न-भिन्न प्रकार से कैसे जोड़ कर गाते हैं, यह देख कर तथा उनका अनुकरण करके गाने का उपक्रम करते चलो तो किसी दिन तुम भी वैसे ही नामी गायक हो जाओगे। एक ही राग में अनेक चीजें सीख लेना हितकारी है। भिन्न-भिन्न चीजें भिन्न-भिन्न प्रकार के रंग-ढंग की रची हुई आ जाती हैं तो राग के सब अंगों की पूर्ति हो जाती है।

(हिं० सं० प० भा० ४, पृ० ३६५)

(१५) कलकत्ते में 'तोफे-तुल-हिंद' प्राप्य

'तोफे-तुल-हिंद' नामक ग्रन्थ कलकत्ते में देखा जा सकता है, ऐसा कहते हैं।

(हिं० सं० प० भाग ३, पृ० १)

(१६) चित्र और रंग की कोरी कल्पना

चित्र के साथ रंग का प्रश्न भी आयेगा ही, उसमें जो अड़चन है उसके विषय में मैंने दो शब्द कहे ही हैं। रागों की मूर्ति की निन्दा करके भावुक लोगों से व्यर्थ ही वैमनस्य बढ़ाते रहना हमारे लिए जरूरी नहीं। वह भाग तो विवादग्रस्त ही रहने योग्य है। पहले तो रंग का विषय ही हमने कहाँ सीखा है? उस विषय पर पश्चिम की ओर विशाल ग्रन्थ लिखे गये हैं, ऐसा कहा जाता है। उन्हें पढ़कर और प्रत्यक्ष प्रयोग करके एवं संस्कृत ग्रन्थकारों के वर्णनों से उनका मिलान करके कोई विद्वान् कुछ लिखे तो उसका लोग उपकार मानेंगे। किन्तु यह स्पष्ट है कि वर्तमान काल में कोरी कल्पना नहीं चल सकेगी।

(हिं० सं० प० भाग ३, पृ० २०)

(१७) बीकानेर में 'अनूपविलास'

इससे सम्भवतः यह भी सिद्ध हो सकता है कि "हृदयप्रकाश" उत्तर का ग्रन्थ है। उसका भावभट्ट ने अपने अनूपविलास में जो प्रमाण के बतौर आधार लिया है वह मैं विभिन्न स्थानों पर कहता ही आया हूँ। वह ग्रन्थ बीकानेर की लाइब्रेरी में है। वहाँ के अधिकारियों से उसकी एक नकल तुम आगे प्राप्त करना।

(हिं० सं० प० भाग ३, पृ० ८०)

(१८) स्वयं साधार बनो

हमें किसी के मत से विरोध नहीं है। श्रोताओं का मनोरंजन हो, राग स्पष्ट और निराले हों, श्रोताओं को राग-नियम अच्छी तरह से पहचानने में आवें और जहाँ तक सम्भव हो सके, उत्तम शास्त्र-परम्परा तथा गुरु-परम्परा हो, तो बस। ग्रन्थकारों में, गायक-वादकों में एवं विद्वानों में मतभेद रहता ही है, यह बात कभी न भूलना। अपना मत अपने लिये पर्याप्त शुद्ध, उपयोगी और साधार हो तो ठीक है। आज का सङ्गीत अपने प्राचीन ग्रन्थों को छोड़ ही चुका है। तो फिर हम लोगों से वाद-विवाद क्यों करते रहें? हम अपने मार्ग से चलें और अपना सङ्गीत शास्त्र हमेशा अपने शिष्यों और मित्रों को सप्रयोग समझाते रहें तो बस अपना काम पूर्ण हुआ समझो।

(हिं० सं० प० भाग ३, पृ० १५८)

(१९) नोटेशन का विवाद संगीत की प्रगति में बाधक न होने दो

मेरा मत है कि संगीत की लेखन-पद्धति आवश्यक है। यह सहज ही समझ में आ जावेगा कि समस्त देश में एक ही लिपि होने पर कार्य उत्तम रूप से पूरा होगा। पाश्चात्य लोगों ने इसी तत्व पर सर्वत्र समान लेखन-पद्धति स्वीकार की है, इससे उन्हें होने वाले लाभ हम देखते ही हैं। ऐसा नहीं है कि यह बात हमारे यहाँ ज्ञात न हो, परन्तु हमारे यहाँ प्रत्येक पुस्तक-लेखक समझता है कि मेरी ही लिपि निर्दोष व सुलभ है तथा वही सारे देश

को मान्य होनी चाहिये । ऐसा समझना स्वाभाविक तो है, परन्तु यह भी देखना होगा कि ऐसा हो सकना सम्भव भी है या नहीं । संगीत पर लिखे हुए प्रायः समस्त ग्रंथ मैं पढ़ता रहा हूँ तथा भिन्न-भिन्न लिपियाँ मेरे लिए देखने में आई हैं । इनमें शुद्ध 'स्वदेशी' एक भी लिपि नहीं दिखलाई दी । जिसे देखो, उसने चार-पाँच पद्धतियों का मिश्रण कर अपनी नवीन लिपि बनाकर रख दी है । कोई यूरोपियन 'स्टाफ' की लकीरों में अपने नादस्थान दिखाता है, कोई यूरोप के 'बार' सम्मिलित करता है, कोई पाश्चात्यों के पुनरावर्तन के चिन्ह लेता है । इस प्रकार की लिपियाँ सदैव दिखाई पड़ती हैं । मेरा कथन इतना ही है कि जिस विद्वान् को अपना संगीत बारह स्वरों का ही लिखना है, वह इस टेढ़े-मेढ़े या गंगा-जमनी मार्ग को छोड़ कर सीधी तरह यूरोप का नोटेशन ही क्यों नहीं ग्रहण कर ले ? हम लिपिकारों से सुनते हैं कि यूरोप की लिपि में मुरकी, गिटकरी, जमजमा, घसीट, मींड़ आदि प्रकार अच्छी तरह नहीं बताये जा सकते । मैं समझता हूँ कि यदि इसके लिये नवीन-चिन्हों की रचना भी करनी हो तो किसी बैण्डमास्टर को सहायता से कर लेनी चाहिये । वे स्वदेशी ही हों ऐसी क्या आवश्यकता है ? रत्नाकर में लघु, गुरु, प्लुत, द्रुत के लिए दिए हुए चिन्हों को तोड़-मरोड़ कर उलटे-सीधे जमाकर, उन्हें तिपाई पर बैठा कर नई पद्धति उत्पन्न करने का उपद्रव करें ही क्यों ? राग-विबोध में पाँच-पच्चीस चिन्ह दिखाई देते हैं, उन्हें लेकर ही नवीन पद्धति क्यों रची जावे ? ग्रन्थों के राग हमारे नहीं, अतः हम मुसलमानी प्रकार गाते हैं । परन्तु स्वर-लिपि के चिन्ह रत्नाकर के ही लें । यह हमारा कैसा अभिमान है ? ऐसे स्वरूपों की कोई निन्दा भी करे तो आश्चर्य नहीं । स्वदेशी पद्धति का अभिमान रखने वालों से मेरा बिलकुल विरोध नहीं है । मैं उन सभी को अपना मित्र व बन्धु समझता हूँ । मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि यह विषय विवादग्रस्त है, परन्तु मैंने अपने आंतरिक-विचार तुम्हें स्पष्ट रूप से बता दिये हैं ।

अपनी पद्धति प्रामाणिक रूप से स्वदेशी चाहिये न ? यदि यूरोप के तत्व ग्रहण किए हों तो फिर उन्हें लीपना-पोतना क्यों ? इसकी अपेक्षा यूरोप का नोटेशन ही आवश्यक परिवर्तन करके ग्रहण कर लिया जावे, तो क्या बुरा है ? मैं इस समय किसी विशेष पद्धति को लक्ष्य कर नहीं बोल रहा हूँ । सम्भव है मेरा यह मत जल्दबाजी का हो, परन्तु मेरा विश्वास है कि 'अ' के कोमल स्वर-चिन्ह, 'ब' के तीव्र चिन्ह 'क' के गमक चिन्ह, 'ड' के आवर्तन चिन्ह, 'ग' के ताल चिन्ह, 'फ' के काल चिन्ह इस प्रकार के व्यर्थ के भेद करते रहने से अनेक लोगों से अकारण वैमनस्य होगा व संगीत की प्रगति को हानि होने का भय हो जावेगा । जिस मार्ग से समाज का हित हो, वही मैं पसन्द करूँगा । मैंने स्वतः कुछ लक्षणगीत तुम्हारे लिये लिख रखे हैं । उन्हें किसी न किसी स्वरलिपि में तो लिखना ही पड़ता । मैं स्वीकार कर चुका हूँ कि मुझे यूरोप का संगीत नहीं आता । मुझे अपनी स्वीकृत स्वरलिपि का जरा भी अभिमान नहीं है । यूरोपियन नोटेशन यदि मुझे आता तो मैं अपने गीत उसी प्रकार लिखता । तुम अपने राग अभी उत्तम रूप से सीख लो फिर जो योग्य जँचे, उस लिपि को स्वीकार कर लेना ।

(हिं० सं० प० भाग २, पृ० १८१-१८२)

(२०) इन्हें मैं आपके लिये छोड़ देता हूँ

प्रिय मित्रो ! अब हम अपना सम्भाषण शीघ्र समाप्त करेंगे। प्रचलित संगीत के सम्बन्ध में जितनी जानकारी तुमको होनी आवश्यक थी, उतनी मैं तुम्हें दे चुका हूँ। अब ताल तथा नवीन गीतरचना के नियमों पर बोलना उचित होगा। परन्तु वह इस समय सम्भव नहीं है। ख्याल, ध्रुवपद, धमार आदि रचनाओं के कुछ नियम दृष्टिगत होते हैं। अमुक राग में ख्याल-रचना करने के लिये कौन-से स्वर से प्रारम्भ होना चाहिये और वैसा करने पर उस गीत के अस्ताई (स्थायी) में कितने आवर्तन (आवृत्ति) होने चाहिये, सम कौन-से स्वर पर होनी चाहिये, पुनः अस्ताई से जोड़ने की क्रिया कैसे करनी चाहिये आदि बातें बुद्धिमान व्यक्तियों को स्वतः अनुभव से आ जाती हैं। इस प्रकार के कुछ नियम उदाहरण सहित तुमको बताने की मेरी इच्छा थी, परन्तु वह इस समय सम्भव नहीं। ये सब कृत्य धीरे-धीरे अनुभव से तुमको भी सध जायगा, ऐसा मेरा विश्वास है। संगीत एक प्रकार की नाद-भाषा है, ऐसा जो कहा जाता है वह गलत नहीं। प्रत्येक गीत में संगीत के विभिन्न वाक्यों की सुसंगत रीति से रचना होती है। वे गीत सीखते समय उनके वाक्यों की ओर ध्यानपूर्वक देखना पड़ता है। यह लॉज़ ऑफ़ म्यूज़िकल कम्पोज़िशन्स् (गीत रचना के नियम) विदित होने पर प्राचीन ग्रन्थों में जो अनेक राग उनके आरोहावरोह सहित कहे हुए दिखाई देते हैं, वे भी पुनः प्रचार में सहज ही लाये जा सकते हैं। अस्तु, मेरी तो आयु हो चुकी है अतः इस विषय की अधिक सेवा मेरे हाथों से आगे कितनी व कैसी हो सकेगी, यह नहीं कहा जा सकता। कारण, यह सब भगवान् की इच्छा पर निर्भर है। फिर भी मैंने अपनी उम्र में जो ज्ञान सम्पादित किया, उसका एक बड़ा भाग तुमको देने से मेरी बहुत कुछ जिम्मेदारी कम हो गई है। तुम तरुण, विद्यासम्पन्न, बुद्धिमान् तथा संगीत-प्रेमी हो, अतः मेरे द्वारा प्रस्तुत की हुई सामग्री में जिन बातों का अभाव तुम्हें दिखाई देगा, तुम उसकी पूर्ति स्वसंपादित ज्ञान से सहज ही कर सकोगे।

कुछ महत्वपूर्ण बातों के सम्बन्ध में मेरे द्वारा की गई शोध अभी तक निर्णयात्मक अवस्था में नहीं पहुँच सकी है। यह तथ्य समय-समय पर मेरे भाषणों से तुम्हारे ध्यान में आ गया होगा, उसी प्रकार कुछ बातें संभव होने पर भी मेरे हाथों से पूर्ण नहीं हो सकीं। उदाहरणार्थ :—

(१) सामवेद के स्वरों की तुलना आगे के ग्रन्थकारों के स्वरों से कहाँ तक हो सकती है, यह देखना।

(२) रत्नाकरादि प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित रागों का सुबोध स्पष्टीकरण उन ग्रन्थों में दी गई सामग्री से करके दिखाने का प्रयत्न करना।

(३) प्राचीनकाल में रागरागिनी पुत्र आदि व्यवस्था किन तत्वों पर हुई होगी, उसकी योग्यायोग्यता तथा वैसी व्यवस्था प्रचलित संगीत में हो सकती है कि नहीं, ऐसा करना विशेष हितकारी होगा अथवा नहीं, इन प्रश्नों पर भली प्रकार विचार करके कुछ स्पष्टीकरण करना।

(४) राग व रस का प्राचीन एवं अर्वाचीन दृष्टि से सम्बन्ध पुनः प्रस्थापित करने का प्रयत्न करना।

(५) श्रुति व स्वरों का प्राणियों के शरीर पर होने वाला परिणाम तथा उस परिणाम के लिये गीत के बोलों की कितनी व कैसी आवश्यकता है, इस सम्बन्ध में समाधानकारक एवं शास्त्रीय दृष्टिकोण से स्पष्टीकरण करना ।

(६) नाट्य-संगीत का उत्तम निरीक्षण करके उसमें कौन-से संशोधन की आवश्यकता है, यह निश्चित करने का प्रयत्न करना ।

(७) श्रुति तथा स्वर का नवीन शास्त्रीय पद्धति से निरीक्षण करना, अतिकोमल तीव्रतरादिक स्वरों का विशिष्ट रसोत्पत्ति में क्या उपयोग हो सकता है, इसका विचार विद्वज्जनों की परिषद् में करना ।

(८) दिनगेय तथा रात्रिगेय रागों का शास्त्र-सम्मत एवं सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध प्रस्थापित करना ।

(९) प्रत्येक राग का काल निर्णीत करके, वह काल-नियम प्राचीन-काल से संगीत में क्यों व कैसे आया ? यह निश्चित करके समाज के सामने प्रस्तुत करना ।

(१०) प्रचलित नृत्य-पद्धति के गुण दोष खोजकर इस कला का उत्कर्ष किस प्रकार होगा, इस सम्बन्ध में उपाय सोचना ।

(११) दक्षिण तथा उत्तर के संगीत का ऐसा सुयोग करके दिखाना कि जिससे दोनों पद्धतियों का हित होकर सङ्गीत को उत्तम राष्ट्रीयत्व प्राप्त हो ।

(१२) प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थों के भाषान्तर मराठी में करा कर पुस्तकें प्रकाशित करना एवं अपने शहर में एक बड़ा सङ्गीत पुस्तकालय स्थापित करना ।

(१३) अपने शहर में विशिष्ट प्रकार के सङ्गीत विद्यालय स्थापित करना तथा उसमें योग्य विद्वानों की नियुक्ति करके उसको युगानुकूल चलाकर दिखाना ।

(१४) विशेष कलावन्तों के लड़कों के लिये एक पृथक् विद्यालय स्थापित करना तथा उसमें घरानेदार एवं अनुभवी कलावन्तों को नियुक्त करके परम्परागत कला को जीवित रखने का प्रयत्न करना ।

(१५) प्राचीन अथवा अर्वाचीन अप्रसिद्ध रागों के 'रेकार्ड' लेकर उन्हें पुस्तकालयों-संग्रहालयों में रखना तथा उनका उपयोग समस्त शोधकर्ता विद्यार्थी कर सकें, ऐसी व्यवस्था करना आदि, आदि ।

यह तथा ऐसी और भी कुछ बातें अभी रह गई हैं । तुम तरुण एवं उत्साही हो, इसलिये मुझे आशा है कि तुम इनकी ओर ध्यान देकर यश प्राप्त करोगे । इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये बहुत प्रयत्न की आवश्यकता होगी, बहुत स्वार्थ त्याग करना होगा एवं बहुत सी भली-बुरी टीका-टिप्पणी सहन करनी पड़ेगी । परन्तु मुझे विश्वास है कि तुमने यदि कठिन परिश्रम करने का और फलाफल ईश्वर को सौंपने का निश्चय कर लिया तो तुमको पर्याप्त सफलता तथा यश प्राप्त होगा । मैं जीवित रहा तो तुम्हारे कार्य में यथाशक्ति एवं यथामति सहयोग देने के लिये सदैव तत्पर रहूँगा । परन्तु यह सब अब ईश्वर के आधीन है । जितनी सेवा मुझ से लेने का उसने निश्चय

किया होगा, उतनी वह लेगा ही। अस्तु, इस प्रसंग पर दी गई जानकारी तुम्हारे लिये पर्याप्त होगी, ऐसा समझकर अब मैं तुमसे आज्ञा लेता हूँ।

(हिं० सं० प० भा० ४, पृ० ७८८, ७८६, ७६०)

(२१) मैंने सब कुछ दे डाला

ईश्वर तुम्हें अच्छा यश प्रदान करें, यही मेरी सदैव इच्छा है। अब अप्रसिद्ध रागों की पाँचवीं क्रमिक पुस्तक शेष बची है। भगवान् ने चाहा तो वह भी पूर्ण करा लेगा। श्री रातांजनकर को इन सभी रागों की चीजें सिखा चुका हूँ। राजाभैया को भी नये तीस रागों की चीजें बताई हैं।

(श्री भास्करराव खाँडेपारकर को सम्बोधित पत्र दि० १ फरवरी १९३२)

(२२) रुग्णशैया पर नहीं, कालेज में मरूँगा

कालेज (मैरिस म्यूजिक कालेज, लखनऊ) के प्रति अपने कर्तव्यों के बीच में शारीरिक व्याधियों को मैं कदापि न आने दूँगा। यहाँ रुग्णशैया पर मरने की अपेक्षा कालेज में मर जाना उत्तम होगा।..........काशी में देह त्यागने की मेरी बहुत इच्छा है, परन्तु इसका निर्णय तो भगवान् पर ही निर्भर है।

(राय उमानाथ बली को संबोधित पत्र दि० २८ जुलाई १९२८)

(२३) तुमसे मुझे बहुत आशा है

प्रिय बाबू, मुझे लगता है अब मेरी जीवन यात्रा क्रमशः अपने अंतिम चरण पर पहुँच चुकी है। अतः यह सारी नयी प्रतिक्रियाएँ (सूक्ष्मज्वर, रक्तचाप का बढ़ना, सिर में भिन्न-भिन्न आवाज होना, निद्रादोष) स्वाभाविक ही मानता हूँ। परन्तु भगवान् की दया से तुम्हारे जैसा दैदीप्यमान (मेधावी) शिष्य मुझे उसने दिया। तुम्हारे बारे में मेरी जो-जो भी आकांक्षाएँ हैं, उन्हें तुम निभाओगे इसमें मुझे कुछ भी संदेह नहीं।

(डा० श्री० ना० रातांजनकर को संबोधित पत्र दि० १६ फरवरी १९३३)

जो कर्तव्य था मैंने कर दिया। जहाँ-जहाँ से और जो-जो भी प्राप्त हुआ लिखकर सुरक्षित करता आया हूँ। मुझे दृढ़ विश्वास है इसका उपयोग करने वाला भविष्य में कोई न कोई निर्माण होगा। लिखते समय आवेश में आकर कभी-कभी कड़ी आलोचना भी कर गया हूँ। परन्तु विश्वास मानिए यह नितांत सत्य है कि किसी को भी क्लेश पहुँचाने की मेरी इच्छा नहीं थी।

अपने देशवासियों की गुणग्राहकता के कारण मैं इनका सदैव आभारी रहूँगा।

अन्त में मेरी इस कल्पना को मूर्तरूप देकर, इस ढलती उम्र में भी यह सब कार्य मेरे हाथों से पूर्ण करवाया, उस काशी विश्वेश्वर को नमस्कार करके आज्ञा लेता हूँ। जय जगदीश !

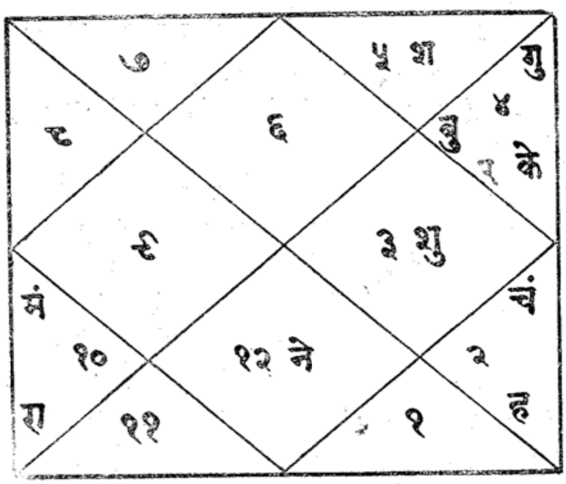


पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे की
जन्म-लग्न-कुण्डली

जन्म दिवस—श्रावण कृष्ण अष्टमी, शकाब्द १७८२, सम्वत् १९१६ तदनुसार शुक्रवार दिनांक १० अगस्त १८६० ।

जन्म समय—प्रातः ८-३० बजे (स्टेण्डर्ड टाइम)

जन्म स्थान—बालकेश्वर, बम्बई ।



प्रस्तुत जन्म-लग्न-कुण्डली श्री के० जी० गिण्डे की ओर से प्राप्त हुई थी। जिसे होराभूषण डा० विनायक मुरलीधर जोशी, श्रीगोंदा, जिला अहमदनगर ने संशोधित कर फलादेश सहित वाचकों के लिये उपलब्ध किया है ।

—सम्पादक

फलादेश

होराभूषण पं० वि० मु० जोशी,
शास्त्री, श्रीगोंदा

स्व० पं० विष्णु नारायण भातखण्डे की जन्मकुण्डली में संगीतशास्त्र का कारक ग्रह गन्धर्वराज शुक्र दशम स्थान में अर्थात् आकाशमध्य में है और यही ग्रह अन्य सभी ग्रहों में अत्यंत प्रभावी व अधिकतर फलदायी होता है। इस कुण्डली में सुरीली आवाज का कारक ग्रह शुक्र और मिथुन राशि इन दोनों का सुन्दर संगम हुआ है। ग्रहों की यह युति आदर्श गायक होने के लिए अत्यावश्यक है। पंडित जी की कुण्डली में शुक्र ग्रह भाग्यस्थान और कण्ठस्थान का स्वामी है, जो पुनर्वसु नक्षत्र में तथा स्वनवमांश में हैं। गुरु और चन्द्र अपनी उच्चराशि में हैं इनके शुभ कर्तरि में शुक्र है, अतः अधिक से अधिक शुभ-फल देनेवाला है। पंडित जी की कुण्डली का प्रमुख (Ruling)ग्रह शुक्र है। शुक्र की ऐसी बलवान और शुभ फल देने वाली स्थिति होने के कारण पंडित जी को सङ्गीत शास्त्र के प्रति तीव्रतम जिज्ञासा हुई और इसी कारण से वे संगीत की महान् सेवा कर सके। शुक्र को सहायता करनेवाले ग्रह गुरु और चन्द्र हैं। मनोरंजन का कारक और संगीत के लिए पोषक ग्रह चन्द्र भाग्य-स्थान में स्वोच्च राशि में हैं। ये समस्त ग्रहयोग संगीत के लिए अच्छा फल देने वाले हैं।

विद्याप्रेमी गुरु लाभ-स्थान में स्वोच्च राशि में है तथा वह रवि और बुध से युक्त है, अतः संगीत विद्या की दृष्टि से यह कुण्डली महत्त्वपूर्ण है। व्यय-स्थान में स्थित शनि के कारण पंडित जी का जन्म दारिद्रयावस्था में हुआ। पंचम स्थान में मंगल तथा राहु हैं, एवं पंचमेश व्ययस्थान में पड़ा है। ग्रहों की इस स्थिति के कारण पंडित जी को परगृहवास करना पड़ा तथा विद्यार्जन में भी बहुत कष्ट उठाने पड़े। बुध-गुरु की युति के कारण तीव्र बुद्धिमत्ता, तीक्ष्ण ग्रहण-शक्ति, उत्तम व्यवहारज्ञान, कायदे-कानून का ज्ञान पंडित जी को प्राप्त हुआ। सप्तम स्थान में नेपच्यून ग्रह मीन राशि में है और उसके साथ चन्द्र-हर्शल-मंगल का त्रिरेकादश योग हुआ है। जिनकी कुण्डली में ऐसा योग होता है, वे लोकोत्तर पुरुष होते हैं। अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थिति में भी ऐसे व्यक्ति विजयी होते हैं तथा अपने ध्येय को प्राप्त कर लेते हैं। जन्मतः ईश्वर की कृपा व सहाय्य प्राप्त होना, अन्तःस्फूर्ति से कार्य करना, अलौकिक बुद्धिमत्ता होना, गायन-वादन में नैसर्गिक आकलन-शक्ति का होना और उनमें नैपुण्य प्राप्त कर लेना, आत्मानुभव होना तथा शत्रु को भी मित्र बनाने की कला होना आदि फल उपरोक्त ग्रहयोग दर्शाते हैं। गुरु-हर्शल शुभयोग भाग्य, कीर्ति तथा अधिकार का द्योतक है। असंख्य मित्र तथा प्रचुर संख्या में सहयोगी प्राप्त होना, अंगीकृत कार्य में लोकाश्रय मिलते रहना, उच्च प्रतिष्ठा मिलना, उच्च अधिकारी वर्ग तथा राजा

महाराजों का मित्रत्व और प्रेम प्राप्त होना, आदर, सम्मान तथा विद्वज्जनों से पदवियों द्वारा विभूषित होना, चिरन्तन कीर्ति देने वाले महत्वपूर्ण कार्य हाथ से होना इत्यादि का कारण यही शुभयोग है।

संगीत-कला तथा शास्त्र में नैपुण्य तथा कीर्ति प्राप्त कराने के लिए कुण्डली में मुख्यतः शुक्र तथा चन्द्र प्रबल होने चाहिए। पंडित जी की कुण्डली में ये ही ग्रह मुख्य तथा प्रबल हैं, जिससे वे संगीतशास्त्र के पुनरुद्धारकारक तथा भाग्यविधाता हो सके।

पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे के जीवन का
उल्लेखनीय घटनाक्रम

सन् १८६०—जन्म : श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, शुक्रवार १० अगस्त, प्रातः ८-३० बजे। स्थान : बाणगंगा, बालकेश्वर, बम्बई।

१८७५—श्री वल्लभदास गोपालगिरी तथा बुवा दामुलजी से सितार-वादन की शिक्षा का प्रारम्भ।

१८७६—श्री जीवनलाल महाराज के ग्रंथ-संग्रह से संगीत के साहित्य का अवलोकन।

१८७८—श्री हार्ट साहब, मजिस्ट्रेट स्मॉल काज कोर्ट से परिचय और उनका सहाय्य।

१८८१—श्री शांताराम पाटकर से परिचय, आर्थिक अड़चनों के कारण कुछ स्थानों पर छोटी-मोटी नौकरियाँ करते रहे।

१८८४—गायनोत्तेजक मण्डली का सदस्यत्व। श्री शपूर स्पेन्सर से घनिष्टता।

१८८५—एलिफन्स्टन कॉलेज, बम्बई से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण। पिता जी (श्री नारायण गोविन्द भातखण्डे) का स्वर्गवास और कौटुम्बिक दायित्व का सम्पूर्ण भार।

१८८७—एल-एल० बी० परीक्षा उत्तीर्ण।

१८८७ से १८८९—कराची हाईकोर्ट में वकालत। सिन्ध हैदराबाद, लाहौर, कच्छ आदि प्रदेशों का भ्रमण।

१८८९ से १९१०—बम्बई में वकालत। श्री शांताराम पाटकर की जायदाद की व्यवस्था। सुकथनकर परिवार की देख-भाल का दायित्व।

१८८४ से १९९०—गायनोत्तेजक मंडली में श्री रावजीबुवा बेलबागकर से ३०० ध्रुवपद कण्ठस्थ किये। उस्ताद अली हुसेन तथा विलायत हुसेन से १००-१५० ख्यालों की शिक्षा ली। इसके अतिरिक्त दिल्ली, लखनऊ, आगरा, जयपुर,

ग्वालियर, पटियाला, बड़ौदा, दक्षिण हैदराबाद के सभी प्रमुख गायक-वादकों के प्रदर्शन सुने, रागरूपों पर चर्चा की; जिससे प्रेरित होकर रागदारी संगीत की शास्त्रीय सुसम्बद्धता सिद्ध करने की इच्छा जागृत हुई।

१८६० से १६०५—जर्मन, ग्रीक, अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी, तेलुगु, बँगला और गुजराती भाषा में उपलब्ध प्राचीन, अर्वाचीन संगीत विषयक साहित्य का संकलन, पठन, एवं मनन। गायनोत्तेजक मण्डली के सदस्यों को व्याख्यान एवं सुबोध पाठ देते रहे और वहाँ पर नियुक्त विद्वानों से शिक्षा लेते रहे। डॉ० बर्ने तथा अन्य विदेशी लेखकों के द्वारा निर्मित यूरोपीय संगीत के साहित्य की विपुलता, विशालता से प्रेरणा पाकर ऐसा ही साहित्य सृजन भारतीय संगीत में किया जाय—इस उद्देश्य से तीर्थयात्रा के बहाने विभिन्न प्रदेशों की सद्यःस्थिति जानने के लिये देशव्यापी भ्रमण की योजना बनाई।

१८६५—गीत-संग्रह का आद्यस्रोत श्री रावजीबुवा बेलबागकर का स्वर्गवास।

१८६६—सूरत, भड़ोच, बड़ौदा, नवसारी, अहमदाबाद, राजकोट, भावनगर आदि स्थानों का भ्रमण।

१८६८—ज्येष्ठ शिष्य श्री वाड़ीलाल शिवराम, रतनसी लीलाधर, नजीर खाँ आदि मित्रों के सहकार्य का प्रारम्भ।

१६००—एल्फिन्स्टन हाईस्कूल में शिक्षण कार्य। धर्मपत्नी श्रीमती मधुबाई का स्वर्गवास और सांसारिक विरक्ति। लगभग इसी समय जयपुर घराने के गायक श्री आशिक अली एवं अहमद अली से गीत-संग्रह का प्रारम्भ।

१६०३—एक मात्र पुत्री सीताबाई का निधन और पारिवारिक दायित्व से आंशिक मुक्ति।

१६०४—दक्षिण भारत की यात्रा। मद्रास, तंजोर, इटैयापुरम्, मदुरा, रामनद, त्रिवेन्द्रम, त्रिचनापल्ली, मैसूर, बंगलोर, के ग्रन्थालयों से ग्रंथ सङ्कलन, विद्वानों से चर्चा, विचारों का आदान-प्रदान, गायन-वादन सुनकर प्रसङ्गानुसार उत्तरी पद्धति पर व्याख्यान इत्यादि। दक्षिण की इस यात्रा में दक्षिणोत्तर सङ्गीत पद्धतियों के एकात्मकता के सूत्र, मेल तज्जन्य राग-वर्गीकरण की उपयोगिता एवं हिन्दुस्तानी सङ्गीत की विशाल एवं सुदृढ़ पार्श्वभूमि के विषय में अपने पूर्व विचारों की पुष्टि। इटैयापुरम् में पं० सुब्राम दीक्षित के परिचय से प्रभावित होकर प्राचीन ग्रन्थ साहित्य पर उपयुक्त चर्चा तथा इन्हीं के पूर्वज व्यंकटेश्वर दीक्षित द्वारा लिखित 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' की हस्तलिखित प्रति की प्राप्ति। रागों का स्वरूप, बर्ताव आदि बताने वाले गीत प्रकार की अर्थात् 'लक्षणगीत' की उपलब्धि और इस कार्य में पदार्पण।

१९०६ से १९०७—मनरंग घराने के जयपुर वाले उस्ताद आशिक अली एवं अहमद अली बन्धु द्वयों से लगभग ३०० चीजें लिपिबद्ध कराईं, उनका प्रत्यक्ष रेकार्डिंग कराया। तदुपरान्त इन दोनों के पिता उस्ताद मुहम्मद अली खाँ कोठीवाल (हररंग) से इनकी शुद्धता पर स्वीकृति प्राप्त की। विवादास्पद एवं अप्रसिद्ध रागस्वरूपों की जानकारी प्राप्त की। इनके कुछ गीतों पर जुगुल-बंदियाँ बाँधना प्रारम्भ किया और उस्ताद से अपने लक्ष्यपूर्ति पर आशीर्वाद प्राप्त किये। कुछ ही समय बाद गुरुदेव का स्वर्गवास हुआ। परन्तु आशिक अली-अहमद अली का सहयोग आगे भी मिलता रहा।

१९०७—भारतवर्ष के पूर्ववर्ती स्थलों का भ्रमण। नागपुर, कलकत्ता, जगन्नाथपुरी, विजयानगरम् तथा दक्षिण हैदराबाद आदि स्थलों के प्रमुख ग्रंथालयों को भेंट; सङ्गीतज्ञों से परिचय, चर्चा एवं उपयुक्त साहित्य का संग्रह। ख्यातनाम सङ्गीत शास्त्रियों से भेंट व उनके बहुचर्चित ज्ञान की विफलता की उपलब्धि। पं० काशीनाथ उर्फ अप्पा तुलसी तथा राजा सौरीन्द्र मोहन टैगोर से घनिष्टता एवं विचारों के आदान-प्रदान से पारस्परिक आदरभाव की वृद्धि। श्री अप्पा शास्त्री तुलसी को ग्रंथ निर्माण में सहायता का आश्वासन।

१९०८—देश के उत्तरी अंचल का भ्रमण। जबलपुर, इलाहाबाद, बनारस, गया, मथुरा, आगरा, लखनऊ, दिल्ली, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर इत्यादि ग्रंथालयों में साहित्य की छानबीन, पण्डितों से चर्चा, गायकों से साक्षात्कार। बीकानेर के अनूप ग्रन्थ संग्रहालय में बहुत-सा उपयुक्त साहित्य प्राप्त किया। बाड़ीलाल जी की मध्यस्थता से जाकिरुद्दीन व अलाबन्दे का आलाप गायन सुनकर प्रभावित हुए। प्रसिद्ध शिष्य श्री शंकरराव कारनाड ने श्रीकृष्ण नारायण रातांजनकर व उनके कुटुम्बियों का परिचय कराया।

१९०९—इन भ्रमणों के निष्कर्ष में द्वादश स्वरित सप्तक ही आज का एकमात्र सप्तक है। स्वरांतर निश्चिति में श्रुति केवल कल्पनामात्र है और उनका प्रत्यक्ष उपयोग किसी भी समय में हुआ ही नहीं था, वर्तमान रागरूप ग्रंथों से पर्याप्त भिन्न हो चुके हैं, सङ्गीत निरन्तर प्रगति पथ पर ही है, केवल उसके लक्षण, नियम आज की परिस्थिति में समझाने वाले किसी नवीन ग्रंथ का निर्माण होना आवश्यक है—ऐसा दृढ़ मत कायम हुआ। ग्रन्थों के निचोड़ का उपयोग करते हुये प्रतिष्ठित गायक-वादकों से प्राप्त साहित्य पर आधारित 'लक्ष्य' अर्थात् प्रचलित सङ्गीत की सुसम्बद्ध व्याख्या करने वाला ग्रन्थ "श्रीमल्लक्ष्यसङ्गीतम्" के निर्माण में पर्याप्त प्रगति। रागों का दस थाटों में विभाजन करते हुए उन रागों के प्रत्यक्ष उदाहरण, उनका स्वरूप, चलन स्पष्ट करने वाली तालबद्ध सरगमों का संग्रह

'स्वरमालिका' का प्रकाशन। परममित्र एवं सहयोगी श्री दत्तात्रेय केशव जोशी से परिचय, जिसके फलस्वरूप श्री गणपति बुवा मिलवड़ीकर से ४०० गीत प्राप्त हुए।

१६१०—'चतुर' नामाभिधान सहित सुबोध संस्कृत भाषा में निर्मित 'श्रीमल्लक्ष्य-सङ्गीतम्' नामक अपने सिद्धान्त ग्रन्थ का प्रकाशन।

श्रीमल्लक्ष्यसङ्गीतम् में प्रतिपादित सिद्धान्त जन-साधारण तक पहुँचाने के उद्देश्य से 'विष्णुशर्मा' नामाभिधान सहित मातृभाषा मराठी में 'हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति' ग्रन्थमाला की विस्तृत योजना का प्रारम्भिक अंश अर्थात् प्रथम भाग का प्रकाशन। दक्षिण के पं० रामामात्य द्वारा रचित 'स्वरमेल कलानिधि' का अनुवाद सहित प्रकाशन। 'सङ्गीत पारिजात', 'रागविबोध', 'सारामृतोद्धार' की श्रुति-स्वर चर्चा पर ध्यान आकृष्ट करते हुए उनका प्रकाशन।

१६११—प्रिय शिष्य श्री० ना० रातांजनकर को प्रत्यक्ष शिक्षा देना प्रारम्भ किया। अपने मित्रों को ग्रन्थ-प्रकाशन में प्रेरित किया। श्री रतनसी लीलाधर, बाड़ीलाल शिवराम की सहायता से 'सङ्गीत रत्नाकर' तथा 'सङ्गीत दर्पण' के स्वराध्यायों का मूलपाठ सहित गुजराती में भाषान्तर एवं प्रकाशन।

अकबरपुर के ठाकुर नवाब अली खाँ से पत्र-व्यवहार और परिचय। फलस्वरूप काला नजीर खाँ को स्वरचित लक्षणगीत तथा लक्ष्य सङ्गीत के मूलभूत तत्वों की शिक्षा दी, जिसे ठाकुर नवाब अली खाँ द्वारा लिखित 'मुआरिफुन्नगमात' में सन् १६१३ में प्रकाशित किया। 'मुआरिफुन्नगमात' को ठाकुर साहब ने अपने उस्ताद पं० भातखण्डे को समर्पित किया था।

स्वरचित 'अष्टोत्तरशतताललक्षणम्' शीर्षक से ताल शास्त्र पर संस्कृत भाषा में एक पुस्तिका का प्रकाशन। 'राग मालिका' का क्रमवार प्रकाशन जिसमें स्वरचित लक्षणगीत तथा अन्य गीत प्रकाशित किये। विद्वान् मित्र श्री अप्पा तुलसी द्वारा रचित 'रागकल्पद्रुमांकुर' का प्रकाशन।

१६१२—उत्तरी सङ्गीत पर आधारित पुण्डरीक विट्ठल के 'सद्रागचन्द्रोदय' का प्रकाशन। अपने 'लक्ष्यसङ्गीत' पर आधारित कतिपय ग्रन्थ जैसे 'रागचन्द्रिका', 'चन्द्रिकासार' की रचना में पं० अप्पा तुलसी को प्रेरित करते हुए उन्हें प्रकाशित किया।

१६१३—हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति के भाष्य ग्रन्थों का आगामी लेखन।

१६१४—हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति के द्वितीय भाग का प्रकाशन। अप्पा तुलसी द्वारा लिखित 'अभिनवतालमन्जरी' का प्रकाशन। 'राग लक्षणम्', पुण्ड-

रीक विट्ठल की 'रागमाला' एवं 'रागमन्जरी' का प्रकाशन। 'गुड लाइफ लीग' के तत्वावधान में सङ्गीत की कक्षाएँ प्रारम्भ कीं। 'शारदा सङ्गीत मण्डल' की स्थापना।

१६१४से१५—हिज हाईनेस महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ से मुलाकातें तथा बड़ौदे के शासकीय सङ्गीत विद्यालय के पुनर्गठन की योजना।

१६१५से१६—बड़ौदे में अखिल भारतीय सङ्गीत परिषद् के प्रथम अधिवेशन की योजना बनाना और उसे कार्यान्वित करना। इसी अधिवेशन में अपना आज तक का सभी शोधकार्य विद्वानों के सम्मुख रखकर श्रुति, स्वर, मेल एवं तज्जन्य रागवर्गीकरण, ग्रंथगत एवं प्रचार के सङ्गीत का साम्य और भेद आदि सभी निष्कर्षों पर स्वीकृति प्राप्त की। श्रुतिवाद निरर्थक है ऐसी राय दक्षिण एवं उत्तर के विद्वानों ने एकमत से दी। जिससे सप्तक में स्वरों के निर्धारण हेतु श्रुति का अस्तित्व सदा के लिये मिट गया। उदयपुर के जाकिरुद्दीन खान को गायकों का प्रतिनिधि चुना जाकर उनके द्वारा गाये हुए काफी राग के आरोहावरोह ने यह सिद्ध कराया कि सूक्ष्म स्वरांतरों सहित बनाया हुआ हार्मोनियम भी भारतीय रागों की चाल-ढाल को हूबहू व्यक्त नहीं कर सकता। स्वरों का लेखन करने की पद्धति की उपयोगिता सिद्ध हुई। अधिवेशन की अध्यक्षता ठाकुर नवाब अली खान ने की थी। तानसेन प्रणाली जो रामपुर के कतिपय कलाकारों के पास सुरक्षित है, उसका उपयोग हिन्दुस्तानी सङ्गीत की एकीकृत पद्धति की समृद्धि के लिये कराने के उद्देश्य से उस प्रणाली के गीतों का संग्रह स्वर-लिपि एवं रिकार्डों द्वारा कराया जाय, ऐसा भी यहाँ पर विचार किया गया। तदनुसार ठाकुर नवाब अली और काले नजीर खाँ के प्रयत्नों से भातखण्डे जी का सम्पर्क रामपुर दरबार से हुआ।

श्री भास्करराव खाण्डेपारकर से परिचय तथा ग्वालियर प्रणाली के गीतों का पुनः एक बार मनन।

गीतमालिका के २२ भागों का क्रमशः प्रकाशन प्रारम्भ हुआ।

पं० मदनमोहन मालवीय से परिचय तथा बनारस हिन्दू विश्व-विद्यालय की स्थापना के अवसर पर सङ्गीत की सामूहिक शिक्षा की आवश्यकता की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया।

१६१७—बड़ौदा नरेश श्री सयाजीराव गायकवाड़ के साथ उटकमंड की यात्रा। इसी यात्रा में श्री सयाजीराव को अपने राज्य में सङ्गीत की क्रमवार शिक्षा के लिये एक विद्यालय की स्थापना के लिये प्रेरित किया। अपनी नूतन शिक्षा पद्धति तथा सङ्गीत विषयक अन्यान्य कार्यों का परिचय देकर उनकी सहानुभूति प्राप्त की। मैसूर के युवराज से सम्पर्क। श्री अप्पा शास्त्री तुलसी द्वारा लिखित 'सङ्गीत सुधाकर' का प्रकाशन। श्री

भास्करराव खाण्डेपारकर के अनुरोध पर ग्वालियर को भेंट। बालासाहब गुरुजी, शंकर पंडित तथा उनके बंधु एकनाथ पंडित एवं पुत्र कृष्णराव पंडित, शिष्य राजाभैया पूछवाले, प्रसिद्ध ध्रुवपद गायक वामनबुवा देशपांडे के पुत्र विष्णुबुआ देशपाण्डे, कृष्णराव दाते आदि से भेंट एवं अपने कार्य में सहानुभूति प्राप्त करने के प्रयत्न। अंत में श्री भास्करराव की मध्यस्थता से सरदार बलवन्तराव भैया शिंदे से परिचय। ग्वालियर नरेश से भेंट करा देने का आश्वासन प्राप्त हुआ।

इसी वर्ष ग्वालियर नरेश श्री माधवराव सिंधिया से उनके निमन्त्रण पर शिवपुरी में भेंट। ग्वालियर की इतिहास प्रसिद्ध परम्परा निरन्तर कायम रखने के लिये श्री माधवराव सिंधिया की चिंताओं को दूर करने का आश्वासन दिया। विचार-विमर्ष के बाद निकट-भविष्य में ग्वालियर में एक सङ्गीत विद्यालय स्थापित करने की पूर्वपीठिका स्वयं ग्वालियर नरेश की तीव्र इच्छानुसार तैयार हुई।

बड़ौदा एवं ग्वालियर की चर्चा के फलस्वरूप दोनों राज्यों के कतिपय चुने हुए सङ्गीतज्ञ बम्बई भेजे गए, जहाँ पर उन्होंने पं० भातखण्डे से उनकी नूतन शिक्षा-प्रणाली, स्वरलिपि लेखन तथा 'लक्ष्यसङ्गीत' के सिद्धान्तों का अध्ययन किया। इन्हीं प्रशिक्षित महानुभावों को उनके अपने नगरों के सङ्गीत विद्यालयों के शिक्षण का भार आगे चलकर सौंप दिया गया।

इसी वर्ष भारत-धर्म-मण्डल ने उन्हें 'सङ्गीत-कलानिधि' की महानतम् उपाधि से विभूषित कर उनकी सङ्गीत-सेवा का गौरव किया।

माता श्री बालूबाई का स्वर्गवास और पारिवारिक दायित्व से मुक्ति।

१९१८—हृदयकौतुक, हृदयप्रकाश, रागतरंगिणी, राग तत्वविबोध, सुगमरागमाला चतुर्दण्डिप्रकाशिका आदि ग्रन्थों का प्रकाशन।

देहली में अखिल भारतीय सङ्गीत परिषद् के द्वितीय अधिवेशन का आयोजन एवं संचालन। अधिवेशन की अध्यक्षता रामपुर के तत्कालीन नवाव हिज हाईनेस श्री हामिद अली खान बहादुर ने की थी। रामपुर परम्परा के गीतों का आधार लेकर प्रचलित दुष्कर रागों के स्वरूपों पर खुली चर्चा हुई। धुरन्धर गायकों के विचार संकलित किये गये। सारंग, मल्हार एवं तोड़ी प्रकारों पर विद्वानों का मतैक्य एक उल्लेखनीय सफलता थी। तानसेन परम्परा के गीत जो उस्ताद वजीर खाँ, मुहम्मद अली खाँ एवं नवाब छम्मन खाँ के पास हैं, उन्हें ध्वनिमुद्रित तथा स्वरलिपिबद्ध कराते हुए प्रकाशित भी किया जाय, ऐसा निश्चित हुआ। नेशनल अकाडमी आफ़ म्यूज़िक की स्थापना पर चर्चा एवं निर्णय। इन सभी

कार्यों में श्री एस० एन० कार्नाड, ठाकुर नवाब अली खाँ, नवाब छम्मन खाँ साहब तथा श्री ब्रिजकिशन कौल ने बहुत सहयोग दिया। दरियाबाद के ताल्लुकेदार राय राजेश्वर बली तथा राय उमानाथ बली से भेंट एवं उत्तर प्रदेश में सङ्गीत के प्रचार की योजना पर विचार।

रामपुर के नवाब हिज हाईनेस हामिद अली खाँ के गण्डाबन्ध शागिर्द हुए, जिसके परिणाम स्वरूप तानसेन परम्परा में विधिवत् प्रवेश हो सका।

ग्वालियर में माधव सङ्गीत महाविद्यालय की स्थापना व उसके प्रारम्भिक काम-काज की व्यवस्था।

१९१९—इस विद्यालय की स्थापना के छः मास बाद छात्रों का एक अनुपम प्रदर्शन वहाँ के गुणीजनों के सामने कराया गया। जिसमें स्वरलिपि के माध्यम से घरानेदार विलम्बित लय की चीजें भी अत्यन्त अल्पसमय में बिना किसी कठिनाई के हूबहू गाई जा सकती हैं, यह सप्रयोग सिद्ध किया। वहाँ के गुणीजनों से अपने अभिनव प्रयोगों पर मान्यता प्राप्त की। वस्तुतः इसी समय से विद्यालय के संचालन की सारी जिम्मेदारी विश्वासपात्र सहकारी एवं शिष्य श्री राजाभैया पूछवाले को सौंप दी थी।

अखिल भारतीय सङ्गीत परिषद् का तृतीय अधिवेशन वाराणसी में बुलाया जाकर शेष अन्य अप्रचलित रागों के स्वरूप और उनके बर्ताव कायम किये गये। श्री शिवेन्द्रनाथ बसु का सहकार्य।

इसी वर्ष हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति की 'क्रमिक पुस्तक मालिका' का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ। भावभट्ट विरचित अनूप संगीत रत्नाकर तथा अनूप संगीतांकुश का प्रकाशन हुआ।

१९२०—बड़ौदा एवं ग्वालियर के विद्यालयों के लिये पाठ्यक्रम का निर्धारण पाठ्य पुस्तकों के निर्माण की योजना बनाई गई। पं० काशीनाथ उर्फ अप्पा शास्त्री तुलसी का स्वर्गवास।

१९२१—हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति की 'क्रमिक पुस्तक मालिका' के द्वितीय भाग का तथा संस्कृत भाषा में स्वरचित 'अभिनवरागमंजरी' का प्रकाशन। भावभट्ट विरचित 'अनूपसंगीतविलास' का प्रकाशन कराया।

१९२२—विभिन्न व्यक्तियों से प्राप्त घरानेदार गीतों का भाषा एवं राग की दृष्टि से उन-उन गायक-वादकों के साथ तथा शास्त्री, पंडित, मौलवीयों से परामर्श लेकर शुद्धिकरण किया गया। इस कार्य के लिये हरिद्वार में एक सेमिनार का आयोजन हुआ, जहाँ पर गीतों के सर्वमान्य पाठ निश्चित किये गये। श्री राजाभैया पूछवाले को उनके विद्यालय के लिये पदवी परीक्षा का पाठ्यक्रम तैयार करके दिया।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति की 'क्रमिक पुस्तक मालिका' के तृतीय भाग का प्रकाशन। परम मित्र छम्मन साहब का निधन।

१९२३—'क्रमिक पुस्तक मालिका' के चतुर्थ भाग का प्रकाशन। माधव सङ्गीत महाविद्यालय में स्नातकीय स्तर की परीक्षा का संचालन। इसी परीक्षा के शैक्षणिक स्तर एवं प्रथा को बाद में अन्य स्थानों के लिये भी स्वीकृत किया गया।

१९२४—ग्वालियर में सङ्गीत महाविद्यालय के प्रथम दीक्षान्त समारोह का आयोजन। परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियों को प्रथम बार प्रमाण-पत्र दिये गये, जो सङ्गीत शिक्षा में आधुनिक युग का श्रीगणेश था। समारोह की अध्यक्षता हिज हाईनेस माधवराव सिंधिया ने करते हुए पं० भातखंडे का बहुमूल्य वस्त्रादि से सम्मान किया तथा नूतन शिक्षा प्रणाली द्वारा केवल पाँच वर्षों में कुशल गायक व शिक्षक निर्माण करने की उनकी प्रतिज्ञा यथार्थ में सफल हो जाने के उपलक्ष्य में निःस्वार्थ प्रयासों की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

१९२५—अखिल भारतीय संगीत परिषद् के चतुर्थ एवं पंचम अधिवेशन लखनऊ में आयोजित करते हुए मैरिस कालेज आफ हिन्दुस्तानी म्यूज़िक की स्थापना पर अंतिम निर्णय लिये गये। इन सभी अधिवेशनों के वे स्थायी सचिव रहे। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर से पत्र-व्यवहार, व्यक्तिगत वार्तालाप होकर उनकी शिक्षण संस्था के संगीत विभाग की योजना, पाठ्यक्रम निर्धारण आदि में सहयोग दिया। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी से भेंट व संगीत शिक्षा के सम्बन्ध में विचार विनिमय।

१९२६—मैरिस कालेज आफ म्यूज़िक, लखनऊ की स्थापना व दीर्घकाल तक लखनऊ में निवास। विद्वानों से चर्चा, लेखन, पठन, पाठन एवं कालेज का भवितव्य सुदृढ़ करने के प्रयास। उस्ताद वजीर खाँ का निधन। ग्वालियर के हिज हाईनेस महाराजा माधवराव सिंधिया का स्वर्गवास।

१९२७—महारानी साहिबा बड़ौदा के साथ काश्मीर की यात्रा, ग्रंथालयों से भेंट व फकीरुल्ला के 'रागदर्पण' की खोज। तानसेन खानदान के अंतिम वंशज उस्ताद मुहम्मद अली खाँ का स्वर्गवास। श्री गणपतिबुवा मिलवड़ीकर का स्वर्गवास।

१९२७-३२—ग्वालियर कालेज का कार्य संतोषप्रद होने के कारण वर्ष में एक बार निरीक्षण, मार्ग दर्शन परीक्षा संचालन करते रहे। परन्तु लखनऊ के नव संस्थापित कालेज में वर्ष में दो बार निजी खर्च से जाकर वहाँ का निरीक्षण, मार्ग दर्शन एवं भावी योजनाएँ बनाने का कार्य करते रहे।

१९२८—मैरिस कालेज आफ हिन्दुस्तानी म्यूज़िक लखनऊ के लिये नये भवन का अनुदान। कालेज की सम्पूर्ण व्यवस्था अपने प्रिय शिष्य श्रीकृष्ण

नारायण रातांजनकर को सौंप दी । 'संगीत भाव' के लेखक धरमपुर के महाराणा विजय देव सिंह से परिचय एवं चर्चाएँ । लगभग इसी समय से वृद्धावस्था अनुभव करने लगे । स्वास्थ्य भी गिरता गया ।

१९२९से१९३१—हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति (भाष्य ग्रंथ) के चतुर्थ भाग का तथा 'क्रमिक पुस्तक मालिका' के पंचम एवं षष्ठ भाग का लेखन ।

१९३०—ग्वालियर के माधव संगीत महाविद्यालय के वार्षिक दीक्षान्त समारोह पर राज्य सरकार की ओर से पंडित भातखंडे का अभूतपूर्व सम्मान किया गया । जिसमें उनकी वास्तविक रूप से पूजा करते हुए उन्हें ज़रतारी वस्त्र तथा एक सहस्र रौप्य राज्य-मुद्राएँ समर्पित की गईं ।

१९३२—लगभग साढ़े ग्यारह सौ पृष्ठों में 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति' का चतुर्थ एवं अंतिम भाग प्रकाशित किया । ग्वालियर, लखनऊ आदि विद्यालयों की परीक्षा संचालन का अन्तिम दौरा ।

१९३३—प्रिय शिष्य एवं सहयोगी मित्र श्री शंकरराव कार्नाड़ का जनवरी मास में स्वर्गवास । अक्तूबर मास में पक्षाघात का आकस्मिक आक्रमण, इसके उपरान्त लगभग तीन वर्ष तक रुग्णशैया पर रहे । और वहीं से विभिन्न संस्थाओं, व्यक्तियों की शैक्षणिक समस्याओं का निराकरण करते रहे ।

१९३४—हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति की 'क्रमिक पुस्तक मालिका' के ५वें और ६वें भाग की हस्तलिखित प्रति तैयार करने के लिये प्रमुख शिष्य द्वय-श्रीकृष्ण नारायण रातांजनकर तथा वाड़ीलाल शिवराम नायक को आज्ञा प्रदान की ।

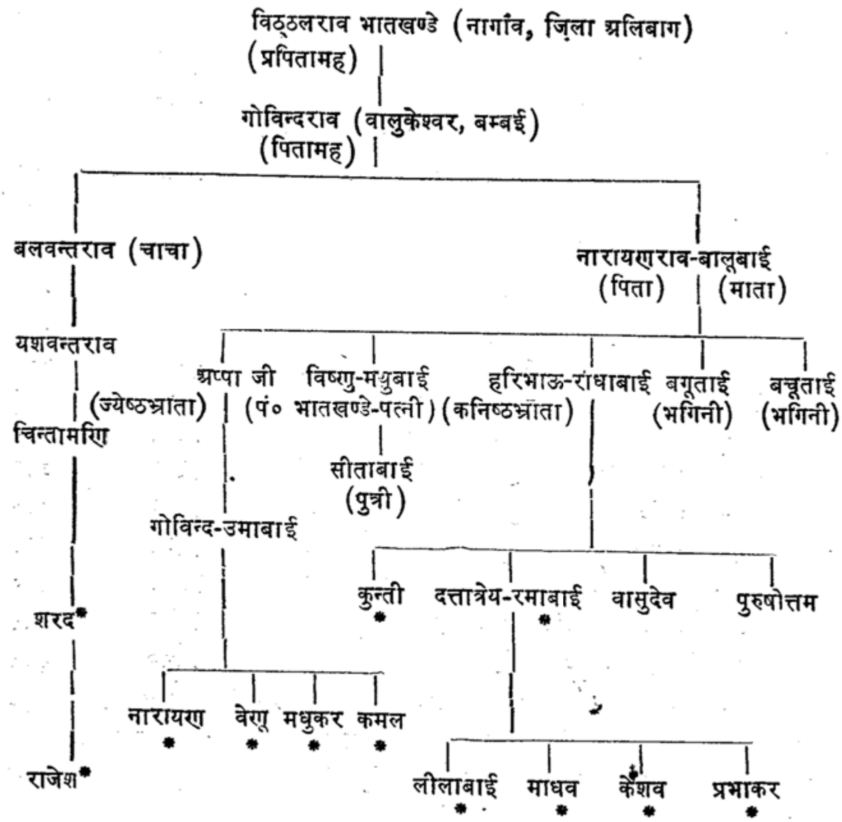
१९३५—परम मित्र, सहकारी एवं प्रिय शिष्य ठाकुर नवाब अली खान साहब का देहावसान । क्रमिक पुस्तक मालिका भाग ५ और ६ के लेखन में शिष्य-द्वय को मार्ग दर्शन ।

१९३६—क्रमिक पुस्तक मालिका के पाँचवें भाग का मुद्रण प्रारम्भ कर देने की प्रिय शिष्य श्री भालचन्द्र सीताराम सुकथनकर को आज्ञा । इस पुस्तक के प्रूफ संशोधन का कार्य भी करते रहे ।

गणेश चतुर्थी, शनिवार, दिनांक १९ सितम्बर १९३६ के पुनीत पर्व पर प्रातः ५ बजे शान्ताराम हाउस, मलबार हिल, बम्बई में महाप्रयाण ।

(श्री भालचन्द्र सीताराम सुकथनकर बी० ए०, एल० एल० बी०, सालिसिटर, बम्बई द्वारा लिखित 'माइल स्टोन्स इन् द लाइफ आफ पं० भातखण्डे' के आंशिक आधार पर)

भातखण्डे वंशावली



उपरोक्त वंशावली श्री माधव दत्तात्रेय भातखण्डे द्वारा उपलब्ध हुई है। चिन्हांकित व्यक्ति जीवित हैं।

—सम्पादक

पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे द्वारा

निर्मित साहित्य

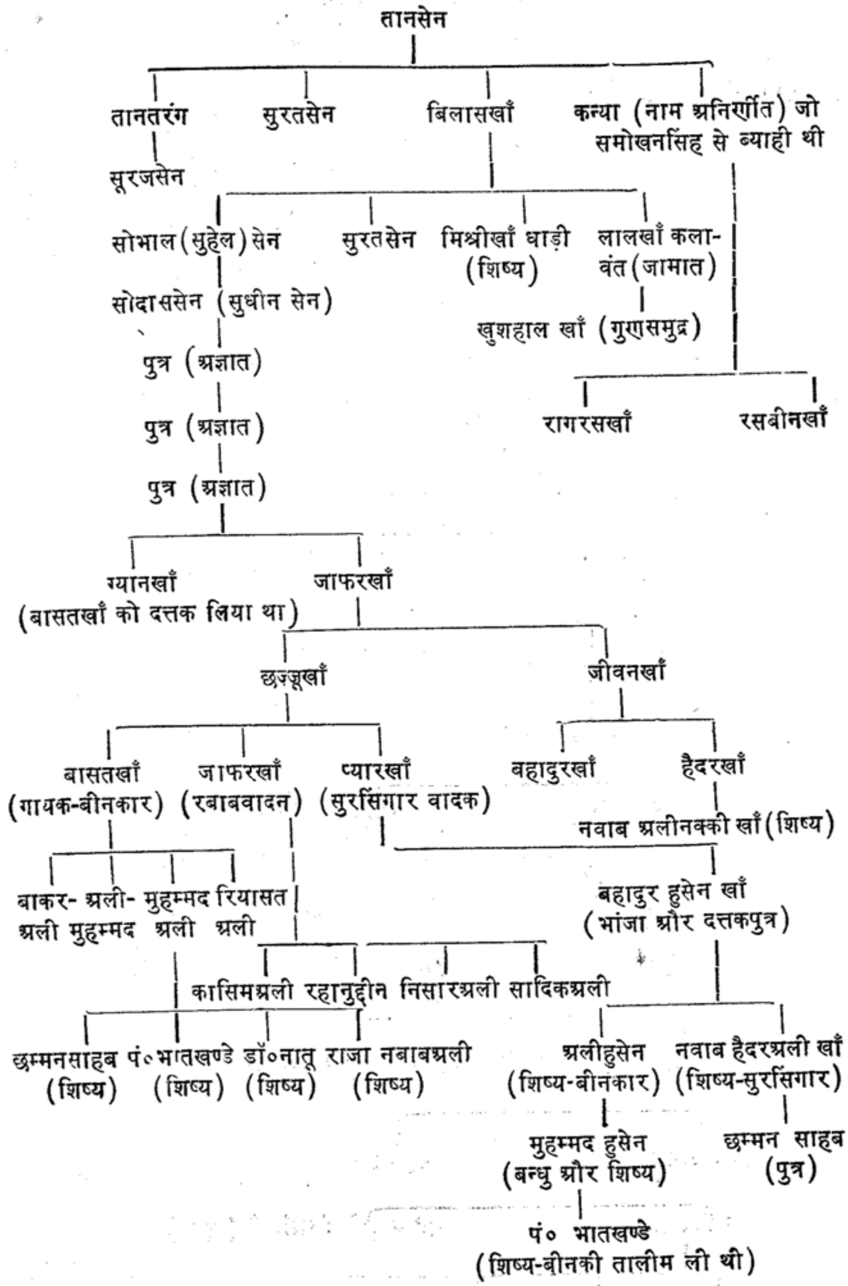
क्रमांक	पुस्तक का नाम	प्रकाशन वर्ष	पृष्ठसंख्या
१	श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम् (संस्कृत में)	१९१०	२००
२	अभिनवरागमञ्जरी (संस्कृत में)	१९२१	४५
३	अष्टोत्तरशततालक्षणम् (संस्कृत में)	१९११	१७
४	हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति भाग १ (मराठी और गुजराती भाषा में)	१९१०	३९४
५	हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति भाग २	१९१४	५००
६	हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति भाग ३	१९१४	४७८
७	हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति भाग ४	१९३२	११३६
८	लक्षणगीत संग्रह भाग १ से ३	१९११	१२५
९	स्वरमालिका संग्रह	१९०९	१४०
१०	गीतमालिका भाग १ से २३	१९१६ से १९२३	५७५
११	हिं० सं० पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका भाग १	१९१९	६०
१२	हिं० सं० प० क्रमिक पुस्तक मालिका भाग २	१९२१	५००
१३	हिं० सं० प० क्रमिक पुस्तक मालिका भाग ३	१९२२	७८६
१४	हिं० सं० प० क्रमिक पुस्तक मालिका भाग ४	१९२३	८५७
१५	हिं० सं० प० क्रमिक पुस्तक मालिका भाग ५	१९३७	४७७
१६	हिं० सं० प० क्रमिक पुस्तक मालिका भाग ६	१९३७	५००
१७	Short Historical Survey	१९१६	५१
१८	Comparative Study	१९३०	११२

सूचना—इनके अतिरिक्त कुछ प्रदीर्घ लेख इस ग्रंथ में पुनर्मुद्रित हो रहे हैं। शेष लिखित साहित्य में अपनी शोधयात्राओं का विषद् वर्णन दैनंदिनियों द्वारा वे लिख रखते थे जो अभी तक अप्रकाशित है। यह साहित्य अनुमानतः दो-ढाई हज़ार पृष्ठों से अधिक होना चाहिये।

पं० भातखण्डे द्वारा संपादित अन्य लेखकों के प्रकाशन

१. स्वरमेलकलानिधि, २. चतुर्दंडिप्रकाशिकासारः, ३. संगीत रत्नाकरः, ४. संगीत-दर्पणम्, ५. अनूपसंगीतविलासः, ६. अनूपसंगीत रत्नाकरः, ७. अनूपसंगीतांकुशः, ८. सद्राग-चंद्रोदयः, ९. संगीत सारामृतोद्धारः, १०. रागलक्षणम्, ११. रागमाला, १२. राग मंजरी, १३. हृदय कौतुकम्, १४. हृदयप्रकाशः, १५. रागतरंगिणी, १६. रागकल्पद्रुमांकुरः, १७. रागचंद्रिका, १८. चन्द्रिकासार, १९. सङ्गीतसुधाकरः, २०. अभिनवतालमंजरी, २१. चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणम्, २२. सङ्गीतपारिजातप्रवेशिका, २३. रागविबोध प्रवेशिका, २४. राग तत्वविबोध, २५. सुगमरागमाला, २६. नादोदधि आदि आदि।

तानसेन—पुत्रवंश की परम्परा में पण्डित भातखण्डे



—हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति भाग ४ से संकलित

तानसेन—पुत्रिवंश की परम्परा में पण्डित भातखण्डे

तानसेन (गौरहार वाणी)

तानतरंग — सुरतसेन — विलासखाँ — पुत्री (नाम अनिर्णीत पति = राजा समोखनसिंह उर्फ बड़े नौबतखाँ जो किशनगढ़ राजपरिवार के थे, खण्डार वाणी)

रागरसखाँ — रसबीनखाँ — मिश्रीसिंह (नौबतखाँ)

(इन दोनों ने पिता से बीन और मातामह से गायन की शिक्षा पाई थी)

रागरसखाँ
|
शेरखाँ
|
हुसेनखाँ
|
असतखाँ
|
लालखाँ (बिलासखाँ के जामात, गुणसमुद्र)

बेनज़ीरखाँ — खुशहालखाँ

बेनज़ीरखाँ
|
असतखाँ
|
खुशहालखाँ
|
लालखाँ सानी

महाबतखाँ — न्यामतखाँ (सदारंग)

न्यामतखाँ (सदारंग)
|
हसनखाँ धाड़ी (शिष्य)

महाबतखाँ
|
जीवनशा — प्यारखाँ

जीवनशा
|
छोटे नौबतखाँ — निर्मूलशा

छोटे नौबतखाँ
|
उमरावखाँ (निर्मूलशा के जामात) — मुहम्मदअली खाँ

उमरावखाँ
|
अमीरखाँ — रहीमखाँ

अमीरखाँ
|
वजीरखाँ — नवाब हामिद अलीखाँ (शिष्य)

वजीरखाँ
|
प्यारखाँ — नासीरखाँ — सगीरखाँ — नबाबसाहब हामिदअली (शिष्य और जामात)

प्यारखाँ
|
मुहम्मद दबीरखाँ (कलकत्ता)

नबाबसाहब हामिदअली
|
छम्मन साहब (शिष्य) — पं० भातखण्डे (शिष्य) — ठाकुर नवाबअली (शिष्य)

—हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति भाग ४ से संकलित

स्मृति-ग्रन्थ में प्रकाशित चित्रों का परिचय

श्री हरि नारायण भातखण्डे, बम्बई

अपने कुटुम्बियों में ये हरिभाऊ नाम से प्रसिद्ध थे। पं० भातखण्डे के दो भाई थे। ज्येष्ठ भ्राता त्रिम्बकराव के पुत्र व्यावसायिक कारणों से बड़ौदा में निवास करने लगे, तो स्वयं पंडित जी ने अपनी पत्नी एवं पुत्री के निधन के बाद पारिवारिक बंधनों से विमुक्त होकर अभ्यास, चिन्तन, लेखन की दृष्टि से अधिक उपयुक्त वातावरण की खोज में गृह त्याग दिया। अर्थात् माता की देखभाल का दायित्व श्री हरिभाऊ को संभालना पड़ा। स्मृति-ग्रन्थ में प्रकाशित हरिभाऊ को सम्बोधित पं० भातखण्डे का वह एकमात्र पत्र दोनों के भ्रातृ-प्रेम का परिचायक है। श्री हरिभाऊ बैंक में नौकरी करते थे। गायन-वादन से इन्हें भी बहुत प्रेम था। स्वयं दिलरुबा बहुत अच्छा बजाते थे। पण्डित जी से मिलने के लिए प्रायः आते रहते थे। हरिभाऊ से एक पुत्र तथा तीन कन्याएँ थीं। पुत्र का नाम दत्तात्रेय था, परन्तु घर में इन्हें केदार नाम से पुकारते थे। दत्तात्रेय भातखण्डे के तीन पुत्र अपनी माता के साथ आजकल वालकेश्वर के अपने मकान में रहते हैं। भातखण्डे हाउस का जो चित्र प्रकाशित हुआ है, उसमें स्पष्टतः दो विभाग हैं। पोस्ट बॉक्स के पास वाला हिस्सा पुराना मकान है और इसी में दत्त-मन्दिर का प्रवेश-द्वार है। सीढ़ियों सहित ऊँचे छत वाला हिस्सा पं० भातखण्डे ने बाद में बनवाया था। यही वह पावन भूमि है, जहाँ पर सङ्गीतोद्धारक 'विष्णु' ने अवतार लिया।

श्रीमती रमाबाई भातखण्डे, बम्बई

आप पण्डित भातखण्डे के कनिष्ठ भ्राता स्व० श्री हरि नारायण भातखण्डे की स्नुषा एवं स्व० श्री दत्तात्रेय हरि भातखण्डे की धर्मपत्नी हैं। इनके तीन पुत्रों के नाम क्रमशः माधव, केशव तथा प्रभाकर हैं। कन्या का नाम सौ० लीलाबाई है। ज्येष्ठ पुत्र श्री माधवराव को संगीत के प्रति विशेष अनुराग है। 'भातखण्डे साहित्य' के प्रचार-प्रसार में श्रीमती रमाबाई सदैव प्रयत्नशील रहती हैं। प्रस्तुत स्मृति-ग्रंथ में इनका सहयोग विशेष उल्लेखनीय है।

उस्ताद मुहम्मद अली खाँ, गिधौरवाले

सङ्गीत-सम्राट् तानसेन के पुत्र वंश में उस्ताद मुहम्मद अली खाँ अन्तिम व्यक्ति थे। रामपुर दरबार के गायक-वादकों में इनका बड़ा सम्मान था। रबाब बजाने में अत्यन्त कुशल होते हुए वे अच्छे गायक भी थे। सैकड़ों ध्रुवपद, धमार, सादरे इनको कण्ठस्थ थे। इनके ये गीत ही वास्तव में रागों की परम्परागत शक्लें थीं। पण्डित भातखण्डे ने इस तथ्य की जाँच-पड़ताल कर लेने के बाद अपने कार्य में इनकी सहायता प्राप्त करने की ओर वे जुट गये। ठाकुर नवाब अली, हिज हाईनेस नवाब हामिद अली तथा छम्मन साहब की

मध्यस्थता से यह काम सम्भव हो सका। पं० भातखण्डे इन्हें अपना उस्ताद मानते थे और इनके जैसे उच्च परम्परा के गायक-वादकों की मौजूदगी में ही रागों का स्तरीकरण निपटा लेने की उन्हें त्वरा हो गई थी। अपनी योजना-चातुर्य का सम्पूर्ण उपयोग करते हुए यह काम उस्ताद के रहते हुए ही उन्होंने पूर्ण कर लिया। तानसेन कुल की यह अन्तिम ज्योति सितम्बर १९२७ में यद्यपि प्रत्यक्ष में बुझ गई, तथापि 'मारिफुन्नगमात' एवं क्रमिक पुस्तक-मालिका द्वारा असंख्य चिनगारियों के रूप में आज भी विद्यमान है।

जीवन जी महाराज

बम्बई में वैष्णव संप्रदाय के महंतों की कई गद्दियाँ हैं। जिनमें प्रायः सबसे बड़ी गद्दी के महंत आप थे। आप स्वयम् बीनकार थे। आपका बीन-वादन का कौशल उस समय बम्बई में सर्वमान्य था। आपके बीन-वादन की यह ख्याति थी कि केदारा, दरबारी कान्हडा, बागेश्री तथा मालकंस जैसे आपने बीन पर बजाये थे, पश्चात् क्वचित् ही किसी ने बजाए हों। आपके शिष्य वल्लभदास दामुलजी थे, जिनसे पंडित जी ने सितार-वादन की शिक्षा प्राप्त की। जीवन जी महाराज के पास विशाल ग्रन्थ संग्रह था, जो पण्डित जी के लिये वरदान सिद्ध हुआ। विद्यार्थी जीवन से ही पण्डित जी को सङ्गीत सेवा में प्रोत्साहित करने वालों में जीवन जी महाराज प्रमुख थे।

उस्ताद वज़ीर अली खाँ, रामपुर

रामपुर राज्य के गुणीजनखाने के ये वरिष्ठ अधिकारी थे। हिज हाईनेस नवाब हामिद अली के वे उस्ताद थे और श्वसुर भी। किसी राजा-महाराजा के समान साज-लिवास में वे रहते। सदारंग के वंशज थे तथा तानसेन परम्परा के साथ पुत्री के वंश से इनका सम्बन्ध था। बीनकार के रूप में इनको परमोच्च सम्मान प्राप्त था। नवाब हामिद अली खाँ बहादुर के गंडाबन्ध शागिर्द हो जाने के कारण पण्डित भातखण्डे को वज़ीर खाँ साहब की तालीम प्राप्त हुई, जिसका क्रमिक पुस्तक मालिका के प्रकाशन में तथा राग रूपों के निर्धारण में उन्होंने उपयोग किया। वज़ीर खाँ ने अपने एकमात्र पुत्र प्यार खाँ को उत्तम तालीम दी थी, परन्तु उनके रहते हुए ही प्यार खाँ का देहान्त हुआ। इन्हीं प्यार खाँ के पुत्र श्री मुहम्मद दबीर खाँ आजकल कलकत्ता में निवास करते हैं।

राजा सर सौरीन्द्र मोहन टागोर

आप बंगाल के एक बहुत बड़े जमींदार थे। सङ्गीत के एक सर्वमान्य विद्वान् थे, और आपकी सङ्गीत पर लिखी अनेक पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। पंडित भातखण्डे जी अपने पूर्व बंगाल के प्रवास में कलकत्ता गये तब आप से मिलने आपकी कोठी पर गये थे। आपके प्रकाशित ग्रंथ पंडित जी ने पढ़े थे। उनके कुछ शंका-स्थलों पर चर्चा करते हुए पंडित जी ने सङ्गीत शास्त्र सम्बन्धी अपने विचार राजा साहब के आगे रखे। राजा साहब उन विचारों से पूर्णतया सहमत हुए। दोनों का पत्र-व्यवहार काफी दिनों तक चलता रहा। राजा साहब पंडित जी को बहुत मानते थे। अपनी शोध-यात्रा में जिन तीन व्यक्तियों से पंडित जी प्रभावित हुए, उनमें राजा साहब भी एक थे।

पं० काशीनाथ शास्त्री उर्फ अप्पा तुलसी

आप हैदराबाद दक्षिण के एक संस्कृत पंडित और गायक थे। आपका जन्म १८५५ के आस-पास हुआ था। पंडित भातखण्डे जी का श्रीमल्लक्ष्यसङ्गीत आपके देखने में आया। आपको वह बहुत पसंद आया। आप ने पंडित जी से पत्र-व्यवहार शुरू किया। पंडित जी एक बार जब हैदराबाद गये थे, तब अप्पा तुलसी जी से प्रथम परिचय हुआ। अप्पा तुलसी ने लक्ष्यसङ्गीत की ही प्रणाली के अनुसार चार-पांच पुस्तकें सङ्गीतरागकल्पद्रुमांकुर, सङ्गीत-सुधाकर, सङ्गीतरागचंद्रिका, रागचन्द्रिकासार, अभिनवतालमंजरी लिख कर पंडित जी के पास भेजीं। पंडित जी ने उनको छपवाकर प्रकाशित किया। आप हरिकथा भी करते थे। अत्यन्त स्पष्टवक्ता, निस्पृह, विद्याव्यसनी एवं परम्परा पर असीम श्रद्धा आपके विशेष गुण थे। छपे हुए अक्षरों की भाँति लिखे हुए कुछ आख्यान एवं स्वरलिपिबद्ध चीजें आपके हस्ताक्षर में आज भी सुरक्षित हैं। भाग्यनगर का यह तुलसी कुटुम्ब सङ्गीत एवं संस्कृत विद्या के लिये बहुत प्रसिद्ध है।

पद्मभूषण डॉ० श्रीकृष्ण नारायण रातांजनकर

आप पंडित भातखंडे जी के प्रमुख शिष्य हैं। सन् १९११ में पंडित जी की सेवा में उपस्थित हुए। तबसे पंडित जी के स्वर्गवास तक उनसे शिक्षा पाते रहे। सन् १९२६ में बम्बई यूनिवर्सिटी की बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण करने पर आप लखनऊ के मैरिस म्यूजिक कालेज में कंठ विभाग में प्रोफेसर नियुक्त हुए। सन् १९२८ में आप उसी कालेज के प्रधानाचार्य नियुक्त हुए। तब से लगातार अट्ठाईस वर्ष तक उसी पद पर कार्य करते रहे। तत्पश्चात् सन् १९५७ में आप मध्यप्रदेश खैरागढ़ में इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय के प्रथम उपकुलपति नियुक्त हुए। लगभग साढ़े तीन वर्ष तक उस पद पर कार्य करके सेवा निवृत्त हुए। उस्ताद फैयाज खाँ पंडित जी के विशेष कृपा प्राप्त गायक थे। इनसे भी आपने तालीम पाई थी। सङ्गीत की प्रायः सभी समस्याओं पर आपने लेखन किया है। वैसे तो इनके इन लेखों का संकलन ही अपने आप में एक बृहत् ज्ञानकोष बन जाता है तथापि पाश्चात्य विद्वानों की भाँति भारतीय सङ्गीत का साद्यंत विश्लेषणात्मक इतिहास लिखने की आपकी बहुत दिनों से इच्छा है। अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी भाषा पर इनका प्रभुत्व है। सभी भारतीय लिपियों का अभ्यास कर अपने विषय की अद्यतन जानकारी रखते हैं। सैकड़ों सुशिक्षित छात्रों का निर्माण कर चुके हैं। 'सुजान' नामाभिधान से रचित आपके सैकड़ों गीत प्रायः सुने जाते हैं। तानमालिका, अभिनव शिक्षा पद्धति, अभिनव गीत मंजरी अनेक भागों में प्रकाशित हुई हैं। कुछ पुस्तकें अप्रकाशित भी पड़ी हैं। नई राग रचना पर्याप्त लोकप्रिय हुई हैं। वास्तव में डा० रातांजनकर एक व्यक्ति नहीं बल्कि एक संस्था में बदल चुके हैं। देश के अग्रगण्य सङ्गीत मनीषियों में आपका स्थान बहुत ऊँचा है।

आचार्य राजाभैया पूछवाले

आपका मूल नाम बालकृष्ण अष्टेकर था। झाँसी के पास पूछ नामक गाँव में आपके पूर्वज दक्षिण से आकर बसे थे। वहाँ उन लोगों की जागीर भी थी। इसी से पूछवाले कह-

लाए। पश्चात् ये लोग ग्वालियर आ गये। श्री राजाभैया जी ग्वालियर राज्य के किसी दफ्तर में टाइपिस्ट थे। सङ्गीत का शौक बहुत था। ग्वालियर के सुप्रसिद्ध श्री शंकरराव पंडित के पास सङ्गीत की शिक्षा पाते थे। ध्रुवपद, धमार की शिक्षा भी आपने श्री वामनराव देशपांडे जी से ग्रहण की। पंडित भातखण्डे जी माधव महाराज के निमन्त्रण पर ग्वालियर पधारे तब से राजाभैया उनके संपर्क में आये। उस समय राजाभैया हार्मोनियम पर स्वयम् सरकार माधवराव जब भजन गाते तब उनकी सङ्गत करते थे। सङ्गीत विद्यालय के लिये चुने हुए शिक्षकों में राजाभैया प्रमुख थे। पंडित जी की शिक्षा प्रणाली ठीक समझने के हेतु सरकार नें चुने हुए सब शिक्षकों को बम्बई में पंडित जी के पास सीखने के लिये भेजा गया। राजाभैया पर पंडित जी की शिक्षा का इतना प्रभाव पड़ा कि वे पंडित जी को अपने गुरु के स्थान पर मानने लगे। और जीवन भर वैसे ही मानते रहे। सङ्गीत विद्यालय के लिये अभ्यासक्रम, शास्त्रीय जानकारी, रागताल-बद्ध चीजें इत्यादि बातों पर ग्वालियर से पधारे हुए शिक्षकों के साथ चर्चा करके पंडित जी ने उनको निश्चित किया।

ग्वालियर के सङ्गीत विद्यालय में ग्वालियर के ही ध्रुपद, धमार, ख्याल, तराने आदि ग्वालियर के कैंडे के साथ सिखाए जाने चाहिए—ऐसा पंडित जी का आग्रह था। ग्वालियर के श्री एकनाथजी उर्फ माऊ पंडित जी से लगभग साढ़े तीन सौ ख्याल पंडित जी ने प्राप्त किये ही थे। श्री राजाभैया, भास्करराव खाँडेपारकर तथा श्री कृष्णराव दाते, जो श्री शंकरराव पंडित के ही शिष्य थे, इन सबको वे सभी ख्याल कण्ठस्थ थे। इन सब ने इन ख्यालों को ठीक वैसे ही गाकर सुनाया जैसे कि माऊ पंडित जी ने पण्डित जी को बताया था। कहीं किंचित् थोड़ी भिन्नता रही हो तो आपस में चर्चा करके जो भी उचित प्रतीत हुआ उसको निश्चित किया गया। बाद में सङ्गीत विद्यालय के लिये पाठ्य पुस्तकों की आवश्यकता प्रतीत हुई। निश्चित पाठ्यक्रम के अनुसार पण्डित जी ने राजा भैया तथा श्री खांडेपारकर की सहायता से ये सभी ध्रुपद, ख्याल, तराने, धमार आदि के साथ कुछ अन्य ध्रुपद, होरियाँ, ख्याल, तराने आदि जो जयपुर के मुहम्मद अली खाँ से तथा रामपुर के वज़ीर खाँ साहब से पण्डित जी ने प्राप्त किये थे, उन्हें भी पण्डित जी ने अपनी ओर से जोड़ दिया। पण्डित जी की तैयार की हुई यही पाठ्य पुस्तकें आज क्रमिक पुस्तक मालिका के नाम से प्रख्यात हैं। श्री राजाभैया प्रारम्भ में माधव म्यूज़िक कालेज में सीनियर प्रोफेसर नियुक्त हुए। कुछ वर्ष पश्चात् उसी कालेज के प्रिन्सिपल हुए।

राजाभैया एक अच्छे ख्याल गायक तो थे ही, इसके अतिरिक्त आपके पास ठुमरी, टप्पों का भी अच्छा संग्रह था और ठुमरी, टप्पे आप बड़े अच्छे ढंग से गा लेते थे। अर्जित की हुई समस्त विद्या को मुक्तहस्त से लुटा देने वाले इस सत्पुरुष गायक को उनकी मृत्यु के केवल चार दिन पूर्व राष्ट्रपति ने सम्मानित किया था। इनके सहस्रों शिष्य पंडित जी के सिद्धान्तों के अनुसार आज भी गाते-बजाते हैं। राजाभैया का जीवन एक सफल जीवन था।

पंडित वाड़ीलाल शिवराम नायक

आप गुजरात के निवासी थे। आपको बाल्यावस्था से ही संगीत का शौक था। उस समय आपके पिता जी ने संगीत तथा संस्कृत का अध्ययन करने के लिए बम्बई भेजा। बम्बई में भुलेश्वर की एक संस्कृत पाठशाला में आपने वैयाकरण (पाणिनी) प्रणाली में संस्कृत व्याकरण तथा साहित्य का अध्ययन किया। संगीत सीखने के लिये आप शुरू-शुरू में उस्ताद नज़ीर खाँ साहब के पास कई वर्ष तक जाते रहे। नज़ीर खाँ साहब उस समय बम्बई का "गायन उत्तेजक मंडली" नामक संगीत संस्था में सङ्गीत-शिक्षक का कार्य करते थे। पंडित भातखण्डे जी से खाँ साहब का अच्छा स्नेह सम्बन्ध रहा। खाँ साहब ने वाड़ीलाल जी को पंडित जी का भी परिचय दे दिया। तत्पश्चात् वाड़ीलाल पंडित जी के एक निःसीम भक्त तथा शिष्य बन गये। आप पंडित जी के पट्ट शिष्य माने जाते थे। पंडित जी के विचारों के आप एक महान् भंडार ही थे। पंडित जी के पास की परम्परागत समस्त चीजें आपको कण्ठस्थ थीं और उनको आप बड़ी कुशलता के साथ गाते थे। इसके अतिरिक्त सब प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन आपने पंडित जी के पास किया था। पुस्तकों के संपादन-प्रकाशन में सम्पूर्ण सहयोग देते थे। शास्त्रीय विषयों को लेकर विद्वानों में गायक-वादकों से चर्चा करने में आप अत्यंत कुशल थे।

प्रो० एस० एल० जोशी

आप एक क्रिश्चियन सज्जन थे जो बड़ौदा कालेज में अंग्रेजी के प्रोफेसर थे। भांडारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना के भूतपूर्व अध्यक्ष स्व० डा० विष्णु सीताराम सुकथनकर से आपका परिचय था। डा० सुकथनकर की शिशु अवस्था में पंडित भातखण्डे जी उनके अभिभावक थे। डा० सुकथनकर द्वारा प्रो० जोशी से पंडित जी का परिचय हुआ। बड़ौदा नरेश हिज हाईनेस सर सयाजीराव महाराज प्रो० जोशी से प्रसन्न रहते थे। बड़ौदा की सङ्गीत संस्था के सुचारु रूप से संचालन की चिंता श्रीमन्त महाराज को सदैव रहती। इस सम्बन्ध में बातचीत के एक प्रसङ्ग पर प्रोफेसर महोदय ने पंडित जी का नाम सर सयाजी-राव को सुझाया। उस समय पंडित जी की श्रीमल्लक्ष्यसङ्गीत, हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति के प्रथम तीन भाग, लक्षणगीत संग्रह, स्वरमालिका तथा कुछ प्राचीन सङ्गीत के ग्रन्थ जो उन्होंने सम्पादन करके प्रसिद्ध किये थे, छपकर प्रकाशित हो चुके थे। पंडित जी के कार्य से सङ्गीत प्रेमी जनता पर्याप्त परिचित हो चुकी थी। लगभग सन् १९१४ का समय था। महाराजा ने पंडित जी को निमन्त्रण दिया। सङ्गीत संस्था के पुनरुद्धार की चर्चा के दौरान में सङ्गीत सम्बन्धी पर्याप्त संभाषण महाराज के साथ हुआ। जिसके फलस्वरूप बड़ौदा में अखिल भारतीय सङ्गीत परिषद् बुलाने का निर्णय बड़ौदा सरकार ने किया। यह परिषद् सन् १९१६ के मार्च महीने में हुई थी। इस परिषद् के प्रबन्ध में प्रो० जोशी ने बहुत सहायता की।

हिज हाईनेस महाराजा सर सयाजीराव गायकवाड, बड़ौदा

देशी रियासतों में बड़ौदा राज्य को अग्रणी बनाने का समस्त श्रेय इन्हें ही देना चाहिए। प्रोफेसर जोशी के द्वारा इनका परिचय पं० भातखण्डे जी से हुआ था। परिणाम स्वरूप नई क्रान्ति के बिगुल का प्रथम उद्घोष बड़ौदे में ही पं० भातखण्डे बजा सके।

दक्षिणोत्तर सङ्गम, पूर्व-पश्चिम सम्पर्क, गायक-वादकों में चेतना, सङ्गीत का देशव्यापी आन्दोलन, प्रचुर साहित्य के विषय में इन्हीं सयाजीराव के सहाय्य से प्रारम्भ हुआ। भातखण्डे जी के विचारों को मूर्तस्वरूप देने में इनका बहुत बड़ा योगदान है।

श्री एम० फ्रेडिलिस

ये सज्जन पाश्चात्य सङ्गीत के विद्वान्, बड़ौदा राज्य में सङ्गीत दिग्दर्शक तथा सरकारी सङ्गीत शिक्षण संस्था बड़ौदा के प्रधानाचार्य के पद पर कार्य करते थे। लगभग दस वर्ष तक सन् १९१६ पर्यंत उक्त संस्था के प्रधानाचार्य का कार्य आपने किया। अखिल भारतीय सङ्गीत परिषद् का आयोजन सर्वप्रथम बड़ौदा में ही सन् १९१६ में हिज हाईनेस सर सयाजीराव महाराज के संरक्षण में स्व० पं० भातखण्डे जी की प्रेरणा से हुआ था। उस समय श्री फ्रेडिलिस महोदय बड़ौदा में ही शासकीय सेवा में थे और बड़ौदा की सङ्गीत संस्था का कामकाज पंडित भातखण्डे की ही देखभाल में हो रहा था। प्रतिवर्ष दो-तीन बार पंडित जी को संस्था के निरीक्षणार्थ बड़ौदा जाना पड़ता था। उस समय फ्रेडिलिस महोदय पंडित जी के निकट सम्पर्क में आते रहे। फ्रेडिलिस महोदय ने बड़ौदा के दरबारी गायक-वादकों के सम्पर्क में आकर हिन्दुस्तानी सङ्गीत का पर्याप्त ज्ञान सम्पादन किया था। अखिल भारतीय सङ्गीत परिषद् के दिल्ली, बनारस और लखनऊ के समस्त अधिवेशनों में फ्रेडिलिस महोदय बराबर उपस्थित रहे।

आचार्य श्री भास्करराव खाण्डेपारकर

आप ग्वालियर के रहने वाले थे। ग्वालियर के सुप्रसिद्ध गायक श्री शङ्करराव पंडित के शिष्य थे। पंडित भातखण्डे जी के सङ्गीत कार्य से आप भली-भाँति परिचित थे। ग्वालियर के गायक गुणीजन तथा सङ्गीत प्रेमी सज्जनों से पंडित जी के कार्य के सम्बन्ध में वार्तालाप किया करते थे। पश्चात् हिज हाईनेस महाराजा श्री माधवराव सिंधिया ग्वालियर नरेश के निमन्त्रण पर पंडित जी ग्वालियर पधारे। उससे पहले स्वयं महाराजा साहब एक बार बम्बई आकर पंडित जी की सङ्गीत शिक्षा-प्रणाली देख गये थे। उनको वह बहुत पसन्द आई। और उसी प्रकार ग्वालियर में भी एक सङ्गीत विद्यालय खोलकर अपनी शिक्षा प्रणाली के अनुसार सङ्गीत शिक्षा दिलवाने के लिये पंडित जी से उन्होंने आग्रह किया। अतएव पंडित जी ग्वालियर आये थे। विद्यालय के लिये योग्य शिक्षकों का चुनाव हुआ। उनमें श्री भास्करराव खाण्डेपारकर भी एक थे। भास्करराव जी बड़े परिश्रम एवं ध्यानपूर्वक विद्यार्थियों को तैयार करते थे। उनके सिखाये हुए विद्यार्थी अभी तक उनकी याद करते हुए उनकी प्रशंसा करते हैं। वे पंडित जी के एक निःस्सीम भक्त थे। ग्वालियर में सिंधिया परिवार से तथा कुशल गायकवादकों से पंडित भातखण्डे का परिचय इन्हीं भास्करराव की मध्यस्थता से हुआ।

हिज हाईनेस महाराजा माधवराव सिंधिया, ग्वालियर

संकुचित वातावरण से सङ्गीत को विमुक्त करने वालों में स्वर्गीय माधवराव सिंधिया का योगदान अविस्मरणीय है। उत्तर भारत में पं० भातखण्डे के सिद्धान्तों का प्रचार, शिक्षण

की व्यवस्था का शुभारम्भ इन्हीं के करकमलों द्वारा हुआ। सङ्गीत के स्वयं पारखी, विद्वान्, गीत-रचनाकार होने के कारण योग्य व्यक्तियों का चुनाव इनकी एक विशेषता थी। पं० भातखण्डे के सङ्गीतोद्धार के अभियान में इन्होंने कायिक, वाचिक, मानसिक सहयोग दिया। यह इन्हीं की सूझ-बूझ का परिणाम है कि इतिहास-प्रसिद्ध ग्वालियर नगरी का प्रत्येक घर पुनः सङ्गीतमय हो गया। उत्तर भारत के सङ्गीत को योग्य दिशा में ले जाने वाले सैकड़ों सङ्गीत साधक अविरत रूप से बनते रहने की व्यवस्था हो गई। आपके योगदान के कारण पं० भातखण्डे के प्रयत्नों की प्रतिष्ठा बढ़ गई तथा बहुत-सी योजनाएँ कार्यान्वित हो सकीं। दोनों का पारस्परिक आदरभाव इन दोनों के लेखों में पाया जा सकता है।

श्रीमन्त सरदार बलवंतराव शिंदे, ग्वालियर

हिज हाईनेस जयाजीराव सिंधिया की सन्तानों में सरदार बलवन्तराव भैया एवं गणपतराव भैया ये दोनों बन्धु गायक-वादकों के विशेष सम्पर्क में आये। सरदार बलवन्त राव भैया पर्शियन, अंग्रेजी, हिन्दी एवं मराठी के ज्ञाता थे तथा राज्य में विभिन्न दायित्व-पूर्ण पदों पर आसीन थे। भजन, पूजन, व्रत-वैकल्पों में अधिकतर समय व्यतीत करते। 'बलवन्त' उपनाम से सैंकड़ों गीतों की हिन्दी व मराठी में रचना की है। इन सभी गीतों को रागदारी के साथ वे स्वयं गाते और आश्रित गायक-वादकों से गवाते। बहुत से गीत प्रकाशित भी हुए हैं। अखण्ड नाम-संकीर्तनों द्वारा ग्वालियर में सङ्गीत की जो जागृति हुई, उन आयोजनों के ये ही प्रेरक थे। पं० भातखण्डे के कार्यों का उल्लेख आचार्य भास्करराव खाँडेपारकर ने इनके समक्ष किया और तभी से ग्वालियर का उनका अभियान चल पड़ा। पं० भातखण्डे एवं माधवराव सिंधिया के बीच में बलवन्तराव भैया एक ऐसी कड़ी थी कि ग्वालियर के गायकों का सारा विरोध और तनाव विलुप्त हो गया।

ठाकुर नवाब अली

आप उत्तर प्रदेश के एक तालुकेदार थे। सङ्गीत के अच्छे ज्ञाता थे। प्रसिद्ध हार्मोनियम वादक स्व० गणपतराव भैया साहब, मौजउद्दीन इत्यादि बड़े-बड़े नामी कलाकारों के सहवास के फलस्वरूप आपने हार्मोनियम वादनकला पर पर्याप्त स्वामित्व संपादन किया था। इसके अतिरिक्त नामी घरानेदार गायक-वादकों से आप ने बहुत-सी चीजें प्राप्त की थीं। लगभग १९११ में आपको पंडित भातखण्डे जी का नाम तथा उनके प्रकाशित संगीत-साहित्य का पता लगा। आपने पंडित जी के साथ पत्र-व्यवहार शुरू किया। इन पत्रों में पंडित जी ने हिन्दुस्तानी संगीत का सविस्तार शास्त्रीय विवेचन किया था। इसी जानकारी के आधार पर राजा साहब ने अपने मआरिफ-उल-नगमात का प्रथम भाग लिखा है। राजा साहब तथा पंडित जी में प्रगाढ़ स्नेह बढ़ गया। १९१६ में बड़ौदा सङ्गीत परिषद् का सभापतित्व स्वीकार करने के लिये राजा साहब से आग्रह किया गया। फलतः उस परिषद् के सभापति राजासाहब ही थे। हिज हाईनेस नवाब बहादुर हामिद अली साहब के कान में पंडित भातखण्डे जी का नाम तथा उनके कार्य की ख्याति राजासाहब द्वारा ही पहुँची। नवाब बहादुर रामपुर ने पंडित जी को निमन्त्रण दिया। तभी से पंडित जी का समय-समय पर रामपुर में आना-जाना रहा। लखनऊ की ४थी तथा ५वीं संगीत परिषद् में राजा

साहब ने पर्याप्त सहयोग दिया। राजासाहब लखनऊ में ही रहते थे। मैरिस कालेज ऑफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक की स्थापना तथा संचालन में कुछ वर्ष तक राजासाहब का योगदान रहा। राजा साहब की संग्रहीत चीजें उन्होंने अपने मआरिफ-उल-नगमात के द्वितीय तथा तृतीय भाग में प्रकाशित की हैं।

हिज हाईनेस नवाब हामिद अली साहब, रामपुर

हिन्दुस्तानी सङ्गीत क्षेत्र में रामपुर की परम्परा अग्रगण्य है। रामपुर दरबार में रागदारी सङ्गीत को पूर्व काल से ही प्रोत्साहन एवं आश्रय मिलता रहा। आपके पिता नवाब कल्बे अली साहब भी संगीत में बहुत रुचि रखते थे। स्वयम् गाते-बजाते थे। मियाँ तानसेन के वंशज रामपुर दरबार के आश्रित थे। नवाब हामिद अली साहब के उस्ताद वज़ीर खाँ साहब भी तानसेन के ही वंशज थे। सेनिया परम्परा के ध्रुपद-धमार स्वयम् नवाब बहादुर साहब तथा अन्य दरबारी लोग गाते थे। लखनऊ के ठाकुर नवाब अली साहब—जिनको बाद में "राजा" की पदवी प्राप्त हुई थी—के द्वारा पंडित जी का नाम तथा कार्य का परिचय नवाब बहादुर रामपुर को मिला। नवाब साहब ने पंडित जी को निमन्त्रण देकर रामपुर में बुला लिया। सङ्गीत पर पर्याप्त चर्चा पंडित जी की नवाब साहब तथा दरबारी गायक-वादकों के साथ हुई थी। फलतः रामपुर दरबार के साथ पंडित जी का स्नेह सम्बन्ध खूब बढ़ा। नवाब बहादुर साहब ने उस्ताद वजीर खाँ साहब को तानसेन परम्परा के ध्रुपद-धमार पंडित जी को सिखाने का आदेश भी दिया था। वर्ष में दो-तीन बार पंडित जी रामपुर जाकर १५-२० दिन तक रहते थे। वजीर खाँ साहब से प्राप्त किये हुये कुछ ध्रुपद-धमार पंडित जी की क्रमिक पुस्तक मालिका में प्रकाशित हुए हैं। नवाब साहब बहादुर ने पंडित जी को नाड़ा बँधवाकर तानसेन परम्परा में प्रविष्ट कराया था।

प्रिन्स सादतअली उर्फ छम्मन साहब

आप रामपुर के प्रिन्स हैदर अली के सुपुत्र थे। प्रिन्स हैदर अली साहब ने स्वतः सेनिया घराने के सुप्रसिद्ध बहादुर हुसैन खाँ साहब से सुरसिंगार वादन सीखा था। अपने सुपुत्र प्रिन्स छम्मन साहब को आपने सुर सिंगार की शिक्षा प्रदान की थी। छम्मन साहब को तानसेन परम्परा के सैकड़ों ध्रुपद-धमार कंठस्थ थे, जो आपने तानसेन के पुत्र के वंशज मुहम्मद अली खाँ साहब गिधौर वालों से सीखा था। आपको पंडित भातखण्डे जी का परिचय रामपुर में ही प्राप्त हुआ था। आप पंडित जी को बहुत मानते थे। जब-जब पंडित जी रामपुर जाते, छम्मन साहब के घर पर घण्टों बैठकर सङ्गीत की चर्चा आपस में होती। ध्रुपद-धमार सुने-सुनाए जाते। "सचमुच छम्मन साहब एक अति प्रेमी एवं निष्कलुष अंतःकरण के व्यक्ति थे"—ऐसी प्रशस्ति पंडित जी सदैव उनके सम्बन्ध में करते। दोनों ने मिलकर संगीत के प्रसार की, उसके स्तरीकरण की बड़ी-योजनाएँ बनाई थीं। छम्मन साहब ने भी गीत रचना की है। इनके द्वारा बनाये हुये तथा संकलित अनेक गीत क्रमिक पुस्तकों में प्रकाशित हुए हैं। पेशेवर गायक-वादकों में आस्था निर्माण कराने में छम्मन साहब ने पंडित जी को बहुत सहायता दी थी। अल्पायु में ही सन् १९२२ में आपका स्वर्गवास हुआ।

श्री भालचन्द्र सीताराम सुकथनकर एम०ए०, एल० एल० बी०

आप बम्बई के एक सालिसिटर थे। विद्यार्थी दशा में श्री सीताराम सुकथनकर ने पंडित जी को जो सहायता दी थी, उसका आंशिक ऋण चुकाने की भावना से उनके निधन के बाद छोटे-छोटे बालकों की देख-भाल का कार्य पंडित जी ने स्वीकार कर लिया। उस समय भालचन्द्र तथा इनके भाई विष्णु क्रमश: चार और सात वर्ष की आयु के थे। आपकी शिशु अवस्था में पं० भातखण्डे जी आपके अभिभावक रहे और पंडित जी आपके ही घर में रहते थे, पंडित जी के सङ्गीत कार्य में आपका सदैव सहयोग मिलता रहा। पं० जी की सङ्गीत शोध-यात्राओं में आप सदैव उनके साथ रहते। पुस्तक प्रकाशन में भी आपका पर्याप्त सहयोग मिला। पंडित जी के स्वर्गवास के पश्चात् चार वर्ष तक आपने ही उनके ग्रंथ प्रकाशन का कार्य किया। पंडित जी को आप पितृतुल्य मानते थे। दुर्दैवशात् सन् १६४० में पंडित जी के पश्चात् चौथे वर्ष में ही आपकी मृत्य हो गयी। पंडित जी इन्हें अपना मानसपुत्र मानते थे। पंडित जी की अधिकांश सङ्गीत सेवा इन्हीं के घर में हुई।

श्री शंकरराव कार्नाड

आप एक केनरा सारस्वत सज्जन थे। बम्बई में हाईकोर्ट वकील थे। सङ्गीत का बहुत शौक था। पहले कुछ समय तक बड़ौदा के मौलाबक्श के एक प्रिय शिष्य श्री मनोहर से आपने संगीत की प्राथमिक शिक्षा ग्रहण की। तत्पश्चात् पंडित भातखण्डे जी से आपका जो परिचय हुआ, वह जीवन भर वृद्धिगत होता गया। वे पंडित जी के अनुयायी एवं परम स्नेही रहे। आप पंडित जी से चीजें सीखकर गाते रहे जिसके कारण पंडित जी के प्रमुख शिष्यों में ही आपकी गणना होती है। पण्डित जी के साथ आप बड़ौदा, ग्वालियर, रामपुर, लखनऊ, दिल्ली और बनारस की संगीत परिषदों में तथा अन्य सभी प्रसंगों पर बराबर उपस्थित रहते। आपने संगीत का पेशा नहीं किया। केवल शौक के लिए गाते थे। पंडित जी द्वारा संकलित एवं रचित चीजों का एक बड़ा भारी संग्रह मय स्वरलिपि के आपके पास था। इसमें सभी चीजें पंडित जी के हस्ताक्षर में लिखी हुई हैं। श्री शंकरराव कार्नाड का पंडित जी पर अगाध प्रेम था। श्री रातांजनकर को संबोधित पंडित जी का एक पत्र इनके सम्बन्धों का परिचायक है।

प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी

आप एक कुमायूनी ब्राह्मण तथा सङ्गीत के नि:सीम भक्त थे। पंडित भातखण्डे जी के प्रकाशित सङ्गीत साहित्य से प्रभावित होकर उनके साथ आपने पत्र-व्यवहार करके स्नेह सम्बन्ध बढ़ाया। पंडित जी को अपने गुरु के स्थान पर मानने लगे। आप अजमेर के सरकारी कालेज के प्रिन्सिपल थे। अजमेर में आपने एक सङ्गीत परिषद् भी बुलाई थी। आप सङ्गीत के मर्मज्ञ थे। अजमेर, जयपुर, उदयपुर, बीकानेर, जोधपुर इत्यादि राजस्थान की रियासतों में आपकी अच्छी प्रसिद्धि थी। वहाँ के सङ्गीत कलाकारों के साथ भी आपका अच्छा स्नेह सम्बन्ध रहा। आप एक अत्यन्त बुद्धिमान् एवम् बहुश्रुत व्यक्ति थे। पंडित जी के एक सक्रिय सहयोगी थे। सभी कान्फ्रेन्सों में आप पंडित जी के साथ उपस्थित रहे।

श्री नारायण गोविन्द रातांजनकर

आप बम्बई में पुलिस इन्सपेक्टर थे। सङ्गीत से बहुत प्रेम रखते थे। स्वयम् सितार बजाते थे। श्री काले नाम के एक सितार वादक की लिखी हुई "सतारीचें पहिलें पुस्तक" जिसमें स्वरलिपि के साथ सितार की गतें लिखी हुई थीं, पढ़कर सितार पर बजाते हुए आपने अभ्यास किया और उसमें अच्छी प्रगति भी की। पर काम-धन्धे में व्यस्त रहने के कारण आप को समय कम मिलता था। अपने निजी स्वाध्याय से सतुष्ट न होकर आपने अपने पुत्र श्रीकृष्ण को संगीत की शिक्षा दिलवाना आरम्भ किया। श्रीकृष्ण की अवस्था उस समय (सन् १९०७ में) ७-८ वर्ष की थी। श्री होनावर कृष्णंभट नाम के एक उस्ताद को मासिक वेतन पर नियुक्त करके सङ्गीत की प्राथमिक शिक्षा, स्वरज्ञान, ताल, पल्टे तथा कुछ रागों में तान, फिरत इत्यादि दिलवाना आरम्भ हुआ। एक-डेढ़ वर्ष पर्यन्त इस प्रकार शिक्षा मिलने पर लड़के को अच्छा स्वर ज्ञान हुआ। गला कुछ चलने लगा तब श्री अनन्त मनोहर जोशी जी से शिक्षा दिलवाई। लगभग एक वर्ष जोशी जी की शिक्षा होने के पश्चात् पंडित भातखण्डे जी की श्रीमल्लक्ष्यसङ्गीतम् तथा हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति भाग १ आप के पढ़ने में आई। ये पुस्तकें आपको इतनी उद्बोधक लगीं कि आपने उनको कई बार पढ़कर लगभग कण्ठस्थ कर लिया। जोशी बुवा को भी इन पुस्तकों के अनुसार शिक्षा देने की सूचना दी। पश्चात सन् १९११ में श्रीकृष्ण को पंडित भातखण्डे जी की ही सेवा में ले जाकर उन्हीं से शिक्षा दिलवाना आरम्भ किया। जीवन के अंतिम क्षणों तक वे पंडित जी के ही अनुयायी एवं परम मित्र रहे। अखिल भारतीय सङ्गीत परिषद् के बड़ौदा, दिल्ली, बनारस तथा लखनऊ के सभी अधिवेशनों में श्रीकृष्ण को साथ ले जाकर उपस्थित रहे। लखनऊ में मैरिस कालेज ऑफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक में श्रीकृष्ण की नियुक्ति कण्ठ सङ्गीत विभाग में हुई, तब आप अपने पुत्र के साथ दो वर्ष तक लखनऊ में ही रहे थे। पंडित जी द्वारा प्रकाशित कुछ संस्कृत पुस्तकों का सम्पादन किया है तथा अन्य पुस्तकों के प्रकाशन में सहयोग दिया था।

श्री ब्रज किशन कौल

आप दिल्ली निवासी काश्मीरी पंडित थे। सन् १९१९ में दिल्ली में अखिल भारतीय सङ्गीत परिषद् का जो दूसरा अधिवेशन हुआ, उसके आप सचिव थे। उसी अधिवेशन में पं० भातखण्डे जी से आपका जो घनिष्ट स्नेह सम्बन्ध बढ़ा वह अन्त तक रहा। दिल्ली, कलकत्ता, बनारस आदि विभिन्न स्थानों में अखिल भारतीय सङ्गीत अकादमी की स्थापना के आपने दीर्घ काल तक प्रयत्न किये। कान्फ्रेन्सों का बहुत-सा काम श्री कौल तत्परता से करते रहे।

राय उमानाथ बली

आप उत्तर प्रदेश के दरियाबाद के तालुकेदार स्व० राय राजेश्वरबली साहब के चाचा हैं। लखनऊ में अखिल भारतीय सङ्गीत परिषद् के दो अधिवेशन पं० भातखण्डे जी की उपस्थिति में हुए। इन दोनों अधिवेशनों का प्रबन्ध राय उमानाथ बली साहब ने ही किया। राय साहब पंडित जी के नाम तथा कार्य से भलीभाँति परिचित

थे। पंडित जी से प्रत्यक्ष भेंट दिल्ली की अखिल भारतीय सङ्गीत परिषद् में हुई। उस परिषद् में दिल्ली में एक अखिल भारतीय सङ्गीत शिक्षण संस्था स्थापित करने का प्रस्ताव रखा गया था। पर कुछ अपरिहार्य कारणों से वह प्रस्ताव पास न हो सका। राय उमानाथ बली ने लखनऊ में एक सङ्गीत परिषद् बुलाने का और वहीं एक बड़ी सङ्गीत संस्था स्थापित करने का अपना विचार पंडित जी के समक्ष रखा। फलतः सन् १९२४ में तथा सन् १९२५ में सङ्गीत परिषद् के दो अधिवेशन लखनऊ में हुए और इन्हीं परिषदों में सङ्गीत शिक्षण-संस्था तत्कालीन गवर्नर सर विलियम मैरिस साहब के स्मरणार्थ "मैरिस कालेज ऑफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक" के नाम से सन् १९२६ की जुलाई में स्थापित हुई। सन् १९५३ तक राय उमानाथ जी इस संस्था का संचालन करते रहे। पं० भातखण्डे जी का स्वर्गवास सन् १९३६ में हुआ। तत्पश्चात् सन् १९३९ में राय उमानाथ बली साहब ने पंडित जी के स्मरणार्थ "भातखण्डे संगीत विद्यापीठ" नाम से एक अन्य संस्था स्थापित की। यह संस्था आज तक चल रही है। इस संस्था के साथ उत्तर प्रदेश तथा अन्य प्रदेशों की, जैसे कलकत्ता, बम्बई, राजस्थान, दिल्ली, बिहार इत्यादि की संगीत संस्थाएँ संलग्न हैं। इन सब संस्थाओं की वार्षिक परीक्षाओं का प्रबन्ध लखनऊ का भातखण्डे सङ्गीत विद्यापीठ ही करता है। राय उमानाथ बली ने इन्हीं संस्थाओं की देखभाल में अपने जीवन का अधिकतर समय लगाया है। अनेक आपत्तियों और आर्थिक कठिनाइयों का सामना करके संस्थाओं को अभी तक जीवित रखा है।

राय राजेश्वर बली

आप उत्तर प्रदेश के दरियाबाद के तालुकेदार थे तथा उत्तर प्रदेश के शिक्षा मन्त्री भी रहे। उसी समय सर विलियम मैरिस प्रांत के गवर्नर थे। उक्त गवर्नर साहब के साथ आप का घनिष्ट स्नेह था। जिसके कारण लखनऊ की सङ्गीत परिषदों में गवर्नर साहब ने पर्याप्त सहानुभूति दिखायी तथा सहायता की। सङ्गीत संस्था की स्थापना के समय भी गवर्नर साहब की ओर से पर्याप्त प्रोत्साहन तथा सहायता प्राप्त हुई। जिसका श्रेय राय राजेश्वर बली साहब को ही है। क्योंकि यदि राय राजेश्वर बली साहब सङ्गीत से प्रेम न रखते और सङ्गीत परिषद् तथा सङ्गीत शिक्षण संस्था में रुचि न रखते तो विदेशी गवर्नर की ओर से प्रोत्साहन तथा सहायता प्राप्त होना असम्भव था। राय राजेश्वर बली साहब एक अत्यन्त सुसंस्कृत कलाप्रेमी व्यक्ति थे। चित्रकला में भी उनको उतनी ही रुचि थी जितनी कि सङ्गीत में। लखनऊ की सङ्गीत परिषदें तथा मैरिस कालेज की स्थापना के कारण पं० भातखण्डे जी के सम्पर्क में राय राजेश्वर बली साहब आये और समय-समय पर भेंट-मुलाकातें होती रहीं। मैरिस कालेज ऑफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक के कार्यकारी मण्डल के आप आजीवन अध्यक्ष रहे।

सर विलियम मैरिस

आप सन् १९२४-२५ में जब लखनऊ में अखिल भारतीय सङ्गीत परिषद् का चौथा तथा पाँचवाँ अधिवेशन हुआ था, उत्तरप्रदेश के गवर्नर थे। आपको पौर्वात्य साहित्य तथा कलाओं में बहुत रुचि थी। आपने लखनऊ की सङ्गीत परिषदें तथा तत्पश्चात् संस्थापित सङ्गीत शिक्षण संस्था के कार्य में पूर्ण सहयोग दिया। सन् १९२४ के चौथे

अधिवेशन का उद्घाटन आप ने ही किया था। इन्हीं कारणों से पं० भातखण्डे जी से आपका परिचय हुआ था। लखनऊ के सङ्गीत महाविद्यालय का नामकरण इन्हीं के नाम पर किया गया था।

स्व० श्री गणपतिबुवा भिलवडीकर, पूना

बड़े बालकृष्ण बुवा, कृष्ण शास्त्री शुक्ल, वासुदेव बुवा जोशी आदि विभिन्न गायकों से इन्होंने तालीम पाई। स्वयं अच्छा गाते थे और परम्परागत विभिन्न ढंगों की चीजें संग्रहीत करने का इन्हें शौक था। निर्धन परिवार के होते हुए बहुत कष्ट सहकर इन्होंने अभ्यास किया था। पूना के श्री० द० के० जोशी (जो इनके शिष्य थे) ने इनका परिचय पं० भातखण्डे से कराया और इनकी सिखाई हुई चीजें भातखण्डे जी तक पहुँचा दीं। तब ये गायनोत्तेजक मण्डली में ही नौकर हो गये। सन् १९१० से जीवन भर उन्होंने समय-समय पर भातखण्डे जी को चीजें दीं। दोनों का परस्पर खूब प्रेम था। बहुत से लोगों को निष्कपट भाव से इन्होंने सिखाया। आगे चलकर वृद्धावस्था में बम्बई का जलवायु अनुकूल न पाकर ये साँगली चले गये। जहाँ पर 'चतुर सङ्गीत विद्यालय' का प्रारम्भ भी कर दिया, परन्तु स्वास्थ्य गिर जाने से सन् १९२७ में दीर्घायु प्राप्त कर इनका स्वर्गवास हुआ। बुवा साहब वैसे तो पं० भातखण्डे के गुरु ही थे। परन्तु अवसर पाते ही शिष्य के नाम से विद्यालय खोलने का यह अनोखा आग्रह दोनों के चरित्र को उज्ज्वल करता है।

श्री दत्तात्रेय केशव जोशी

आप पूना के निवासी थे। आपको संगीत में बड़ी रुचि थी। श्री पांडोबा तथा श्री गणपतिराव भिलवड़ीकर नामक दो गायकों से आपने सङ्गीत शिक्षा प्राप्त की थी। इन गायकों से परम्परागत संगीत की कई रचनाएँ आपने सीखी थीं। पंडित भातखण्डे जी की प्रकाशित पुस्तकें आपने पढ़ीं जिनसे आप बहुत प्रभावित हुए। यहाँ तक कि पंडित भातखण्डे के आप एक अत्यन्त निकटवर्ती स्नेही बने। आगे चलकर आपने पंडित जी की पुस्तकों की छपाई, प्रूफों की जाँच तथा शुद्धीकरण इत्यादि कार्य करके पंडित जी की बहुत सहायता की। गणपतिराव भिलवड़ीकर का परिचय पंडित भातखण्डे जी से करा दिया और उनसे ग्वालियर के घराने के कई ख्याल पूना, बम्बई की तरफ जैसे कुछ गाये जाते थे वे सिखवाए। पश्चात् ये ही ख्याल श्री एकनाथ पंडित, जो श्री शंकरराव पंडित के छोटे भाई थे तथा श्री राजाभैया आदि ग्वालियर के अन्य गायकों से भी पंडित जी को प्राप्त हुए। श्री द० के० जोशी अपने मित्रों में दादासाहेब के नाम से पहचाने जाते थे। आप वैसे पूना के एक मराठी विद्यालय में शिक्षक का कार्य करते थे। पं० भातखण्डे जी के साथ स्नेह सम्बन्ध बढ़ने पर आप पंडित जी के साथ बड़ौदा की सङ्गीत परिषद् १९१६ में तथा उसके पश्चात् दिल्ली, बनारस, लखनऊ की सभी संगीत परिषदों में उपस्थित रहे एवं अन्यत्र रामपुर, ग्वालियर इत्यादि स्थानों में पंडित जी के साथ कभी-कभी जाते थे। लखनऊ में मैरिस कालेज ऑफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक खुलने पर आप पंडित जी के साथ लखनऊ पधारे। आपके छोटे भाई श्री माधवराव केशव जोशी—जो सेवानिवृत्त डिप्टी इन्सपेक्टर ऑफ स्कूल थे—

उक्त कालेज के प्रधानाचार्य नियुक्त हुए थे। इन्हें नानासाहेब कहते थे। आप दोनों भाई लखनऊ में दो वर्ष तक रह कर सन् १६२८ में पूना वापिस चले गए। श्री दादासाहब ने स्वतन्त्र लेखन भी किया है।

उस्ताद नज़ीर खाँ साहब

आप मूलतः मुरादाबाद के रहने वाले थे। पर युवावस्था में ही बम्बई चले गये और वहाँ निवास करते रहे। आप एक बहुत ख्यात-नामा सारंगी-वादक थे। पर सुप्रसिद्ध उस्ताद इनायत खाँ साहब जैसे बड़े गायकों के सम्पर्क में रहने के कारण आप रागदारी गायन के क्रियासिद्ध कलाकार हुए। बम्बई में अंजनीबाई माल्पेकर, उत्तरप्रदेश की सुप्रसिद्ध गायिका अच्छन बाई आदि को संगीत की शिक्षा देते रहे। कुछ वर्ष बम्बई की 'गायन उत्तेजक मण्डली' नामक संगीत संस्था में भी संगीत शिक्षक थे। इसी संस्था में पण्डित भातखण्डे से आपका परिचय हुआ। पंडित जी के कार्य को देख कर आप बहुत प्रभावित हुए। पण्डित जी को बहुत मानते थे। पण्डित जी के श्रीमल्लक्ष्य-संगीत तथा लक्षणगीतों का आपने अच्छा अभ्यास किया, जिसके कारण गायकों की महफिलों में आपकी अच्छी धाक जमी। इन महफिलों में शास्त्र-शुद्ध राग-गायन पर आप विशेष जोर देते हुए चर्चा करते थे। शास्त्र वचनों को भी सुनाते। इस प्रकार गायक-वादकों का ध्यान संगीत शास्त्र की ओर खींच लिया। फलतः रामपुर के नज़ीर खाँ साहब—जो काले नज़ीर के नाम से प्रसिद्ध थे, मम्मन खाँ तथा सुप्रसिद्ध बुन्दू खाँ सारंगी नवाज़ इत्यादि सुप्रसिद्ध कलाकारों ने पंडित जी का परिचय प्राप्त किया और संगीत शास्त्र की ओर श्रद्धा से आकृष्ट हुए। पण्डित जी के ज्येष्ठ शिष्यों में श्री वाड़ीलाल जी भी आपके शागिर्द थे।

श्री एकनाथ उर्फ भाऊ पंडित

आप ग्वालियर के सुप्रसिद्ध गायक श्री शंकरराव पंडित के छोटे भाई थे। अपने ज्येष्ठ बंधु शंकरराव के साथ आपने ग्वालियर घराने के उस्ताद निसार हुसेन खाँ साहब से सङ्गीत शिक्षा ग्रहण की थी। विशेष अभ्यास बीन एवम् सितार बजाने का रहा। तथापि आपको ग्वालियर घराने की सब चीजें कंठस्थ थीं। एक समय आप बम्बई पधारे थे तब पंडित भातखण्डे जी ने आपको कुछ मासिक वेतन पर आपके घराने की चाजें सिखाने के लिये रख लिया। लगभग साढ़े तीन सौ चीजें पंडित जी ने आप से प्राप्त कीं। श्री कृष्णराव पण्डित इन्हीं भाऊ पण्डित के आत्मीय हैं।

जाकिरुद्दीन-अलाबन्दे बन्धु-द्वय, उदयपुर

प्रसिद्ध बहराम खाँ के ये दोनों नाती अपने समय के गायक-वादकों में बहुत सम्मान प्राप्त कर चुके थे। अनेक वर्षों तक दोनों बन्धु युगल-गान करते रहे। आलाप गायन में इनकी विशेष ख्याति थी। राग का एक-एक स्वर लेकर विभिन्न प्रकार की नई-नई स्वरसंगतियाँ ये बनाते जाते। उनकी यह क्रिया खण्डमेरु के सिद्धान्तों पर आधारित थी। कमाई हुई जोरदार परन्तु मधुर आवाज से मींड, गमक के साथ ये ध्रुवपद गायन करते थे। जाकिरुद्दीन खाँ से पंडित भातखण्डे का परिचय सर्वप्रथम पं० वाड़ीलाल जी ने कराया था। राज-

स्थान की अपनी यात्रा में वाड़ीलाल जी के साथ वे उदयपुर गये और इनका गायन सुना। क्रमवार सुसंगत गायन शैली का यह प्रयास पं० भातखण्डे को बहुत अच्छा लगा। सन् १९१६ की कान्फ्रेन्स में इन्हीं जाकिरुद्दीन खाँ ने हार्मोनियम के स्वर रागगायन के लिए निरुपयोगी हैं, ऐसा सप्रयोग सिद्ध किया। परम्परागत गायकी के नमूने के रूप में इनका गायन सभी कान्फ्रेन्सों में आग्रहपूर्वक रखा जाता। ज्येष्ठ बन्धु जाकिरुद्दीन खाँ के स्वर्गवास के बाद (१९२३) केवल अलाबन्दे खाँ लखनऊ की कान्फ्रेन्स में आये थे। इन दोनों बन्धुओं के पुत्र-पौत्र डागर उपनाम से आजकल गाते हैं।

उस्ताद फैयाज हुसेन खाँ, बड़ौदा

नवोदित अधिकांश गायक वादकों में 'आदर्श गायक' के रूप में इन्हें सम्मान का स्थान प्राप्त है। बड़ौदा राज्य में दरबारी गायक के पद पर ये आसीन थे। पं० भातखण्डे का वहीं पर इनसे परिचय हुआ और इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए पंडित जी ने सभी प्रयत्न किये। हाथ में निवाला लेकर खाने के पूर्व, "तुम जानते हो ? मुझे गवैय्या पंडित जी ने बनाया। ये जो खा रहा हूँ, सब उन्हीं की दया है !" ऐसी आत्मीयता से खाँ साहब पंडित जी का उल्लेख करते। ध्रुवपद की तालीम लेकर ख्याल गायकी का उन्होंने शृङ्गार बढ़ाया। ध्रुवपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, टप्पा, गजल, कव्वाली आदि सभी गायनशैलियों की अच्छाइयाँ इन्होंने ग्रहण की थीं। वे एक चौमुखी गायक थे। 'प्रेमपिया' उपनाम से गीतरचना करते थे। कुछ गीत पंडित भातखण्डे की फरमाइश पर बनाये थे और क्रमिक पुस्तकों में उन्हें प्रकाशित भी किया गया। शंकरा राग में 'गौवे चरावे, आई बनवारी" यह चीज खाँ साहब की रचना है, जिसकी फरमाइश पंडित जी ने की थी। वे खाँ साहब को कई महत्वपूर्ण अवसरों पर अपने साथ ले जाते थे। अपने प्रिय शिष्य श्री रातांजनकर को खाँ साहब से तालीम दिलवाई थी। दोनों की पारस्परिक आत्मीयता का यही बलिष्ठ उदाहरण है।

श्रीमती अंजनी बाई माल्पेकर

आप बम्बई की ख्यातिनामा गायिका हैं। पुरानी परम्परा की हैं। आपने बम्बई के प्रसिद्ध उस्ताद नजीर खाँ साहब से सङ्गीत की शिक्षा प्राप्त की थी। ये उस्ताद बम्बई में "गायन उत्तेजक मंडली" नामक संस्था में सङ्गीत शिक्षक थे। पंडित जी इसी क्लब के सदस्य थे और संगीत शास्त्र पर व्याख्यान दिया करते थे। नजीर खाँ साहब इन व्याख्यानों से प्रभावित हुए। पंडित जी के पास चीजें भी पर्याप्त संख्या में थीं। जिनको वे अपने व्याख्यानों में गाकर सुनाते। नजीर खाँ साहब भी अपने पास की चीजें गाकर सुनाते। इस प्रकार आपस में स्नेह सम्बन्ध बढ़ने लगा। पंडित जी के श्रीमल्ललक्ष्यसङ्गीत के श्लोक तथा उनके रचे हुए लक्षणगीत खाँ साहब बड़े चाव के साथ सीखते और सिखाते। ये लक्षण-गीत खाँ साहब श्रीमती अंजनी बाई को भी सिखाते। ये सब लक्षण गीत जयपुर के मुहम्मद अली खाँ साहब से प्राप्त चीजों के आदर्श पर रचे हुए थे। कुछ लक्षण गीत तो उन चीजों की जुगलबंदियाँ ही थीं। अतएव उनमें पुराना रागदारी ढंग ओतप्रोत था। बाई जी अब लगभग ८५ वर्ष की अवस्था में हैं, पर अब भी उस्ताद का तथा पंडित जी का स्मरण करती हैं। श्रीमल्लक्ष्यसंगीत के श्लोक रागरूपों के आधार में सुनाती हैं। लक्षणगीत भी

गाकर सुनाती हैं। इन्होंने वह सारा जमाना देखा है, अतः स्वार्थलोलुप व्यक्ति जब पंडित जी के कार्य की प्रतिष्ठा घटाने की बात छेड़ देते हैं, अंजनी बाई आज भी आवेश में आ जाती हैं। अपने यशस्वी जीवन की समस्त अच्छाइयों का श्रेय वे पंडित जी को देती हैं। आज कल आप अध्यापन एवं भजन-पूजन में समय व्यतीत करती हैं।

स्व० उस्ताद बुन्दू खाँ, सांरगीनवाज

अपने समय के सभी जाने-माने गायक-वादकों से उस्ताद बुन्दू खाँ का सम्पर्क हुआ था। मुरादाबाद वाले उस्ताद नजीर खाँ की मध्यस्थता से बुन्दू खाँ का सम्पर्क पण्डित भातखण्डे जी से हुआ था। अवसर पाते ही वे उनसे भेंट-परामर्श करते रहते थे। पण्डित भातखण्डे के सैकड़ों लक्षणगीतों की स्वयं तालीम लेकर वे उन्हें जल्सों में बजाते थे। भावावेश में आकर उन्हें गाकर भी सुनाते थे। राग की शुद्धता रखते हुए उसको मधुरतम बनाना बुन्दू खाँ की विशेषता थी। उनकी तान-आलापों में निश्चित विचार धारा प्रकट होती थी। लड़-गुथाव, दाव-पेंच और गमक-मीड का सारा कौशल्य परम्परागत गीतों का उपयोग करते हुए वे करते जाते। संगीत का विद्यालय हो, उसकी शिक्षा का प्रबन्ध हो, उसकी भी पाठ्य-पुस्तकें हों, उनके ये सारे विचार पण्डित भातखण्डे के प्रभाव के ही स्पष्टतः परिणाम थे। पण्डित भातखण्डे के संगीत-सिद्धान्त निरक्षर गायक-वादकों तक पहुँचाने में उस्ताद बुन्दू खाँ का बहुत बड़ा योगदान है।

श्री कृष्णाजी बल्लाल देवल

आप एक सरकारी अधिकारी के पद पर कार्य करते थे। सम्भवतः डिप्टी कलेक्टर थे। आप संगीत में विशेषतया श्रुति-स्वर-चर्चा में पर्याप्त रस लेते थे। श्री ई० क्लेमेण्ट्स को, जो स्वयम् भारतीय संगीत की श्रुति-स्वर चर्चा में रुचि रखते थे, आपका पर्याप्त सहयोग रहा। आपने अपनी एक स्वतंत्र पुस्तक "दी हिन्दू म्यूजिक स्केल ऐण्ड दी ट्वेन्टि-टू श्रुतिज" नाम से इसी श्रुति-स्वर चर्चा पर लिख कर प्रकाशित की है। इस विषय पर पंडित भातखण्डे जी का आपके विचारों से मतभेद रहा। आप अखिल भारतीय संगीत परिषद् के अधिवेशनों में उपस्थित रह कर अपने विचार विद्वानों के सम्मुख रखते थे। आपकी स्वर-श्रुति चर्चा की विचार धारा पर पंडित भातखण्डे ने अपनी हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के दूसरे भाग में पर्याप्त समालोचना की है।

श्री ई० क्लेमेण्ट्स, आई० सी० एस०

विदेशी शासन काल में आप एक अंग्रेज अधिकारी थे। भारतीय सङ्गीत में बहुत रुचि रखते थे। विशेषतया भारतीय सङ्गीत के स्वर शास्त्र का आपने परिचय पूर्वक अभ्यास करके "इन्ट्रोडक्शन टु दी स्टडी आफ इंडियन म्यूजिक" नामक एक विद्वत्तापूर्ण पुस्तक लिखी। श्रुति-स्वर-चर्चा करते हुए आपका परिचय पं० भातखण्डे जी से हुआ। पंडित जी श्री क्लेमेण्ट्स की श्रुति-स्वर-चर्चा सम्बन्धी धारणाओं से सहमत नहीं थे। पत्र द्वारा तथा प्रत्यक्ष बातचीत द्वारा दोनों में पर्याप्त बहस हुई। अन्त में बड़ौदा की सङ्गीत परिषद् में श्री क्लेमेण्ट्स ने स्वयम् उपस्थित होकर देश भर के सङ्गीत विद्वानों तथा बड़े-बड़े नामांकित कलाकारों के सम्मुख अपने संशोधन के अनुसार तैयार किये हुए श्रुति-हार्मोनियम पर श्रुतियाँ

तथा स्वर बजा कर सुनाए थे । यद्यपि वे स्वर उस सभा में स्वीकृत नहीं हुए, जिसका उल्लेख उस परिषद् के वृत्तान्त में प्रसिद्ध हो चुका है । श्री क्लेमेण्ट्स महोदय तत्कालीन सरकार में एक बड़े ओहदे पर प्रायः डिस्ट्रिक्ट कलेक्टर अथवा डिस्ट्रिक्ट जज के पद पर कार्य करते थे । श्रुति-स्वर शास्त्र की चर्चा में आपके सहायक सङ्गीत विद्वान् स्व० श्री कृष्णाजी बल्लाल देवल, प्रो० खरे तथा प्रो० कोडोपन्त छत्रे थे । उस्ताद अब्दुल करीम खाँ साहब से भी आपको अपने कार्य में सहायता प्राप्त हुई थी । अन्त में स्वयं क्लेमेण्ट्स साहब ने ही विवाद को मिटा दिया ।

हमारे रचनाकारों का परिचय

श्री विनायक मसोजी, नागपुर

आचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुर एवं नन्दलाल बसु के शिष्यों में इनका स्थान बहुत ऊँचा है । सङ्गीत के प्रति इनका आन्तरिक लगाव भी बहुपरिचित है । बड़ौदा के प्रो० सेम्युअल जोशी ने इन्हें शिल्प एवं सङ्गीत में प्रेरित किया । प्रो० एस० एम० जोशी ने इनका परिचय पं० भातखण्डे से कराया था । शिक्षण भी प्रारम्भ हुआ, परन्तु शान्ति निकेतन का आकर्षण प्रभावी सिद्ध हुआ और भारतीय शिल्प शास्त्र में श्री मसोजी आज सम्मान का स्थान अर्जित किये हुए हैं । स्मृति ग्रन्थ के आवरण द्वारा रंग, तूलिका, स्वर और लय के मधुर विलास का मनोहारी संगम वे व्यक्त करते हैं ।

श्री शोभन सोम, नागपुर

मूलतः सिल्चर के निवासी श्री शोभन सोम एक उत्साही युवक कलाकार हैं । विश्व-भारती, शांति-निकेतन में महान् शिल्पी श्री नंदलाल बसु के मार्गदर्शन में इन्होंने नवीनता की दृष्टि अर्जित की । श्री सोम की अनेक कृतियों ने विभिन्न विषयों को लेकर कल्पना की उड़ानें भरी हैं । मुख पृष्ठ पर रेखांकित चित्र में भारतीय संस्कृति के प्रतीक जनार्दन की वंशी की नभोमंडल पर छाई तानें भातखंडे स्मृति ग्रंथ के माध्यम से वे सुग्रहित करते हैं । श्री सोम आजकल नागपुर में निवास कर रहे हैं । कला के साथ-साथ उनका लेखन कार्य भी पर्याप्त ख्याति प्राप्त है ।

पं० गजानन रामचन्द्र करमरकर शास्त्री, इन्दौर

संस्कृत महाविद्यालय इन्दौर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक, जो काव्यतीर्थ, सांख्यतीर्थ, षड्दर्शनतीर्थ आदि उपाधियों से अलंकृत हैं । सङ्गीत के प्रति आपका अनुराग सर्व-विदित है ।

श्री प्रभाकर नारायण चिंचोरे

पं० भातखण्डे के सम्पूर्ण अन्तरंग एवं बहिरंग को प्रकाशित करने वाले ग्रंथ का सङ्गीत जगत् को नितांत आवश्यकता थी । इसकी पूर्ति का श्रेय श्री प्र० ना० चिंचोरे, उपकुलपति, इन्दिरा कला सङ्गीत विश्वविद्यालय को है । आपका जन्म इन्दौर में हुआ ।

सङ्गीत की प्रारम्भिक शिक्षा इन्दौर में स्व० श्री गोपालराव जोशी से प्राप्त कर डा० रातांजनकर से उच्च शिक्षा ग्रहण की और उनके प्रमुख ज्येष्ठ शिष्यों में आपकी गणना होती है। आपने लखनऊ विश्वविद्यालय से एम० ए० संस्कृत परीक्षा उत्तीर्ण की है। प्रो० सुब्रह्मण्यम् अय्यर तथा डा० रातांजनकर के निकट सान्निध्य में सङ्गीत के शास्त्रीय एवं क्रिया पक्ष का समन्वय एवं प्रचार की इन्होंने प्रेरणा पाई। दोनों पक्षों पर समान अधिकार रखते हैं। आचार्य राजाभैया पूछवाले, पंडित वाड़ीलाल, उस्ताद फैयाज खाँ एवम् उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के भी विशेष सम्पर्क में आये। मैरिस कालेज लखनऊ में लगभग बारह वर्ष पर्यन्त अध्ययन, अध्यापन करने के बाद विश्वभारती विश्वविद्यालय, शांतिनिकेतन में शास्त्रीय सङ्गीत के विभागाध्यक्ष रहे। बहुत से विदेशी अभ्यासकों को भारतीय सङ्गीत के सौन्दर्य तत्वों का परिचय दे चुके हैं। माधव सङ्गीत महाविद्यालय, ग्वालियर का भवन निर्माण आपके ही कार्य काल में संपन्न हुआ। अपने गुरुवर्य के हाथों से लगाए हुए सङ्गीत विश्वविद्यालय के नन्हें पौधे को उसके उपकुलपति के रूप में गत छः वर्षों से सींच रहे हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ के पहले नान्यदेव द्वारा रचित 'भरत भाष्य' के प्रकाशित करने में आपका महत्वपूर्ण योगदान है।

स्व० पं० ललितापति शास्त्री वाजपेयी-भीमपुरे, ग्वालियर

आप संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। अपने समय के शिक्षा-शास्त्रियों में इनका स्थान श्रेष्ठतम था। संगींत के प्रति आपका अनुराग विशेष रूप से था। ग्वालियर की यात्राओं के समय से पं० भातखण्डे के साथ उनका परिचय हुआ, जो उत्तरोत्तर वृद्धिगत ही होता गया। आपके कारण ही वाजपेयी कुटुम्ब में संगीत का सशास्त्र अध्ययन प्रारम्भ हुआ। आपके सुपुत्र प्रो० बा० ल० वाजपेयी माधव संगीत महाविद्यालय के अवैतनिक सचिव वर्षों तक रहे। स्मृति ग्रंथ में पृष्ठ ३६४ पर प्रकाशित चरित्रात्मक लेख प्रो० बा० ल० वाजपेयी की रचना है।

पद्मविभूषण हरि विनायक पाटस्कर, भूतपूर्व राज्यपाल, मध्यप्रदेश

नये मध्यप्रदेश को स्थैर्य प्रदान करने में आपका बहुत बड़ा योगदान है। खैरागढ़ विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में यहाँ की सांगीतिक गतिविधियों में आपका सदैव आशीर्वाद प्राप्त होता रहा। आपके ही सेवाकाल में विश्वविद्यालय में "भातखण्डे अनुसंधान विभाग" की विधिवत् स्थापना हुई। भरतभाष्यम् ग्रंथ के क्रमशः प्रकाशन की योजना कार्यान्वित हुई। प्रस्तुत स्मृति ग्रंथ भी आपके ही प्रोत्साहन का परिणाम है। देश के माने हुए विधिशास्त्रियों में आपका स्थान अति उच्च है।

स्व० पं० फिरोज फ्रामजी, पूना

हिंदी, गुजराती, अंग्रेजी तथा मराठी भाषाओं में संगीत का विपुल साहित्य इन्होंने उपलब्ध कराया। सितार, बीन, दिलरुबा, पखवाज, जलतरंग आदि विभिन्न विषयों में गायन के अनुसार निर्धारित पाठ्य पुस्तकें तैयार करने में इन्होंने अपना सब कुछ लगा दिया।

पं० भातखण्डे के माने हुए शिष्यों में आपका स्थान है। वे ही इनकी प्रेरणा के केन्द्र बिन्दु थे । संगीत के साहित्य में इनकी पुस्तकें लोकमान्य हो चुकी हैं।

स्व० श्री सदाशिव गोपाल परचुरे, बी० ए०, ग्वालियर

ग्वालियर रियासत के शासन काल में शिक्षा क्षेत्र में श्री परचुरे साहब का एक विशिष्ट स्थान रहा। संगीत की सामूहिक शिक्षा के प्रारम्भिक दिनों में विद्यालय का प्रबन्ध एक जटिल समस्या थी। उस समय के अधिकांश गायकों से ऐसी कोई आशा रखना उचित भी नहीं था। भातखंडे साहब की इस समस्या का हल श्री परचुरे साहब ने किया। विद्यालय के अवैतनिक सेक्रेटरी नियुक्त कर सभी योजनाएँ कार्यान्वित करने का भार उन पर सौंपा गया। पं० भातखण्डे के सभी आदेश वे शिक्षकों तक पहुँचाते और उसके अनुसार कार्य करा लेते। श्री परचुरे साहब को सङ्गीत से अत्यन्त प्रेम था। सङ्गीत की भी कक्षाएँ लगनी चाहिए, वर्गवार शिक्षणक्रम बनना चाहिये, परीक्षाएँ होनी चाहिये, पाठ्य-पुस्तकों द्वारा शिक्षण को अनिश्चितता मिटानी चाहिये, कलापक्ष को शास्त्र की जोड़ होनी चाहिए आदि नवीन विचार-धाराएँ श्री परचुरे साहब ने पं० भातखण्डे के सहवास में पायीं। पं० भातखण्डे का विद्यालय विषयक बहुत-सा दायित्व इन्हीं परचुरे साहब ने पूरा किया।

स्व० रावसाहब गो० ना० अम्बर्डेकर, ग्वालियर

श्री परचुरे साहब का स्वर्गवास हो जाने पर उनका भार रावसाहब अम्बर्डेकर ने सम्हाला। प्रस्तुत पुस्तक में दिये हुए पं० भातखण्डे के परीक्षा व निरीक्षण वृत्तांतों में उल्लिखित सभी सूचनाओं का परिपालन अम्बर्डेकर साहब को करना पड़ा। इनके कार्यकाल में विद्यालय का कार्य विकास के साथ-साथ जटिल भी होता चला गया। शिक्षकों के गुण-दोष स्पष्टतः प्रकट होने लगे। फलतः विद्यालय की नीति में कड़ाई का उपयोग करना आवश्यक हुआ। श्री अम्बर्डेकर ने सभी उचित मार्गों का अनुसरण कर पं० भातखण्डे के प्रयासों को सफल बनाया।

स्व० श्री वि० ग० ओदक, ग्वालियर

ग्वालियर रियासत के समय में आलिजाह दरबार प्रेस के आप मैनेजर थे। जिन कुशल प्रबन्धकों ने पं० भातखण्डे के शिक्षण प्रयोगों को सफल बनाया, उनमें श्री ओदक भी थे। प्रो० वाजपेयी के स्वर्गवासी हो जाने पर विद्यालय के सेक्रेटरी पद पर श्री ओदक की नियुक्ति हुई। इन्हीं के कार्यकाल में विद्यालय का रजत-जयन्ती महोत्सव सम्पन्न हुआ। स्व० हिज हाईनेस जीवाजीराव सिंधिया ने ग्वालियर में सङ्गीत का विद्यापीठ—जिसका स्वप्न पं० भातखण्डे ने देखा था—निकट भविष्य में स्थापित होगा; ऐसी इच्छा व्यक्त की। विद्यालय के कार्यकर्ताओं का सम्मान, उनकी प्रतिष्ठा बनाने रखने में श्री ओदक का विशेष हाथ रहा।

श्री रावबहादुर लक्ष्मण भास्कर मुले, ग्वालियर

ग्वालियर में पं० भातखण्डे के सङ्गीतोद्धार का आयोजन अथ से इति तक जिन वरिष्ठ अधिकारियों ने देखा, उनमें रावबहादुर मुले आज सर्वाधिक वयोवृद्ध हैं। राज्यकार्य

में विभिन्न विभागों को आपके मार्गदर्शन का लाभ मिला है। आप शिक्षा-मंत्री भी रहे। सङ्गीत के प्रति आपका लगाव होने से पं० भातखण्डे के सम्पर्क में आये और महाराजा माधवराव सिंधिया के स्वर्गवासी हो जाने पर सङ्गीत विद्यालय की आवश्यकताओं की पूर्ति करने का भार आप पर आया। विद्यालय के शिक्षकों के लिये श्री मुले साहब प्रेरणा, उत्साह के स्रोत थे। माधव सङ्गीत विद्यालय के रूप में जिस विशाल वृक्ष का बीजारोपण पं० भातखण्डे ने किया था, उसके लिए अपने निजी भवन की समस्या सुलझाने में श्री मुले साहब ने सक्रिय भाग लिया। माधव मेमोरियल ट्रस्ट के वे अध्यक्ष थे। इसी ट्रस्ट से लगभग पौने दो लाख की धनराशि दान स्वरूप देकर विद्यालय के भवन का निर्माण संभव किया। सङ्गीत के वर्तमान युग के निर्माता स्व० पं० भातखण्डे एवं स्व० माधवराव सिंधिया—इन दोनों के प्रति श्री मुले साहब के मन में जो अगाध श्रद्धा है उसका द्योतक उनके वे शब्द और कार्य हैं।

महाराणा श्री विजयदेव जी, धरमपुर

सङ्गीत-भाव के लेखक महाराणा विजयदेव जी पं० भातखण्डे के सम्पर्क में आये और उनसे सदैव प्रेरणा पाते रहे। अपनी यह पुस्तक उन्होंने पं० भातखण्डे को ही समर्पित की थी। सङ्गीत को आधुनिकतम बनाना उन्होंने अपना ध्येय बना लिया था। पं० भातखण्डे के निधन के पश्चात् उनका कार्य अविरत रूप से चलता रहे, इस हेतु आवश्यक साधन जुटाने में महाराणा साहब ने अथक परिश्रम किया।

प्रो० नारायण लक्ष्मण गुणे, इलाहाबाद

माधव सङ्गीत महाविद्यालय के सर्वप्रथम स्नातक का सम्मान इन्हें प्राप्त है। पं० भातखण्डे का इन पर अत्यधिक स्नेह था, जिसका उल्लेख उन्होंने अपने निरीक्षण लेखों में अनेक स्थानों पर किया है। ग्वालियर के विद्यालय में साधारण शिक्षक से लेकर प्रधानाचार्य का पद इन्होंने विभूषित किया है। अपने शिक्षण के नमूने के रूप में इनका वे उल्लेख करते। शासकीय सेवा से निवृत्त होकर आजकल आप प्रयाग सङ्गीत समिति, इलाहाबाद में स्नातकोत्तरीय कक्षाएँ लेते हैं। नवीन गीत रचना भी करते हैं।

प्रो० बालाजी श्रीधर पाठक, बी० ए०, इलाहाबाद

सागर मध्यप्रदेश के निवासी श्री पाठक सन् १९२० में ग्वालियर विद्यालय के छात्र हुए। लखनऊ में मैरिस म्यूजिक कालेज की स्थापना हो जाने पर पं० भातखण्डे ने उन्हें यहाँ शिक्षक नियुक्त किया। श्री नातू एवं श्री पाठक की अभिन्न जोड़ी पुन: लखनऊ में एकत्रित हुई। वर्षों तक ये दोनों एक साथ रहे और गाये। पं० भातखण्डे के सम्पर्क में आकर सङ्गीत अपना ध्येय बना लिया। आजकल आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय में व्याख्याता हैं। लूकरगंज सङ्गीत विद्यालय के आप प्रमुख संस्थापक हैं। उत्तर प्रदेश में पं० भातखण्डे के कार्य कर्त्ताओं में आप का नाम उल्लेखनीय है। पं० भातखण्डे का इन पर विशेष अनुग्रह था।

आचार्य गोविंद नारायण नातू, लखनऊ

ग्वालियर विद्यालय के आप ख्यातनाम स्नातक हैं। लखनऊ के विद्यालय की स्थापना के साथ-साथ आपको यहाँ पर बुलाया गया। शिक्षक, विभागाध्यक्ष, उपप्रधानाचार्य के पदों पर अनुभव अर्जित करते हुए इसी विद्यालय के आप आजकल प्रधानाचार्य हैं। गीत रचना में आपको विशेष रुचि है। साङ्गीतिक गुणों से परिपूर्ण होने के कारण उनके ये गीत यत्र-तत्र प्रायः सुने जाते हैं। पं० भातखण्डे द्वारा स्थापित लखनऊ के विद्यालय की सेवा अधिक से अधिक करते रहने का व्रत इन्होंने पंडित जी के सम्पर्क में आने पर अपनाया था। इन्होंने भी पंडित जी का विशेष स्नेह पाया। नातू साहब अपने चारों अनुजों सहित सङ्गीत सेवा में आज भी रत हैं।

श्री विष्णु श्यामराव अत्रे, ग्वालियर

माधव सङ्गीत विद्यालय के प्रथम समूह के स्नातक श्री अत्रे अहमदाबाद कालेज में वर्षों तक शिक्षक रहे। शिक्षण पूर्ण हो जाने पर पं० भातखण्डे की आज्ञा से ही वे वहाँ गये थे। विभिन्न विश्वविद्यालयों में परीक्षक रह चुके हैं तथा गीत रचना भी करते हैं। सेवा-निवृत्त हो जाने पर आजकल आप ग्वालियर में पुनः निवास कर रहे हैं।

प्रो० बा० ना० मुण्डी, महारानी लक्ष्मीबाई महाविद्यालय, ग्वालियर

संस्कृत के विशेषज्ञ प्रो० मुंडी सङ्गीत महाविद्यालय के भी स्नातक हैं। पं० भातखण्डे के व्यक्तित्व का इन पर विशेष प्रभाव पड़ा। जिसके फलस्वरूप सङ्गीत पर सदैव चिंतन करते रहते हैं। उसकी कमियों की आलोचना भी सङ्गीतज्ञ इष्ट-मित्रों में करते हैं।

श्री महादेव केशव सामंत, राजघाट विद्यालय, वाराणसी

शैशवावस्था से ही इन्हें सङ्गीत के प्रति अत्यधिक प्रेम रहा। अपना बहुत-सा समय सङ्गीत के चिंतन में व्यतीत करते हैं। गीत-संग्रह में आपको विशेष रुचि है। अच्छा गीत सुनते ही मुखस्थ करते हुए उसे लिपिबद्ध कर सामन्त साहब सुरक्षित रख लेते हैं। पं० भातखण्डे के ऐसे ही कुछ गीत सामन्त साहब ने इस प्रसंग पर सादर प्रस्तुत किये हैं।

आचार्य बाला साहब पूछवाले, ग्वालियर

स्वर्गीय राजाभैया पूछवाले के पुत्र श्री बाला साहब माधव सङ्गीत महाविद्यालय के आजकल प्राचार्य हैं। पिता जी के गायन की नक्काशाः इनके भी गायन में ओत-प्रोत पाई जाती है। युवकों में ग्वालियर गायकी का प्रदर्शन बड़ी सफलता पूर्वक आप करते हैं। श्री रातांजनकर जी के सान्निध्य का भी इन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। प्रत्येकशः एक-एक आवर्तन में टप्पे की स्थायी और अंतरा प्रस्तुत करने की ग्वालियर की विशेषता आप भली प्रकार निभाते हैं। बाला साहब से आज बहुत-सी अपेक्षाएँ की जा सकती हैं।

आचार्य रामचन्द्र माधव अग्निहोत्री, ग्वालियर

माधव सङ्गीत महाविद्यालय के प्रथम समूह के स्नातक हैं। शिक्षण समाप्त कर लेने के बाद इसी विद्यालय में स्कालर शिक्षक नियुक्त हुए। गत वर्ष प्रधानाचार्य के पद से सेवा-निवृत्त हुए हैं। आपके ज्येष्ठ भ्राता श्री सदाशिवराव और स्वयं आप श्री राजाभैया के प्रमुख शिष्यों में से गिने जाते हैं। सङ्गीत में सामूहिक शिक्षा के पं० भातखण्डे के सभी प्रयोग आपने देखे हैं। अतः आपका लेखन स्वानुभवों पर आधारित है। गीत रचना भी करते हैं।

आचार्य बालाभाऊ उमड़ेकर, उर्फ कुण्डल गुरु, ग्वालियर

माधव सङ्गीत महाविद्यालय के प्रथम समूह के स्नातक हैं। कुछ समय तक इसी विद्यालय में शिक्षक भी रहे, तदनंतर रियासत में दरबार गायक नियुक्त हुए। इधर कुछ वर्षों से विद्यालय में विज़िटिंग प्रोफेसर नियुक्त हुए हैं। चतुर सङ्गीत महाविद्यालय नाम से स्वतन्त्र विद्यालय भी चलाते हैं। संस्कृत के अच्छे ज्ञाता हैं। गीत एवं नयी राग रचना करते हैं जो "राग-सुमन-माला" में प्रकाशित हुई हैं और पर्याप्त लोकप्रिय भी हैं। शारीरिक दुर्बलता होते हुए भी आजकल आप अनुसन्धानात्मक कार्यों में समय व्यतीत कर रहे हैं।

पद्मभूषण उस्ताद अलाउद्दीन खाँ, मैहर

पं० भातखण्डे की पीढ़ी के वयोवृद्ध एवं तपस्वी साधक के रूप में आपने पर्याप्त ख्याति प्राप्त की है। सरोद, वायलिन, पखवाज, क्लेरोनेट, जलतरंग, सुरबहार आदि विभिन्न वाद्य बजाते हैं। वाद्यवृन्द के प्रणेता माने जाते हैं। सैंकड़ों प्रतिभावान् शिष्यों का निर्माण कर चुके हैं। जीवित कलाकारों में आपका नाम परमोच्च है। मैहर के शासकीय विद्यालय में आजीवन प्रधानाचार्य नियुक्त हैं। पं० भातखण्डे इन्हें विशेष रूप से कानफ्रेन्सों में अपने साथ ले जाते थे तथा रागों का साजशृङ्गार करने की इनकी विद्वत्ता-प्रचुर शैली की ओर रसिकों का ध्यान आकृष्ट करते थे।

स्व० श्री रामकृष्ण नरहर वझे, पूना

दस मास की अवस्था में पिता जी का देहान्त, मजदूरी करके माताजी द्वारा लालन पालन, बारहवें वर्ष में विवाह, पास में एक फूटी कौड़ी भी नहीं—ऐसी एक-से-एक बढ़ कर प्रतिकूल परिस्थितियों में आज से लगभग ८०-८५ वर्ष पूर्व इन्होंने गायन का अभ्यास किया था। इधर-उधर भटकते हुए फुटकर ज्ञान प्राप्त करते रहे। अंततः इसी बेचैनी में पैदल अथवा जैसे भी हो गंधर्व-नगरी ग्वालियर में ये पहुँच गये। भिक्षावृत्ति अपना कर अक्षरशः लंगोटी के सहारे, उस्ताद निसार हुसेन खाँ से इन्होंने शिक्षा पाई। उस जमाने के कसदार, रियाजी गायक वादकों से प्रेरणा पाकर ये स्वयं भी उसी श्रेणी के गायक बन गये। स्वयं महफिलों में गाकर सैकड़ों छात्रों को महफिलबाजी का चस्का लगा चुके हैं। अपने जमाने में इन्होंने यथेष्ट सम्मान पाया। सारे हिन्दुस्तान में इनका नाम सम्मान पूर्वक लिया जाता है। पुराने वातावरण में पले हुए थे, अतः शिक्षा के आधुनिक तरीकों पर ज़रा भी विश्वास नहीं रखते थे। कल्पनातीत कष्ट ''रिश्रम, लांछनों को

सहकर स्वयं गायक कुल के न होते हुए भी परम्परागत जो उच्च विद्या इन्होंने प्राप्त की थी, उसका लाभ सभी गायन प्रेमियों को मिलना चाहिये, ऐसी इच्छा ढलती उम्र में इनमें जागृत हुई और बुवा साहब ने पंडित भातखण्डे का मार्ग सहर्ष अपना लिया। स्थान-स्थान पर पंडित भातखण्डे का स्मरण करते हुए इन्होंने अपना समस्त लेखन मातृभाषा में ही किया है। स्पष्ट है भाषाविवाद उपस्थित कर परम्परा को सुरक्षित करने के अपने व्रत को खण्डित करना वे नहीं चाहते थे।

प्रो० ग० ह० रानडे, पूना

फर्ग्युसन कालेज, पूना में फिजिक्स के प्रोफेसर रह चुकने के बाद आजकल सेवानिवृत्त जीवन व्यतीत कर रहे हैं। पं० भातखण्डे के गुरु श्री गणपतिबुवा भिलवड़ीकर से आपने भी शिक्षा पाई है। सङ्गीत के एक माने हुए लेखक, आलोचक हैं। पं० भातखण्डे की तर्क सङ्गत लेखन शैली से आप भी बहुत प्रभावित हुए। पाश्चात्य लेखकों के समान सङ्गीत पर प्रामाणिक ग्रन्थ निर्मिति प्रचुर संख्या में होनी चाहिये, ऐसा आपका आग्रह है तथा इस दिशा में स्वयं प्रयत्नशील हैं।

ठाकुर जयदेव सिंह, वाराणसी

संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी के विद्वान् होने के साथ-साथ सङ्गीत में लेखक, आलोचक के रूप में आपने बहुत ख्याति अर्जित की है। कानपुर में वर्षों तक अध्यापन करने के बाद लखीमपुर खीरी में युवराज दत्त-महाविद्यालय के प्रधानाचार्य रहे। ध्रुवपद गायन की विशेष तालीम प्राप्त होने से सङ्गीत के क्षेत्र में भी सर्व मान्यता प्राप्त की है। विश्वविद्यालयों के अनेक छात्रों को डाक्टरेट के लिए मार्ग-दर्शन कर चुके हैं। वर्षों तक आकाशवाणी के कलाकारों का चयन, स्तरीकरण, कार्यक्रम-आयोजन आदि-आदि अनेक दायित्वपूर्ण कार्य निष्पक्षता एवं निर्भीकता से किये हैं। कुछ ही वर्ष पूर्व आकाशवाणी के चीफ प्रोड्यूसर के पद से मुक्त होकर आजकल वाराणसी में निवास करते हैं। इन दिनों भारतीय सङ्गीत का विस्तृत इतिहास लिख रहे हैं। खैरागढ़ विश्वविद्यालय के अनुसन्धानात्मक कार्यों में पर्याप्त रुचि रखते हैं।

श्री गोविन्दराव राजूरकर, अजमेर

आप माधव सङ्गीत महाविद्यालय ग्वालियर के स्नातक है। बाल्यकाल से ही पं० भातखण्डे के कार्यों से प्रभावित हो चुके हैं। राजस्थान में शास्त्रीय सङ्गीत के विधिवत् शिक्षण-प्रसार में आपका अनुदान उल्लेखनीय है। राजस्थान की ज्येष्ठ सङ्गीत संस्था अजमेर म्यूजिक कालेज के आप प्राचार्य हैं।

आचार्य मोरेश्वर आत्माराम गोलवलकर, इन्दौर

माधव सङ्गीत महाविद्यालय के प्रारंभिक दिनों में आपने सङ्गीत का अभ्यास प्रारम्भ किया था। तत्पश्चात् इन्दौर रियासत के समय में वहाँ सङ्गीताध्यापक नियुक्त हुए। क्रमशः पदोन्नति कर वहाँ के शासकीय सङ्गीत महाविद्यालय में प्रधानाचार्य के पद पर

रहकर सेवा निवृत्त हुए। आप स्वर्गीय कृष्णराव दाते के विशेष सम्पर्क में आये। पं० भातखण्डे, और राजाभैया से भी शिक्षा ग्रहण की। गीत रचना भी करते हैं।

श्री ना० भा० खाण्डेपारकर, उज्जयुनी

आप आचार्य भास्करराव खाण्डेपारकर के सुपुत्र हैं। बाल्यकाल से पं० भातखण्डे के साथ कुटुम्बीय के रूप में बीच-बीच में रहने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ तथा उन्हीं के प्रभाव में आकर देर से ही सही, परन्तु सङ्गीत को अपना सर्वस्व बना लिया। भातखण्डे से प्रेरणा पाकर अपने ही पिताजी द्वारा स्थापित उज्जैन के शासकीय सङ्गीत विद्यालय के आप आजकल प्रधानाचार्य हैं।

श्री दारबशा एम० कात्रक, बम्बई

पं० भातखण्डे के सैकड़ों पारसी मित्रों में से आप आज भी जीवित हैं। चौपाटी पर प्रतिदिन घूमने जाना पं० भातखण्डे का नित्यक्रम था। दिन भर के अपने कार्यक्रमों की जानकारी शिष्य-मित्रों को इसी समय पर वे देते। श्री दारबशा भी इन अवसरों पर अनेक बार उपस्थित रहते। पं० भातखण्डे के साथ बिताये हुए उन अलौकिक-क्षणों का स्मरण करते रहना आपका एक छन्द हो गया है।

श्री गजानन नारायण रातांजनकर, बी० ए०, बम्बई

डॉ० श्रीकृष्ण नारायण रातांजनकर के आप कनिष्ठ भ्राता हैं। पं० भातखण्डे के साथ आपके परिवार का घनिष्ट सम्बन्ध जुड़ गया था और उससे आप भी प्रभावित हो चुके थे। सभी बातें स्वयं देखी हैं और उनका अनुभव किया है। महफिल में भले ही न गाते हों, परन्तु सङ्गीत के विभिन्न पहलुओं पर पर्याप्त ज्ञान रखते हैं। बहुत-सा ग्रन्थ साहित्य देख चुके हैं और सैकड़ों गीत मुखस्थ हैं। संस्कृत के भी अच्छे ज्ञाता हैं। महाराष्ट्र राज्य में सचिवालयीन सेवा से निवृत्त होकर आजकल आप अपने भाई साहब के लेखन-प्रकाशन कार्य में सहायता देते हैं। प्रस्तुत स्मृति ग्रन्थ में अधिकांश चित्र आपने ही एकत्रित किये। आपके लेख में आया हुआ प्रत्येक शब्द स्वानुभवों पर आधारित है। स्वयं अपने ही विषय की प्रतिष्ठा घटाने वाली हरकतें गायक-वादक क्यों करते रहते हैं? इस पर आप सदैव व्याकुल रहते हैं।

आचार्य विष्णु अण्णाजी कशालकर, इलाहाबाद

गायनाचार्य पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के प्रमुख शिष्यों में श्री कशालकर सर्वाधिक ज्येष्ठ, अनुभवी एवं वयोवृद्ध माने जाते हैं। प्रयाग-सङ्गीत-समिति, इलाहाबाद का क्रमिक विकास आपके ही प्रयासों का आंशिक परिणाम है। पं० विष्णु दिगम्बर के सभी कार्यकलापों में आपने सहयोग दिया। अतः संगीतोद्धार की दिशा में जो भी प्रारम्भिक त्रुटियाँ रहीं, उनसे आप सदैव जागरूक रहते हैं। आकाशवाणी के "आडीशन बोर्ड" में आप एक सदस्य हैं। विभिन्न शिक्षण-संस्थाओं का मार्ग-दर्शन करते रहते हैं।

श्री हिरजी भाई आर० डॉक्टर, बी० ए०, बी० एस० सी०, बड़ौदा

पण्डित भातखण्डे के अनेक पारसी शिष्यों में श्री हिरजी भाई डॉक्टर बड़ौदा संगीत महाविद्यालय में प्रधानाचार्य के पद से सन् १९५९ में सेवा-निवृत्त हुए। दिलरुबा एवं विचित्र

वीणा के विशेषज्ञ हैं। राज्य विलयन के पूर्व सरकारी अधिकारी के नाते अनेक प्रसिद्ध कलाकारों से आपका सम्पर्क हुआ और संगीत साधना उत्तरोत्तर विकसित होती गई। सन् १९२५ से आपने पं० भातखण्डे से शिक्षा लेना प्रारम्भ किया। गतों की प्रबन्ध रचना में ये बहुत कुशल हैं। अच्छे वक्ता होने के साथ-साथ क्रियात्मक प्रदर्शन में भी अधिकार रखते हैं। इन दिनों नेत्रों की ज्योति क्षीण हो जाने के कारण आप प्रायः सभी कार्यों से निवृत्त हो गये हैं।

श्री प्रभुलाल गर्ग, हाथरस

वर्तमान समय में सङ्गीत के प्रति लोगों की अभिरुचि बढ़ाने में श्री प्रभुलाल गर्ग की सेवाएँ उल्लेखनीय है। हाथरस में प्रकाशित "सङ्गीत" मासिक पत्रिका के आप संस्थापक हैं। विभिन्न ग्रंथों का सम्पादन-प्रकाशन कर चुके हैं। पं० भातखण्डे का साहित्य हिन्दी में अनुवादित कर आपने सङ्गीत पर बहुत उपकार किए हैं। हिन्दी के हास्यरस के कवि के रूप में 'काका हाथरसी' नाम से आप सुपरिचित हैं। सभी स्तरों के समाज में सङ्गीत की चर्चा हो, इसका गम्भीर-अध्ययन हो, प्रचुर साहित्य उपलब्ध हो, स्वतन्त्र-रूप से उसके मुद्रक प्रकाशक हों, वाद्य-यन्त्र बनाने की प्रयोग शालाएँ हों, सङ्गीत-साधकों के लिए विभिन्न प्रकार के व्यवसाय उपलब्ध हों, इन विषयों को लेकर आपने पर्याप्त लेखन किया है। व्यावसायिक साधन जुटाने के लिये आजकल आप बम्बई भी प्रायः आते-जाते रहते हैं।

श्री विश्वंभरनाथ भट्ट, आगरा

पं० राजाभैया के सम्पर्क में आने के कारण इनमें पं० भातखण्डे के प्रति विशेष अनुराग प्राप्त हुआ। स्वयं संगीत की अच्छी शिक्षा ग्रहण की है। 'संगीत' मासिक पत्रिका से आपका घनिष्ट सम्बन्ध रहा है और लेखन कार्य भी करते रहते हैं। अहिन्दी भाषा में लिखा हुआ संगीत का साहित्य समस्त विद्यार्थियों के लिये उपलब्ध होता रहे—इस दिशा में आप सदैव कुछ-न-कुछ सेवा करते रहते हैं।

श्री सुदामाप्रसाद दुबे, एम० ए० बी० एड०, खातेगाँव

संस्कृत हिन्दी, अंग्रेजी आदि विभिन्न विषयों के अध्यापक श्री दुबे, देवास जिले के हाटपिपल्या में व्याख्याता हैं। पं० भातखण्डे के प्रति आपकी अगाध श्रद्धा है। हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति भाग एक का हिन्दी-अनुवाद कर आपने संगीत-जगत् को उपकृत किया है। ऐसे ही सत्प्रयासों की इनसे निरन्तर कामना की जा सकती है।

प्रो० बी० आर० देवधर, वनस्थली

पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के प्रमुख शिष्यों में प्रो० देवधर सर्वपरिचित हैं। गुरु जी का बम्बई शहर में फैला हुआ सारा कार्य देवधर जी ने पुन: एक बार सुगठित करके बाद में उसको अखिल भारतीय संगठन का स्वरूप प्रदान किया। अनेक बार विदेश भ्रमण कर चुके हैं तथा कितने ही छात्रों को संगीत का ज्ञान कराया है। स्वरलिपि को सरलतम बनाना, पाठ्य पुस्तकें लिखना, परीक्षाएँ संचालित करना, मासिक पत्रिका चलाना, कान्फ्रेंसें बुलाना आदि विभिन्न कार्यों में प्रो० देवधर सदैव व्यस्त रहते हैं। स्थान-स्थान

से गीतों का संग्रह किया है। देश के उच्चतम विद्वानों में श्री देवधर का स्थान है। जहाँ पर भी संगीत की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले आयोजन होते हैं उसमें प्रो० देवधर का योगदान एक निश्चित-सी बात हो गई है। पं० भातखंडे के प्रति इनमें प्रगाढ़ श्रद्धा है और अनेक प्रकार से उनके आदर्शों को उन्होंने कार्यान्वित भी किया है। भातखंडे रानाढ्ी के विभिन्न आयोजनों में श्री देवधर ने तत्परता से सहयोग दिया। सम्पादक मण्डल उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता है।

श्री नरेन्द्रराय शुक्ल, नई दिल्ली

पं० भातखण्डे के कार्यों पर असीम श्रद्धा रखने वाले अनेक गुजराती परिवारों में श्री शुक्ल जी का परिवार प्रमुख है। बाल्य काल से ही वे उनके सम्पर्क में आये और बड़ी आत्मीयता से सांगीतिक गतिविधियों का चिंतन करते रहे। संगीत की आधुनिक एवं परम्परागत शिक्षण प्रणालियों का समादर शुक्ल जी की विशेषता है। विभिन्न उस्तादों से गीत-संग्रह किया है। ये सारे गीत कंठस्थ हैं जिन्हें वे बातों-बातों में ही उदाहरण के रूप में उद्धृत करते जाते हैं। ध्रुवपद गायन पर विशेष अनुराग है। राग स्वरूपों के अध्ययन में परम्परागत गीत ही निर्णायक होने चाहिये—श्री शुक्ल जी के इन विचारों में पं० भातखण्डे के घनिष्ट सम्पर्क की स्पष्ट झलक प्रतीत होती है। विभिन्न लेखों द्वारा संगीत की समस्याओं का उन्होंने विश्लेषण किया है। श्री शुक्ल आजकल आकाशवाणी के केन्द्रीय अनुसंधान विभाग में एडवाइजर हैं।

होराभूषण पं विनायक मुरलीधर जोशी, श्रीगोंदा

आप ज्योतिष शास्त्र के अच्छे ज्ञाता हैं तथा ज्ञानार्जन में सदैव रत रहते हैं। संगीत के प्रति इन्हें विशेष अनुराग है। वर्तमान, भूत, भविष्य का विचार करते समय ग्रहयोग एवं कर्तव्य के उचित मेलजोल का सांगोपांग विवेचन करना इनके अपने अभ्यास की विशेषता है। परिश्रमी साधक होने से इनसे बहुत-सी आशाएँ की जा सकती हैं।

सम्पादक मण्डल के अन्य सदस्यों का परिचय

श्री केशव व्यंकटेश गडकर, ग्वालियर

माधव संगीत महाविद्यालय के सुविख्यात सितार-शिक्षक श्री भैयासाहब मावलङ्कर के आप प्रमुख शिष्य हैं। सितार एवं कंठ संगीत के स्नातक भी हैं। विद्यार्थी जीवन से ही पं० भातखण्डे की शैक्षणिक गतिविधियों से आप प्रभावित हुए और ग्वालियर की शिक्षण संस्था श्री महारुद्र मंडल को आप निरपेक्ष मार्ग दर्शन देते हैं। माधव संगीत महाविद्यालय के ज्येष्ठ प्राध्यापक हैं तथा महाविद्यालय के विभिन्न कार्यों में सदैव तत्पर रहते हैं।

आचार्य सदाशिव भगवंत देशपाण्डे, संगीत निपुण, जबलपुर

जबलपुर नगर में संगीत के प्रति आज जो जागृति हुई है उसका बहुत बड़ा श्रेय श्री देशपाण्डे को दिया जाना चाहिए। पं० भातखण्डे जैसे असामान्य व्यक्तियों के कार्यों से आपने संगीत में प्रेरणा पायी और परिश्रमपूर्वक उसमें अधिकार प्राप्त किया। भातखण्डे संगीत महाविद्यालय के आप प्रारम्भ से ही प्रधानाचार्य हैं। खैरागढ़ संगीत विश्वविद्यालय के संगीत विभाग के "डीन" हैं। संगीतज्ञों का सामाजिक आर्थिक स्तर बढ़ाने के विषय में सदैव प्रयत्नशील रहते हैं।

श्री अमरेशचन्द्र चौबे, एम०ए०एम० म्यूज, खैरागढ़

मैरिस म्यूज़िक कालेज के स्नातक एवं डा० रातांजनकर के शिष्य श्री अमरेश चन्द्र चौबे आजकल संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ में व्याख्याता हैं। पं० भातखण्डे का विशाल साहित्य हिन्दी भाषियों को उपलब्ध कराने में आप भी प्रयत्नशील रहते हैं।

आचार्य नारायण राव पाठक, भण्डारा

माधव संगीत महाविद्यालय के आप प्रथम स्नातक हैं। वर्षों तक नागपुर के चतुर संगीत महाविद्यालय के प्रधानाचार्य के रूप में शिक्षण कार्य करते रहे। पुराने मध्य प्रदेश में इंदिरा संगीत एकेडेमी के प्रधानाचार्य थे। पश्चात् नये मध्यप्रदेश में सङ्गीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ में अध्यापन कार्य करते हुए शासकीय सेवा से निवृत्त हुए। इस पुस्तक में दिये हुए पं० भातखण्डे के परीक्षा लेखों के जो-जो अंश दीमक लग जाने के कारण नष्ट हुए थे, उनको सन्दर्भ पूर्ण करने का कार्य आपने ही किया। आजकल आप महिला शिक्षण प्रसारण मण्डल द्वारा सञ्चालित सङ्गीत विद्यालय भण्डारा में प्रधानाचार्य हैं।

श्री रुद्रदत्त मिश्र, ग्वालियर

हिन्दी के ख्याति प्राप्त लेखक नाटककार और कवि हैं। कविता में गायनोचित शब्दों का चयन आपकी विशेषता है। लेखों की भाषा एवम् रचनाशैली व्यवस्थित करने में बहुमूल्य सुझाव दिये।

श्री रमाकांत बक्षी, खैरागढ़

विक्टोरिया माध्यमिक शाला, खैरागढ़ में आप अध्यापक हैं तथा अभिनय एवं सङ्गीत में विशेष रुचि रखते हैं। लेखों की भाषा शुद्ध करने में विशेष सहयोग मिला।

श्री चैतन्य देसाई, खैरागढ़

सङ्गीत विश्वविद्यालय में भातखण्डे अनुसन्धान विभाग में रिसर्च असिस्टेंन्ट हैं तथा भरतभाष्य ग्रन्थ के शेष अध्यायों का सम्पादन कर रहे हैं। स्मृति ग्रन्थ की अन्तिम कापी तैयार करने में आपने पूर्ण सहयोग दिया।

श्रीमती प्रतिभा चिचोरे, खैरागढ़

स्मृति ग्रंथ में प्रकाशित पं० भातखण्डे के गीतों की प्रतियाँ एवम् ग्रन्थ की अन्तिम प्रति तैयार करने में सहयोग दिया।

श्री आर० एस० चौहान, खैरागढ़

स्मृति ग्रन्थ के समस्त साहित्य लेखों की टंकमुद्रित कापियाँ बनाने में तत्परता से कार्य किया।

श्री हरिश्चन्द्र भारद्वाज, बी० ए०, साहित्यरत्न

विश्वविद्यालय में लेखपाल के पद पर कार्य करते हैं तथा स्मृति ग्रंथ सम्बन्धी जो जो कार्य आपको सौंपे गये उन्हें तत्परता से पूर्ण करते रहे।

श्री शिवनारायण झा

संप्रति सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग में कार्य कर रहे हैं। स्मृति ग्रंथ के मुद्रण कार्य और प्रूफरीडिङ्ग की देख-रेख के लिये आप से पर्याप्त सहयोग मिला है और स्मृतिग्रंथ की अच्छी छपाई के लिये अनेक सुझाव समय-समय पर प्राप्त होते रहे हैं।

दानदाताओं की सूची

भातखण्डे स्मृति ग्रंथ के निर्माण में दिनांक १६-६-१९६६ तक जिन्होंने आर्थिक सहायता प्रदान की है, उन सहयोगियों की सूची :—

२५००) डा० श्रीकृष्ण नारायण रातांजनकर—बम्बई।

५०१) श्री गौतम शर्मा, अध्यक्ष भातखण्डे शताब्दी समारोह समिति—ग्वालियर।

५००) डा० बालकृष्ण केसकर, अध्यक्ष भातखण्डे शताब्दी समारोह समिति—दिल्ली।

३६०) विश्वविद्यालय के शिक्षक तथा छात्रों द्वारा प्रस्तुत आकाशवाणी के कार्यक्रमों का पारिश्रमिक—खैरागढ़।

१७१) श्री प्रभाकर नारायण चिंचोरे—खैरागढ़।

१५१) श्री अध्यक्ष भातखण्डे शताब्दी समारोह समिति—नागपुर।

प्रत्येकशः १०१) श्रीमती चन्द्रप्रभा पटेरिया, श्री राधेश्याम अग्रवाल, श्रीमती मालती बाई हर्षे, श्री सदाशिव भगवन्त देशपाण्डे—जबलपुर, श्री गोपाल रामचन्द्र गरुड़—इन्दौर।

प्रत्येकशः १००) श्री विष्णु गोविन्द जोग—कलकत्ता, श्रीमती यशोदा बाई धर्माधिकारी—जबलपुर।

५५) श्री नारायण भास्कर खाण्डेपारकर—उज्जैन।

प्रत्येकशः ५१) श्री रामचन्द्र माधव अग्निहोत्री, श्री बालासाहेब पूछवाले—ग्वालियर, श्री विष्णु कृष्ण जोशी, श्री अरुणकुमार सेन—रायपुर, श्री कुमार गंधर्व—देवास, श्री अमृतराव निस्ताने—नागपुर, श्री गुलाबराय—दिल्ली, प्रो० यु० एस० कोचक—इलाहाबाद, श्री गोविन्दराव राजुरकर—अजमेर, भातखण्डे संगीत महाविद्यालय—जबलपुर, संगीत कला मण्डल—इन्दौर, श्री बीरेन्द्र कोआपरेटिव बैंक की ओर से विश्वविद्यालय के छात्रों को संगीत कार्यक्रम का पुरस्कार—खैरागढ़।

प्रत्येकशः ५०) श्री श्रीपद बन्दोपाध्याय—दिल्ली, प्राचार्या गृहविज्ञान महाविद्यालय—जबलपुर, प्राचार्य इंस्टिट्यूट आफ म्यूजिक—बर्दमान, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय—बड़ौदा, कालेज आफ म्यूजिक हिन्दू विश्वविद्यालय—वाराणसी, प्राचार्य माधव संगीत महाविद्यालय—ग्वालियर, गवर्नमेंट कालेज आफ म्यूजिक एन्ड डान्स—हैदराबाद, दि दून पब्लिक स्कूल ग्रन्थालय—देहरादून।

३१) श्री वामन सखाराम राजुरकर—इन्दौर।

३०) श्री रामचन्द्र दामोदर सप्तरिषी—ग्वालियर।

प्रत्येकशः २५) श्री वि० गो० पंचभाई, श्री राजाभाऊ पोहनकर, डा० पी० बी० देव, डा० अनन्त कृष्णन्, श्री रा० द० धनोप्या, श्री अनन्त बालकृष्ण जोशी, श्रीमती जानकी मूर्ति, श्रीमती सावित्री देवी सिन्हा, श्रीमती स्वराज्यमणि अग्रवाल, श्रीमती डा० तृप्ती पांडे, कुमारी सुजाता धर्माधिकारी, कुमारी नीता राजदान, कुमारी जयश्री कोली, अध्यक्ष संगीत समाज—जबलपुर, श्री बालाभाऊ उमड़ेकर, श्री प्राचार्य पार्वतीबाई गोखले डिग्री कालेज, श्री विष्णु शामराव अत्रे, श्री बी० आर० सन्त, श्री अनन्त माधव कोठारी, श्री केशव रामचन्द्र शिरढोणकर, श्री गजानन नारायण नातू, श्री गो० वि० क्षीरसागर, श्री मदन-लाल गर्ग, डा० रघुनाथराव पापरीकर—ग्वालियर, श्री मोरेश्वर अनन्त गोलवलकर, श्री नि० छ० जमींदार, अहिल्या केन्द्रीय पुस्तकालय, इन्दौर जनरल लायब्रेरी इन्दौर, श्रीमती अपर्णा दासगुप्ता, श्री चन्द्रकांत रंगनाथ रणदिवे, डा० रामचन्द्र वामन आपटे, श्री प्राचार्य संगीत महाविद्यालय, श्रीमती विमल कांडेकर—इन्दौर, श्री वसन्त चिंतामण रानडे, श्री अमरेशचन्द्र चौबे, श्री सुरेशचन्द्र मिश्रा, श्री रामशंकर 'पागलदास', श्रीमती सरोजिनी गंगाजलीवाले, श्रीमती प्रतिभा चिंचोरे, श्री चैतन्य देसाई—खैरागढ़, श्री मोहन-राव कल्याणपुरकर, श्री पी० डी० सप्तरिषी, श्रीमती शन्नो खुराणा, कुमारी प्रेमलता पुरी, श्री चन्द्रशेखर पन्त, श्री दिनकर कायकिणी—दिल्ली, श्री जगदीश सहाय कुलश्रेष्ठ, श्री महेश वाजपेयी भीमपुरे, श्री तेजकृष्ण जलानी, पं० रामानन्द शर्मा—जम्मू, श्री नारा-यणराव पाठक, श्री दादाजी तुलानकर, श्रीमती लीलाताई गुप्ते, कुमारी वेणुताई हार्डीकर—भण्डारा, कुमारी बिजुरानी चौधरी, श्री तुलसीराम देवांगन, श्री गुणवन्त व्यास, डा० दाबके—रायपुर, श्री गोविन्द नारायण नातु, श्री बी० एस० निगम, श्री दाऊजी गोस्वामी—लखनऊ, श्री स्टेशन डायरेक्टर आकाशवाणी, श्री वसन्त उमेश राजुरकर, श्री गोविन्द नारायण दन्ताले—हैदराबाद, श्री माधव दत्तात्रेय भातखण्डे—बम्बई, श्री निखिल घोष, अरुण संगीतालय—खार, बम्बई, श्री कोलबा पिंपलधरे, श्री जी० एस० आयलवार—नागपुर, श्री डी० टी० जोशी, प्राचार्य बर्दमान एकेडेमी आफ म्यूज़िक—बर्दमान, श्री गंगाधर नानुभैया तेलंग, प्राचार्य गांधी संगीत महाविद्यालय—कानपुर, श्री कुन्दनलाल गंगानी, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी—जोधपुर, श्री प्राचार्य माधव संगीत महाविद्यालय, माधव संगीत महाविद्यालय के विद्यार्थियों की लायब्रेरी—उज्जैन, श्री चिन्मय लाहिरी, श्रीमती इला लाहिरी, श्री बीरेन्द्र किशोर राय चौधरी—कलकत्ता, श्री बालाजी श्रीधर पाठक, एक अज्ञात मित्र (हस्ते श्री चिंचौरे)—इलाहाबाद, श्री ठाकुर जयदेव सिंह—वाराणसी, डा० शरतचन्द्र परांजपे—रींवा, प्रो० बी० आर० देवधर—वनस्थली, श्री सुधीर कुमार सक्सेना—बड़ौदा, श्री शम्भूनाथ कविराज—दुबराजपुर, श्री एस० डब्लू० टिल्लू—भोपाल, श्री कृष्णराव मुजुमदार—शाजापुर, श्री दि० भा० रानडे—देवास, श्री विश्वनाथ व्यास—धार।

प्रत्येकशः १५) श्री जगदीशचन्द्र वैद्य—इन्दौर, श्री मधुकर घाटे—रतलाम, श्री आर० एस० वाघ—उज्जैन।

११) श्री नी० ना० बौबड़े—ग्वालियर।

१०) श्री ल० ब० वणकर—उज्जैन।

२६६) रु० ६० पैसे उपरोक्त अनुदान का ब्याज।

दानदाताओं की सूची-परिशिष्ट

७५) श्री तनखी वाले।

५०) श्री द० ग० करंजगाँवकर।

प्रत्येकशः २५) श्री राहुल बातपुते, कुमारी सुमन दाण्डकर—इंदौर, श्रीमती कुसुम कवठेकर—महू, श्री जगदीश चंद्र दीक्षित, श्री मनोहर देव—भोपाल, श्री रमेश नाडकर्णी, श्री प्रभाकर किबे, श्री भाऊ खिरवडकर।

INDIRA KALA SANGEET VISHWAVIDYALAYA
GRANTH-MALA

AN APPEAL

Friends,

On the occasion of the inauguration of Bhatkhande Smriti Granth please allow me to invite your kind support to a cause very much dear to the late Pt. Bhatkhande. Publication of books on Music is mostly not a happy experience and yet its value for all round progress of the subject and the musicians in general can not be denied. In India in spite of abundant number of lovers of music books are hardly read and possessed even by students of the subject. In fact there has always been a dearth of good literature on Music. This position if compared with the West is extremely disappointing.

The Indira Kala Sangeet Vishwavidyalaya so far published two books. The first being an outcome of a donation by Dr. Humayun Kabir, the then Minister of Cultural Affairs, Govt. of India the present Bhatkhande commemoration volume is an adequate proof that further publications can be taken up on the actual support of the readers themselves.

I feel confident that various bodies of the Vishwavidyalaya will be too glad to undertake printing and publishing of a regular stream of useful literature on no profit and no loss basis. This appears possible if the Vishwavidyalaya is able to enlist five to seven hundred subscribers who could agree to pay in advance the actual price of the book and thus giving their consent would buy at least one copy of the same when it is published. Individual readers, music colleges, University departments of music, public Libraries, clubs and music circles can become partners and help in the formation of a group of subscribers. Even if the response is very encouraging the frequency of such quality literature can not and should not more than one or at the most two books in a year. Since preparation, printing and publication etc. will be the responsibility of the Vishwavidyalaya advice of its expert members will be obtained from time to time ensuring a sufficient gaurantee to the subscribers regarding efficient working of this enterprise on cooperative lines.

Friends, since serious music has been successfully brought down closer to masses it now needs your support. Let me assure that your active assistance will help the Vishwavidyalaya to render useful service in the sphere for which it is meant.

A Line in reply will help immensely to take further immediate steps in the matter.

P. O. Khairagarh Raj
Distt. Drug. M. P.

Yours Sincerely,
P. N. Chinchore

दानदाताओं की सूची-परिशिष्ट

७५) श्री तनखी वाले।

५०) श्री द० ग० करंजगाँवकर।

प्रत्येकशः २५) श्री राहुल बातपुते, कुमारी सुमन दाण्डकर—इंदौर, श्रीमती कुसुम कवठेकर—महू, श्री जगदीश चंद्र दीक्षित, श्री मनोहर देव—भोपाल, श्री रमेश नाडकर्णी, श्री प्रभाकर किबे, श्री भाऊ खिरवडकर।



